रेखा-चित्र)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

र्ष ६४ } गोरखपुर, सौर चैत्र, वि॰ सं॰ २०४७, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१५, अप्रैल १९९० ई॰ { संख्या १
पूर्ण संख्या ७

सर्वदेवतामय भगवान् नारायणको नमस्कार

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

'प्रभो! आप जगत्के प्राणस्वरूप वायुदेवता, अधार्मिकोंके नियामक यमराज, समस्त देवताओंके मुखस्वरूप अग्निदेव, जलके अधिष्ठाता वरुणदेवता, प्राणियोंके आह्लादक चन्द्रमा, दक्ष आदि प्रजापतिस्वरूप, उनके जनक ब्रह्मा एवं उनके भी जनक आप साक्षात् भगवान् नारायण देव हैं। मैं आपको सहस्रों बार नमस्कार करता हूँ तथा पुनः आपके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

देव-स्तवन

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

यशोंमें श्रेष्ठ हविर्भागको ग्रहण करनेवाले देवराज इन्द्र हम सभी लोगोंका अविनाशी कल्याण करें। पूषा नामक आदित्यदेवता जो अखिल विश्वब्रह्माण्डके समस्त प्राणियोंकी भूत, भविष्य, वर्तमान आदि स्थितियोंको भलीभाँति जानते हैं, वे हम सभीका अक्षय कल्याण करें और जो पूषा देवता समस्त विश्वके सभी प्रकारके ज्ञान, ऐश्वर्य तथा सम्पत्तियोंके स्वामी एवं उसे प्रदान करनेमें समर्थ हैं, वे हम सभीका ज्ञान, ऐश्वर्य और सम्पत्ति-प्रदानके द्वारा कल्याण करें। जिसके शरीरपर चक्र, त्रिशूल, वज्र एवं कालदण्ड-जैसे महान् अस्त्र-शस्त्र कोई क्षति नहीं पहुँचा पाते, सभी व्यर्थ हो जाते हैं, वे तृक्षाके पुत्र विष्णुवाहन गरुत्मान् गरुड हम सबके अक्षय श्रेयका सम्पादन करें। सभी महान् देवताओंके आचार्य एवं स्वामी देवगुरु बृहस्पति हम सभीका अविनाशी कल्याण करें।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥

श्वेत विन्दुओंसे युक्त, अत्यन्त गतिशील, सुन्दर चालवाले पृश्नि नामक गौके पुत्र विविध यज्ञोंमें एक साथ उचित समयपर पहुँचकर अग्निके मुख या जिह्वाके द्वारा हवि ग्रहण करनेवाले, सूर्यको नेत्र बनाकर देखनेवाले मरुद्गण एवं सभी विश्वेदेवतागण हमारे इस यज्ञमें तीव्रता एवं शुभ भावनासे पधारनेकी कृपा करें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ् सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

यज्ञप्रिय यजनशील इन्द्रादि देवगण ! हम अपने कानोंसे मङ्गलमय आप सभी देवताओंके यश तथा स्तुतियोंका श्रवण करें। नेत्रोंसे आप सभी देवोंके सुखकारी मङ्गलमय देव-विग्रहोंका दर्शन करें। आपकी मङ्गलमय स्तुति एवं उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थोंका यथार्थ रूपसे वर्णन करते हुए हमलोग स्थिर, दृढ़, निश्चल अङ्गों और विस्तृत, हृष्ट-पुष्ट शरीरोंसे युक्त रहकर देवताओंकी जो आयु है, उसे भगवान्‌के यश-गुण-स्तवनहेतु प्राप्त करें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

हे परमात्मदेव ! हमलोगोंके राष्ट्रमें यज्ञ-देवोपासनादिसमन्वित उत्तम कर्मशास्त्र, ब्रह्मवर्चस्वी, तेजस्वी ब्राह्मण तथा लक्ष्यवेधक, महारथी और अस्त्र-शस्त्रमें निपुण क्षत्रिय एवं राष्ट्रमें प्रभूत दूध देनेवाली गायें, सुपुष्ट कन्धोंवाले भार-वहनमें सक्षम बलशाली बैल और वेगवान् अश्व उत्पन्न हों। स्त्रियाँ सुन्दरी, दक्ष, संस्कार-सदाचार-सम्पन्न, बुद्धिमती हों तथा इस राष्ट्रमें युवक वीर, जयी, रथी तथा सभाके लिये उपयुक्त सभासद सिद्ध हों। पर्जन्य (मेघ) यथासमय प्रचुर वृष्टि करें और ओषधियाँ एवं फसलें फलवती होकर पकें—अन्न और फल पर्याप्त सुलभ हों। हमारे योग-क्षेम चलते रहें—अप्राप्तकी उपलब्धि और उपलब्धकी रक्षा होती रहे ।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

भगवान् अग्निदेव, वायुदेव, सूर्यदेव, चन्द्रदेव, द्योतनशील वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवगण, देवगुरु बृहस्पति, देवराज इन्द्र एवं वरुणदेव (आपका कल्याण करें) ।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥

श्रीमती गौओंको नमस्कार है। कामधेनुकी संतानोंको नमस्कार है। ब्रह्माजीकी पुत्रियोंको नमस्कार है। पावन करनेवाली गौओंको बार-बार नमस्कार है।

कल्याण-सूक्त

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
यस्मिन्नृचः साम यजू॰षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्त॰ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ (यजु० ३४। १-६)

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो। कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो। जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो।

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होतावाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो। जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें अरोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो। श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका संचालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो।

प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इस विश्वमें सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याण-मङ्गलोंका दर्शन करें, कोई भी लेशमात्र दुःखका भागी न हो।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

कठिनाइयोंसे—विपत्तियोंसे सब त्राण पायें, सब मङ्गलोंका दर्शन करें, सब सद्बुद्धिको प्राप्त हों और सब सर्वदा सर्वत्र आनन्द-लाभ करें।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥

दुष्ट लोग सज्जन हो जायँ, सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्त जन बन्धनसे मुक्त हो जायँ और मुक्त जन दूसरोंको बन्धनसे मुक्त करें।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

प्रजाजनोंका कल्याण हो। राजा लोग न्याययुक्त मार्गसे पृथ्वीपर शासन करें। गौओं एवं ब्राह्मणोंका सर्वदा मङ्गल हो। सम्पूर्ण लोक सुखी होंवे।

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

बादल समयपर वर्षा करें, पृथ्वी धान्यसे समृद्ध हो, यह देश (भारतवर्ष) क्षोभरहित हो जाय और ब्राह्मण निर्भय हो जायँ।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥

विश्व-ब्रह्माण्डका कल्याण हो, दुष्ट लोग शान्त हो जायँ, सभी प्राणी अपनी बुद्धिके द्वारा एक दूसरेका भला सोचें, मन सदा भलाई और मङ्गलका ही चिन्तन करे एवं हम सबकी बुद्धि बिना किसी हेतुके भगवान्में आविष्ट हो जाय।

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः ।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः ।
नभः सशब्दं महता सहैव यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त ।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर—ये सब देवता मेरे प्रभातको मङ्गलमय बनायें। भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अङ्गिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन तथा ऋभु—ये सब (ऋषि) मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिङ्गल, सातों स्वर एवं सातों रसातल—ये सब मेरे प्रभातको मङ्गलमय बनायें। गन्धगुणमयी पृथ्वी, रसगुणयुक्त जल, स्पर्शगुणवाली वायु, तेजोगुणयुक्त अग्नि, शब्दगुणमय आकाश एवं महत्तत्त्व (बुद्धि)—ये सब मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षि, सातों श्रेष्ठ द्वीप और भू आदि सातों लोक—ये सब प्रभातकालमें मुझे मङ्गल प्रदान करें। (हे अनघ !) इस प्रकार प्रातःकालमें परम पवित्र सुप्रभात-स्तोत्रको यदि कोई भक्तिपूर्वक पाठ करे या स्मरण करे अथवा सुने तो भगवान्की कृपासे निश्चय ही उसके दुःस्वप्नका नाश होता है तथा प्रभात मङ्गलमय होता है।

कुर्वन्तु वो मङ्गलम्

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥
गौरी श्रीः कुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती ।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेलाश्चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनयाश्चर्मण्वती देविका ।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमाः धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः ।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोऽमृतं चाम्बुधेः रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः ।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः शक्तिः पतीनां पतिः सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान् सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण और संयमनीपुरीके स्वामी यमराज, सभी ग्रह, श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न, नल और कूबर, ऐरावत गज, चिन्तामणि रत्न, कौस्तुभमणि, शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम—ये सब आपलोगोंका मङ्गल करें। भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलके देवता, सौभाग्ययुक्त स्त्री, सभी धन-धान्योंसे सम्पन्न पृथ्वीदेवी, ब्रह्माकी पत्नी सावित्री और सरस्वती, कामधेनु, सत्य एवं पातिव्रत्यको धारण करनेवाली वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहादेवी, कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी रुक्मिणीदेवी तथा दुःस्वप्ननाशिनीदेवी, मीन और मकरोंसे संयुक्त समुद्र एवं उनकी वेलाएँ—ये सब आपलोगोंका मङ्गल करें। भागीरथी गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू तथा महेन्द्रपर्वतसे निःसृत समस्त नदियाँ, चर्मण्वती, देविका नामसे प्रसिद्ध देवनदी, क्षिप्रा, वेत्रवती, (बेतवा), महानदी, गयाकी फल्गुनदी, गण्डकी या नारायणी—ये सब पुण्यजलवाली पवित्र नदियाँ अपने स्वामी समुद्रके साथ आपलोगोंका मङ्गल करें। भगवती लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, पारिजात नामका कल्पवृक्ष, वारुणीदेवी, वैद्यराज धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु गौ, देवराज इन्द्रका ऐरावत हस्ती, रम्भा आदि सभी अप्सराएँ, सात मुखवाला उच्चैःश्रवा नामक अश्व, कालकूट विष, भगवान् विष्णुका शार्ङ्गधनुष, पाञ्चजन्यशङ्ख तथा अमृत—ये समुद्रसे उत्पन्न चौदह रत्न आपलोगोंका प्रतिदिन मङ्गल करें। वेदोंके स्वामी ब्रह्मा, पशुपति भगवान् शङ्कर, ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्य, देवताओंके स्वामी इन्द्र, हव्य पदार्थोंमें श्रेष्ठ हविर्द्रव्य-पुरोडाश, देवसेनापति भगवान् कार्तिकेय, यज्ञोंके स्वामी भगवान् विष्णु, पितरोंके पति धर्मराज और सभी स्वामियोंकी स्वामिनी शक्तिस्वरूपा भगवती महालक्ष्मी—ये सभी स्वामिगण पर्वतराज सुमेरुगिरिसहित आपलोगोंका मङ्गल करें।

देवाधिदेव श्रीराम समस्त विश्वका मङ्गल करें

कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा
काचित् साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा ।
सौन्दर्यह्रीणकामा धृतजनकसुतासादरापाङ्गधामा
दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषदभिनुता देवता रामनामा ॥

परम कल्याण और उल्लासके मर्यादास्वरूप, श्यामल मेघके समान सुन्दर कान्तियुक्त तथा साकेत— अयोध्यामें निवास करनेवाले, प्रणाममात्रसे संसारके कठिन क्लेशों (जन्म-मरणादि दुःखों) के अपहारक, अपने अनन्त सौन्दर्यसे कामदेवको लज्जित करनेवाले एवं जनकनन्दिनी भगवती सीताके नेत्रोंमें सदा निवास करनेवाले, देवताओंद्वारा अभिवन्दित एवं दसों दिशाओंमें प्रख्यात श्रीरामनामके कोई विशिष्ट देवता समस्त विश्वका मङ्गल करें।

इक्षुचापधरः शूली कान्तिकन्दलिताश्रयः। अक्षमालाधरो ज्ञानमुद्रावान् विजयावहः ॥
कामिनीकामनाकाममालिनीकेलिलालितः । अमोघसिद्धिराधार आधाराधेयवर्जितः ॥
इन्दीवरदलश्याम इन्दुमण्डलनिर्मलः। कर्मसाक्षी कर्मकर्ता कर्माकर्मफलप्रदः ॥
कमण्डलुधरः कल्पः कपर्दी कटिसूत्रभृत्। कारुण्यदेहः कपिलो गुह्यागमनिरूपितः ॥
गुहाशयो गुहाब्धिस्थो घटकुम्भो घटोदरः। पूर्णानन्दः परानन्दो धनदो धरणीधरः ॥
बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्प्रियः। भव्यो भूतालयो भोगदाता चैव महामनाः ॥
वरेण्यो वामदेवश्च वन्द्यो वज्रनिवारणः। विश्वकर्ता विश्वचक्षुर्हवनं हव्यकव्यभुक् ॥
स्वतन्त्रः सत्यसंकल्पस्तथा सौभाग्यवर्धनः। कीर्तिदः शोकहारी च त्रिवर्गफलदायकः ॥
चतुर्बाहुश्चतुर्दन्तश्चतुर्थीतिथिसम्भवः । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
कामरूपः कामगतिर्द्विरदो द्वीपरक्षकः। क्षेत्राधिपः क्षमाभर्ता लयस्थो लड्डुकप्रियः ॥
प्रतिवादिमुखस्तम्भो दुष्टचित्तप्रसादनः। भगवान् भक्तिसुलभो याज्ञिको याजकप्रियः ॥
इत्येवं देवदेवस्य गणराजस्य धीमतः। शतमष्टोत्तरं नाम्नां सारभूतं प्रकीर्तितम् ॥
सहस्रनाम्नामाकृष्य मया प्रोक्तं मनोहरम्। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्मृत्वा देवं गणेश्वरम् ॥
पठेत्स्तोत्रमिदं भक्त्या गणराजः प्रसीदति ॥

(इति श्रीगणेशपुराणे उपासनाखण्डे गणपत्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम्)

सूर्यशतनामस्तोत्रम्

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाक
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो य
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाह
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कला काष्ठा मुहूर्त्तश्च क्षपा यामस्तथा क्ष
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनात
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरि
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलु
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवि
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूम्रकेतुरादिदेवोऽदितेः सु
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः। प्रजाद्वारं स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्ट
दाहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वि

एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नामाष्टशतकं वेदं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भु
सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्। वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्क
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्। लभेत जातिस्मरतान्तरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुम
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुद्धमनाः समाहितः। विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सित

(इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि (३।१६-३१) धौम्ययुधिष्ठिरसंवादे श्रीसूर्यस्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्)

विष्णुशतनामस्तोत्रम्

अष्टोत्तरशतं नाम्नां विष्णोरतुलतेजसः। यस्य श्रवणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्॥
विष्णुर्जिष्णुर्वषट्कारो देवदेवो वृषाकपिः। दामोदरो दीनबन्धुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥
पुण्डरीकः परानन्दः परमात्मा परात्परः। परशुधारी विश्वात्मा कृष्णः काली मलापहः॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्को नरो नारायणो हरिः। हरो हरप्रियः स्वामी वैकुण्ठो विश्वतोमुखः॥
हृषीकेशोऽप्रमेयात्मा वराहो धरणीधरः। वामनो वेदवक्ता च वासुदेवः सनातनः॥
रामो विरामो विरजो रावणारी रमापतिः। वैकुण्ठवासी वसुमान् धनदो धरणीधरः॥
धर्मेशो धरणीनाथो ध्येयो धर्मभृतां वरः। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥
सर्वगः सर्ववित् सर्वः शरण्यः साधुवल्लभः। कौसल्यानन्दनः श्रीमान् रक्षःकुलविनाशकः॥
जगत्कर्ता जगद्धर्ता जगज्जेता जनार्तिहा। जानकीवल्लभो देवो जयरूपो जलेश्वरः॥
क्षीराब्धिवासी क्षीराब्धितनयावल्लभस्तथा। शेषशायी पन्नगारिवाहनो विष्टरश्रवाः॥
माधवो मथुरानाथो मोहदो मोहनाशनः। दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो ह्यच्युतो मधुसूदनः॥
सोमसूर्याग्निनयनो नृसिंहो भक्तवत्सलः। नित्यो निरामयः शुद्धो नरदेवो जगत्प्रभुः॥
हयग्रीवो जितरिपुरुपेन्द्रो रुक्मिणीपतिः। सर्वदेवमयः श्रीशः सर्वाधारः सनातनः॥
सौम्यः सौम्यप्रदः स्रष्टा विष्वक्सेनो जनार्दनः। यशोदातनयो योगी योगशास्त्रपरायणः॥
रुद्रात्मको रुद्रमूर्ती राघवो मधुसूदनः। इति ते कथितं दिव्यं नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोरमिततेजसः। दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यनाशनं सुखवर्धनम्॥
सर्वसम्पत्करं सौम्यं महापातकनाशनम्। प्रातरुत्थाय विप्रेन्द्र पठेदेकाग्रमानसः॥
तस्य नश्यन्ति विपदां राशयः सिद्धिमाप्नुयात्॥

(इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे विष्णोरष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्)

शिवशतनामस्तोत्रम्

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः। वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥
शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः। शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः। उग्रः कपालिः कामारिरन्धकासुरसूदनः॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः। भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः। वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः। सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः। विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः। भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः॥

कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः। मृत्युंजयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः। रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः। शाश्वतः खण्डपरशुरजपाशविमोचकः॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययः प्रभुः। पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात्। अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया। नामकल्पलतेयं मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी॥
नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न संशयः। वेदसर्वस्वभूतानि नामान्येतानि वस्तुतः॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यतः। जप्यन्ते सादरं नित्यं मया नियमपूर्वकम्॥
वेदेषु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च। सन्त्यनन्तानि सुभगे वेदेषु विविधेष्वपि॥
तेभ्यो नामानि संगृह्य कुमाराय महेश्वरः। अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नामुपदिशत् पुरा॥

(इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्)

दुर्गाशतनामस्तोत्रम्

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने। यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता सदा भवे
सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी। आर्या दुर्गा जया भद्रा त्रिनेत्रा शूलधारि
पिनाकधारिणी चित्रा चन्द्रघण्टा महातपाः। मनोबुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चि
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी। अनन्ता भाविनी भव्या भवाभव्या सदाग
शम्भुपत्नी देवमाता चिन्तारत्नप्रिया सदा। सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशि
अपर्णा चैव पर्णा च पाटला पटलावती। पट्टाम्बरपरीधाना कलमंजीररञ्जि
अमेया विक्रमा क्रूरा सुन्दरी कुलसुन्दरी। वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजि
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा। चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृ
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च वाक्प्रदा। बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाह
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी। मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशि
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी। सर्वशास्त्रमयी विद्या सर्वास्त्रधारिणी त
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रविधारिणी। कुमारी चैव कन्या च कौमारी युवती य
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा। महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाब
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी। नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलो
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी। कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादि
य इदं च पठेत् स्तोत्रं दुर्गानामशताष्टकम्। नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्व
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च। चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतं
कुमारीं पूजयित्वा च ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्। पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टव
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि सर्वैः सुरवरैरपि। राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुय
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण। विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरा
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते। विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदाम्प

(इति श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्)

भगवान् वेदव्यासकी दृष्टिमें देवता-तत्त्व

भगवान् व्यासदेवने वेदोंका ऋक्, यजुः, साम, अथर्व चार मुख्य भागोंमें विभाजन कर अपने अनेक शिष्योंके द्वारा उन्हें कठ, कौथुम, काण्व, कपिष्ठल, वाष्कल, शाकल, शौनकीय आदि अनेक शाखाओंमें भी विभक्त किया। इसलिये वे वेदव्यास कहलाये। परंतु जब उन्होंने देखा कि अल्पमेधावी प्रजावर्ग गूढ़ वेदार्थोंको इतनेपर भी नहीं समझ पा रहा है, तब वेदार्थोंसे उपबृंहित अष्टादश महापुराणों-उपपुराणोंके साथ-साथ 'महाभारत' नामके विशाल लक्षश्लोकात्मक इतिहास-ग्रन्थकी रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने शास्त्रीय आचार-दर्शनके लिये बृहद्व्यासस्मृति, लघुव्यासस्मृति, दानव्यास, स्नानव्यास आदि ग्रन्थोंका भी प्रणयन किया तथा वैदिक एवं औपनिषदिक शंकाओंकी निवृत्तिके लिये ब्रह्मसूत्र या वेदान्तदर्शनका निर्माण किया। उन्हींका आधार लेकर परवर्ती भास, कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि महाकवियोंने अनेक अद्भुत महाकाव्योंकी रचना की। इस प्रकार वर्तमानका सम्पूर्ण विश्वविज्ञान एवं साहित्यिक वाङ्मय भगवान् व्यासका ही उच्छिष्ट है। अतः **'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** की उक्ति सर्वथा सार्थक है।

भगवान् व्यासदेवके विषयमें उनकी चौथी पीढ़ीकी शिष्य-परम्परामें प्राप्त आदिशंकराचार्यने कहा है—

'भगवान् व्यासकी सामर्थ्य हमलोगोंसे सर्वथा विलक्षण और बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। वे सभी देवताओं तथा ऋषियोंके साथ साक्षात् व्यवहार करते थे। उन्हें प्रतिस्मृति विद्या और अनेक ऐसी विद्याएँ प्राप्त थीं, जिससे महाभारत-युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए सभी योद्धाओंको जीवित कर उनके परिवारजनोंके साथ सम्भाषणपूर्वक एक रात्रिका पुनः संयोग कराना उनके लिये अत्यन्त साधारण क्रिया थी।' महाभारतमें अर्जुनद्वारा चित्ररथ आदि गन्धर्वोंसे युद्ध करने, इन्द्रलोकमें जाकर विहार करने और देवताओंके शत्रु राक्षसोंका वध करने, इन्द्रसभामें संगीत, नृत्य आदि कर्मोंमें सहयोग देने, देवताओं-गन्धर्वोंसे प्रत्यक्ष सम्भाषण करने आदिका विवरण विस्तारसे मिलता है। अर्जुन आदि पाण्डव एक प्रकारसे भगवान् वेदव्यासके ही अंशरूपमें उत्पन्न हैं। युधिष्ठिर आदिको इन्होंने समय-समयपर महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की थी। इसी कारणसे वे महाभारतके युद्धमें विजयी होकर कालान्तरमें महाभारत-ग्रन्थके भी आदर्श चरित्रनायक बन सके। वस्तुतः देवताओंके विषयमें आज संसार जो कुछ भी जानता है, वह भगवान् वेदव्यासकी ही देन है। देवतत्त्वके विषयमें विस्तृत जानकारी इतिहासपुराणों एवं वेदों आदिसे ही होती है। वे सभी वेदव्यासजीके ही व्यसन-कार्य हैं।

व्यासजीने देवताओंके विषयमें सर्वाधिक लिखा है। अतएव उनका सम्पूर्ण साहित्य देव-साहित्य कहा जा सकता है। वे देवताओंको मनुष्यसे सर्वथा ऊपर मानते थे। इसीलिये ब्रह्मसूत्रमें वे—**'तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात्'** (२। २। २४) ऐसा कहते हैं। भाव यह है कि मनुष्योंसे ऊपर जो देवताकी योनि है, उन्हें भी वेदान्त-श्रवण-मनन आदिद्वारा भगवत्साक्षात्कारका पूर्ण अधिकार है। किंतु मनुष्योंको श्रद्धापूर्वक देवताओंकी उपासना करनी चाहिये। उनके आचरणोंकी अनुकृति नहीं करनी चाहिये। व्यासजीने लिखा है—**'न देवचरितं चरेत्।'** (महाभारत)

रुद्रदेवने विषका पान किया, यह उन्हींकी सामर्थ्य थी। अग्निदेव सबको भस्मसात् कर लेते हैं। सूर्यदेव सम्पूर्ण विश्वको क्षणभरमें प्रकाशित, आलोकित, संदीपित और औष्ण्य आदि प्रदान कर उसे अनुप्राणित करते रहते हैं। वायुदेव प्राणियोंके शरीरमें श्वासका संचालन कर उन्हें जीवित रखते हैं। इन्द्र, वरुण जल-वृष्टिद्वारा धन-धान्यरूप

भोज्यान्न-दान आदिके फल-माहात्म्योंपर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार भगवान् व्यासने भक्तिसहित तीव्र संवेगसे उपासना कर अतिशीघ्र सभी देवताओंकी मनुष्योंके द्वारा प्राप्तिके सभी विधान बताये हैं। योग-ध्यानके द्वारा देवता मिलते हैं, स्वाध्यायसे भी मिलते हैं—

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।'

लिङ्गपुराणमें सम्पूर्ण योगभाष्य उद्धृतकर व्यासजीने योगद्वारा अणिमादि अष्टसिद्धियों तथा देवशक्तियोंको प्राप्तकर देवतातुल्य बनकर निर्विकल्पसमाधिके द्वारा परमात्म-प्राप्तिके उपायका भी सम्यक् रूपसे निर्देश किया है।

पुराणोंमें देव-देवियों, विद्याधर, यक्ष, गुह्यक, अप्सरा आदि देवयोनियोंकी अनेक कथाएँ हैं। ऐसी और भी देवयोनियोंसे सम्बन्धित अनेकों बातें विविध पुराणोंमें रोचक ढंगसे बतलायी गयी हैं। इसके लिये हम भगवान् व्यासके प्रति जितना भी आभार प्रदर्शन करें, सर्वथा तुच्छ होगा। वस्तुतः सच्चा देव-साहित्य और सम्यक् देवदर्शन व्यासदेवकी वाणीमें ही संनिहित है। इसके लिये सारा विश्व अनन्तकालतक उनका आभारी रहेगा।

देवकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें देवचरित्र-चित्रण

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं और उनका रामायण विश्वका आदिकाव्य है। इस महाकाव्यमें आदिसे अन्ततक देवताओंका रमणीयतम चित्रण अद्वितीयरूपमें प्राप्त होता है। रामायणके आविर्भावमें विद्या-बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती ही मूल कारण हैं और क्रौञ्च-वधके समय सरस्वतीके द्वारा उच्चारित—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

—यह श्लोक, जो बालकोंको विद्या-अध्ययनके पूर्व कण्ठाग्र कराया जाता है, ब्रह्माजीकी प्रेरणासे महर्षिके कृपापूर्ण उद्गाररूपमें सहसा मुखसे निःसृत हुआ। जब वे सोचने लगे कि यह क्या हुआ? तब तत्काल देवताओंके पितामह बीजभूत मूलपुरुष ब्रह्माजी उपस्थित हो गये और कहने लगे—चिन्ता मत करो। मेरी प्रेरणासे देवी सरस्वतीने ही तुम्हारे मुखसे यह श्लोक उच्चारित कराया है। अब तुम इसी प्रकारके श्लोकोंमें रामकथायुक्त रामायणकी रचना कर डालो।

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयम् सरस्वती॥

× × ×

कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।

(वा०रा० १।२।३१, ३६)

पुनः पितामह ब्रह्माने ऋषि वाल्मीकिको आशीर्वाद दिया—'महर्षे! यह विश्वकल्याणकारिणी, देवचरितमयी, दिव्य श्रीसीतारामकी कथा पृथ्वीपर तबतक प्रसारित एवं सम्मानित होती रहेगी, जबतक उसपर भूधर, सागर और नगर स्थित रहेंगे*।'

चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथने जब ऋषियोंके सहयोगसे पुत्रेष्टि-यज्ञ प्रारम्भ किया तो वहाँ अग्निकुण्डसे एक साक्षात् देवता प्राजापत्य पुरुषदेव प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने अपने हाथमें दिव्य चरुका पात्र लिये हुए महाराज दशरथके समक्ष जाकर उसे अपनी पट्टमहिषियोंको यथोचित भाग बनाकर बाँटनेको कहा तथा यह भी कहा कि इससे आपको अभीष्ट संतान-सुखकी प्राप्ति होगी, जो हजारों वर्षोंसे किसी भी उपायद्वारा नहीं हो सकी है। यह देवाराधनके मुख्य एवं सर्वोत्कृष्ट साधनरूप यज्ञानुष्ठानका ही परिणाम था। उस देवपुरुषने दशरथजीसे यह भी कहा कि 'मैं प्रजापति लोकका पुरुष हूँ। यह चरु देवताओंद्वारा निर्मित है। इसके द्वारा आपके सम्पूर्ण अभीष्टोंकी सिद्धि होगी।'

इसी समय यह बात भी कही गयी है कि उस श्रेष्ठ यज्ञमें प्रायः सभी देवता, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर एवं महर्षिगण अपना यज्ञभाग ग्रहण करनेके लिये आये थे। वहीं ब्रह्माजी भी पधारे थे। वहाँ उन सभी देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—'प्रभो! आपद्वारा वरदान पाकर मदोन्मत्त रावण देवता,

* यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले। तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥
(वा०रा० १।२।३६-३७)

मिथिलाके मार्गमें सोनतटपर विश्राम करते हुए विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको देवताओंकी अनेक कथाएँ सुनायीं, जिनमें मुख्य रूपसे कुमार कार्तिकेयका जन्म, गङ्गादेवीकी उत्पत्ति एवं उनके पृथ्वीपर पदार्पणकी कथा तथा सगरपुत्रोंसे सागरके खोदे जानेपर सभी देवताओंका ब्रह्माजीके पास पहुँचना और अन्तमें कपिलदेवके पास गङ्गाजीके आनेसे सगरपुत्रोंकी मुक्तिकी कथाका उल्लेख है। इसके बाद पुनः विश्वामित्रजीने देवोंद्वारा समुद्र-मन्थन, समुद्रसे लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, अप्सराओं एवं अमृत आदिकी उत्पत्ति और देवताओंद्वारा उनके अलग-अलग भाग ग्रहण करनेकी कथा वर्णित हुई है। इसी प्रकार बालकाण्डके ४६ वें सर्गमें दितिके गर्भसे उनचास मरुद्गणोंकी उत्पत्तिकी कथा आती है, जो कालान्तरमें इन्द्रके सखा बन जाते हैं।

इसीके आगे देवधेनु—कामधेनुके द्वारा जो समस्त हव्य-कव्यके साथ सहस्रों व्यक्तियोंके लिये भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—चार प्रकारके पदार्थोंकी उत्पत्ति कर देती है, लाखों कोल, हूण, खस, शबर आदि सेनाओंको उत्पन्न करके विश्वामित्रजीके पराक्रमको विफल करनेकी भी कथा आती है। जब महर्षि विश्वामित्र विरक्त होकर तपस्या करने लगते हैं, तब राजा त्रिशंकु उनके पास आकर उनसे सशरीर स्वर्ग पहुँचानेकी कामना करते हैं, तब विश्वामित्रजी भी उनके यज्ञके विफल होनेपर अपनी तपःशक्तिसे त्रिशंकुको स्वर्ग भेज देते हैं, पर इन्द्रादि सभी देवता उन्हें स्वर्गसे नीचे गिरा देते हैं। विश्वामित्र उन्हें ऊपर ही रोक देते हैं एवं दूसरी देवसृष्टि करनेको उद्यत होते हैं। किंतु बादमें देवताओंके परामर्शसे त्रिशंकु वहीं स्थित रह जाते हैं। आज भी वे तारागणके रूपमें अन्तरिक्षमें दिखायी पड़ते हैं।

इसके आगे जनकजी वहाँ पहुँचकर विश्वामित्रजीसे धनुष-यज्ञकी विस्तृत कथा कहते हैं और यह भी कहते हैं कि एक बार वीर्यशुल्का सीताके स्वयंवरसे निराश होकर हजारों राजाओंने एक साथ मिथिलापुरीको घेर लिया। एक वर्षतक निरन्तर युद्ध करते हुए मेरे युद्धके सारे साधन क्षीणप्राय हो गये। तब मैंने दुःखी होकर देवताओंकी आराधना की। देवताओंने प्रसन्न होकर मुझे दुर्गमें चतुरङ्गिणी दिव्य सेना प्रदान की, जिसका आश्रय लेकर मैं दुष्ट राजाओंको पराजित करनेमें सफल हुआ। यह देवताओंकी ही कृपा थी—

ततो देवगणान् सर्वांस्तपसाहं प्रसादयम्।
ददुश्च परमप्रीताश्चतुरङ्गबलं सुराः।
ततो भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः।
अवीर्या वीर्यसंदिग्धाः सामात्याः पापकारिणः।

(वा० रा० १। ६६। २३-

जनकजीके इस कथनके अनन्तर सभी स्वयंवर-स्थ पहुँचते हैं। भगवान् श्रीराम धनुषको तोड़ देते हैं। विधिपूर्वक सीता-रामका विवाह सम्पन्न होता है। वि बाद जब बारात अयोध्यापुरी लौटती है तो मार्गमें ही पर रामको रोक देते हैं और कहते हैं कि तुम इस वैष्णव ध चढ़ाओ। उस समय राम धनुष लेकर सहसा चढ़ा देते हैं भार्गव मुनिसे कहते हैं कि यह शर अमोघ है। सम्पातका स्थान बतलाइये। इस वैष्णव धनुषको हाथमें रामके स्वरूपका दर्शन करने-हेतु ब्रह्मासहित सभी दे ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, चारण, नाग एवं अप्सराएँ एकत्रित हो हैं—यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था—

वरायुधधरं रामं द्रष्टुं सर्षिगणाः सुराः।
पितामहं पुरस्कृत्य समेतास्तत्र सर्वशः॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धचारणकिन्नराः।
यक्षराक्षसनागाश्च तद् द्रष्टुं महदद्भुतम्॥

(वा० रा० १। ७६। ९-

तत्पश्चात् उस बाणसे रामने परशुरामकी गति-शक्ति क्षीण कर दिया। अयोध्या पहुँचनेपर सभी लोगोंने देवमन्दि जाकर देवताओंकी यथाविधि पूजा-अर्चना की—

देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन्॥

(वा० रा० १। ७७।

सीता और राम—ये ही आदिकाव्य रामाय महानायक-नायिका हैं। इन दोनोंको महर्षि बार देवता-देवोपम और देवमाया आदिके विशेषणोंसे विभू करते हैं। वे सीताको साक्षात् लक्ष्मी और रूप आदि गु सभी देवी-देवताओंसे उत्कृष्ट मानते हैं—

देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी॥

(वा० रा० १। ७७।

जब पिताकी आज्ञासे श्रीराम वनवास जाते हैं तो पति

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।

(वा० रा० १।१।२६—२८)

जब राम वन जाने लगते हैं तो माता कौसल्या जो उनकी प्रायः ४५ श्लोकोंमें मङ्गलकामना करती हैं, वे आज भी प्रतिदिन प्रातःकाल प्रत्येक कल्याणकामी व्यक्तिके लिये पठनीय हैं। उनका एक-एक अक्षर महामन्त्रके रूपमें ध्येय एवं गेय है। उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥
येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च ।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ॥
स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभिः ।
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ॥
स्कन्दश्च भगवान् देवः सोमश्च सबृहस्पतिः ।
सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ॥
शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च ।
द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी वायुश्च सचराचरः ॥
शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ।
पान्तु त्वामर्चिता राम दण्डकारण्यवासिनम् ॥
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत् तत् ते भवतु मङ्गलम् ॥
ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥
मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव ॥

(वा० रा०, अयोध्या० सर्ग २५)

'रघुकुलसिंह ! तुम नियमपूर्वक प्रसन्नताके साथ जिस धर्मका पालन करते हो, वही सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करे। पूषा, भग और अर्यमा तुम्हारा कल्याण करें। भगवान् स्कन्ददेव, सोम, बृहस्पति, सप्तर्षिगण और नारद—ये सभी सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें। समस्त पर्वत, समुद्र, राजा वरुण, द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, वायु, चराचर प्राणी तुम्हारी रक्षा करें। श्रीराम ! शुक्र, सोम, सूर्य, कुबेर तथा यम—ये मुझसे पूजित हो दण्डकारण्यमें निवास करते समय सदा तुम्हारी रक्षा करें। वृत्रासुरका नाश करनेके निमित्त सर्वदेववन्दित सहस्रनेत्रधारी इन्द्रको जो मङ्गलमय आशीर्वाद प्राप्त हुआ था, वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी हो। महाबाहो ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और दिशाएँ तुम्हें मङ्ग प्रदान करें। तुम्हारा सदा शुभ मङ्गल हो। रघुनन्दन ! मैंने स जिनका पूजन और सम्मान किया है, वे शिव आदि देवत महर्षि, भूतगण, देवोपम नाग और सम्पूर्ण दिशाएँ— सब-के-सब वनमें जानेपर चिरकालतक तुम्हारे हितसाधनव कामना करते रहें।'

राम, सीता और लक्ष्मण वनयात्रामें चलते हुए गङ्गा तटपर पहुँचते हैं और उसे देवता, अप्सरा, किन्नर, गन्धर्व चारण, विद्याधर आदिसे उपसेवित तथा हंस, सारस, चक्रवा आदि पक्षियों एवं श्रेष्ठ वृक्षोंसे युक्त देखकर आनन्दसे गद्ग एवं विभोर हो जाते हैं। वे सर्वपापनाशिनी, विष्णु चरण-कमलोंसे समुद्भूत गङ्गादेवीको साक्षात् अने आभूषणोंसे भूषित स्त्रीकी तरह देखकर वहाँ कुछ क्षणके लि बैठ जाते हैं।

इस प्रकार राम-लक्ष्मण एवं सीता धीरे-धीरे चित्रकू पहुँचते हैं। वहाँ पर्णशाला-निर्माण-कार्यमें सभी देवताओंक पूजा, अर्चना सम्पन्न कर वैश्वदेवबलि आदि प्रदान करके उसमे निवास करते हैं—

इष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ।
बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः ॥
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ।
वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ॥

बादमें रामको मनानेके लिये जब भरतजी चित्रकूट होते हुए भरद्वाज-आश्रम पहुँचते हैं तो भरद्वाज ऋषि अग्निशालामें प्रवेश कर इन्द्र, वरुण, कुबेर, त्वष्टा (विश्वकर्मा) एवं सभी दिक्पाल-लोकपालोंको, उनकी सभामें रहनेवाले अप्सरा-गन्धर्वादिको बुलाकर उन्हें ससैन्य भरतकी सेवामें उपस्थित रहने एवं भक्ष्य, भोज्य तथा पेयादि पदार्थोंको समर्पित करने-हेतु नियुक्त करते हैं।

भरतजी श्रीरामको मनानेके लिये चित्रकूट पहुँचते हैं। पर श्रीराम पिताकी आज्ञाकी महत्ता बतलाकर उन्हें अपनी चरण-पादुका देकर अयोध्या वापस भेज देते हैं। श्रीराम भी अत्रि आदि श्रेष्ठ मुनियोंसे मिलकर दण्डक-वनमें प्रवेश करते हैं। दण्डक-वन भी देवता एवं अप्सराओंका आवास था। जब वे शरभंग ऋषिके आश्रममें पहुँचते हैं तो वहाँ आकाशमें उपस्थित विमानपर इन्द्रसहित अनेक देवताओंका दर्शन करते हैं। देवताओंकी अङ्ग-कान्ति एवं उनके शरीरसे प्रकट होनेवाले प्रकाश-पुञ्जको देखकर वे चकित हो जाते हैं। इन्द्रके रथमें दो दिव्य अश्व जुते हुए थे। इन्द्रके मस्तकपर श्वेत बादलोंके तुल्य उज्ज्वल चन्द्रमाकी द्युतिके समान निर्मल छत्र सुशोभित था। इसपर श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'लक्ष्मण! विद्वानों एवं शास्त्रोंके द्वारा हमने देवराज इन्द्र और उनके रथ आदिके विषयमें जैसा ज्ञात किया है, उसके अनुसार ये अपने परिकरोंसहित इन्द्र ही सुनिश्चित होते हैं। देवताओंकी सदा पचीस वर्षकी अवस्था होती है और उनकी कान्ति ऐसी ही दिव्य, भव्य एवं आकर्षक होती है। उनको देखनेसे कभी मन तृप्त नहीं होता।'

रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम्॥
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा।
यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः॥

(वा० रा०, अरण्यकाण्ड ५। १७-१८)

तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्णजीके साथ उनके गुरु महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर पहुँचते हैं। वे देवोंकी सरलता एवं आशुतोषता प्रदर्शित करते हुए लक्ष्मणसे कहते हैं—'अगस्त्यकी उपासनासे प्रसन्न होकर यहाँ सभी देवता, गन्धर्व, सिद्धलोग प्रतिफलमें महर्षि अगस्त्यकी भी उपासना करने लगे हैं। इस दिव्य-स्थानमें कोई मिथ्यावादी, क्रूर, निर्दयी, नृशंस पुरुष जीवित नहीं रह सकता।' यहाँ देवतालोग उपार प्रसन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य एवं देवत्व भी प्रदा देते हैं—

यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च।
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः।

(वा० रा०, अरण्य० ११

पुनः महर्षि अगस्त्यके साथ उन्होंने उनके आ प्रविष्ट होकर देखा कि वहाँ यथास्थान अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, वायु, वरुण, कुबेर, कार्तिकेय आदि सभी अलग-अलग श्रेष्ठ स्थान बने हुए थे, जहाँ देवता आकर प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे—

स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च।
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः।
सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च।
धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च।
स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः।
स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च।
स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च।
कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति।

(वा० रा०, अरण्य० १२। १७—

भगवान् श्रीराम वहाँ कुछ देरतक ठहरे। महर्वि यथोचित शिष्टाचार क्रियासे परितृप्त होकर समय महर्षि अगस्त्यसे उन्हें एक दिव्य धनुष-बाण, अ एवं दो दिव्य तरकश भी प्राप्त हुए, जो देवोंद्वारा प्रदत्त थे राक्षसोंके वधमें विशेष सहायक सिद्ध हुए।

महर्षि वाल्मीकि रामके द्वारा खर-दूषण-त्रिशिरा राक्षसोंके वधकी जहाँ भी चर्चा करते हैं, वहाँ अन्तरिक्षसे देवताओं एवं चारणोंद्वारा की जाने पुष्पवृष्टिका भी उल्लेख मिलता है।

तत्पश्चात् जब रावण सीताका अपहरण कर अशोकवाटिकामें ले जाकर रखता है तो इन्द्र उन्हें ब्रह्म प्रेषित दिव्य चरुका प्राशन कराते हैं, जिससे र आगमनतक सीताजीको निद्रा एवं क्षुधा व्याप्त न हो। लंकामें कुछ भी भक्षण न करना पड़े।

सीताको खोजते हुए राम बालिका वधकर सुग्री

[illegible] राज्यपर अभिषिक्त कर जब हनुमान् आदि वानर [illegible] सीताका पता लगानेके लिये भेजते हैं, तब हनुमान्जी भी महेन्द्र गिरिको दबाकर आकाशमें उछलते हैं और महर्षि वाल्मीकि उनके द्वारा किये गये कार्य एवं इस दृश्यका वर्णन करते हुए देवताओंकी भी चर्चा करते हैं। वे कहते हैं—'हनुमान्जी चारणोंके मार्गसे चले और महेन्द्राचल जोरोंसे हिल उठा। इसलिये विद्याधरलोग अपनी पत्नियोंसहित भयभीत होकर विशिष्ट खेचरी-विद्याका प्रदर्शन करते हुए आकाशमें खड़े हो गये'—

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः।
सहितास्तस्थुराकाशे वीक्षांचक्रुश्च पर्वतम्॥

(वा० रा०, सुन्दर० १। २७)

हनुमान्जीद्वारा समुद्र-लङ्घनकर लंका पहुँचनेके बाद उन्हें विश्वकर्माद्वारा निर्मित दिव्य पुष्पक-विमान दृष्टिगोचर होता है। वे उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उन हनुमान्ने देवशिल्पी विश्वकर्माद्वारा निर्मित एवं मयदानवद्वारा परिष्कृत उस दिव्य लंकापुरीको देखा, जो स्वर्गलोक, अमरावती एवं सम्पूर्ण संसारकी अद्भुत सिद्धिके रूपमें प्रतीत होती थी। उससे निकलनेवाले दिव्य प्रकाशसे आँखें चकाचौंध हो जाया करती थीं। जब वे अशोकवाटिकामें भगवती सीताके पास पहुँचकर श्रीरामका संदेश उनसे निवेदित करते हैं तो श्रीजानकीजी उनसे कहती हैं—'देवताओंकी सहायताके अभावमें रावण एवं लंकापुरीपर विजय पाना प्रभुके लिये दुष्कर ही होगा। क्या वे देवोपासना करते हैं? और क्या देवताओंद्वारा उनकी पूर्ण सहायताकी आशा की जाय?

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः।
कच्चित् पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते॥

(वा० रा०, सुन्दर० ३६। १९)

जब हनुमान्जी अशोकवाटिकाको नष्ट करके लंका-दहन-कार्य करते हैं, तो राक्षसियाँ सीताजीसे कहती हैं कि जिस लाल मुँहवाले बंदरने तुमसे बातें की थीं, उसकी पूँछमें आग लगाकर प्रताड़ना की जा रही है और उसे नगरमें घुमाया जा रहा है। भगवती सीताको यह बात अपने अपहरणके समान ही अप्रिय लगी और वे तुरंत समाहित-चित्त एवं मङ्गलाभिमुखी होकर अग्निदेवकी प्रार्थना करने लगीं। इससे वे हनुमान्जीके लिये हिमतुल्य शीतल हो गये। उन्हें अपनी पुच्छपर शिशिर-सम्पातका भान होने लगा।

मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः॥
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम्।
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥

× × ×

हनूमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोऽनिलः।
ववौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः॥

(वा० रा०, सुन्दर० ५३। २६-२७, ३२)

अन्तमें चूडामणि लेकर हनुमान्जी भगवान् श्रीरामके पास लौट आते हैं और समुद्रपर पुल बाँधकर सेनासहित लंकामें पहुँचकर प्रायः श्रीरामद्वारा रावणकी सारी सेनाका संहार होता है। किंतु रावणकी अवध्यता देखकर इन्द्र मातलिसहित अपना दिव्य रथ रामके आरोहणके लिये युद्ध-भूमिमें भेजते हैं। तत्पश्चात् रामद्वारा आदित्यहृदयस्तोत्रका जप करनेपर सूर्यदेव उनके सम्मुख प्रकट हो, देवोंके मध्य स्थित होकर श्रीरामसे कहते हैं—'वीर! आप इस असुरका शीघ्र वध करें'—

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति॥

(वा० रा०, युद्ध० १०५। ३१)

तत्पश्चात् देवशक्तिसम्पन्न श्रीराम दुष्ट रावणका तत्काल वध कर देते हैं। तब ब्रह्मादि समस्त देवता प्रकट होकर श्रीरामकी स्तुति एवं उनका अभिनन्दन करते हैं। अग्निदेव भी अग्निमें प्रविष्ट हुई शुद्धस्वरूपा जनकात्मजाको अपने हाथोंद्वारा श्रीरामको समर्पित करते हैं।

सभी देवता आकर भगवान् श्रीरामसे सीताकी सत्यता प्रमाणित करते हैं और उन्हें आत्मस्वरूपसे परिचित कराना चाहते हैं। राम कहते हैं कि मैं अपनेको मनुष्य ही मानता हूँ, किंतु ब्रह्माजीका कथन है कि हे राम! आप साक्षात् नारायण हैं। आपने सम्पूर्ण सृष्टिको अपने हृदयमें समेटकर पुनः सृष्टिकालमें समुद्रके बीच अपने नाभिकमलसे मुझे उत्पन्न

किया है। आप शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश और तीनों लोकोंको धारण करनेवाले हैं। मैं आपका हृदय हूँ, सरस्वती आपकी जिह्वा, देवता, गन्धर्व, सिद्ध-चारणादि आपके उपाङ्ग हैं। सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं एवं आप साक्षात् विष्णु हैं—

सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः॥

× × ×

त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान्।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो।

× × ×

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः॥

(वा० रा०, युद्धका०, सर्ग ११७)

तदनन्तर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो सपरिकर भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँचकर विधिपूर्वक ऋषि-मुनि-देवता-ब्राह्मणादिद्वारा राज्याभिषिक्त होते हैं। अन्तमें फलश्रुतिमें महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि 'इस आदिकाव्य रामायणके पठन-श्रवणसे देवताओंका बल बढ़ता है। आपलोगोंका कल्याण हो। भगवान् विष्णुका बल बढ़े। हम सभीके मङ्गलकी कामना करते हैं।'

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थमें यथास्थान देवता, विद्याधर, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, किन्नर, नाग, सिद्ध, गुह्यक आदि श्रेणी-भेदोंका उनकी कोटि एवं विशिष्ट व्यक्तियोंके नामोल्लेखसहित उनकी जीवन-पद्धति, शक्ति-विशेष, रूप-पार्थक्य आदिपर पर्याप्त विश्लेषण किया है। आचार्य शंकरने अपने देवताधिकरणभाष्यमें सुस्पष्टरूपसे लिखा है—'वसिष्ठ, वाल्मीकि, अगस्त्य, विश्वामित्र, व्यास, शुक आदि प्राचीन महर्षिगण देवोंसे प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे और उनका निरन्तर सम्पर्क उन देवोंसे बना रहता था।' अतः महर्षि वाल्मीकिका देवताविषयक ज्ञान सर्वथा समीचीन एवं उनका कथन भी विश्वासार्ह तथा पूर्ण प्रामाणिक है।

भगवान् विष्णुका स्वरूप और उनकी प्राप्तिके उपाय

यत्तद्ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम्॥
अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठं च यत्परम्। परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदिस्थितः॥
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम्। केचिद्विष्णुं हरं केचित्केचिद्ब्रह्माणमीश्वरम्॥
इन्द्रादिनामभिः केचित्सूर्यं सोमं च कालकम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च॥
स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः। सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः॥
ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या तदाप्नुयात्।

(अग्निपुराण ३८२। १६-२१)

'वह जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका संस्थान (आकार-विशेष) है, जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदिके द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबसे परे है, उस परात्पर ब्रह्मके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे यज्ञके स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं। उन्हें कोई तो परब्रह्मरूपसे प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूपसे, कोई शिवरूपसे, कोई ब्रह्मारूपसे और कोई ईश्वररूपसे, कोई इन्द्रादि नामोंसे तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूपसे उन्हें पाना चाहते हैं। मनीषी लोग ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारे जगत्को विष्णुका ही स्वरूप कहते हैं। वे भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जानेपर (जिन्हें जान लेने या पा लेनेपर) फिर वहाँसे इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करनेसे, ध्यान लगानेसे, व्रत करनेसे, पूजासे और धर्मकी बातें सुनने (एवं उनका पालन करने)से उनकी प्राप्ति होती है।'

व्यासो नारायणः साक्षात् शंकरः शंकरः स्वयम्।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किं करोम्यहम्॥

—इस श्लोकको उद्धृत किया गया है। इस श्लोकका गया है कि 'ब्रह्मसूत्र-व्याख्याके शास्त्रार्थमें एक पक्षमें व्यास साक्षात् नारायण हैं और एक पक्षमें आचार्य —साक्षात् शंकर। अब इन दोनोंके अनवरत चाले शास्त्रार्थमें मैं (सरस्वती) क्या करूँ, यह कुछ में नहीं आता।' तबसे आस्तिकोंकी परम्परा उन्हें अवतार ही मानती चली आयी है।

उन्होंने आठ वर्षमें ही चारों वेदोंसहित समस्त शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया और सोलह वर्षकी अवस्थातकमें ही उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र भाष्यादिकोंकी रचना कर डाली बीस वर्षतक शास्त्रार्थद्वारा सभी विरुद्ध मतवादियोंको कर भारतमें सनातनधर्मको पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया, ब अलौकिक दिव्य चरित्र किसी देवताके ही हो सकते में किसीको क्या संशय हो सकता है?

बाल्यकालसे ही वे अपने माता-पिता तथा गुरुजनोंके प्रति और देवताओंके प्रति भी उनकी अद्भुत निष्ठा थी। अपने जीवनभर देवताओंकी आराधना की और उनके अनेकों दिव्य स्तोत्रोंकी रचना की, जो आज किसी भी स्तोत्र-संग्रहोंमें देखनेको मिल सकते हैं और किसी भी देवताके स्तुति-प्रकरणोंमें प्रमुख रूपसे तथा सर्वाधिक में भी उन्हींके स्तोत्र संनिविष्ट किये गये दीखते हैं और भक्तगण प्रायः इन्हीं स्तुति-भावोंसे भावित होकर की स्तुति करनेमें शीघ्र तादात्म्यताको प्राप्त होते हैं। के अनुग्रहके बिना काव्यगत शक्ति भी प्राप्त नहीं होती शक्तिसे ही सत्साहित्यका सुदूर स्थानोंतक अटूट प्रभाव रहता है।

विष्णु आदि पञ्चदेवताओं तथा ललितादिका प्रातःस्मरण आदि स्तोत्र तो अनेक भक्तोंके कण्ठहार बने हुए हैं और उन्हें वे अपनी-अपनी पूजा-उपासनाओंमें पढ़ते रहते हैं।

आचार्यकी बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र, निर्मल तथा सूक्ष्मैकिका-विशिष्टशक्ति-सम्पन्न थी। अतः किसी भी सूक्ष्म तत्त्वको गम्भीरतासे वे अबाधगतिसे देख सकनेमें समर्थ थे। ब्रह्म क्या है, माया क्या है, संसार क्या है, देवता क्या है और जीव क्या है—इसे वे अपनी दिव्य प्रतिभाशक्ति, तपोमयी दृष्टि और शास्त्रैकचक्षुष्कताके संयोगसे सुस्पष्ट एवं निर्भ्रान्त रूपसे साक्षात् अवलोकन करनेमें समर्थ थे। अतः उनकी प्रतिपादन-शैलीमें कहीं भी शंकाका प्रवेश नहीं होता। उनकी प्रखर ओजस्विनी वाणी इस दिव्य दृष्टिकी ही परिणति है। निर्गुण ब्रह्म एवं ज्ञानस्वरूपके निरूपणमें वे स्वयं अद्वितीय ज्ञानके रूपमें ही प्रतिभासित होते दीखते हैं। सारा शास्त्र-ज्ञान, तर्कसमूह और शब्दराशि उनके समक्ष करामलकवत् अवभासित होते हैं। आत्मतत्त्वनिरूपणमें वे साक्षात् आत्माको प्रत्यक्षरूपमें प्रकट करते हुए दीखते हैं और शिव, ललितादिके सगुण रूपोंके वर्णनमें तथा षट्चक्र एवं कुण्डलिनी-शक्तिके स्वरूप-प्रकाशनमें उन्हें प्रत्यक्ष देखते हुए-से प्रतीत होते हैं। उनके उपनिषद्भाष्य और गीता आदि भाष्यके व्याख्यान, गूढ़ भावोंको सुस्पष्ट रूपसे इङ्गित करनेमें समर्थ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्यमें मूल वचन जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी भगवत्ताके अवबोधक हैं, ठीक वहीं इनका भाष्य अनेक तथ्योंको समान रूपसे प्रकट करता हुआ साक्षात् ज्ञानावतार सदाशिवके विचारोंकी श्रेणीमें रखकर उसीकी समकक्षता प्राप्त करता है। कहीं भी मूल वचनसे तनिक भी न्यूनता नहीं दीखती। इनका 'सर्ववेदान्त-सिद्धान्तसंग्रह' सभी प्रकरण-

ग्रन्थोंसे बड़ा है और वह समस्त सूक्ष्मतत्त्वोंके विवेचनसहित देवता, आत्मा और परमात्मा आदि सबका अवबोधक है। इनके विवेकचूडामणि, प्रमाणपञ्चक, शतश्लोकी, उपदेश-साहस्री, आत्मबोध, तत्त्वबोध आदि ग्रन्थ सामान्य प्रारम्भिक वेदान्तके विद्यार्थीसे लेकर मध्यम-कोटिके जिज्ञासु तथा उत्कृष्टकोटिके मनीषियोंके लिये भी बड़े उपयोगी और साक्षात् गुरुके समान निर्देशक हैं। प्रतीत होता है कि साक्षात् शिव ही उसे ज्ञान प्रदान कर रहे हैं एवं प्रथम सोपानसे उठाकर कैवल्यतक पहुँचाते हुए तत्काल परमात्मसाक्षात्कार करानेको उद्यत हैं।

विद्वानोंका निर्णय है कि यदि आचार्यने कुछ भी न लिखकर केवल एक ब्रह्मसूत्र-भाष्य (शारीरकभाष्य) ही लिख दिया होता तब भी वे संसारके सभी विचारकोंमें प्रथम कोटिमें परिगणित हो जाते, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। जब वे पूर्वपक्षकी स्थापना करते हैं, तो पाठक यही अनुमान करने लगता है कि इसका कोई भी उत्तर नहीं हो सकेगा, किंतु जब उत्तरपक्षकी स्थापना करते हुए पूर्वपक्षके तर्कोंको ध्वस्त करने लगते हैं, तो पाठक सर्वथा अवाक् रह जाता है। उनके देवताधिकरणमें भी इस प्रकारकी कुछ शंकाएँ और समाधान देखनेको मिलते हैं। इस अधिकरणमें आचार्यने ब्रह्मविद्याके अधिकारपर विचार किया है। सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्मविद्यामें मनुष्योंके अधिकारपर विचार किया है। त्रैवर्णिकोंके अधिकारके बाद विदुर आदि ज्ञानियोंके स्वतःप्राप्त दिव्य ज्ञानकी विधिका अनुमोदन करते हुए देवताधिकरणका उपक्रम किया है। इस प्रसंगमें वे कहते हैं कि यज्ञोपवीत आदि समस्त उपकरणोंसे समन्वित त्रैवर्णिक मानवका तो ब्रह्मविद्यामें अधिकार सिद्ध हो गया, किंतु मनुष्योंसे ऊपर विद्याधर, यक्ष, किन्नर, सिद्ध और देवताओंका ब्रह्मविद्यामें अधिकार सम्भव नहीं दीखता; क्योंकि उनमें इसकी योग्यता नहीं होती। और वे मानवीय संस्कारोंसे युक्त नहीं होते। साथ ही पूर्वमीमांसामें निर्दिष्ट ब्रह्मजिज्ञासाके पूर्वकी स्थिति भी उन्हें प्राप्त नहीं होती, फिर वे मोक्षके अधिकारी भी नहीं माने जाते, क्योंकि वे कल्पान्तस्थायी लोकोंमें स्थित होते हैं और पुण्यक्षीण होनेके बाद सामान्य स्थितिमें आ जाते हैं। इन कारणोंसे देवता आदि योनियोंका ब्रह्मविद्यामें अधिकार सिद्ध नहीं होता है, इसी प्रसंगमें यह भी एक शंका उठ जाती है कि विद्याधर, गन्धर्व तथा देवता आदि देवयोनियाँ हैं भी या नहीं?'

वेदान्तदर्शनके देवता (तदुपर्य –) धिकरणम्में भगवान् व्यासके सूत्रोंकी व्याख्या करते हुए आचार्यने इसके पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षको विस्तारसे प्रतिपादित किया है कि प्रत्यक्ष, अनुमान और श्रुति, स्मृति आदि शब्दप्रमाणोंसे यह सभी प्रकार सिद्ध है कि देवता आदि योनियाँ हैं और उनकी भी मोक्षके प्रति अभिरुचि होती है। अतः मनुष्योंके समान ही उनका भी ब्रह्मविद्यामें अधिकार है। ब्रह्मविद्या ही मोक्षका मूल कारण है। श्रुतिमें वरुणके पुत्र भृगुका वरुणके पास जाकर ब्रह्मविद्याप्राप्तिका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जिससे भृगु मोक्षके अधिकारी हुए। इसी प्रकार देवताओंके प्रतिनिधिरूपमें इन्द्रका और असुरोंके प्रतिनिधिरूपमें विरोचनका एक ही साथ ब्रह्मविद्याप्राप्तिके लिये प्रजापतिके पास जाकर जिज्ञासापूर्वक सोदाहरण ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेकी बात मिलती है। आचार्यने यह भी शंका की है कि देवता तो प्रायः यज्ञोंके हविर्ग्रहणमें व्यस्त होते हैं तथा उपासकोंकी स्तुतिके कारण उनके द्वारा पूजा ग्रहण करने, उनकी स्तुति श्रवण करने तथा उनके अभीष्ट कार्य-सम्पादनमें ही उनका सारा समय लग जाता है, क्योंकि देवताओंके उपासकोंकी संख्या बहुत अधिक है, फिर वे समयके अभावमें विधिपूर्वक ब्रह्मविद्या कैसे ग्रहण कर सकेंगे?

इसके उत्तरमें आचार्यने बतलाया है कि देवताओंमें एक ही साथ अनेक रूप-प्रतिपत्तिकी सामर्थ्य होती है—'**विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्।**' (ब्र० सू० देव० सू० २७) अर्थात् वे एक ही समयमें सभी यज्ञोंमें अनेक रूप धारणकर 'स्वाहा' शब्दके उच्चारण करते ही वहाँ पहुँचकर हविर्ग्रहण करने, यजमानके इष्ट-सम्पादन करने, मन्दिरोंमें पूजा ग्रहण करने और अपने परिवारमें रहने तथा ब्रह्मविद्याके शिक्षाके लिये भी सामर्थ्य रखते हैं। यह शक्ति प्रायः योगियोंमें भी देखी जाती है। फिर आजानज (जन्मजात) देवताओं, सिद्धों, विद्याधरों आदिकी जो कामरूपताके लिये विशषरूपसे प्रसिद्धि है उनकी बात ही क्या? '**किमु वक्तव्यमाजान-सिद्धानां देवानाम्।**'

देवताओंके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिये आचार्यने

इष्टदेवताकी उपासना

(पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

शास्त्ररहस्यको जाननेवाले महानुभावोंका कहना है कि शैवग्रन्थोंमें श्रीविष्णुकी और वैष्णवग्रन्थोंमें श्रीशिवजीकी जो निन्दा पायी जाती है, वहाँ इस निन्दाका मुख्य तात्पर्य किसी देवताकी निन्दामें नहीं है, अपितु वह ग्रन्थ जिस देवताका वर्णन कर रहा है उसकी प्रशंसामें है। इसपर कोई कहे कि अपने इष्टदेवतामें अनन्यताकी प्राप्तिके लिये उनसे भिन्न देवताकी उपेक्षा अपेक्षित है और वह उपेक्षा बिना अन्य देवताकी निन्दाके कैसे सिद्ध हो सकती है ? इस तरह उस निन्दाका मुख्य तात्पर्य अपने इष्टदेवतासे अन्य देवताकी उपेक्षाके लिये उसकी निन्दामें ही हो सकता है। किंतु ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि उसने अनन्यताके स्वरूपको ही यथार्थतया समझा नहीं है। क्या अपने एकमात्र इष्टदेवमें ही तत्परताको अनन्यता कहें ? किंतु ऐसी अनन्यता खान-पान आदि लौकिक एवं सन्ध्या-वन्दनादि वैदिक व्यवहार करनेवाले पुरुषमें सम्भव नहीं है। यदि कहा जाय कि उन लौकिक-वैदिक सब कर्मोंके द्वारा अपने इष्टदेवकी ही उपासना करनेसे अनन्यता बन जायगी, तो फिर जैसे अन्यान्य लौकिक-वैदिक कर्मोंके द्वारा अपने इष्टदेवकी उपासना की जा सकती है, वैसे ही अन्य देवताकी पूजा आदिके द्वारा भी अपने इष्टदेवकी उपासना करते हुए अनन्यता बन सकती है।

यथार्थमें तो—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
हरिराराध्यते भक्त्या नान्यत्तत्तोषकारणम्॥

'प्राणी अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार कर्म करते हुए भक्तिद्वारा उस पुरुषोत्तम हरिकी आराधना कर सकता है। इसके अतिरिक्त भगवान्‌की प्रसन्नताका और अन्य कोई साधन नहीं है। और—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥'

(गीता १८।४६)

'मनुष्य अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करके मुक्तिको प्राप्त कर सकता है।'—इत्यादि वचनोंसे शास्त्रोंने अपने-अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे ही श्रीभगवान्‌की उपासना करना बतलाया है और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें तो पद-पदपर इन्द्र, अग्नि, वरुण, रुद्र, प्रजापति आदि देवताओंकी पूजा दिखलायी पड़ती है। ऐसी हालतमें अपनेको वैदिक माननेवाला कोई पुरुष यह कहनेका साहस कैसे कर सकता है कि 'विष्णुके अतिरिक्त कोई अन्य देवता मेरे लिये पूजनीय नहीं है ?'

यदि कहा जाय कि वहाँ उन इन्द्रियादि देवताओंके रूपमें भगवान् विष्णुकी ही पूजा होती है तो इस तरह फिर सभी देवताओंकी पूजा की जा सकती है।

जिन कामिनी, काञ्चन आदि विषयोंकी बड़े-बड़े विवेकी महापुरुषोंने निन्दा की है, उन्हीं तुच्छ विषयरूप विषसे भस्मीभूत चित्तवाले और उन्हीं विषयोंकी प्राप्तिके लोभसे वशीभूत होकर और तो क्या म्लेच्छोंके चरणोंपर भी मस्तक झुकानेवाले लोग समस्त पाप-समुदायका नाश करनेमें समर्थ श्रीशिव, विष्णु आदिके वन्दनको जब अनन्यताका विघातक कहते हैं, तब बड़ा आश्चर्य होता है।

अस्तु, इस तरह यह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान्‌को प्रसन्न करनेकी बुद्धिसे भगवान्‌के लिये ही किये गये समस्त कर्मोंको परमगुरु श्रीभगवान्‌के चरणोंमें समर्पण करना ही यथार्थ अनन्यता है।

काशीखण्डके दूसरे अध्यायमें ध्रुवजी श्रीविष्णुसे स्तुतिमें कहते हैं कि—

मित्राणां हि कलत्रं त्वं धर्मस्त्वं सर्वबन्धुषु।
त्वत्तो नान्यज्जगत्यस्मिन्नारायण चराचरे॥
त्वमेव माता त्वं तातस्त्वं सुहृत् त्वं महाधनम्।
त्वमेव सौख्यसम्पत्तिस्त्वमेव जीवनेश्वरः॥
सा कथा यत्र ते नाम तन्मनो यत्त्वदर्पितम्।
तत्कर्म यत्त्वदर्थं वै तत्तपो यद्भवत्स्मृतिः॥

वासुदेवमनादृत्य यदन्यत्र कृतश्रमाः ॥
नापोक्षजात्परो धर्मो नार्थो नारायणात्परः ।
न कामः केशवादन्यो नापवर्गो हरिं विना ॥
इयमेव परा हानिरुपसर्गोऽयमेव हि ।
अभाग्यं परमं चैतद्वासुदेवं न यत्स्मरेत् ॥
गोविन्दं परमानन्दं मुकुन्दं मधुसूदनम् ।
त्यक्त्वान्यं नैव जानामि न स्मरामि भजामि च ॥
न नमामि न च स्तौमि न पश्यामीह चक्षुषा ।
न स्पृशामि न वा यामि गायामि न हरिं विना ॥

अर्थात् 'हे नारायण ! इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्में [..]ससे अन्य कुछ भी नहीं है। मित्रोंमें भार्या, सब बन्धुओंमें [..] हितैषी धर्म आप ही हैं। माता, पिता, सुहृत्, धन, सौख्य, [..]त्ति और तो क्या प्राणेश्वर आप ही हैं। कथा वही है जिसमें [..]नका नाम हो, मन वही है जो आपमें अर्पित हो, काम वही [..]तो आपके लिये ही किया जाय और वही तपस्या है जिसमें [..]नका स्मरण होता रहे। प्राणियोंके उस महामोहको, उस [..]दिताको देखकर बड़ा ही खेद और आश्चर्य होता है, जिससे [..]नका अनादर करके अन्य विषयोंमें महान् परिश्रम करते हैं। [भ]गवन्! आपसे श्रेष्ठ ऐसा अन्य कोई न धर्म है, न अर्थ, [क]ाम और न मोक्ष ही। भगवान् वासुदेवका स्मरण न होना [प]रम हानि, परम उपद्रव, परम दौर्भाग्य है। परमानन्दकन्द [मधुसू]दन भगवान् गोविन्दको छोड़कर मैं न तो अन्य किसीको [जान]ता ही हूँ, न स्मरण करता हूँ, न भजता हूँ, न नमन करता [हूँ,] किसी दूसरेकी स्तुति करता हूँ, न अन्यको आँखसे देखता [हूँ,] न स्पर्श करता हूँ, न अन्यत्र कहीं जाता हूँ, न बिना हरिके [उ]नका गान करता हूँ।' इत्यादि स्तुतियोंके द्वारा अनन्यताका [रू]प प्रदर्शित किया है।

इतना सब मन्थन करनेका तात्पर्य यही है कि भगवान् [व]ासुदेवकी उपेक्षा करके अन्य देवोंका समाश्रयण करना [अभ]िप्रेत नहीं, अपितु वासुदेव-भावनासे या भगवान्की [आरा]धना-बुद्धिसे अन्य देवताओंका भी आदर अवश्य ही [कर]ना उचित है। इसीलिये काशीखण्डमें आगे चलकर कहा [गया] है कि श्रीविष्णुकी आज्ञासे ध्रुवने भगवान् श्रीविष्णुके [हृद]स्थ श्रीशंकरभगवान्की पूजा की। ध्रुवको वरदान आदि

अहं जिगमिषुस्त्वासं पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
साक्षाद्विश्वेश्वरो यत्र तिष्ठते मोक्षकारणम्॥
विपन्नानां च जन्तूनां यत्र विश्वेश्वरः स्वयम्।
कर्णे जापं प्रकुरुते कर्मनिर्मूलनक्षमम्॥
अल्पसंसारदुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः।
उपाय एक एवास्ति काशिकाऽनन्दभूमिका॥

'मोक्षदाता साक्षात् भगवान् श्रीविश्वनाथजी जहाँ निवास करते हैं, उस परम पवित्र काशीपुरीको मैं जाना चाहता हूँ। जिस काशीमें स्वयं श्रीविश्वेश्वर भगवान् मृत प्राणियोंके कानमें उस मन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे उन प्राणियोंके समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। सभी तरहके उपद्रवोंको देनेवाले इस तुच्छ संसाररूपी दुःखको दूर करनेका यह आनन्द-भूमि काशी ही एकमात्र उपाय है।'

दुःखरूपी महान् वृक्षका बीज विषयोंमें समीचीनता-असमीचीनता-बुद्धि है। काशीरूपी अग्नि जब उस बीजको भस्मीभूत कर डालता है, तब दुःखरूप महावृक्ष ही कैसे उत्पन्न हो सकता है ? जिससे समस्त अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया जा सकता है और जहाँ जानेपर फिर शोक-संतापका भय नहीं रह जाता, ऐसे वैकुण्ठसे श्रीविश्वनाथकी पूजा करनेके लिये मैं नित्य नियमपूर्वक उस जगद्वन्द्य काशीमें आया करता हूँ। तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ मायाकी जो परम शक्ति है, उसको देनेवाले सुदर्शनचक्रके दाता श्रीविश्वनाथ ही हैं। पूर्वकालमें जालन्धर नामका एक दैत्य हुआ था, जिसके पराक्रमसे मैं भी भयभीत हो गया था। किंतु भगवान् श्रीशंकरने अपने पैरके अँगूठेके अग्रभागसे चक्र बनाकर, उससे जालन्धरको मार डाला था। अपने नेत्र-कमलोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करके मैंने वही चक्र उनसे प्राप्त किया। दैत्य-समुदायको मर्दन करनेवाला वही यह सुदर्शनचक्र मेरे पास है। समस्त दुष्ट प्राणियोंको भगानेवाले उस सुदर्शन-चक्रको तुम्हारी रक्षाके लिये आगे भेजकर मैं यहाँ आया हूँ। अब इस समय श्रीविश्वनाथका दर्शन करनेके लिये मैं काशीकी ओर चल रहा हूँ। उसके बाद पञ्चक्रोशीकी सीमाके पास पहुँचकर वे गरुडसे नीचे उतरे और उन्होंने ध्रुवका हाथ पकड़कर मणिकर्णिकामें स्नान किया। फिर श्रीविश्वनाथका

ानामेव कुले भवति धीमताम्', **'पूर्वाभ्यासेन कौन्तेय** **ने ह्यवशोऽपि सः'** इत्यादि वचनोंसे की है। इसीलिये यह सम्भव है कि हमारी उपासनाके अनुकूल ही कुलमें । जन्म हुआ हो। अतः हमें माता-पिता, गुरुजनोंके ार ही उपासना करनी चाहिये।

यों भी इस बातके समझनेमें सुगमता होगी कि जैसे कोई किसी अपरिचित मार्गसे किसी अभीष्ट देशमें जा रहा हो, चलकर उसे तीन मार्ग दिखायी दें और तीनोंपर कुछ चल रहे हों, प्रश्न करनेपर सभी अपने मार्गको ही निर्विघ्न ते हों, साथ ही दूसरे मार्गोंको नाना प्रकारके सिंह-व्याघ्र-ृश्चिक-कण्टकाकीर्ण गर्तोंसे उपद्रुत बतलाते हों, ऐसी में यदि जाना आवश्यक ही हो तो वह प्राणी किस ा अवलम्बन करेगा ? समझदार तो यही कहेंगे कि उन ्गामियोंमेंसे अधिक विश्वास उन्हींपर किया जा सकता है मपने राष्ट्र, प्रान्त, नगर तथा ग्रामके हों या अपने त्रयोंमेंसे हों। यह बात दूसरी है कि जब बहुत विशिष्ट वोंसे उस मार्गके दूषित तथा मार्गान्तरके निर्विघ्न होनेकी नेश्चित हो गयी हो, तब किसी दूसरे मार्गका अवलम्बन जाय।

इसलिये भी अपनी पितृ-पितामह-परम्परामें जो उपासना आचार तथा शास्त्र मान्य हों, वही उचित हैं। वेदने भी **त्वित् पुत्रेभ्यः पितरावुपागतौ'**— इस वाक्यसे परम्परागत रका समर्थन किया है। श्रीनीलकण्ठजीने इसका यही ाय बतलाया है कि पुत्रके हितके लिये माता-पिता या ाह प्रभृतिने जिस व्रतका पालन या जिस देवताकी ना की हो, उस पुत्रके लिये उसी व्रत या देवताका ञम्बन करना चाहिये। ऐसे ही सम्प्रदायभेदसे भस्म, चन्दन आदिकी भी व्यवस्था बतायी गयी है। उसमें भी चरम फल है। परंतु प्रथमसे ही प्राणियोंका मन इन परमदुरवगाह्य भगवान्के मनोवचनातीत स्वरूपमें प्रवेश नहीं कर सकता। अतः परम-करुण प्रभु भक्तानुग्रहार्थ ही अपने अनेक प्रकारके मङ्गलमय स्वरूपको धारण करते हैं।

उपनिषदोंमें दहर-विद्या, शाण्डिल्य-विद्या, वैश्वानर-विद्याओंके रूपमें इनकी ही अनेक सगुण उपासनाएँ विस्तीर्ण हैं। यही भगवान् विघ्नराज श्रीगणेशके रूपमें ऋद्धि-सिद्धि आदि निज शक्तियोंसहित आराधित होकर भक्तोंका सर्वविघ्न-निवारण, सर्वाभीष्ट -सम्पादनपूर्वक स्व-स्वरूपका साक्षात्कार कराकर परम गति देते हैं और यही विश्वचक्षु भगवान् भास्करके रूपमें उपास्य होकर सर्व-रोग-निवारणपूर्वक अपने पारमार्थिक विशुद्ध ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार कराकर भव-रोगसे मुक्त कर देते हैं। ऐसे ही यही वेदान्तवेद्य शुद्ध भगवान् अविद्याशक्तिप्रधान होकर प्रपञ्चका निर्माण करते हैं, विद्याशक्तिप्रधान होकर मोक्ष प्रदान करते हैं और अनन्त अखण्ड विशुद्ध चिति-शक्तिरूपसे सर्वदृश्यके अधिष्ठानरूप विराजमान होते हैं। वही महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि रूपमें उपास्य होकर सर्वभुक्ति-मुक्ति-प्रदायक होते हैं। वही विशुद्ध ब्रह्म, भूतभावन भगवान् विश्वनाथ, श्रीविष्णु, नृसिंह एवं श्रीमद्राघवेन्द्र रामभद्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्द-कन्द-रूपमें उपासित होकर सर्वसिद्धि प्रदान करते हैं।

अस्तु, इन सभी स्वरूपोंकी गायत्र्यादि वैदिक मन्त्रों एवं वर्णाश्रमानुसार श्रौत-स्मार्त कर्मोंद्वारा की गयी उपासना मुख्य है। वेदशास्त्रोक्त स्वधर्म-कर्मके अनुष्ठानके बिना पाशविकी उच्छृङ्खल चेष्टाओंका अन्त नहीं होता। बिना श्रौत-स्मार्त-शृङ्खला-निबद्ध चेष्टाओंके इन्द्रिय-मन-बुद्धि आदिका नियन्त्रण असम्भव है और बिना सर्वेन्द्रिय-निग्रहके अदृश्य विशुद्ध

ब्रह्मका साक्षात्कार भी असम्भव है। अतः श्रौत-स्मार्त-कर्म-धर्मद्वारा ही परमेश्वरका मुख्य आराधन है।

इसी विशुद्ध वैदिक धर्मका बौद्ध आदि अवैदिक एवं वैदिकाभासोंद्वारा विप्लव होनेपर भगवान् शंकराचार्यने अवतीर्ण होकर उसे पुनः प्रतिष्ठित किया है। श्रीविद्यारण्य-प्रभृति विद्वानोंने तथा अन्यान्य प्राचीन-अर्वाचीन संतोंने भी इसी मतका पोषण किया है। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, तुलसीदासने भी इसी परम उदार सिद्धान्तका पोषण किया है । उसमें तीनों वर्णोंके लिये गायत्री मुख्य उपास्य है। जिनके लिये गायत्रीका अधिकार नहीं है, उन अवैदिकोंके लिये अवैदिकी उपासनाएँ हैं। जो गायत्री-मन्त्रके अधिकारी त्रैवर्णिक वैदिकसंस्कारसम्पन्न हों, उन्हें यदि गायत्रीमें परितोष न हो तो विष्णु, शिव आदि देवताओंका विष्णु, शिव आदि मन्त्रोंसे आराधन कर सकते हैं। वैदिकसंस्कार-सम्पन्न होनेके कारण इन मन्त्रोंमें उनका अधिकार सहज सिद्ध है। अर्थात् विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश तथा शक्ति—इन पञ्च देवताओंकी, किंवा अन्य सगुण एवं निर्गुण ब्रह्मकी उपासना गायत्रीमन्त्रद्वारा ही पूर्ण सुसम्पन्न हो सकती है और इसके सिवा वैदिक शिव, विष्णु आदि मन्त्रोंसे भी तत्तत् उपासनाएँ हो सकती हैं।

इन समस्त वैदिक उपासनाओंमें वर्णाश्रमानुसार श्रौत-स्मार्त-धर्मका अनुष्ठान भी परमावश्यक है। वेदने उपासना-विहीन कर्मोंको स्वप्रकाश ब्रह्मकी अपेक्षा स्वर्गादि तुच्छफलके देनेवाले होनेसे अन्धतमकी प्राप्तिके कारण कहे हैं। परंतु कर्मविहीन उपासनाओंसे तो घोर अन्धतमकी प्राप्ति कही गयी है, क्योंकि स्वधर्मानुष्ठान बिना इष्टमें चित्तकी एकाग्रतारूप उपासना भी सम्पन्न न हो सकेगी।

स्वधर्मभ्रष्टके लिये कहा गया है कि चाहे कितना भी श्रीहरिकी भक्ति, किंवा ध्यानमें तत्पर क्यों न हो, परंतु यदि आश्रमके आचारोंसे भ्रष्ट है तो वह पतित ही कहा जाता है। यथा—

हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानपरोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते॥

(बृहन्नारदीय)

अतः चाहे वैष्णव हो चाहे शैव, सबको वेदशास्त्रोक्त व्यवहारचिह्न हैं, वे सभी उसको अत्यन्त आदरणी[illegible] चाहिये।

कोई जिज्ञासु यह पूछ सकता है कि कुछ शै[illegible] वैष्णवोंका कहना है कि गायत्री, यज्ञोपवीत एवं [illegible] ब्राह्मणादि धर्म शैव या वैष्णवके लिये गौण हैं, उनके [illegible] अष्टाक्षर, पञ्चाक्षरादि मन्त्रका ही अत्यन्त प्राधान्य चाहिये। वेद-शास्त्र तथा तदुक्त वर्णाश्रम-धर्मके वि[illegible] केवल शैव एवं वैष्णवधर्मसे उनका कल्याण हो जा[illegible] इसका यह उत्तर है कि यद्यपि विष्णुमन्त्रादि प्राणिकल[illegible] साधनरूपमें आदरणीय हैं तथापि वैष्णवतादिसे द्विज[illegible] अधिक प्रबल है, क्योंकि द्विजत्व परमेश्वर-दत्त है। वैष्[illegible] शैवत्व आदि प्राणि-सम्पादित हैं, अतः वैष्णवतादिके नि[illegible] होनेवाले धर्मोंका सम्मान अवश्य करना चाहिये। परमेश्वर-दत्त द्विजत्वकी रक्षाका भी ध्यान रखना परमाव[illegible] है। द्विजत्वकी अभिव्यक्ति यज्ञोपवीत, भस्म एवं शिखासे [illegible] है, वैष्णवताकी अभिव्यक्ति कण्ठी, गोपीचन्दनादिसे हो[illegible] वैष्णवताके चिह्नोंसे द्विजत्वके चिह्नोंका तिरस्कार [illegible] असंगत है। इसलिये वैदिकोंके गृहमें वैष्णवताको द्वि[illegible] अवरुद्ध होकर ही रहना चाहिये।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि शैव, [illegible] शाक्त—इन सभी सम्प्रदायोंमें प्रधानरूपसे दो भेद ह[illegible] हैं—एक वैदिक, दूसरा अवैदिक। वैदिकोंके यहाँ वेद[illegible] वेदोक्त कर्म एवं तदनुसारी लिङ्गोंका प्राधान्य होता है [illegible] तदविरुद्ध प्रकारसे ही विष्णु, शिव आदि देवताओंकी उ[illegible] होती है तथा सभी देवताओंका सम्मान होता है।

इन वैदिकोंमें किसी दूसरे देवताकी निन्दा करना [illegible] समझा जाता है। परंतु अवैदिक वैष्णवों तथा शैवोंके यह[illegible] या तदुक्त धर्म-कर्म तथा तदनुकूल लिङ्गोंका कोई सम्मान [illegible] केवल साम्प्रदायिक आगम-तन्त्रादिके अनुसार आचा[illegible] चिह्नोंका ही अधिक सम्मान है।

द्विजके लिये वैदिक चिह्नोंका तिरस्कार अयुक्त है, [illegible] या वैष्णवत्व पितृपरम्परासे नियत नहीं है। वैदिक लोगोंक[illegible] यही कहना है कि जिस पुत्रके कल्याणके लिये उसके [illegible] माता, पितामह-प्रपितामह आदिने जिस व्रतका [illegible]

उपास्य और उपासनाकी परिभाषा

'उपासना' संस्कृत साहित्यका शब्द है। संस्कृतके सभी [शब्द]ोंको वह गौरव प्राप्त है कि वे प्रकृति-प्रत्ययके संयोगसे [भि]न्न होते हुए भी प्रकृति-प्रत्ययके समुदित अर्थका [प्रति]पादन करते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार उपासना शब्दमें [उप,] आस् और अन—ये तीन अंश हैं। इनमें उप उपसर्ग, ['आस] उपवेशने' धातु और भाव-अर्थमें युच् (अन) प्रत्यय [है।] 'उपासनम् उपासना' अर्थात् शास्त्रविधिके अनुसार [उपास्]यदेवके प्रति तैलधाराकी भाँति दीर्घकालपर्यन्त चित्तकी [एका]ग्रताको उपासना कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें [अध्]यायके तीसरे श्लोकके शाङ्करभाष्यमें—'**उपासनं नाम शास्त्रमुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य [तैलध]ारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं यदासनं [तदुपा]सनमाचक्षते।**'—यह लिखा है। उपासनाके समानार्थक [शब्द] सेवा, वरिवस्या, परिचर्या, शुश्रूषा, उपासन इत्यादि हैं। [इस] परिभाषाके अनुसार उपासक, उपास्य और उपासना—ये [तीन] वस्तु हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इनका पृथक्-पृथक् [स्वरू]पनिर्णय करना प्रसङ्गके विरुद्ध न होगा। उपासक [उपास]धना करनेवाले अर्थात् दीर्घकालपर्यन्त उपास्यके स्वरूप-[आ]दिमें चित्त-वृत्तिका सतत प्रवाह करनेवालेको कहा जाता [है।] उपासक और उपास्यके विविध भेद होनेके कारण ये कई [प्रका]रके होते हैं। इसी प्रकार इन उपास्योंकी उपासना भी [भिन्न-भि]न्न प्रकारकी होती है। इसलिये उपासक, उपास्य और

[...]भिचाकशीति' (मुण्डक० ३।१।१) आदि वाक्योंके अनुस[ार] एवं पुरुषसूक्तानुसार विष्णु उपास्यदेव कहे गये हैं। रुद्रसूक्त[के] अनुसार एवं अन्यत्र '**एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु[र्य] इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।**' (श्वेताश्वतर० ३।२) '**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पति[ं] पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।**' (श्वेताश्वतर० ६।७) इत्यादि श्रुतिवचनोंके अनुसार महेश्वर, रुद्र अथवा शंकर उपास्यदेव ठहरते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र संसारके सर्ग, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, इसलिये वे उपास्यदेव ठहरते हैं। उनके अतिरिक्त '**विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः**' इस श्रुतिसे इन्द्र भी उपास्यदेव निश्चित होते हैं। इन सबकी उपासनाके भिन्न-भिन्न मार्ग हैं एवं उपासक भी वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म आदि भेदसे अनेक हैं। पर इतने मात्रसे शान्ति नहीं होती, क्योंकि—

न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित्।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति न शिवस्य तथैव च॥

—इत्यादि वचनोंके अनुसार विष्णु-शिवादि देवताओंकी उपासना तथा दीक्षा नित्य नहीं हैं। उपनिषद् भी इसमें साहमत्य प्रदान करते हैं कि जिस प्रकार कर्मद्वारा संचित लोक क्षीण होते हैं, उसी प्रकार पुण्यद्वारा प्राप्त लोक भी क्षीण हो जाते हैं। '**अक्षय्यं हि चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति**' के अनुसार वैदिक 'चातुर्मास्यादि' उपासनाजन्य पुण्यका फल भी प्रलयपर्यन्त ही रहता है। इसके पश्चात् फिर संसारमें प्रवृत्ति

होना स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थितिमें यह निर्णय करना स्वाभाविक है कि हमारा उपास्यदेव कौन है, जिसकी उपासनाद्वारा अक्षय्य फलकी प्राप्ति हो।

इस सम्बन्धमें लिंगपुराणमें लिखा है—

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके निर्माता निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निष्कल, परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा ही उपास्यदेव हैं। इसलिये व्यष्टि-उपासनामें **'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'** कहा गया है।

अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥

—इत्यादि अनेक वचनोंके अनुसार जगत्-जन्मादि-कारणरूप कार्य-कारणातीत परब्रह्म परमात्मा ही उपास्यदेव ठहरते हैं। उपास्य और भजनीय—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो उपास्य है वही भजनीय है, जो भजनीय है वही उपास्य है। इसी प्रकार उपासना और भक्ति भी एक ही हैं। काव्य-कोषादिकी व्याख्याके अनुसार **'पूजादिष्वनुरागो भक्तिः'** और अन्य सिद्धान्तके अनुसार **'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिः॥'** अर्थात् जहाँ एक ओर पूज्यके प्रति अनुराग, प्रेम, स्नेह, भक्ति है, वहाँ स्वरूपानुसंधान भी भक्ति ही है।

उपासनाके भेद

वास्तवमें यद्यपि नित्यानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मामें एकान्त-प्रीति करना उपासना है, तथापि सम्पूर्ण संसारको मोहमें डालनेवाली परब्रह्म परमात्माकी मलिन सत्त्वप्रधान मायाके वशीभूत जीवके रज और तमभावको नष्ट करनेके लिये उपासनाका आश्रय अवश्य लेना चाहिये। यद्यपि शास्त्रकारोंने मानव-कल्याणके लिये अनेक मार्गोंका उपदेश किया है, फिर भी अविद्याके नाश करनेके लिये तथा आत्मज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कारके सम्बन्धसे वेदान्त और भगवद्गीतामें निम्न त्रिमार्ग बताया गया है। जबतक आत्म-साक्षात्कारकी क्षमता प्राप्त न हो, तबतक चित्तकी शुद्धि एवं मनकी एकाग्रताके लिये कर्म और उपासनाकी परमावश्यकता है। चित्तशुद्धि और मनकी एकाग्रताके पश्चात् यद्यपि कर्म-उपासनाकी कोई आवश्यकता नहीं तथापि लोकानुग्रहके लिये देव-उपासना करते रहना अनुचित नहीं है। इस **'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि।'**—श्रीमद्भगवद्गीता (३। २०) में कहा है।

इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता है कि स्वरूपा[illegible] अन्य उपास्य आत्मसाक्षात्कारपर्यन्त ऐकान्तिक उपा[illegible] योग्य हैं। आत्म-साक्षात्कारके पश्चात् उनकी उस प्र[illegible] आवश्यकता नहीं रह जाती। आत्मातिरिक्त अन्य उपा[illegible] आत्मत्वेन ही उपासनाकी योग्यता रखते हैं। इस [illegible] आत्मपर्याय परब्रह्म परमात्मा जो उपास्य है, उसके दो भे[illegible] जाते हैं—१-सगुण और २-निर्गुण। सगुणके पुनः दो हैं—सगुण निराकार और सगुण साकार। निर्गुण निराकार एक ही है। उसकी उपासना बिना निरतिशयानन्दकी प्राप्ति दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके नहीं होती। इसीलिये **'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽ[illegible]** (यजुर्वेद ३१। ३८)। इस प्रकार कहकर अन्य सभी मा[illegible] निषेध कर दिया गया है।

सगुण निराकारकी उपासनाके अन्तर्गत हिरण्यगर्भ अ[illegible] लेकर जितना कारण और कार्य-ब्रह्मका विस्तार है, वह सभ[illegible] सगुण साकारके अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे लेकर [illegible] भवानी आदि सभी आकारवाली मूर्तियोंकी उपासना आ[illegible] है। इस प्रकार पृथ्वीके एक परमाणुसे लेकर महाकाश[illegible] अहंतत्त्व, महत्तत्त्व आदि सबमें किसी-न-किसी रूपसे उसी निर्गुण, निष्कल, निरञ्जन तत्त्वकी उपासना होती [illegible] बाह्यस्वरूप-कृतभेद विशेष स्वरूपका कारण होते हुए अवान्तर-एकताके विघातक नहीं होते। इस प्रकार वै[illegible] स्मार्त, पौराणिक, तान्त्रिक आदि सभी उपासना[illegible] उपास्यदेवकी व्यापकतासे मुख्यतया परब्रह्म परमात्मा ही उ[illegible] ठहरते हैं। अवान्तर उपास्योंमें यदि परिच्छिन्न भावको [illegible] निष्ठा परिपक्व हो जाती है और उसके अतिरिक्त वास्तविक उ[illegible] ब्रह्मतक पहुँचनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तो फिर इस प्रक[illegible] उपासक परिच्छिन्न उपासनाके कारण मृत्युके पश्चात् परि[illegible] लोकोंको प्राप्त होते हैं। अतएव छान्दोग्यश्रुतिमें प्रजापति भग[illegible] इन्द्रको उपदेश देते हुए कहते हैं कि—'····**तं वा एतं आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः, स[illegible] कामाः, स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति, सर्वाꣳश्च का[illegible]**

है, क्योंकि साधनरूपा भक्ति नौ प्रकारकी शास्त्रोंमें बतलायी गयी है—

श्रवणं कीर्तनं वास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥

(श्रीमद्भा० ७।११।११)

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा॥

(श्रीमद्भा० ७।५।२४)

—इस प्रकार श्रवणादि नवविध भक्तिका विश्लेषण शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक आया है और वह मानव-कल्याणके लिये एक-एक अङ्ग ही परमोपयोगी सिद्ध होता है। इसलिये उपासना और भक्ति दोनों ही परस्पर समानार्थक एवं समान कल्याणकारक माने गये हैं। उपासना भी अनेक प्रकारसे उसी उपास्यकी होती है और भक्ति भी अनेक प्रकारसे उस एक ही भजनीयकी होती है। अतएव—'**सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति**' के अनुसार एक केशवदेव ही उपास्य और भजनीय हैं।

उपासनामें गायत्रीका महत्त्व

उपासना अधिकारभेदसे अनेक प्रकारकी होती है। हमारे शास्त्रोंमें अधिकारका विचार सर्वत्र किया गया है और करना भी चाहिये। बिना अधिकारके निर्णय किये किसी भी कर्ममें सिद्धि नहीं होती। लौकिक कृषि-वाणिज्यादिमें भी अधिकारका विचार किया जाता है। अतएव प्रत्येक उपासनामें अधिकारीका निर्णय तथा उपासना-प्रकार, उपास्यके गौरव आदिका विचार करना चाहिये। स्वेच्छया प्रवृत्त होनेसे न केवल इष्टसिद्धिमें बाधा होती है, अपितु हानिकी भी सम्भावना रहती है। अतएव उपासनाके सम्बन्धमें मन्त्र, मन्त्रकी दीक्षा, मन्त्रका जप, जपका विधान, समय-शुद्धि, आसन-शुद्धि आदिका विचार करके गुरूपदेशद्वारा उस प्रक्रियाका निर्वाह करना चाहिये। स्वेच्छाचारसे मन्त्रोंका जप अथवा उपासना केवल अपनेको ही कष्टदायक सिद्ध नहीं होती, अपितु उसका प्रभाव कुल, प्रान्त और राष्ट्रपर भी विपरीत पड़ता है।

गायत्रीके विषयमें इसलिये लिखना पड़ रहा है कि आज इसका कोई विचार नहीं किया जाता कि इस मन्त्रका कौन अधिकारी है। स्त्री, पुरुष और बच्चे—जिनका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ और जिन्हें विधिवत् गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा नहीं दी गयी, वे भी बिना स्नान किये, जूते पहने गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते देखे गये हैं। कुछ तो यहाँतक देखे गये हैं कि मृतकके साथ-साथ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हैं।

जिस मन्त्रकी इतनी पवित्रता हो कि अन्य लोगोंसे अश्रुत होनेपर ही गुरु शिष्यके कानमें दीक्षा देता है, भला, वही इस प्रकार स्वेच्छया उच्चारण किया गया मन्त्र कैसे फलदायक हो सकेगा—ब्राह्मणके लिये गायत्री-उपासना ही नित्योपासना बतायी गयी है।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥
तावताकृतकृत्यत्वं नास्त्यपेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम्।

इस प्रकार ब्राह्मणके लिये शास्त्रोंमें गायत्रीकी उपासनाका एकमात्र विधान है। इसलिये प्राचीन कालमें—

तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः।
देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वे द्विजोत्तमाः॥

—इस देवीभागवतके अनुसार सभी ब्राह्मण गायत्रीकी उपासनामें तत्पर रहते थे। गायत्री तथा अन्य मन्त्रोंकी उपासना दीक्षापूर्वक फलप्रद होती है, पुस्तकसे स्वतः पढ़कर, मन्त्रके माहात्म्यसे प्रभावित होकर स्वयं ही जप आरम्भ कर देना शास्त्रसम्मत और फलप्रद नहीं होता। लिखा है—

अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
निष्फलं तत् प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत्॥

दीक्षाके साथ ही मन्त्रके दस संस्कार कर लेने चाहिये। उन दस संस्कारोंकी शास्त्रोंमें व्याख्या और प्रकार लिखा गया है। मन्त्र-संस्कारके साथ मालाका संस्कार भी जपके लिये आवश्यक है। दूकानसे माला खरीदकर सीधे ही जप आरम्भ कर देना सिद्धिदायक नहीं होता। गायत्री-जप-प्रसङ्गमें आसनका विचार भी किया गया है। आसन निम्नलिखितका होना चाहिये—

तूलकम्बलवस्त्राणि पट्टव्याघ्रमृगाजिनम्।
कल्पयेदासनं धीमान् सौभाग्यज्ञानसिद्धिदम्॥

—इनके अतिरिक्त जो व्यक्ति बाँस, पत्थर, लकड़ी, वृक्षके पत्ते, घास-फूसके आसनोंपर जप करते हैं, उन्हें सिद्धि

दवाराधनम न्यास और उसकी महिमा

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

न्यासका अर्थ है *स्थापना*। *बाहर और भीतरके प्रत्येक अङ्गमें इष्टदेवता और मन्त्रका भावनापूर्वक स्थापन ही न्यास* है। इस स्थूल शरीरमें अपवित्रताका ही साम्राज्य है। इसलिये इसे देवपूजाका तबतक अधिकार नहीं, जबतक यह शुद्ध एवं दिव्य न हो जाय। जबतक उसकी अपवित्रता बनी रहती है, तबतक इसके स्पर्श और स्मरणसे ग्लानिका उदय चित्तमें होता रहता है, ग्लानियुक्त व्यक्ति प्रसाद और भावोद्रेकसे शून्य होता है, विक्षेप और अवसादसे आक्रान्त होनेके कारण बार-बार प्रमाद, तन्द्रासे अभिभूत हुआ करता है। यही कारण है कि न तो वह एकतार स्मरण ही कर सकता है और न विधिविधानके साथ किसी कर्मका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान ही। इस दोषको मिटानेके लिये न्यास सर्वश्रेष्ठ उपाय है। शरीरके प्रत्येक अवयवमें जो क्रियाशक्ति मूर्च्छित है, उसको जगानेके लिये न्यास अमोघ ओषधि है।

न्यास कई प्रकारके होते हैं *मातृकान्यास*, मन्त्रन्यास आदि। मातृकान्यास स्वर और वर्णोंका होता है। मन्त्रन्यास पूरे मन्त्रका, मन्त्रके पदोंका, मन्त्रके एक-एक अक्षरका और एक साथ ही सब प्रकारका होता है। देवतान्यास शरीरके बाह्य और आभ्यन्तर अङ्गोंमें अपने इष्टदेव अथवा अन्य देवताओंके यथास्थान न्यासको कहते हैं। तत्त्व-न्यास वह है जिसमें संसार-कारणके रूपमें परिणत और इनसे परे रहनेवाले तत्त्वोंका शरीरमें यथास्थान न्यास किया जाता है। यही पीठन्यास भी है। जो हाथोंकी सब अँगुलियोंमें तथा करतल और करपृष्ठमें किया जाता है वह करन्यास है। जो त्रिनेत्रदेवताओंके प्रसंगमें षडङ्ग और अन्य देवताओंके प्रसङ्गमें पञ्चाङ्ग होता है, उसे अङ्गन्यास कहते हैं। जो ि अङ्गका स्पर्श किये बिना सर्वाङ्गमें मन्त्र-न्यास किया वह व्यापकन्यास कहलाता है। ऋष्यादिन्यासके छः ः हैं—सिरमें ऋषि, मुखमें छन्द, हृदयमें देवता, गुह्य बीज, पैरोंमें शक्ति और सर्वाङ्गमें कीलक। इसके अ महाषोढा आदि अन्य भी बहुत-से न्यास हैं।

न्यास चार प्रकारसे किये जाते हैं। मनसे ः स्थानोंमें देवता, *मन्त्र, वर्ण, तत्त्व आदिकी स्थितिकी भाव* जाती है। *अन्तर्न्यास* केवल मनसे ही होता है। बा केवल मनसे भी होता है और उन-उन स्थानोंके स्पर्शसे स्पर्श दो प्रकारसे किया जाता है—किसी पुष्पसे अ अँगुलियोंसे। अँगुलियोंका प्रयोग दो प्रकारसे होता है— तो अङ्गुष्ठ और अनामिकाको मिलाकर सब अङ्गोंका किया जाता है और दूसरा भिन्न-भिन्न अङ्गोंके स्पर्शके भिन्न-भिन्न अँगुलियोंका प्रयोग किया जाता है। ि अँगुलियोंके द्वारा न्यास करनेका क्रम इस प्रकार मध्यमा, अनामिका और तर्जनीसे हृदय, मध्यमा और त सिर, अँगूठेसे शिखा, दस अँगुलियोंसे कवच, तर्जनी, म और अनामिकासे नेत्र, तर्जनी और मध्यमासे करतल-क न्यास करना चाहिये। यदि देवता त्रिनेत्र हो तो तर्जनी, म और अनामिकासे और द्विनेत्र हो तो मध्यमा और त नेत्रमें न्यास करना चाहिये। त्रिनेत्र देवताकी उपा पञ्चाङ्गन्यास नेत्रको छोड़कर होता है। वैष्णवोंके लिये इ क्रम भिन्न प्रकारका है। ऐसा कहा गया है कि अँग छोड़कर सीधी अँगुलियोंसे हृदय और मस्तकमें न्यास

चाहिये। अँगूठेको अंदर करके मुट्ठी बाँधकर शिखाका स्पर्श करना चाहिये। सब अँगुलियोंसे कवच, तर्जनी और मध्यमासे नेत्र, नाराचमुद्रासे दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर अँगूठे और तर्जनीके द्वारा मस्तकके चारों ओर करतलध्वनि करनी चाहिये। कहीं-कहीं अङ्गन्यासका मन्त्र नहीं मिलता, ऐसे स्थानमें देवताके नामके पहले अक्षरसे अङ्गन्यास करना चाहिये

शास्त्रमें यह बात बहुत जोर देकर कही गयी है कि केवल न्यासके द्वारा ही देवत्वकी प्राप्ति और मन्त्रसिद्धि हो जाती है। 'हमारे भीतर-बाहर, अङ्ग-प्रत्यङ्गमें देवताका निवास है, हमारा अन्तःस्थल और बाह्य शरीर दिव्य हो गया है'—इस भावनासे ही उत्साह, अद्भुत स्फूर्ति और नवीन चेतनाका जागरण अनुभव होने लगता है। जब न्यास सिद्ध हो जाता है, तब तो भावनासे एकत्व स्वयंसिद्ध है। न्यासका कवच पहन लेनेपर कोई भी आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक विघ्न पास नहीं आ सकते, जब कि बिना न्यासके जप-ध्यान आदि करनेपर अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। प्रत्येक मन्त्रके, प्रत्येक पदके और प्रत्येक अक्षरके अलग-अलग ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और कीलक होते हैं। मन्त्रसिद्धिके लिये इनके ज्ञान, प्रसाद और सहायताकी अपेक्षा होती है। जिस ऋषिने मन्त्रका साक्षात्कार—पहले-पहल उस मन्त्रकी साधना की थी, वह उसका ऋषि है। वह गुरुस्थानीय होनेके कारण मस्तकमें स्थान पाने योग्य है। मन्त्रके स्वर-वर्णोंकी विशिष्ट गति, जिसके द्वारा मन्त्रार्थ और मन्त्रतत्त्व आच्छादित रहते हैं और जिसका उच्चारण मुखके द्वारा होता है, वह छन्द है और वह मुखसे ही स्थान पानेका अधिकारी है। मन्त्रका देवता जो अपने हृदयका धन है, जीवनका संचालक है, समस्त भावोंका प्रेरक है, हृदयका अधिकारी है, हृदयमें ही उसके न्यासका स्थान है। इस प्रकार जितने भी न्यास हैं, सबका एक विज्ञान है और यदि ये न्यास किये जायँ तो शरीर और अन्तःकरणको दिव्य बनाकर स्वयं ही अपनी महिमाका अनुभव करा देते हैं। यहाँ संक्षेपसे कुछ न्यासोंका विवरण दिया जाता है—

मातृकान्यास

ॐ अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः क्लीं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः।

—यह विनियोग पढ़कर जल छोड़ दे और ऋष्यादिका न्यास करे। सिरमें—'**ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः**' शिरसि। मुखमें—'**ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः**' मुखे। हृदयमें—'**ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः**' हृदये। गुह्यस्थानमें—'**ॐ हलेभ्यो बीजेभ्यो नमः**' गुह्ये। पैरोंमें—'**ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः**' पादयोः। सर्वाङ्गमें—'**ॐ क्लीं कीलकाय नमः**' सर्वाङ्गे। इसके पश्चात् करन्यास करे—

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं **मध्यमाभ्यां वषट्।**
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं **अनामिकाभ्यां हुम्।**
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः **करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।**

इसके अनन्तर इस प्रकार अङ्गन्यास करे—

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्।

इस अङ्गन्यासके पश्चात् अन्तर्मातृकान्यास करना चाहिये। शरीरमें छः चक्र हैं, उनमें जितने दल होते हैं, उतने ही अक्षरोंका न्यास किया जाता है। इसकी प्रक्रिया सम्प्रदायानुसार भिन्न-भिन्न है। यहाँ वैष्णवोंकी प्रणाली लिखी जाती है।

उपस्थ और जननेन्द्रियके बीचमें सिवनीके पास पद्माकार मूलाधारचक्र है। इसका वर्ण सोनेका-सा है और उसमें चार दल हैं। उन चारों दलोंपर प्रणवके साथ इन अक्षरोंका न्यास करना चाहिये—'**ॐ वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः।**' जननेन्द्रियके मूलमें विद्युत्के समान षड्दल स्वाधिष्ठान-कमल है, उसके छः दलोंपर प्रणवके साथ इन अक्षरोंका न्यास करना चाहिये—'**ॐ बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः।**' नाभिके मूलमें नील मेघके समान दशदलयुक्त मणिपूरक चक्र है, उसमें इन वर्णोंका न्यास

अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥
(शारदातिलक ६।३३)

'जो अपने चार कर-कमलोंमें सदा रुद्राक्षकी माला, हरिणशावक, पत्थर फोड़नेकी तीखी टाँकी और पुस्तक लिये रहती हैं, जिनकें तीन आँखें हैं और मुकुटपर अर्ध चन्द्रमा है, शरीरका रंग लाल है, जो कमलपर बैठी हुई हैं तथा स्तनोंके भारसे झुकी हुई हैं, उन वर्णेश्वरीको नमस्कार करें।'

संहारमातृकान्यासके सम्बन्धमें कुछ लोगोंकी ऐसी सम्मति है कि यह केवल संन्यासियोंको ही करना चाहिये। बाह्यमातृकान्यासमें अक्षरोंका उच्चारण इस प्रकारसे किया जा सकता है। केवल विन्दुयुक्त अक्षर, सविसर्ग अक्षर और विन्दु-विसर्गयुक्त अक्षर। विशिष्ट कामनाओंके अनुरूप इनकी व्यवस्था है। इन अक्षरोंके पूर्व बीजाक्षर भी जोड़े जाते हैं। वाक्‌सिद्धिके लिये **'ऐं,'** श्रीवृद्धिके लिये **'श्रीं'**, सर्वसिद्धिके लिये **'नमः'**, वशीकरणके लिये **'क्लीं'** और मन्त्रप्रसादनके लिये **'अः'** जोड़ा जाता है। मन्त्रशास्त्रमें ऐसा कहा गया कि मातृकान्यासके बिना मन्त्रसिद्धि अत्यन्त कठिन है।

पीठन्यास

देवताके निवासयोग्य स्थानको 'पीठ' कहते हैं। जैसे कामाख्यादि स्थानविशेष पीठके नामसे प्रसिद्ध है, जैसे बाह्य आसनविशेष शास्त्रीय विधिके अनुष्ठानसे पीठके रूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही पीठन्यासके प्रयोगसे साधकका शरीर और अन्तःकरण शुद्ध होकर देवताके निवास करने योग्य पीठ बन जाता है। लोकमें जो दो प्रकारके पीठ प्रचलित हैं—समन्त्रक और अमन्त्रक, उन दोनोंकी अपेक्षा यह पीठन्यास उत्तम है, क्योंकि इसमें बाह्य आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। यह साधकके शरीरमें ही मन्त्रशक्ति, भावशक्ति, प्राणशक्ति और अचिन्त्य दैवीशक्तिके सम्मिश्रणसे उत्पन्न हो जाता है। विचारदृष्टिसे देखा जाय तो पीठन्यासमें जितने तत्त्वोंका न्यास किया जाता है, वे प्रत्येक शरीरमें पहलेसे ही विद्यमान हैं। स्मृति और मन्त्रके द्वारा उन्हें अव्यक्तसे व्यक्त किया जाता है, उनके सूक्ष्मरूपको स्थूलरूपमें लाया जाता है। यह सृष्टिक्रमके इतिहासके सर्वथा अनुकूल है और यह साधकको देवताका पीठ बना देनेमें समर्थ है। इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रकारसे होता है—

प्रत्येक चतुर्थ्यन्त पदके साथ जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है, पहले **'ॐ'** और पीछे **'नमः'** जोड़कर यथास्थान न्यास करना चाहिये—जैसे **'ॐ आधारशक्तये नमः।'** इसी प्रकार क्रमशः सबके साथ **'ॐ'** और **'नमः'** जोड़कर न्यास करनेका विधान है। हृदयमें—'**आधारशक्तये, प्रकृत्यै, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय।**' दाहिने कन्धेपर—**'धर्माय'**, बायें कन्धेपर **'ज्ञानाय'**, बायें ऊरुपर—**'वैराग्याय'**, दाहिने ऊरुपर—**'ऐश्वर्याय'**, मुखपर—**'अधर्माय'**, बायें पार्श्वमें **'अज्ञानाय'**, नाभिमें—**'अवैराग्याय'**, दाहिने पार्श्वमें—**'अनैश्वर्याय।'**

फिर हृदयमें—'**अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय, द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने।**' सबके साथ पहले **'ॐ'** और पीछे **'नमः'** जोड़कर न्यास कर लेनेके पश्चात् हृदयकमलके पूर्वादि केसरोंपर इष्टदेवताकी पद्धतिके अनुसार पीठशक्तियोंका न्यास करना चाहिये। उनके बीचमें इष्टदेवताका मन्त्र जो कि इष्टदेवस्वरूप ही है, स्थापित करना चाहिये। इस न्याससे साधकके हृदयमें ऐसा पीठ उत्पन्न हो जाता है जो अपने देवताको आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

इन न्यासोंके अतिरिक्त और भी बहुत-से न्यास हैं, जिनका वर्णन उन-उन मन्त्रोंके प्रसंगमें आता है। वैष्णवोंका एक केशवकीर्त्यादिन्यास है, उसमें भगवान्‌की केशव, नारायण, माधव आदि मूर्तियोंको उनकी शक्तियोंके साथ शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें स्थापित करके ध्यान किया जाता है। उस न्यासके फलमें कहा जाता है कि यह न्यास प्रयोग करनेमात्रसे साधकको भगवान्‌के समान बना देता है। वास्तवमें न्यासोंमें ऐसी ही शक्ति है।

न्यासके प्रकार-भेदोंकी चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सृष्टिके गम्भीर रहस्योंकी दृष्टिसे न्यास भी एक अतुलनीय साधन है। वर्णोंके न्याससे वर्णमयी सृष्टिका

ध्यानसे इनका वास्तविक रूप जो कि दिव्य है, दृष्टिगोचर हो जाता है और फिर तो सर्वत्र दिव्यता-ही-दिव्यता छा जाती है। समस्त नाम-रूपात्मक जगत्में अव्यक्तरूपसे रहनेवाली दिव्यताको व्यक्त करनेके लिये वर्णन्यास अथवा मन्त्रन्यास सर्वोत्तम साधनोंमेंसे एक है।

पीठन्यास, योगपीठन्यास अथवा तत्त्वन्यासके द्वारा भी हम उसी परिणामपर पहुँचते हैं, जो साधनाका अन्तिम लक्ष्य होना चाहिये। अधिष्ठान-परब्रह्ममें आधारशक्ति, प्रकृति एवं क्रमशः सम्पूर्ण सृष्टि स्थित है। क्षीरसागरमें मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, रत्नसिंहासन आदिकी भावना करते-करते अन्तःकरण सर्वथा अन्तर्मुख हो जाता है और इष्टदेवताका ध्यान करते-करते समाधि लग जाती है। एक ओर तो उस सृष्टिक्रमका ज्ञान होनेसे बुद्धि अधिष्ठान-तत्त्वकी ओर अग्रसर सशक्तिक देवताका न्यास कर लिया जाता है, तो मनको इतः अवकाश ही नहीं मिलता और इससे मधुर अन्यत्र कहीं स्था नहीं मिलता कि वह और कहीं बाहर जाय। शरीरवे रोम-रोममें देवता, अणु-अणुमें देवता हैं। यह शरीर देवतामय है। ऐसी स्थितिमें यह मन भी दिव्य हो जाता है। जडतावे चिन्तनमें और अपनी जडतासे यह संसार मनको जडरूपमें प्रतीत होता है। इसका वास्तविक स्वरूप तो चिन्मय है ही, यह चिन्मयी लीला है। जब चिन्मयके ध्यानसे इसकी जडता निवृत्त हो जाती है, तो सब चिन्मयके रूपमें ही होने लगता है। जब इसकी चिन्मयताका बोध हो जाता है, तब अन्तर्देशमें रहनेवाला निगूढ़ चैतन्य भी इस चिन्मयसे एक हो जाता है और केवल चैतन्य-ही-चैतन्य अवशेष रहता है।

कल्याण-प्राप्तिके लिये देव-पूजन आवश्यक है

देवाधीनाः प्रजाः सर्वा देवायत्तमिदं जगत्। सुखदुःखे मानुषाणां देवायत्ते तथैव च॥
देवैर्विहितमश्नन्ति मनुष्यास्तु शुभाशुभम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवपूजापरो भवेत्॥
देवाश्च भक्त्या तुष्यन्ति श्रद्धया परया तथा। पूजिता शुचिना चैव देवास्तुष्यन्ति नान्यथा॥
देवशुश्रूषया स्वर्गो देवशुश्रूषया सुखम्। देवशुश्रूषया राज्यं मोक्षं चाप्यथ प्राप्यते॥
देवताः कामयन्तीह तथा भक्तं जनं सदा। भक्तानुकम्पिनो देवाः परत्रेह तथा ध्रुवम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर पु० ३। २८८। १-५)

'समस्त प्रजाएँ देवताओंके अधीन होती हैं, क्योंकि यह सारा जगत् देवाधीन है। मनुष्यके सुख और दुःखकी उपलब्धि भी देवताओंके अधीन ही होती है। देवताओंके विधानसे ही मनुष्य अपने शुभ और अशुभ कर्मोंको भोगता है, इसलिये हर प्रकारसे विशेष चेष्टा करके देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। पवित्रतापूर्वक परम श्रद्धा एवं भक्तिके साथ पूजा करनेपर ही देवता प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। देवताओंकी शुश्रूषासे ही शाश्वत सुख एवं राज्य तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है। देवता भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले होते हैं, इसीलिये वे अपने उपासकोंके ऐहिक और पारलौकिक कल्याण-प्राप्तिके लिये निरन्तर सचेष्ट रहते हैं।'

देवता-तत्त्व-विमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित पूर्वाम्नाय गोवर्धन-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

'देवता'में देव-शब्दघटक सभी धात्वर्थ-समाविष्ट— **'देवृ देवने'**, **'दिवि प्रीणने'**, **'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहार-द्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'**, **'दिवु परिकूजने'**— इत्यादि धातुओंसे **'पचाद्यच्'** प्रत्यय होकर 'देव' शब्द बनता है। फिर उससे भाव-अर्थमें 'तल्' प्रत्यय होकर 'देवता' शब्द बनता है। इसमें देवताशब्दघटक सभी धातुओंके अर्थोंका पूर्णतया समावेश संनिहित है। प्रसन्न करना, प्रकाश करना, खेलना, विजयकी इच्छा—ये सब देवता-तत्त्वमें विद्यमान हैं।

अग्नि, वायु आदि चराचर जीवोंके अस्तित्व-प्रदायक, पोषक और परम उपकारक श्रुतिसम्मत देवता—**'अग्निर्देवता, वातो देवता'** आदि शुक्लयजुर्वेद वाजसनेय माध्यन्दिनसंहिताके इस प्रसिद्ध मन्त्रमें गिनाये गये हैं। मन्त्रका सीधा-सीधा स्पष्ट अर्थ है—'अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता हैं।' लौकिक व्यवहारमें भी 'जिसके द्वारा उपकार हो, वह देवता माना जाता है।' देवता शब्दका यह निर्विवाद अर्थ है।

अग्नि, वायु आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिनके द्वारा सूकर-कूकर-कीट-पतङ्ग-वृक्ष-लता-गुल्म आदि जड-चेतन (चर-अचर, स्थावर-जङ्गम)—जीवोंका ऐसा उपकार होता है, जैसा अन्य किसीके द्वारा हो ही नहीं सकता। अग्नि, वायु, सूर्य आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिनके बिना कोई जड-चेतन (प्राणी) जी नहीं सकता। इतना ही नहीं, व्यावहारिक उपकार भी इनसे इतना अधिक होता है कि दूसरे किसीसे हो नहीं सकता। अग्नि, वायु आदि ही मनुष्य, पशु, पक्षी आदिको खेतोंमें अन्न, घास, चारा इत्यादि पकाकर देते हैं। फिर चूल्हेमें भी ये ही अन्न पकाकर देते हैं। पेटमें जानेके बाद भी आमाशय और पक्वाशयके बीचमें स्थित भगवद्विभूति वैश्वानर—जठराग्नि अन्नको पकाता है। इसीसे सम्पूर्ण जीवोंका अस्तित्व बना रहता है। फिर सीधे-सीधे सम्पूर्ण जीवोंके परम उपकारक अग्नि आदि तत्त्वोंको देवता न मानकर बिना लक्षणाके कारणोंसे (तात्पर्यानुपपत्ति, अन्वयानुपपत्ति) मन्त्रका लक्ष्यार्थ करना कहाँकी बुद्धिमानी है?

परमदेव ईश्वर और उससे नियन्त्रित अग्नि आदिके आधिभौतिकादि त्रिविध रूप

भारतीय धर्म, दर्शनके अनुसार प्रत्येक तत्त्वके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूप होते हैं। ऊपर दिखाया गया अग्निदेवका भौतिक स्वरूप ही इतना अधिक शक्तिशाली है कि वह चाहे तो त्रिलोकीको भस्म कर दे। साधारण अग्निकाण्डोंमें मिल, बैंक, फैक्ट्री, बाजार, गाँव आदि भस्म हो जाते हैं। आध्यात्मिक अग्निरूप बुद्धि, उदान, चक्षु (नेत्र) और पाद (पाँव) का अद्भुत महत्त्व सर्वलोक-प्रसिद्ध ही है—

'बुद्धिरुदानयोगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादाधिष्ठितोऽग्नौ तिष्ठत्यग्निस्तिष्ठति' (त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्)।

आधिभौतिक (और आध्यात्मिक) अग्निकी अद्भुत शक्तिपर नियन्त्रण करनेके लिये ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने आधिदैविक अग्नि नामक देवताको नियुक्त किया है। भगवान्‌की इच्छाके बिना वह देव और उसकी शक्ति कुछ भी नहीं कर सकते। यही स्थिति वायु आदिकी भी समझने योग्य है। भगवत्कृपासे ऋतम्भरा-प्रज्ञा-प्राप्त ऋषि-मुनियोंने इस रहस्यको वेद-मन्त्रोंके द्वारा अवगत किया। उपनिषदोंमें स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि ईश्वरसे नियन्त्रित अनन्तानन्त शक्तिसम्पन्न अग्नि, वायु, सूर्य आदि तत्त्व अपना काम करते हैं और अपनी संहारशक्तिको बढ़ने नहीं देते—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

(कठ० २। ३। ३)

मन्त्रातिरिक्त मन्त्रसिद्ध देवता और मन्त्रविनियोगकी प्रशस्त परम्परा

महर्षि पाणिनिद्वारा निर्दिष्ट धात्वर्थसम्पन्न अग्नि, वायु आदि तत्त्वोंके स्वरूपोंका ही वेदार्थनिर्वचन करनेवाले निरुक्तने भी समर्थन किया है। निरुक्तके देवतातत्त्वप्रतिपादक उत्तर-षट्कके सप्तम अध्यायके प्रथम पादमें यह स्पष्ट कहा गया

होगा। क्योंकि इन सबने विभिन्न शरीरधारी देवताओंकी सत्ता मानकर उनकी पूजा करनेका आदेश दिया है और विभिन्न देवताओंकी विभिन्न पूजा-पद्धति बनायी है। विभिन्न देवताओंके स्वरूप ही कवियों, कलाकारोंके एकमात्र आधार हैं। यदि शरीरधारी देवता न होते तो कवि, कलाकार, वास्तुकार, द्योकार, रजतकार, हेमकार आदिकी कलाओंकी आभा, शोभा, प्रभा, कान्ति, द्युति, छवि देखनेको संसारमें किसीको नहीं मिलती।

देवताधिकरणन्यायसे विग्रहवती देवताओंकी सिद्धि

प्रायः सभी दार्शनिक देवता-तत्त्वको शरीरधारी मानते हैं। केवल एक पूर्वमीमांसक दार्शनिक दृष्टिसे देवताओंका शरीर नहीं मानते, किंतु देवताओंका आकार वे भी मानते हैं। प्राभाकर गुरुमतमें देवताओंको मन्त्रमयी (शब्दमयी) मानते हैं। अक्षररूप होनेके कारण मन्त्र साकार हैं ही। भाट्ट मीमांसकोंका कहना है कि अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवताओंको शरीरधारी माननेपर उन्हें एकदेशीय मानना पड़ेगा और वे एक ही समयमें अनेक यजमानोंद्वारा किये जानेवाले सब यज्ञोंमें अपने भाग लेने नहीं जा सकेंगे। इसलिये उन्हें सूक्ष्मरूप मानना चाहिये। किंतु भगवान्‌के ज्ञानावतार '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' माननेवाले अद्वैतवीथिपथिकोंके परमाचार्य श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने अपने वेदान्त (अद्वैत) दर्शन—उत्तरमीमांसामें एक स्वतन्त्र देवताधिकरणके द्वारा देवताओंको विग्रहवती (शरीरधारी) माना है। उन्होंने पूर्वमीमांसकोंके तर्कका उत्तर देते हुए कहा है कि इन्द्रादि देवता अपनी आजान (जन्मजात) सिद्धियोंके द्वारा एक ही समयमें अनेक शरीर बनाकर यजमानोंके यहाँ पहुँच सकते हैं। जब साधारण योगी योगबलसे एक समयमें अनेक शरीर बना सकता है तो जन्मसे ही सिद्धि-प्राप्त तथा तपस्याद्वारा परिवर्धित सिद्धियोंके द्वारा देवता एक समयमें अनेक शरीर क्यों नहीं बना सकते? देवताओंको देहधारी न माननेपर वेदान्तसूत्रोंके रचयिता व्यासजीका देवताधिकरण-निर्माण ही व्यर्थ हो जायगा। भगवत्पाद शंकराचार्य, सर्वश्रीवल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि जीव, प्रकृति और परमेश्वरके सम्बन्धमें विरुद्ध मत रखनेवाले आचार्योंने भी भगवान् व्यासजीके 'देवताधिकरण' का तात्पर्य विग्रहवती शरीरधारी देवताओंके अस्तित्व-प्रतिपादनमें ही माना है।

विधिवत् देवोपासनासे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति

वैदिक वर्णाश्रमानुसारी हिन्दुओंके तैंतीस करोड़ देवता हैं। इनमें छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सब देवता आ गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तो क्या इन्हींके अनेक अवतार भैरव, मातृका, चामुण्डा आदि भी वस्तुतः देवता हैं ही। बड़े देवताओंकी विधिवत् उपासनासे जो फल मिलता है, इस घोर कलिकालमें भैरवादि देवताओंकी उपासनासे भी वही (मनोवाञ्छित) फल मिलता है।

यह बात दूसरी है कि इसमें आजकल कुछ पाखण्ड भी आ गया है। मनुष्य भी अपने-आपको देवता कहने लग गये हैं। और नहीं तो कम-से-कम अपने-आपमें देवताका आना कहकर लोगोंको वञ्चित भी किया जाता है। इसकी सीधी-सी पहचान है कि अपवित्र लोगोंमें देवता कभी नहीं आ सकते। अपवित्र अवस्थामें देवताओंकी पूजा भी नहीं हो सकती, फिर अपवित्र शरीरमें देवता आ भी कहाँसे जायँगे? देवताके समान पहले अपने-आपको पवित्र बनाकर देवताओंकी उपासना, ध्यान, पूजन, भजन आदि करना चाहिये। धर्मसम्राट् (श्रीस्वामी करपात्रीजी) कहा करते थे कि 'अपनेसे कुछ ही ऊँचे आदमीके सामने मनुष्य कितनी सावधानीसे बैठता है, फिर देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये कितनी सावधानीकी आवश्यकता होगी।' इसलिये पूजाके पहले अधिकारानुसार संध्या, गायत्री, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अङ्गन्यास, करन्यास, अन्तर्याग, बहिर्याग आदिका विधान किया गया है। इसके बाद देवताओंकी देवोपचार, राजोपचार, षोडशोपचार-पूजा शक्तिके अनुसार अवश्य करनी चाहिये। विधिपूर्वक पूजा करनेसे फल अवश्य मिलता है। इसीलिये भगवान् आद्य-शंकराचार्य-जैसे अद्वैतवादी भी सब देवताओंकी पूजा करते हैं। उनके बनाये हुए शिव, विष्णु, दुर्गा, राम, कृष्ण आदिके स्तोत्र तो प्रसिद्ध हैं ही, पुरीके भगवान् जगन्नाथ और काशीके कोतवाल कालभैरवतकके स्तोत्र भी विद्यमान हैं।

हमारे यहाँ तो गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों, हिमाचल, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंको सगुण-साकार देवता मानकर उनकी संतानोंका भी वर्णन किया है। भगवती भास्वती पार्वती हिमालयकी पुत्री हैं। कविकुलगुरु कालिदासने हिमालयको देवतात्मा लिखा है। भीष्मपितामह कलकल-निनादिनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी (गङ्गा) के पुत्र हैं। इसलिये उनका गाङ्गेय नाम प्रसिद्ध है। ये सब कथाएँ पञ्चम-वेदकी गणनामें आनेवाले रामायण और महाभारतमें लिखी हैं। सामवेदीय छान्दोग्य श्रुति कहती है—'**इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**' (७।१।१)। ब्राह्मणभागमें ही नहीं, अपितु अथर्ववेदके मन्त्रभागमें भी इतिहासपुराणका उल्लेख है। अथर्ववेदके मन्त्रमें तो पुराणको प्रधान और वेदको स्पष्टरूपसे अप्रधान कहा गया है—'**ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।**' इस मन्त्रमें वेदवाचक '**यजुषा**' शब्दमें '**सहयुक्तेऽप्रधाने**' इस पाणिनिसूत्रसे अप्रधान अर्थमें तृतीया हुई है।

चतुर्विध, दशविध चमत्कारी देवप्रभेद

इन देवताओंमें जातियाँ भी हैं। देवताओंकी जातियोंका उल्लेख भी ब्राह्मण-भागमें है। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि नियन्त्रण और शासनशक्तिवाले देवताओंको क्षत्रिय जातिके देवता, अग्निको ब्राह्मण जातिका देवता, धनके अधिष्ठाता अष्ट वसु देवताओंको वैश्य जातिके देवता और पूषाको शूद्र जातिका देवता कहा गया है। वेदके मन्त्र-भागमें भी चन्द्रमाको ब्राह्मण जातिका देवता कहा गया है—

दस प्रकारकी देवजातियाँ कोशकारोंको मान्य हैं। भूत, पिशाच आदिकी सत्तापर आजकलके कुछ लोग भले विश्वास न करें, किंतु अब पाश्चात्त्य देशोंके अच्छे-[illegible] भवनों, कार्यालयों तथा फैक्टरियोंमें नाना प्रकारके उत्पा[illegible] लगे हैं। बहुत खोज-बीन करनेपर भी जब उनके कार[illegible] पता नहीं लगता, तब बाध्य होकर पाश्चात्त्य वैज्ञानिकों[illegible] पेरासाइक्लोजिकल रिसर्च (पराविज्ञान) की ओर अ[illegible] होना पड़ रहा है। प्रतिवर्ष भारतके कोने-कोनेसे भी चमत्कारकी सत्य घटनाएँ मिलती रहती हैं।

प्रेरणा

गणेश, रमेश, महेश आदि असंख्य वैदिक देवता[illegible] ही चमत्कार उपलब्ध होते हों, इतना ही नहीं, अ[illegible] आजकलके कुछ संतोषी माता-जैसे देवता भी अपने भक्त[illegible] मनोवाञ्छित फल देते हैं। इसलिये उनके हजारों नये म[illegible] बन रहे हैं। मन्दिर और मूर्तिपूजाके विरोधियोंद्वारा आसमा[illegible] सिरपर उठाये जानेके बावजूद हजारों पुराने देवताअ[illegible] मन्दिरोंका निर्माण तो हो ही रहा है, साथ ही ग्रन्थोंके भी म[illegible] बन रहे हैं। अब भारतमें मानस-मन्दिर, गीता-मन[illegible] भागवत-मन्दिर बनते चले जा रहे हैं। पर कष्ट इस बातक[illegible] कि पुराने मन्दिरोंकी अवहेलना ही नहीं घोर दुर्दशा हो रही [illegible] देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि वे नये मन्दिर बनानेकी अप[illegible] पुराने मन्दिरोंके जीर्णोद्धारकी ओर विशेष ध्यान दें। शास[illegible] मन्दिरोंके जीर्णोद्धारका महत्त्व बहुत अधिक है।

प्रेषक—ब्रह्मचारी सर्वेश्वर चै[illegible]

देवगणोंके द्वारा रास-दर्शन

सुरगन चढ़ि बिमान नभ देखत।
ललना सहित सुमन गन बरसत, धन्य जन्म-ब्रज लेखत॥
धनि ब्रज-लोग, धन्य ब्रज-बाला, बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीबट, धनि जमुना-तट, धनि धनि लता तमाल॥
सब तैं धन्य-धन्य बृंदावन, जहाँ कृष्ण कौ बास।
धनि-धनि सूरदास के स्वामी, अद्भुत राच्यौ रास॥

भक्तोंके मनमें तो पहलेसे ही भावप्रवणता होती है, अतः उनकी उपासना सहज एवं सरल होती है; वह अबाध-रूपसे सरिताकी प्रबल धाराकी तरह निरन्तर अपने इष्टकी ओर बहती रहती है। किंतु साधक भक्तके मनमें भावप्रवणता पूर्णरूपसे विकसित नहीं होती, प्रज्वलित अग्निके समान उसका रूप नहीं होता। उसका रूप किसीके मनमें धूमकी तरह, किसीके मनमें चिनगारीकी तरह एवं किसी-किसीके मनमें अङ्गारकी तरह होता है। इसका एकमात्र कारण नाना जन्मोंके संचित संस्कार ही होते हैं। सिद्ध भक्तों—रसिकोंके सत्सङ्गसे उनके मनमें भी भावप्रणता धीरे-धीरे उसी तरह प्रज्वलित पावकका रूप धारण कर सकती है। अतः किसी कोटिके साधकको भी निराशाका भाव मनमें नहीं लाना चाहिये। रुचि हो या न हो, अपनी साधनामें लगे ही रहना चाहिये। अभ्याससे क्या असम्भव है? सभी सिद्धियोंका एकमात्र कारण अभ्यास ही है—'**अभ्यासः सर्वसाधनम्।**'

देवोपासनाकी आवश्यकता

कुछ लोगोंके मनमें यह शङ्का होती है कि हम देवोपासना क्यों करें, क्यों बेकारकी खटपटमें पड़ें? हमारे जीवनमें उपासनाकी क्या आवश्यकता है? यह तो बेकार लोगोंका काम है, एकमात्र आडम्बर है। भूख मिटानेको भोजनकी, प्यास मिटानेको पानीकी, श्रम दूर करनेके लिये सोनेकी एवं वंशपरम्परा-संचालनके लिये कलत्रकी हमें आवश्यकता होती है। इन सबके लिये धनकी भी परम आवश्यकता है, जो इनका मूल कारण है, पर उपासनाका हमारे जीवनमें क्या उपयोग है?

इसके उत्तरमें हमारा उनसे नम्र निवेदन है कि आपलोगोंकी यह धारणा अविचारमूलक है। गम्भीरतासे विचार करके देखेंगे तो आपको पता चल जायगा कि उसका स्थायी प्रसादन, आराधन, रञ्जन, नाटक-सिनेमा-रेडियो-रंग-रागादि लौकिक उपायोंसे असम्भव है। क्षणमात्रका मनोरञ्जन अन्तमें कभी-कभी भारी अशान्तिके गर्तमें गिरा देता है और जब सूक्ष्म ही अशान्त रहेगा तो आप इस स्थूल देहको भोजनादिसे भी पुष्ट एवं तुष्ट नहीं कर सकते। पक्षान्तरमें यदि सूक्ष्मदेहकी तुष्टि बनी रही तो अल्प भोजन या अभोजनसे भी स्थूल देह रह सकता है। देवहूतिजीकी तपश्चर्याके प्रसङ्गमें इसका प्रमाण देखिये—

तद्देहः परतःपोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात्।

(श्रीमद्भा० ३। ३३। २८)

श्रीदेवहूतिजीके मनमें कोई चिन्ता न रहनेसे उनका शरीर, परिचारिका-वर्गसे पोषण पानेपर भी कृश नहीं पड़ा, क्योंकि उनके मनमें आराधनाकी प्रसन्नता भरी रहती थी तथा महाराज परीक्षित्के प्रसङ्गमें—

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १। १३)

(परीक्षित्जीने कहा—हे देव!) 'आपके मुखचन्द्रसे निस्सृत हरिकथामृतके पान करनेसे यह अत्यन्त दुस्सह क्षुधा जल छोड़ देनेपर भी मुझे नहीं सताती।'

अब विचार करें कि हमारे सूक्ष्मदेहमें—मनमें यह *अशान्ति, ये कामादि विकार* कहाँसे आये, जिनके निरसनके लिये तथा चिरशान्ति, अनन्त रसके पानेके लिये हमें उपासनाकी आवश्यकता हुई? तो विचारनेपर ज्ञात होगा कि जीवका स्वरूप वस्तुतः तो सच्चिदानन्द ही है, किंतु मायाके, प्रकृतिके संसर्गसे इसमें प्राकृत दोष भर गये हैं, जिससे यह सत् होनेपर भी असत्, चित् होनेपर भी जड एवं आनन्दरूप होनेपर भी अपनेको दुःखरूप समझने लगा। अतः प्रकृतिकी उपासनासे प्राप्त विकारोंकी मलिनताको दूर करनेके लिये

[illegible]ता, ऐसे ही जीव भी ईश्वरसे वियुक्त होकर मलिन एवं निस्तेज बन गया है, प्राकृत धर्मोंमें रच-पच गया है। इसका भी सम्मार्जन-संशोधन ईश्वरके सङ्गसे ही सम्भव है और उसके लिये उपासना ही एकमात्र सरल एवं सुगम मार्ग है। जैसे वरके बिना कन्या अनाथ, आश्रयहीन एवं पुत्रहीन होती है, वैसे ही ईश्वरके बिना जीव भी अनाथ, आश्रयवर्जित एवं सद्‌गुण-संतानसे विहीन है। ईश्वरके गुणोंके बिना कोई भी जीव अपनेको प्राकृत दोषोंसे नहीं बचा सकता। और यह नियम है कि जिसका हम चिन्तन करते हैं, जिससे प्रेम करते हैं, जिसे पाना चाहते हैं, हमारा मन बार-बार तदाकार होता रहता है। अतः उपासनासे हमारा मन जितने कालतक इष्टाकार रहेगा, उतने कालतक हम अनिष्टसे—प्राकृत दोषोंसे सर्वथा मुक्त रहेंगे। और जब धीरे-धीरे अभ्यास एवं प्रेमके बलसे मनकी निरन्तर इष्टाकारता बन जायगी तो हमें स्वप्नमें भी अनिष्टका स्पर्श नहीं होगा। हमारा आसन एवं शासन प्रकृतिके ऊपर हो जायगा। हमें चराचरमें इष्टके सिवा और कुछ नहीं दीखेगा। अनुकूल-प्रतिकूल सब उसीके खेल प्रतीत होंगे।

उपासनामें सहायक तत्त्व

अब थोड़ा उपासनाके सहायक तत्त्वोंपर भी ध्यान देना आवश्यक है, जिनके योगसे उपासना बलवती बनती है। उनमें चार बातें प्रधान हैं—

१-सात्त्विक आहार, २-सत्यभाषण, ३-संयम और ४-सत्सङ्ग।

(१) गृहस्थके लिये न्यायोपार्जित धनके द्वारा पवित्रतासे बना हुआ, अभक्ष्य एवं उत्तेजक पदार्थोंसे रहित परिमित भोजन ही 'सात्त्विक आहार' है तथा विरक्तके लिये भिक्षान्न ही अमृततुल्य माना गया है। भिक्षामें प्राप्त वर्जित पदार्थोंका परिहार तो उसे भी करना अभीष्ट है।

(२) वाणीद्वारा हित, मित एवं प्रियतासे भरा 'सत्य' ही सदा बोलना चाहिये।

(३) इन्द्रियों एवं मनपर नियन्त्रण रखना ही 'संयम' है। मन एवं सभी इन्द्रियोंका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें एक बड़ी सुन्दर कथा आती है—यशोदा मैयाने अपने स्नेहभाजन बालगोपालको दधिभाण्ड-स्फोटनके अपराधमें उदरमें दाम (रस्सी) लगाकर उलूखलसे बाँध दिया, तब उनका नाम 'दामोदर' पड़ा। अपनी स्नेहमयी जननीका दिया हुआ दाम तथा उसके द्वारा प्राप्त दामोदर नाम भगवान्‌को बड़ा प्रिय लगता है। इस लीलासे साधक भक्तोंको यह शिक्षा भी मिलती है कि भगवान्‌ने अपने उदरमें दाम लगाकर यह व्यक्त किया है कि जो साधक उदरोपलक्षित सब इन्द्रियोंपर संयमका दाम लगायेंगे, वे मेरे समान बनकर मुझे प्राप्त कर सकेंगे। यही अङ्गन्यास-करन्यासका तथा **'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'** आदि शास्त्रप्रतिपादित वाक्योंका भी रहस्य समझना चाहिये।

(४) *सर्वाधिक श्रेयस्कर एवं अमोघ सहायक तत्त्व* 'सत्सङ्ग' है। सत्सङ्गद्वारा साधकको उपासनाके विघ्नोंका पता चलता है एवं मनोविजयकी युक्तियाँ जाननेमें आती हैं। संतोंके द्वारा प्रतिपादित भगवान्‌के मङ्गलमय मधुरातिमधुर परम पावन चरित्र कर्णकुहरद्वारा अन्तस्तलमें जाकर भावाङ्कुरका उत्पादन करते हैं तथा संतोंके सांनिध्यसे उनके पवित्र भाव भी श्वास-प्रश्वासद्वारा हृदयमें जाकर वहाँ शोधनका काम करके प्रेमबीजका वपन करते हैं। कथा-उपदेश सुननेको न मिले तो भी उनकी संनिधि अनुपम निधि देनेवाली एवं सर्वतोभद्र होती है, किंतु सत्सङ्गका असली अर्थ तो है संतोंमें आसक्ति करना, उनके चरणोंमें प्रेम करना और उनका कोई दोष अपने मनमें धारण न करना। ऐसा करनेसे ही पूर्ण लाभ होता है। जबतक उनमें प्रेम न हो, तबतक उनका साहचर्य भी उत्तम है। साथ रहते-रहते भी किसी दिन उनकी महत्ताका ज्ञान होनेसे उनमें प्रेम हो ही जायगा। अतः प्रेम न हो तो भी उनका साथ कभी न छोड़े।

इन चारों साधनोंसे साधकका मन निर्मल एवं सबल होकर उपासनामें भली प्रकार प्रगति करता है, अतः इनकी

उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इन सब साधनोंको सद्गुरुसे दीक्षित एवं शिक्षित होकर ही करना चाहिये, यह बात ध्यानमें रखने योग्य है।

उपासनामें सफलता

उपासनामें सफलताके चार कारण होते हैं। इनमेंसे एक भी यदि साधकके जीवनमें आ जाय तो उपासना शीघ्र फलप्रसविनी होती है। वे चार ये हैं—

१-विश्वास, २-व्याकुलता, ३-संकल्पत्याग और ४-समता।

विश्वास—अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें स्वप्नमें भी कभी संदेह न होना ही 'विश्वास' है। विश्वाससे चित्तको बड़ा बल मिलता है। चित्त चिन्ताहीन होकर साधनामें लगा रहता है—***'कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।'***(मानस० ७।९०।८)।

व्याकुलता—'व्याकुलता' उसे कहते हैं, जब हम अपने लक्ष्यको पाये बिना पलभर भी कहीं चैनसे न रह सकें। लक्ष्यकी प्राप्तिके बिना संसार सूना-सूना दिखायी अवस्था मनकी बन जाय, तभी सिद्धि अविलम्ब मिलत

संकल्पत्याग—'संकल्पत्याग' उसे कहते हैं, जब साधक अभ्यासके द्वारा अपने मनमें अनुकूल-प्रतिकूल किसी प्रकारका संकल्प न उठने दे। चित्त सब प्रकारके चिन्तनसे मुक्त हो जाय। उस अवस्थामें चित्त ब्रह्मरूप ही हो जाता है। तब लक्ष्यके आकर्षणमें अवश्य सफलता मिलती है। इसका अभ्यास प्रायः ज्ञानी साधक करते हैं।

समता—'समता' उसे समझना चाहिये, जब साधक फलकी प्राप्ति या अप्राप्तिमें, शीघ्रतासे प्राप्ति या विलम्बसे प्राप्तिमें—दोनों दशाओंमें अपने चित्तको सम रखकर संतोषपूर्वक साधनमें ही लगा रहता है, तब उसे सिद्धि वरण कर लेती है, क्योंकि समता ईश्वरका ही रूप है। वह जिस हृदयमें आती है, वहाँ ईश्वरका प्रादुर्भाव भी असम्भव नहीं है।

प्रेषक —श्रीओंकारदत्तजी

योगिराज श्रीदेवराहाबाबाके अमृत वचन

करुणामय परमात्माकी ही भिन्न-भिन्न शक्तियोंको अलग-अलग देवोंके रूपमें हम जानते हैं। कल्याणकारी समस्त देवगण परमात्माके ही अङ्ग हैं। श्रुति कहती है—

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।

(यजुर्वेद ४०।१)

'अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत् है, वह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है।'

देवपूजन वस्तुतः भगवदाराधन ही है। हम अपने अभीष्टकी पूर्तिहेतु देवयजन करते हैं। यज्ञके द्वारा हम देवताओंको अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं और वे प्रसन्न होकर मेरी वाञ्छित सुखद अभिलाषाकी पूर्ति करते हैं। भगवती गीता कहती है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(३।१०-११)

इससे समस्त यज्ञ देवपूजाका पर्यायवाचक सिद्ध होता है। यज्ञके अधिष्ठाता देव साक्षात् नारायण भगवान् विष्णु हैं, ब्राह्मणभागात्मक वेदमें कहा गया है—

तद् यद् इदमाहुः। अमुं यज, अमुं यज इति एकैकं देवम् एतस्यैव सा विसृष्टिः, एष उ ह्येव सर्वे देवाः।

(शतपथ० १४।१।२।१२)

अर्थात् देवता परमात्माका ही विस्तार है और वह परमात्मा सर्वदेवमय है।

योगदर्शनमें बतलाया गया है कि प्रत्येक मन्त्रका एक अधिष्ठाता देवता होता है। मन्त्रके प्रीतिपूर्वक एकाग्रचित्तसे गम्भीर स्वाध्यायके द्वारा उसके इष्ट देवताका सांनिध्य प्राप्त होता है **'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।'** साधक भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त कर धन्य हो जाता है। साधक अपने आराध्यदेवतासे प्रार्थना करते हुए कहता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

(शु० य० सं० २५।२१)

'हे यजन करनेवाले यजमानोंके पालक देवताओ! दृढ़

आज सम्पूर्ण विश्वमें नास्तिकता संक्रामक रोगकी तरह अनुदिन फैलती जा रही है। सुख-शान्तिप्रदाता, सर्वाभीष्ट-दायक कल्याणकामी देवताओंके यजन-पूजनसे लोग विमुख

अस्तु, परमात्ममय देवोंकी आराधना, उपासना हमें निष्ठापूर्वक प्रतिदिन नियमतः करनी चाहिये। इसीमें व्यष्टि और समष्टिका कल्याण-साधन संनिहित है।

प्रेषक —श्रीमदनशर्मा शास्त्री 'मानस-किंकर'

भगवत्तत्त्व-मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

संस्कृत भाषामें देव और देवता पर्याय शब्द हैं। ये शब्द 'दिवु' धातुसे सिद्ध किये जाते हैं, इस धातुके अनेक अर्थोंमेंसे प्रथम अर्थ है क्रीडा[1]—खेल करना। अतः इस व्युत्पत्तिसे देव शब्दका अर्थ है खेलनेवाला। यह सारी सृष्टि भगवान्‌का एक खेल है। भगवत्पाद शंकराचार्यने 'शिवानन्दलहरी' में कहा है कि—

'क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जनाः।'

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'—इस सूत्रमें भगवान् वेद व्यासजीने कहा है कि जगत्सृष्टि भगवान्‌की क्रीडामात्र है। वास्तवमें देवता एक ही है, उसमें कोई भेद नहीं है। परंतु उपासकोंकी सुविधाके लिये वही भगवान् अनेक रूप ग्रहण करते हैं। भगवत्पाद शंकराचार्य अपने सूत्रभाष्यमें इसे स्पष्टरूपसे कहते हैं—

'स्यात्परमेश्वरस्यापीच्छावशान्मायामयं रूपं साधकानुग्रहार्थम्।'

परमात्मा वास्तवमें अशरीर हैं, परंतु वे देख सकते हैं, सुन सकते हैं और सब कुछ कर सकते हैं। भगवती श्रुति कहती है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

वैसे ही उनमें वास्तवमें कोई लिङ्ग नहीं, परंतु वह पुरुषरूप, स्त्रीरूप या कोई भी रूप अपनी मायाशक्तिसे स्वीकार कर सकते हैं।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः॥

परमात्मा सर्वव्यापी हैं। संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसमें परमात्मा न हों। इसीलिये गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।'

(१०।४२)

परमात्माकी उपासनासे ही मनुष्य श्रेय प्राप्त कर सकता है। उसमें सभीको अधिकार है—

'भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।'

भगवान्‌ने ही इस संसारकी सृष्टि की है, यह वेदोक्त सिद्धान्त है—**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।'**

परंतु यहाँ एक प्रश्न उठता है। यदि भगवान् ही सृष्टिकर्ता हैं तो कुछ लोगोंको सुखी और कुछ लोगोंको दुःखी क्यों बनाते हैं। क्या उनमें भी राग-द्वेष हैं? इसका समाधान करते हुए भगवान् वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रमें कहा है कि—

१-वस्तुतः धातुपाठमें द्योतित 'क्रीडा' का अभिप्राय द्यूतक्रीडासे माना गया है। इसलिये 'अक्षैर्दिव्यति' यही प्रयोग होता है। सभी क्रीडाओंमें प्रायः यह प्रयुज्य नहीं है।

'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति।'

(ब्रह्मसूत्र २।१।३४)

इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् जीवोंको जो सुख-दुःखका विधान करते हैं, वह सुख-दुःख उनके पूर्व-जन्मके कर्मानुसार ही करते हैं। उसमें भगवान्‌का कोई राग आदिका आग्रह नहीं है। जैसे एक न्यायालयमें अपराधियोंको उनके अपराधके अनुसार न्यायाधीश दण्ड देते हैं, तब उस न्यायाधीशपर पक्षपातका आरोप नहीं होता है। वैसे ही भगवान् भी निष्पक्ष न्यायाधीश हैं।

भगवद्भक्तिको अद्वैत सिद्धान्तमें स्थान नहीं है, ऐसा कुछ लोगोंका आक्षेप है। परंतु यह आक्षेप उचित नहीं है। क्योंकि जबतक ब्रह्मात्मैक्यज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, तबतक यह भक्ति-कर्म-उपासना आवश्यक ही है। भगवत्पाद शंकराचार्य अपने सूत्रभाष्यमें कहते हैं—

देहात्मप्रत्ययो यद्वत्प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्॥

जिसको परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है, उसे कुछ भी कर्तव्य नहीं होता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें दूसरे ही नहीं है। यही भाव श्रीहनुमान्‌जीके इस कथनमें भी उपलब्ध होता है—

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं जीवबुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

अद्वैत-सिद्धान्तमें भक्तिका स्थान रहनेसे ही भगवत्पाद शंकराचार्यजीके द्वारा कई सुन्दर स्तोत्र निर्मित हुए हैं।

भगवान्‌की उपासनाएँ अनेक प्रकारकी हैं। जिस किसी भी प्रकारसे हम उपासना करें, हम उनकी कृपाके पात्र बन सकते हैं। भगवान्‌ने गीता (९।२३)में कहा है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

सभी लोग परमात्मास्वरूप विष्णु, रुद्र आदि देवताओंकी उपासना श्रद्धासे करके परम श्रेय प्राप्त करें।

वेदोंके एकेश्वरवाद और बहुदेववादमें समन्वय

(वीतराग स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, भूतपूर्व संसद-सदस्य)

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

'देवताङ्क'-प्रकाशनद्वारा 'कल्याण'ने जहाँ आस्तिक समाजको देवलोकसे सम्पर्कके लिये प्रेरित होनेका मार्ग प्रशस्त किया है, वहीं नास्तिकवाद, भौतिकवाद तथा साम्यवाद एवं अन्य कई मिशनरियोंके भ्रमात्मक व्यापक आरोपोंके निराकरण-का भी अवसर प्रदान किया है।

अन्य धर्मोंके मूल ग्रन्थोंमें एकेश्वरवादका ही प्रतिपादन किया गया है, किंतु वास्तवमें सभीने देव-शक्तियों तथा देव-व्यक्तियोंका अस्तित्व स्वीकार किया है। विश्वके प्रायः सभी मतोंके अनुसार मानव-सृष्टिके उत्पत्तिकालसे ही गॉड, जेहोवा अथवा अल्लाहने मिट्टीके दो पुतले बनाकर उनमें प्राणवायु फूँका और अपने सभी देवताओं एंजल अथवा फरिश्तोंसे उन्हें प्रणाम करनेको कहा। सभीने गॉडकी आज्ञा मानकर प्रणाम किया, किंतु सैटन और उसके अनुयायियोंने ऐसा नहीं किया, जिसपर गॉडने उन्हें पैराडाईज अथवा जन्नतसे निकल जानेकी आज्ञा दी और परिणामस्वरूप शैतान अपनी सेनाके साथ यह कहता हुआ बाहर निकला—'दोजखमें रहकर शासन करना अच्छा है, जन्नतमें गॉडकी दासता अच्छी नहीं' तबसे गॉड और सैटनका शाश्वत संघर्ष जारी है। इस युद्धका बड़ा रोचक वर्णन अंग्रेजी भाषाके महाकवि जॉन मिल्टनने अपने महाकाव्य 'पैराडाइज लॉस्ट' में विस्तारसे किया है। इन सभी पाश्चात्त्य मतोंने मानव-सृष्टिसे भिन्न देव-जगत् भी माना है, जहाँ ईश्वरके अतिरिक्त ईश्वरके अनुकूल तथा प्रतिकूल देव-शक्तियाँ तथा व्यक्ति भी हैं, जिनमेंसे कुछ ईश्वरकी आज्ञाका पालन करते हैं और कुछ उनकी अवज्ञा भी करते हैं तथा इन्हींको पारसी-मतमें काले और गोरे ईश्वरकी शक्तियाँ कहा है और इनको रोमन तथा ग्रीक साहित्यमें भी बड़े विस्तार और सम्मानसे स्वीकार किया गया है। ग्रीकके प्राचीन साहित्य होमर आदिके ग्रन्थोंमें प्राचीन मानवके साथ इनका आदान-प्रदान, विवाह, प्रणय-युद्ध आदि व्यवहारका वर्णन विस्तारसे किया गया है।

समन्वय करता है। जिस प्रकार गणवाद्य तथा गणनृत्यमें सभी वादक अथवा सभी नर्तक अपने पार्श्ववर्ती वादक तथा नर्तक लय एवं थिरकके साथ एकवाक्यता रखता हुआ सम्पूर्ण वाद्यमण्डल अथवा नृत्यमण्डलके साथ सामञ्जस्य बनाये रखता है, वैसे ही सभी विश्व-निर्माण-घटक मोनाड अन्य पड़ोसी घटकों तथा अखिल विश्व-चक्रके साथ सामञ्जस्य बनाये रखते हैं। इस विश्वचक्रके साथ सामञ्जस्य बनाये रखनेकी प्रवृत्ति केवल चेतनमें ही सम्भव है, जडमें नहीं।

वेदोंमें ऐसे सृष्टिक्रमकी सिद्धिके लिये सृष्टिका विधान है, किसी एक देवताको अथवा अधिक देवताओंको सृष्टिका कार्य नहीं सौंपा गया। परमेश्वरने ही यज्ञद्वारा सृष्टि और देवताओंको प्रकट किया। **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'**—यज्ञके द्वारा देवताओंने यज्ञ (विष्णु) का पूजन किया, वे ही (यज्ञधर्म) समस्त विश्वकी रक्षाके लिये सर्वप्रथम प्रवृत्त हुए। प्रकृतिकी तन्मात्राएँ महाभूत, कालके अवयवभूत संवत्सर, वसन्त आदि षड् ऋतुएँ, विराट्, हिरण्यगर्भ तथा अव्याकृतके अङ्गभूत अनन्त देवताओं तथा देवशक्तियों—विश्व, तैजस् आदिने अव्याकृत जगत्‌की सृष्टि, कल्पना, रक्षा तथा व्यावहारिक संचारका कार्यभार सँभाला। अपने निजी क्षेत्रोंमें स्वतन्त्र रहनेपर भी प्रत्येक देवताके अपने क्षेत्रकी सीमा है, यद्यपि वह सीमा स्वयंमें भी अनन्ततुल्य है।

'साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म' के अनुसार बृहदारण्यक उपनिषद्‌ने सर्वव्यापी ब्रह्मका प्रमाण साक्षात् तथा अपरोक्ष अर्थात् सब प्रकारके व्यवधानसे रहित सब प्रकारके संशयसे अतीत प्रत्येक चैतन्य आत्माके अनुभवसे दिया है। अव्यवहित आत्मानुभाव ही सर्वसंदेहातीत सत्यका सत्य, सब देवोंका प्रकाशक महादेव है। सब प्रकाशकोंका प्रकाशक होनेसे ही देवाधिदेव है। इस कारण श्रुतिने इसे **'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'**—इसके

एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥ (१०।४०)

फिर भी व्यवहारकी सुगमताके लिये इन देवविभूतियोंकी संख्या कही गयी है। प्रत्येक देवताके अपने प्रमुख कर्म-क्षेत्रानुसार ही इन्द्रादिके अधिकार-क्षेत्र हैं। उन्हींके अनुसार उनके विग्रह और स्वरूपका विधान भी है। मेघ, अग्नि आदि एक समयमें अनेक स्थानों, रूपों तथा शक्ति-विस्तारोंके साथ प्रकट होते हैं। संख्या भी इसी प्रकार बृहदारण्यकमें—**'त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति'** (बृ० उ० ३।९।१) कहकर तीन और तीन सौ तथा तीन और तीन सहस्र बतलायी गयी है। अनन्त शक्ति-सम्पन्न भगवान् जैसे अनन्त कार्यों और अनन्त शक्तियोंमें अनुस्यूत हैं, वैसे ही अनन्त यज्ञों, कर्मों तथा उनके फलोंमें अनन्त शक्तिसम्पन्न देवता भी उनमें अनुस्यूत हैं। शाकल्यमुनिके पूछनेपर वैश्वदेव शस्त्रकी निविद्‌में तीन सौ तीन, तीन सहस्र तीन तथा तीन हजार तीन सौ छः देवता स्तुत्य हैं। सामान्य प्रयोगमें बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु तथा दो नासत्य— इस प्रकार तैंतीस देवता कहे गये हैं। कर्मवशात् देवयोनि प्राप्त करनेवाले देवता आजानदेवताओंसे भिन्न हैं। ऐसे ही पितृलोक आदिके यम, अर्यमा आदि देवता विभिन्न लोकोंमें अनन्त हैं। देश, काल तथा वस्तु-परिच्छेदसे परे देवशक्तियाँ चैतन्य-शक्तियोंके रूपमें अनन्त हैं और विश्वके अनन्त क्षेत्रोंमें कर्तव्यरत हैं।

वेदोक्त देवताके वैदिक सूक्त ऋग्वेदमें प्रसिद्ध हैं। रुद्र, इन्द्र, अग्नि, यम आदि देवताओंकी वैदिक स्तुतियाँ यज्ञोंमें विभिन्न अवसरोंपर प्रयुक्त होती हैं। इतिहास-पुराणादिमें इन यज्ञोंसे यजमानकी अनेक कामनाएँ सिद्ध होती देखी गयी हैं। वरुण-सूक्तकी गाथा महाराज हरिश्चन्द्रकी वात-व्याधि-शान्तिके लिये प्रसिद्ध है। यज्ञ-यागादिमें इन्द्र, बृहस्पति, रुद्रके बहुत प्रसङ्ग हैं। इस प्रकार मानव-जीवनके साथ देवताओंका

घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ऐसे ही ग्रीक लेखकोंने भी ग्रीक देवताओंका वहाँके मानव-जीवनमें सदा ही सहयोगका वर्णन किया है।

पुराण और तन्त्रशास्त्रमें दुर्गा (शक्ति), गणपति, भैरव, हनुमान् तथा यक्ष-गन्धर्वादि देवयोनियों आदिके भी अद्भुत आख्यान प्राप्त होते हैं।

एकेश्वरवादके साथ-साथ बहुदेवतावादके समन्वयमें प्राचीन वैदिक तथा वेदानुसारी दर्शन सर्वदा निर्भ्रान्त हैं। समग्र विश्वका उत्पादक, पालक और संहारक एक ही परमेश्वर है। श्रुतिके अनुसार—**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म'**—जिस महाशक्तिसे ये सभी जीव प्रकट होते हैं, प्रकट होकर जिसके द्वारा जीवित रहते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं, एकमात्र वही जानने योग्य है और वही ब्रह्म है। उपनिषद्में इसे **'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'** तथा गीतामें—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

समस्त प्राणियोंमें गुप्त-रूपसे व्याप्त एक ही देव है, जो सर्वव्यापी और सबकी अन्तरात्मा है, ऐसा कहा गया है। बृहदारण्यकके अन्तर्यामी ब्राह्मणमें पृथ्वी, सूर्य, वायु तथा सर्वत्र व्याप्त एक परमात्माको ही बताया गया है, जो सबका प्रेरक है, सबमें निवास करता है और जिसे पृथ्वी आदिके देवता नहीं जानते। श्रीमद्भगवद्गीता (१८। ६१) में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

ईश्वर सभी जीवोंके हृदय-प्रदेशमें निवास करता है और यन्त्रारूढ़ व्यक्तियोंके भ्रमण करनेके समान अपनी मायासे समस्त विश्वको भ्रमण कराता रहता है। इसी प्रभु परमेश्वरको प्रकृतिकी बहिरङ्ग सभी शक्तियोंके नियामक तत्त्व होने और देवताओंको भी नियन्त्रित और सर्वोच्च शासक होनेसे परमेश्वर कहा गया है।

'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।'

वह सब ईश्वरों (शासन करनेवालों) का परम (सर्वोच्च) शासक परम महा-ईश्वर तथा समस्त देवताओंका परम (सर्वोच्च) देवता (महादेव) माना गया है।

हिन्दू शास्त्रोंने स्वरूप-ज्ञानको ही मोक्षका एकमात्र साधन माना है। भक्ति और श्रद्धा उस ज्ञानमें दृढ़ता और सफलतामें साधक है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'** वही ब्रह्म सदा पूर्ण है, पूर्ण और पूर्णतर, शिव और शिवतर है। उस अनन्त असीमकी चिदभिव्यक्ति ही देवता है। वह पूर्ण व्यवस्थित है, अव्यवस्थित नहीं। वह न निरवयव है न सावयव। समस्त चिदचित्को धारण करनेवाला, सर्वसाक्षी, सर्वस्थिर, चरकी अन्तरात्मा, सर्वाकार, सर्वदेवोंका देव प्रकाशक महादेव है। उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित, उसके नेत्रनिमीलनसे सर्वप्रलय और उन्मीलनसे सर्वसृष्टिका आविर्भाव होता है। वह सच्चिदानन्द सदा सगुण-सद्गुणसम्पन्न और सदा निर्गुण, निराकार, निर्विकार भी है। वह ज्ञानियोंका ज्ञान, अनाश्रितोंका एकमात्र आश्रय, समस्त सद्गुण-समलंकृत परम करुणामय, अकारण-करुणावरुणालय, जगत्का एकमात्र आधार, वाणीका विषयाविषय, सृष्टि-स्थिति-प्रलय-साक्षी तथा तदतीत है।

इस प्रकार सभी मतोंमें बहुत मनुष्यों और उनके शासक राजाकी तरह यह अनन्त देवता और उनके सर्वोच्च नियामक एक ही परमेश्वरकी बात सिद्ध होती है इसे कोई भी बुद्धि, युक्ति, तर्क, सिद्धान्त या धर्म, सम्प्रदाय अनुचित नहीं कह सकता। इसे भारतीय शास्त्र, वेद, पुराण एवं दर्शन बहुत स्पष्टरूपसे प्रतिपादित करते हैं, केवल कुछ सामान्य विचारक ही एकमात्र एकेश्वरवाद या एकेश्वररहित मात्र बहुदेवतावाद मानते हैं, जो दोनों ही भ्रान्त हैं। शेष सभी मूल वैदिक धर्मके ही अनुयायी प्रतीत होते हैं, अतः इस सम्बन्धमें कहीं कोई भी मौलिक विवाद नहीं और सभी एकमतके समन्वयवादी ही हैं। इस प्रकार प्रतीत होता है कि एक ही देवने सर्वसृष्टिका आविर्भाव, पालनभाव और तिरोभाव करनेके कारण बहुदेवका रूप धारण किया है।

अभेद सम्बन्धसे जाना जाता है। इसका वर्ण लोहित है।

इसी शक्तिसे समन्वित ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शेष सहस्रफणोंसे पृथ्वीको धारण करते हैं। प्रलयकालमें महेश इसका उपसंहार करते हैं।

यह शक्ति सोलह कलाओंसे परिपूर्ण है, इसलिये इसे षोडशी भी कहा जाता है। यही समस्त जगत्की अधिष्ठात्री है। इसे चिदग्निकुण्डसम्भूता कहा गया है। यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरोंमें अवस्थित रहती है। ये ही तीन शरीर तीन पुर माने जाते हैं। व्यष्टि-समष्टि-भेदसे इनका चैतन्य-तत्त्व मातृ-दृष्टिमें त्रिपुरा-पदवाच्य होता है। इनका ही उपाधि-भेदरहित चैतन्य महातात्पर्यरूपात्मक महात्रिपुरसुन्दरी हैं। उस चैतन्यका आनन्दमय होना ही सुन्दर पद-व्यवहार्य और अनुभवगम्य है। वस्तुतः वह यथार्थ-रूपसे मन-बुद्धि और वाणीका विषय नहीं है—सर्वथा अतीत है। फिर भी जो कुछ अदृश्यमान पदार्थ अनुभव-साध्य होते हैं वे सभी अभिव्यक्त होनेसे इन्द्रियोंके विषयभूत होते हैं। पर ये भी उसी शक्तिके ही विवर्त हैं। विमर्श होनेके कारण इस शक्तिकी व्यापकतासे इस चराचरात्मक जगत्के मूल-कारणसे बाह्य कार्यतक त्रिविध रूप देखे जाते हैं। वेद भी त्रैगुण्य-विषय हैं, तीन देव हैं, तीन अग्नियाँ हैं, तीन शक्ति हैं, तीन स्वर हैं, तीन लोक हैं, तीन वर्ण हैं, तीन अवस्थाएँ हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें जितने भी तीन संख्यावाले विशिष्ट पदार्थ हैं, वे सभी 'त्रिपुरा' इस नामसे अन्वर्थरूपमें उसी परदेवताकी महिमाके द्योतक हैं। लघुस्तवमें भगवतीकी स्तुतिमें कहा गया है—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्मवर्णास्त्रयः।

होनेपर भगवतीसे प्रार्थना की कि हमलोगोंके प्रलय होने हमें अपना आसन बनायें। दयामयी भगवतीने यह किया। इसी आसनमें वे भगवान् सदाशिवके नाभि पद्मासना होकर विराजमान रहती हैं, इसी कारण भग नामोंमें एक नाम है—**'पञ्चप्रेतासनासीना।'** आद्यशंकराचार्य सौन्दर्यलहरीके आठवें पद्यमें यही करते हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥

अमृतसिन्धुके मध्य कल्पवृक्षोंसे आवृत कदम्बवृ उपवनसे युक्त मणिद्वीपमें अवस्थित चिन्तामणि-निर्मित एक शिवाकार मञ्च बना है, उसमें पञ्चम शिवके पर्य निलयीभूता हे भगवति! विरले लोग ही तुम्हारी उपास सौभाग्य प्राप्त कर पाते हैं।

यही शक्ति मूलदेवता मूलाधारचक्रसे चलकर स्वाधिष्ठा परिक्रमा कर मणिपूर पार करके हृदयस्थित अनाहतचक्र जहाँ मरुत्तत्त्व है, गुहाकाशमें प्रविष्ट होती है। तदनन्तर व विशुद्धिचक्रमें आती है। यहाँसे ऊपर उठकर मनस्तत्त्व भ्रूविलसे (आज्ञाचक्रसे) सहस्रारमें पहुँचाती है तथा एकान्तमें अपने पति परमशिवके साथ विहार करती है।

साधकोंके सामने कृपाभावसे प्रत्यक्ष होकर यही श अपने दोनों चरणोंसे उनके लिये अमृत-धारा प्रस्रवण क है और इस अमृतरूप-धारासे समस्त नाडीचक्रको आह्ला करती है। तदनन्तर पुनः अपना रूप धारणकर सर्प

कुण्डलीरूपमें स्थित होकर कुलकुण्डमें विश्राम करती है—

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥

(सौन्दर्यलहरी, १०)

यही शक्ति जब आकार धारण करती है, तब शिव और शक्तिका रसात्मक यन्त्र बनता है, जिसे श्रीयन्त्र कहते हैं। यह शिव और शक्तिका शरीर है। इसमें अनेक त्रिकोणोंसे घिरा बिन्दु इसका मूल स्थान है, जो प्रपन्न भक्तोंका शरण-स्थान है, जिसमें नव आवरण, बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दश त्रिकोण, अष्टदल, षोडशदल एवं त्रिवृत्त-सहित तीन भूपुर रेखाएँ चार द्वारोंसहित विद्यमान हैं—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाब्जत्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ॥

(सौन्दर्यलहरी, ११)

भगवतीके पञ्चदशी महामन्त्रका वर्णन वेदोंमें किया गया है। त्रिपुरोपनिषद् आदिमें इसका रोचक वर्णन '**कामो योनिः कमला वज्रपाणिः॰**' इत्यादि रूपमें किया गया है। कादि पञ्चदशीका विशेष प्रचलन है। मूर्धाभिषिक्त साधकगण इसका अनुष्ठान करते हैं। इस महामन्त्रका आश्रय लेनेवाले दोनों लोकोंमें आप्तकाम—पूर्णकाम हो जाते हैं। कहा है—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

इस मन्त्रका श्रीगुरुद्वारा उपदेश प्राप्त होना भी अत्यन्त सौभाग्यका विषय है। ये साक्षात् परदेवता भावनागम्या हैं तो बहिर्मुखोंके लिये सुदुर्लभा भी हैं। उन्हींकी स्तुति भक्तजन इस प्रकार करते हैं—

आनन्दजन्मभवनं भवनं श्रुतीनां
चैतन्यमात्रतनुमम्ब तथाश्रयामि।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां
सौभाग्यजन्मवसतिं त्रिपुरे यथावत् ॥

भाव यह है कि 'हे त्रिपुरे? तुम समस्त वेदों तथा सुखराशिकी मूल जन्मभूमि हो। तुम्हारा विग्रहमात्र विशुद्ध चिदानन्दमय है, तुम्हारे पाद-पद्म ब्रह्मा, विष्णु और शिवके द्वारा भी नित्य उपासित होते हैं। ये तुम्हारे पादयुगल समस्त सौभाग्योंके भी उद्गम स्थान हैं, मैं उन्हीं चरणोंका आश्रय लेता हूँ।'

मनुष्यमात्रके तीस धर्म

देवर्षि नारदजी कहते हैं—

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः। अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः। नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः। तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः। सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः। त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

(श्रीमद्भा॰ ७। ११। ८-१२)

'हे युधिष्ठिर! सब मनुष्योंके लिये यह तीस लक्षणवाला श्रेष्ठ धर्म कहा गया है। इससे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं। तीस लक्षण ये हैं—सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, आत्म-निरीक्षण, बाह्य इन्द्रियोंका संयम, आन्तर इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदृष्टि, सेवा, दुराचारसे निवृत्ति, लोगोंकी विपरीत चेष्टाओंके फलका अवलोकन, मौन, आत्मविचार, प्राणियोंको यथायोग्य अन्नदानादि, समस्त प्राणियोंमें विशेष करके मनुष्योंमें आत्मबुद्धि—इष्टदेव-बुद्धि, महात्माओंके आश्रयभूत भगवान्‌के गुण-नाम आदिका श्रवण-कीर्तन, स्मरण, सेवा, यज्ञ, नमस्कार, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

पूर्व जीर्ण विम्बकी शक्तिका कलशमें आवाहन करके पूजन करते रहना चाहिये और एक मासके भीतर ही मूर्तिके भग्न उपाङ्गका संधान कर देना चाहिये।

जीर्णविम्बगतां शक्तिं कुम्भे त्वावाह्य देशिकः।
कुर्वन्नभ्यर्चनं तत्र विम्बसंधानमाचरेत्॥

(ईश्वरसंहिता, अध्याय ११)

किसी उपाङ्गके नष्ट हो जानेपर भी उसी जातिके पाषाणका उपाङ्ग बनाकर संधान कर लेना चाहिये, अनन्तर सम्प्रोक्षण-विधि करनी चाहिये—'**अङ्गमात्रसमाधाने कुर्यात् सम्प्रोक्षणं द्विजाः।**' सम्प्रोक्षण-विधिके अनन्तर 'धर्मसिन्धु', 'प्रतिष्ठामयूख', 'प्रतिष्ठामहोदधि' एवं 'प्रायश्चित्तमयूख' आदि ग्रन्थोंमें प्रदर्शित विधिसे शान्त्यर्थ अघोर होमादि करने चाहिये।

इसी प्रकार देवमन्दिरोंमें स्थिर तथा चल दोनों प्रकारकी प्रतिष्ठा आवश्यक है। उत्सव, शोभायात्रा आदिमें यत्र-तत्र ले जाकर पूजनादिकी सुविधाके लिये चल-प्रतिमाकी आवश्यकता होती है। स्थिर-प्रतिमाका पूजन प्राङ्मुख तथा उदङ्मुख दोनों ही प्रकारसे किया जा सकता है, पर चल-प्रतिमाका पूजन यथासम्भव पूर्वाभिमुख होकर ही करना चाहिये। इस प्रकार चल एवं अचल-प्रतिमाओंके पूजनमें थोड़ा-सा प्रकार-भेद है, जिसका विधिवत् पालन करना चाहिये।

प्रतिष्ठाकाल—यों तो प्रत्येक कार्य देश-कालके विचारसे किया जाता है, परंतु शुभ कार्योंके लिये शास्त्रोंमें देश-कालका विशेष विधान किया गया है। शास्त्रविहित देश-कालमें किये गये धर्म-कार्यसे ही अपेक्षित इष्टसिद्धि होती है। पुण्यक्षेत्र तथा पर्व-दिवसोंमें किये गये दानादि धर्मकार्योंका महत्त्व सर्वविदित ही है।

प्रायः सभी देवताओंकी प्रतिष्ठाके लिये उत्तरायणका समय विशेष रूपसे शुभ माना गया है, इसमें माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख तथा ज्येष्ठ मास विहित हैं। देवप्रतिष्ठामें ग्राह्य नक्षत्र ये हैं—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तथा रेवती। तिथियोंमें अमावास्या तथा रिक्ता और वारोंमें भौम तथा शनिको छोड़कर सभी तिथि-वारादि सभी देवोंकी प्रतिष्ठाके लिये विहित हैं, किंतु वर्जित नक्षत्र, तिथि, वारादि भी उन देवताओंकी प्रतिष्ठाके लिये विहित हैं, जिनके वे स्वामी हैं।

प्रतिष्ठा-ग्रन्थोंमें तथा प्रायः सभी आगम-ग्रन्थोंमें भी प्रतिष्ठा-महोत्सवके निमित्त मन्दिरके प्राङ्गणमें भूतशुद्धि, भूशुद्धि, वास्तुपूजनपूर्वक स्वतन्त्र मण्डप-निर्माण, पञ्च-भूसंस्कार, कुण्ड-वेदी-निर्माण, प्रतिष्ठाके लिये नान्दीश्राद्ध, प्रतिमाका जलाधिवासन, वस्त्राधिवासन, अन्नाधिवासन, रत्नाधिवासन तथा रत्नोदक, फलोदक, भस्मोदक, इक्षुरसोदक और पञ्चामृत आदिके घटोंद्वारा अभिषेक, ग्रहयाग, आयुष्यहोम, देवताओं एवं ग्रहादिके हवन आदिके बाद प्रतिमाका मधुपर्क आदिसे पूजन, शय्याधिवास, सर्वाङ्गन्यासपूर्वक समस्त प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाका विधान है। मूर्तिके प्रतिष्ठित हो जानेपर साङ्गोपाङ्ग सपरिकर यथासम्भव अधिकाधिक उपचारोंसे पूजन एवं अलङ्कारोंसे अलङ्कृत करनेका विधान है। प्रतिष्ठाके बाद देवताके निमित्त सभी प्रकारके पूजोपकरण, पार्षद और आयुधादिके धारणके बाद प्रतिदिन तीनों कालमें पूजन-अर्चन तथा राजभोगकी समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है, इसमें किसी भी दिन व्यवधान नहीं होना चाहिये। विशेष महोत्सवोंपर विशेषरूपसे आराधना, उपासना, शोभायात्रा तथा अनेक माङ्गलिक आयोजन करना चाहिये।

शास्त्रोंमें इन सब बातोंपर सूक्ष्म एवं सम्यक् विचार किया गया है, इससे यह निष्पन्न होता है कि देवोपासनाके लिये सनातनधर्मका एक सबल आधार मूर्तिपूजा है और इसका अङ्ग होनेके कारण मूर्तिप्रतिष्ठा भी उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसी कारण श्रीमद्भागवतमहापुराणमें स्वयं भगवान्की उक्ति है कि 'देवताकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करनेसे व्यक्ति सार्वभौम सम्राट् होता है और देवमन्दिरके निर्माणसे तीनों लोकोंका स्वामी होता है तथा विधिपूर्वक पूजा एवं उत्सवोंसे ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है और इन तीनोंके समन्वित आचरण करनेसे वह मेरे तुल्य ही हो जाता है'—

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥

(११।२७।५२)

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
योगी कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥
प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥

'हे भरतश्रेष्ठ! योगी योगशक्तिसे अनेक शरीर धारण कर [स]कता है। कतिपय शरीरोंसे पृथ्वीपर विचरण, कतिपय [श]रीरोंसे योग-प्राप्ति और कतिपय शरीरोंसे उग्र तप कर सकता और पुनः सूर्य जैसे अपनी किरणोंको समेट लेता है, वैसे उन शरीरोंको समेट सकता है तो जन्मसिद्ध देवताओंके [वि]षयमें क्या कहना।' **'किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां [देव]ानाम्।'**

संक्षेपमें सारांश यह है कि देवताओंका शरीर होता है, अतएव साधककी साधनाके परिपाक होनेपर वे प्रसन्न होकर अभिलषित पदार्थ प्रदान करते हैं। पुराणोंमें इन विषयोंमें अनन्त कथाएँ मिलती हैं।

गुणवाद एवं अनुवाद स्वार्थमें प्रमाण नहीं हैं, परंतु भूतार्थवाद स्वार्थमें प्रमाण है। इसलिये कहा गया है—

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः॥

लोकविश्रुत 'कल्याण'के द्वारा आधुनिक जन-मानसमें सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार-प्रसार एवं निष्ठा उत्तरोत्तर जाग्रत् हो—भगवान् विश्वनाथ 'कल्याण'-परिवारमें उक्त अभिप्रायकी पूर्णताकी शक्ति दें—यही हमारी कामना है।
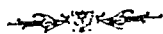
देवता-तत्त्व-मीमांसा

(श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीभाष्य-भगवद्विषय उभयसिंहासनाधिपति विश्वाचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी तर्कशिरोमणि)

'देवता' शब्दका अर्थ होता है—**'जायमानो वै जायते [स]र्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्यः।'** इस ऐतरेय श्रुतिके आधारसे [वि]श्वका उपादानकारण। दूसरे शब्दोंमें जो विश्वका उपादान [है] कारण है, वह देवता है। **'दिवु क्रीडा॰'** धातुसे देवता [शब्]द निष्पन्न होता है। निरुक्तमें यास्कने इसका अर्थ किया —**'दानाद् देवः।'** अर्थात् जो देता है, वह देव है। **'यो [देव]: सा देवता'**के आधारसे जो देव है वह देवता है। ये देवता [ब्रह्म]ाण्ड एवं ब्रह्माण्डान्तर्गत वस्तुओंकी उत्पत्तिके लिये [अप]ने-अपने अंशोंका दान करते हैं। अतः ये देवता कहलाते [हैं।] दूसरे शब्दोंमें जो ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डान्तर्गत जड-चेतन [उभ]यविध वस्तुओंके मूलकारण हैं, वे वेदोंमें 'देवता' शब्दसे [गृ]हीत होते हैं। दूसरे शब्दोंमें 'देवता' शब्दका प्रयोग विश्वके [मूल] कारण इन्द्रियागोचर (इन्द्रियातीत) प्राणरूप अग्नि, सोम, [वरु]ण, इन्द्र आदि तत्त्वोंमें हुआ है। देवता तत्त्वोंसे अभिन्न हैं।

'प्राण वाव देवताः' इस श्रुतिके आधारसे सृष्टिके मूल [कार]ण ये तत्त्वात्मक देवता प्राणरूप हैं। प्राण एक अधामच्छद [पदा]र्थ है, जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिसे रहित होनेके [कार]ण इन्द्रियागोचर है। सृष्टिके मूल तत्त्व देवता-रूप ये प्राण [सात] प्रकारके हैं—१-ऋषिप्राण, २-पितरप्राण, ३-देवप्राण, ४-असुरप्राण, ५-गन्धर्वप्राण, ६-मनुष्यप्राण एवं ७-पशुप्राण। श्रीगुरुचरण भगवान् मधुसूदन झा महाभाग कहते हैं कि ईश्वर प्रजापतिके— १-स्वयंभूमण्डल, २-परमेष्ठिमण्डल, ३-सूर्य-मण्डल, ४-चन्द्रमण्डल एवं ५-पृथ्वीमण्डल—ये पाँच मण्डल पाँच अवयव हैं अर्थात् अङ्ग हैं। इन पाँचोंमेंसे पृथ्वी-मण्डल, चन्द्रमण्डल एवं सूर्यमण्डल—ये तीन मण्डल हमारे सबके प्रत्यक्ष हैं, परंतु परमेष्ठिमण्डल एवं स्वयम्भूमण्डल—ये दोनों सूर्यमण्डलसे भी अतिदूर होनेके कारण परोक्ष हैं। इनमें परमेष्ठिमण्डल जलमय है तथा स्वयम्भूमण्डल प्राणमय है। इन पाँचोंमें स्वयम्भूमण्डलके प्राणका नाम ऋषिप्राण है। परमेष्ठिमण्डलका सौम्यप्राण पितरप्राण नामसे प्रसिद्ध है। सौरप्राणका नाम देवप्राण है। चन्द्रमाके प्राण गन्धर्व नामसे प्रसिद्ध हैं। पृथ्वीका प्राण असुर नामसे वेदोंमें प्रसिद्ध है।

दर्शन एवं आगमकी परिभाषामें जिसे शक्ति कहते हैं, वेदोंमें वही प्राण अथवा देवता कहलाता है। अतः पदार्थ प्राणोंका ग्राम है अथवा पदार्थमात्र शक्ति-ग्राम है या दोनोंका अर्थ एक ही है। हाँ, मात्रा एवं अवयवसंनिवेश-क्रममें अन्तर अवश्य है। इसलिये सबके—उन प्राणोंसे उत्पन्न होनेवाले एक दूसरेके स्वरूपमें अन्तर (भेद) आ जाता है। जो कुछ

प्राणों—देवताओंके मुख्य-मुख्य सात प्रकार हैं—ऐसा कहा गया है। उनके अवान्तर प्रकार भी अनेक हैं। प्रत्येक अवान्तर प्रकारका एक-एक देवता भी अनन्त प्रकारका है। अर्थात् उसके असंख्य भेद हैं। देवताओंके इन असंख्य प्रकारोंको मैत्रायणीसंहिता, काठकसंहिता एवं निरुक्तने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है—'**अग्निः पृथ्वीस्थानः। वायुर्वा इन्द्रो वा मध्यमस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः।**' अर्थात् अग्नि पार्थिव देवता है। इस पार्थिव अग्निके अंशरूप जितनी अग्नियाँ हैं, वे सब पार्थिव देवता हैं। वायुके अंशरूप जितने देवता हैं, वे सब आन्तरिक्ष्य देवता हैं। सूर्यके अंशरूप जितने प्राण हैं, वे सब दिव्य देवता हैं। पदार्थोंके निर्माणमें इनका उपयोग इस प्रकार होता है। अण्ड एवं पिण्ड—दोनोंमें तीन-तीन तन्त्र हैं—अर्थतन्त्र, क्रियातन्त्र एवं ज्ञानतन्त्र। अण्ड एवं पिण्ड दोनोंमें अर्थतन्त्रके प्रवर्तक पार्थिव देवता हैं। दोनोंमें क्रियातन्त्रके प्रवर्तक वायव्य देवता हैं। ज्ञानतन्त्रके प्रवर्तक देवताओंका रूप-समन्वित यह स्थूल रूप है। प्राण सूक्ष्म-रूप है। भूतोंका विधारण (रक्षण) देवताओंका कार्य है।

देवोपासना

निगम, आगम, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र आदि आर्योंके सभी विद्याप्रस्थानोंमें देवोपासना विहित है। उपासनाके फलोंका वर्णन 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में इस प्रकार किया गया है—

नित्यं नराणां सुरपूजकानां
लोका मनोज्ञाः सुलभा भवन्ति।
लोके तथास्मिन् धनधान्ययुक्ताः
समृद्धिभाजश्च नरा भवन्ति॥

तात्पर्य यह कि 'देवताओंके नित्य उपासक मनुष्योंको सुन्दर लोक सुलभ हो जाते हैं तथा इस लोकमें वे धन-धान्ययुक्त एवं समृद्धिसम्पन्न हो जाते हैं। अतः देवता सबके लिये नित्य उपास्य हैं।'
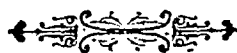
देवोपासनासे परमपुरुषार्थकी प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्यजीके आशीर्वचन)

भारतवासी ऋषि-मुनियोंने तत्त्वज्ञान-प्राप्तिके लिये महान् प्रयत्न किया था। उन्होंने प्राचीन शास्त्रों तथा अपने अनुभवके बलपर यही निर्णय किया कि सत्त्व-रज तथा तमोयुक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे संचालित एवं नियन्त्रित सभी जीव-निकायोंमें विशेष शक्तियुक्त और बुद्धिमान् मनुष्योंके लिये चारों पुरुषार्थोंमें एकमात्र मोक्ष ही परम शान्तिप्रद और अन्तःकरणसे अभीष्ट पदार्थ सिद्ध होता है। अतः मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही मानवोचित बुद्धिमत्ता है। वेदान्तशास्त्रोंके अनुसार 'मनके अमनीभाव अर्थात् उसके सर्वथा लय हो जाने अथवा आत्मतत्त्वमें विलीन हो जानेसे मोक्ष-प्राप्ति होती है; *क्योंकि मन ही मोक्ष एवं बन्धनका मूल* कारण कहा गया है।' विषयासक्त मन तो बन्धनका कारण बनता है और विषयोंसे मुक्त मन परमात्मामें लीन होकर मोक्षका कारण बनता है। मनके लय करनेका सुगम उपाय यह है कि उसे सगुणस्वरूपा स्वाभीष्ट देवमूर्तियोंमें अनुरक्त किया जाय, क्योंकि इस ओर उसकी प्रवृत्ति स्वाभाविकतया हो जाती है। यद्यपि देवमूर्तियाँ शान्त एवं घोर प्रकृतिवाली महाकाली, महाकाल, शिव, विष्णु आदि अनेक होती हैं तथापि उनमें एक परमात्मा देवता ही विविध रूपोंमें प्रतिष्ठित रहता है और वही अकेले उन-उन रूपोंमें अभिव्यक्त होकर अपने उपासक भक्तोंको अनुगृहीत करता हुआ कृतार्थ करता है। भगवान्ने गीतामें भी विशेष बल देकर कहा है कि 'जो मेरी जिस रूपमें आराधना या उपासना करता है, मैं भी उसे उसी रूपमें उसी भावसे प्राप्त होता हूँ और उसे संतुष्ट कर देता हूँ।' अतः जिस किसी भी उपायसे या साधनके द्वारा वह परमात्म-देवता अवश्य उपास्य एवं प्राप्तव्य है। यद्यपि उस उपासनाके अनेक प्रकार हैं, फिर भी सभी उपासनाओंका उद्देश्य यही है कि सभी क्रिया-कलापोंको परमात्माके निमित्त ही किया जाय और उन्हें ही समर्पण भी कर दिया जाय। यह बात भगवान् श्रीकृष्णके —

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

—इस वचनसे सुस्पष्ट होती है। अर्थात् 'हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर।'

ये सभी उपासनाएँ यद्यपि रज, तमको हटाती हुई और सत्त्वगुणका अधिक उद्रेक करती हुई मोक्षका ही मार्ग प्रशस्त करती हैं—यही तत्त्वतः भगवान्का एवं सभी शास्त्रोंका भी अभिप्राय है तथापि इन दुर्दम्य तम एवं रजोगुणकी प्रवृत्तियोंको सर्वथा निवृत्त करनेके लिये प्रबल साधनोंके अनुष्ठानकी आवश्यकता होती है। विशेषकर आजके इस विषम एवं जटिल सांसारिक परिस्थितियोंमें भगवत्पाद श्रीआद्यशंकराचार्य-का सर्वत्र भगवद्दर्शनरूप अद्वैतवादकी अमृतमयी धारा विशेष कल्याणप्रद है। भक्तवर प्रह्लादने भी अपने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा था कि 'आपमें, मुझमें तथा अन्य सब प्राणियों एवं समस्त विश्वमें एक ही भगवान् विष्णु व्याप्त हैं, आप व्यर्थ ही मुझपर क्रुद्ध होकर असहिष्णुताका परिचय देते हैं'—

'त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः'

—इसी वचनको आधार मानकर भगवान् शंकराचार्यने मूलमें अद्वैत आनन्दका अनुभव करते हुए भी विशुद्ध सत्त्व-तत्त्वकी प्रवृद्धिके लिये तथा त्रिगुणमयी विभिन्न प्रकृतिके प्राणियोंकी उपासनाकी सुविधाके लिये शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणपति तथा स्कन्द—इन छः देवताओंकी पूजा-पद्धतियुक्त षण्मतकी स्थापना की और वे षण्मत-संस्थापनाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

इन्हीं भावोंको दृढरूपसे मनमें विचारकर सभी साधकों एवं उपासकोंके परस्पर प्रेम एवं आनन्दपूर्वक जीवनयापन करते हुए अपने-अपने इष्ट देवताओंकी उपासना-पद्धतिमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा मनके कालुष्य और उपासनाकी विघ्न-बाधाओंको दूर कर परमानन्दरूपी समुद्रमें निमग्न होनेके लिये सम्यक् मार्ग-प्रदर्शन-हेतु 'कल्याण' पत्रने 'देवताङ्क'-विशेषाङ्कके प्रकाशनका आयोजन किया है। भगवान् प्रसन्न होकर 'कल्याण' के इस 'देवताङ्क'को सफल बनायें, यही हमारी उनसे प्रार्थना और मङ्गलकामना है।

या ध्यानद्वारा उत्पन्न होता है, जिसका वर्णन गीताके अध्याय १८ श्लोक ३६,३७ में है। इस सुखके सामने भोग-सुख सूर्यके सामने खद्योतके सदृश भी नहीं है। परंतु यह सुख भी उस परम आनन्दरूप ब्रह्मका एक अणुमात्र ही है, क्योंकि ब्रह्मानन्दके अतिरिक्त अन्य आनन्दघन नहीं है। सब एक सीमामें हैं और उनमें दूसरोंका अवकाश है।

इसी आनन्दरूप परमात्माका सब विस्तार है। इस परमात्मामें संसार वैसे ही समाया हुआ है, जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब। वास्तवमें है नहीं, समाया हुआ-सा प्रतीत होता है। दर्पण तो जड और कठोर है, परंतु वह परमात्मा परम सुखरूप होनेपर भी चेतन है तथा वह इस प्रकार घनरूपसे व्याप्त है कि उसकी किसीसे तुलना ही नहीं की जा सकती। उसकी घनता किसी पत्थर, शिला, वर्फ आदि-जैसी नहीं है। इनमें तो अन्य पदार्थोंके लिये गुंजाइश भी है, परंतु उसमें किसीके लिये कुछ भी गुंजाइश नहीं है। जैसे इस शरीरमें 'मैं' (आत्मा) इतना सूक्ष्म घन है कि उसके अंदर दूसरेको कभी स्थान नहीं मिल सकता। शरीर, मन, बुद्धि आदिमें किसी दूसरेका प्रवेश हो सकता है, परंतु उस आत्मामें किसीका प्रवेश किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वह सर्वव्यापी निराकार परमात्मा भी घन है।

उसकी चेतना भी विलक्षण है। इस शरीरमें जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब जड हैं और उनको जाननेवाला चेतन है। जो पदार्थ किसीके द्वारा जाना जाता है, वह जड है, दृश्य है। वह आत्माको नहीं जान सकता। हाथ-पैर आत्माको नहीं जानते, पर आत्मा उनको जानता है। वही सबको जानता है। ज्ञान ही उसका स्वरूप है। वह ज्ञान ही परमेश्वर है, जो सब जगह है। ऐसी कोई जगह नहीं है जो उससे रहित हो। इसीसे श्रुति कहती है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'**

वही ब्रह्म भक्तोंके प्रेमवश उनके उद्धारार्थ साकाररूपसे प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। उनके साकार रूपोंका वर्णन मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है, क्योंकि वे अनन्त हैं। भक्त जिस रूपसे उन्हें देखना चाहता है, वे उसी रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देते हैं। भगवान्‌का साकार रूप धारण करना भगवान्‌के अधीन नहीं, प्रेमी भक्तोंके अधीन है। अर्जुनने पहले विश्वरूप-दर्शनकी इच्छा प्रकट की, फिर चतुर्भुजकी और तदनन्तर द्विभुजकी। भक्तभावन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उसकी इच्छाके अनुसार थोड़ी ही देरमें तीनों रूपोंमें दर्शन दे दिये और उसे निराकारका भाव भी भलीभाँति समझा दिया। इसी प्रकार जो भक्त परमात्माके जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसको उसी रूपके दर्शन हो सकते हैं।

अतएव उपासनाके स्वरूप-परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, नृसिंह, देवी, गणेश आदि किसी भी रूपकी उपासना की जाय, सब उसीकी होती है। भजनमें कुछ भी बदलनेकी जरूरत नहीं है। बदलनेकी जरूरत है, यदि परमात्मामें अल्पबुद्धि हो तो उसकी। भक्तको चाहिये कि वह अपने इष्टदेवकी उपासना करता हुआ सदा यह समझता रहे कि मैं जिस परमात्माकी उपासना करता हूँ, वही परमेश्वर निराकाररूपसे चराचरमें व्यापक है, सर्वज्ञ है, सब कुछ उसीकी दृष्टिमें हो रहा है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वसाक्षी, सत्, चित्, आनन्दघन मेरा इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये उनकी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण कर अनेक लीला करता है। इस प्रकार तत्त्वसे जाननेवाले पुरुषके लिये परमात्मा कभी अदृश्य नहीं होते और न वह कभी परमात्मासे अदृश्य होता है।

श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता, क्योंकि वह एकीभावसे मुझमें ही स्थित है।' निराकार-साकारमें कोई अन्तर नहीं है। जो भगवान् निराकार हैं, वही साकार बनते हैं।

भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

'मैं अविनाशीस्वरूप अजन्मा और सब भूतप्राणियोंका

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।७-८)

'हे भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि है, तब-तब ही मैं अपने रूपको प्रकट करता हूँ। साधु-का उद्धार और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करने तथा स्थापनके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।'

इस प्रकार अविनाशी निर्विकार परमात्मा जगत्के उद्धारके भक्तोंके प्रेमवश अपनी इच्छासे आप अवतीर्ण होते हैं। मय हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया प्रेम और दयासे ओतप्रोत। जिनका संहार करते हैं उनका भी उद्धार ही करते हैं। संहार भी परम प्रेमका ही उपहार है, परंतु अज्ञ जगत् दिव्य जन्म-कर्मोंकी लीलाका यथार्थ रहस्य न समझकर प्रकारके संदेह करता है। भगवान् कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

'हे अर्जुन ! मेरा जन्म और कर्म दिव्य है, इस प्रकार जो तत्त्वसे जानता है, वह शरीर त्यागकर फिर जन्मको नहीं होता, वह तो मुझे ही प्राप्त होता है।'

सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज-अविनाशी सर्वभूतोंके परम गति और परम आश्रय हैं। वे केवल की स्थापना और संसारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी मायासे सगुणरूपसे प्रकट होते हैं। अतएव उन परमेश्वरके सुहृद्, प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है—यों कर जो पुरुष उनका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता आसक्तिरहित होकर संसारमें बर्तता है, वही वास्तवमें तत्त्वसे जानता है। ऐसे तत्त्वज्ञ पुरुषको इस दुःखरूप में फिर कभी लौटकर नहीं आना पड़ता।

भगवान्के जन्म-कर्म कैसे दिव्य हैं, इस तत्त्वको जो पर्यायवाची हैं। भगवान्के जन्म-कर्मोंमें ये सभी घटित हो हैं। उनके कर्म संसारमें विस्तृत होकर सबके हृदयोंपर अस करते हैं, कर्मोंकी कीर्ति ब्रह्माण्डभरमें छा जाती है। जो उनक स्मरण-कीर्तन करते हैं, उनका हृदय भी उज्ज्वल बन जाता है इसलिये वे उज्ज्वल हैं। उनकी लीलाका जितना ही अधिव विस्तार होता है, उतना ही अन्धकारका नाश होता है। जह सदा हरि-लीला-कथा होती है, वहाँ ज्ञान-सूर्यका प्रकाश छ जाता है, पाप-तापरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है, इसलिये वे प्रकाशमय हैं। उनके कर्मोंमें किसी प्रकारका स्वार्थ या अपना प्रयोजन नहीं है, कोई कामना नहीं है, किसी पापका लेश नही है, मलरहित हैं, इसलिये वे शुद्ध हैं। उनके-जैसे कर्म जगत्में कोई नहीं कर सकता। ब्रह्मा-इन्द्रादि भी उनके कर्मोंको देखकर मोहित हो जाते हैं। जगत्के लोगोंकी कल्पनामें भी जो बात नहीं आ सकती, जो बिलकुल असम्भव है, उसको भी वे सम्भव कर देते हैं, अघटन घटा देते हैं। जीवन्मुक्त या कारक—इन सबकी अपेक्षा भी अद्भुत हैं, इसलिये वे अलौकिक हैं। उनका अवतार सर्वथा शुद्ध है। अपनी लीलासे ही आप प्रकट होते हैं। वे प्रेमरूप होकर ही सगुणरूपमें प्रकट होते हैं। प्रेम ही उनकी महिमामयी मूर्ति है, इसलिये प्रेमी पुरुष ही उनको पहचान सकते हैं।

—इस तत्त्वको समझकर जो प्रेमसे उनकी उपासना करते हैं, वे भाग्यवान् बहुत ही शीघ्र उन प्रेममयके प्रेमपूर्ण वदनारविन्दका दर्शनकर कृतार्थ होते हैं। अतएव शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा—सब उनके चारु-चरणोंमें अर्पण कर दिन-रात उन्हींके चिन्तनमें लगे रहना चाहिये। उनका प्रेमपूर्ण आदेश और आश्वासन स्मरण कीजिये—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता १२।८)

'मुझमें मन लगा दो, मुझमें ही बुद्धि लगा दो। ऐसा करनेपर मुझमें ही निवास करोगे अर्थात् मुझको ही प्राप्त होओगे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

देवोपासनाका परम उद्देश्य—'भगवत्प्राप्ति'

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्‌विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपालवैष्णवपीठाधीश्वर श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

अखिल ब्रह्माण्डनायक, जगदीश्वर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने लीला करनेके लिये विश्वकी रचना की। इस विश्वमें जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके शरीर निर्माण किये हैं। चराचर-सृष्टिमें मानव-सृष्टि प्रधान मानी गयी है। मनुष्य-देहकी सृष्टि करके ही भगवान् संतुष्ट हुए थे, क्योंकि यह मानवकलेवर ही उपासनाका मुख्य साधन है। दैवी तथा नारकीय शरीरसे आराधना नहीं हो पाती। **'तासां मे पौरुषी प्रिया'**—इस भगवद्वचनसे पुरुषाकार शरीर ही पुरुषार्थका साधक है, इसीलिये भगवत्प्रिय है।

यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म बहुत जन्मोंके बाद भगवत्कृपासे प्राप्त होता है। भगवत्कृपासे प्राप्त होनेवाली मानव-योनिमें ही देवोपासनाका सुअवसर प्राप्त होता है और वर्णाश्रमधर्मके अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य अपने लक्ष्यको पानेमें समर्थ होता है। इसी देहसे ऐहलौकिक, पारलौकिक सुखका उपभोग करनेके लिये देवाराधना महत्त्वपूर्ण साधन है।

मानव-जीवनका प्रधान उद्देश्य भगवत्प्राप्ति करना है। उसमें सदाचरण, शौचाचार आदि नियमोंका पालन करना सहायक होता है। उपासनामें देश, काल, कर्ता, द्रव्य, मन्त्र—इन पाँचोंकी शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

ईश्वरीय सृष्टि त्रिगुणमयी होनेसे सभीकी प्रकृति विचित्र होती है। तदनुसार रुचि-कर्म भी विचित्र होते हैं। सात्त्विकी जीव देवोपासक होते हैं, राजसी यक्ष-यक्षिणी आदि राजसी प्रकृतिवालोंपर श्रद्धा रखते हैं तथा तामसीजन भूत-प्रेत-पिशाच आदिकी उपासना करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति गीता (७। २१)में कहा है—जिस प्राणीका जिस देवतामें जैसा श्रद्धा-विश्वास होता है, उसे भगवान् उस देवके प्रति वैसी अचला श्रद्धा देते हैं—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

वह उस श्रद्धासे संयुक्त होकर उस देवकी अटूट प्रीतिसे उपासना करता है। पुनः उपासक उस अभीष्ट देवसे मेरे ही द्वारा निष्पादित कामपूर्तिको प्राप्त होता है।

मनुष्यके स्वभाव-रुचिमें वैचित्र्य रहनेसे सभीके स्वभाव, सबकी प्रकृति एवं सबकी रुचि एक-जैसी नहीं होती, इसलिये शास्त्र-पुराण-तन्त्र आदिमें देवोपासनाके विभिन्न प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और प्रकृतिके अनुसार भगवत्प्राप्तिके लिये अपने इष्टदेवकी उपासनामें संलग्न हो सके। यही कारण है कि शास्त्रकारोंने एक ही ब्रह्मका कई रूपोंमें वर्णन किया है। **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'** यद्यपि भगवान् नाना नाम-रूपोंसे विलसित हैं तथापि पञ्चदेवोपासना विशेष उपादेय है। साधक अपनी मनःस्थितिके अनुसार अपने इष्टदेवका निश्चय कर सुविधानुसार उपासनामें संलग्न होकर सिद्धि प्राप्त कर सकता है। पञ्चदेव भगवद्विभूतिरूप होते हैं, उनकी उपासनामें अन्याश्रय-दोष नहीं होता।

उपासनामें कोई भी भगवत्स्वरूप लक्ष्य बनाया जा सकता है, परंतु उसमें भक्तिकी प्रमुखता मानी गयी है। जो मनुष्य जितना मनोयोगपूर्वक अपने इष्टदेवकी सेवा-पूजा-आराधना करता है, उसकी उपासना उतनी ही प्रगाढ़ होती है तथा इष्टसिद्धि भी शीघ्र होती है। इसके लिये शम-दम आदि नियमोंके पालन करनेकी परमावश्यकता होती है।

उपासना

'उप-समीपे आसनं यस्यां क्रियायां सा उपासना' अर्थात् जिस क्रियामें इष्टदेवके निकट आसन हो, जिसपर बैठकर साधक पूजनादि करे, वह उपासना कहलाती है। उपासना तीन प्रकारकी होती है—नित्योपासना, नैमित्तिकोपासना और विशिष्टोपासना। इष्टदेवकी नित्य सेवा-पूजा नित्योपासना कहलाती है। किसी निमित्तसे की जानेवाली उपासना नैमित्तिकोपासना कहलाती है। जन्माष्टमी, रामनवमी, नृसिंहचतुर्दशी, वामन-द्वादशी, शिवरात्रि, नवरात्र आदि महापर्वोंमें जो विशेष पूजा-अर्चादि क्रिया की जाती है, वह विशिष्टोपासना कहलाती है।

नित्योपासना दो प्रकारकी होती है। एक मानसी, दूसरी बाह्य। मानसी उपासनामें मनोमयी मूर्तिकी हृदयमें कल्पना करके मानस उपचारोंसे पूजन होता है। बाह्य पूजामें पञ्चोपचार-षोडशोपचार-चौंसठ उपचार आदि द्वारा निगम-

पूजा पाँच प्रकारकी होती है—१-अभिगमन, २-उपादान, ३-योग, ४-स्वाध्याय और ५-इज्या। देवस्थान तथा पात्रादिकी शुद्धि करना 'अभिगमन' कहलाता है। उपचारोंका संग्रह करना 'उपादान' कहलाता है। भावना करना ही 'योग' कहलाता है। वेदपाठ, भागवतपाठ, गीता, विष्णुसहस्रनाम, कवच, स्तोत्र आदिका पाठ करना 'स्वाध्याय' कहलाता है। उपचारोंसे पूजन-हवनादि करना 'इज्या' है।

पूजकको निरभिमान रहकर दूसरेका सम्मान करना चाहिये तथा शान्त-दान्त रहना चाहिये एवं मैत्री और करुणाभाव बर्तते हुए निःस्पृह और विरक्त होकर स्वधर्मका पालन करते हुए धीरतापूर्वक प्रसन्नचित्तसे गम्भीर रहकर अपने इष्टदेवकी भक्तिसे पूजा करनी चाहिये।

तीर्थ, क्षेत्र, देश, काल, धाममें जो रीति प्रचलित हो उसे जानते हुए तदनुसार देवपूजन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे इष्टदेवका साक्षात्कार मानवोंको होता है। चाक्षुष ज्ञान होनेपर भगवान् कल्पतरुके समान सभी जनोंके मनोरथ पूर्ण करते हुए उन्हें आनन्दित करते हैं। अतः पुण्यतम देशमें समयानुसार महापुरुषोंकी सरणीका अनुसरण करते हुए पूजाप्रवाहको प्रवाहित करते रहना चाहिये, यही विधायक शास्त्रका आदेश है।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर इष्टदेव तथा गुरुजनोंका स्मरण कर शौचादिक्रियासे निवृत्त होकर दन्त-जिह्वाकी शुद्धि अपेक्षित है। जिससे पूजाके समय मल-मूत्रका वेग न हो तथा मुखसे दुर्गन्ध न आये। मुख-शुद्धिके बिना मन्त्रसिद्धि भी प्रतिबन्धित हो जाती है। उसके बाद स्नान, संध्या-वन्दन, गायत्री-जप सूर्योदयतक करना चाहिये। सूर्योदय होनेपर अर्घ्य-प्रस्थानके अनन्तर देव-गृहमें प्रवेशकर स्वेष्टदेवके सामने आसनपर पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठकर आचमन-प्राणायाम-नादेवो देवमर्चयेत्।' इस विधिवाक्यसे देवभाव होनेपर देवोपासना करे। देव-मनुष्यका सम्बन्ध नहीं होता। अतः देवत्वसिद्धिके लिये न्यास करना चाहिये, तभी अर्चनकी सिद्धि तथा भाववृद्धि होती है। इस प्रकार नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मोंसे निवृत्त हो जानेपर देवसारूप्यसे सम्पन्न होकर भव-सागरसे निवृत्ति हो जाती है।

पूजामें जिन-जिन देवोंके प्रिय-प्रशस्त, गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्यादिक हैं, उन्हें उनकी प्रसन्नताके निमित्त समर्पण करे, विपरीत निषिद्ध द्रव्योंसे नहीं। जैसे अक्षतसे विष्णुका, दूर्वासे दुर्गाका, तुलसीसे गणपतिका पूजन न करे।

निगमागमसम्मत विधानसे विधिवत् पूजन करनेपर ही स्वाभीष्ट कार्योंकी सिद्धि होती है। फलकी प्राप्ति श्रद्धानुरूप होती है। बिना श्रद्धा-विश्वासके सब निष्फल होता है। यह भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(१७।२८)

इसी प्रकार शास्त्रविधिका उल्लङ्घन करके स्वेच्छया जो कुछ किया जाता है, वह सिद्धिदायक नहीं होता। उससे न ऐहलौकिक सुख प्राप्त होता है, न पारलौकिक। यह भी भगवदादेश है। इसलिये शास्त्रीय विधानके द्वारा देवपूजन करना सर्वथा श्रेयस्कर है।

जैसे पर्वतोंसे निकली नदियाँ समुद्रगामिनी होती हैं, वैसे अन्य सभी देवोंकी उपासना करनेवाले भी अन्तमें भगवल्लीन हो जाते हैं—

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवम्प्रति गच्छति॥

(प्रपन्नगीता)

वह ब्रह्म महान् है, स्वप्रकाशरूप है, अचिन्त्य है, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म है, दूरसे भी दूर है और पाससे भी पास है। वह आप ही इस बुद्धिरूपी गुहामें बैठकर देखता है।—उपनिषद्

श्रीराधामाधव-युगलोपासना

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय सनातनधर्मके सिद्धान्तानुसार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही हैं—'**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।**' विभिन्न उपासक सम्प्रदाय उस एक ही परम तत्त्वकी विभिन्न नाम-रूपोंमें विभिन्न उपासना-पद्धतियोंसे उपासना करते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व नित्य स्वरूपभूत शक्तिसे समन्वित है। यह अवश्य है कि सभी लोग उस शक्तिको स्वीकार नहीं करते। शक्ति न माननेवाले लोग ब्रह्मको निर्विशेष या निर्गुण कहते हैं और भक्ति माननेवाले 'सविशेष' या 'सगुण'। इनमें भी दो भेद हैं—एक 'निराकारवादी' दूसरे 'साकारवादी'। निराकारवादी भगवान्‌को सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक बतलाते हैं और साकारवादी उपासक उन्हें अपने-अपने भावानुसार लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश्वर, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि दिव्य युगल-स्वरूपोंमें भजते हैं। वस्तुतः नारायण, विष्णु, महेश्वर, राम, कृष्ण— सब एक ही तत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार इनकी शक्तियाँ—श्रीलक्ष्मी, उमा, सीता, राधा आदि भी एक ही भगवत्स्वरूपा महाशक्तिके विभिन्न लीला-स्वरूप हैं। शक्ति नित्य शक्तिमान्‌के साथ है, इसीसे वह शक्तिमान् है और इसीसे वह नित्य युगलस्वरूप है। पर यह नित्य युगलस्वरूप संसारके पृथक्-पृथक् दो स्वतन्त्र व्यक्तियों या पदार्थोंके समान नहीं है। जो हैं तो सर्वथा परस्पर निरपेक्ष भिन्न-भिन्न, पर एक समय एक साथ मिल जानेपर उन्हें 'जोड़ी' या 'युगल' कहते हैं। भगवान् वस्तुतः एक होकर ही पृथक्-पृथक् दो प्रतीत होते हैं। एकके बिना दूसरेका अस्तित्व ही नहीं है। शक्ति है तो शक्तिमान् है और शक्तिमान् है तो उसमें शक्ति रहती है। सूर्य और उसका तेज, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति, चन्द्रमा और उसकी चाँदनी, जल और उसकी शीतलता, पद और उसका अर्थ—इनमें जैसे नित्य युगलभाव विद्यमान है, वैसे ही ब्रह्ममें भी नित्य अविनाभाव-युगलभाव है। वस्तुतः 'शक्ति-समन्वित' और 'शक्ति-विरहित' कहना भी नहीं बनता। शक्ति ब्रह्मका अभिन्न स्वरूप ही है। जिस समय वह शक्ति अभिव्यक्त होकर लीलायमान नहीं होती, उस समय 'शक्ति-विरहित' और जिस समय अभिव्यक्त होकर लीला करती है, उस समय उसे 'शक्तिसमन्वित' कहते हैं। शक्तियुक्त भगवत्स्वरूपके दो प्रकार हैं—'सगुण निराकार' और 'सगुण साकार'। वस्तुतः शक्ति उनके स्वरूपगत होनेसे 'समन्वित' और 'विरहित' का खास कोई अर्थ नहीं रह जाता।

वेदमूलक उपनिषद्‌में परमतत्त्वके दो स्वरूप बताये गये हैं—एक 'सर्वातीत' दूसरा 'सर्वकारणात्मक'। 'सर्वकारणात्मक' स्वरूपके द्वारा ही 'सर्वातीत' का पता लगता है और 'सर्वातीत' स्वरूप ही 'सर्वकारणात्मक' स्वरूपका आश्रय है। वस्तुतः ब्रह्मकी अद्वैतपूर्ण सत्ता इन दोनों स्वरूपोंको लेकर ही है। उपनिषद्‌के दिव्यदृष्टि प्राप्त ऋषियोंने ब्रह्मके एक अद्वितीय देश-काल-अवस्था-परिणामसे सर्वथा अतीत, सच्चिदानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि की और किसी भी दृश्य, ग्राह्य, कथन करनेयोग्य, चिन्तन करनेयोग्य और धारणामें लानेयोग्य पदार्थके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध या सादृश्य न पाकर यह कहा कि 'वह कभी न दीख सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है, न उसका कोई गोत्र है, न वर्ण। न उसके आँख-कान हैं और न हाथ-पैर आदि।'—

'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।'

(मुण्डक० १।१।६)

वहाँ, उसी समय उसी देश-कालातीत, अवस्थापरिणाम-शून्य, इन्द्रिय-मन-बुद्धिके अगोचर, शान्त, शिव एकमात्र अनन्त सत्तास्वरूप परमात्माको ही सर्वकाल और सम्पूर्ण देशोंमें नित्य विराजित देखा। यहाँतक कि ध्यान-योगमें उन्होंने उसी परमदेव परमात्माकी उस दिव्य-अचिन्त्य-स्वरूपभूता शक्तिको भी प्रत्यक्ष देखा, जो अपने ही गुणोंसे छिपी हुई है, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि कालसे लेकर आत्मापर्यन्त सम्पूर्ण कारणोंका स्वामी और प्रेरक, सबका परम कारण एकमात्र परमात्मा ही है—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

य: कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥

(श्वेताश्व० १।३)

इस प्रकार एक ही ब्रह्म परमात्मा या भगवान् 'सर्वातीत' भी हैं और 'सर्वरूप' भी हैं। वह 'सर्वातीत' परमात्मा ही सर्वकारणकारण, सर्वगत, सबमें अनुस्यूत और सबका अन्तर्यामी है, वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म, भेद-परिणामशून्य, अद्वय परमात्मा ही चराचर भूतमात्रकी योनि है और अनन्त विचित्र सृष्टिका एकमात्र अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। 'नित्य सर्वातीत' और 'नित्य सर्वगत' स्वरूप ही उसकी महनीय भगवत्ता है। वस्तुतः भगवान्का नित्य एक रहना और नित्य अनन्त रूपोंमें अपनेको आप ही प्रकट करके सम्भोग करना सब भगवान्के ऐसे एकमात्र नित्यस्वरूपके ही अन्तर्गत है। उनका एक रहना और फिर अनन्त रूपोंमें प्रकट हो जाना न तो अद्वैतसे द्वैत-स्थितिमें आना है और न एकत्वसे बहुतकी अवस्थामें बदल जाना ही है। उनकी नित्य स्वरूप-सत्तामें किसी कालका प्रभाव नहीं है, न कोई अवस्था या स्थितिका भेद है। वे एकमात्र सच्चिदानन्दघन भगवान् नित्य अभेदभूमिमें ही परस्पर विरोधी गुण-धर्मोंको आलिङ्गन किये हुए हैं। वे अपने सर्वातीत विश्वातीत रूपमें स्थित रहते हुए ही अपनी अनन्ताश्चर्यमयी अनन्तवैचित्र्यप्रसविनी शक्तिके द्वारा अपने-आपमें ही अनन्त विश्वका सृजन करके अपने-आप ही उसका सम्भोग करते हैं। उन्होंने रमणके लिये दूसरेकी इच्छा की, अपनेको ही एकसे दो कर दिया, पति-पत्नी हो गये। '.....**स द्वितीयमैच्छत् स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।**'

(बृहदारण्यक उप० १।४।३)

इस मन्त्रका यह अभिप्राय नहीं है कि वे पहले अकेले थे, फिर वे मिथुन (दो युगल) हो गये; क्योंकि उनके लिये काल-परम्परासे अवस्था-भेदको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। वे नित्य मिथुन (युगल) हैं और इस नित्य युगल-स्वरूपमें ही उनका नित्य-पूर्ण एकत्व है। उनका अपने स्वरूपमें ही अपनी अनन्त सत्ता, अनन्त ऐश्वर्य और अनन्त माधुर्यका अनादि अनन्त अनवरत आस्वादन— नित्य रमण चल रहा है। इस नित्य युगल-स्वरूपमें ही वे दिव्य चिन्मय 'रस' और 'भाव' रूपमें व्यक्त और अव्यक्तभावसे नित्य लीलायमान हैं अवश्य ही उनकी इस लीलामें प्राकृत पुरुष और नारीके सदृ न तो भौतिक देहेन्द्रिय-भेद है, न कोई अनित्य लौकि जड-सम्बन्ध ही है। इसलिये वे न 'रमण' हैं न 'रमणी' है पुरुषरूपमें भगवान्का निर्विकार निष्क्रिय भाव है। वे नि सर्वातीत सच्चिदानन्दस्वरूप हैं और नारीरूपमें उन्हीं सर्वकारणात्मिका अनन्त लीलामयी स्वरूपाशक्तिका सक्रि भाव है। वे नित्य अनन्तरूपा लीला-विलासिनीके रूप अभिव्यक्त हैं। इस नारीभावकी लीलाभिव्यक्ति ही उन अनन्त सौन्दर्य और अनन्त माधुर्यका प्रकाश है। इस मधुरतम लीलामें 'रस' और 'भाव' का माधुर्य प्रकट होता और उसीका पूर्णतम स्वरूप हैं— श्रीकृष्ण और श्रीराधा। दोनों नित्य अभिन्न हैं और नित्य दिव्य चिन्मय रसविग्रह औ नित्य दिव्य चिन्मय भावविग्रहके रूपमें अपने स्वरूपभू परमानन्दमय लीलारसके आस्वादनमें संलग्न हैं। श्रीकृष्ण 'रसराज' हैं और श्रीराधा 'महाभाव' हैं। वस्तुतः इनके लीला-रसास्वादनमें आस्वाद, आस्वादन और आस्वादक तीनों वे स्वयं ही हैं, उनके नित्य-स्वरूपका ही यह लीलाविलास है। भगवान् श्रीकृष्णने राधाजीसे कहा है—

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्॥

'जो तुम हो, वही मैं हूँ, हम दोनोंमें कदापि किंचित् भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध है, वैसे ही मैं निरन्तर तुममें हूँ।'

मधुर भक्तिरसके पाँच भाव मुख्यतया माने गये हैं— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इनमें सर्वात्म-निवेदन पूर्ण होनेके कारण 'मधुर' भाव ही परिपूर्णतया सर्वश्रेष्ठ है। शान्तभाव तो मधुर भक्तिरसकी भूमिका है, क्योंकि उसमें मन-इन्द्रियोंका पूर्ण संयम होकर भगवान्में ही उनकी नित्य संलग्नता हो जाती है, पर भगवान्के साथ कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये उसे मधुरभावके अन्तर्गत नहीं माना जाता। दास्य, सख्य, वात्सल्यमें सम्बन्धयुक्त प्रीति होती है। मधुरमें उसका पूर्ण पर्यवसान है। यह मधुरभाव जहाँ पूर्णरूपसे लीलायमान तथा आत्यन्तिक-

रूपसे अभिव्यक्त होता है, वही 'महाभाव' है और वही श्रीराधाजीका रूप है। रस-साम्राज्यमें प्रेमका विकास होते-होते 'महाभाव' तक पहुँचना होता है। उसके आठ स्तर माने गये हैं—प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। विषयी लोगोंके मनमें निज सुखकी नित्य कामना रहती है। वे दूसरोंके साथ जो सद्भाव, सद्व्यवहार, त्याग, संयम आदि करते हैं, सब इस सुख-कामनाको लेकर ही करते हैं। अतएव वहाँ वास्तविक पवित्र त्यागका सर्वथा अभाव है, इसलिये वह प्रेम नहीं है। वह तो काम है, जो प्रेम-साम्राज्यमें सर्वथा हेय तथा त्याज्य है।

संसारमें इस समय ऐसे बहुत तामसभावसे समावृत मूढ़ नराधम मनुष्य हैं, जो अपना अनिष्ट करके भी दूसरोंका अनिष्ट करते हैं। वे कहा करते हैं—'हमारा चाहे जितना नुकसान हो जाय, पर उनका नाश करके छोड़ेंगे।' परंतु विषयासक्त तथा विषयकामी पुरुष ऐसा नहीं करते। वे अपना अनिष्ट करके दूसरोंका अनिष्ट करना नहीं चाहते, पर अपने लाभके लिये, अपने सुख-स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंके हितोंका नाश करके उन्हें दुःख पहुँचाया करते हैं। यद्यपि उनको परिणाममें लाभ नहीं होता, क्योंकि जिस कार्यसे दूसरोंका अनिष्ट होता है, वह पापकार्य है और पाप सदा ही दुःखपरिणामी होता है। यह पशुभाव है। जैसे पशु प्रायः न तो दूसरेके दुःख-कष्टकी अनुभूति करता है और न किसीके द्वारा उपकार प्राप्त होनेपर उसके प्रति कृतज्ञताकी ही वृत्ति रखता है, इसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य प्रायः अपने ही स्वार्थ और सुख-लाभकी बात सोचता है। दूसरे जीवोंके भी हृदय हैं, प्राण हैं, उन्हें भी सुख-दुःख होता है, इसकी ओर वह ध्यान नहीं देता। यही असुरभाव भी है। जहाँ मानवता जाग्रत् होती है, वहाँ ऐसा नहीं हुआ करता। इसीसे मनुष्यके लिये तीन ऋण या पाँच ऋण चुकानेके लिये त्यागका विधान है। त्यागवृत्तिसे ही मानवताका विकास होता है। अतः जो मनुष्य कुछ विवेकशील होता है, वह विषयकामी अविवेकी मनुष्यकी भाँति दूसरोंके अनिष्टके द्वारा अपना लाभ नहीं करना चाहता, पर वह अपने लाभमें यदि दूसरे किसीका अनिष्ट होता हो तो उसकी परवा नहीं करता। उससे आगे बढ़ा हुआ मनुष्य यह देखता है कि मुझे जिसमें लाभ होता है, इससे किसी दूसरेका अनिष्ट या हानि तो नहीं होती। यदि दूसरेका अनिष्ट होता है तो वह अपने लाभके लिये उस कार्यको नहीं करता। इससे आगे बढ़ा हुआ वह है जो अपने लाभका भी वही काम करता है, जिससे दूसरोंको भी लाभ होता है, इससे आगे चलकर बुद्धिमान् साधुहृदय मनुष्य वही काम करता है, जिससे केवल दूसरोंका लाभ होता हो। अपने लाभकी बात ही नहीं सोचता। इससे आगे बढ़ा हुआ सर्वश्रेष्ठ मनुष्य वह है जो अपनी हानि करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाता है। यद्यपि परिणाममें उसकी हानि होती नहीं, क्योंकि जिसमें दूसरोंका हित होता है वह पुण्यकर्म है और पुण्यकर्म परिणाममें सदा ही लाभप्रद होता है, यह निश्चित है। यों छः प्रकारके मनुष्य होते हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं—

१- अपना अनिष्ट करके भी दूसरोंका अनिष्ट करते हैं, वे महापापी हैं।

२- अपना लाभ चाहते हैं, दूसरोंके अनिष्टकी परवा नहीं करते।

३- अपने लाभके लिये भी ऐसा काम नहीं करते, जिससे दूसरोंका अनिष्ट होता हो।

४- अपने लाभके लिये ऐसा ही काम करते हैं जिससे दूसरोंको भी लाभ हो।

५- दूसरोंके लाभका ही काम करते हैं। अपने लाभकी बात नहीं सोचते।

६- अपना अनिष्ट करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ साधु हैं।

इनमें उत्तरोत्तर अशुभ कामनाका नाश तथा शुभ कामनाका विकास होता है। यही प्रेमके विकासका क्रम है। 'निज-सुख-साधन' की वृत्ति 'काम' है और 'पर-सुख-साधन' की वृत्ति—'प्रेम' है। काममें 'स्व' संकुचित है, अतएव उसमें त्यागका अभाव है। प्रेममें 'स्व' अत्यन्त विस्तृत है, अतएव वह त्यागमय है। आज जगत्‌में जो व्यष्टि तथा समष्टिमें सर्वत्र कलहकी आग भड़क रही है, इसका प्रधान कारण 'स्व-सुख-कामनाका विस्तार' तथा 'पर-सुख-कामनाका अभाव' है। आजका जगत् कामविषकलुषित है, प्रेम-पीयूष-परिभावित नहीं है। मधुर भक्तिभावके सर्वप्रथम 'शान्तभाव'में ही काम-कलुषका अभाव हो जाता है। तदनन्तर आगे बढ़कर इसका विकास होते-होते जब सर्वत्यागमय सर्वात्मनिवेदनपूर्ण

विषयभोगोंके त्यागी भगवज्जनके मनमें शुद्ध सात्त्विकी प्रियतम श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी जिस पवित्र अनुपम अनन्य वृत्तिका उदय होता है, वह प्रेम है।

वह प्रेम अपने विषय (प्रियतम श्रीकृष्ण) को पाकर जब चित्तको द्रवित कर देता है, तब प्रेमीजनके उस धनको 'स्नेह' कहा जाता है। दीपक जब घृतसे भरा होता है, तब उसमें जैसे उष्णता और ज्योति बढ़ती है, वैसे ही स्नेहके उदयसे हृदयमें श्रीकृष्णदर्शनकी पवित्र लालसा बढ़ती है।

जिसमें सर्वथा नवीन अत्यन्त माधुर्यका अनुभव होता है, स्नेहके इस प्रकारके उत्कर्षको 'मान' कहते हैं। श्रीकृष्ण प्रियतमको अधिक सुख देनेके लिये हृदयके भावको छिपाकर, जिसमें वक्रता और वामताका उदय होता है, मनकी उस मधुर स्थितिका नाम 'मान' है।

ममताकी अत्यन्त वृद्धिसे जब मान उत्कर्षको प्राप्त होता है, तब प्रियतमसे अभिन्नता बढ़ जाती है और हृदयमें महान् हर्ष छा जाता है। इस अवस्थामें प्राण, मन, बुद्धि, शरीर, खान-पान तथा वस्त्राभूषण आदि सभीमें प्रियतमसे कुछ भी पृथक्ता नहीं रह जाती, तब उसको 'प्रणय' कहते हैं। प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेकी आशामें जब दुःख भी परम सुख हो जाता है और अमिलनमें सभी सुख अपार दुःखमय प्रतीत होते हैं, वही 'प्रणय' जब उत्कर्षको प्राप्तकर इस स्थितिपर पहुँच जाता है, तब उस पावन प्रेमका नाम 'राग' होता है।

जब नित्य अनुभूत प्रियतम श्रीकृष्ण प्रतिपल नये-से-नये दिखायी देते हैं, प्रतिपल वे अधिक-अधिक अत्यन्त महान्, अनुपम, पवित्र, सरल, सुन्दर और मधुर दिखायी देते हैं, राग जब उत्कर्षको प्राप्त होकर सीमातीत रूपसे बढ़ जाता है, तब जो ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, वे 'अनुराग' के नामसे कहे जाते हैं।

जब प्राणत्यागसे भी अधिक अत्यन्त घोर तथा कठिन दुःख सर्वथा तुच्छ हो जाता है, वरं प्रियतम श्रीकृष्णकी प्राप्तिके

यह भाव जब उच्च स्तरपर पहुँच जाता है, तब उस प[illegible] मधुरतम, परम निर्मल, परम विशुद्ध, सर्वदिक्-पवित्र 'भाव'[illegible] 'महाभाव' कहते हैं। इस महाभावके परमोज्ज्वल, निता[illegible] पवित्र, निर्मल दिव्य स्वर्गसदृश 'मोदन' और 'मादन' दो सर्वो[illegible] स्तर हैं, जो प्रेमके पूर्ण प्राकट्यका परिचय देते हैं। इनमें 'माद[illegible] नामक 'महाभाव' परम दुर्लभ तथा स्वाभाविक ही स्वतन्त्र है इसका प्रकाश केवल श्रीराधाजीमें ही है। स्नेहसे मोदनतक सभ[illegible] स्तर श्रीकृष्णमें तथा समस्त व्रजाङ्गनाओंमें—मधुरभावमय रागात्मिका प्रीतिसे संयुक्त—गोपरमणियोंमें हैं। व्रजसुन्दरिय[illegible] इन्हीं विभिन्न स्तरोंके प्रेमसे श्रीकृष्णसुखार्थ, जो श्रीकृष्णकी नित्य-नवोत्साहपूर्वक सहज सेवा—उपासना करती हैं, श्रीराधाजी उनमें मुख्य तथा सर्वप्रधान श्रीकृष्णसेविका या श्रीकृष्णाराधिका हैं। अतएव श्रीकृष्ण इस प्रेमके 'विषय' हैं। साथ ही इस प्रेमके समस्त स्तर श्रीकृष्णमें भी हैं। अतएव वे इस प्रेमके 'आश्रय' भी हैं अर्थात् वे भी व्रजसुन्दरियोंको सुख पहुँचाना चाहते हैं। गोपरमणियोंमें श्रीराधा 'मादनाख्य महाभाव' रूपा हैं। इसलिये वे परम आश्रय रूपा हैं और वे श्रीकृष्णको सुखी देखकर उससे अनन्तगुना सुख लाभ करती हैं। श्रीराधाजीके इस सुखकी स्थितिपर विचार करके श्रीकृष्ण इस प्रेमके आश्रय बनते हैं और वे नित्य श्रीराधाको आराध्या मानकर उनकी सेवा-उपासना करके उन्हें सुख पहुँचाना चाहते हैं। यह उनका परस्पर आश्रय-विषय-सम्बन्ध नित्य है। यही प्रेमका वह सर्वोच्च स्तर है, जहाँतक मानवबुद्धि अनुमान लगा सकती है। यों तो वास्तविक प्रेम उत्तरोत्तर प्रतिक्षण वर्धनशील है और वह सर्वथा अनिर्वचनीय ही नहीं, अचिन्त्य भी है। इस प्रेमके मूर्तिमान् दिव्य चिन्मय विग्रह श्रीराधाकृष्णयुगल हैं। यही इनका युगल-स्वरूप है। प्रेमी साधक इन्हीं श्रीराधामाधव-युगलकी उपासना किया करते हैं।

साधक अपनी रुचि तथा स्थितिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णके या श्रीराधाके एक रूपकी भी उपासना कर सकते

हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण और श्रीराधा नित्य एक हैं और वे एक दूसरेमें सदा समाये हुए हैं, अतएव एककी उपासनासे दोनोंकी उपासना हो जाती है। तथापि साधक चाहें तो एक साथ 'युगल-स्वरूप' की उपासना कर सकते हैं। पर स्मरण रखना चाहिये कि युगल-स्वरूपकी उपासना साधक अपनी-अपनी रुचिके अनुसार श्रीलक्ष्मीनारायण, श्रीगौरीशंकर, श्रीसीताराम, श्रीराधा-माधव आदि किसी भी युगलस्वरूपकी कर सकते हैं। भगवान् तथा भगवती जैसे शक्तिमान् तथा शक्तिके रूपमें सदा एक हैं, वैसे ही भगवान्‌के सभी लीलारूप तथा भगवतीके सभी लीलारूप भी एक ही परमतत्त्वके विभिन्न-स्वरूप हैं।

श्रीराधा-माधव दोनों मङ्गलस्वरूपोंके पृथक्-पृथक् विग्रहकी चित्रपट, मूर्ति अथवा मानस—किसी भी रूपमें उपासना की जा सकती है। पर उसमें श्रीराधा-माधवकी धारणात्मक मूर्तियाँ अनन्य असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्यमयी होनी चाहिये। श्रीराधा-माधव अनन्त दिव्य रस-समुद्र हैं।

कोटि-कोटि सत मदन-रति सहज विनिन्दक रूप।
श्रीराधा-माधव अतुल शुचि सौन्दर्य अनूप॥
मुनि-मन-मोहन, विश्वजन-मोहन मधुर अपार।
अनिर्वाच्य, मोहन-स्वमन, चिन्मय सुख रस-सार॥
शक्ति, भूति, लावण्य शुचि, रस, माधुर्य अनन्त।
चिदानन्द-सौन्दर्य-रस-सुधा-सिन्धु, श्रीमन्त॥

श्रीमाधव नित्य निरुपम निरुपाधि चिन्मय नीलकान्तिमय परमोज्ज्वल मरकतमणि हैं और श्रीराधा नित्य निरुपम निरुपाधि चिन्मय स्वर्णकेतकी सुमन हैं। दोनों ही अपने-अपने सौन्दर्य-माधुरीसे परस्पर नित्य आकर्षणशील हैं। दोनों ही दोनोंके गुणोंपर नित्य मुग्ध हैं। एक ही परमतत्त्व दो रूपोंमें अपने-अपने अन्तरके मधुरतम भावोंसे एक दूसरेके प्रति लोलुप होकर निरुपम निरुपाधि अनिर्वचनीय सुषमासे सम्पन्न और परस्परके मधुरतम सुखविधानमें संलग्न हैं।

इन श्रीराधा-माधवके सर्वविध सात्त्विक शृंगारयुक्त दिव्य चिन्मय युगल-विग्रहकी उपासना साधक अपने-अपने भावानुसार कर सकते हैं।

युगल-स्वरूपके उपासकोंको उपासनासे पूर्व गौण-रूपसे कायिक, वाचिक, मानस—तीन व्रतोंसे युक्त होना चाहिये।

एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासमयाचितम्।
इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।
अपैशुन्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुच्यते॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥

देवर्षि नारदजीने राजा अम्बरीषसे कहा है—

'राजन्! दिनभरमें एक बार अपने-आप जो कुछ मिल जाय, उसे खा लेना और रातको उपवास करना—(अर्थात् जीभको वशमें रखना) यह 'कायिक व्रत' कहलाता है। वेदका (वेदमूलक शास्त्रोंका, संत-वाक्योंका) अध्ययन, भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन-कथन, सत्य (अनुद्वेगकारक, प्रिय-मधुर और हितकारक) भाषण और किसीकी भी निन्दा-चुगली न करना—यह 'वाचिक व्रत' कहलाता है और अहिंसा (किसीका भी अनिष्ट-चिन्तनतक न करना) किसीकी वस्तुपर मन न चलाना, मनसे ब्रह्मचर्यका पालन करना तथा कपट, दम्भ न करना 'मानस व्रत' है।'

साधकको शरीरसे या मनसे श्रीराधा-माधव-तत्त्वके ज्ञाता प्रेमस्वरूप सद्‌गुरुकी सेवामें रहकर उनसे दीक्षा लेनी चाहिये। कान फूँकनेवाले तथा मान, द्रव्यादिकी आशासे गुरु-पदका ग्रहण करनेवाले यथार्थ गुरु नहीं होते। यहाँ श्रीकृष्ण-प्रेममय पुरुष ही गुरु हैं। उनके संक्षेपमें ये लक्षण हैं—

शान्तो विमत्सरः कृष्णे भक्तोऽनन्यप्रयोजनः।
अनन्यसाधनो धीमान् कामक्रोधविवर्जितः॥
श्रीकृष्णरसतत्त्वज्ञः कृष्णमन्त्रविदांवरः।
कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं लोभहीनः सदा शुचिः॥
सद्धर्मशासको नित्यं सदाचारनियोजकः।
सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते॥

'गुरु उन्हें कहते हैं, जो शान्त (चित्त) हों, किसीसे डाह न करते हों, श्रीकृष्णके भक्त हों, श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्णके सिवा जिनको दूसरा कोई भी प्रयोजन न हो, काम-क्रोधसे सर्वथा रहित हों, श्रीकृष्णके रस-तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले हों, श्रीकृष्णके मन्त्र जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हों, श्रीकृष्णके मन्त्रका ही सदा आश्रय रखते हों, लोभसे सर्वथा रहित हों, अंदर और बाहरसे, मनमें तथा व्यवहारमें पवित्र हों, सच्चे

विनय, सरलता, श्रद्धा और सेवा आदि गुणोंसे युक्त होकर गुरुदेवसे रहस्य जानना तथा तदनुसार आचरण करना चाहिये। शास्त्रोंमें कहा गया है कि 'गुरुदेव ऐसे साधकको ही यह परम रहस्यमय विषय बतलावें जो श्रीकृष्णका अनन्य भक्त हों और दम्भ, लोभ, काम-क्रोधसे सर्वथा रहित हों'—

श्रीकृष्णेऽनन्यभक्ताय दम्भलोभविवर्जिने।
कामक्रोधविमुक्ताय देयमेतत् प्रयत्नतः॥

साधकको तन-मन-वचनका संयम रखते हुए चातककी एकनिष्ठाकी भाँति श्रीराधामाधव-युगलका ही अनन्य आश्रय रखना और उन्हींसे प्रेमयाचना करनी चाहिये। तथा—

सुचिरं प्रोषिते कान्ते यथा पतिपरायणा।
प्रियानुरागिणी दीना तस्य संगैककाङ्क्षिणी॥
तद्गुणान् भावयेन्नित्यं गायत्यभिशृणोति च।
श्रीकृष्णगुणलीलादेः स्मरणादि तथाचरेत्॥

'जैसे बहुत समयसे विदेश गये हुए पतिकी पतिपरायणा करना चाहिये।'

साधकको सर्वथा 'कामविजयी' होना चाहिये। कामी मनुष्य दिव्य श्रीराधामाधव-युगलकी मधुर उपासनाका कदापि अधिकारी नहीं है। साथ ही, उसे दम्भ, द्रोह, द्वेष, कामना, लोभ तथा विषयासक्ति— इन छः दोषोंसे सर्वथा मुक्त होना चाहिये। असत्संग (धन, स्त्री, मान, विषयवासना बढ़ानेवाले दृश्य, साहित्य, पदार्थ, व्यक्ति एवं वातावरण तथा इनके संगियों) का परित्याग, इन्द्रियसुखकी वासनाका त्याग, जनसंसर्गमें अरति, श्रीकृष्णके नाम-गुण-चरित्र-लीलादिके अतिरिक्त अन्य किसी भी विषयके श्रवण-कथन-मननसे चित्तकी सर्वथा विरक्ति तथा उपरति और निजसुख (इहलोक-परलोकके समस्त भोग तथा मोक्ष) की इच्छाका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

इस प्रकार करनेवाला श्रद्धालु साधक ही श्रीराधामाधव-युगलकी उपासनाका और उनके प्रेमका अधिकारी है। (क्रमशः)

सर्वोत्तम साधन—जनसेवा

भगवत्प्राप्तिके अनेक साधन हैं—कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति आदि। परंतु सर्वोत्तम साधन जनसेवा है। दीन-दुखियोंकी सेवा भगवत्प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है। श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर इसका उल्लेख है और श्रीनाभादासजीने 'भक्तमाल'में अनेक ऐसे भक्तोंके चरित्र दिये हैं, जो जनसेवामें ही लगे रहते थे, इसीको भगवत्प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन समझते थे और जो इसीके द्वारा कृतकृत्य हुए। इसमें किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं है। आपकी आत्मा ही गवाही देगी। जब आप किसी दुःखी जीवकी कुछ मदद करते हैं, तब आपकी आत्मा प्रसन्न होती है और ऐसा लगता है कि मेरे इस कामसे भगवान् प्रसन्न हो रहे हैं। जनतामें जनार्दनका वास है। चलती-फिरती नारायणकी मूर्तियोंकी अर्चनाका महत्त्व बहुत बढ़कर है। निष्कामभावसे, भगवत्प्राप्तिका साधन मानकर यदि जनताकी सेवा की जाय—दीन-दुखियोंके दुःख-दर्दमें मदद की जाय तो भगवान्‌की प्रसन्नताका यह सबसे बड़ा कारण होगा।

आजकल लोग जो जनसेवाका काम करते हैं, उसमें निष्काम मनोवृत्ति नहीं रहती। कुछ-न-कुछ स्वार्थ रहता है। राजनीतिक उत्कर्षकी भावना प्रधानतासे दिखायी देने लगी है। यह सब सकाम कर्म-प्रवृत्ति है। इसीको निष्कामभावसे किया जाय, तो यह सेवा निर्वाणप्राप्तिका प्रबलतम साधन है। (पं० श्रीकिशोरीदासजी बाजपेयी)
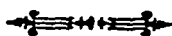
हिन्दू देवताओंका रहस्य

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी महाराज, 'जज स्वामी')

देवताओंकी आवश्यकता

'सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति ।'

(तैत्तिरीयोपनिषद् २।६)

उस देवने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ, तदनन्तर उसने अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण और शरीरकी रचना करके वह स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया। अन्तःप्रविष्ट अथवा प्रतिविम्बित होते ही वह जीव-भावको प्राप्त हो गया। अतः अल्पज्ञता, अल्पशक्तिमत्ता, परतन्त्रता, अल्पसुखित्व और कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि गुणमय भावोंके अनुरूप अनेक उपाधियाँ उसमें उपस्थित हो गयीं, जिसके फलस्वरूप जीव शाश्वत शान्तिकी तथा सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि-सम्पन्न किसी समर्थ देवके अनुसंधान और जीवनमें उसकी सहायता प्राप्त करनेके प्रयासमें संलग्न हो गया। भूमा-संज्ञक परम देवसे विलग होकर जीव देह-गेहादि अविद्याके परिणामस्वरूप 'अल्प'में ही रमणकर त्रिविध तापोंसे संतप्त हो रहा है, क्यों न हो—

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति'

(छान्दोग्य० ७।२३।१)

'जिव जबतें हरितें बिलगान्यो । तबतें देह गेह निज जान्यो ॥'

(विनय० १३६)

इसी कारण अल्प ज्ञान, अल्प सुख, अल्प शक्तिसम्पन्न दुःखी जीवको आवश्यकता हो गयी कि वह अपने प्रत्येक कार्यमें सफलता तथा सुख और शान्तिकी प्राप्तिके निमित्त किसी अलौकिक अथवा दैवीशक्तिका आश्रय ले। ये अलौकिक शक्तियाँ ही विभिन्न देवी-देवताओंके नामसे विख्यात हैं।

अन्य धर्मावलम्बियोंको भी आवश्यकता हुई कि लौकिक तथा पारलौकिक जीवन-यात्रामें किसी अलौकिक शक्तिमान् पुरुषपर निर्भर हों, जो उनके मतानुसार ईश्वरका पुत्र अथवा ईश्वरका संदेशवाहक है, अथवा उनके ईश्वरके निकट रहनेवाले देवदूतोंसे सम्बन्ध स्थापित करे। इस संदर्भमें एक घटना है। एक अंग्रेज उच्च सेनाध्यक्षको एक दिन युद्धभूमिमें युद्ध आरम्भ करना था, उसने प्रातः चार बजे उठकर परमात्मासे प्रार्थना की—'हे प्रभो ! तुम्हें ज्ञात है कि आज मैं कितना अधिक व्यस्त रहूँगा, अतः हे दीनदयाल! यदि मैं तुम्हें भूल जाऊँ, तो तुम मुझे मत भूलना।' यह विश्वमें सबसे छोटी प्रार्थनाके नामसे विख्यात है, परंतु इससे अलौकिक शक्तिकी सहायता प्राप्त करनेकी लालसा विदित होती है। जिनको तोप, बंदूक, गोला, बारूदपर विश्वास है, वे भी दैवीशक्तिके आश्रयकी परम आवश्यकता अनुभव करते हैं।

देवताओंका वर्गीकरण

देवताओंके वर्गीकरणका जितना सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक तत्त्व हिन्दुओंके सनातन धर्ममें पाया जाता है, उतना अन्य किसी मत-मतान्तरमें नहीं पाया जाता। हमारे ऋषियोंने समस्त वस्तुओंको तीन भागोंमें विभक्त किया है—(१) आधिदैविक, (२) आधिभौतिक एवं (३) आध्यात्मिक। नेत्रेन्द्रियका विषय रूप अधिभूत है, स्वयं नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है एवं भगवान् सूर्य अधिदेव हैं। इसी प्रकार समस्त ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियोंके अलग-अलग देवता हैं। तारे, नक्षत्रों तथा ग्रहोंके भी अधिदेवता होते हैं। जैसे—सूर्यादि ग्रहोंके क्रमशः अग्नि, जल, कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, शची तथा ब्रह्मा—ये अधिदेवता हैं।

यज्ञोंमें प्रयुक्त मन्त्रोंके भी देवता होते हैं। जैसे इन्द्र, वरुण, प्रजापति आदि। जो यज्ञभाग ग्रहण करके यजमानको अनुपम फल प्रदान करते हैं, वे सब देवता हैं। शरीर पञ्चभूतोंका बना हुआ है। इन पञ्चभूतोंकी प्रधानतासे निर्दिष्ट देवता हैं—आकाशके विष्णु, वायुके सूर्य, अग्निकी देवी दुर्गा, जलके गणेश, पृथ्वीके महादेव शंकर। ये पाँचों साक्षात् परमेश्वरके नित्य-स्वरूप हैं। अतएव सनातन धर्मावलम्बियोंको नित्यकर्ममें पञ्चदेवोपासना तथा पञ्चमहायज्ञ करना, साथ ही पञ्चयमों, पञ्चनियमोंका और चारों वर्ण एवं चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करना भी वैध एवं अनिवार्य है।

बृहदारण्यक उपनिषद्में एक प्रसङ्ग आया है। शाकल्यने महर्षि याज्ञवल्क्यसे प्रश्न किया कि देवता कितने हैं ? उन्होंने उत्तर दिया तीन हजार तीन सौ छः देवता हैं, जो वेदमन्त्रों और

मूर्तियोंमें संस्तुत होते हैं। पुनः प्रश्न करनेपर महर्षिने उनकी संख्या क्रमशः तैंतीस (आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति) छः, तीन, दो, डेढ़ तथा एक बतलायी (बृह० उप० ३।९।१)। इससे सिद्ध होता है कि हिन्दूधर्म बहुदेवतावादको स्वीकार करता हुआ मूलतः एकदेववादी या एकेश्वरवादी है।

एक देववाद

एक ही परमात्मा जो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है, वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली, सर्वावभासक, सर्वानन्द, सर्वव्यापक, सर्वात्मस्वरूप है। उसी चेतनतत्त्वका हम प्रत्येक मूर्तिमें तथा समस्त भावोंमें अधिकारी-भेदसे अपनी श्रद्धा एवं निष्ठाके अनुसार दर्शन करते हैं।

एक ही परमात्मा समस्त जड और चेतनमें तथा अनेक नाम-रूपोंमें प्रकट होता है। वह स्वयं निराकार भी है और साकार भी है। अतएव समस्त जड-चेतनमें तथा अनेकानेक नाम-रूपोंमें एक ही ब्रह्मतत्त्वकी भावना करते हुए उपासना करनी चाहिये। पञ्च मुख्य देव (तथा अन्य देवता भी) ब्रह्मके ही स्वरूप हैं। कुछके उदाहरणसहित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

ब्रह्मोपासना

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यादतीतं
शुद्धं बुद्धं मुक्तमप्यव्ययं च।
सत्यं ज्ञानं सच्चिदानन्दरूपं
ध्यायेदेवं तन्महो भ्राजमानम्॥
सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत्।

(शुकरहस्योपनिषद्)

इसका भाव है कि वह परमात्मा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, सच्चिदानन्दस्वरूप केवल ज्योतीरूपमें प्रकाशमान है। उसके ध्यान-उपासनाका यही प्रकार है।

गणेश-रूपसे ब्रह्मोपासना

'त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।' (गणपति-उपनिषद्)

आप (गणेश) आनन्दमय और ब्रह्ममय हैं। आप सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वय परमात्मा हैं। आप साक्षात् ब्रह्म हैं।

सूर्य-रूपसे ब्रह्मोपासना

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'
सूर्याद्धि खल्विमानि भूतानि जायन्ते। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।

(सूर्योपनिषद्)

सूर्य ही स्थावर-जङ्गमोंके मूल आत्मा हैं। सूर्यसे ही इस संसारके सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं। सूर्य साक्षात् परब्रह्म हैं।

देवी-रूपसे ब्रह्मोपासना

अत एवोच्यतेऽज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति।

(देवी-उप० १७)

ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा पूर्णतः स्वरूप ज्ञेय न होनेके कारण अज्ञेया, अन्तरहित होनेके कारण अनन्ता, सामान्य मनुष्यके लिये चक्षु-श्रोत्रादि इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण नहीं होनेसे अलक्ष्या, जन्मरहित होनेके कारण अजा, सारे विश्वमें एकमात्र अकेली होनेके कारण एका तथा समस्त विश्वमें अनेक रूपसे व्याप्त होनेसे वे विश्वात्मिका देवी नैका (अनेक रूपवाली) भी कही गयी हैं।

इससे सिद्ध होता है कि हिन्दुओंकी उपासनापद्धतिमें एक ही ब्रह्मकी अनेक देवी-देवताओंके रूपोंमें आराधना मान्य है। वास्तवमें हिन्दू-धर्म एकदेववादी है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।११)

प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें जो छिपे हुए हैं, वे सर्वव्यापक और समस्त प्राणियोंके परमात्मा हैं, वे ही सब कर्मोंके अधिष्ठाता—उनको फल देनेवाले एवं सबके आश्रय हैं। वही सबके साक्षी, चेतना प्रदान करनेवाले गुणोंसे रहित हैं।

देव-दर्शन

अब प्रश्न यह है कि देवता क्या साकाररूपसे मानवोंको दर्शन देते हैं? इसका उत्तर है—'हाँ।' कारण यह है कि निराकार जीव साकार शरीर धारण कर सकता है। सनातन

वैदिक सिद्धान्त है कि परमेश्वर निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार एवं सगुण-साकार तीनों है। सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) अद्वितीय ब्रह्म जो जगत्का निमित्त एवं उपादानकारण है, योग-मायाकी उपाधि धारण करके सब प्रकारके रूपोंमें प्रकट होनेमें समर्थ है। शास्त्रोंमें इसके प्रमाण भरे पड़े हैं। ध्रुवजीको साक्षात् भगवान् विष्णुने दर्शन दिये। प्रह्लादके लिये 'स्तम्भ'-मेंसे नृसिंहरूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए।

जनमानसमें यह धारणा व्याप्त है कि गोस्वामी तुलसीदासजीको चित्रकूटमें तथा सूरदासजीको भगवान् श्रीकृष्णके कई बार दर्शन हुए थे।

इतिहास, पुराण एवं संतोंके अनुभवके अनुसार पूर्वकालमें देवताओंका मृत्युलोकमें आगमन तथा उनके क्रिया-कलापोंका दर्शन बहुधा हुआ करता था।

तात्पर्य यह है कि परात्पर ब्रह्म परमेश्वर स्वयं अथवा भक्तोंकी रुचिके अनुसार अनेक देवी-देवताओंके रूपमें प्राणियोंको प्रत्यक्षरूपसे दर्शन देने तथा सहायता करने एवं उनको सुख-शान्ति-समृद्धि प्रदान करनेके लिये सदा-सर्वदा तत्पर रहते हैं।

उनकी कृपा-प्राप्ति एवं दर्शनोंके लिये समुचित साधना तथा उपासना आवश्यक है। अतएव दुर्वासनाओंको त्यागकर मनको प्रेम-जलसे धोएँ और श्रद्धाके लेपनसे पवित्र करके शास्त्रीय मन्त्रोंद्वारा सरल-चित्त एवं दम्भरहित भावसे परमात्मदेवका आवाहन करें तो आज भी उनका प्रत्यक्षरूपसे दर्शन एवं अनुभव हो सकता है और निश्चय ही होता है। संक्षेपमें यही हिन्दू-देवताओंका रहस्य है।

भगवान्की भगवत्ता

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ (श्वेता० ६। ११—१३)

'वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं। वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे ही सबके कर्मोंके अधिष्ठाता—उनको कर्मानुसार फल देनेवाले और समस्त प्राणियोंके निवासस्थान आश्रय हैं तथा वे ही सबके साक्षी—शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले, परम चेतनस्वरूप तथा सबको चेतना प्रदान करनेवाले, सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृतिके गुणोंसे अतीत हैं। जो विशुद्ध चेतनस्वरूप परमेश्वरके ही अंश होनेके कारण वास्तवमें कुछ नहीं करते, ऐसे अनन्त जीवात्माओंके जो अकेले ही नियन्ता—कर्मफल देनेवाले हैं, जो एक प्रकृतिरूप बीजको बहुत प्रकारसे रचना करके इस विचित्र जगत्के रूपमें बनाते हैं, उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान् परम सुहृद् परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, निरन्तर उन्हींमें तन्मय हुए रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परम आनन्द प्राप्त होता है, दूसरोंको, इस प्रकार उनका जो निरन्तर चिन्तन नहीं करते वह परमानन्द नहीं मिलता—वे उससे वञ्चित रह जाते हैं। जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा अकेले ही बहुत-से नित्य चेतन जीवात्माओंके कर्मफलभोगोंका विधान करते हैं, जिन्होंने इस विचित्र जगत्की रचना करके समस्त जीवसमुदायके लिये उनके कर्मानुसार फल-भोगकी व्यवस्था कर रखी है, उनको प्राप्त करनेके दो साधन हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा कर्मयोग, भक्ति दोनोंमें ही अनुस्यूत है। उन ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा प्राप्त किये जाने योग्य सबके कारणरूप परमदेव परमेश्वरको जानकर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है, वह कभी किसी भी कारणसे जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता। अतः मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्माको प्राप्त करनेके लिये अपनी योग्यता और रुचिके अनुसार ज्ञानयोग या कर्मयोग—किसी एक साधनमें तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिये।'

पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥' (अमरकोष १।१।११) ?

उत्तर—हम लोगोंके शरीरोंकी अपेक्षा उनका शरीर दिव्य होनेसे उनको भी देवयोनि कहा गया है। उनका शरीर वायुतत्त्वप्रधान होता है। जैसे वायु कहीं भी नहीं अटकती, ऐसे ही उनका शरीर कहीं भी नहीं अटकता। उनके शरीरमें वायुसे भी अधिक विलक्षणता होती है। घरके किवाड़ बंद करनेपर वायु तो भीतर नहीं आती, पर भूत-प्रेत भीतर आ सकते हैं। तात्पर्य है कि पृथ्वीतत्त्वप्रधान मनुष्यशरीरकी अपेक्षा ही भूत-प्रेत आदिको देवयोनि कहा गया है।

प्रश्न—माता, पिता आदिको देवता क्यों कहा गया है; जैसे '**मातृदेवो भव**' आदि ?

उत्तर—'**मातृदेवो भव**' आदिमें 'देव' नाम परमात्माका है। अतः माता, पिता आदिको साक्षात् ईश्वर मानकर निष्काम भावसे उनका पूजन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न—देवताओंको कौन-से रोग होते हैं, जिनका इलाज अश्विनीकुमार करते हैं ?

उत्तर—हमारे शरीरमें जैसे रोग (व्याधि) होते हैं, वैसे रोग देवताओंको नहीं होते। देवताओंको चिन्ता, भय, ईर्ष्या, जलन आदि मानसिक रोग (आधि) होते हैं और उन्हींका इलाज अश्विनीकुमार करते हैं।

प्रश्न—देवता और भगवान्‌के शरीरमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—देवताओंका शरीर भौतिक और भगवान्‌का अवतारी शरीर चिन्मय होता है। भगवान्‌का शरीर सत्-चित्-आनन्दमय, नित्य रहनेवाला, अलौकिक और अत्यन्त दिव्य होता है। अतः देवता भी भगवान्‌को देखनेके लिये लालायित रहते हैं (गीता ११।५२)।

प्रश्न—देवलोक और भगवान्‌के लोकमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—देवलोक क्षय होनेवाला, अवधिवाला और कर्मसाध्य है। परंतु भगवान्‌का लोक (धाम) अक्षय, अवधिरहित और भगवत्कृपासाध्य है।

प्रश्न—मनुष्य स्वर्ग पानेकी और देवता मर्त्यलोकमें मनुष्यजन्म पानेकी अभिलाषा क्यों करते हैं ?

उत्तर—मनुष्य सुख-भोगके लिये ही स्वर्गलोककी इच्छा करते हैं। मनुष्यशरीरसे सब अधिकार प्राप्त होते हैं। मोक्ष, स्वर्ग आदि भी मनुष्यशरीरसे ही प्राप्त होते हैं। देवता भोगयोनि हैं। वे नया कर्म नहीं कर सकते। अतः वे नया कर्म करके ऊँचा उठनेके लिये मर्त्यलोकमें मनुष्यजन्म चाहते हैं। जैसे राजस्थानके लोग धन कमानेके लिये दूसरे नगरोंमें तथा विदेशमें जाते हैं, ऐसे ही देवता ऊँचा पद प्राप्त करनेके लिये मृत्युलोकमें आना चाहते हैं।

प्रश्न—मनुष्यजन्म देवताओंको भी दुर्लभ क्यों है ?

उत्तर—मनुष्यशरीरमें नये कर्म करनेका, नयी उन्नति करनेका अधिकार है। इसमें मुक्ति, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। परंतु देवता भोगपरायण रहते हैं और केवल पुण्यकर्मोंका फल भोगते हैं। उनको नये कर्म करनेका अधिकार नहीं है। अतः मनुष्यशरीर देवताओंको भी दुर्लभ है।

प्रश्न—भगवान्‌के दर्शन करनेपर भी देवता मुक्त क्यों नहीं होते ?

उत्तर—मुक्ति भावके अधीन है, क्रियाके अधीन नहीं। देवता केवल भोग भोगनेके लिये ही स्वर्गादि लोकोंमें गये हैं। अतः भोगपरायणताके कारण उनमें मुक्तिकी इच्छा नहीं होती। इसके सिवा देवलोकमें मुक्तिका अधिकार भी नहीं है।

भगवान्‌के दो रूप होते हैं—सच्चिदानन्दमयरूप और देवरूप। प्रत्येक ब्रह्माण्डके जो अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु और महेश होते हैं, वह भगवान्‌का देवरूप है और जो सबका मालिक, सर्वोपरि परब्रह्म परमात्मा है, वह भगवान्‌का सच्चिदानन्दमय रूप है। इस सच्चिदानन्दमय रूपको ही शास्त्रोंमें महाविष्णु आदि नामोंसे कहा गया है। भगवान् भक्तिके वशमें होकर भक्तोंके सामने तो सच्चिदानन्दमय रूपसे प्रकट हो जाते हैं, पर देवताओंके सामने देवरूपसे ही प्रकट होते हैं। कारण कि देवता केवल अपनी रक्षाके लिये ही भगवान्‌को पुकारते हैं, मुक्त होनेके लिये नहीं।

मनु और शतरूपा तप कर रहे थे तो ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु और महेश कई बार उनके पास आये, पर उन्होंने अपना तप नहीं छोड़ा। अन्तमें जब परब्रह्म परमात्मा उनके पास आये, तब उन्होंने अपना तप छोड़ा और उनसे वरदान माँगा।

प्रश्न—भक्तोंके सामने भगवान् किस रूपसे आते हैं ?

उत्तर—सामान्य भक्त (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी आदि)

सामने भगवान् देवरूपसे आते हैं और विशेष भक्ति अनन्यभाव) वाले भक्तके सामने भगवान् सच्चिदानन्दमय ब्रह्माविष्णु आदि) रूपसे आते हैं। परंतु भक्त उन दोनों गोंको अलग-अलग नहीं जान सकता। यदि भगवान् जना तभी वह जान सकता है।

वास्तवमें देखा जाय तो दोनों रूपोंमें तत्त्वसे कोई भेद ीं है, केवल अधिकारमें भेद है। देवरूप भगवान्‌की शक्ति मित है और सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्माकी शक्ति सीम है।

प्रश्न—यज्ञ आदि करनेसे देवताओंकी पुष्टि होती है और । आदि न करनेसे वे क्षीण हो जाते हैं— इसका तात्पर्य । है?

उत्तर—जैसे वृक्ष, लता आदिमें स्वाभाविक ही ल-फूल लगते हैं; परंतु यदि उनको खाद और पानी दिया य तो उनमें फल-फूल विशेषतासे लगते हैं। ऐसे ही शास्त्र-धिके अनुसार देवताओंके लिये यज्ञादि अनुष्ठान करनेसे ताओंको खुराक मिलती है, जिससे वे पुष्ट होते हैं और को बल मिलता है, सुख मिलता है। परंतु यज्ञ आदि न नेसे उनको विशेष बल, शक्ति नहीं मिलती।

यज्ञ आदि न करनेसे मर्त्यदेवताओंकी शक्ति तो क्षीण ती ही है, आजानदेवताओंमें जो कार्य करनेकी क्षमता होती उसमें भी कमी आ जाती है। उस कमीके कारण ही ारमें अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि उपद्रव होने लगते हैं।

प्रश्न—क्या देवोपासना सबके लिये आवश्यक है?

उत्तर—जैसे प्राणिमात्रको ईश्वरका स्वरूप मानकर आदर-सत्कार करना चाहिये, ऐसे ही देवताओंको ईश्वरका स्वरूप मानकर उनकी तिथिके अनुसार उनका पूजन करना गृहस्थ और वानप्रस्थके लिये आवश्यक है। परंतु उनका पूजन कोई भी कामना न रखकर, केवल भगवान् और शास्त्रकी आज्ञा मानकर ही किया जाना चाहिये।

प्रश्न—देवोपासना करनेसे क्या लाभ है?

उत्तर—निष्कामभावसे देवताओंका पूजन करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और वे देवता यज्ञ (कर्तव्य-कर्म) की सामग्री भी देते हैं। उस सामग्रीका सदुपयोग करके मनुष्य मनोऽभिलषित वस्तुकी प्राप्ति कर सकते हैं (गीता ४। १२)।

प्रश्न—क्या देवोपासना करनेसे मुक्ति हो सकती है?

उत्तर—देवताओंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर निष्कामभावसे उपासना करनेसे मुक्ति हो सकती है। मृत्युलोकमें भी पुत्र माता-पिताको, पत्नी पतिको ईश्वर मानकर उनकी निष्कामभावसे सेवा करे तो भगवत्प्राप्ति हो सकती है। यदि सम्पूर्ण प्राणियोंमें ईश्वरभाव करके निष्कामभावसे केवल भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे उनकी सेवा, आदर, पूजन किया जाय तो उससे भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है (गीता १८। ४६)।

अगर सकामभावसे देवोपासना की जाय तो उससे मुक्ति नहीं होगी। हाँ, देवोपासनासे कामनाओंकी पूर्ति हो जायगी और उसका अधिक-से-अधिक यह फल होगा कि उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी—'**यान्ति देवव्रता देवान्**' (गीता ९। २५)।

सर्वाङ्ग-उपासना

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथां श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्द्धन्नमाधोक्षजम्॥

'हे जिह्वे! केशवका कीर्तन कर, चित्त! मुरारिको भज, युगल हस्त! श्रीधरकी अर्चना करो, हे दोनों कानो! तुम च्युतकी कथा श्रवण करो, नेत्रो! श्रीकृष्णका दर्शन करो, युगल चरणो! भगवत्स्थानोंमें भ्रमण करो, अरी नासिके! कुन्दचरणसेविता तुलसीकी गन्ध ले और हे मस्तक! भगवान् अधोक्षजके सामने झुक।'

स्वसंवेद्य परम देवता

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

क्षीरसागरके सौम्य शृङ्गपर भगवती आदिशक्ति पराम्बाके प्रति शिवद्वारा उपदिष्ट नाथयोगामृतकी प्राणशक्ति द्वैताद्वैत-विलक्षण परमात्म-ज्ञान है, जो स्वसंवेद्य परम देवता, परमात्मा अलखनिरंजन, अमायिक निर्मल परमतत्त्वका स्वारस्य है। सर्वदेवतास्वरूप आदिनाथ महादेव शिव अलखनिरंजन ही परमदैवत-दैवत्वके अधिष्ठान हैं। नाथदेवताका गोरक्षसिद्धान्त-संग्रहके मङ्गलाचरणमें स्वरूप-वर्णन किया गया है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः॥
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च।
मध्ये नाथः परं ज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्॥

जिनकी बायीं ओर निर्गुणस्वरूप (ब्रह्म) और दाहिनी ओर अद्भुत निजा शक्ति—इच्छाशक्ति (परमेश्वरी, पराम्बा महामाया) विराजमान हैं और बीचमें जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार द्वन्द्वातीत (अलखनिरंजन द्वैताद्वैत-विवर्जित-स्वरूप) विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ (आदिब्रह्म, आदिनाथ परमेश्वर) को नमस्कार है। जिसकी बायीं ओर (कल्याणस्वरूप शिव) शम्भु और दाहिनी ओर (विश्वव्यापक) विष्णु विराजमान हैं और मध्यभागमें परमज्योतिःस्वरूप वे (अलखनिरंजन परमेश्वर) श्रीनाथजी विराजमान हैं, वही श्रीनाथस्वरूप ज्योति (प्राणियोंके हृदयमें स्थित अज्ञान) अन्धकारको नष्ट करती है। निःसंदेह यह नाथदेवता ही हमारे आत्मस्वरूपका प्रकाशक है। उसका यह माङ्गलिक स्वरूप ही नाथदैवत—देवत्व है। यही स्वसंवेद्य परमतत्त्वके रूपमें अभिहित है। गोरखबानीके अठारहवें पदमें महायोगी गोरखनाथजीने कहा है—**'ससंवेद सोहं प्रकासं'** यह परमात्मा स्वसंवेद्य है, आत्माका प्रकाश है। गोरक्ष-उपनिषद्‌में आदिनाथ श्रीनाथदेवताकी अभिव्यक्तिपर प्रकाश डाला गया है।

'आदौ देवो महानन्दान्निर्ममे देवता स्वयम्॥'

सबसे पहले (श्रीनाथ देवता) भगवान् शिव महानन्दसे (सच्चिदानन्दस्वरूप) स्वयं देवतारूप अभिव्यक्त हुए। नित्यनाथकृत सिद्धसिद्धान्तपद्धति (१।३)में उल्लेख है (स्वसंवेद्यनाथ ज्योतिके व्यापक स्वरूपका निदर्शन है)—

न ब्रह्मा विष्णुरुद्रौ न सुरपतिसुरा नैव पृथ्वी न चा
नैवाग्निर्नापि वायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव का
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधिर्नैव कल्
स्वयं ज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानन्द

हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर! आपके परमप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और देवगण, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, दिशाएँ, काल, वेद, यज्ञ, सूर्य तथा च विधिकल्पकी भी पहुँच नहीं है। एकमात्र सत्स्वरूप शक्ति ज्योति आप (स्वसंवेद्य) परमपदमें अभिव्यक्त है

गोरखबानी (सबदी १११) में शिवगोरक्ष मह गोरखनाथने स्वसंवेद्य परमदेवता अलखनिरंजन (परमपद स्वरूप-चिन्तनमें कहा है—

उदै न अस्त रात न दिन सरबे चराचर भाव न भिन्न।
सोई निरंजन डाल न मूलसर्वव्यापीक सुषम न अस्थूल।

इस सबदीका आशय यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड (परम देवता) अलखनिरंजन परमात्मा सर्वव्यापक है महान्-से-महान् और अणु-से-अणु है। ऐसा होकर भी वह सूक्ष्म है न स्थूल है, वह सर्वाकार है, वह काल देशसे सर्वथा अतीत है। यह कहना युक्तिसंगत नहीं है कि किस समय विशेष महिमामें अभिव्यक्त होता है और न कहा जा सकता है कि किन लोक-लोकान्तरोंमें वह प्रभुसत्तासे विराजमान है। वह सार्वकालिक और सर्वाका वह कालातीत है, वह अलखनिरंजन है जो योगियोंका ध्येय और परमाराध्य तथा परम उपास्य है। श्रीनाथदै देवत्वकी यही विलक्षणता है। महादेव आदिनाथ पर शिवके स्वरूपके चिन्तनका आधार द्वैताद्वैतविलक्षणवाद निःसंदेह महादेव—आदिदेवता सत्-असत्से विल परमदेवत्व है। संकेत मिलता है देवत्व-अभिव्यक्तिक अतएव **'परमकारणं परमेश्वरः परात्परः शिवः स्वस्वरू सर्वतोमुखः सर्वाकारतया स्फुरितुं शक्नोतीत्यतः शक्ति शिवोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन स्वश सहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत्।'** (सिद्धसिद्ध पद्धति ४।१३)

प्रस्थानत्रयीमें प्रत्यधिदेवता-निरूपण

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

अधिदैवकी प्रामाणिकता

निग्रह-अनुग्रहादि-शक्तिसम्पन्न स्वप्रकाश समृद्ध ब्रह्मकी संज्ञा 'देव' है तथा आधिभौतिक और आध्यात्मिक जगत्‌के संस्थापक, संचालक, उद्दीपक और पोषक तत्त्वकी संज्ञा 'देवता' है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार सम्पूर्ण जगत् चिदाश्रित, चिद्विलास, चिद्विवर्त, चिन्मय और चिन्मात्र है तथा माया सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मके समाश्रित अनिर्वचनीया ज्ञानेच्छा-क्रियाशक्तित्रयात्मिका सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका है। मायागत विशुद्ध शक्ति और सत्त्वयुक्त ब्रह्मकी संज्ञा 'ईश्वर' है[1]। ईश्वर लोकानुग्रहके लिये स्वेच्छासे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपसे तथा इन्द्रियानुग्राहक लोकपाल इन्द्रादि देवरूपसे स्फुरित और अवतरित होता है। अविद्या, काम और कर्मात्मिका शक्तिके योगसे ब्रह्म ही 'जीव' होता है। उसे कर्मोपासना-विशेषके समुचित अनुष्ठानसे इन्द्रादि देवशरीरोंकी प्राप्ति होती है। देवविग्रह द्रव्य-सूक्ष्म-विपाकात्मक (यज्ञसारसर्वस्व) होता है। सप्तान्न ब्राह्मणने दर्श, पूर्णमासको इसी अभिप्रायसे देवान्न माना है।

देवगन्धर्व, पितृदेव, आजानजदेव, कर्मदेव, देव, देवराज इन्द्र, देवगुरु बृहस्पति, प्रजापति और ब्रह्म—ये देवोंके मुख्य प्रभेद तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) क्रमसे सिद्ध होते हैं। इनमें जन्मतः गन्धर्व 'देवगन्धर्व' कहे जाते हैं। देवलोक-विशेषमें स्मार्तकर्म-विशेषसे उत्पन्न 'आजानजदेव' कहे जाते हैं। अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मोंसे देवभावको प्राप्त देव 'कर्मदेव' कहे जाते हैं। यज्ञमें हविर्भाग ग्रहण करनेवाले देव कहे जाते हैं। देवोंके राजा 'इन्द्र' कहे जाते हैं। देवोंके गुरु 'बृहस्पति' कहे जाते हैं। देवगुरु बृहस्पतिका प्रेरक और प्रकाशक तत्त्व 'प्रजापति' (विराट्) कहा जाता है। प्रजापतिका प्रेरक और प्रकाशक तत्त्व 'ब्रह्म' कहा जाता है। त्रैलोक्यशरीरधारी ब्रह्म समस्त संसारमण्डलमें व्याप्त हिरण्यगर्भ कहा जाता है। अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र और प्रजापति—ये तैंतीस हविर्ग्रहण करनेवाले देव हैं। अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र—ये आठ वसु हैं। दशविध प्राण और आत्मा (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और मन) ये एकादश रुद्र हैं। संवत्सरके बारह मास द्वादश आदित्य हैं। (बृहदारण्यक ३।९।२)। प्राणोंका कारण अन्न, अन्नका कारण काल और कालका कारण सूर्य (आदित्य) है। सूर्यके द्वारा निमेषादिसे लेकर बारह मासरूप संवत्सरकी सिद्धि सम्भव है। पञ्चभूतात्मक वसु, करणात्मक रुद्र और कालात्मक आदित्यके अधिष्ठाता और अभिमानी चेतन 'देव' मान्य हैं। **'देवाश्चोत्तरमार्गगान्'** (तैत्तिरीयवार्तिक ५१४) के अनुसार जो उपासनासहित श्रौतकर्म करते हैं, वे उत्तरायणसे उत्क्रमणकर देव बनते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट होता है कि जब कर्मदेव भी मुख्य देव नहीं, तब विद्वान् मनुष्य मुख्य देव कैसे हो सकता है? अणिमादिसम्पन्न देवता इतरेतर प्रकृति (एक-दूसरेके कारण) होते हैं—**'इतरेतरजन्मानो भवन्ति इतरेतरप्रकृतयः'** (निरुक्त दैवतकाण्ड ७।१।४)। प्रातः अग्निसे सूर्य अभिव्यक्त होता है—**'एष प्रातः प्रसुवति'** (मन्त्र० १।५।७), सायं सूर्यसे अग्नि अभिव्यक्त होता है। अदितिसे दक्षकी और दक्षसे अदितिकी अभिव्यक्ति होती है—**'अदितेर्दक्षो दक्षाद्वादितिः'** (ऋक्संहिता १।७।२।४)। यदि भावनाके उत्कर्षसे **'सदा तद्भावभावितः'** (भगवद्गीता ८।६) के अनुसार किसी विद्वान् ब्राह्मणको देहत्यागके बाद अपने पुत्रका पुत्र होना पड़े तो उसमें उसका देवत्व नहीं माना जा सकता। अग्नि, वायु और सूर्य कर्मफल देनेके लिये लोकमें स्वेच्छासे उत्पन्न होते हैं—**'कर्मजन्मानः' 'आत्मजन्मानः'** (निरुक्त दैवतकाण्ड ७।१।४)।

इस प्रकार **'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'**

१-पुराण एवं आगमोंके अनुसार नित्यतृप्त, सर्वज्ञानसमन्वित सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सर्वशक्तिमान् और सर्व-ऐश्वर्यसमन्वित सर्वान्तर्यामी परमात्मा ही ईश्वर, परमेश्वर या महेश्वर-शब्द-वाच्य है। योगशास्त्रके अनुसार क्लेश, कर्मविपाक और आशयोंसे अपरामृष्ट परमपुरुष ही परमेश्वर शब्द-वाच्य है।

क्ता पुरुषो भोज्या प्रकृतिः ।
खदुःखमोहसंज्ञं ह्यन्नभूतमिदं जगत् ।
ग्निर्वै देवानामन्नादः सोमोऽन्नम् ॥

(मैत्रायण्युपनिषद् ६।१०)

का और सोमका, अपान और प्राणका तथा जीव का संयोग योग है—

यद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्' (ईशावास्यो० ४), **'न गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा'** ० ३।१।८)—इन स्थलोंमें द्योतन गुणके योगसे देवत्व गौण है। जिस प्रकार लोहाको दग्धा कहनेपर **'दग्धुर्दग्धा'** (जलानेवालोंका जलानेवाला) कहनेकी इसी प्रकार इन्द्रियोंको देव कहनेपर इन्द्रियानुग्राहक देवदेव कहना उपयुक्त है। **'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी दिशः श्रोत्रे·····'** (मुण्डक० २।१।४), **ग्भूत्वा मुखं प्राविशत्'** (ऐतरेय० २।४), **देशः'** (ऐत० १।४), **'चन्द्रमा मनसो जातः०'** ३१।१२) आदि स्थलोंमें करण और देवका युगपत् योग भी इन्द्रियोंको गौण देव सिद्ध करता है। **यात्मं श्रोतव्यमधिभूतं दिशस्तत्राधिदैवतम्'** पनिषद् ५) आदि स्थलोंमें अध्यात्म और अधिभूतसे नधिदैवका उल्लेख भी इन्द्रियोंसे इन्द्रियाधिष्ठात्री—ग्राहक देवोंको भिन्न सिद्ध करता है। **'तस्माद्वा त्मनि सर्वे प्राणाः, सर्वे लोकाः सर्वे वेदाः सर्वे देवाः च भूतान्युच्चरन्ति'** (मैत्रायण्युपनिषद् ६।३२), **त्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि व्युच्चरन्ति'** (बृहदारण्यक० १।१।२०) इन श्रुतियोंमें करणों) से देवोंका पृथक् उल्लेख भी इन्द्रियातीत पोषक है।

ग्निर्देवता वातो देवता०' (यजु० १४।२०), **'तेजो पं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः स्मि'** (ईशा० १६), **'अग्ने नय सुपथा राये'** (ईशा० आदि स्थलोंमें अधिदैवका इन्द्रियरूपसे आध्यात्मिक, गादिरूपसे आधिभौतिक और अनुग्राहक अन्तर्यामि-आधिदैविक चित्रण है।

ग्रह, हविर्ग्रहण, हविर्भोजन, तृप्ति और प्रसाद (अनुग्रह) रूप विग्रहादि पञ्चक देवताको चेतन सिद्ध करते हैं। ब्रह्मसूत्र देवताधिकरण (१।३।९।२६—३३) के अनुसार देवताओंको ऐश्वर्यशाली चेतन माना गया है। अतः सूर्य और आदित्य नामसे वाच्य एक ही अधिष्ठातृ देवताको पृथक्-पृथक् अर्पित चरुके ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं। जैसे एक समयमें विविध यजमानोंद्वारा चरु निवेदित करनेपर भी परमैश्वर्यशाली इन्द्रादि उसे ग्रहण करनेमें युगपत् (एक साथ एक ही समयमें) समर्थ होते हैं, वैसे ही एक ही देव अपने विविध नामोंद्वारा अपने लिये प्रदत्त चरुको भी स्वीकार करनेमें समर्थ हैं, अतः पृथक्-पृथक् विधि सार्थक है। केन, कठ आदि उपनिषदों तथा रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतादिमें इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, उमा आदिके मूर्तिमान् होनेका पर्याप्त उल्लेख उक्त तथ्यका पोषक है। शिवोपनिषद् (११३) में देवाधिष्ठित कर्म ही फलप्रद मान्य है—

ईश्वराधिष्ठितं कर्म फलतीह शुभाशुभम्।
ग्रामस्वामिप्रसादेन सुकृतं कर्षणं यथा॥

पृथ्वीमें प्रतिष्ठित प्रत्यक्षसिद्ध आहवनीय अग्निमें हविको आत्मसात् कर देवताओंके पास ले जानेकी क्षमता है। यद्यपि देवताओंका सामान्य निवास-स्थान स्वर्ग है, **'द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम्'** (शतपथ० १४।३।२।८), **'देवगृहा वै नक्षत्राणि'** (तैत्तिरीय० १।३।२।२) तथापि पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी कर्म और अधिकारके सम्पादक होनेसे इनके स्थान हैं।

नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकस्मृते
लोकमस्मै यजमानाय धेहि।
नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोक-
स्मृते लोकमस्मै यजमानाय धेहि॥

(मैत्रायण्यु० ६।३५)

'अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो
वा अन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।

(निरुक्त, दैवतकाण्ड ७।५।२)

सप्तान्न ब्राह्मणमें मनुष्यान्नसे पृथक् और सूक्ष्म देवान्नका वर्णन मनुष्योंसे पृथक् दिव्य देवताओंका सत्त्व सिद्ध करता है। **'विश्वे देवा अमर्त्याः'**—'विश्वेदेव अमर्त्य हैं' (वाजसनेयिसं० २१।१७) **'सुप्रावीरिन्द्र! मर्त्यस्तवोतिभिः'**—हे इन्द्र!

मनुष्य तेरी लीलाओंसे सुरक्षित है, (अथर्व० २०।२५।१), '**इन्द्र ! ओजिष्ठ ! ओजिष्ठस्त्वं देवेषु असि, ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्**' (यजुः० ८।३९)—'हे इन्द्र ! जैसे तुम देवताओंमें अति तेजस्वी हो, वैसे ही मैं मर्त्योंमें ओजस्वी होऊँ' आदि स्थलोंमें अमर्त्यों—देवों और मर्त्यों-मनुष्योंमें उपजीव्य-उपजीवक और उपास्य-उपासक-भाव दर्शाकर श्रुतिने मनुष्य और देवताओंमें भेद सिद्ध किया है।

सूतसंहिताके अनुसार सूक्ष्मरूपसे सभी प्राणियोंका शरीर देवतामय ही है। सम्यग्ज्ञानवानोंके शरीरमें सभी देवता प्रत्यगात्मरूपसे स्फुरित होते हैं। सन्मार्गस्थ कर्मनिष्ठ वैदिकोंके विशुद्ध शरीरमें देव-देवतारूपसे स्फुरित होते हैं। वेदोंमें अनधिकृत तान्त्रिकोंके मलिन मन्दसत्त्वात्मक शरीरमें देवताओंका मन्द स्फुरण होता है। प्राकृतोंके जीवनमें देवता तिरोभूत ही रहते हैं। 'सर्व शरीर देवमय है' इस तथ्यके मर्मज्ञोंको अपने और पराये शरीरोंको क्षत, विक्षत, अंकित और तिरस्कृत नहीं करना चाहिये। स्वयंको और सबको देवतारूप समझकर समलङ्कृत और सत्कृत रखना चाहिये—

सम्यग्ज्ञानवतां देहे देवताः सकला अमूः।
प्रत्यगात्मतया भान्ति देवतारूपतोऽपि च॥
वेदमार्गैकनिष्ठानां विशुद्धानां तु विग्रहे।
देवतारूपतो भान्ति द्विजा न प्रत्यगात्मना॥
तान्त्रिकाणां शरीरे तु देवताः सकला अमूः।
वर्तन्ते न प्रकाशन्ते द्विजेन्द्राः शुद्ध्यभावतः॥
यथाजातजनानां तु शरीरे सर्वदेवताः।
तिरोभूततया नित्यं वर्तन्ते मुनिसत्तमाः॥
अतश्च भोगमोक्षार्थी शरीरं देवतामयम्।
स्वकीयं परकीयं च पूजयेत्तु विशेषतः॥

(सूतसंहिता ४।७।२४-२८)

जिस प्रकार एक ही तेज अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य होकर विलसित होता है, उसी प्रकार आकाशादि पञ्चभूत ही करणभेदसे त्रिविधताको प्राप्त होते हैं। वेदान्तप्रस्थानमें अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंके सम्मिलित सत्त्वांशसे इन्द्रादित्यादि अनुग्राहक देवोंकी अभिव्यक्ति मान्य है। '**सत्त्वसमष्टित इन्द्रियपालकानसृजत्**' (पैङ्गलो० १)। सांख्य-प्रस्थानमें वैकारिक (सात्त्विक) ज्ञानशक्ति-प्रधान अहंकारसे इन्द्रादित्यादि अनुग्राहक देवोंकी अभिव्यक्ति मान्य है—

सात्त्विक्या दिशो वायुः सूर्यो
वरुणोऽश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवताः।
अग्निरिन्द्रो विष्णुः प्रजापति-
र्मित्र इति कर्मेन्द्रियदेवताः॥

(गणेशोत्तरतापिन्यु० ४)

वेदान्त-प्रस्थानमें विषय (अधिभूत), करण (अध्यात्म) को जड तथा सुर, जीव, ईश्वरको चेतन और ब्रह्मको चिद्रूप माना गया है। अधिदैवोंके उत्कर्षापकर्षकी दार्शनिकता इस प्रकार है—

प्रकाश्यकी अपेक्षा प्रकाशकमें चित्ता (चिद्रूपता) की अधिक स्फूर्ति अपेक्षित है। चिद्रूप आत्मामें तारतम्य न होनेपर भी अभिव्यञ्जक सत्त्वमें तारतम्य है। श्रीमद्भागवतमें ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और पञ्चप्राणोंकी अभिव्यक्ति क्रियाशक्ति-प्रधान राजस (तैजस) अहंसे मानी गयी है, जो कि गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४के अनुरूप है—

राजस्याः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चवायवश्चाजायन्त।

सात्विक अहंसे मनसहित इन्द्रियानुग्राहक देवोंकी अभिव्यक्ति मान्य है। इससे यह सिद्ध होता है कि मन इन्द्रियोंका अनुग्राहक देव नहीं है। मनकी अपेक्षा इन्द्रियानुग्राहक दिक्, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति और मृत्यु (वरुण) रूप दस देवोंमें सत्त्वोत्कर्ष अधिक मान्य है[1]। मनके अनुग्राहक चन्द्रमें इन्द्रादिकी अपेक्षा सत्त्वोत्कर्ष अधिक है। उसकी अपेक्षा अहम्के अनुग्राहक रुद्रका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा महत्तत्त्वात्मक बुद्धि या चित्तके अनुग्राहक ब्रह्मा या वासुदेवका महत्त्व अधिक है। श्रीमद्भागवतादिमें चित्तके अनुग्राहक क्षेत्रज्ञ और उपास्य वासुदेव मान्य हैं। क्षेत्रज्ञ आत्मा है। '**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।**' (भगवद्गीता १३।२) के अनुसार चित्त

१-'दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः॥ (श्रीमद्भा० २।५।३०)

जहाँ महत्तत्त्वात्मक होकर कार्य है, वहाँ अविद्यात्मक (अव्यक्तात्मक) होकर कारण। इसी अभिप्रायसे सुषुप्तिमें चित्तसत्त्व मान्य है— **'चित्तैककरणा सुषुप्तिः'** (पैङ्गलोपनिषद् २) **'कार्योपाधिरयः जीवः कारणोपाधिरीश्वरः'** (शुकरहस्योपनिषद् १२) के अनुसार कार्योपाधिक चित् जहाँ जीव है, वहाँ कारणोपाधिक चित् ईश्वर। **'कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते'** (शुकरहस्योपनिषद् १२) के अनुसार कार्य-कारणरूप उपाधिविनिर्मुक्त 'चित्' ब्रह्म है। वही मुख्य देव है। तत्त्वसंदर्भमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, माया और ब्रह्म मुख्य सात तत्त्व हैं। पृथ्वीसे लेकर मायापर्यन्त पूर्व तत्त्व उपादेय और उत्तर तत्त्व उपादान है। उपादेयकी अपेक्षा उपादानका उत्कर्ष स्वाभाविक है। इसी क्रमसे इनके अधिदैवका भी महत्त्व मान्य है। पञ्चदेवोंमें निज इष्टको आकाशके अनुग्राहक माननेकी प्रथा भी है। मायाके अधिपति ईश्वर (अन्तर्यामी) का कार्योपाधिक अधिदैवोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व है। निरुपाधिक ब्रह्मकी सर्वोपरि महत्ता है।

सांख्यकारिकाने **'अष्टविकल्पो दैवः'** (५३), **'ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः'** (५४) इन कारिकाओंके माध्यमसे देवोंके अष्टप्रभेद और ब्रह्मादि संज्ञाका मुक्तस्वरसे प्रतिपादन किया है।

सांख्यदर्शनने **'देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य'** (२।११) इस सूत्रके माध्यमसे **'अग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यम्'** (बृहदारण्यक० २।१३) इस श्रुतिके अनुसार इन्द्रादि देवोंको इन्द्रियोंका अनारम्भक मानते हुए (उपादान न मानते हुए) भी उनमें इन्द्रियालय भूतलमें जलविन्दुलयके तुल्य मानकर देवताका अस्तित्व मुक्तस्वरसे स्वीकार किया है। **'देवादिप्रभेदाः'** (३।४६) सूत्रके माध्यमसे सृष्टिको दैवादिघटित माना है। शास्त्रोंने देव, विद्याधर, नाग, किन्नर, सिद्ध-गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि देवयोनियोंको स्वीकार किया है।

योगदर्शनके अनुसार स्वाध्यायसे इष्टदेवताका दर्शन एवं सांनिध्यकी प्राप्ति होती है। **'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः'** (योगसूत्र २।४४)। वेदान्तदर्शनने **'देवादिवदपि लोके'** (२।१।२५), **'अनावृत्तिः'** (४।४।२२), **'आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः'** (४।१।६), **'अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'** (१।२।१८) आदि सूत्रोंके द्वारा अधिदैवके अस्तित्व और विग्रहवत्त्वको मुक्तस्वरसे स्वीकार किया है।

अधिदैवोपासना और उसकी महत्ता

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म निर्गुण और निराकार हैं फिर भी वह भक्तोंपर अनुग्रहकर उनके प्रेमके वशीभूत होकर उनकी भावनाओंके अनुसार सगुण-साकार-विग्रह भी ग्रहण करता है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

(श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।७)

'अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति, स क्रतुं कुर्वीत॥'

(छान्दोग्य० ३।१४।१)

'तं यथा यथोपासते तथैव भवति'

(मुद्गलोपनिषद् ३)

सच्चिदानन्दस्वरूपकी भूमि, जल, तेज, वायु, व्योम, चन्द्र, सूर्य और यजमान (आत्मा) इन अष्टरूपोंमें आराधना की जाती है—

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्टकीर्तिताः॥

(नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्)

पञ्चदेव सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह-रूप पञ्चकृत्योंके कर्ता माने गये हैं। सृष्टिरूपा सरस्वती, स्थितिरूपा महालक्ष्मी, संहाररूपा रुद्राणी, तिरोधानरूपा पार्वती और अनुग्रहरूपा उमा मान्य हैं।

श्रीशिव, गणेश, शक्ति, सूर्य और विष्णु—ये पञ्चदेव मान्य हैं। पञ्चदेव जहाँ प्रकृति-पुरुषमय जगत्के कारण होते हैं, वहाँ स्वयं प्रकृति-पुरुषात्मक भी होते हैं।

देवाराधनमें मन्त्र, तन्त्र और यन्त्रका भी पर्याप्त महत्त्व है।

'मनश्चन्द्रो रविर्वायुर्दृष्टिरग्निरुदाहृतः' (योगशिखोपनिषद् ६।७०) के अनुसार मनसे चन्द्रका, सूर्यसे प्राणका और अग्निसे नेत्रका सम्बन्ध है। इसी प्रकार मङ्गलसे रक्तका, बुधसे वाणीका, गुरुसे बुद्धिका, शुक्रसे वीर्यका, शनिसे जठराग्निका,

मनःशक्ति-निरोधक भूच्छायारूप राहु और प्राणशक्ति-निरोधक चन्द्रच्छायारूप केतुसे स्वास्थ्यका सम्बन्ध है। पिशाच राक्षसोंसे स्नायुका, भूत-प्रेतसे अस्थिका, पितृगन्धर्वोंसे मज्जाका और विविध देवोंसे मांस-रुधिरका सम्बन्ध है।

विविध देवताओंसे सम्बद्ध अर्गला, कीलक और कवच, जीवनके रक्षक तथा विविध सौख्यके विधायक हैं। मनुष्य प्रायः साधारण कामनाओंसे ग्रस्त होता है, जब देवाराधनके द्वारा उसकी कामनाएँ पूर्ण होने लगती हैं तो उसे देवता-जगत्पर पूर्ण आस्था हो जाती है। फिर वह सर्वेश्वर भगवान्को भी प्राप्त करनेकी कामना करता है, श्रीमद्भागवतमें इस क्रमका ध्यान रखते हुए प्रारम्भिक एवं अन्तिम उपासना-क्रमका इस प्रकार निरूपण किया गया है—'जो ब्रह्मतेजका इच्छुक हो वह बृहस्पतिकी, जिसे इन्द्रियोंकी विशेष शक्तिकी कामना हो वह इन्द्रकी और जिसे संतानकी लालसा हो वह प्रजापतियोंकी उपासना करे। जिसे लक्ष्मी चाहिये वह माया देवीकी, जिसे तेज चाहिये वह अग्निकी, जिसे धन चाहिये वह वसुओंकी और जिसे वीरता चाहिये वह रुद्रोंकी उपासना करे। जिसे बहुत अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा हो वह अदितिकी, जिसे स्वर्गकी कामना हो वह देवताओंकी, जिसे राज्यकी इच्छा हो वह विश्वेदेवोंकी और जिसे प्रजाको अपने अनुकूल बनानेकी इच्छा हो वह साध्य देवोंकी आराधना करे। आयुकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंकी, पुष्टिकी इच्छासे पृथ्वीकी, प्रतिष्ठाकी इच्छासे पृथ्वी और द्यौकी (आकाशकी) उपासना करनी चाहिये। सौन्दर्यकी चाहसे गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी और सबका स्वामी बननेके लिये ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये। जिसे यशकी इच्छा हो वह यज्ञपुरुषकी, जिसे खजानेकी लालसा हो वह वरुणकी, विद्याकी इच्छा हो तो शंकरकी, पति-पत्नीमें परस्पर प्रेम बनाये रखनेकी इच्छा हो तो उमा भगवतीकी उपासना करे। धर्मोपार्जनके लिये भगवान् विष्णुकी, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी, बलवान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिये। राज्यकी इच्छाके लिये मन्वन्तरोंके अधिपति देवोंकी, अभिचारके लिये निर्ऋतिकी, भोगोंके लिये चन्द्रमाकी और निष्कामता प्राप्त करनेके लिये परमपुरुष नारायणकी आराधना करनी चाहिये। प्रशस्त प्रज्ञासम्पन्न व्यक्ति चाहे अकाम हो या सकाम अथवा मोक्षकाम, उसे तीव्र भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष परमात्माकी ही आराधना करनी चाहिये—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(श्रीमद्भा० २।३।१०)

दक्षिण भारतके प्रसिद्ध देवता—दक्षिणामूर्ति

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

भगवान् 'दक्षिणामूर्ति' की उपासनाका प्रचलन दक्षिण भारतमें विशेष है, उत्तरमें इनका प्रचलन उतना अधिक नहीं है। काशी-जैसी विद्यानगरीमें भी दक्षिणामूर्ति-मठ तो यथाकथञ्चित् पाये जाते हैं, परंतु सामान्य धार्मिक जनता इनसे विशेष परिचय नहीं रखती। इस विषयका विशेष ऊहापोह कर जो तथ्य अवगत हुए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

दक्षिणामूर्ति तान्त्रिक देवता हैं। इनके स्वरूप, पूजा, अर्चा एवं धार्मिक अनुष्ठानके विषयमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना हुई है, परंतु अधिकतर वे हस्तलेख-रूपमें उपलब्ध हैं। आदिशंकराचार्यका 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' अपनी आध्यात्मिक गरिमाके कारण विद्वत्समाजमें प्रख्यात है। इसमें केवल दस लम्बे पद्य उपलब्ध होते हैं। इस स्तोत्रपर अनेक टीकाएँ हैं।

'दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्'के नामसे एक उपनिषद् भी उपलब्ध होता है। इसका आरम्भ शौनकादि ऋषियोंके द्वारा चिरजीवी मार्कण्डेय ऋषिसे आध्यात्मिक प्रश्नके द्वारा होता है। ब्रह्मावर्तमें महाभाण्डीर वटके मूलमें महासत्रके लिये समवेत समित्पाणि शौनकादि ऋषियोंने मार्कण्डेय ऋषिसे पूछा कि 'किसके द्वारा आप चिरजीवी हैं तथा कैसे आप आनन्दका अनुभव करते हैं?' दोनोंका एक ही उत्तर था—'परमरहस्यभूत शिवतत्त्वके ज्ञानसे।' 'वह परम रहस्यभूत शिवतत्त्व-ज्ञान क्या है?' उत्तर मिला—'जिसके द्वारा

दक्षिणामुख शिव अपरोक्षीकृत हो जाते हैं—साक्षात् प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाते हैं, वही परमरहस्यभूत शिवतत्त्वका ज्ञान है।' पुनः प्रश्न हुआ—'दक्षिणामूर्ति शिव कौन हैं?' उत्तर मिला—'प्रलयकालमें समग्र जगत्को अपनेमें लीन कर स्वात्मानन्द-सुखमें जो आनन्दित होते हैं या प्रकाशित होते हैं, वही परम शिव दक्षिणामूर्ति हैं'—

'यः सर्वोपरमे काले सर्वान् आत्मनि उपसंहृत्य स्वात्मानन्दसुखे मोदते प्रकाशते वा स देवः।'

इस संदर्भमें दक्षिणामूर्तिके अनेक ध्यान, मन्त्र तथा रहस्यसूचक श्लोक दिये गये हैं। मेधाजननका—**'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये अस्मभ्यं मेधां प्रज्ञां यच्छ स्वाहा'**—यह २४ अक्षरोंवाला मन्त्र दिया गया है। इसके अनन्तर नाना फलप्रदायक मन्त्रों तथा उनकी अनुष्ठान-विधिका विधान दिया गया है। अन्तमें इसीको परमरहस्य शिवतत्त्वविद्याकी संज्ञा दी गयी है, जिसके अध्ययनसे साधक सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा कैवल्यका अनुभव करता है। इस उपनिषद्में दिये गये ध्यान-मन्त्रोंका उपयोग अन्य ग्रन्थोंमें भी दक्षिणामूर्ति शिवकी उपासनाके प्रसंगमें दिया गया है। इसके अतिरिक्त दक्षिणामूर्ति-संहिता, दक्षिणामूर्ति-पञ्चाङ्ग, दक्षिणामूर्ति-पटल, दक्षिणामूर्तिसंहस्रनाम, दक्षिणामूर्ति-दीपिका, दक्षिणामूर्ति-मन्त्रार्णव (शंकराचार्यरचित), दक्षिणामूर्तिपूजा-पद्धति आदि ग्रन्थ भी हस्तलेखमें उपलब्ध हैं, जो इस देवताकी प्रसिद्धि एवं लोकप्रियताके पर्याप्त प्रमाण हैं। शंकराचार्यके दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रका आदिम पद्य है—

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात् कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

आशय है—ज्ञानीकी दृष्टिमें विश्व स्वात्मगत तथा दर्पणमें प्रतिविम्बित नगरके समान है। वस्तुतः यह विश्व अपने ही अन्तर्गत है, परंतु मायासे बहिर्वत् प्रतीत होता है। प्रबोधकालमें मायाके नष्ट हो जानेपर यह पुनः अपने अद्वय आत्मरूपमें ही साक्षात्कृत होता है। यहाँ विश्व स्वीकृत होता है, परंतु वह चिन्मय है। अपने स्वातन्त्र्यके विलास एवं आत्म-भित्ति-स्थित चित्ररूपमें अङ्गीकृत है।

शंकराचार्यका यह दक्षिणामूर्तिस्तोत्र अपने आध्यात्मिक अर्थ तथा गम्भीर तात्पर्य रखनेके कारण अतीव प्रसिद्ध है। इसकी गम्भीरताका संकेत तो इसी बातसे हो सकता है कि इसपर आचार्यके पट्टशिष्य सुरेश्वराचार्यने इसके अन्तरङ्गको प्रकट करनेके लिये 'वार्तिक'की रचना की है, जिसपर रामतीर्थ यतिकी व्याख्या है। विद्यारण्य, स्वयंप्रकाशयति तथा पूर्णानन्दने इसे अपनी टीकाओंसे मण्डित किया है। स्वयंप्रकाशयतिने स्तोत्रको अद्वैततत्त्वका प्रतिपादक बतलाया है। उनका कथन है—

'सकलवेदान्तदुग्धाब्धेः न्यायमन्दरेण विचारनिर्मन्थनादाविर्भूताद्वैतामृतस्य विन्यासकलशभूतं श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रं सकललोकानुजिघृक्षया भोक्तृजीवभोग्यजगद्भोगप्रदपरमेश्वरमोक्षप्रदगुरूणामत्यन्ताभेदजनकं सकृत्पाठश्रवणमर्थमननादिमात्रेण परमपुरुषार्थप्रापकम् आरभमाणः ··· ।'

जैसे दुग्ध-सागरसे मन्दराचलके मन्थन करनेपर अमृतकी उत्पत्ति हुई थी, वैसे ही वेदान्तरूपी दुग्ध-सागरको न्यायमन्दरद्वारा विचारके मन्थनसे उत्पन्न अद्वैतरूपी अमृतसे यह स्तोत्ररूपी कलश परिपूर्ण है। यह चार वस्तुओंके अभेदका प्रतिपादक है। ये चार हैं—भोक्ता जीव, भोग्य जगत्, भोगको देनेवाला परमेश्वर तथा मोक्षको देनेवाला गुरु। इन चारोंके अभेदका प्रतिपादक यह स्तोत्र एक बार भी शब्द-श्रवण तथा अर्थ-मननसे परम पुरुषार्थको देनेवाला है। इस स्तोत्रके प्रतिश्लोकमें आवर्तित **'तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये'** पदकी व्याख्या स्वयंप्रकाशयतिने दो प्रकारसे की है—

१-परमेश्वर ही गुरुकी मूर्तिमें विराजमान हैं, उन्हें नमस्कार है। वह मूर्ति दक्षिणाभिमुख खड़ी है।

२-**'श्रीगुरुमूर्तये'—श्रीमती सच्चिदानन्दात्मिका गुर्वी अतिमहत्तरा मूर्तिः स्वरूपं यस्य तस्मै'** तात्पर्य है कि सच्चिदानन्दात्मक अत्यन्त महनीय स्वरूपको धारण करनेवाले परमेश्वर अथवा—

'श्रिया अनाद्यचिन्त्यमायाशक्त्या दक्षिणः सृष्टिस्थित्यन्तविरचनासुनिपुणश्चासौ अमूर्तिः परमार्थतोऽमूर्तिश्चाकारविशेषरहितः।'

—इस व्याख्यामें तीनों पदोंको पृथक् किया गया

ीलित किया है—

अन्तरस्मिन्निमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्।
बहिर्वन्मायया भाति दर्पणे प्रतिविम्बितम्॥

दक्षिणामूर्ति शिवका ही नामान्तर है, जो परमेश्वरके द्वारा वोंको अद्वैतत्वकी दीक्षा देनेके लिये गुरुरूपमें स्वीकृत है। क्षणामूर्ति शिवके गुरुरूपका द्योतक अभिधान है। इस नमें-'दक्षिणा' का अर्थ दो प्रकारसे किया जाता है— :) रामतीर्थयति तथा स्वयंप्रकाशयतिके अनुसार दक्षिण शाकी ओर मुख करके खड़ी मूर्ति—**'दक्षिणाभिमुखा र्तिर्यस्येति दक्षिणामूर्तिः।'** (२) दक्षिणामूर्ति उपनिषद्में क्षणाका अर्थ है—बुद्धि (शेमुषी) —

शेमुषी दक्षिणा प्रोक्ता सा यस्यामीक्षणे मुखम्।
दक्षिणाभिमुखः प्रोक्तः शिवोऽसौ ब्रह्मवादिभिः॥

(दक्षिणामूर्ति, उपनिषद्, पद्य १९)

जिसके साक्षात्कारमें बुद्धि प्रमुख साधन हो, उस शिवको ह्मवादीगण दक्षिणाभिमुख या दक्षिणामूर्तिके नामसे पुकारते । योगसूत्रके अनुसार ईश्वर ही पूर्वकालीन गुरुओंका भी गुरु है। वे गुरु तो कालावच्छिन्न होते हैं, परंतु ईश्वर तो कालसे अनवच्छिन्न है। फलतः ईश्वर ही **'गुरूणां गुरुः'** है और वही शिवरूपमें अद्वैतका उपदेष्टा है—

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

(पातञ्जलयोगसूत्र १।२६)

इच्छाको सफल बनानेकी क्षमता नहीं होती। शंकराचार्यकी तान्त्रिक दृष्टिमें यह गुरु 'दक्षिणामूर्ति'के नामसे व्यवहृत होता है। गुरुतत्त्वका किंवा स्वात्मदेवताका दक्षिणामूर्तिरूपमें वर्णन करनेसे शंकराचार्यका आगमानुराग स्पष्टतः प्रमाणित होता है। परम्परासे यह अत्यन्त प्रसिद्ध है कि गुरु और शिवमें कोई अन्तर नहीं होता। दोनोंकी कृपासे ही अष्टाङ्गयोगका ज्ञान तथा योगसिद्धि प्राप्त होती है—

गुरुप्रसादाल्लभते योगमष्टाङ्गलक्षणम्।
शिवप्रसादाल्लभते योगसिद्धिं च शाश्वतीम्॥

(मानसोल्लास ९।४६)

मानसोल्लासके वार्तिकमें सुरेश्वराचार्यने ओंकारकी विस्तृत व्याख्या की है और दिखलाया है कि इसमें पाँच अक्षर विद्यमान हैं—अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद। इन पाँचों अक्षरोंके क्रमशः पाँच देवता हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव। ये पाँचों तन्त्रसम्मत ३६ (छत्तीस) तत्त्वोंसे युक्त हैं अर्थात् इनके निवास होनेसे ओंकारके भीतर समस्त जगत्का अन्तर्भाव होता है। ये तत्त्व उपनिषत्प्रतिपाद्य हैं—

तद्यथा—शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् संतृण्णा। ओंकार एवेदं सर्वम्।

(छन्दोग्यउप० २।२३।३)

इस प्रणवका अर्थ है सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म,

१-अत्र च पूर्वार्धेन त्वम् पदार्थ उक्तः। उत्तरार्धे श्रीगुरुमूर्तये श्रीदक्षिणामूर्तये इति पदद्वयेन मूर्तिद्वययुक्तः तत् पदार्थ उक्तः। स्वात्मानमद्वयमिति पदद्वयसामानाधिकरण्येन यत्तच्छब्दाभ्यां च प्रत्यग् ब्रह्मैक्यलक्षणो वाक्यार्थ उक्तः। (स्वयंप्रकाशयतिकी टीका)

नित्यकूटस्थ ब्रह्म और यही आदि, मध्य एवं अन्त तीनोंसे शून्य है तथा यही '**गुरूणां गुरुः**' है।

सच्चिदानन्दरूपाय विन्दुनादान्तरात्मने ।
आदिमध्यान्तशून्याय गुरूणां गुरवे नमः ॥

(मानसोल्लास ९।४७)

प्रणवद्वारा प्रतिपाद्य '**गुरूणां गुरुः**' ये ही आनन्दमूर्ति दक्षिणामूर्ति हैं। सुरेश्वराचार्यने प्रथम श्लोकके अन्तिम वार्तिकमें ईश्वर, गुरु तथा आत्मा—इन तीन मूर्तियोंमें प्रतिष्ठित, आकाशके समान समस्त देहमें व्याप्त होनेवाले दक्षिणामूर्तिको नमस्कार किया है और इसे ही दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रका प्रतिपाद्य तात्पर्य स्वीकार किया है—

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदैर्विभागिने ।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥

(मानसोल्लास १।३०)

दक्षिणामूर्तिका सुन्दरमूर्ति भी अर्थ समझा जा सकता है, क्योंकि इनके ध्यानमें बड़ी ही सुन्दरता मिलती है।

स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमाला-
ममृतकलशविद्यां ज्ञानमुद्रां कराग्रे ।
दधतमुरगकक्ष्यं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥

(दक्षिणामूर्ति उपनिषद् ३)

'उनका रूप स्फटिक तथा चाँदीके समान शुभ्र है, उन्होंने अपने गलेमें मोतीकी अक्षमाला धारण की है, वे अमृतकलश, विद्यामुद्रा तथा ज्ञानमुद्रा धारण करनेवाले हैं, उनके कटिप्रदेशमें सर्प लिपटा है, मस्तकपर चन्द्रमाको धारण किये हुए तीन नेत्रयुक्त तथा नाना आभूषणोंसे अलङ्कृत भगवान् दक्षिणा-र्तिकी मैं स्तुति करता हूँ।'

दक्षिणामूर्तिके चार प्रकारके विग्रह उपलब्ध हैं—

१-वीणाधरमूर्ति—चार भुजावाली यह मूर्ति खड़ी हती है तथा शिष्योंको वीणा बजानेकी शिक्षा देती है।

२-योगमूर्ति—ध्यानावस्थामें यह मूर्ति आसनपर बैठी रहती है तथा शिष्योंको अपने दर्शनसे योगकी शिक्षा देती है।

३-ज्ञानमूर्ति—ज्ञानकी शिक्षा देनेवाली यह मूर्ति ज्ञानमुद्रामें विराजमान रहती है।

४-व्याख्यानमूर्ति—सभी शास्त्रोंका उपदेश देनेवाली यह मूर्ति व्याख्यानमुद्रा धारण किये है। अन्तिम दोनों मूर्तियाँ वीरासनमें उपविष्ट होकर तत्तत् मुद्राएँ धारण की हुई हैं।

इन मूर्तियोंकी उपलब्धि दक्षिण भारतमें विशेषरूपेण होती है। पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरमें वीणाधरमूर्ति एवं विष्णुकाञ्चीमें योगमूर्ति स्थित है। इस मूर्तिका निर्माण दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्के इस अष्टम पद्यके आधारपर किया गया प्रतीत होता है—

भस्मव्यापाण्डुराङ्गः शशिशकलधरो ज्ञानमुद्राक्षमाला-
वीणापुस्तैर्विराजत्करकमलधरो योगपट्टाभिरामः ।
व्याख्यापीठे निषण्णो मुनिवरनिकरैः सेव्यमानः प्रसन्नः
सव्यालः कृत्तिवासाः सततमवतु नो दक्षिणामूर्तिरीशः ॥

भाव यह है कि विशाल शाखाओंसे सम्पन्न वटवृक्षके नीचे ध्यानमुद्रामें एक युवक योगी उपविष्ट हैं। उपदेश सुननेके उत्सुक वृद्ध ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगणोंके द्वारा वे चारों ओरसे घिरे हुए हैं। अपने करकमलमें ज्ञानोपदेशकी मुद्रा धारण किये हुए हैं। आनन्दमूर्ति स्वात्माराम वे ही आचार्यशिरोमणि दक्षिणामूर्ति हैं, जिस रूपको अद्वैतवेदान्तकी शिक्षा देनेके लिये शिवने स्वयं धारण किया है—

मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वं युवानं
वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः ।
आचारेन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानन्दमूर्तिं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥

(स्वयंप्रकाशयतिका मङ्गलाचरण)

इस प्रसंगमें यह ध्यातव्य है कि यह गुरु किसी शब्दका प्रयोग नहीं करता। उसका उपदेश मौन व्याख्यान है। वह केवल अपनी शान्तमुद्राद्वारा ही ब्रह्मतत्त्वका अपरोक्ष ज्ञान उसके चारों ओर घिरनेवाले वृद्ध ऋषियोंको, उत्सुक शिष्योंको बतलाता है और इतने मात्रसे इनके सब संदेह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसीलिये तो दक्षिणामूर्ति उपनिषद्की आश्चर्यमयी वाणी है—

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥

देवाधिदेव परमात्माकी उपासना

(उज्जैनपीठाधीश्वर पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीश्यामनारायणाचार्यजी महाराजके अमृत वचन)

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् उस एक ही परमात्माका विद्वान् लोग अनेक नामोंसे वर्णन करते हैं। वस्तुतः देव-उपासना परमात्माके एक रूप-विशेषकी ही पूजा है। परम सत्ताके ही विभिन्न गुणों एवं शक्तियोंका प्रतिनिधित्व देवगण करते हैं। इस विराट् सृष्टिका उत्पादक, पोषक, संहारक एक परमात्मा ही है। उसे ही हम अनेक नामोंसे पुकारते हैं।

अध्यात्मशास्त्रोंमें देव-उपासनाकी विस्तृत चर्चा हुई है। ब्रह्मतत्त्वका प्रतिपादन करनेवाली उपनिषदोंमेंसे कुछ एक देवताओंके नामपर भी हैं, उनमें प्रतिपाद्य देवताके गुण, धर्म एवं आराधनाके प्रतिफल विस्तारपूर्वक बताये गये हैं। साधक अपनी आवश्यकता और आकाङ्क्षाके अनुरूप तत्सम्बन्धित देवताओंकी उपासना मनोयोगपूर्वक करके अपने अभीष्टकी पूर्तिमें सफलता प्राप्त कर सकता है। जैसे समस्त प्रजा एक राजाके राज्यमें रहती है तो भी उसे अलग-अलग प्रयोजनोंके लिये भिन्न-भिन्न विभागोंके कर्मचारियोंके पास जाना पड़ता है। देव-उपासनाका भी तात्पर्य यही है। ईश्वरके विराट्स्वरूपके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको उसकी क्रिया-किरणोंको 'देवता' नामसे हम पुकारते हैं। श्रीमद्भागवत (२।३।२—९)में कहा गया है—ब्रह्मतेजकी इच्छावालेको बृहस्पतिकी, इन्द्रियभोगोंके लिये इन्द्रकी, संतान-प्राप्तिके लिये प्रजापतिकी, लक्ष्मीके लिये मायादेवीकी, तेजके लिये अग्निकी, धनके लिये वसुओंकी, पराक्रमके लिये रुद्रकी एवं अन्नके लिये अदितिकी उपासना करनी चाहिये। स्वर्गके लिये आदित्योंकी, राज्यके लिये विश्वेदेवोंकी, लोक-प्रियताके लिये साध्यगणकी, दीर्घायुके लिये अश्विनीकुमारोंकी, पुष्टिके लिये वसुन्धराकी और प्रतिष्ठाके लिये द्यावापृथिवीकी आराधना करनी चाहिये। सौन्दर्यके लिये गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी, आधिपत्यकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माकी, यशके लिये यज्ञपुरुषकी, धनकी प्राप्तिके लिये वरुणकी, विद्याके लिये शंकरकी, दाम्पत्य-प्रेमके लिये गौरीकी उपासना करनी चाहिये। इसी प्रकार धर्मोपार्जनके लिये विष्णु भगवान्‌की, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी, बलवान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी, राज्यके लिये मन्वन्तरोंके अधिपति देवोंकी, अभिचारके लिये निर्ऋतिकी, भोगोंके लिये चन्द्रमाकी और निष्कामता प्राप्त करनेके लिये परमपुरुष नारायणकी आराधना करनी चाहिये।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

श्रद्धा और विश्वासकी सुदृढ़ भावनाके साथ हम शास्त्रोक्त विधि-विधानसे देवोपासना करें तो हमें लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।

प्रेषक—मदन शर्मा
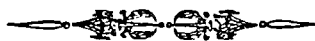
देवताका स्वरूप—एक संक्षिप्त परिचय

सम्पूर्ण विश्वमें सर्वोत्कृष्ट तत्त्व ही देव शब्दसे वाच्य है।
। धातु-कोशों और निरुक्त आदिमें सर्वशक्तिमान्, दीप्ति,
।, शोभा, लावण्य, ऐश्वर्य एवं अनन्त तथा अक्षय
ग्ययुक्त, नित्य, अजर, अमर, सदा किशोर एवं
ग्स्थामें रहनेवाले, आनन्द एवं सुखमें निमग्न, अलौकिक
त्वको देव या देवता कहकर निर्दिष्ट कराया गया है
पे इतने मात्रसे ही देवता-तत्त्वका सम्पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त
। देवता अनन्त दिव्य गुणोंके भण्डार होते हैं, उनके
इमें मात्र विशुद्ध सत्त्व ही समाविष्ट होता है, उनमें हेय-
य, निन्द्य, अवाञ्छनीय एक भी दुर्गुणका लेशमात्र स्पर्श
होता। वे सौशील्य, सौहार्द, सौजन्य, कारुण्य, मार्दव,
दान, प्रेम, परोपकार, क्षमा, सत्य, शुद्धि, औज्ज्वल्य,
य आदि अगणित कल्याणमय गुणगणोंके आकर होते
देवता स्वल्प स्तुति-प्रार्थना, पूजा, सत्कार एवं
ग-ध्यानसे अपने आराधकोंके पास पहुँचकर उन्हें सभी
रके वरदान देनेके लिये प्रसिद्ध हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, शुक,
कादि, नारद, उपमन्यु, चन्द्रहास, राजा सुरथ, समाधि
। तथा सुदर्शन आदिने अपनी स्वल्पकालीन साधना-
धना एवं अत्यल्प सामग्रियों तथा उपचारोंद्वारा स्तुति-
ना और पूजनद्वारा अपने इष्ट देवताओंको शीघ्र ही वशमें
लिया और उनके द्वारा अभीष्ट साम्राज्यादि, सुख-
ाग्यको प्राप्तकर सायुज्य, सामीप्य, सालोक्यादि मुक्तियोंको
अनायास हस्तगत कर लिया था। यह देवोपासनाका
धारण चमत्कार है। इतिहास, पुराण, वैदिक संहिताओं
काव्य-साहित्य आदिमें वर्णित सभी इतिवृत्तोंमें
ाओंका चरित्र ही प्राण है, वे स्मरण करते-न-करते अपने
सकके सामने आविर्भूत होकर उसके समस्त क्लेश-राशिको
कर उसे आनन्द एवं सुखसे परिप्लुत कर देते हैं। अनेक
स्थलोंपर देखा जाता है कि वे क्षणमात्रमें पहुँचकर सुदूर एवं दुर्गम्य, अलङ्घ्य पर्वत-समुद्रोंको पार करा देते हैं, मूक एवं समस्त विद्या-बुद्धिविहीन अपंग साधकको प्रगल्भ, वावदूक, वाग्मी एवं समस्त शास्त्रोंका मर्मज्ञ बना देते हैं। व्यास, वाल्मीकि, पाणिनि, कालिदासादि अनेक विद्वान् देवोपासना एवं देवप्रसादसे ही अद्वितीय प्रतिभाशाली कवि एवं विद्वान् बन सके थे। इसी प्रकार बड़े-बड़े चक्रवर्ती, सार्वभौम सम्राट् ससागरा वसुन्धराके आधिपत्यके साथ साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य आदि पदोंको भी उन्हींके अनुग्रहसे प्राप्त कर सके थे। ऐतरेय ब्राह्मणके आठवीं पञ्जिकाके द्वितीय अध्यायमें उल्लेख है कि शर्याति, वाजरलायन, सुगास, पैजवन, आवेक्षित, मरुत और परीक्षित-पुत्र जनमेजयका तथा देवगुरु बृहस्पतिने साक्षात् इन्द्रका भी विशिष्ट देवताओंकी शान्ति-पुष्टि करनेवाली अभिषेक-प्रक्रियासे विविध सरित्-समुद्रोंके जलोंके द्वारा अभिषिक्त कर देवांशके प्रवेशद्वारा उन्हें सभी राजाओं तथा देवताओंमें श्रेष्ठ रूपसे प्रतिष्ठित करा दिया था तथा उन्हें साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य और परार्धपर्यन्त आधिपत्यपदको प्राप्त कराया था और वे इस लोकमें स्वयम्भू, स्वराट्-सम्राट् आदि पदोंसे अलङ्कृत होकर अमर हुए तथा स्वर्गलोकमें भी उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हुईं। इसी प्रकार अन्य भी सकाम या निष्कामोपासकोंकी सभी कामनाएँ देवतागण पूर्ण करते हैं। उनकी लीलामात्रसे बड़े-बड़े समुद्र स्थलके रूपमें, स्थल पर्वतादि समुद्रके रूपमें, सुमेरुगिरि रजके तुल्य और रजःकणिका सुमेरुके तुल्य बन जाती है। अत्यन्त मृदु एवं तुच्छ तृण वज्रके रूपमें परिणत हो जाता है और अमोघ वज्र तृणके समान नगण्य और निष्क्रिय हो जाता है। ज्वालामालाकुलित प्रदीप्त अग्नि हिमके तुल्य शीतल एवं अतिशीत तुषारराशि तत्काल प्रचण्ड अग्निके रूपमें परिणत हो

जाती है। ऐसी अनेक अघटित-घटनापटीयसी शक्ति देवताओंमें ही स्वाभाविकरूपसे स्थित होती है—

अम्भोधिः स्थलतां स्थलो जलधितां धूलीलवः शैलतां
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम्।
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया
लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने देवाय तस्मै नमः॥

(सुभाषितावलि ३१५२)

पुराणोंमें विशेषकर भविष्यपुराणमें कान्यकुब्ज, कलिञ्जर, अजमेर तथा पाटलिपुत्र आदि नगरोंके निर्माणमें ऐसी चमत्कारपूर्ण देवशक्तियोंके कृपाप्रसादका उल्लेख है। विशेषकर मार्कण्डेयपुराण आदि पुराणोंमें सभी मनुओंकी उत्पत्ति और सुरथ आदि राजाओंको सावर्णि मनु आदि विशिष्ट पदोंकी प्राप्तिमें देवी-देवताओंके चमत्कार विस्तारसे निर्दिष्ट हैं।

वस्तुतः देवताओंके सभी चरित्र ही विशिष्ट होते हैं, वे कभी कहीं, किसी भी रूपमें प्रकट होकर अन्तर्हित भी हो सकते हैं। प्रायः इतिहास-पुराणों तथा महाकाव्यों आदिमें भी देवस्वरूपका विस्तारसे प्रतिपादन हुआ है। महाभारतके वनपर्वके नलोपाख्यानके अन्तर्गत कई अध्यायोंमें देवताओंके चरित्रोंका चित्रण हुआ है, उनमें प्रायः इन्द्र आदि देवता पृथ्वीपर आते-जाते रहते हैं। इन्द्र, यम, वरुण और अग्नि (महा० वनपर्व ५५।२३) ये सभी देवता दमयन्तीके रूप, शील, सौन्दर्य और अन्यान्य गुणोंकी चर्चा सुनकर उसकी प्राप्तिके लिये विदर्भनगरकी ओर उसके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये चल पड़ते हैं और वे जब यह जान जाते हैं कि दमयन्ती राजा नलका ही वरण करेगी तो कामरूप होनेके कारण सभी देवता नलका ही रूप धारणकर स्वयंवरमें उपस्थित हो जाते हैं। देवताओंके कुछ निश्चित चिह्न होते हैं, जो शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं, पर उन इन्द्रादि देवताओंने अपनेको सर्वथा ही नलके रूपमें परिवर्तित कर रखा था, किंतु अन्तमें दमयन्तीकी प्रार्थना और उसकी सत्यनिष्ठासे प्रभावित होकर जब उन्होंने कृपापूर्वक अपने स्वरूपको प्रकट किया तो उसने सुस्पष्ट रूपसे देखा कि इन्द्र, वरुण, अग्नि तथा यम—इन चार लोकपालोंके शरीरपर लेशमात्र भी स्वेदबिन्दु नहीं है, उन चारोंकी पलकें भी न हिलती हैं और न गिरती हैं(प्रसिद्ध है कि देवताओंकी स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ नहीं हो अधिक-से-अधिक वे योगनिद्रामें स्थित हो जाते हैं, किंतु समय भी कोई उनका तीव्र गतिसे ध्यान करता है तो वे पहुँच जाते हैं)। दमयन्तीने देखा जो उन्होंने पुष्पमालाएँ धा की हैं, वे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि दिव्य वृक्ष पुष्पोंसे बनी हैं और सदा नूतन नव-नव विकाससे युक्त कभी तनिक भी म्लान नहीं होतीं। उनपर मक्खियाँ नहीं बैठ और उनके वस्त्रोंपर धूलिकण न गिर रहे हैं, न स्थिर हो हैं। अतः उनके दिव्य शरीर सर्वथा उज्ज्वल और निर्मल ये सभी देवता सिंहासनोंपर बैठे हैं, किंतु उनके पैरो पृथ्वीतलका स्पर्श नहीं होता और उनके शरीरकी परछाईं पृथ्वीपर नहीं पड़ती। इधर राजा नलमें सारी बातें विपर थीं। इन्हीं चिह्नोंको परिलक्षित कर दमयन्तीने राजा नलव वरण कर लिया—

सापश्यद् विबुधान् सर्वानस्वेदान् स्तब्धलोचनान्।
हृषितस्रग्रजोहीनान् स्थितानस्पृशतः क्षितिम्॥
छायाद्वितीयो म्लानस्रग्रजःस्वेदसमन्वितः।
भूमिष्ठो नैषधश्चैव निमिषेण च सूचितः॥
सा समीक्ष्य तु तान् देवान् पुण्यश्लोकं च भारत।
नैषधं वरयामास भैमी धर्मेण पाण्डव॥

(महा०, वन० ५७।२४-२६)

इस प्रकारकी बातें वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य पुराणोंमें भी आती हैं। छान्दोग्योपनिषद्‌में भी कहा गया है वि देवतागण मनुष्योंकी तरह न कुछ खाते-पीते हैं और न किसी भी इन्द्रियसे कुछ भी ग्रहण करते हैं। वे सर्वदा संतृप्त एवं आनन्दित रहते हैं। केवल अमृतरसको देखकर ही सभी प्रकारसे परितृप्त हो जाते हैं—

'न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति'

(छान्दो० ३।६।१)

इसीलिये देवताओंके शरीरसे किसी भी प्रकारकी दुर्गन्धि, स्वेद, मल आदि प्रस्रवित नहीं होते हैं और उनका शरीर सौगन्ध्य, औज्ज्वल्य, नैर्मल्य तथा भव्य दीप्ति एवं कान्तिसे सदा परिव्याप्त रहता है। वे नित्य युवावस्थामें रहते हैं। उनके मूछ, दाढ़ी आदि नहीं होते, वे नित्य किशोर तथा तारुण्यके

अन्तरालमें रहते हैं[१]।

सभी शास्त्रोंके अनुसार देवताओंमें सभी योगजनित सिद्धियाँ स्वाभाविक रूपसे सहजात ही सिद्ध रहती हैं, इसलिये वे एक होनेपर भी सभी यज्ञों एवं उपासना-भूमियोंपर आहूत किये जानेपर सूक्ष्मरूपसे अवश्य उपस्थित हो जाते हैं। उनमें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता तथा कामावसायिता—इन अष्टसिद्धियोंके साथ ही अनूर्मि (शरीरमें भूख-प्यास आदि वेगोंका न होना), दूरश्रवण-दर्शन, (बहुत दूरकी वस्तु देख लेना और बहुत दूरकी बात सुन लेना), मनोजविता (मनके साथ ही शरीरका भी वहाँ पहुँच जाना), कामरूपता (इच्छानुसार रूप बना लेना), परकायप्रवेश (दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना), स्वच्छन्दमृत्यु (इच्छानुसार जीवित रहना तथा शरीर त्यागना), सहक्रीडानु-दर्शन (अप्सराओंके साथ होनेवाली देवक्रीडाका दर्शन), यथासंकल्पसिद्धि, अप्रतिहतगति, त्रिकालज्ञान, अद्वन्द्व (शीत-उष्ण, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके वशमें न होना), परचित्तज्ञान, प्रतिष्टम्भ (अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिकी शक्तिको स्तम्भित कर देना), अपराजय, आकाशगमन, कलावैदग्ध्य, अभिज्ञान, अतीन्द्रियार्थ-दृष्टत्व (अतीन्द्रिय—सूक्ष्म वस्तुओंका साक्षात्कार), पिपीलिकादि वार्ताज्ञान (पिपीलिका—चींटी आदि सभी प्राणियोंके शब्दों या वार्तालापों अथवा बोलीकी जानकारी), लोकान्तरगमन आदि सिद्धियाँ भी सहजात ही रहती हैं[२]। इसलिये देवता जन्मजात सिद्धों और साधनसिद्धोंसे भी उत्कृष्ट स्थितिमें रहते हैं। यह बात ब्रह्मसूत्रके देवताधिकरणके '**विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्**' इस २७वें सूत्रके शाङ्करभाष्यमें विस्तारसे प्रतिपादित है। महाभारत, शान्तिपर्व (३००। २६-२७) में भी कहा गया है कि सिद्ध, विद्याधर, योगी एवं देवतागण अपने योगबलके द्वारा अपने एक ही शरीरको हजारों, लाखों अथवा अनन्त रूपोंमें विकसित कर लेते हैं। वे एक साथ अनेक यज्ञ, स्थलों अथवा अपने भक्तों, उपासकों या साधकोंके पास पहुँच सकते हैं। अनेक देवमन्दिरोंमें पहुँच सकते हैं, इसके साथ ही वे पृथ्वी, पर्वत, उपवन, उद्यानोंमें अलग-अलग रूप धारण कर विचरण कर सकते हैं। किन्हीं भी रूपोंसे विषयोंका उपभोग कर सकते हैं। दूसरे अनेक रूप धारण कर तपस्यामें भी प्रवृत्त हो सकते हैं और फिर सब रूपोंको एक रूपमें समेटकर एक स्थानपर भी एक ही रूपमें दीख सकते हैं अथवा कहीं भी नहीं दीख सकते। जैसे सूर्य उदित होकर अपने किरणजालोंको संसारमें फैला देते हैं और फिर संध्याको उन्हें समेट लेते हैं, वैसे ही सभी देवता अपने स्वरूपोंका विस्तार कर सकते हैं[३]। यह शक्ति सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्वोंमें भी होती है, आजानज देवताओंमें तो यह शक्ति उत्कर्षकी सीमापर स्थित रहती है[४]।

देवप्रसाद-प्राप्त नानापुराणनिगमागमसम्मत श्रीरामचरित-मानसमें भी इस तत्त्वकी प्रतिच्छाया प्रतिपद दिखायी देती है। यहाँ केवल ऐसे दो-तीन स्थलोंके प्रसंग उद्धृत किये जाते हैं, जिनमें देवशिरोमणि श्रीराम अनेक अवसरोंपर अनेक रूपमें अपनेको अभिव्यक्त करते हैं। एक ही देवता एक ही समयमें अनेक प्रकारकी भावनावाले व्यक्तियोंके सामने उनके कर्म एवं भावनाओंके अनुरूप प्रकट हो सकता है, इस बातको प्रमाणित करते हुए श्रीराम जनकसभामें योगियोंको परमतत्त्वके रूपमें, भक्तोंको अपने-अपने—सूर्य, शिव, दुर्गा, राम, कृष्ण, हनुमान्, गणेशादि अलग-अलग इष्टदेवोंके रूपमें दीखने लगे थे। वे ही श्रीराम राक्षसोंके लिये कालस्वरूप और वीरोंको मूर्तिमान् वीररसके रूपमें दिखायी दे रहे थे—

१- रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम्॥ एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा।

(वा० रा०, अरण्यकाण्ड ५। १७-१८)

२-श्रीमद्भागवत (११। १५), लिङ्गपुराण (पू० अ० ६६ तथा अ० ८८), स्कन्दपुराण (ब्रह्म, अ० १८, अवन्तीखण्ड, सिद्धेश्वर-माहात्म्य अ० ५९), विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण तथा गरुडपुराण आदिमें इन सिद्धियोंका विशेष वर्णन हुआ है।

३- आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ। योगी कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥
प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित्कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत्। संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥

४-किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां देवानाम्। अनेकरूपप्रतिपत्तिसम्भवाच्चैकैका देवता बहुभी रूपैरात्मानं प्रविभज्य बहुषु यागेषु युगपदङ्गभावं गच्छति। परैश्च न दृश्यतेऽन्तर्धानादिशक्तियोगादित्युपपद्यते। (ब्रह्मसू०, देवताधिकरण सूत्र २७ का शाङ्करभाष्य)

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥
नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥

× × ×

एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥
(रा० च० मा० बालकाण्ड)

भगवान् श्रीकृष्ण-चरित्रसे सम्बद्ध इतिहास-पुराणादिमें उन्हें योगेश्वर नामसे अभिहित किया गया है। उनमें भी योगसिद्धियाँ जन्मजात देखी जाती थीं। मृद्भक्षण-लीलामें वे अपनी माता यशोदाजीको मुख खोलकर उसमें समस्त विश्व-ब्रह्माण्डको परिलक्षित कराते हैं और उनके मुखमें सूर्य, चन्द्र, तारागण, पर्वत, सागर तथा विविध वैचित्र्योपेत विश्वको देखकर माता यशोदा भयभीत हो जाती हैं। इसी प्रकार गोप-गोपियोंको आँखें बंद कराकर वे भीषण दावाग्निका पान कर लेते हैं। महारासमें गोपिकाओंकी संख्याके तुल्य ही अलग-अलग कृष्ण बन जाते हैं। बादमें अक्रूरके साथ मथुरा-यात्रामें अक्रूरजीके जलमें स्नानार्थ प्रविष्ट होनेपर यमुनाके अन्तर्जलमें शेषशय्यापर आसीन समस्त देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व तथा विद्याधर आदिद्वारा संस्तुत देखे जाते हैं, जिससे विस्मित होकर अक्रूर उनकी विस्तारपूर्वक स्तुति करते हैं (भागवत १०।४२) और जब वे कंसके धनुर्यज्ञकी सभामें मंचपर बैठते हैं तो श्रीरामके समान ही विभिन्न लोगोंको एक ही कृष्ण विभिन्न रूपमें दिखायी पड़ते हैं—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः

(श्रीमद्भा० १०।४३।

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके स रंगभूमिमें पधारे, उस समय वे पहलवानोंको वज्रकठ शरीर, साधारण मनुष्योंको नर-रत्न, स्त्रियोंको मूर्ति कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेव शासक, माता-पिताके समान बड़े बूढ़ोंको शिशु, कंसको मृ अज्ञानियोंको विराट्[१], योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोम वृष्णिवंशियोंको अपने इष्टदेव जान पड़े (सबने अपने-अ भावानुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृंगार, हास्य, व वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शान्त और प्रेमभक्तिरस अनुभव किया)।

इसके आगे जब वे सोलह हजार पत्नियोंसे विवाह क हैं तो उतने ही रूप धारणकर नित्य उनके लिये पृथक् निर्मि राजप्रासादोंमें अहर्निश उनके साथ ही आलाप-संलाप अ विनोद-विहार करते हुए गार्हस्थ्य जीवनयापन करते हैं महाभारतके युद्धमें वे अर्जुनके सामने विशाल विराट्रूप प्रकट होते हैं और चतुर्भुज-विष्णुके रूपमें अपनेको दिख हैं। यह स्थिति उनकी तब भी होती है, जब वे दुर्योधन सभामें दूत-रूपमें जाते हैं तथा वह उन्हें बंदी बन चाहता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुनको अ दिव्य स्वरूप दिखानेके लिये दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं अपने योगैश्वर्यमय-स्वरूपका दर्शन कराते हैं। वह उन आकृतिमें सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड तथा उनके मुखमें महाभार युद्धके सभी योद्धाओंको प्रविष्ट होते देख, घबड़ाकर अ भयभीत होकर उनकी प्रार्थना करता है और पूर्वरूपमें ही रि होनेके लिये विनय करता है—

१- इस श्लोकमें विराट् शब्द-प्रयोगमें 'ड' आर्षपद्धतिसे हलन्तके स्थानपर अजन्तके रूपमें प्रयुक्त हुआ है, अतः 'अविदुषाम्'के स्थानपर 'विदु पाठ ठीक लगता है, इसीका अनुवाद गोस्वामी तुलसीदासजीने 'बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा' कहकर इसी भावमें किया है।

तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

देवताओंके विषयमें उनके विशिष्ट लक्षणोंको ानेवाली एक श्रुति विशेष रूपसे प्रसिद्ध है, जिसमें कहा है कि देवता सदा दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं और भूत, ष्य तथा वर्तमानकी सभी बातोंको जानते हैं—'**विद्वांसो देवाः**' (शतपथ॰ ३।७।३।१०)। इसका प्रत्यक्ष हरण वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डके १५वें सर्गमें प्राप्त ा है, जहाँ रावणके द्वारा घोर उपद्रवोंसे पीड़ित देवतागण ाजीके पास जाकर अपनी करुण गाथा सुनाते हैं। सर्वज्ञ से भगवान् विष्णु इससे सर्वथा अवगत होकर उनके ाको दूर करनेके लिये वहाँ बिना बुलाये ही पहुँच जाते हैं, ो देवताओंका वास्तविक देवत्व है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा ॥

देवताओंके यथार्थ स्वरूपको देवता ही समझ सकते हैं। इसलिये देवस्वरूपको विशेषरूपसे हृदयङ्गम करनेके लिये जिज्ञासु व्यक्तिको मनुष्यत्वके धरातलसे किञ्चित् ऊपर उठकर, देवत्वकी भावनापूर्वक देवता-तत्त्वकी अवधारणाको शास्त्रों और यौगिक दृष्टियोंसे समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। शास्त्र कहते हैं—

'देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।'

अर्थात् देवताकी पूजा, उनकी सांनिध्य-प्राप्ति एवं उनके पूर्ण अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये साधकमें भी आंशिक दैविक गुणोंकी अवस्थिति आवश्यक है।

क्या देवता होते हैं ?

(पं॰ श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

आजकल अदृष्ट, देवता, ईश्वर आदि तत्त्वोंमें विश्वास न रना ही बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता एवं सूक्ष्मतार्किकताका प्रमाण ाना जाता है। ऐसे लोगोंका संसारमें विशाल साहित्य भी पलब्ध है। विशेषकर हीगल, कांट, मार्क्स, ऐंजिल्स तथा निन आदिके सिद्धान्त इसी आधारशिलापर आधारित हैं। ावर्टी आफ फिलासफी' तथा 'कैपिटल' आदि ग्रन्थोंमें इन ाद्धान्तोंको देखा जा सकता है। सम्पूर्ण पाश्चात्त्य ागत्—रूस, चीन आदि विशाल देशोंमें यही धारणा व्याप्त । यद्यपि प्रायः एक ही शताब्दी पूर्व प्रबल युक्ति, तर्क और ाजनैतिक धारणाओंपर संस्थापित साम्यवादियोंके सुदृढ़ दुर्ग म्पूर्ण विश्वमें आज बड़ी तीव्रगतिसे ध्वस्त हो रहे हैं, वेशेषकर पाश्चात्त्य यूरोपके रोमानिया, बुल्गारिया तथा मूल ोवियतसंघके आश्रित अनेक गणराज्य छिन्न-भिन्न होकर ाम्यवादी नास्तिक विचारधाराके विरुद्ध क्रान्ति कर बैठे हैं और दूसरा सुदृढ़ दुर्ग पूर्व एशियाके मंगोलिया, मंचूरिया, कोरिया और चीन आदि भी इससे पूर्णतः प्रभावित हैं और वहाँकी भी अदेववादी, अदृष्टविरोधी धारणा सर्वथा ध्वस्त हो चुकी है और यह परम्परा सृष्टिसे अनवरत ऐसी ही चली आयी है तथा वैदिक देववादी आस्तिक परम्परा ही सदा विजयी होती तथा सुस्थिर होती चली आ रही है, तथापि इस विषयपर साङ्गोपाङ्ग विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। आज देवताओंकी पूजा, भक्ति, उपासना आदि करनेवालोंको उच्च ज्ञान, विचार, विद्या, बुद्धिमें अक्षम, अयोग्य एवं अल्पज्ञ मानकर सर्वथा उनकी उपेक्षा कर दी जाती है और उनकी कोई बात नहीं सुनना चाहता।

किंतु यह विचारधारा आज कोई नयी बात नहीं है। पहले भी चार्वाक आदि अनेक दार्शनिकोंने बड़े प्रौढ़ तर्क और अनेक सूक्ष्म तर्क एवं युक्तियोंके आधारपर इसी बातका समर्थन किया था, जिनकी अंशभूत कुछ सार बातें जहाँ-तहाँ इतिहास-पुराणोंमें अब भी मिलती हैं, जिन्हें देखकर अनुमान होता है कि उनकी प्रौढ़ प्रतिपादन-परम्पराके सामने आजके इन नास्तिक वैज्ञानिकोंके निबन्ध एवं कथनशैली बालकोंके समान ही प्रतीत होती है।

'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'प्रमाणनयवार्तिक', माधवाचार्यकृत 'सर्वदर्शन-संग्रह', जिनभद्रसूरिकृत 'षड्दर्शन-समुचय' आदिमें चार्वाक-मतका संक्षिप्त संग्रह आश्चर्यजनक

है। स्कन्द तथा पद्मपुराणादिमें भी इसकी थोड़ी चर्चा आयी है। यहाँ उनमेंसे कथारूपमें निबद्ध एक रोचक घटना-मात्रका उल्लेख कर इस पक्षका संक्षेपमें दिग्दर्शन किया जा रहा है—

प्राचीन कालमें नन्दभद्र नामका एक सदाचारी वैश्य था। उसीके पड़ोसमें ही एक दूसरा सत्यव्रत नामका तार्किक, नास्तिक विचारका व्यक्ति रहता था। नन्दभद्र निरन्तर धर्मानुष्ठान करनेपर भी दुःख-दारिद्र्यसे पीड़ित रहता था। एक बार उसका इकलौता पुत्र सहसा मर गया। वह पुत्र-शोकमें पड़ा ही था कि उसकी साध्वी पतिव्रता स्त्री भी चल बसी। यह अवसर देखकर, हाय! हाय! करता हुआ सत्यव्रत उसके पास पहुँचा और कहने लगा—'तुम्हारे-जैसे धर्मात्मा व्यक्तिकी उत्तरोत्तर इस प्रकारकी दुर्दशा देखते हुए मेरी यह धारणा सत्य निकली कि यह धर्म और अदृष्ट सब असत्य एवं व्यर्थ हैं।' वह अपनी बाहरी आत्मीयता, सौहार्द और विशेष सहानुभूति दिखाते हुए कहने लगा कि मैं बहुत दिनोंसे तुमसे अपने मनकी बात कहना चाहता था, किंतु तुम्हारे प्रस्तावके अभावमें मैं अबतक कुछ नहीं कह सका। बिना प्रस्तावके बृहस्पतिका कथन भी हीन-भावना और अपमानका द्योतक होता है। इसपर नन्दभद्रने कहा—'आप गोप्य विषय हो तो भी अपने मनकी बात अवश्य कहिये। मैं उसे बड़े ध्यानसे सुनूँगा।' इसपर सत्यव्रतने कहा कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह अकाट्य, सम्पूर्ण वाग्दोषोंसे मुक्त और सभी तर्कोंसे परिपुष्ट होता है। देखो, तुमने जबसे धर्माचरण प्रारम्भ किया, तबसे तुम एक-से-एक क्लेशमें फँसते गये और अधिक धर्मानुष्ठान किया तो तुम्हारे स्त्री-पुत्र भी चल बसे। यह तुम्हारे धर्मानुष्ठानका ही तो फल है? भाई, देखो जिसकी तुम दिन-रात पूजा करते हो वे देवता कहाँ हैं। यदि वे होते तो हमें, तुम्हें अवश्य दिखायी पड़े होते। यह तो धूर्तोंकी अर्थोपार्जनके लिये व कल्पनामयी कूट विद्यामात्र है[1]। पितरोंके उद्देश्यसे उपद्रव (दुरुपयोग) देखकर अर्थात् मृत पितरोंके दूसरोंको भोजन कराते देखकर मुझे बड़ी हँसी आती लोग कहते हैं कि संसारका उत्पादक-संचालक परमात् दोनों बातें झूठी हैं, यह सत्यस्वरूप विश्व तो स्वभावसे सदासे ही चला आ रहा है, भला देखो इन् चन्द्रमा आदि ग्रह-नक्षत्रोंको कहाँ कोई चलाता दीख वायु भी स्वतः प्रकृत्या प्रवाहित होता है और वृ यथासमय देश-कालानुसार होती है, रुकती है और प्रभावसे तृण, लता, धान्य एवं वृक्षादि भी उत्पन्न होते शीत, आतप आदिके अनुसार पक्व होते हैं एवं नष्ट हो ऋतुएँ भी समयानुसार आती-जाती रहती हैं। यह पृथ्व आदि किसी भी जीव-जन्तुपर नहीं टिकी है। स्वभावसे है सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्र आदि आसमानमें टिके हैं, वैसे ही भी स्वभावसे निराधार स्थित है और स्वभावसे ही गङ्गादि नदियाँ भी बहती हैं तथा इनके उद्गम आदिकी वास्तविक कथा नहीं है। यही दशा पर्वतों और समुद्रोंक समस्त प्राणिवर्ग भी स्त्री-पुरुषके सम्पर्कसे गर्भद्वारा उत्पन्न हैं। इनमें देवताओंकी सहायताकी बात व्यर्थ है। अतः ि देवता या ईश्वरकी स्थितिकी कल्पना करना व्यर्थ है, क्य कोई भी ऐसा व्यक्ति कहीं दिखायी नहीं पड़ता[2]।

इसी प्रकार चार्वाक अथवा बृहस्पति मतानुर देहात्मवादी नास्तिकोंका भी यही कथन है कि स्वर्ग, अपव परलोक और आत्मा-परमात्मा आदि कोई नियामक तत्त्व है, अग्निको उष्ण, जलको शीत, वायुको शीतस्पर्शयुक्त, मयूरादि पशु-पक्षियोंका विचित्र रूप किसने बनाया अ

१-यदा प्रभृति भद्र त्वं पाषाणस्यार्चने रतः। तदा प्रभृति किञ्चित् तव न हि पश्यामि शोभनम्॥
एकः सोऽपि सुतो नष्टो भार्या चार्याप्यनश्यत। क्रूराणां कर्मणां साधो फलमेवंविधं भवेत्॥
क्व देवाः सन्ति मिथ्यैतद् दृश्यन्ते चेद्भवन्त्यपि। सर्वा च कूटविप्राणां द्रव्यायैषा विकल्पना॥
(स्कन्द० मा० ४५। ७१—८१)

२-स्वभावतो विश्वमिदं हि वर्तते स्वभावतः सूर्यमुखा भ्रमन्त्यमी। स्वभावतो वायवो वान्ति नित्यं स्वभावतो वर्षति चाम्बुदोऽयम्॥
स्वभावतो रोहति धान्यजातं स्वभावतो वर्षशीतातपत्वम्। स्वभावतः संस्थिता मेदिनी च स्वभावतः सरितः संस्रवन्ति॥
स्वभावतः पर्वता भान्ति नित्यं स्वभावतो वारिधिरेष संस्थितः। स्वभावतो गर्भिणी सम्प्रसूते स्वभावतोऽमी बहवश्च जीवाः॥
यथा स्वभावेन भवन्ति वक्रा ऋतुस्वभावाद्वदरीषु कण्टकाः। तथा स्वभावेन हि सर्वमेतत् प्रकाशते कोऽपि कर्ता न दृश्यः॥
(स्कन्द० मा० ४५। ८५—८८)

ोने नहीं; यह सब स्वभावसे ही होते हैं[1]। केवल दृश्य
्में विश्वास रखनेवाले आधुनिक वैज्ञानिकों तथा
ाभौतिक मतवादियोंका भी प्रायः यही मत है।

किंतु पद-वाक्य-प्रमाण-पारावारीण प्राचीन सनातन
क परम्परानुयायियोंका मत इससे सर्वथा भिन्न है। स्वयं
भद्रने भी सत्यव्रतकी पूर्वोक्त युक्तियोंका उसीकी शैलीमें
क्तयोंद्वारा खण्डन करते हुए कहा था—'आप जो यह कहते
के धर्म एवं सदाचारके कारण ही क्लेशोंकी परम्परा लगी
ी है'— यह आपकी बात पूर्ण तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि
ायोंको इससे भी अधिक कष्ट भोगते देखा जाता है और
तकोंके द्वारा उन्हें यहाँ भी वध-बन्धन आदि क्लेश प्राप्त होते
साथ ही ऐसे अनाचारी, चोर, डाकू एवं व्यभिचारियोंका
ाने घरमें प्रवेश आप भी बुरा मानते हैं और उनके
ाहसपूर्ण कुकृत्योंका प्रतीकार भी करना चाहते हैं। 'अरे !
बड़ा सत्पुरुष धर्मात्मा है, आज बड़े कष्टमें पड़ गया' ऐसी
ानुभूति केवल सदाचारियोंको ही प्राप्त होती है। दुष्टोंके
ानसे लोग यही कहते हैं—'जैसा उसने किया वैसा फल
ा।' देव-मूर्तियोंकी पूजाको दुर्भाग्यपूर्ण पाषाण-पूजा
हकर आपने जो मूर्खताकी बात बतलायी वह भी निस्सार
। जिस प्रकार अन्धा सूर्यको नहीं देख सकता, इसी प्रकार
मान्य व्यक्ति भी देवता एवं धर्मके तत्त्वको नहीं समझ
कता। ब्रह्मा, इन्द्र, राम, कृष्ण आदि अवतारों तथा व्यास,
सिष्ठ, वाल्मीकि आदि ऋषियोंके द्वारा स्थापित रामेश्वर आदि
ंग इतिहास-प्रमाणके साथ आज भी प्रत्यक्षमें हैं। क्या वे
भी मूर्ख थे? 'देवता नहीं हैं, वे होते तो क्या किसीको
खायी नहीं पड़ते' आपका यह वाक्य सुनकर मुझे बड़ी हँसी
ाती है। पता नहीं आप कौनसे ऐसे सिद्ध या सार्वभौम सम्राट्
जो देवता भिक्षुकके समान निष्कारण आपके दरवाजे भिक्षा
ाँगने आयें। आप जो कहते हैं कि ये संसारकी सभी वस्तुएँ
ाभावतः उत्पन्न होती रहती हैं तो हम आपसे पूछते हैं कि
भोजन आपकी थालीमें स्वयं बनकर क्यों नहीं स्वभावतः अपने
आप उपस्थित हो जाता ? देवता और ईश्वर नहीं हैं, यह भी
बालकोंकी-सी बात है, क्या बिना शासनतन्त्रके प्रजावर्गका
संचालन हो सकता है ! यदि संसारके प्रत्येक पदार्थका कोई
रचयिता और स्वामी नहीं होता तो फिर यह सम्पूर्ण विश्व
अपने-आपमेंसे उत्पन्न होकर व्यवस्थित कैसे होकर चलता ?
किसी भी सिद्धान्तकी सिद्धि अथवा परीक्षाके लिये वेद, स्मृति,
ऐतिहासिक परम्परा, धर्म एवं नीतियुक्त वचन, अनुमान, तर्क
और उपमान आदि प्रमाण माने गये हैं। जिन्हें इनमेंसे एक भी
प्रमाण मान्य नहीं है, प्रमाणशून्य उनकी बातोंको भी कोई
बुद्धिमान् कैसे प्रमाण मान लेगा[2] ?

इतना कहकर महात्मा नन्दभद्र वहाँसे सहसा उठ गये
और अपना घर छोड़कर पुण्यमय बहूदक तीर्थके सूर्यकुण्डके
पास पहुँच गये। वहाँ वे चार दिनतक निर्जल-निराहार रहकर
यह सोचते रहे कि 'यह आबाल-वृद्ध विश्व इतना क्लेश-निमग्न
क्यों है? और इसका स्वामी इतना निष्ठुर क्यों है? मेरे
मानसिक कष्टका समाधान जबतक नहीं होगा, मैं प्राणतक
परित्याग कर दूँगा, किंतु जल-फल आदि कुछ भी खाद्य पदार्थ
नहीं ग्रहण करूँगा।' चौथे दिन एक सात वर्षका बालक जो
गलित कुष्ठसे पीड़ित था, पग-पगपर स्खलित होता हुआ
धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा। वह कहने लगा कि 'आप तो
सर्वाङ्गसम्पन्न स्वस्थ एवं सुन्दर व्यक्ति हैं, फिर आज इतने खिन्न
क्यों दीखते हैं?' इसपर नन्दभद्रने अपनी सारी बीती बातें उसे
बता दीं। इसे सुनकर वह बालक कहने लगा—'अरे !
बुद्धिमानोंकी भी अज्ञता देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।' यह
व्यक्ति पूरे अविकल शरीरवाला भी प्राण छोड़ना चाहता है जब
कि राजा खट्वाङ्गने इसी मनुष्य-शरीरसे एक मुहूर्तमें मुक्ति प्राप्त
कर ली थी। यह व्यक्ति सौभाग्यसे प्राप्त इसी निर्दोष एवं
देवदुर्लभ शरीरको नष्ट करना चाहता है। भला, इस कर्मभूमि
भारतमें आयुके रहते कौन मरना चाहेगा ? इससे तो मैं ही

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। × × × ॥
अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः। केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात् तद्व्यवस्थितिः॥
(सर्वदर्शनसंग्रहमें चार्वाकदर्शन)

- वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम्। नैतत्त्रयं यस्य भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनप्रमाणम्॥
(स्क० मा० ४६। १३२)

प्रशंसनीय हूँ, जो माता-पितासे रहित, सर्वाङ्ग-विकल, कुष्ठग्रस्त होनेपर भी मरना नहीं चाहता। मूर्खोंके जीवनमें ही सैकड़ों शोकके स्थान प्राप्त होते हैं, पण्डितोंके नहीं। मूर्ख लोग मूलघाती हजारों कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, बुद्धिमान् लोग नहीं। अष्टाङ्गबुद्धि सभी दुःखोंको दूर कर देती है। यदि वह श्रुति-स्मृतिके अनुकूल है तो इसमें कहना ही क्या ? वह सभी आपत्तियोंको दूर कर जाता है। इसपर नन्दभद्रने कहा—'तुम्हारी बातोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम बालक नहीं, कोई विशिष्ट ज्ञानी व्यक्ति हो। मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि देवता लोग अपने उपासकोंकी रक्षा क्यों नहीं करते ? विशेषकर देवताके उपासक कहीं महान् दुःखमें निमग्न दीखते हैं। इसका क्या कारण है[1] ?' इसपर बालक (कमठ) ने कहा—'शुद्धभावना एवं द्रव्योंसे की गयी देवताकी उपासना उत्तम कोटिकी है, ऐसे उपासकोंको कष्ट नहीं होता, किंतु अशुद्ध मन, कर्म, वाणी एवं द्रव्योंसे देवताकी उपासना करनेवाला दूसरी श्रेणीका उपासक है, जिसके शरीरमें निम्नकोटिके भूतोंका प्रवेश हो जाता है, उसकी क्रिया नष्ट हो जाती है और परिणाम विपरीत होता है। अतएव किसी भी स्थितिमें अपवित्र द्रव्य, मन एवं शरीरसे देवताओंकी उपासना नहीं करनी चाहिये।

जो शुद्धभावसे देवताकी पूजा करते हैं, उससे वे पुत्र-पौत्रसहित जन्म-जन्मान्तरोंतक आनन्दका उपभोग करते हैं। इसलिये देवताकी उपासनाके पूर्व बुद्धिमान् व्यक्तिको शुद्ध श्रद्धा-भक्तिके द्वारा अपने मन, बुद्धि तथा जीवात्माको ही सर्वथा निर्विकार एवं शुद्ध बनाना चाहिये। फिर वस्त्र, शरीर एवं पूजा-द्रव्योंकी शुद्धिका ध्यान रखना चाहिये।' ऐसी आराधनासे भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं—

तस्माद्देवाः सदा पूज्याः शुचिभिः श्रद्धयान्वितैः।

(स्क० मा० ४६। ९०)

इसपर नन्दभद्रने पूछा—'हे ज्ञानी बालक ! तुम यह तो बताओ—कैसे ये महापापी लोग भी अनेक स्त्री-पुत्रों, धन-वैभवके साथ आनन्द एवं सुख-सौभाग्यका उपभोग करते हुए दिखायी देते हैं ?' इसपर कमठने कहा—'यह स्पष्ट बात है कि ऐसे व्यक्तियोंने पूर्वजन्ममें राजस एवं तामस-भावसे अविधिपूर्वक यज्ञ, दान आदि कर्म या देवोपासना की थी। सात्त्विक-भावसे कर्मानुष्ठान न करनेसे उनकी धर्मके प्रति प्रगाढ़ निष्ठा नहीं है और वे पाप करते दिखायी पड़ते हैं, जिसका फल उन्हें अगले जन्मोंमें तथा नरकमें भोगना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें महर्षि मार्कण्डेयद्वारा कहे गये वचन अति महत्त्वके हैं। जैसे—एक व्यक्तिको केवल इसी लोकमें सुख है, परलोकमें वह सुखी नहीं रहेगा। एक यहाँ दुःखी है, किंतु परलोकमें सुखी रहेगा। एक ऐसा है जो यहाँ तथा वहाँ या अन्यत्र भी दुःखी ही रहेगा और एक ऐसा है जो वर्तमानमें, भविष्यमें, परलोकमें तथा पुनर्जन्ममें भी सर्वत्र सुखी ही रहेगा। उदाहरणके लिये जिसने पहले (पूर्वजन्ममें) पुण्यार्जन किया है, किंतु आज पुण्य नहीं कर रहा है, वह यहीं सुखी दिखायी देगा, उसके लिये परलोक तथा पुनर्जन्ममें कष्ट-ही-कष्ट है, किंतु जिसका पूर्वका पुण्य नहीं है, परंतु आज तपस्या कर रहा है, वह (तुम्हारे-जैसा) यहाँ कष्ट पाता हुआ भी आगे सुखी रहेगा। जिसने पहले और आज भी किसी पुण्यका अनुष्ठान नहीं किया, उसे यहाँ अथवा वहाँ सर्वत्र ही कष्ट पाना है, ऐसे नराधमको धिक्कार है। किंतु जो पहले तथा आज भी पुण्य ही कर रहा है, वह श्रेष्ठ पुरुष धन्य है, जो आज भी सुखी है और आगे भी सुखी रहेगा[2]।'

१- ईश्वराः सर्वदातारः पूज्यन्ते यैश्च देवताः। स्वभक्तांस्तान् न दुःखेभ्यः कस्माद्रक्षन्ति मानवान्॥
विशेषात् केऽपि दृश्यन्ते दुःखमग्नाः सुरान् रताः। इति मे मुह्यते बुद्धिस्त्वं वा किं बाल मन्यसे॥
(स्क० मा० ४६। ७८-७९)

२- इहैवैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चामुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह॥
पूर्वोपात्तं भवेत् पुण्यं भुक्तिर्नैवार्जयन्त्यपि। इहभोगः स वै प्रोक्तो दुर्भगस्याल्पमेधसः॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोके तस्य भोगो धीमतः सः क्रियान् स्फुटम्॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहापि नार्जयन्। ततश्चेहामुत्र वापि यो धिक्तं च नराधमम्॥
(स्क० मा० ४६। ९७—१००)

अतः इहलोक एवं परलोकमें सुख-शान्तिका मूल कारण देवोपासना आदि पुण्यकार्य और भगवान्‌का अनुग्रह ही है। यह सुनकर नन्दभद्रने उस बालकको देवरूप मानकर प्रणाम किया और उसका परिचय जानना चाहा। बालक कमठको अपने सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे अपने सभी पूर्वजन्मोंका ज्ञान था और उसने बतलाया कि व्यासजीके अनुग्रहसे मुझे विशेष ज्ञान है और अगले जन्ममें मैं मैत्रेय बनूँगा। फिर उसीके आदेशसे नन्दभद्रने उस 'बहूदक' तीर्थमें बालादित्य नामक भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी स्थापना की और उनके अनुग्रहसे सभी सिद्धियोंको प्राप्तकर वह जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर लिया, अन्तमें सूर्य-सायुज्यको भी प्राप्त हो गया।

इस अदृष्ट तत्त्व तथा देवतावादकी यथार्थताको प्रमाणित करनेके लिये भारतीय दार्शनिकोंने भी पर्याप्त परिश्रम किया है। आचार्य शंकरने वैयासिक मीमांसा-दर्शनके देवता-अधिकरणके भाष्यमें देवताओंकी विग्रहवत्ता उपपन्न करनेके लिये मन्त्र, अर्थवाद, इतिहास, पुराण, प्रत्यक्ष, अनुमान एवं लोकवादको भी प्रमाण मानते हुए कहा है कि वेदोंमें जैसा देवताओंका स्वरूप निरूपित है, वह सर्वथा सत्य है। ये देवता व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठादिसे प्रत्यक्ष मिलते तथा व्यवहार करते थे। इतिहास-पुराणोंमें जो देवताओंद्वारा पाण्डव आदिकी उत्पत्तिकी कथाएँ हैं, वे भी सत्य हैं; किंतु यदि कोई ऐसा कहे कि 'आजके समान ही प्राचीन कालमें देवता किसीके साथ नहीं मिलते होंगे' तो ऐसा कहकर वह मानो जगत्‌की विचित्रताका ही अपलाप अथवा प्रतिषेध करना चाहता है। वह यह भी कह सकता है कि आजके ही समान पहले भी लोग अल्पशक्तिके रहे होंगे, अतः कोई महापराक्रमी चक्रवर्ती, सार्वभौम क्षत्रिय नहीं उत्पन्न हुआ होगा, तो वह राजसूय, अश्वमेध आदि पूर्वानुष्ठित यज्ञोंको भी असत्य ही मानेगा और अनेक व्यवस्थाविधायक शास्त्रोंको भी अननुष्ठेय और व्यर्थ मानेगा। वह इन्हीं दिनोंके समान वर्णाश्रम-व्यवस्थाओंको भी सदा असम्भव मानेगा।

योगशास्त्रमें भी स्वाध्यायके द्वारा देवताका दर्शन सुलभ माना है—'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' (योगसूत्र २।४४)। लोकमें जनविश्वास और परम्परासे उपासनाके लिये प्रतिष्ठित अनेक देवमूर्तियाँ भी उनके अनुमान और अनुभवके पक्षमें हैं। उन्हें देवताओंपर विश्वास था और देवकृपासे वे लाभान्वित हुए थे। केवल साहसमात्रसे इन सब बातोंका प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। अतः देवकल्प मन्त्रद्रष्टा व्यास, वसिष्ठ, वाल्मीकि, अगस्त्य, अत्रि आदि ऋषियोंकी शक्तिकी तुलना हम लोगोंसे नहीं की जा सकती[१]। सारांश यह है कि वेदोक्त देवस्वरूप तथा इतिहास-पुराणोंमें वर्णित देवता-सम्बन्धी सारी घटनाएँ सर्वथा सत्य हैं।

समस्त विश्वके राजनीतिके एवं प्रारम्भिक इतिहास-ग्रन्थोंको देखनेसे भी पता चलता है कि प्रायः सभी देशोंमें मात्स्य[२]-न्यायसे पीड़ित प्रजाके द्वारा शासक या किसी राजाकी माँगकी घटनाका उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय साहित्यमें भी प्रायः अधिकांश पुराणों, मनु, नारद, कात्यायन आदि स्मृतियों और महाभारतके भी कई पर्वोंमें प्रायः कई बार इस घटनाका उल्लेख हुआ है कि लोभ, क्रोध आदिसे उन्मत्त बलवानोंद्वारा दुर्बल प्रजाके पीड़ित होनेपर सभी ब्रह्माके पास पहुँचकर उनसे सुयोग्य शासकके माँगकी प्रार्थना करते हैं। प्रजाकी प्रार्थनापर बहुत सोच-विचारकर ब्रह्मा उन्हें इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर आदि लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न एक दिव्य शक्तियुक्त शासक प्रदान करते हैं, जो प्रजाका अनुरंजन करनेके कारण राजा कहलाता है।

सर्वाधिक प्राचीन धर्म एवं राजनीतिशास्त्रके ग्रन्थ मनुस्मृतिके अनुसार मात्स्यन्यायसे उपद्रुत सम्पूर्ण प्रजाके भयभीत होनेपर अराजक-लोकमें प्रजाकी प्रार्थनापर ब्रह्माने उनकी रक्षाके लिये इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेरके अंशोंको एक स्थानपर एकत्र कर दिव्य शक्ति-सम्पन्न एक देवांश शासकका निर्माण किया और उसे प्रजाकी रक्षाके लिये नियुक्त किया। इन आठ महान् देवताओंकी मात्राओंसे निर्मित होनेके कारण यह राजा अपने

१-'ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्येनोपमातुं युक्तम्।' (ब्रह्मसूत्र १।३।३३ का शाङ्करभाष्य)

२-'जहाँ मनुष्य या जीव-जन्तु मछलीकी तरह एक-दूसरेको भक्षण करनेमें लग जाते हैं और जीवन अनिश्चित हो जाता है, उस स्थितिको 'मात्स्य-न्याय' कहते हैं, क्योंकि बड़ी मछली छोटी मछलीको भक्षण कर जाती है।

तेजसे सभी मनुष्यों तथा अन्य प्राणियोंको भी सहसा अभिभूत कर डालता है।

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥

(मनु० ७। ३-४)

यही बात महाभारत, शान्तिपर्व (६७। ६८) तथा वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड (अ० ६७) में भी कही गयी है। सारांश यह है कि सामान्य प्रजाको विवश होकर ब्रह्माके पास जाने और देवताओंमें भी पितामह ब्रह्माके द्वारा उनकी रक्षाके लिये मुख्य शासनके उपयोगी, कल्याणकारी, देवताओंके अंशसे कलाका अंश ग्रहणकर सर्वप्रथम राजाका निर्माण किये जानेसे और उसमें उन सभी देवताओंकी स्थिति तथा प्रभाव-शक्तिको परम्परासे सर्वत्र सभी देशोंमें देखे जानेसे, उसके देवांश और उसमें मूलभूत देवताओंकी दिव्य शक्ति अनुमित होनेके कारण देवताओंके अस्तित्वका अनुमान सहज ही प्राप्त हो जाता है।

देवता ही वेदोंके सर्वस्वभूत हैं। वेदोंमें उन्हींकी आराधना, उपासना, ध्यान, स्तुति, सोमरस, पुरोडाश, हविष्-प्रदान आदिद्वारा उन्हें प्रसन्नकर पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति-प्रक्रिया प्रदिष्ट है। इस बातको ठीक-ठीक समझने-समझानेके लिये देवताध्याय संहितोपनिषद् ब्राह्मण आदि अपौरुषेय ग्रन्थ अनादिकालसे प्रवृत्त हैं। इन्हें विशेष स्पष्ट करनेके लिये महर्षि शौनकने ऋग्विधान, यजुर्विधान, सामविधान एवं अथर्वणविधानके साथ-साथ देवताके नामसे एक 'बृहद्देवता' नामके विशिष्ट ग्रन्थका निर्माण किया है। इसका विशेष सम्बन्ध ऋग्वेदसे है, इसलिये यह ऋग्वेदके ऋग्विधानसे मिलता है। ऋग्वेदके आठ अष्टकोंके समान यह भी बड़े-बड़े आठ अध्यायोंमें विभक्त है। इसके प्रारम्भमें ही देवताओंकी महत्ता बतलाते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम जिज्ञासु व्यक्तिको वेदके प्रत्येक मन्त्रके देवता और उसके स्वरूपका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। बिना देवता-तत्त्वको जाने हुए न तो मन्त्रोंका कोई अर्थ लग सकता है और न अभीष्ट प्रयोजन ही सिद्ध हो सकता है। मन्त्रोंका तात्पर्य देवताके स्वरूप-निरूपणमें ही है। मन्त्रोंके अन्तर्गत अभिव्यक्त होनेवाले सारे अभिप्राय और कर्मानुष्ठानकी प्रक्रिया देवताओंके जाननेमें ही पर्यवसित होती है। उसके ठीक-ठीक ज्ञानके बिना किसी भी लौकिक अथवा वैदिक संस्कार अथवा कर्मका निर्दिष्ट फल नहीं प्राप्त किया जा सकता। अतः सभी मन्त्रों, विशिष्ट सूक्तों और वर्गोंके भी देवताओंका ज्ञान ही वास्तवमें वेदका ज्ञान प्राप्त करना है। इसी दृष्टिसे ऋग्वेदसंहिताके अष्टकोंको वर्ग एवं सूक्तोंमें विभक्त किया गया है। जैसे स्वर्गमें देवताओंका वर्ग अलग-अलग है, उसी प्रकार संहितामें भी उनके मन्त्र-वर्ग पृथक्-पृथक् विभक्त हैं।

इन देवताओंमें प्रथम वर्ग अग्निदेवसे, द्वितीय वर्ग वायुदेवतासे, तृतीय वर्ग इन्द्रदेवतासे और चतुर्थ वर्ग सूर्यसे सम्बन्धित है। शौनककी दृष्टिमें, महर्षि यास्क तथा निरुक्तके सभी विद्वान् आचार्योंकी परम्पराओंमें यही मान्यता है कि किसी भी अभिलाषासे किसी भी सूक्तके मन्त्रका द्रष्टा ऋषि जो उस मन्त्रके अधिष्ठातृ-देवतासे उसकी प्रार्थना करता था, वह उस देवताका मन्त्र या स्तव कहा जाता है तथा स्तुत्य तत्त्व ही उस मन्त्र या स्तुतिका देवता है।

इन प्रमाणोंसे यह सर्वथा सिद्ध है कि देवता, यक्ष, विद्याधर आदि देवयोनियाँ प्रकृति, परमेश्वर, सूक्ष्म महाभूततत्त्व, उनकी अधिष्ठात्री शक्तियाँ प्राणिवर्गके उपार्जित कर्मोंके प्रारब्धादि अदृष्ट-रूप, जो प्रत्यक्ष नहीं दीखते, वायु आदिके स्पर्शके समान अनुमित होते हैं, वे सर्वथा सत्य हैं। अतः देवता, पितर और ईश्वर आदिकी उपासना परम कल्याणकारिणी है। साथ ही प्रत्यक्ष जगत् भी सत्य है, अस्तु, तदनुकूल पुरुषार्थ भी कर्तव्य है और दोनोंके सम्मिश्रणसे ही सिद्धि प्राप्ति होती है।

मिट्टी कुम्हारसे कहने लगी कि तू मुझे क्या रूँदता है, एक दिन ऐसा होगा जब मैं तुझे रूँदूँगी, यानी मरनेपर शरीर मिट्टीमें मिल जायगा।—कबीर साहेब

'देवता' शब्दकी व्युत्पत्ति, पर्याय एवं अर्थ

(श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

व्युत्पत्ति

क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति तथा गति अर्थोंवाली 'दिवु[1]' धातुसे 'अच्' प्रत्यय लगानेपर 'देव' शब्द निष्पन्न होता है। यों तो इसमें इन सभी कथित अर्थोंका संनिवेश है तथापि 'द्युति' अर्थात् विद्योतित होना (चमकना) और कान्ति अर्थात् ज्योतिर्मय होना—ये दो भाव यहाँ प्रधान हैं। तदनुसार 'देव' शब्दका मुख्यार्थ हुआ 'प्रकाशित होनेवाला— **'दीव्यतीति देवः।'** महाभारतकारने 'देव' शब्दकी यही व्याख्या की है—

'प्रकाशलक्षणा देवाः······।'

(महाभा०, आश्वमेधिकपर्व ४३ । २१)

इसी 'देव' शब्दसे स्वार्थमें 'अण्' प्रत्यय करनेपर 'दैवत' तथा 'तल्' प्रत्यय जोड़नेपर 'देवता' शब्द सिद्ध होता है। महर्षि यास्कके अनुसार 'देवता' शब्दका निर्वचन इस प्रकार है—

'देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा।''द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता॥' (निरुक्त ७ । ४ । १५)

अर्थात् दातृत्वशक्तिसे युक्त दीपन और द्योतन (प्रकाशन) करनेवालेको 'देव' कहा जाता है। अथवा द्युलोकमें रहनेके कारण भी 'देव' कहा जा सकता है, देव ही 'देवता' कहलाता है।

पर्याय

कोषोंमें देवता शब्दके पर्यायरूपमें अमर, निर्जर, त्रिदश, विबुध, सुर, सुपर्वा, सुमनाः, दिवौकाः, आदितेय या अदितिनन्दन, ऋभु, अस्वप्न, अमर्त्य, अमृताशन, क्रतुभुक्, दानवारि तथा·हव्ययोनि आदि नाम प्राप्त होते हैं[2]।

इन पर्यायोंसे यह ज्ञात होता है कि 'देव' या 'देवता' अमर, वृद्धावस्थासे रहित, ज्योतिर्मय शरीरवाले, त्रिदश अर्थात् नित्य तरुण या तीन अवस्थाओंवाले[3], विबुध अर्थात् विशेष ज्ञानवाले, स्वर्गलोकके निवासी, अदितिके पुत्र, स्वप्नरहित, सामान्यतः मनुष्य-जैसे दीखनेपर भी तत्त्वतः उनसे भिन्न (अमर्त्य), अमृतका भोजन करनेवाले, यज्ञमें दी हुई आहुतियोंसे सम्पुष्ट होनेवाले, असुर दानवादिविरोधी और अलौकिक जन्म-कर्मादिवाले होते हैं।

'देव' शब्दका मुख्यार्थ तो देवयोनि या अधिदैवत तत्त्व ही है, किंतु गौणरूपसे मेघ, राजा आदिके लिये भी इसका प्रयोग देखा जाता है।[4] अमरकोषके अनुसार द्वादश आदित्य, दस विश्वेदेव, आठ वसु, छत्तीस तुषित, चौंसठ आभास्वर, उनचास अनिल (मरुद्गण), दो सौ बीस महाराजिक, बारह साध्य और एकादश रुद्र—ये देवताओंके नौ गण या समूह हैं, अन्य कोषकार इन गणोंको इससे भी अधिक मानते हैं[5]।

तैत्तिरीयोपनिषद्में मनुष्यगन्धर्व, देवगन्धर्व, पितर, आजानज, कर्मदेव और देव आदि—यह उत्तरोत्तर श्रेष्ठताका क्रम स्वीकार किया गया है।[6] वैजयन्तीकोषमें देवताओंके आजानज और कर्मदेव—ये दो भेद कहे गये हैं।[7]

विद्याधर, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत—इन्हें भी देवयोनियोंमें ही परिगृहीत किया जाता है[8]। पुराणोंमें भी इस तथ्यका समर्थन

१-दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। (पाणिनीय धातुपाठ, सं० ११३२)

२-अमरकोष १ । १ । ७-९

३-तृतीया यौवनाख्या दशा येषाम्······
जन्मसत्ताविनाशाख्यास्तिस्रो दशा येषामिति वा। (अमरकोष— रामाश्रयी टीका)

४-देवः सुरे घने राज्ञि देवमाख्यातमिन्द्रिये। (विश्व० १६३ । १५)

५-बहवो देवतागणाः। (वैजयन्ती० १ । ३ । ८)

६-तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्दवल्ली २ । ८ । ४

७-आजानजाः स्वतोदेवाः कर्मदेवास्तु कर्मभिः। (१ । १ । ६ पूर्वार्ध)

८-अमरकोष १ । १ । ११

देखा जाता है। श्रीमद्भागवत (४।७) में, सिद्ध, लोकपाल, योगेश्वर, गन्धर्व, विद्याधर तथा सप्तम स्कन्धके आठवें अध्यायमें इनके अतिरिक्त पितर, नाग, मनु, प्रजापति, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वैतालिक तथा किन्नर आदिको देवयोनिके रूपमें ही चित्रित किया गया है।

श्रुति-स्मृति दोनोंमें ही कहीं-कहीं देवताका तात्त्विक अर्थ परब्रह्म या आत्मतत्त्व भी माना गया है। यथा—

एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म।

(बृहदारण्यक, उप०३।९।९)

देवता तो एक ही है—प्राण, आत्मा या परब्रह्म।

'आत्मा देवः'

(गौडपादीय, माण्डूक्यकारिका १२)

आत्मा देवता है—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।

(मनुस्मृति १२।११९)

सभी देवताओंका रूप आत्मा ही है और सब कुछ आत्मामें ही प्रतिष्ठित है।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

(मनु० १२।१२२-१२३)

इनका भाव यह है कि कल्याणकामीको परमात्मदेवको अवश्य जानना चाहिये। वह परमपुरुष परमात्मा समस्त विश्वका नियन्ता है। अणुसे भी अणुतर है, आदित्यके समान तेजोमय है, केवल समाधिद्वारा ही ज्ञेय है। इसे विभिन्न ऋषि-महर्षि एवं शास्त्र अग्निनामसे, प्रजापति नामसे, इन्द्रके नामसे, प्राणके नामसे और शाश्वत ब्रह्मके नामसे निर्दिष्ट करते हैं।

इसके अतिरिक्त त्रिगुणोंके अधिष्ठाता, जगत्के सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको भी 'त्रिदेव' या 'आदिदेव'के रूपमें जाना जाता है—

त्रय एवादिदेवाः स्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥

(वैजयन्ती।१।१।५)

वस्तुतः 'देव' या 'देवता' शब्दका अर्थ अत्यन्त और गम्भीर है। प्रत्येक मन्वन्तरमें होनेवाले भिन्न-भि देवताओं[1] और तदनुवर्ती गन्धर्वों, विद्याधरों आदि मर्त्यलोकसे ऊपरके लोकोंमें रहनेवाले समस्त पुण्य और विभिन्न ग्रह-नक्षत्र, ऋतुचक्र, नदी-समुद्र, पर्वत भौतिक पिण्डोंकी अभिमानिनी शक्तियोंको भी देवत सम्बोधित किया गया है। इस दृष्टिसे सूर्य, चन्द्र आदि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्निके साथ हिमाल पर्वत, गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ और तुलसी, अ ओषधि-वनस्पतियाँ भी हमारी संस्कृतिमें देवता ही म हैं, तथापि इन सभीकी अधिष्ठात्री शक्ति—मुख्यदेवत है और सम्पूर्ण स्तुतियाँ उसी एक देवमें चरितार्थ हो

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः

(श्वेताश्वतर, उप०

मानव-शरीरमें दसों इन्द्रियों तथा मन, बुद्धि, अहङ्कारके रूपमें चतुर्धा निरूपित अन्तःकरणको प्र करनेवाली शक्तियोंको भी देवता कहते हैं।

द्योतनाद्देवाश्चक्षुरादीनीन्द्रियाणि।

(ईशावास्योपनिषद् म० ४ पर शांकर

विराट् पुरुषके अवयवोंमें तत्तद् देवताओंका अनु और अवस्थितिका वर्णन श्रीमद्भागवतमें इस मिलता है—

तस्याग्निरास्यनिर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम्
वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययासौ प्रतिपद्यते
निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः
जिह्वयांशेन च रसं ययासौ प्रतिपद्यते
बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत्
बोधेनांशेन बोद्धव्यप्रतिपत्तिर्यतो भवेत्
हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत्
मनसांशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते

(३।६।१२-१३, २३

विराट् पुरुषके पहले मुख प्रकट हुआ, उसमें लोक

१-मन्वन्तरेषु भिद्यन्ते देवाः सप्तर्षिभिः सह। असुरा दानवा दैत्या दैतेया देवशत्रवः॥ (वैजयन्ती १।३।९)

अग्नि अपने अंश वागिन्द्रियके समेत प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है। फिर विराट् पुरुषके तालु उत्पन्न हुआ, उसमें लोकपाल वरुण अपने अंश रसनेन्द्रियके सहित स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है। फिर इसके बुद्धि उत्पन्न हुई। अपने इस स्थानमें अपने अंश बुद्धिशक्तिके साथ वाक्पति ब्रह्माने प्रवेश किया, इस बुद्धिशक्तिसे जीव ज्ञातव्य विषयोंको जान सकता है। फिर इसमें हृदय प्रकट हुआ, उसमें अपने अंश मनके सहित चन्द्रमा स्थित हुआ। इस मनःशक्तिके द्वारा जीव संकल्प- विकल्पादिरूप विकारोंको प्राप्त होता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी—

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥

(मानस ७।११७।११)

—कहकर इस तथ्यको प्रकट किया है।

यज्ञके यजमान, देवता, मन्त्र, अग्नि एवं द्रव्य-त्याग—ये अनिवार्य अङ्ग हैं, इसलिये वेदमन्त्रोंके भी पृथक्-पृथक् देवता होते हैं। आचार्य शौनककी उक्ति है—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः॥

(बृहद्देवता ८।१३६)

याज्ञिक दृष्टिसे देवतातत्त्वका विशद विवेचन महर्षि यास्कने निरुक्तके दैवतकाण्डमें किया है। इसके अनुसार अन्ततः तीन ही देवता हैं—१-अग्नि, २-वायु या इन्द्र और ३-सूर्य—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः।

(निरुक्त ७।२।५)

ब्राह्मण-ग्रन्थोंने इन तीनोंमें भी अग्निको प्रधान कहा है—

अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा।

(शतपथ, ब्रा॰ १४।३।२।५)

अग्निर्वै सर्वा देवताः।

(ऐतरेय, ब्रा॰ १।१।२।३)

सत्य तो यह है कि एक ही देवता अपने महान् प्रभावसे अनेक रूपोंमें प्रतिभात और स्तुत होता है।

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

(निरुक्त ७।१)

इसके अतिरिक्त साहित्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र और सङ्गीत-शास्त्रमें भी विभिन्न रसों[1], भावों, छन्दों तथा राग-रागिनियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंकी मान्यता देखी जाती है।

लौकिक देवता

जैसा कि पहले कहा गया है, 'देव' या 'देवता' शब्द केवल लोकान्तरवर्तिनी, विग्रहवती सत्ताओं और पदार्थोंकी अभिमानिनी शक्तियोंतक ही सीमित नहीं है, अपितु अनेक प्रसङ्गोंमें इसे अभ्यर्हितत्व या लौकिक श्रेष्ठताके पर्यायके रूपमें भी प्रयुक्त किया गया है। अतिथि और माता-पिता मनुष्य-मात्रके देवता हैं[2]। स्त्रीके लिये सबसे बड़ा देवता उसका पति है—

भर्ता वै दैवतं परम्।

(महाभा॰, शान्ति॰, आपद्धर्मपर्व॰ १४५।४)

स्त्री सदा भर्तृदेवता (हरिवंश॰ २।७९।१)

शतपथ ब्राह्मणके अनुसार जो ब्राह्मण, शुश्रूषु और वेदाभ्यासी हैं, वे मनुष्योंमें देवता ही हैं—

ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः।

(२।२।२।६)

अथर्ववेदका साक्ष्य है कि ब्रह्मचारीके शरीरमें समस्त देवताओंका वास होता है—

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधिविश्वे समोताः।

(११।५।२४)

इसी प्रकार गौ, अश्वत्थ आदिमें सभी देवताओंका निवास माना जाता है। महाराज मनुके अनुसार इन्द्र, वायु, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, कुबेर आदि देवशिरोमणियोंके तेजोंसे निष्पन्न राजा भी मनुष्य-सा दिखता हुआ महान् देवता है। अतः उसे मनुष्य समझकर चाहे वह बालक ही क्यों न

१- देखिये, नाट्यशास्त्र, अ॰ ६, श्लोक ४४-४५

शृङ्गारो विष्णुदैवत्यो हास्यः प्रमथदैवतः। रौद्रो रुद्राधिदैवत्यः करुणो यमदैवतः॥
बीभत्सस्य महाकालः कालदेवो भयानकः। वीरो महेन्द्रदेवः स्यादद्भुतो ब्रह्मदैवतः॥

२-तैत्तिरीय उप॰, शीक्षावल्ली ११।२

हो, उसका कभी अपमान नहीं करना चाहिये—

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥

(मनु० ७।८)

देववाणीमें 'देव' या 'देवता' शब्दके अनेक अर्थ संदर्भानुसार स्वीकृत एवं अभिप्रेत देखे जाते हैं। विस्तारसे जाननेके लिये नानार्थ हैमकोष, मेदिनीकोष, विश्वप्रकाशकोष तथा अभिधानचिन्तामणि आदि ग्रन्थोंको देखना चाहिये।

देवताकी संसारव्यापी स्थिति और भारत

(श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

'देवता' वैदिक शब्द है। सर मोनियर विलियम्सने दीर्घकालतक अथक परिश्रम करके दो महान् कार्य किये थे। एक तो उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि संसारकी सभी प्राचीन सभ्यता—जैसे फोनेशियन (वर्तमान लेबनानके आस-पास) जिनका समय ईसासे २,००० वर्ष पूर्वका प्रमाणित है—सबने भारतकी ब्राह्मी लिपिसे ही अपनी अक्षरमाला—वर्णमाला तैयार की थी, जिससे यूनानियोंने अपनी वर्णमाला बनायी। उन्होंने रोमन, यूनानी, मिस्री (इजिप्सियन), अंग्रेजी आदि सभी लिपियोंकी एक विस्तृत तालिका बनाकर सिद्ध कर दिया था कि प्राचीन भारतकी ब्राह्मी लिपिसे ही संसारके सभी सभ्य देशोंके अक्षर निकले तथा पनपे हैं।

सर मोनियरका दूसरा अतुलनीय कार्य उनके द्वारा संस्कृत-अंग्रेजी कोषकी रचना करना है। इस कोषमें 'देव' तथा 'देवता' शब्द ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण तथा स्मृतिमें कहाँ-कहाँ आया है, पूरा उल्लेख है।

देव तथा देवता शब्द बड़े महत्त्वके हैं। ऋग्वेदमें 'दैवतम्' (दैवीतम्) प्रयोगसे सिद्ध है कि देव तथा देवता इस संसारके नहीं, मुक्ति, मोक्ष तथा पितृलोक-मर्त्यलोकके बीचकी वह स्वर्गीय संज्ञा है, जो चिर आनन्दमय है और जिसके आवाहन तथा पूजनसे मानवके जीवनमें सफलता तथा मृत्युके उपरान्त देवलोक प्राप्त करनेका सामर्थ्य प्राप्त होता है।

'देव' पुँल्लिङ्ग शब्द है—**(दीव्यति—आनन्देन क्रीडति यः स देवः)** आनन्दपूर्वक जो क्रीडा करता है, वह देव है। मनु (३।११७) ने गृहस्थको भोजन करनेके पूर्व देवता, ऋषि, मित्रों, गृहदेवता आदिकी पूजा करनेके पश्चात् शेष बचे अन्नको प्रसादरूपमें ग्रहण करनेका निर्देश दिया है—

देवानृषीन् मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुग् भवेत्॥

दिव्य 'देव' शक्तिसे जो युक्त होगा, वही देवता होगा। देवता स्त्रीलिङ्ग शब्द है। इसका अर्थ **'विबुधः'**, **'सुरः'** आदि है। वे देवत्व प्राप्त करनेके लिये तथा मोक्षमार्गकी ओर बढ़नेमें संसारके प्राणियोंकी सहायता करते रहते हैं। ऋग्वेदमें इसी देवताके लिये कहा गया है— **'हे देवा देवी द्योतमानौ ····· देवतया दैवत्येन'** (१०।२४।६)। इसीके भाष्यमें सायणाचार्यने **'देवतया देवत्वेन अणिमादिदेवतैश्वर्ययोगेनेत्यर्थः'** लिखा है। जहाँतक मैंने समझा है, इसका अर्थ है कि उसी देवतासे देवत्व प्राप्त होता है। यानी देवता देवत्व प्रदान करनेवाले हैं।

भारतकी सभ्यता संसारमें अपनी ज्योति फैलाने लगी तो उसी ज्योतिसे प्राचीन यूनानी-लैटिन सभ्यतामें देवत्व तथा देवताकी भावना तथा आदर्शका प्रचार हुआ। यूनानी शब्द 'देओस' तथा लैटिन शब्द 'देउस' हमारी भाषासे देवताके लिये लिया गया और इसका अर्थ और उपयोग उन देशोंमें इतना व्यापक कर दिया गया कि सभी आधिदैविक शक्ति या लक्षण 'देउस' के कारण मान लिये गये और यहाँतक कि वृक्षमें, चट्टानोंमें, विशाल खम्भोंमें और बादमें चलकर यूनानी-मिस्री-रोमन-सभ्यतामें प्रतिमाओंमें मूर्तिके रूपमें देवताका प्रादुर्भाव हो गया। प्राचीन इतिहाससे सिद्ध है कि जहाँ प्राचीन भारतमें यौगिक, हवन-यज्ञ तथा निराकार, अदृश्य देवकी उपासनाका प्रचलन था, उन देशोंमें देवी-देवताको मूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया गया। सूर्योपासक मिस्रके लोगोंने धर्मप्रतीक नन्दी (वृषभ) की उपासनाको बड़ा महत्त्व दिया था।

कई ब्रिटिश लेखकोंका कथन है कि ईश्वरके लिये 'गॉड' शब्द 'गुड' यानी अच्छा, भला, सज्जन शब्दसे बना है, यानी जिसमें सब अच्छाई हो, सब कुछ हो, वही 'गॉड' है। गोथिक

भाषामें जो अधिकांश रूपमें संस्कृतसे ही मिलती है, ईश्वरको 'गुथ' कहते थे, जर्मन भाषामें 'गॉट' कहते हैं। बहुतसे अंग्रेज विद्वानोंका कथन है कि प्राचीन आर्य 'घिव' ('घ्रि' की) घृत शब्दका प्रयोग 'आवाहन' या प्रदान करनेके लिये करते थे, उसीसे 'गॉड' बना। कुछ अंग्रेज विद्वान् मानते हैं कि संस्कृत शब्द 'गिरि' का अर्थ 'पर्वत'—'महान्' है तथा 'घृत' का अर्थ 'पवित्र' होता है। उससे 'गॉड' निकला, पर बहुमत है कि प्राचीन संस्कृत शब्द 'गाढम्', 'दृढ' शब्दसे इस अंग्रेजी शब्दकी उत्पत्ति है। जो हो, पर ब्रिटिश-फ्रेंच भाषामें 'गॉड' से 'गॉड्स' बना है, जिसका अर्थ ईश्वरकी प्रतिभा, शक्ति तथा देवत्व रखनेवाला देवता है।

ईसाई बाइबिलके अनुसार साधु पालने फिलिप्पीन लोगोंको उपदेश देते हुए (बाइबिल, एपिटल आव पॉल-अ० १ में) कहा था—'अन्तमें, भाइयो ! संसारमें जो भी सत्य है, जो भी ईमानदारीका है, जो भी न्यायसंगत है, जो भी पवित्र, पाक, साफ है, जो भी सुन्दर है, जो भी अच्छा है, उसकी सूचना दो, बतलाओ, यदि ऐसे गुण हैं, यदि इनकी (इन गुणोंकी) प्रशंसा होती है—यदि ये चीजें तुम्हारे पास हैं या इनके विषयमें सुना है, यदि तुमने इन गुणोंको मुझमें पाया है तो ईश्वरकी शान्ति तुम्हें प्राप्त होगी।' स्पष्ट-रूपसे ये गुण मानवको देवताके रूपमें खड़ा कर देते हैं। बाइबिलमें 'होली घोष्ट' का बार-बार उल्लेख आया है। यह ईश्वरका प्रतिनिधि है, जो सदैव मानव-जातिको सही रास्तेपर लानेका प्रयास करता रहता है। वास्तवमें ईसाई-मतमें यही देवता है।

ईश्वर तथा संसारके बीचमें जो कल्याणकारी माध्यम है, वही देवत्व है, ऐसी भावना तथा दैवी शक्ति कोई वस्तु है, इसकी ठीकसे धारणा न होनेपर भी उस शक्तिके आवाहनकी भावना आदिम जातियोंमें तथा अभीतक पढ़े-लिखे लोगोंमें भी है। सम्पूर्ण विश्वके मानवोंमें यह सामान्य धारणा रहती है कि इस समग्र विश्वका रचयिता, संचालक और स्वामी कोई-न-कोई अदृष्ट शक्ति है और वही परमेश्वर या सर्वोपरि देवता है।

धर्म तथा देवत्व

भारतीय हिन्दू-धर्मकी सबसे बड़ी महिमा है कि इसने धर्मकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या की है। धर्मशास्त्र वास्तवमें कर्तव्यशास्त्र है, जिसे नास्तिक भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस शब्दका पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द 'रैलिजन' कदापि नहीं हो सकता। १८९४ में ई० केयर्ड नामक ब्रिटिश लेखकने 'धर्मका विकास' तथा तीलेने १८९७में 'धर्मका विज्ञान' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। आजतक धर्मकी व्याख्यामें उससे अधिक व्यापक कोई पुस्तक मुझे किसी पाश्चात्त्य भाषामें देखनेको नहीं मिली। इन लेखकोंने धर्मकी तीन श्रेणियाँ मानी हैं—आदिम जातियोंका धर्म, किसी एक राष्ट्रका धर्म तथा तीसरा विश्वव्यापी धर्म। इन तीनों श्रेणियोंमें एक बात अन्तर्निहित है—एक परा शक्ति—एक दैवी शक्तिकी सत्ता स्वीकार करना। तीनों श्रेणियाँ यह मानती हैं कि एक ऐसा स्वर्गीय देवत्व है, जिसको बिना प्रसन्न किये संसारका काम नहीं चल सकता। जर्मन दार्शनिक जार्ज विलहेल्म फ्रेडरिश हीगेल (१७७०-१८३१) एक परम पवित्र प्रभुमें विश्वास करते थे, जिसका प्रतीक 'पवित्र विचार' है। लेखक कनर्डने एक विश्वव्यापी प्रभुको माना है, जो व्यक्तिगत श्रद्धाकी वस्तु है। देवताकी सत्ता, जो परम प्रभुके यहाँ पहुँचा दे, इसकी भावना प्राचीन मिस्रके 'ओसिरिस' धर्ममें थी। उनके अनुसार मरनेके बाद देवगण मृतकको ओसिरिसके न्यायालयमें ले जाते थे, जहाँ परीक्षाके बाद यदि शुद्ध पाया जाता तो उसे ओसिरिसके 'एरु' में जाकर आनन्द करनेकी अनुमति मिलती थी। ओसिरिस शब्द 'ईश्वर' का अपभ्रंश है तथा 'एरु' स्वर्गका। पारसी ग्रन्थ अवस्ताके अनुसार 'आत्माका, आत्माओंका एक पथ-प्रदर्शक (यानी देवता) होता है, जो जीवको स्वर्गके द्वारतक पहुँचा देता है। चाहे मुसलिम धर्मका हो या पारसी, भले-बुरे कर्मके अनुसार भगवान्के यहाँ न्याय होता है और उस कर्मकी सूचना देनेवाला फरिश्ता ही देवताका दूसरा नाम है। प्राचीन यूनान, रोम, फोयेनीशिया आदिमें कर्तव्य-पालनमें त्रुटिकी जानकारी कराकर ईश्वरको उसकी सूचना देनेवाला ही देवताका रूपान्तर है।

प्रत्येक धर्ममें सदाचरणपर बहुत बल दिया गया है। जिस प्रकार वैदिक देवता वरुण मानव-जगत्के कर्तव्यके नियामक हैं, उसी प्रकार पारसी धर्मके 'अहुरमज्द' (असुरमहान), बैबीलोनिया सभ्यतामें (चालडियन साम्राज्यकी राजधानी बैबीलोन, जिसके सम्राट् प्रसिद्ध नेबूशेद

नज्जार ई० पू० ५९७) मानव-जातिके कर्तव्य-पालनमें वरुणके समान शमशः (समर्थ) देवता थे, मिस्रमें मिथ्र (मित्र यानी सूर्य) देवता, हिब्रू (यहूदी) धर्ममें जेहोवाको न्यायप्रिय देवता मानते थे तथा यूनानके ज्यूस देवता (देवस) जिनकी पुत्रीका नाम भी यूनानी भाषामें न्याय था, इन सभी धर्मों-मजहबोंने आचरण—सत्-आचरणकी संहिता बना रखी थी जिसका पालन 'दैवी शक्ति'—'देव' कराते थे।

हम वेद-मन्त्रोंको किसी व्यक्ति या कविकी 'रचना' नहीं मानते। ऋषियोंने मन्त्रोंको देखा—**'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।'** सभी पुराने मजहबी धार्मिक सिद्धान्तोंको 'प्रकटीकृत' मानते हैं—पैगम्बरोंको प्रकट हुए। माध्यमसे प्रकट हुआ मानते हैं। ये माध्यम देवता थे। यूनानी देवता अपोलो भविष्यवाणीके देवता थे, जो अपनी बात प्रायः अपने माध्यम देवी डेल्फीके द्वारा कहलाया करते थे। डेल्फी जो कुछ कहती थी, वह ईश्वर-वाक्य माना जाता था।

प्राचीन कालमें प्रत्येक देशमें अनगिनत देवता माने जाते थे, प्रकृतिके प्रत्येक कार्यका स्वामी या संचालक एक देवता होता था। पाश्चात्त्य इतिहासके अनुसार एक परम प्रभु या एक परम देवताकी सबसे पहले कल्पना ईसवी पूर्व १४वीं सदीमें मिस्रके नरेश अमेनहोतेप चतुर्थ (मनहितू) ने शुरू की थी और उनके लगभग ८०० वर्ष बाद जरथुस्त्र (ईसवी पूर्व ६०० के लगभग) का ईरानमें आविर्भाव हुआ, जिन्होंने पारसी धर्मको जन्म दिया। यह द्वैतवादी मजहब है, जिसके अनुसार अहुरमज्द (असुरमहान) परम प्रभु हैं, जिनका बुराइयोंके, संसारकी खराबीके देवता अहिरमनसे लगातार युद्ध चल रहा है और चलता रहेगा। पिता-पुत्र (ईश्वर तथा ईसामसीह) की कल्पनासे ईसाई धर्म भी द्वैतवादी हो जाता है। खुदा तथा हजरत पैगम्बरकी भावनासे मुसलिम धर्म भी द्वैत है। हिन्दू धर्ममें भी द्वैत तथा अद्वैत दो शाखाएँ हैं। पर प्रकट है कि प्रत्येक धर्ममें देवदूत, देवता, पैगम्बरकी सत्ता है। प्रभुकी कल्पनाके साथ बीचकी सीढ़ी भी है, जो देवताके सहारे पार करनेसे ही मिलेगी। बिना ईसामसीहकी शरण गये ईश्वरकी कृपा नहीं प्राप्त हो सकती, ईसाई धर्ममें अनेक महान् साधु-संत हो गये हैं, जैसे मुसलिम धर्ममें भी हैं। पर, देवताकी न सुननेके कारण ही ईसाई धर्ममें सन् १५६२ से १६०९ तक समूचे यूरोपमें धर्म-युद्ध चलते रहे। लाखों प्राणी ऐसे युद्धमें निछावर हो गये। इसका कारण था। जैसे अपनेको केवल हिन्दू कहनेसे कोई हिन्दू नहीं हो जाता, उसे अपने धर्मके सार तत्त्वोंका पालन करना होता है, वही बात ईसाइयोंके बारेमें डब्लू० ए० संडे (जन्म १८६३) नामक अमेरिकन पादरीने कहा था। वे कहते हैं कि 'अपनेको केवल ईसाई कहने या गिरजाघर जानेसे कोई ईसाई नहीं हो जाता, जैसे मोटर-गराजमें जानेसे कोई मोटर-कार नहीं बन जाता'। यूरोपके धार्मिक युद्ध धार्मिक अज्ञानके कारण हुए थे। यूनानी दार्शनिक प्लेटो (ई० पू० ४२७-३४८) ने लिखा था कि 'ईश्वरका शरीर सत्य है और प्रकाश उसकी छाया है।' प्लेटोने बुराईसे बचनेको ही ईश्वरत्व कहा है। शेख सादीने लिखा है कि मैं ईश्वरसे अधिक उससे डरता हूँ जो ईश्वरमें विश्वास नहीं करता। इन उक्तियोंसे प्रकट है कि अधिकांश पश्चिमीय मतोंमें ईश्वरके देवत्वकी ओर अधिक ध्यान गया था, हिन्दू धर्मके निराकार, निर्गुण, द्रष्टा ब्रह्मकी कल्पना नहीं थी।

सुदूर पूर्वमें

जब भारतकी सभ्यता—हमारा तात्पर्य हिन्दूधर्मसे है, दूरतक फैली तो उसने हमारे देवता भी ग्रहण कर लिये, अपना लिये। स्याम देशमें, वर्तमान थाईलैंडमें जब भारतका रामायण पहुँचा तो वहाँकी भाषामें उसे 'रामाकीन' कर दिया गया तथा हनुमान् देवताको इतनी मर्यादा दी गयी कि बैंगकाकमें पन्ना धातुकी बौद्ध-प्रतिमाके मन्दिरमें दीवारपर जो चित्र है, उसमें दिखाया गया है कि रामकी वानर-सेनाका लंकापर आक्रमणके लिये समुद्र पार करनेके हेतु हनुमान्‌जीने अपनी पूँछ एक छोरसे दूसरी छोरतक फैला दी और वानर-सेना पूँछके पुलसे लंकामें उतर गयी। थाईलैंडमें लंकाका नाम 'लोगका' लिखा है। श्रीरामके दैवत्यसे मुगल सम्राट् अकबर इतने प्रभावित थे कि सन् १६०५ में उन्होंने 'रामसिया'का सिक्का भी चालू किया था। कम्बुज देश (वर्तमान कम्बोडिया) में रामायणकी लीलामें पञ्चवटीमें श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, मारीच तथा रावणको एक साथ दिखलाया गया है।

देवत्वका महत्त्व

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका तात्पर्य यह है कि देवताकी जिस उच्चस्तरपर प्राचीन भारतने व्याख्या की थी,

वहाँतक कोई भी सभ्यता नहीं पहुँच पायी। हमारे यहाँ निरुक्तके रचयिता यास्कने एक परमात्मासे ही देवताओंकी उत्पत्ति मानी है—

'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति'

देवताकी तीन श्रेणियाँ मानी गयी हैं—द्युस्थानीय (ऊपरी आकाशमें रहनेवाले), अन्तरिक्षस्थानीय (मध्य आकाशमें रहनेवाले) तथा पृथ्वीस्थानीय (पृथ्वीपर रहनेवाले)। इन तीनों श्रेणियोंके ऊपर त्रिदेव हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश। इन्हींसे तीनों स्थानोंके देवता प्रकट हैं। पृथ्वीस्थानीय देवतामें गृहदेवता, कुलदेवता,स्थानदेवता आदि हैं, जिनकी सत्ता उस समयतक है जबतक कुल, गृह तथा स्थान वर्तमान है। यों मूलतः तैंतीस देवता हैं—१२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र, द्यावा तथा पृथ्वी (मतान्तरसे इन्द्र और प्रजापति)। प्रकट है कि सब दैवी विभूतियाँ हैं। आर्यधर्मके विस्तारके साथ, अलग-अलग शक्ति तथा विभूतिके आधारपर अक्षपाद न्याय-दर्शनके प्रवर्तक गौतम ऋषिने ३३ करोड़ देवताकी समुचित संगति लगायी है। शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारतमें देवताओंके गुण तथा स्वभावके अनुकूल उनका वर्ण भी निर्धारित किया है। महाभारतके शान्तिपर्वके अनुसार आङ्गिरसगणको ब्राह्मण देवता, आदित्यगणको क्षत्रिय देवता, मरुद्गणको वैश्य देवताकी संज्ञा दी गयी है, पर सभी देवता विभूति, देवत्वके द्योतक हैं। एक वचनके अनुसार एकादश रुद्रोंकी विभूति तीन कोटि देवता हैं, द्वादश आदित्योंकी दस कोटि विभूति देवता हैं। अग्निदेवके पुत्र और पौत्रोंकी गणना भी सम्भव नहीं है—ऐसा लिखा है। किंतु ये सभी देवता चौदह भुवनोंमें विराट्, परब्रह्म, परमात्माकी विभूति हैं, उसीकी ज्योति तीन आदिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें है, अतः सभी देवता वह विभूति हैं, जिनसे हमें इच्छित विभूति प्राप्त होती है और जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता (९।२५)में कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करनेवाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता।'

यों नैमित्तिक देवता भी प्रत्येक देशमें होते हैं, जिनका विशेष कार्यके लिये ही आवाहन होता है, जैसे यूनानकी आइरिस मनःकामना-पूर्तिके लिये, भारतमें शीतलादेवी, शीतलाका प्रकोप शान्त करनेके लिये इत्यादि।

पृथ्वीपर देवता

आङ्गिरस ब्राह्मणोंके यानी शास्त्र-सम्मत धर्मके पालक देवता हैं। ये ऋषि-समुदायके हैं। पुण्यभूमि भारतमें अब भी ऋषिवर्ग समाजसे हटकर गुफाओंमें सैकड़ों वर्षसे तपस्या कर रहे हैं। उन्हींके प्रताप तथा पुण्यसे लाखों अनाचार होनेपर भी भारतकी सभ्यता तथा धर्म सुस्थिर है। यहाँ ऐसे-ऐसे तपस्वी हैं, जिनका मुझे निजी अनुभव है। दक्षिण भारतमें, आन्ध्र-प्रदेशमें पम्वम रेलवे स्टेशनसे सड़कके मार्गसे जानेपर वर्षों हुए मुझे मल्लिकार्जुन मन्दिरके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह शिवके आदिलिङ्गोंमेंसे एकका अति प्राचीन दिव्य मन्दिर है। ऊँचे पहाड़पर इधरका पता नहीं, तब सवारी पहाड़के नीचेतक जाती थी। फिर लगभग तीन मील पैदल या खच्चरसे जाना पड़ता था। ऊपर पहाड़पर हमें वाराणसीके एक तपस्वी ब्राह्मण मिले। दो-एक दिनके सांनिध्यसे उन्होंने दिव्य स्थान दिखानेकी स्वीकृति दी। एक ऊँची चोटीपर विशाल वृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर तपस्या करने (मन्त्र जपने) से हवामें चलनेकी शक्ति प्राप्त होती है। मन्त्र तो मैंने सीख लिया पर विश्वास नहीं जमा। फिर एक गुफामें ले गये, जहाँ अर्धनारीश्वर कार्तिकेयकी जाग्रत् प्रतिमा है। बड़ा दिव्य तपःस्थल है। फिर एक गुफामें उच्च आसनपर भगवान् शंकर पालथी मारे बैठे हैं। सामने एक छोटा कुण्ड है, जिसमें जल भरा था। उसके ऊपर एक विशाल घंटा टँगा है। इन्हें घण्टेश्वर महादेव कहते हैं। पण्डितजीने बतलाया कि जन्माष्टमीकी अर्धरात्रिमें दो व्यक्ति यहाँ आकर मन्त्र जपते जायँ। एक घंटा लगातार हिलाता रहे तथा दूसरा व्यक्ति कुण्डसे पात्रमें जल भरकर बिना रुके शंकरपर चढ़ाता रहे तो सर्वसिद्धि होगी। उन्होंने कृपाकर वह मन्त्र भी लिख दिया।

चलते-चलते उन्होंने बतलाया कि पर्वतसे एक मील नीचे गोदावरी नदी बह रही है और वहाँतक सुरंग चली गयी है। उस सुरंगमें दर्जनों महात्मा बैठे तपस्या कर रहे हैं और गोदावरीमें स्नान करने जाते हैं। कभी-कभी रातमें वायु-

सेवनके लिये ऊपर आते हैं। स्थान-स्थानपर सुरंगसे निकलनेके स्थान बने हुए हैं। गोदावरी नदीतक तो मैं देख आया। रास्तेमें बड़ी चट्टानोंके टुकड़े पड़े हुए थे। मैंने शंका की कि किस स्थानसे निकलते होंगे वायु-सेवनको? पण्डितजीने कहा कि एक चट्टान हटा दो। रास्ता दिखायी पड़ेगा। मैंने कहा कि इतना बड़ा पत्थर कैसे हटेगा? उन्होंने कहा—पैरसे ठुकरा दो। अविश्वासके कारण मैंने एक बड़े टुकड़ेको लात मारी, वह गेंदकी तरह खिसक गया। भीतर जानेका साफ ऊबड़-खाबड़ रास्ता दिखायी पड़ा। पण्डितजीने ललकारा—'साहस हो तो भीतर जाओ। यदि तुम्हारे कर्म तथा संस्कार ठीक होंगे तो एक या दो महात्माके दर्शन हो जायँगे।' बड़ी हिचक, हिम्मत तथा साँप-बिच्छूसे डरते हुए मैं भीतर उतरा। जहाँ वह रास्ता कन्दराकी ओर मुड़ा, मुझे ऐसा लगा कि आँखको चौंधिया देनेवाला अति अधिक प्रकाश मुझे पीछेको ढकेल रहा है। मैंने चिल्लाकर पण्डितजीसे सहायता माँगी कि वे मेरे पीछे आकर मुझे सहारा दें, पर ऊपरसे आवाज आयी—वे दर्शन नहीं देंगे, प्रकाश देख लिया, तुम्हारे जीवनके लिये यही बहुत है।'

मैंने साहस कर कुछ रुकना चाहा, पर उस उग्र प्रकाशने मुझे अंधा-सा कर दिया था। मैं लड़खड़ाता बाहर चला आया। मेरे कर्म तथा संस्कारने सहारा नहीं दिया।

ऐसे-ऐसे स्थानोंका दर्शन करने, पता लगाने तथा वहाँ साधना करनेसे पृथ्वीपर ही देवताके दर्शन हो सकते हैं।

देवता-तत्त्व-मीमांसा

(१)

(श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

देवताओंका स्वरूप और रहस्य अगम्य है। वस्तुतः वह स्वानुभवसे ही जाना जा सकता है। यहाँपर उसका संक्षिप्त निरूपण सरल और रोचक शब्दोंमें करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

प्रायः देखा जाता है कि इस संसारमें व्यक्ति और समाजमें शुभ और अशुभ, सत्य और असत्य, प्रकाश और अन्धकारकी शक्तियोंके बीच निरन्तर ही संघर्ष चलता रहता है। इस स्थूल संघर्षके पीछे सूक्ष्म लोकोंमें भी शुभ और अशुभ, सत्य और असत्य, प्रकाश और अन्धकारकी शक्तियोंके बीच सतत गतिशीलता होती रहती है। शुभ, सत्य और प्रकाशकी शक्तियाँ ही देवशक्तियाँ या देवता हैं और अशुभ, असत्य एवं अन्धकारकी शक्तियाँ ही असुर-शक्तियाँ या असुर हैं।

वेदोंमें सर्वत्र देवताओंका इस रूपमें वर्णन किया गया है कि वे दिव्य ज्योतिःस्वरूप अखण्ड अनन्तचेतनास्वरूपा अदितिके पुत्र हैं, जो मनुष्यकी उन्नतिमें सहायता करते हैं, उसे ज्ञानज्योतिका दान देते हैं, उसपर सत्-चित्-आनन्द और द्युलोकके ऐश्वर्योंकी वर्षा करते हैं, उसमें सत्यका संवर्धन और दिव्य लोकोंका निर्माण करते हैं तथा उसे विघ्न-बाधाओंसे और सब प्रकारके आक्रमणोंसे बचाकर महान् लक्ष्य, अक्षय ऐश्वर्य और पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करा देते हैं।

देवताओंका आविर्भाव

परात्पर 'एक सत्' ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका मूल है। उसे अव्यक्त सच्चिदानन्दतत्त्व या परब्रह्म भी कहा जाता है। उसकी चिच्छक्तिको पराशक्ति, आद्याशक्ति, भगवती माता या अदिति कहते हैं। वह इस विश्वकी अधिष्ठात्री है और इसे धारण करती है। उसीके विषयमें दुर्गासप्तशतीमें कहा गया है—'**ययेदं धार्यते जगत्।**' इस समस्त विश्वके धारण और संचालनके लिये अदिति माता परात्पर पुरुषके तेजसे अनेक दिव्य शक्तियों या सत्ताओंको उत्पन्न अथवा प्रकट करती हैं। उन्हींको देव या देवताके नामसे अभिहित किया जाता है। अदितिके पुत्र होनेसे उन्हें आदित्य भी कहते हैं और इन आदित्यों या देवोंकी माताको देवमाता।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशके पीछे स्थित सचेतन सत्ताएँ और शक्तियाँ भी देवताके नामसे उच्चरित की जाती हैं। मनुष्यमें भी सचेतन आध्यात्मिक शक्तियाँ, संकल्प और विचारकी नानाविध शक्तियाँ, दिव्यानन्दकी शक्तियाँ कार्यरत हैं। वे भी उनके अधिष्ठातृ-देवता हैं।

वेदोक्त देवता केवल प्रकृतिकी भौतिक शक्तियाँ ही नहीं हैं, प्रत्युत चराचरमें विद्यमान सचेतन शक्तियाँ हैं। ऋग्वेदके निम्नलिखित मन्त्रसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पार्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥

(ऋ० १०।६३।८)

'हे देवगण! आपलोग ज्ञानमय मनकी शक्तिसे सम्पन्न होकर उस मनकी शक्तिसे सम्पूर्ण भुवनपर शासन करते हैं। आपलोग चराचरमें विद्यमान सभी तत्त्वोंको ठीक-ठीक जानते हैं, अतः आप हमें पहले किये गये और आगे किये जानेवाले कायिक और मानसिक पापोंसे मुक्तकर कल्याण और आनन्द प्राप्त करायें।'

देवता मूलतः परमात्माकी नित्य ज्योतिःकलाएँ या अंशविभूतियाँ हैं। इस विश्वमें उनमेंसे प्रत्येकका अपना स्वतन्त्र स्थान एवं स्थिति है, प्रत्येकका पृथक्-पृथक् व्यापार—कार्य या कर्म है। वे निर्गुण और व्यक्तित्वरहित सत्ताएँ नहीं हैं, किंतु विशिष्ट व्यक्तित्वसे युक्त विराट् सत्ताएँ हैं, भगवान्‌की साकार और क्रियाशील विराट् शक्तियाँ हैं। वे विश्वके धारण, संचालन और विकासके हित अपने-अपने लोकके विशेष व्यापार करनेके लिये विश्वप्रकृतिमें अभिव्यक्त होते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि देवता साकार हैं तो उनका आकार कैसा है? इस विषयमें एक रोचक प्रसंगका स्मरण हो आता है। चिरकाल-पूर्व जब श्रीअरविन्दाश्रमकी श्रीमाताजी भारत आयी भी नहीं थीं, अभी यूरोपमें ही थीं, तब उन्होंने सुना कि भारतीय एक ऐसे देवको मानते हैं, जिसका मुख हाथीके मुखकी भाँति टेढ़ा-मेढ़ा है और पेट बहुत स्थूल है। यह सुनकर वे सोचने लगीं कि भारतीयोंने अपने देवताकी कैसी विचित्र आकृतिकी कल्पना की है। कुछ वर्ष-पश्चात् वे अपनी दिव्य नियतिके वश दक्षिण भारतमें पाण्डिचेरी श्रीअरविन्द-आश्रममें पधारीं। वहाँ माताजी श्रीअरविन्दजीके पासवाले कमरेमें बैठकर नियमित ध्यान करने लगीं। एक दिन उन्होंने ध्यानके समय अन्तर्नेत्रसे देखा कि सीढ़ीके मार्गसे कोई मूर्ति उभरकर ऊपर चली आ रही है। वह मूर्ति उन्हीं गणेश देवताकी थी। वे देव माताजीके अन्तर्नेत्रके सम्मुख प्रकट होकर बोले—'मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभीष्ट वर माँगो।' उन्होंने कहा—'मैं आपके दर्शनोंसे ही कृतार्थ हूँ; मुझे और कुछ नहीं चाहिये।' तब श्रीगणेशजीने कहा—'किंतु मेरी उपस्थिति निरर्थक नहीं हो सकती।' श्रीमाताजी बोलीं—'आप प्रसन्न हैं तो यथायोग्य अनुग्रह कीजिये।' 'साधनाकी प्रक्रियामें आपको किसी भी वस्तुका अभाव नहीं रहेगा'—यह आशीर्वाद देकर विघ्नेश्वर विनायक अन्तर्हित हो गये।

इस प्रकार हमारे भारतीय योगियोंने अन्तर्जगत्‌में योगदृष्टिसे देवताओंकी आकृतियोंका साक्षात्कार करके उनका जो वर्णन किया है, वह सत्य ही है, न कि कपोलकल्पित।

देवताओंका स्वरूप दो प्रकारका है—आधिभौतिक और आध्यात्मिक। अपने आधिभौतिक रूपकी दृष्टिसे वे भौतिक प्रकृतिकी सार्वभौम शक्तियाँ हैं। उदाहरणार्थ इस स्थूल अग्निके पीछे विशिष्ट व्यक्तित्वसे युक्त, मूर्तिमती विराट् अग्निशक्ति है, बाह्य सूर्यके पीछे व्यक्तित्ववती, साकार, विराट् प्रकाशशक्ति है। आध्यात्मिक स्वरूपकी दृष्टिसे वे दिव्य प्रकृतिकी सार्वभौम आन्तरिक शक्तियाँ हैं। उदाहरणार्थ, अग्निदेवता भगवान्‌की इच्छाशक्ति अथवा विराट् संकल्प-शक्तिका अधिष्ठातृदेव है, इसी प्रकार इन्द्र दिव्य मन या ईश्वरीय मनका अधिपति है, वह दिव्य प्रकाशका दाता है। मरुत् देवता उस इन्द्रकी सहायक शक्तियाँ हैं, सूर्य दिव्य सत्यका सूर्य है, उषा दिव्य ज्योतिकी उषा है, दिव्य चैतन्य एवं दिव्य ज्ञानकी उषा है, अश्विनीकुमार आनन्दके अधिपति हैं, सोम आनन्द और अमरताके अधिष्ठातृदेव हैं इत्यादि। किंतु ये देवता भगवान्‌के केवल अमूर्तभाव या उनकी निराकार शक्तियाँ ही नहीं हैं, इन सबका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व एवं आकार भी है और इनका ध्यान-चिन्तन करनेवालेको इनका साक्षात्कार हो सकता है।

ध्यान-चिन्तन करनेवाला अध्यात्ममार्गका साधक जैसे-जैसे अपनी अन्तरग्नि, संकल्पाग्नि एवं अभीप्साग्निको अधिकाधिक प्रदीप्त करता है, वैसे-वैसे वह अग्नि चेतनाकी उच्चतर भूमिकापर आरोहण करता है और साधकको भी वहाँ आरोहण कराता है। इस भूलोकसे अर्थात् अन्नमय भूमिकासे प्रस्थान करके वह अग्नि द्युलोकमें अर्थात् दिव्य चैतन्यकी भूमिकामें पहुँचता है। जब वह द्युलोकमें पहुँचता है, तब वहाँका अधिपति इन्द्र उसके प्रत्युत्तरके रूपमें उसकी अभीप्साके प्रतिफलके रूपमें विद्युद्देवताओंके साथ भूलोकपर

उतर आता है, अर्थात् ईश्वरीय मन दिव्य प्रकाशकी द्युतियोंके साथ हमारी अन्नमय भूमिकामें उतरता है। वहाँ पहुँचकर वह वृत्रका वध करता है अर्थात् प्रकाशपर पड़े आवरणोंको दूर करता हैं, दिव्य जीवनकी विघ्न-बाधाओंको हटाता है, सब प्रकारके प्रतिबन्धक आवरणोंको हटाकर हमारे आत्माकाशमें सूर्यका उदय करा देता है, सत्यरूपी सूर्यको प्रकाशित कर देता है। साथ ही वह इन्द्र पर्जन्य-देवता और वृषा बनकर ज्ञानधारा, ज्योति, शक्ति तथा अन्य दिव्य ऐश्वर्योंकी वृष्टि भी करता है। अन्तरग्निको प्रज्वलित करनेके फलस्वरूप ही हमें इन्द्र देवतासे दिव्य वृष्टिका प्रसाद प्राप्त होता है।

(२)

(डॉ० श्रीशिवशंकरजी अवस्थी)

ऐश्वर्यशाली चेतनशक्तिको देवता कहते हैं। ऐश्वर्य भी सातिशय और निरतिशय—दो प्रकारका होता है। जहाँ ऐश्वर्य चरम सीमाको प्राप्त करता है, उसे परदेवता कहते हैं। वही निरतिशय ऐश्वर्यशाली परदेवता परमेश्वर या परब्रह्मके नामसे जाना जाता है। यह एक अद्वितीय और अखण्ड है। सातिशय (एक-एकसे बढ़कर) ऐश्वर्य रखनेवाली शक्तियाँ अनन्त हैं। ये सातिशय ऐश्वर्य-सम्पन्न देवता या चेतन-शक्तियाँ उस परदेवता या महाचेतनाके अंश हैं। यह अंशभाव यद्यपि महाचेतनामें नहीं है तथापि उपाधियोंके कारण अखण्ड चेतन भी आकाशके समान खण्डित-सा भासित होता है। ये उपाधियाँ हैं संसारके नाना पदार्थ। दृष्ट मौलिक उपाधियोंमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशको गिना जा सकता है। इन उपाधियोंमें अपने-अपने सीमित ऐश्वर्यसे सम्पन्न चेतनांश विद्यमान रहता है।

शास्त्र, अनुभव और युक्तियोंद्वारा भारतीय दार्शनिकोंने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि यह जगत् महाचेतनाकी भित्तिपर खचित है। इसके प्रत्येक पदार्थमें चेतना निगूढ़ है। योगवासिष्ठमें लिखा है—

शुद्धं हि चेतनं नित्यं नोदेति न च शाम्यति।
स्थावरे जङ्गमे व्योम्नि शैलेऽग्नौ पवने स्थितम्॥

(उत्पत्तिप्रकरण, सर्ग ५५।३)

स्थावर (पृथ्वी आदि), जंगम (प्राणिवर्ग) आकाश, शैल[1] (जल), अग्नि और वायुमें शुद्ध चेतन नित्यरूपसे वर्तमान रहता है। वह न कभी उदित होता है और न अस्त। व्याकरणशास्त्र दिवु (दिवादिगण) धातुसे 'दीव्यति' द्योतते इति देवः— इस अर्थमें '**हलश्च**' (पा० ३।३।१२१) से '**घ**' प्रत्यय करके '**देव**'[2] शब्दकी निष्पत्ति मानता है, पुनः उसी अर्थमें तल् प्रत्यय करके 'देवता' शब्दकी सिद्धि बताता है।

यास्क मुनिने निरुक्तमें '**यो देवः सा देवता**' (७।४।२)—ऐसा कहकर व्याकरणका ही समर्थन किया है। हाँ, वे '**देव**' शब्दकी सिद्धि '**दा**', '**दीप**' और '**द्युत्**' धातुसे करते हैं। यथा—

'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा।'

(निरुक्त, दैवत० ७।४।२)

—अर्थात् '**ददाति ह्यसौ ऐश्वर्याणि**' (जो ऐश्वर्य प्रदान करता है, वह देव है), '**दीपयति ह्यसौ तेजोमयत्वात्**' (तेजोमय होनेके कारण यह दूसरोंको प्रकाशित करता है अथवा '**द्योतनात्**' स्वयं प्रकाशित होते हैं या द्योतित करते हैं) इसलिये देव कहे जाते हैं।

शंकराचार्यने श्रीविष्णुसहस्रनामकी व्याख्यामें दिवादिगणीय 'दिवु' धातुके क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति—इन अर्थोंको दृष्टिमें रखकर अनेक व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। यथा—

यतो दीव्यति क्रीडति सर्गादिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्माद्देवः, 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः', इति (श्वे० उ० ६।११) मन्त्रवर्णात् (श्लोक ५४का भाष्य)। क्योंकि परमेश्वर सृष्टि आदिकी रचनाद्वारा क्रीडा करते हैं। असुरोंको जीतना चाहते हैं, समस्त भूतों—चराचरमें चेतन-

१-यहाँ 'शैले' के स्थानपर 'जले' पाठ रहा होगा, क्योंकि 'स्थावरे' से शैलका अर्थ भी गृहीत हो जाता है।

२-नन्दिग्रहि०— (पा० ३।१।१३४) सूत्रद्वारा अच् प्रत्यय करके जो देवः और देवी शब्द सिद्ध होता है, वह 'देवट्' शब्दमें समझना चाहिये, क्योंकि पचादिगणमें 'देवट्' पठित है।

रूपसे व्यवहार करते हैं, आत्मारूपसे सर्वत्र प्रकाशित होते हैं, स्तुत्य पुरुषोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है और सर्वत्र गतिशील होनेके कारण देव कहे जाते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में कहा भी है—'एक ही देव सर्वत्र छिपा हुआ है।'

तन्त्रवार्तिक (१।३।९।३१) में कुमारिलभट्टने लिखा है—

गतिशील अथवा प्रकाशमान होनेके कारण चन्द्र, सूर्य, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, तारकादि तथा सतत गतिशील होनेके कारण विविध प्रकारके वायु भी सभी मन्त्रोंद्वारा स्तुत होनेसे देव कहे जाते हैं। देव ही देवता है—ऐसा इसी ग्रन्थकी न्यायसुधा नामक टीकाके रचयिता भट्ट सोमेश्वरने लिखा है[1]।

मनुस्मृतिके अध्याय ३में एक श्लोक पठित है—

देवानृषीन् मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुग्भवेत्॥

देवों, ऋषियों, मनुष्यों (अतिथियों), पितरों तथा गृह्यदेवताओं[2] अर्थात् घरमें स्थापित प्रतिमाओं, वास्तुदेवताओं अथवा धाता-विधाता—इन भूताधिष्ठातृ देवताओं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि भूतात्मक देवताओंका पूजन करके (उन्हें अन्न देकर) पश्चात् गृहस्थको अवशिष्ट अन्नका भोजन करना चाहिये।

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।' योगसूत्र (२।४४)—के व्यासभाष्यमें देवताके सम्बन्धमें कहा गया है—देव, ऋषि और सिद्ध स्वाध्यायशील (मन्त्रजापक) को दर्शन देते हैं तथा उनका कार्य करते हैं।

अमरकोषका एक श्लोक है—

विद्याधरोऽप्सरो यक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥

(१।१।११)

'देवयोनयः' का अर्थ देवजाति-विशेष ही है और देव शब्द ऐश्वर्यार्थक दिवु धातुसे समझना चाहिये।

'महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते[3]॥'

(निरुक्त, दैवत० ७।१।५)

देवताके ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उस एक आत्माकी अनेक नाम-रूपोंसे स्तुति की जाती है।

शेखरमें नागेशने लिखा है—

'वैधे कर्मणि त्यज्यमानद्रव्योद्देश्यत्वं मन्त्रस्तुत्यत्वं च देवतात्वम्।'

वैध यज्ञादि-कर्ममें जिसे उद्देश्य बताकर हवि दी जाती है, उसे देवता कहते हैं, अथवा मन्त्रद्वारा जिसकी स्तुति की जाती है, वह देवता कहलाता है।

देवता शब्द व्यापक है। इससे ऋषि, पितर, देव, असुर, गन्धर्व आदि सभीका बोध होता है। देवता अनन्त हैं। देवोंकी संख्या ३३ ही है— ऐसा शतपथ ब्राह्मणके विदग्ध शाकल्य (काण्ड १४, अ० ३) के प्रश्नों एवं याज्ञवल्क्यके उत्तरसे स्पष्ट है। शतपथके अंशभूत बृहदारण्यक उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रके देवताधिकरणमें इन देवोंका विस्तारसे वर्णन मिलता है। वहाँ ३३०६ देव, इनका समाहार ३३में, तैंतीस देवोंका ६में, ६का ३में तथा तीन देवोंका एक प्राण-रूप ब्रह्ममें दिखाया गया है।

वैदिक साहित्यमें देवताओंको (१) आजानदेव और (२) कर्मदेव—इन दो[4] भेदोंमें विभक्त किया गया है। शुक्लयजुर्वेदके उत्तर नारायणसूक्तमें आये हुए **'देवत्वमाजानमग्रे'** की व्याख्यामें महीधरने लिखा है—'उत्कृष्ट कर्मद्वारा जिन्हें देवत्व प्राप्त हुआ है, वे कर्मदेव हैं और जो सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुए, वे आजानदेव कहे जाते हैं। कर्मदेवोंसे आजानदेव श्रेष्ठ हैं।'

देवताओंका आकार कैसा होता है, इस सम्बन्धमें यास्क ऋषिने निरुक्तमें उपक्रम किया है—

१-सर्वेन्द्रादिदेवतानुवर्तिदीव्यतिधात्वर्थयोगित्वसामान्यं देवताशब्दवाच्यम्। (न्यायसुधा)

२-उक्त श्लोकके टीकाकार मेधातिथिने लिखा है—'गृहे भवा गृह्याः, ताश्च प्रतिकृतय एव।' सर्वज्ञनारायण कहते हैं—'गृह्या देवताः भूतानि।' कुल्लूक भट्टकी उक्ति है—गृह्या देवताः पूजयित्वा—'वासुदेवादिप्रतिकृतिपूजाविधानार्थत्वमस्य।' राघवानन्दकी व्याख्या है—'गृह्या देवताः श्रीवास्तुदेवादयः भूतानि वा॥'

३-दुर्गाचार्य 'महाभाग्यात्' की व्याख्या करते हैं—अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिप्राकाम्यमेव च। ईशित्वं च वशित्वं च यत्र कामावसायिता॥ इत्येवमनेन महदैश्वर्येण भज्यते। महदैश्वर्यं भजत इति वा महाभागा देवता॥

४-द्विविधा देवाः— कर्मदेवा आजानदेवाश्च।
कर्मणोत्कृष्टेन देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजानदेवाः। (उव्वटकृत यजुर्वेदका वेददीप-भाष्य)

अथाकारचिन्तनं देवतानाम्—

१-पुरुषविधाः स्युरित्येकम्।

२-अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम्।

३-अपि वा उभयविधाः स्युः।

४-अपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्य।

(निरुक्त, दैवत० ७। २-३)

देवता पुरुषके समान शरीरधारी होते हैं। यह एक मत है। दूसरा मत है कि वे पुरुषविध विग्रह नहीं होते। उभयविध होते हैं यह तीसरा मत है। अथवा पुरुषविध होते हुए भी सृष्टिकार्य-सम्पादनके लिये ये क्षिति, जल, अग्नि आदिका प्रकट रूप धारण करते हैं। जैसे यजमानका क्रियात्मक रूप है यज्ञ। यज्ञमें वे सारे उपकरण प्रस्तुत किये जाते हैं, जो यजमानके शरीरमें विद्यमान रहते हैं।

आचार्य दुर्गने इस प्रसंगमें लिखा है—'अन्य लोगोंकी मान्यता है कि अधिष्ठातृदेवता ही पुरुषविध शरीरधारी होते हैं।'

'अधिष्ठातारः पुरुषविग्रहाः।' (निरुक्त, दैवत०)

यह आख्यान (इतिहास) वेत्ताओंका सिद्धान्त है। वहाँ कहा गया है—**'पृथ्वी स्त्रीरूपेण भारावतारणाय ब्रह्माणं ययाचे।'** पृथ्वीने स्त्री-रूप धारण करके अपना भार उतारनेके लिये ब्रह्मासे याचना की। यह शरीरधारी स्त्रीरूप ही पृथ्वी देवता है।

पृथ्वी, जल, तेज आदि सर्वत्र विद्यमान अभिमानी चेतन देवता मन्त्र (वेद), ब्राह्मण तथा इतिहास-पुराणोंसे जाने जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे अधिष्ठाता और अभिमानी देवता एक ही प्रतीत होते हैं। ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यसे ज्ञात होता है कि अधिष्ठाता देवता एक ही होता है और वही अन्तर्यामी है। वह समस्त भूतों और इन्द्रियोंमें साक्षीरूपसे विद्यमान रहता है। वास्तवमें सर्वाधिष्ठातृत्व तो परमेश्वरमें ही निहित है।

वैदिक मन्त्रोंमें देवताका परिज्ञान

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

वैदिक ऋषियोंने देवताओंके महाभाग्यका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। महाभाग्यशाली होनेके कारण ही वे एक देवताके अनेक रूपोंमें प्रत्यक्ष अनुभव कर उनके रूपानुरूप विविध कार्य-कलापोंका वर्णन किये हैं।

(क) देवताओंका यह ऐश्वर्य ऋषियोंको भलीभाँति ज्ञात था, इसलिये जिस कामनासे जो ऋषि जिस मन्त्रमें जिस देवताकी स्तुति करते हैं, उस मन्त्रके वे ही देवता माने जाते हैं[1]। तात्पर्य यह है कि 'अमुक' देवताके प्रसादसे अमुक अर्थका स्वामी बनूँगा' इस बुद्धिके साथ जिस मन्त्रमें जिस देवताकी स्तुति की गयी, उस मन्त्रके वे देवता हुए। यह स्तुति चार प्रकारोंसे की गयी है—१-नामसे, २-बन्धुओंसे, ३-कर्मसे और ४-रूपसे। अर्थात् जिन मन्त्रोंमें अग्नि, इन्द्र, वरुण आदिके नामोल्लेखपूर्वक उनकी स्तुति की गयी है, उन मन्त्रोंके अग्नि, इन्द्र आदि देवता हैं। जिन मन्त्रोंमें अग्नि, इन्द्र आदिके बन्धुओंके नाम लेकर स्तुति की गयी है, उन मन्त्रोंके भी प्राधान्यतः अग्नि, इन्द्र आदि देवता होंगे। जिन मन्त्रोंमें अग्नि, इन्द्र आदिके क्रिया-कलापोंकी वर्णनात्मक स्तुति की गयी है, उन मन्त्रोंके भी वे ही अग्नि, इन्द्र आदि देवता माने जायँगे और जिन मन्त्रोंमें अग्न्यादि देवोंके रूपोंके आधारपर स्तुति की गयी है, उन मन्त्रोंके भी वे ही अग्न्यादि देवता होंगे। इस प्रकार नाम, बन्धु, कर्म और रूप—इनमें किसी प्रकारसे जिस मन्त्रमें जिनकी स्तुति की गयी, उस मन्त्रके वे देवता हुए।

(ख) १-उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट होता है कि नाम, बन्धु, कर्म और रूपसे जिस मन्त्रमें जिस देवताका लक्षण प्रतीत होता है, उस मन्त्रका वही देवता होता है। परंतु जिस मन्त्रमें नाम-रूपादिके वर्णन नहीं होनेसे देवताके स्वरूपका निर्देश नहीं होता, उस मन्त्रका देवता किसे माना जाय[2]? इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए महर्षि यास्कने बतलाया है—**'यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा, तद्देवता भवति।'**[3] अर्थात् जिस यज्ञका जो देवता है, उस यज्ञमें विनियुक्त

१-यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थमपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति॥ (निरुक्त-दैवतकाण्ड ७।१।१)

२-३-तद् येऽनादिष्टदेवता मन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा। (नि०, दै० ७।१।४)

होनेवाले अनादिष्ट देवतालिङ्गक मन्त्रोंका वही यज्ञीय देवता होगा। जैसे अग्निष्टोम यज्ञ आग्नेय—अग्नि-देवताक है, वहाँ (अग्निष्टोम यज्ञमें) विनियुक्त होनेवाले अनादिष्ट देवताक मन्त्र आग्नेय होंगे। प्रकरणसे वहाँ देवताका निर्णय किया जायगा[१]।

२-अथवा प्रातःसवनमें विनियुक्त होनेवाले अनादिष्ट देवताक मन्त्र आग्नेय, माध्यन्दिनसवनमें विनियुक्त होनेवाले ऐन्द्र तथा सायंसवनमें विनियुक्त होनेवाले मन्त्र आदित्य देवताक होंगे।

(ग) उपर्युक्त विवेचनसे यज्ञ या यज्ञाङ्ग (प्रातः, माध्यन्दिन तथा सायंसवनों) में विनियुक्त मन्त्रोंका देवता-परिज्ञान तो होता है, परंतु यज्ञसे भिन्न स्थलमें विनियुक्त अनादिष्ट देवताक मन्त्रोंमें देवताका परिज्ञान कैसे होगा[२] ?

'अनिरुक्तो हि प्रजापतिः'—इस सिद्धान्तके अनुसार वैसे मन्त्र प्राजापत्य[३] माने जायँगे, अर्थात् उन मन्त्रोंके देवता प्रजापति होंगे। यह याज्ञिकोंका मत है।

(घ) उपर्युक्त याज्ञिक मतसे भिन्न नैरुक्तोंका सिद्धान्त है कि अनादिष्ट देवताक मन्त्र **'नाराशंस[४]'** होते हैं। अर्थात् उन मन्त्रोंके देवता नराशंस माने जाते हैं। वैदिक वाङ्मयमें नराशंसके अर्थ होते हैं—यज्ञ[५] और अग्नि[६]।

यज्ञका अर्थ है विष्णु **'यज्ञो वै विष्णुः'**। इससे स्पष्ट होता है कि इन मन्त्रोंके देवता विष्णु अथवा अग्नि हैं। अग्नि सर्वदेवस्वरूप हैं। अग्निमें सभी देवताओंका वास है। इस सिद्धान्तके अनुसार वे मन्त्र आग्नेय माने जाते हैं।

(ङ) अनादिष्ट देवताक मन्त्रोंमें देवताके परिज्ञानके लिये पक्षान्तरका प्रतिपादन करते हुए महर्षि यास्कने लिखा है—**'अपि वा सा कामदेवता स्यात्[७]।'** अर्थात् **'कामकल्प्या देवता यस्याम् ऋषिः सा कामदेवता ऋक्।'** उन मन्त्रोंमें इच्छासे देवताकी कल्पना की जाती है, अतः वे कामदेवताक मन्त्र हैं।

(च) अथवा वे अनादिष्टदेवताक मन्त्र प्रायोदेवत[८] होते हैं। 'प्रायः' का अर्थ है अधिकार और बाहुल्य। अधिकार-अर्थमें प्रायोदेवत मन्त्रका तात्पर्य हुआ कि जिस देवताके अधिकारमें वह मन्त्र पढ़ा गया है, वही उसका देवता माना जायगा।

'प्रायः'का बाहुल्य अर्थ माननेपर वैसा मन्त्र बहुलदेवत माना जायगा। लोकमें भी ऐसा व्यवहार होता है कि अमुक द्रव्य देवदेवत्य, अमुक द्रव्य अतिथिदेवत्य और अमुक द्रव्य पितृदेवत्य है[९]। किंतु जिस द्रव्यमें किसीका निर्देश नहीं होता वह देव, अतिथि और पितर सबके लिये होता है, उसी प्रकार अनादिष्टदेवताक मन्त्र सर्वसाधारण होनेके कारण बहुलदेवत होते हैं।

(छ) इन उपर्युक्त विभिन्न मतोंका उपसंहार करते हुए महर्षि यास्कने कहा—**'याज्ञदैवतो मन्त्र[१०] इति।'** अर्थात् अनादिष्टदेवताक मन्त्र याज्ञ अर्थात् यज्ञदेवत होते हैं। **'यज्ञो वै विष्णुः'** के अनुसार वे मन्त्र विष्णुदेवत माने जाते हैं। नैरुक्तसिद्धान्तमें विष्णु द्युस्थानीय आदित्य हैं, अतः वे मन्त्र परमार्थतः आदित्यदेवत हैं।

यदि वे मन्त्र 'दैवत' हैं **(देवता देवता अस्य असौ दैवतः)** अर्थात् उनके देवता 'देवता' हैं तो **'अग्निर्वै सर्वा देवता'**, **'अग्निर्वै देवानां भूयिष्ठभाक्'** इत्यादि सिद्धान्तोंसे यहाँ 'देवता' का अर्थ है अग्नि। फलतः दैवत मन्त्रका तात्पर्य हुआ आग्नेय मन्त्र। इस प्रकार निरुक्तानुसार देवताका परिज्ञान होता है, जो देवता अपने महाभाग्यके कारण अनुष्ठाताके अभीष्टको पूर्ण करनेमें समर्थ होते हैं।

१-'प्रकरणाद्धि संदिग्धदैवतेषु देवता नियमः।' (नि० दै० ७।१।४ की विवृति)
२-अथान्यत्र यज्ञात्? (नि० दै० ७।१।४)
३-प्राजापत्या इति याज्ञिकाः। (नि० दै० ७।१।४)
४-नाराशंसा इति नैरुक्ताः। (नि० दै० ७।१।४)
५-यज्ञ इति कात्थः। 'विष्णुर्वै यज्ञः' इति ह विज्ञायते। (नि० दै० ७।१।४की विवृति)
६-अग्निरिति शाकपूणिः। 'अग्निर्हि भूयिष्ठभाग्देवतानाम्।' 'अग्निर्वै सर्वा देवताः', 'अत्र वै सर्वा वसति देवता।' (नि० दै० ७।१।४ की विवृति)
७-८- प्रायो देवता वा। (नि० दै० ७।१।४)
९-१०-अस्ति ह्याचारो बहुलं लोके। देवदेवत्यमतिथिदेवत्यं पितृदेवत्यम्। (नि० दै० ७।१।४)

संस्कृत-वाङ्मयमें देवता-विषयक विवरण

(डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज)

भगवान् श्रीकृष्णने नरोत्तम अर्जुनके माध्यमसे हमें यह सत्परामर्श दिया है कि मानवों और देवताओंकी पारस्परिक सद्भावनासे कल्याणकी प्राप्ति होती है—

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥'

(श्रीमद्भगवद्गीता ३ । ११)

जिज्ञासा होती है कि देवता कौन हैं? क्या वे कोई निर्गुण-निराकार शक्ति हैं अथवा सगुण-साकार व्यक्ति? श्रुति, स्मृति, रामायण, महाभारत और पुराणोंकी आलोचनासे द्वितीय विकल्पकी सिद्धि होती है अर्थात् देवता सगुण-साकार हैं।

प्राचीन ग्रन्थोंमें देवताओंके विचित्र चरित्रोंकी अनेकानेक चर्चाएँ उपलब्ध होती हैं। अग्निदेवताके स्तवनसे ऋग्वेदका आरम्भ होता है तथा उसके सहस्रों मन्त्रोंमें विभिन्न देवताओंकी महिमाका प्रख्यापन मिलता है।

स्वस्तिवाचनके **'स्वस्ति न इन्द्रो०'** इत्यादि यजुर्वेदके (२५ । १९ वें) मन्त्रमें इन्द्र, पूषा, गरुड और बृहस्पतिसे कल्याण-प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है।

'अग्निर्देवता०' इत्यादि यजुर्वेदके (१४ । २०) मन्त्रमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत्, विश्वेदेव, बृहस्पति, इन्द्र और वरुणका उल्लेख है।

'चन्द्रमा मनसो जातः०', इत्यादि ऋग्वेदके (१० । ९० । १३) मन्त्रमें परमपुरुष श्रीभगवान्‌के मनसे चन्द्रमाकी, नेत्रसे सूर्यकी, मुखसे अग्नि और इन्द्रकी एवं प्राणसे वायुकी उत्पत्ति बतायी गयी है।

सभी देवी-देवताओंके चरित्रोंकी चर्चा करना ऐसे स्वल्पकलेवर किसी लेखमें असम्भव है। अतः केवल इन्द्रदेव और सूर्यदेवकी विपुल महिमाके कतिपय प्रसंगोंका उल्लेख निम्न पंक्तियोंमें प्रस्तुत है।

इन्द्रदेवकी शंसामें कहा गया है कि उन्होंने निमिषमात्रमें शतशः सैनिकोंपर विजय प्राप्त कर ली—

शतꣳसेना अजयत् साकमिन्द्रः ।

(यजुर्वेद १७ । ३३)

वे श्रीविष्णुभगवान्‌को सख्य-भावसे भजते हैं—

इन्द्रस्य युज्यः सखा ।

(ऋग्वेद १ । २२ । १९)

और वृत्रासुरके साथ हुए संघर्षमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि हे मित्र विष्णो! अब अपना पराक्रम दिखाइये—

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ।

(ऋग्वेद ८ । १०० । १२)

शम्बरासुरके साथ इन्द्र देवताका युद्ध दीर्घकालीन रहा। शम्बर अपने दुर्गोंमें तिरोहित रहता था, परंतु सतत प्रयत्नशील इन्द्रने चालीसवें वर्षमें उसे ढूँढ़ ही निकाला—

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।

(अथर्ववेद २० । ३४ । ११)

और उसके ९९ नगरोंका विध्वंस कर दिया—

इन्द्राविष्णू दृंहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।

(ऋग्वेद ७ । ९९ । ५)

महर्षि विश्वामित्र इन्द्रदेवसे प्रार्थना करते हुए निवेदन करते हैं कि—

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥

(ऋग्वेद ३ । ५३ । ६)

अर्थात् 'हे इन्द्र देवता! आप सोमरसका पान कर चुके हैं, अतः अब आप अपने निवास-स्थानको प्रस्थान कीजिये। आपके प्रासादमें आपकी मङ्गलमयी पत्नी हैं और रमणीय भण्डार है। वहाँ आपके विशाल रथकी शाला और घोड़ोंको खोलकर खड़ा करनेकी वाजिशाला भी है।'

षड्विंश-ब्राह्मणमें एक वार्ता इस प्रकार आती है—**'मेधातिथिं ह काण्वायनमिन्द्रो मेषो भूत्वा जहार'** (१ । १) अर्थात् इन्द्र देवताने मेषका रूप धारण करके कण्वतनय। मेधातिथिका अपहरण कर लिया था। इन्द्र देवताके विषयमें यह वैदिक सूक्ति विश्वविश्रुत है कि **'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।'** अर्थात् अपनी मायाशक्तिके आश्रयसे इन्द्र यथावसर इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर लेते हैं।

केनोपनिषद्‌में एक कथा है कि एक बार देवताओंने

ब्रह्म परमात्माकी शक्तिके माध्यमसे अपने रिपुदलपर विजय प्त कर ली थी। वे समझने लगे थे कि हम अपने पराक्रमके ऊपर विजयी हुए हैं। उनके गर्वको खर्व करनेके लिये मात्माने यक्षका रूप धारण किया। देवताओंको जिज्ञासा हुई ; यह यक्ष कौन हैं ? अग्निदेव उनके पास गये। परमात्माने छा कि 'आप अपना परिचय दीजिये।' अग्निदेवने कहा—'मैं ग्नि हूँ और मेरा नाम जातवेदा भी है। पृथ्वीपर जो भी वस्तुएँ मैं उन सबको जला सकता हूँ।' परमात्माने अग्निदेवके म्मुख एक तिनका रखकर कहा कि 'इसे जलाकर दिखाइये।' ग्निदेवने अपना सारा बल लगा दिया, किंतु वे उसे जला न के। वे अपने स्थानको लौट गये। फिर वायुदेव यक्षके पास ये। परमात्माने उनकी भी परीक्षा लेनेके लिये उनसे उसी नकेको उड़ा देनेके लिये कहा, किंतु वायुदेव उसे न उड़ा के। तत्पश्चात् देवराज इन्द्र यक्षकी ओर चले तो परमात्मरूपी क्ष तिरोहित हो गये। तदनन्तर भगवती उमा हैमवती वहाँ कट हुईं। उनसे इन्द्रदेवने पूछा तो देवीने कहा कि 'जिसकी ाक्ति प्राप्त करके तुमलोग विजयी हुए हो, वही परब्रह्म रमात्मा इस यक्षरूपमें आये थे।' इसीलिये कठोपनिषद् (२।३।३) में कहा गया है कि—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

इसका भाव यह है कि परमात्माके भयसे अग्निदेव, सूर्यदेव, वायुदेव, यमराज और देवराज इन्द्र अपना-अपना कार्य करते रहते हैं।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार भगवान् श्रीरामने अपने वनवास-समयमें महर्षि शरभंगके आश्रमके समीप आकाशमें रथपर विराजमान देवराज इन्द्रको देखा। अन्य देवता इन्द्रके पीछे खड़े थे। इन्द्रके वस्त्र रजोविहीन, आभूषण दीप्तिमान् थे और रथमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए थे। एक चन्द्रोज्ज्वल कुसुमावलिविभूषित छत्र उनके मस्तकके ऊपर तना हुआ था। दो सुन्दरियाँ चँवर और व्यजन डुला रही थीं। देवराजके दक्षिण एवं वाम पार्श्वमें सौ-सौ खड्गहस्त युवक खड़े हुए थे, जिनका वय पचीस वर्षका था और जो शरीरपर रक्ताम्बर, कानोंमें कुण्डल तथा वक्षःस्थलपर सुवर्ण-हार धारण किये हुए थे। (अरण्यकाण्ड, सर्ग ५)

श्रीमद्भागवतसे विदित होता है कि भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वत धारण करके इन्द्रकृत तुमुल वर्षासे व्रजकी रक्षा की थी। इससे देवराजका मद नष्ट हो गया। वे कामधेनुके साथ श्रीकृष्णके समीप आये और तब उन्होंने कृताञ्जलि होकर प्रभुसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी थी।

सत्यभामाकी प्रार्थना करनेपर भगवान् अमरावती गये थे। वहाँ इन्द्रसहित देवसमुदायको जीतकर उन्होंने इन्द्रके उद्यानका पारिजात-वृक्ष उखाड़ लिया था और उसे लेकर उसके साथ विनतानन्दनपर बैठकर द्वारकापुरी आये थे (भागवत १०।५९।३९)।

कण्वतनय महर्षि प्रस्कण्वने सूर्यदेवकी प्रार्थनामें कहा है कि—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

(ऋग्वेद १।५०।११)

अर्थात् 'हे सूर्यदेव! आज उदय होते हुए और आकाशमें अग्रसर होते हुए आप मेरे हृदयरोगको दूर कर दीजिये और शरीरकी विवर्णताको भी नष्ट कर दीजिये।' शौनकने अपने 'बृहद्देवता' ग्रन्थमें इस मन्त्रकी महिमामें लिखा है कि—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

अर्थात् '**उद्यन्नद्य**०' इत्यादि मन्त्र सूर्य-स्तुति-परक है। इसका जप पापापहारी, रोग-नाशक, विष-प्रभाव-विध्वंसक है एवं जागतिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस-विधायक भी है।

श्रीकृष्ण भगवान्की महिषी श्रीमती सत्यभामाके पिता सत्राजित्जी सूर्यदेवके परम भक्त थे। उनकी भक्तिने सख्य-प्रीतिका रूप धारण कर लिया तो सूर्यदेवने सत्राजित्जीको अपना सखा मानकर उन्हें स्यमन्तकमणि प्रदान की थी (श्रीमद्भा० १०।५६।३)।

शंका होती है कि सूर्य तो आकाशमें ज्योतिःपुञ्जके रूपमें दृग्गोचर होते हैं, वे सत्राजित्जीके सखा कैसे बन गये ? ऐसी शंकाका समाधान करते हुए श्रीशंकराचार्यने कहा है कि—

अस्ति हि ऐश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्। (वेदान्तसूत्र १।३।३३ पर भाष्य)

अर्थात् 'देवता अपने ऐश्वर्यके प्रभावसे ज्योति आदिके रूपमें रह सकते हैं और अपनी इच्छानुसार कोई आकार भी धारण कर सकते हैं।'

प्राचीन युगोंमें उत्कृष्ट सत्त्वप्रधान व्यक्तियोंको देव-दर्शन हुआ करता था—'**धर्मोत्कर्षवशाच्चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुः।**' (वेदान्त-सूत्र १।३।३३पर भाष्य) किंतु कलिके करालकालमें वातावरण दूषित हो रहा है। सात्त्विकताके अभावमें दिव्य शक्तियोंकी कृपा कैसे हो?

इस युगमें भी जिन महामना साधकोंमें देव-दिदृक्षाका तीव्र संवेग हुआ है, उन्होंने अवश्यमेव अपने इष्टदेवका साक्षात्कार किया है।

परोक्षप्रिय होनेके कारण सर्वसाधारणके सम्मुख प्रत्यक्ष होना यद्यपि देवताओंको रुचिकर नहीं है तथापि हमारी आराधनासे प्रसन्न होकर वे हमें सर्वाङ्गीण अभ्युदय प्रदान करते ही हैं—

यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च।
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः॥

(वा० रा० ३।११।९३)

अर्थात् सत्त्वगुणसम्पन्न साधकोंकी सपर्यासे संतुष्ट होकर देवता यक्ष-पद, अमर-पद तथा अनेक प्रकारके राज-सम्मान प्रदान करते हैं। अतः देवताराधन सर्वाङ्गीण अभ्युदयके अभिलाषी मानवोंका प्रधान कर्तव्य है। संस्कृत-साहित्याकाश दैवत नक्षत्रोंसे उद्भासित हो रहा है।

देव एवं देवोपासना

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय जीवनमें देवताओंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपनिषदोंके अनुसार देवताओंकी संख्या तैंतीस कोटि मानी गयी है, जो उनकी महिमाका प्रतिपादक है। अन्यत्र प्रायः तैंतीस ही देवता बताये गये हैं—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे मात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्ववेद १०।७।२७)

'जिस परमात्माके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें तैंतीस देवता अवयव-रूपसे विभक्त होकर विद्यमान हैं, उन तैंतीस देवताओंको ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं।'

विष्णुपुराण (३।१।४६)में सभी देवता, समस्त मनु तथा सप्तर्षि, मनुपुत्र और इन्द्र भगवान् विष्णुकी विभूति हैं, ऐसा बताया गया है—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः॥

देवता अनुग्रह करने, इच्छापूर्ति करने और दण्ड देनेमें समर्थ हैं। मानव अपने उत्कृष्ट कर्मोंसे देवत्व प्राप्त कर सकता है। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला व्यक्ति इन्द्रपद प्राप्त कर लेता है।

जडवादी नास्तिक पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमादिको जड-परमाणुओंके समुदायसे निर्मित पिण्डमात्र मानते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। वस्तुतः जड-चेतन सभी पदार्थोंकी अधिष्ठातृ-शक्तिका नाम देवता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि नाना शक्तिसम्पन्न परमात्माके ही चेतन-रूप हैं।

श्रीमद्भागवत (२।३।२-१०)में विभिन्न कामनाओंके उद्देश्यसे विभिन्न देवताओंकी उपासनाका उल्लेख मिलता है—

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम्।
इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन्॥
देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम्।
वसुकामो वसून् रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान्॥
अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान्।
विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम्॥
आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत्।
प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ॥

'ब्रह्मतेजके इच्छुकको बृहस्पतिकी, इन्द्रियशक्तिके इच्छुकको इन्द्रकी, संततिकामीको प्रजापतियोंकी, लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये मायादेवीकी, तेजके लिये अग्निकी, धनके लिये

[ओंकी और वीरता-प्राप्तिके लिये रुद्रोंकी, प्रचुर धान्यकी मना करनेवालेको अदितिकी, स्वर्गकामीको अदितिपुत्र ताओंकी, राज्यकामीको विश्वेदेवोंकी तथा प्रजाको स्वानुकूल ानेकी इच्छा रखनेवालेको साध्य देवताओंकी, दीर्घायुकामी- अश्विनीकुमारोंकी, पुष्टिकामीको पृथ्वीकी, प्रतिष्ठाकामीको थ्वी और आकाशकी आराधना करनी चाहिये। इसके आगे ौर भी—

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम्।
आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम्॥
यज्ञं यजेद् यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम्।
विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम्॥
धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन् पितॄन् यजेत्।
रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान्॥
राज्यकामो मनून् देवान् निर्ऋतिं त्वभिचरन् यजेत्।
कामकामो यजेत् सोममकामः पुरुषं परम्॥
अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

सौन्दर्यकामीको गन्धर्वोंकी, सुभगा पत्नीके लिये उर्वशी अप्सराकी और सबका स्वामी बननेके लिये ब्रह्माजीकी, यज्ञकामीको यज्ञपुरुषकी, कोषकामीको वरुणकी, विद्याकामीको भगवान् शंकरकी तथा पति-पत्नीमें प्रेम बनाये रखनेके लिये भगवती पार्वतीकी, धर्म-सम्पादनार्थ भगवान् विष्णुकी, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी और बलवान् बननेके लिये मरुद्गणोंकी, राज्यके लिये मन्वन्तराधिप देवोंकी, अभिचारके लिये निर्ऋतिकी, भोगप्राप्तिके लिये चन्द्रमाकी और निष्कामता-प्राप्तिके लिये भगवान् नारायणकी उपासना करनी चाहिये। उदार बुद्धिवाले मोक्षकामी पुरुषको तो चाहे वह सकाम हो अथवा निष्काम, तीव्र भक्तिपूर्वक एकमात्र भगवान् पुरुषोत्तमकी ही आराधना करनी चाहिये।

भिन्न-भिन्न कामनाओंकी पूर्ति देवताओंकी पूजा करनेसे होती है। प्रत्येक जीवका स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। उस स्वभावके अनुसार जो अन्तःकरणमें भिन्न-भिन्न देवताओंके पूजन करनेकी भिन्न-भिन्न इच्छा उत्पन्न होती है, उसीको उससे प्रेरित होना कहते हैं। सत्त्व, रज आदि भिन्न प्रकृतियों तथा रुचि-भेदके कारण प्राणियोंकी अपने अनुरूप विभिन्न इष्टदेवकी उपासनामें रुचि होती है। तदनुसार ही वह उपासना करके सिद्धि-लाभ करता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसी भावको भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे इस प्रकार प्रकट करते हैं—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

(७।२१)

'जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ।'

जीव भगवान्का ही अंश है। भगवान् एक ओर तो उसकी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं तथा दूसरी ओर उसे इस सांसारिक प्रपञ्चसे मुक्ति भी दिलाते हैं। अतः उन्होंने भूर्भुवः स्वः आदि ऊर्ध्वलोकों तथा अतल, वितल, सुतलादि निम्न-लोकोंके मध्यमें जीवलोकको प्रतिष्ठित किया है और इन लोकोंकी उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगामी अथवा अधोगामी अवस्थितिसे मानवको बताया है कि वह यदि अच्छा कर्म करेगा तो देवत्वको प्राप्त करेगा तथा निन्दित कर्म करेगा तो अधोलोकगामी होगा। अतः देवोपासना आदि सात्त्विक कर्मोंके द्वारा आत्म-कल्याणकी प्राप्ति करनी चाहिये।

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्। पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥
मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति। भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२७।५२-५३)

'मेरा भक्त विग्रह-प्रतिष्ठाके द्वारा सार्वभौमपद, मन्दिर-निर्माणके द्वारा त्रिभुवनका स्वामित्व, पूजा आदिके द्वारा ब्रह्मलोक तथा उपर्युक्त तीनों कार्योंके द्वारा मेरी समता प्राप्त करता है और निष्काम भक्तियोगके द्वारा मुझको ही प्राप्त करता है। जो उपर्युक्त रीतिसे मेरी पूजा करता है, वह भक्तियोगको प्राप्त करता है।'

देवताओंके नियामक भगवान् श्रीकृष्ण

(डॉ॰ श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी॰ लिट्॰)

दुष्टोंके दमनकी बात तो सर्वप्रचलित है ही, श्रीकृष्ण देवत्व-अभिमानका भी नियमन करनेवाले हैं। श्रीमद्भागवतमें देवाभिमान-नियमनके कई रोचक प्रसंग आये हैं—

१-देवताओंके राजा इन्द्रको यह अहंकार था कि मैं ही तीनों लोकोंका ईश्वर हूँ। वे अपनी वार्षिक पूजाकी अवहेलना तथा गोवर्धन-पूजाकी नयी परिपाटी चलानेसे अत्यन्त रुष्ट होकर प्रलयकारी सांवर्तक मेघोंसे कहने लगे—'बकवादी और नादान कृष्णके कहनेमें आकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना करके गिरिराज गोवर्धनकी पूजा की है। तुमलोग व्रजवासियोंकी हेकड़ीको धूलमें मिला दो और उनके पशुओंका संहार कर डालो।'

फिर क्या था, बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे। प्रचण्ड आँधी, झंझावात, ओले और मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो गयी। कृष्णने देखा और सोचा कि इन्द्र अहंकारके वशीभूत मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, मुझे इनके अभिमानको दूर करना ही पड़ेगा। श्रीकृष्णने गिरिराजको धारण किया और समस्त व्रजवासी गोवर्धनकी शरणमें सुरक्षित हो गये। यह देखकर इन्द्रका गर्व दूर हो गया। इन्द्रने कृष्णकी स्तुति की और कहा—'प्रभो! मैंने देवत्वके मदमें आपका अपराध किया; किंतु आपकी कृपासे मेरे अहंकारका समूलोच्छेद हो गया।' (भाग॰ अ॰ २५-२७)

२-व्रजके ग्वालबालोंके साथ श्रीकृष्ण वृन्दावनमें यमुनाके तटपर गाय चराने गये। भूख लगी तो सबने अपने-अपने छीके खोल लिये और कन्हैया ग्वालबालोंके साथ बड़े आनन्दसे भोजन करने लगे। ब्रह्माजी यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये और उनके नारायणत्वकी परीक्षा लेने तथा कोई अन्य विशिष्ट लीला देखनेके लिये उन्होंने गोकुलके बछड़ोंको और बादमें ग्वालबालोंको भी चुराकर गुफाओंमें छिपा दिया। पूरा वर्ष बीत गया। बादमें व्रजमें उन्होंने देखा तो वहाँ कुछ और ही आमोद-प्रमोद था। श्रीकृष्ण, ग्वालवाल और बछड़ोंकी वही रसक्रीडा। ब्रह्माने सोचा—गोकुलमें जितने भी ग्वाल-बाल और वछड़े थे, वे तो मेरी मायामयी शय्यापर अचेत सो रहे हैं, फिर व्रजमें उतने ही दूसरे उसी रूपके गोप-बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये? ब्रह्माजीने अपनी आँखोंको छूकर देखा कि वे खुली हुई हैं। तत्पश्चात् छिपाये हुए स्थानमें जाकर बछड़ों और ग्वालबालोंको पूर्ववत् स्थित देखा। फिर व्रजमें आकर देखा। फिर छिपाये स्थानमें गये और फिर व्रज आये। दोनों जगह वे ही ग्वाल-बाल और वे ही बछड़े। क्या मेरी आँखोंको कुछ हो गया है या मेरी बुद्धि ही भ्रमित हो गयी है और वे फिर दोनों स्थानोंपर अपने निश्चयका पता लगाने गये, किंतु इस बार वे सभी ग्वाल-बाल एवं बछड़े साक्षात् कृष्णके रूपमें दिखे। वे सब-के-सब पीताम्बरधारी चतुर्भुज नील-जलधरवर्णके रूपमें प्रतिभासित हो रहे थे। साथ ही स्वयं ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवता उनकी उपासना कर रहे थे।

यह आश्चर्यमय दृश्य देखकर चकित होकर वे कृष्णके पास आकर बोले—'मेरे स्वामिन्! अब कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। आपकी महिमा अनन्त है। स्वयं मेरी बुद्धि, वाणी, शरीर और मन आपकी महिमाके लेशांशको भी जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं। फिर उन्होंने उनकी सरस स्तुतिकर उनकी तीन बार परिक्रमा की और उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर ब्रह्मलोकको चले गये।'

३-वरुण लोकपालक देवता हैं। उनके एक असुर सेवकने श्रीकृष्णका अपराध कर दिया। नन्दबाबा द्वादशीके दिन कुछ रात शेष रहनेपर यमुना-स्नान करनेको जलमें प्रविष्ट हुए तो वरुणका सेवक उन्हें पकड़कर ले गया। श्रीकृष्ण जलके देवता वरुणके लोकमें पहुँचे। वरुण उनके सामने नतमस्तक हुए और बोले—'प्रभो! मेरा यह मूढ़ और अज्ञानी सेवक अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता। आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिये। आप भक्तोंके भगवान्, वेदान्तियोंके ब्रह्म और योगियोंके परमात्मा हैं। आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गया है, क्योंकि आज आपके चरणोंकी सेवाका अवसर प्राप्त हुआ है। आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये।' प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दबाबाको लेकर व्रजमें वापस लौट आये।

४-यक्षोंके स्वामी राजाधिराज वैश्रवण कुबेर हैं। उनके दो थे—नलकूबर और मणिग्रीव। धनाध्यक्ष कुबेरके पुत्र वे मदोन्मत्त हो गये थे और लोकशास्त्रकी मर्यादाका यागकर स्वेच्छाचारी बन गये थे। नारदने देखा तो उन्हें वृक्ष होनेका शाप दे दिया। वे दोनों कुबेरपुत्र यमलार्जुन हो गये। यशोदा मैयाने जब कन्हैयाको ऊखलसे बाँधा तो उसे घसीटते-घसीटते वहाँ चले गये, जहाँ वे दोनों न-वृक्ष खड़े थे। ऊखल दोनों वृक्षोंके बीच जा फँसा। कृष्णने जोरसे झटका दिया तो दोनों वृक्ष चट टूट गये। दोनोंने अपने स्वरूपमें प्रकट होकर भगवान् श्रीकृष्णकी ा की।

५-शङ्खचूड नामक एक यक्ष भी कुबेरका अनुचर था। सदा मदोन्मत्त रहता था। एक बार व्रजमें आकर कुछ यों को लेकर वह भागने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने दौड़कर के सिरमें एक घूँसा जमाया और उसके सिरकी चूडामणि ाल ली।

६-सुदर्शन नामक एक विद्याधर था, वह अम्बिकावनमें ङ्गिरस ऋषियोंके शापसे अजगर बना पड़ा था। उसने बाबाका पैर पकड़ लिया तो श्रीकृष्णने उसे अपने पैरसे र्श कर दिया और उसका उद्धार हो गया।

७-अग्निदेवने भी एक दिन व्रजमें दावानलका रूप धारण लिया और अपनी भयंकर लपटोंसे समस्त चराचरको मसात् करने लगे। व्रजवासियोंको डराते हुए जब वे श्रीकृष्णकी ओर बढ़े तो व्रजवासी पुकार उठे— 'श्रीकृष्ण! इस समय दावानल हमें जलाना ही चाहता है, हमें इससे बचाओ।' श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत, तुम सब अपनी आँखें बंद कर लो।' श्रीकृष्णके कथनानुसार व्रजवासियोंने ज्यों ही अपनी आँखें बंद कीं, त्यों ही श्रीकृष्णने दावानलका पान कर लिया। इस तरह अग्निदेव भी उनसे पराभूत हो गये।

८-भागवतकारने रासलीलाके प्रसङ्गमें तथा उनकी षोडश सहस्र राजमहिषियोंके मध्यमें निर्विकार और निष्काम जीवन-यात्राको काम-विजयका रूप दिया है। रास-प्रसङ्गमें वे सर्वथा अच्युत ही बने रहे, अतः इस प्रसङ्गका दूसरा नाम कामविजय ही रखा गया है।

देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण सदासे ही देवताओंके पक्षधर रहे हैं और दुराचारी देवशत्रु दानव आदिका ही उन्मूलन करते रहे हैं। इसका मूलकारण है आसुरी वृत्ति-प्रधान स्वेच्छाचारी योनियोंका संसारपर प्रभुत्व स्थापित कर सदाचारी संत-महात्मा और देवताओंको वाधित करना। ऐसी परिस्थितिमें ही भगवान् अवतीर्ण होते हैं और श्रीकृष्ण तो षोडशकला-सम्पन्न समग्र ब्रह्म ही हैं। मूलतः वे आसुरी सम्पदाके मूलभूत अहंकारको ही नष्ट करते हैं।

यह अहंकार यदि किसी कारणसे कदाचित् देवताओंमें भी अङ्कुरित होने लगता है तो वे वहाँ भी उसका उन्मूलन करनेमें संकोच नहीं करते और उसे दूर कर अपनी भक्तवत्सलताका ही परिचय देते हैं।

श्रीरामकृष्णके देवदर्शन

(स्वामी श्रीविदेहात्मानन्दजी)

विश्वमें स्वामी विवेकानन्दके रूपमें सुपरिचित होनेवाले न्द्रनाथ जब अपनी किशोरावस्थामें श्रीरामकृष्णसे मिलने ली बार दक्षिणेश्वर गये तो उन्होंने परमहंसदेवसे पूछा— हाराज! क्या आप ईश्वरमें विश्वास करते हैं?' उत्तर मिला, ाँ।' फिर पूछा गया, 'क्या आप सिद्ध करके दिखा सकते ?' पुनः वही उत्तर मिला, 'हाँ।' नरेन्द्रनाथका प्रश्न था— कैसे?' उत्तरमें उन्होंने कहा— 'जैसे मैं तुम्हें यहाँ देख रहा , उसी प्रकार मैं ईश्वरको देखता हूँ—बल्कि उससे अधिक ष्ट रूपसे।' अपने पास सत्संगके लिये आनेवाले जिज्ञासुओं और शिष्योंके समक्ष श्रीरामकृष्ण अपने देव-देवियोंके दर्शन तथा साकार एवं निराकार ईश्वरकी अनुभूतियोंका सविस्तार वर्णन प्रायः किया करते थे। ऐसे अनेक वर्णन उनके शिष्योंद्वारा लिपिबद्ध हुए हैं। यहाँपर हम उन्हींके आधारपर कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

काली-दर्शन

वैसे तो श्रीरामकृष्णको बचपनसे ही यदा-कदा दिव्य अनुभूतियाँ होने लगी थीं, परंतु जब वे कलकत्तेके निकट दक्षिणेश्वरके काली-मन्दिरमें पुजारी बने तभीसे उनके

वल भाव-राशि ही क्रमशः एकत्र एवं घनीभूत होकर ीपुरीके रूपमें विद्यमान है। उन्हें ऐसा बोध हुआ कि वह घन ज्योतिर्मय रूप ही वहाँका नित्य-स्वरूप है और रसे जो कुछ दीख पड़ता है, वह उसकी छायामात्र है। णसीको स्वर्णमयी देखकर और इस भयसे कि कहीं वह वित्र न हो जाय, भावुक स्वभावके श्रीरामकृष्ण कई तक शौचादि करने काशीकी सीमासे बाहर चले जाते थे।

इसके पश्चात् अपने साथियोंसहित परमहंसदेव नावमें कर पञ्चतीर्थोंका दर्शन करने गये। जब उनकी नाव कर्णिकाघाटके सामने पहुँची, तो उस समय वहाँ शवदाह रहा था और महाश्मशान चिताधूमसे परिपूर्ण था। घाटकी दृष्टि पड़ते ही भावमय श्रीरामकृष्ण सहसा आनन्दसे ल्ल हो उठे, रोमाञ्चित होकर नावके किनारेकी ओर दौड़े वहीं समाधिस्थ हो गये। उस समय हुए अद्भुत दर्शनका न करते हुए बादमें उन्होंने बताया था—'मैंने देखा कि जूटधारी दीर्घाकार एक श्वेतवर्ण पुरुष धीरे-धीरे श्मशानकी क चिताके समीप आ रहे हैं तथा प्रत्येक व्यक्तिको यत्नपूर्वक उठाकर उसके कानमें तारकब्रह्म मन्त्र प्रदान कर रहे हैं! सर्वशक्तिमयी जगदम्बा भी स्वयं महाकाली-रूपमें उस चितापर जीवके दूसरी ओर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकारके संस्कार-बन्धनोंको खोल दे रही हैं तथा निर्वाणके द्वारको उन्मुक्त कर अपने हाथसे उसे नित्य, अविनाशी लोकको भेज रही हैं। इस प्रकार अनेक कल्पके तपस्यादिके द्वारा जीवको जिस अद्वैतानुभवजनित भूमानन्दकी प्राप्ति होती है, विश्वनाथ तत्काल ही उसे वह वस्तु प्रदानकर कृतार्थ कर रहे हैं।' काशीमें ही उन्हें सोनेकी चिदानन्दमयी अन्नपूर्णाके दर्शन हुए थे।

इन विवरणोंका अनुशीलन करनेसे ऐसा बोध होता है कि देवतागण कल्पनाप्रसूत नहीं हैं, अपितु ऋषि-मुनियों एवं संतोंने शब्दादि सभी पुष्ट प्रमाणोंसे प्रमाणित अनुभूतकर तथा प्रत्यक्ष दर्शन पाकर इतिहास-पुराणों तथा अपने-अपने ग्रन्थों-में यथानुभव वर्णन किया है। श्रीरामकृष्णके ये देव-दर्शन प्राचीन कालसे चले आ रहे अतीन्द्रिय तत्त्वोंके प्रति हमारी श्रद्धाको और अधिक प्रगाढ़ एवं पुष्ट करते हैं।
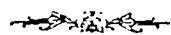
देवी-देवताओंके रंगोंका यथार्थ स्वरूप

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

रंगोंमें सुन्दरता और कल्याणका संदेश

शास्त्रोंमें निर्दिष्ट ध्यान-स्वरूपोंके आधारपर हिन्दू-ाकारोंने भारतीय देवी-देवताओंके शरीर तथा वस्त्रोंमें नाना का कलात्मक प्रयोग किया है। एक ओर जहाँ ये विभिन्न उन्हें चित्ताकर्षक बनाते हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक देवतामें ित गुणों और विशिष्ट कर्मों अथवा उच्च उद्देश्योंको भी अभिव्यक्त करते हैं।

हिन्दू-देवताओंमें प्रयुक्त रंगोंके चुनावमें कुछ रंगोंका निश्चित मनोवैज्ञानिक सांकेतिक अर्थ है। कुछकी स्वास्थ्य, दीर्घजीवन और धर्मकी दृष्टिसे विशेष उपयोगिता है। विविध रंग हमारे दैनिक जीवनमें उपयोगिताके साथ-साथ ही नव-स्फूर्ति, सुन्दरता और कल्याणका संदेश देते हैं।

रंगोंका स्वास्थ्य और मनपर प्रबल प्रभाव पड़ता है। रंगोंके आकर्षक वातावरणमें मन आह्लादित रहता है और ऊब दूर होती है, निराशा भागती है। धार्मिक कृत्योंमें रोलीका लाल, हल्दीका पीला, पत्तियोंका हरा, आटेका सफेद रंग प्रयोगमें लाया जाता है। यह हमारे लिये स्वास्थ्यदायक, स्फूर्तिप्रद और कल्याणकारी होता है।

प्राचीन युगसे अर्वाचीन कालतक हमारे धर्म तथा समाजमें रंगोंका सम्मिश्रण नये-नये रूपोंमें होता रहा है। एक ओर रंग जहाँ हमारे यहाँ सौन्दर्य-प्रसाधनोंके विविध रूपोंमें प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ दूसरी ओर ये धर्ममें निहित उपयोगी तथ्योंको भी जनमानसतक पहुँचाते रहे हैं।

सब रंग सूर्यकी किरणोंके प्रभावसे बनते हैं। सूर्यकी किरणोंमें सभी रंगोंका सम्मिश्रण है। सूर्यकी छत्रच्छायामें नाना वनस्पतियाँ तथा जीवधारी जैसे पनपते और बढ़ते हैं, उसी प्रकार हरा, लाल और नीला रंग—ये मनुष्यको स्वस्थ, यशस्वी और गौरवशाली बनानेवाले हैं। लाल रंग सौभाग्यका

चिह्न है तो हरा रंग शुभ कामना प्रकट करता है।

लाल रंगमें सर्वाधिक धार्मिकता

हिन्दूधर्ममें लाल रंगका सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है तथा अधिक-से-अधिक मङ्गल-कार्योंमें इसका उपयोग किया गया है। प्रायः सभी देवी-देवताओंकी प्रतिमामें लाल रोलीका टीका लगाया जाता है। लाल चन्दन चन्द्रमाका परिचायक है। लाल टीका शौर्य एवं विजयका प्रतीक है। ाल टीका लगाकर व्यक्ति (विशेषतः पुरुष) में तेजस्विता, राक्रम, गौरव और यशका अस्तित्व होना माना गया है।

लाल रंग मनुष्यके शरीरको स्वस्थ और मनको हर्षित रनेवाला है। इससे शरीरका स्वास्थ्य सुधरता है और मन सन्न रहता है, यह पौरुष और आत्मगौरव प्रकट करता है। ौरवका रंग ही लाल है। उत्तम स्वास्थ्य और शक्ति मनुष्यके लाबी आभायुक्त रंगसे प्रकट होती है।

प्राचीन कालसे अर्वाचीन युगतक भारतीय ललनाओंके ोवन और शृङ्गारमें लाल रंगका प्रमुख स्थान रहा है। ौभाग्यवती नारियाँ लाल बिंदी लगाती हैं। नारीकी गरिमा, ौभाग्य, सम्मान और स्नेह लाल रंगसे प्रकट होता है।

हिन्दू-धर्ममें लाल रंगसे उन्हीं देवी-देवताओंको भिषिक्त किया गया है, जो परम मङ्गलकारी, धन, तेज, शौर्य ौर पराक्रमको प्रकट करते हैं। उन देवताओंको भी ौर्यसूचक लाल रंग दिया गया है, जिन्होंने अपने समुन्नत हुबल, अस्त्र-शस्त्र तथा शारीरिक शक्तियोंसे दुष्ट दैत्यों या ासुरी प्रवृत्तियोंको परास्त किया है।

लाल रंग बल, उत्साह, स्फूर्ति, पराक्रमका द्योतक है। ंके अवसर लाल रंगसे ही स्पष्ट किये जाते हैं। विवाह, म, विभिन्न उत्सवोंपर आनन्दकी भावना लाल रंगसे प्रकट होती है।

लाल रंग नारीकी मर्यादाकी रक्षा भी करता है और नारीका सौभाग्य-चिह्न भी है। नारीकी माँगमें लाल सिन्दूर जहाँ एक ओर उसका सौन्दर्य बढ़ाता है, वहाँ दूसरी ओर उसका अटल सौभाग्य तथा पतिप्रेम भी प्रकट करता है। नारीका स्नेह लाल रंगसे परिलक्षित होता है।

हिन्दू तत्त्वदर्शियोंने सिंहवाहिनी भगवती दुर्गाको लाल रंगके चमकदार वस्त्रोंसे सुसज्जित किया है। उनका मुखमण्डल तेजसे लाल है। उनकी पूजासे आध्यात्मिक, आधिदैविक आधिभौतिक त्रितापोंको दूर करनेका विधान है। वस्त्रोंवाली भगवतीकी कृपासे परिवारके सब संकट होते हैं।

धनकी देवी लक्ष्मीजीको भी मङ्गलकारी लाल पहिनाये जाते हैं। लाल रंग धन, विपुल सम्पत्ति, समृ शुभ-लाभको प्रकट करनेवाला है। लक्ष्मीजीको ल कमलपर अवस्थित किया गया है, जो समृद्धिका सूचक लक्ष्मीजीमें प्रयुक्त लाल रंग भाग्य एवं धन-धान्य प्र करनेवाला है। लक्ष्मीजी सूर्य-स्वरूपा, हिरण्मयी, पद्महस पद्मासना, रक्तवर्णा कही गयी हैं। लाल वस्त्रोंमें उन आगमनसे अखण्ड ऐश्वर्य तथा पुत्रादिकी प्राप्ति होती है।

लाल वस्त्रोंमें रहने और लाल कमलके पुष्पपर अवस्थि रहनेवाली लक्ष्मीजी स्वधर्मका आचरण करनेवाले, धर्म मर्यादा जाननेवाले, वृद्धजनों अथवा गुरुजनोंकी सेवामें तत्प रहनेवाले, जितेन्द्रिय, आत्मविश्वासी, क्षमाशील और सम पुरुषोंके साथ रहती हैं। इसी प्रकार देवता और गुरुजनों पूजामें निरत रहनेवाली सदा हँसमुख बनी रहनेवाली सौभाग्ययुक्त, गुणवती, पतिव्रता, कल्याणकामिनी औ अलंकृता स्त्रियोंके पास रहनेमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है।

भगवा रंग—त्याग, तपस्या और वैराग्यका प्रतीक

भगवा रंग अग्निकी ज्वालाका रंग है। भारतीय धर्ममें इस रंगको साधुता, पवित्रता, शुचिता, स्वच्छता और परिष्कारका द्योतक माना गया है। अग्नि सभी मलोंको दूर करनेवाली, कल्मष तथा कालुष्यको नष्ट करनेवाली है। जैसे आगमें तपकर वस्तुएँ निखर उठती हैं, उनकी कालिमा और सभी दोष दूर हो जाते हैं, इसी प्रकार इस रंगको पहिननेवाला अपनी विषय-वासनाओंको दग्धकर आध्यात्मिकताकी ओर अग्रसर होता है।

भगवा रंग आध्यात्मिक प्रकाशका रंग है। यह धार्मिक ज्ञान, तप, संयम और वैराग्यका रंग है। हिन्दू योगी, तपस्वी, वैरागी, साधु भगवा वस्त्र पहनकर मानो अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलते हैं, मृत्युसे अमरताकी ओर, अज्ञानसे ज्ञानकी ओर और असन्मतिसे सन्मतिकी ओर अग्रसर होते हैं।

जैसे अग्निसे प्रकाश उत्पन्न होता है, उसी प्रकार भगवा

वस्त्र पहिननेवाला योगी आध्यात्मिक ज्योतिसे निखर उठता है। वह यह रंग धारणकर संसारमें त्याग, तपस्या, संयम और वैराग्यका पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता है।

भगवा वस्त्रधारी साधु देवताओंके गुणोंको अपने व्यक्तित्वमें विकसित करना चाहता है। भगवा रंग साधुको उसके जनसेवा, जन-शिक्षण और पथप्रदर्शनके महान् उत्तर-दायित्वकी स्मृति दिलाया करता है। यह रंग शुभ संकल्पका सूचक है। जब व्यक्ति उसी रंगको पहनता है, तो उसे अपने कर्तव्य भलीभाँति स्मरण रहते हैं। उसकी नैतिक उन्नति होती जाती है, बुद्धि विवेक और संयम उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं।

हरा रंग आध्यात्मिक प्रेरक वातावरणका प्रतीक

हरा रंग समग्र प्रकृतिमें व्याप्त है। यह पेड़-पौधों, लहलहाते खेतों, क्यारियों, पर्वतीय प्रदेशोंको आच्छादित करनेवाला मधुर रंग है। यह मनको शान्ति और हृदयको शीतलता प्रदान करता है। हमारे नेत्रोंको प्रिय लगता है। यह मनुष्यको सुख, शान्ति, स्फूर्ति देनेवाला प्रिय रंग है। यह नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि करता है और मनमें संतुलन, प्रसन्नता, सुख तथा शीतलता देता है।

लक्ष्मीजीको मङ्गलकारी लाल वस्त्रों तथा नेत्र-सुखदायक हरे रंगसे भी विभूषित किया गया है। लाल और हरे रंगके सम्मिश्रणसे महालक्ष्मीजीकी सात्त्विकता, जितेन्द्रियता, सत्यपरायणता, कल्याणकामना और सौभाग्यको स्पष्ट किया गया है। लाल और हरे रंगोंसे उद्योगशीलता स्पष्ट होती है। लक्ष्मीजी उन्हीं पुरुषश्रेष्ठोंके पास रहती हैं, जो उद्योगी, परिश्रमी, स्फूर्तिदायक और आत्मविश्वासी हैं। ये दोनों रंग मिलकर मनुष्यके मनकी शान्ति, तेज, बल और आत्मगौरवको बढ़ानेवाले हैं। यदि हम इन रंगोंको धारण करें, तो प्रकृतिके साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हैं और सुखी रहते हैं।

ऋषि-मुनियोंने अपनी आध्यात्मिक उन्नति ऊँचे हरे पर्वत-शिखरों, लंबे-लंबे घासके हरे मैदानों, कल-कलनिनादिनी सरिताओं और चाँदी बिखेरते निर्झरोंके हरे तटोंके शान्त सुखद वातावरणमें की थी। संसारके महान् ग्रन्थ, मौलिक विचार, प्राचीन शास्त्र, वेद-पुराण आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ हरे वातावरणमें ही निर्मित हुए हैं। हमारे पूर्वजोंके आत्मा तथा परमात्मा-सम्बन्धी उत्कृष्ट विचार हरे वातावरणकी उर्वरा विचार-शक्तिकी देन हैं।

पीला रंग ज्ञान, विद्या और विवेकका प्रतीक

पीला रंग ज्ञान और विद्याका भव्य रंग है। यह सुख, शान्ति, अध्ययन, विद्वत्ता, योग्यता, एकाग्रता और मानसिक बौद्धिक उन्नतिका प्रतीक है। पीला रंग बसंती रंग है, जो मस्तिष्कको प्रफुल्लित और उत्तेजित करता है। ज्ञानकी ओर प्रवृत्ति उत्पन्न करता है, नये-नये स्वस्थविचार मनमें पैदा करता है। वसन्त ऋतु मनको आनन्दित करनेवाली ज्ञानवर्धक ऋतु है।

भगवान् विष्णुका वस्त्र पीला है। उनका पीत वस्त्र उनके असीम ज्ञानका द्योतक है। भगवान् श्रीकृष्ण भी पीताम्बर ही पहनते हैं।

भगवान् गणेशकी धोती पीली रखी गयी है और दुपट्टा नीला रखा गया है। उनकी वेष-भूषामें केवल पीले तथा नीले रंगोंसे ही अभिषेक किया गया है। गणेशका पूजन-अर्चन किसी भी शुभ कार्यके लिये आवश्यक माना गया है। हिन्दू-मनीषियोंने गणेशजीको विघ्नेश्वर देवके नामसे भी पुकारा है। सभी मङ्गलकार्योंमें पीली धोतीवाले गणेश विघ्नहर्ता हैं।

नीले रंगमें बल-पौरुषका संदेश निहित है

सृष्टिकर्ताने विश्वमें नीला रंग सर्वाधिक रखा है। आखिर क्यों ? हमारे सिरके ऊपर विस्तृत अनन्त नील वर्णका आकाश है, नीचे सृष्टिमें समुद्र तथा सरिताओंमें नीले रंगका आधिक्य है। ऊपर और नीचे सर्वत्र हम नीले रंगसे आवृत रहते हैं।

मनोविज्ञानके अनुसार नीला रंग बल, पौरुष और वीर-भावका प्रतीक है। जिस महापुरुषमें जितना ही अधिक बल-पौरुष है, दृढ़ता, साहस, शौर्य है, कठिन-से-कठिन परिस्थितियोंमें निरन्तर सत्य, नीति, धर्मके लिये संघर्ष करनेकी योग्यता है, वचनोंमें स्थायित्व है, संकल्पशक्ति और धीरता है, उसे उतने ही नीले रंगसे चित्रित किया जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा लीला-पुरुषोत्तम योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी दोनोंका सम्पूर्ण जीवन मानवताकी रक्षा एवं दानवताके विरुद्ध युद्ध करनेमें व्यतीत हुआ था। इन दोनों देवताओंका वर्ण नील है। कारण

यह है कि ये देवता मनुष्यकी सर्वोच्च युद्ध-विषयक शक्तियोंसे परिपूर्ण हैं। इनमें पौरुष, धैर्य, वीरता, कष्ट-सहिष्णुता, सत्य और धर्मकी रक्षाके लिये कभी युद्धसे विमुख न होना, कठिनाइयोंसे विचलित न होना आदि-आदि अनेक वीरोचित गुण भरे हुए हैं।

जैसे नीला रंग आकाश और पृथ्वीपर सर्वव्यापक है, उसी प्रकार नीले रंगवाले वीरपुङ्गव श्रीराम और महायोद्धा श्रीकृष्ण भी सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् हैं। नीला रंग क्षत्रिय-स्वभाव प्रकट करता है। नीला रंग यह बताता है कि क्षत्रियको युद्धसे चलायमान नहीं होना चाहिये, सत्य और धर्मके हेतु युद्धसे नहीं हटना चाहिये। क्षत्रियके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर और कोई बात नहीं है।

नीला रंग उद्योगी पुरुषोंका रंग है। इस रंगको पहननेवाला अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, भोगोंसे घृणा करता है और धर्मके अनुसार युद्धमें लगता है। नीला समुद्र गहन-गम्भीर माना गया है, इसी प्रकार वीरवर श्रीराम और महाबली श्रीकृष्ण शक्ति और सामर्थ्यमें गहन-गम्भीर हैं।

भगवान् शिवको नीलकण्ठ कहा जाता है। सागर-मन्थन करनेपर उसमेंसे विष निकला था। प्रश्न था कि उस विषको कौन कहाँ रखे ? यदि विष पेटके भीतर जाता है, तो मनुष्यको मार डालता है, बाहर रहता है तो संसारका अहित करता है। भगवान् शिव ही ऐसे सर्वसमर्थ थे, जो उस विषको धारण कर सकते थे। उन्होंने उसे अपने कण्ठमें रख लिया। उसके प्रभावसे वे नीलकण्ठवाले हो गये। यह नीलवर्ण उनके महादेवत्व एवं अतिशय कारुण्यको स्पष्ट करता है।

शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी—ये पाँच देवता हिन्दू उपासनामें प्रसिद्ध हैं। इनमें शिवको महादेव—अर्थात् सबसे अधिक पौरुषवान् देवता कहा गया है। ये आशुतोष कहे जाते हैं। ये इतने बल और पौरुषवाले हैं कि सर्प भी इनके भूषण बने हुए हैं। ब्रह्माण्ड इनका लिङ्ग है—ज्ञापक है। उनका ब्रह्मा, विष्णु भी पार नहीं पा सके हैं। इतने बल, पौरुष और पराक्रमको प्रकट करनेवाला यह नीला रंग है

सफेद रंग पवित्रता, शुद्धता, विद्या [और] शान्तिका प्रतीक

श्वेत रंग सातों रंगोंके सम्मिश्रणसे बना है। सूर्य [की] रश्मिको तोड़नेपर उससे सभी रंग प्रकट हो जाते [हैं।] इसमें सभी रंगोंकी थोड़ी-बहुत छाया है। श्वेत रंग [पवित्रता,] शुद्धता, विद्या और शान्तिका प्रतीक है, इससे [मानसिक,] बौद्धिक और नैतिक स्वच्छता प्रकट होती है।

ज्ञान और विद्याका रंग सफेद है, क्योंकि जो विद्[याके] पुजारी हैं, उनमें किसी प्रकारका कल्मष नहीं ठहर [ता।] ज्ञानके सामने कालिमा कहाँ ठहर सकती है ? विद्या [सब] प्रकारकी पवित्रताकी ओर बढ़ाती है, समाजके दुर्गुणोंसे [बचाती] है, सन्मति और विवेक देती है, सांसारिक संकुचितता [से] उठाती है। इसलिये विद्याका रंग श्वेत है। विद्याकी अ[धिष्ठात्री] देवी सरस्वतीको श्वेत रंग सबसे प्रिय है। उनका व[र्णन] स्तुतिमें देखिये—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

अर्थात् 'वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें, जो [कुन्दके] पुष्प, चन्द्रमा, बर्फ और (मुक्ता) हारके समान श्वेत [हैं, जो] शुभ्र (सफेद) वस्त्र पहनती हैं, जिनके हाथ उत्तम व[ीणासे] सुशोभित हैं, जो श्वेत कमलासनपर विराजमान हैं, [ब्रह्मा,] विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं औ[र जो] सब प्रकारकी जडता हर लेती हैं।'

इस प्रकार देवी-देवताओंका वर्ण तथा उनके वस्त्रा[दि] एवं अलङ्करणोंका लाल, हरा, सफेद, पीला आदि जो रं[ग है,] वह विशिष्ट शक्तियोंका प्रतीक है, तत्तद् देवोंकी उपास[नामें] तत्तद् रंगोंके पवित्र पदार्थोंका उपयोग देवताकी अनुकम्पा-प्राप्तिमें सहायक हो सकता है।

दण्डसे सभी डरते हैं, मृत्युसे सभी भय खाते हैं, इन बातोंको अपने समान जानकर न किसीको मारे [और न] मारनेकी प्रेरणा करे।—बुद्धदेव

देवता और उनके प्रभेदोंका विवेचन

(मानसमर्मज्ञ पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी)

संस्कृतमें 'देवता' शब्द 'देव' का ही वाचक है, 'देव' शब्द 'दिवु' धातुसे निष्पन्न होता है, इसका अर्थ होता है—चमकना, प्रकाशित होना। देवताओंकी दो श्रेणियाँ हैं—१-देव, २-उपदेव।

देवताओंके नौ गण होते हैं—१-आदित्य, २-तुषित, ३-विश्वेदेव, ४-साध्य, ५-आभास्वर, ६-मरुत्, ७-महाराजिक, ८-रुद्र और ९-वसु—

आदित्यास्तुषिता विश्वे साध्याभास्वरमारुताः।
महाराजिकरुद्राश्च वसवो गणदेवताः॥

(शब्दरत्नावली)

उपर्युक्त गण-देवताओंकी भिन्न-भिन्न संख्याएँ हैं—आदित्य बारह, तुषित तीस, विश्वेदेव दस, साध्य बारह, आभास्वर चौंसठ, मरुत् उनचास, महाराजिक दो सौ बीस, रुद्र ग्यारह और वसु आठ हैं। यथा—

आदित्या द्वादश प्रोक्तास्तुषितास्त्रिंशदेव हि।
विश्वेदेवा दश प्रोक्ताः साध्या द्वादश कीर्तिताः॥
आभास्वराश्चतुःषष्टिर्वाताः पञ्चाशदूनकाः।
महाराजिकनामानो द्वे शते विंशतिस्तथा॥
रुद्रा एकादश प्रोक्ता वसवोऽष्टौ समीरिताः॥

(शब्दरत्नावली)

वाल्मीकीय रामायणमें अरुणात्मज श्रीजटायुने भगवान् श्रीरामचन्द्रसे प्रधान देवगणोंकी संख्याका निर्देश इस प्रकार किया है—

अदित्यां जज्ञिरे देवा त्रयस्त्रिंशदरिंदम॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परंतप॥

(३। १४। १४-१५)

मुख्यतः देवी अदितिके गर्भसे तथा अन्य देवोंको मिलाकर तैंतीस देवता माने जाते हैं। जैसे—द्वादश आदित्य—(१) विवस्वान्, (२) अर्यमा, (३) पूषा, (४) त्वष्टा, (५) सविता, (६) भग, (७) धाता, (८) विधाता, (९) वरुण, (१०) मित्र, (११) शक्र और (१२) उरुक्रम—विष्णु तथा एकादश रुद्र— (१) रैवत, (२) अज, (३) भव, (४) भीम, (५) वाम, (६) उग्र, (७) वृषाकपि, (८) अजैकपात्, (९) अहिर्बुध्न्य, (१०) बहुरूप तथा (११) महान् और अष्ट वसु— (१) आप, (२) ध्रुव, (३) सोम, (४) धर्म, (५) अनिल, (६) अनल, (७) प्रत्यूष और (८) प्रभाप एवं इन्द्र तथा प्रजापति—ये तैंतीस देवता हैं। मतान्तरसे दोनों अश्विनीकुमार तथा द्यावा-पृथिवी भी माने गये हैं। नासत्य, दस्र या नासिक्य ये भी अश्विनीकुमारोंके पर्याय हैं। ये नाम सदा द्विवचनमें ही प्रयुक्त होते हैं। इनका अलग-अलग नाम नहीं मिलता, संयुक्त रूपसे ही उल्लेख होता है।

श्रीमद्भागवत महापुराणमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके तुषित नामधारी देवगणोंका नाम एवं उनकी संख्या १२ बतायी गयी है। यथा—

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः।
इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट्॥
तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे।

(४। १। ७-८)

'महाराजिक' देवगणोंकी संख्यामें वैभिन्न्य है। कहीं उनकी संख्या २२० तथा कहीं-कहीं ४,००० (चार हजार) तक मान्य है।

प्रधान ३३ देवताओंकी विभूति-स्वरूप देवगणोंकी संख्याका संकेत प्राप्त होता है, परंतु समस्त देवताओंकी सम्पूर्ण संख्याका निर्देश नहीं मिलता। कहीं-कहीं यह संख्या ३३ करोड़ बतायी गयी है। यथा—

सदारा विबुधाः सर्वे स्वानां स्वानां गणैः सह।
त्रैलोक्ये तत्त्रयस्त्रिंशत् कोटिसंख्याः यथाभवन्॥

(पाद्मोत्तरखण्ड)

—इसका भाव यह है कि ये देवता अपने स्त्री-पुत्रों, परिकर और सेवकोंसहित संख्यामें तैंतीस करोड़ हो जाते हैं।

एक स्थानपर तो कुछ गणदेवताओंकी विभूतियोंकी संख्याका संकेत है, पर अग्निदेवके वंशजोंकी संख्या अनन्त बतायी गयी है। यथा—

तिस्रः कोट्यस्तु रुद्राणामादित्यानां दश स्मृताः।
अग्नीनां पुत्रपौत्रं तु संख्यातुं नैव शक्यते॥

तात्पर्य यह कि एकादश रुद्रोंकी विभूति तीन करोड़ देवगण हैं, द्वादश आदित्योंकी विभूति दस करोड़की संख्यामें हैं, परंतु अग्निदेवके पुत्र-पौत्रोंकी गणना तो सम्भव ही नहीं है। महाभारत वनपर्वके २१७वें अध्यायसे २२२वें अध्यायतक अग्निदेवके वंशजोंकी विस्तृत चर्चा है।

देवगणोंके प्रधानरूपेण तीन निवास-स्थान मान्य हैं—१-द्युस्थानीय, २-अन्तरिक्षस्थानीय और ३-पृथ्वीस्थानीय। इनमें सूर्य आदि देवता द्युस्थानीय, वायु या इन्द्र आदि देवता अन्तरिक्षस्थानीय तथा अग्नि, पृथिवी आदि देवता पृथ्वीस्थानीय हैं।

देवता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष-शक्तिके कारण नित्य और नैमित्तिक दो प्रकारके होते हैं। जिनका पद-स्थान स्थायी रहता है, उन्हें नित्यदेवता माना जाता है। नित्यदेवताओंमें वसु, रुद्र, इन्द्र, आदित्य तथा वरुणादि देवगण माने जाते हैं। जो नैमित्तिक देवता होते हैं, उन्हें किसी निमित्त-विशेषके कारण देवपद प्राप्त होता है। इनमें ग्रामदेवता, वास्तुदेवता, वनदेवता और गृहदेवतादि आते हैं। स्थावर, जङ्गमादि पदार्थोंमें भी नदी, पर्वत, वृक्ष, वन, अन्यान्य धातु आदि खनिज पदार्थोंके भी अधिदेवता हुआ करते हैं। इसी प्रकार उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज एवं जरायुज चतुर्विध जीवोंकी भी जहाँ-जहाँ जैसी स्थिति रहती है, उनके भी अधिनायक अधिदेवता होते हैं। इस प्रकार नित्य-नैमित्तिक भेदोंसे सम्पूर्ण विश्वके अन्तर्गत जितने भी पदार्थ विद्यमान हैं, सबके नियामक देवगण होते हैं।

देवताओंमें भी वर्णभेद मान्य हैं—

आङ्गिरस गणदेवता ब्राह्मण, आदित्यगणदेव क्षत्रिय तथा मरुद्गणदेव वैश्य कहे गये हैं।

पाणिनीय धातुपाठके अनुसार '**दिवु**' धातुके देवत्वके दस अर्थ होते हैं। क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। इसी '**दिवु**' धातुसे देव तथा देवता शब्द निष्पन्न होता है।

देवताओंके प्रभेद

जो बल, बुद्धि, तेज, स्फूर्ति और विद्या आदिमें देवताओंके समान हों वे उपदेव कहलाते हैं। इन देवताओंके मुख्य १० प्रभेद हैं—विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस (दानव), गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत।

इसी प्रकार पितृगण, चारण, नाग; गरुड आदि विशिष्ट पक्षीगण तथा हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानरगण भी देवता-कोटिमें ही गृहीत हैं।

देवताओंके विषयमें शास्त्रोंमें अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं और उनकी अनेक रोचक कथाएँ भी भरी पड़ी हैं, उनके दर्शन और उनकी प्रसन्नता-प्राप्तिसे लाभ उठानेके अनेक उपाय भी निर्दिष्ट हैं। अतः उन्हें जानकर और उनकी शुद्ध उपासनाकर अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

देवताओंके वाहन

(पं० श्रीराधाकृष्णजी मिश्र 'विमलेश')

पुराणोंमें देवताओंके वाहनोंमें जो विविध पशु-पक्षियोंके नामोंका उल्लेख मिलता है, उससे बुद्धिजीवियोंके मस्तिष्कमें एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वृषभ, महिष, मूषक, हाथी आदिमें लोक-लोकान्तरोंमें अव्याहत आवागमनकी क्षमता सम्भव है? तो उत्तर है 'हाँ'। क्योंकि असुरोंसे संत्रस्त देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाने फिर वहाँसे शिवलोक एवं पुनः ब्रह्मा-शिवसमेत विष्णुलोकमें गमन करनेका उल्लेख प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि देवताओंके पास आधुनिक विमानोंसे भी अधिक शक्तिशाली विमान थे, जो वायु तथा मनकी अपेक्षा अधिक वेगशाली और तीव्रगामी होते थे। जिस समय हरिद्वारमें सनकादि मुनीश्वर श्रीनारदजीको श्रीमद्भागवतकी कथा सुना रहे थे, उस समय देवताओंने विमानोंपर बैठकर पारिजात, हरिचन्दन आदि कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी वृष्टि की।

विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः।
कल्पवृक्षप्रसूनैस्तान् सर्वांस्तत्र समाकिरन्॥

(पद्मपु०, उत्तरखण्ड)

मेरु-गिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर नैमिषीय संत जिस समय श्रीसनत्कुमारसे मिले तथा पाशच्छेदनार्थ प्रार्थना की, उसी समय सूर्यकी भाँति प्रकाशमान एक सुन्दर विमान

दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरोंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ था।

ददृशे तत्क्षणे तस्मिन् विमानं भानुसंनिभम्।
गणेश्वरैरसंख्येयैः संवृतं च समन्ततः॥

(शिवपु०, वा० सं०, उ० खं० ४१। २२)

उस विमानके मध्य-भागमें दो चँवरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, मणिमय दण्डवाले शुद्ध छत्रके नीचे दिव्य-सिंहासनपर शिलाद-पुत्र नन्दी अपनी पत्नी सुयशाके साथ बैठे थे।

तस्य मध्ये विमानस्य चामरद्वितयान्तरे।
छत्रस्य मणिदण्डस्य चन्द्रस्येव शुचेरधः॥
दिव्यं सिंहासनारूढं देव्या सुयशया सह।

(शिवपु०, वा० सं०, उ० खं० ४१। २६-२७)

जिनको लोग शंकरजीका वाहन मानते हैं, उस नन्दीका साक्षात् शिवरूपमें वर्णन करते हुए व्यासजीने आगे कहा है कि उनके हाथमें त्रिशूल नामक सुन्दर आयुध था, चार भुजाएँ थीं, मस्तकपर चन्द्र-कला विद्यमान थी एवं कण्ठमें नाग सुशोभित था।

शिलादतनयं साक्षात् श्रीमच्छूलवरायुधम्।

× × ×

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चन्द्ररेखाविभूषितम्॥
कण्ठे नागेन मौलौ च शशांकेनाप्यलङ्कृतम्।
सविग्रहमिवैश्वर्यं सामर्थ्यमिव सत्क्रियम्॥

(शिवपु०, वा० सं०, उ० खं० श्लोक ३१-३२)

उनका दर्शन-मात्र करके नैमिषीय ऋषियोंका पाशच्छेदन (बन्धनसे मोक्ष) हो गया।

उपर्युक्त संदर्भसे यह प्रमाणित होता है कि नन्दीश्वरकी आकृति मात्र वृषभकी नहीं थी, प्रत्युत साक्षात् शंकर भगवान्‌की भाँति उनका स्वरूप था। उनके विमानपर जो ध्वजा थी, उसमें वृषभका आकार अवश्य था।

'वीर गोवृषचिह्नेन विद्रुमद्रुमयष्टिना'

समस्त देवताओंके विमान अपनी अलग पहचान बनाये रखते थे, किसीके विमानाग्रभागमें महिषका सिर सींगोंके साथ लगा हुआ था, किसीके अग्रभागमें हाथीका, किसी विमानका आकार मयूरकी भाँति था। कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देवता द्रुतगामी विमानोंसे चलते थे तथा विमानोंके आकार, ध्वज और चिह्न तत्तद् देवोंका परिचय प्रदान करते थे।

भगवती जगदम्बाको लोग सिंहवाहिनी ही मानते हैं, परंतु निम्न संदर्भसे यह प्रमाणित होता है कि उनके पास मनोवेगसे चलनेवाला विमान था एवं संकल्पमात्रसे शतशः तादृश विमान प्रकट करनेकी क्षमता थी।

जिस समय एकार्णवमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरको भगवती जगदम्बाने आदेश दिया कि आपलोग अपना-अपना कार्य सम्पादित कीजिये—

काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतन्द्रिताः॥

(देवीभाग० ३। २। ३२)

परंतु जब तीनों देवोंने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए अपनेको शक्तिहीन बतलाया, तब अकस्मात् आकाशसे एक सुन्दर विमान आया और देवीने मुसकुराते हुए कहा—'आपलोग इस विमानपर बैठ जाइये।'

झटित्येवागतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम्।
सोवाचास्मिन् सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः॥

(देवीभा० ३। २। ३७)

वह विमान रत्नमण्डित था, उसमें मुक्ताओंकी झालरें लगी थीं तथा घंटियोंकी सुखद ध्वनि हो रही थी, देवीने अपनी शक्तिसे उसको आकाशमें चला दिया।

समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमण्डिते।
मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते॥
स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चाम्बरे॥

(देवीभा० ३। २। ३९, ४१)

त्रिदेवोंने भूमि, भूपाल, प्रजा, वनोपवनयुक्त भूलोक, इन्द्रादिसमेत स्वर्गलोक, ब्रह्मा तथा सनकादि, मरीच्यादि ऋषियोंसे युक्त ब्रह्मलोक, विष्णु तथा उनके पार्षदोंके समेत विष्णुलोकको साश्चर्य नेत्रोंसे देखा और यह भी देखा कि जिसपर भगवती जगन्माता स्वयं आसीन हैं, वह विमान उनके विमानसे आगे चल रहा है।

'अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चाम्बिका।'

विमानोंका निर्माण-प्रकार

पुराणोंका अध्ययन करनेसे विमान-निर्माणके दो प्रकार

नहीं रहेगा, वरन् दोनों अनीश्वर हो जायँगे। क्योंकि, जिसका ऐश्वर्य प्रतिहत होगा, वही अनीश्वर हो जायगा, जिसकी इच्छाके अनुसार कार्य होगा, वही ईश्वर होगा।'

'अथ अनेकत्वे सति किं बाध्यत इति ? एकस्मिन् वस्तुनि व्याहतकामयोः ईश्वरस्य प्रवृत्तिर्न प्राप्नोति। अथ एकमितरोऽधिशेते स ईश्वरो नेतरः।'

(न्या॰ सू॰ ४।१।२१)

पातञ्जल सूत्रके व्यासभाष्यकी व्याख्यामें वाचस्पतिने कहा है—'अनेक ईश्वर माननेपर भी कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि, ईश्वरमें राग-द्वेष तो है नहीं, अतः विरुद्ध इच्छा उनमें नहीं हो सकती। किंतु ऐसी स्थितिमें सभी ईश्वरोंकी समान ही इच्छा होती है, कभी भी विरुद्ध इच्छा नहीं होती है तो एक ही ईश्वरकी इच्छासे ही कार्य हो जायगा, अनेक ईश्वरकी क्या आवश्यकता है।'

यदि कहा जाय कि अनेक ईश्वर होनेपर भी वे सभी मिलकर एक सम्मतिसे कार्य करेंगे। किंतु ऐसा माननेपर कोई भी ईश्वर नहीं रहेगा। परिषद्का एक सभासद किसी कार्यका कर्ता नहीं होता। **'तच्च तस्य····तस्माद् यस्य साम्यातिशयैर्विनिर्मुक्तमैश्वर्यं स एवेश्वरः'** (पा॰ सू॰ व्या॰ १।२४), **'अविरुद्धाभिप्रायत्वे···· कल्पनागौरवप्रसङ्गाच्च'** (वा॰ १।२४)।

यदि यह कहा जाय कि अनेक ईश्वर माननेपर भी वे सब एक साथ कार्य नहीं करते हैं; मास, वर्ष आदिके क्रममें सभी ईश्वर कार्य करते हैं। किंतु, यह भी ठीक नहीं है; कारण, ईश्वरका ऐश्वर्य नित्य है, अतः एक दिन कार्य करके दूसरे दिन वह विरत नहीं हो सकता है। जो ईशना पूर्व दिनमें कार्य करती है, वही तो दूसरे दिन भी है, अतः वह दूसरे दिन क्यों नहीं कार्य करती है ? यदि नित्य ऐश्वर्य दूसरे दिन कार्य नहीं करता है तो वह पहले दिन भी कार्य नहीं करेगा, क्योंकि पूर्व दिनमें ईशनाका कौन गुण है और दूसरे दिन ईशनामें कौन-सा दोष है ? अनित्य ऐश्वर्य मानकर क्रमिक कार्य स्वीकार करनेपर ईश्वर ही सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि अनित्य ऐश्वर्य माननेपर अनित्य ऐश्वर्यका कारण विशेष कहना होगा, क्योंकि जो वस्तु अनित्य रहती है, वह कारणके बिना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। यदि साधनके अनुष्ठानसे ईश्वरका अणिमा आदि ऐश्वर्य उत्पन्न होता है, यह माना जायगा तो साधनका अनुष्ठान कर अ‍ भी ऐश्वर्यकी प्राप्ति कर सकता है। ऐसी स्थितिमें अनेव आपत्ति होगी। **'यदीश्वरस्य ऐश्वर्यं किं तन्नित्यमनित्‍ यद्यनित्यं तस्य कारणं वाच्यम्।···· प्रसज्यते।'** (न ४।१।२१) इन्हीं युक्तियोंसे ईश्वरकी एकता अद्वैत सिद्ध की गयी है।

वेदमें प्रदर्शित एकदेववादका ही युक्तिके अ दर्शनोंमें समर्थन किया है। किंतु आश्चर्य है, दिनके प्र भयभीतके समान भारतमें बहु-ईश्वरवादका आक्षेप क इसीलिये मीमांसामें कहा गया है— सांख्य, वेदान्त, पा वैशेषिकने जिस सिद्धान्तको माना है, वह वेदके मन्त्र-अ वाक्योंसे ही गृहीत है(न्यायमु॰ पृ॰ १३१-३२)।

दार्शनिक दृष्टिसे ईश्वरकी सर्वज्ञता

मुण्डकोपनिषद् (१।१।९) में **'यः सर्वज्ञः सर्वा'** ऐसा कहा गया है। न्यायवार्तिकमें कहा गया है कि ई सर्वज्ञ न माननेपर वह जगत्का सृष्टिकर्ता ही नहीं हो सक अतः इसके लिये स्वतन्त्र प्रमाणकी आवश्यकता नहीं **'न च बुद्धिमत्तया बिना ईश्वरस्य जगदुत्पादो घ'** (४।१।२१)। वाचस्पति मिश्रने भी इसकी व्याख्यामें है—कार्यके उपादानकारणको जाननेवाला ही कार्यका होता है, जगत्की सृष्टि करनेवाला ईश्वर भी जगद्रूपी का उपादानको जाननेवाला होगा। जगत्के उपादान अदृ परमाणु हैं, ये जिसको प्रत्यक्ष हैं वह सर्वज्ञ ही होग **'अदृश्यदृष्टः सर्वज्ञः'**(न्यायकुसुमा॰ ३।१६)। अदृश्य व इन्द्रियसे नहीं देखी जा सकती, इन्द्रियकी अपेक्षाके बिना जो देखता है, वह सर्वज्ञ ही होगा। क्योंकि इन्द्रियाँ अ सम्बद्ध वस्तुका ही प्रत्यक्ष करा सकती हैं, अतः ऐन्द्रिर प्रत्यक्ष सर्वविषयक नहीं हो सकता।

विधिविवेकमें आचार्य मण्डनने अनुमानके द्वारा ईश्वर सर्वज्ञता सिद्ध की है। आशय यह है कि जो जिस कार्य करनेवाला होता है, वह पुरुष उस कार्यके उपादान, उपकर सम्प्रदान और प्रयोजनका ज्ञाता होकर ही उस कार्यको क है। जैसे घटरूपी कार्यका उपादान मृत्तिका है, उपकरण द चक्र आदि हैं, सम्प्रदान घटको लेनेवाला है, प्रयोजन ज आदिका लाना है। इनको जानकर कुम्भकार घटका निम

करता है। इसी तरह सभी कार्योंका कर्ता ईश्वर भी इनको जानकर ही कार्य करेगा। अतः वह सर्वज्ञ है। जैसे उपादान परमाणुओं, उपकरण, जीवोंमें रहनेवाला धर्म और अधर्म ये चार सभी बद्ध जीवोंमें समवाय-सम्बन्धसे रहते हैं। सम्प्रदान जीव-समूह है, क्योंकि कर्मफल-भोग करनेवाले जीवोंके भोगके लिये ही ईश्वर जगत्‌की सृष्टि करता है। प्रयोजन सुख और दुःखका भोग है, यही सृष्टिका पर्यवसान है।

यद्यपि सांख्यमें ईश्वरके सम्बन्धमें वैमत्य है और पातञ्जलयोगमतमें ईश्वर जगत्‌का कर्ता नहीं है, प्रकृति स्वतन्त्र रूपसे जगत्‌का निर्माण करती है, तथापि योगमतमें ईश्वर आदि-गुरु और उपदेष्टा है, वेद ईश्वर-वाक्य है। इसके द्वारा प्राणियोंके हितका उपदेश हुआ है, अतः सभी प्राणियोंके हितका अनुशासन करनेवाला सर्वज्ञ ही हो सकता है। ईश्वरमें न राग है और न द्वेष, क्लेशादि भी उसमें नहीं हैं, किंतु वह सभी वस्तुओंको वास्तविक रूपमें जाननेवाला है—

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' (पा० सू० १। २६)।

यद्यपि योगीको भी सर्वज्ञ माना गया है, किंतु योगी आदिकी सर्वज्ञता अनुष्ठानसे प्राप्त है, अतः वह आगन्तुक है। इस सर्वज्ञतामें अनुष्ठानकी कमी और अधिकतासे न्यूनता और आधिक्य होगा, किंतु ईश्वरकी सर्वज्ञता सहज और अनादि है। अस्तु, योगमें ईश्वर सर्वज्ञ है। इसीलिये कहा है—**'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्'** (पा० १। २५)। सभीकी अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञानका आश्रय सर्वज्ञ ही हो सकता है।

सांख्य-मत और ईश्वर

सांख्यदर्शनके दो भेद हैं, दोनोंके प्रवर्तक कपिल मुनि ही हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराण आदिमें वर्णित सांख्यदर्शनमें ईश्वरको माना है, अतः उसकी दार्शनिक दृष्टि विवेच्य नहीं है। ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिकाके अनुसार व्याख्यात सांख्यदर्शनमें ईश्वरका निरूपण नहीं है, किंतु इसकी अतिशय प्राचीन व्याख्या जो युक्तिदीपिकाके नामसे प्रसिद्ध है, उसमें कहा है कि यदि वेदवाक्यके अनुसार मूर्तिमान् ईश्वर स्वीकार किया जाता है तो सांख्यमतमें भी ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध है। क्योंकि यदि ईश्वर ही न रहे तो उसकी मूर्ति और ध्यान कैसे होगा? **'न हि असतो मूर्तिमत्वमुपपद्यते'** (युक्तिदी० पृ० ७)।

इसके समाधानमें टीकाकारने कहा है—पूर्वपक्षीने मेरे आशयको नहीं समझा। हमलोग सर्वथा भगवान्‌की शक्ति-विशेषका प्रत्याख्यान नहीं करते। ईश्वर भी माहात्म्य-शरीर आदिको धारण करते हैं—यही स्वीकार करते हैं। किंतु अन्य दार्शनिकोंने प्रधान और पुरुषसे अतिरिक्त प्रधान और पुरुषका प्रयोक्ता, प्रेरयिता ईश्वर है—ऐसा माना है। प्रकृति और पुरुषके प्रेरयिताके रूपमें ईश्वर नहीं मानता, इसका यह अर्थ नहीं है कि हमलोग ईश्वरको नहीं मानते हैं। ईश्वर श्रुतिसे सिद्ध है और उसका भी माहात्म्य-शरीर आदि है, यही हमलोग मानते हैं।

मीमांसक और ईश्वर

भवनाथ मिश्रने नयविवेकमें कहा है कि न्यायवैशेषिक आचार्योंने कहा है—'सम्पूर्ण जगत्‌का एक ही समयमें ईश्वरके द्वारा सृष्टि और एक समयमें ही संहार हो जाता है—यह प्रामाणिक नहीं है।' लोकदृष्टिके अनुसार क्रमशः सृष्टि और संहार ईश्वरके द्वारा होता है—यह माननेपर क्रमिक सृष्टि तथा क्रमिक संहारका कर्ता ईश्वरकी अनुमान-प्रमाणके द्वारा सिद्धि माननेपर गुरुमतके साथ कोई विरोध नहीं है। इसीलिये प्रभाकरने ईश्वरानुमानके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा है। **'एकदा कृत्स्नसृष्टिप्रलयौ मानशून्यौ प्रत्युत यथादर्शनं क्रमेण तदनुमान इति जगदीश्वरकर्तृकेऽपि न गुरुनयविरोध इति गुरोरवधीरणम्'** (नयवि० पृ० १८७)। इसी प्रकार न्यायवैशेषिकके अनुमानका खण्डनकर कहा—इससे न्यायवैशेषिक सम्मत ईश्वरानुमान ही खण्डित होता है, ईश्वरका खण्डन नहीं होता (नयवि० पृ० १९९)। इन व्याख्यानोंके बाद उन्होंने शिवकी स्तुति की है—

जय जनकरहित वरयुवतिसहित जय तपसिनिरत
स्वभुजहितहरिण जय विषमनयन गलनिहितगरल।
जय वृषभवहन धृतरजनिजनक जय भुजगवलय कलिकलु-
षशयन जय कलितभुवन (भगवन्) तव नमस्ते नमस्ते॥

(नयवि० पृ० १८३)

आशय यह है कि ईश्वर-तत्त्व वेदप्रतिपाद्य है, वेदनिरपेक्ष केवल लौकिक ज्ञानका अनुसरण कर अनुमान-प्रमाणसे ईश्वरकी सिद्धि करनेवालेका ही विरोध मीमांसकोंने किया है।

श्रीकुमारिल भट्टके मङ्गलाचरणसे भी मीमांसकोंका ईश्वरके प्रति विश्वास अवगत होता है। उन्होंने देवीकीलकसे ही

मङ्गल किया है—

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ॥

मीमांसाके प्रायः सभी आचार्योंने ईश्वरको न
अपने ग्रन्थका आरम्भ किया है। अतः मीमांसक
नहीं हैं। (क्रमशः)

देवलोककी चार सभाएँ

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, एम्०ए०, एम्०एड्०, पी-एच्०डी०)

वेद-उपनिषद्, रामायण, पुराण तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंमें देवताओंकी विशेषताओंका वर्णन विस्तारसे हुआ है। महाभारतके सभापर्वके अन्तर्गत 'लोकपाल-सभाख्यान-पर्व' में इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और ब्रह्माजीकी सभाओंका वर्णन हुआ है।

एक बार मयद्वारा निर्मित अद्भुत सभाभवनमें धर्मराज युधिष्ठिरकी जिज्ञासापर देवर्षि नारदजीने उन्हें इन सभी सभाओंका क्रमशः वर्णन सुनाया, जिनका यहाँ संक्षेपमें सारभूत अंश दिया जा रहा है—

इन्द्र-सभा

इन्द्रकी सभाका नाम सुधर्मा है। यह विश्वकर्माद्वारा निर्मित एवं अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त है। इसकी लंबाई डेढ़ सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। वहाँ रहनेवालोंको जीर्णता, शोक, थकान और भयकी प्राप्ति नहीं होती। वहाँ सदा मङ्गल और शोभासे सम्पन्न सुन्दर प्रासाद और उत्कृष्ट सिंहासन हैं। इनमें इन्द्रका सिंहासन सर्वश्रेष्ठ है, उसपर वे शचीके साथ विराजमान रहते हैं।

इन्द्रकी सभामें सिद्ध, विद्याधर, देवर्षि, गन्धर्वगण, अप्सराएँ, साध्य, देवगण, मरुद्गण, महर्षि, राजर्षि तथा पुण्यवान् राजा दिव्य अलंकरणोंसे अलंकृत होकर तेजस्वीरूप धारण करके उनकी उपासना करते हैं। साथ ही दिव्य ओषधियाँ, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, धर्म, अर्थ, काम, विद्युत्, जलधर मेघ, वायु, गर्जना करनेवाले बादल, प्राचीदिशा, यज्ञके हविष्यको वहन करनेवाले सत्ताईस अग्नि, साध्य, बृहस्पति, शुक्र, विश्वावसु, चित्रसेन, विविध यज्ञ, दक्षिणा, ग्रह, तारा और यज्ञ-निर्वाहक मन्त्र आदि देवराज इन्द्रकी सभामें विराजते हैं।

यम-सभा

इस सभाका निर्माण भी विश्वकर्माने किया है। इस विशाल सभाकी लंबाई और चौड़ाई सौ योजन है न तो अधिक शीतल है, न अधिक गर्म। मन आनन्द देनेवाली है। न वहाँ शोक है न बुढ़ापा, प्यास और न अप्रिय वस्तु। वहाँ दीनता, थका प्रतिकूलता नाममात्रको भी नहीं है। वहाँ पवित्र पुष्पमालाएँ एवं अन्य कई रम्य वस्तुएँ हैं। उस सभा पुण्यशाली राजर्षि और निर्मल हृदयवाले ब्रह्मर्षि प्रस बैठकर यमदेवकी उपासना करते हैं। ययाति, न मान्धाता, नृग, राजर्षि कार्तवीर्य, अरिष्टनेमि, कृ प्रतर्दन, शिवि आदि राजा मरणोपरान्त यहाँ उपस्थि धर्मराजकी उपासना करते हैं। कठोर तपस्या करनेवा व्रतका पालन करनेवाले सत्यवादी, शान्त, संन्यासी त पुण्य कर्मसे शुद्ध एवं पवित्र महापुरुषोंका ही उस सभा हो पाता है।

वरुण-सभा

इस सभाकी लंबाई-चौड़ाई यमराजकी सभाके सम इसके परकोटे और फाटक बहुत सुन्दर हैं। यह फल देनेवाले दिव्य रत्नमय वृक्षोंसे सुशोभित है। इस स निर्माण विश्वकर्माने समुद्रकी जलराशिके अन्तर्गत किया

इस सभामें विचित्र और मधुर स्वरसे गान करने हजारों पक्षी चहकते रहते हैं। श्वेत रंगवाली यह सभा व कक्षों तथा आसनोंसे सुसज्जित है। इसमें दिव्य रत्नों वस्त्रोंको धारण करनेवाले तथा दिव्य आभूषणोंसे वि वरुणदेव अपनी पत्नी वारुणी देवीके साथ विराजमान हैं—

यस्यामास्ते स वरुणो वारुण्या च समन्वितः ।
दिव्यरत्नाम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥
(महा०, सभा० ९ ।

इस सभामें स्वर्गीय पुष्पोंकी मालाओं तथा च

आदिसे अलंकृत देवगण, गन्धर्व तथा आदित्यगण आदि वरुणदेवकी उपासना करते हैं। इनके अतिरिक्त वासुकि, तक्षक, ऐरावत आदि नाग वहाँ उपस्थित रहते हैं। साथ ही समस्त समुद्र तथा गङ्गा, यमुना, नर्मदा, सरस्वती आदि सरिताएँ एवं जलाशय, दिशाएँ, पृथ्वी, पर्वत तथा समस्त जलचर प्राणी भी अपना-अपना स्वरूप धारण कर महात्मा वरुणकी उपासना करते हैं।

कुबेर-सभा

इसका भी मान प्रायः वरुण-सभाके तुल्य ही है। इसमें अनेक उच्च स्वर्णिम कक्ष एवं रत्नजटित सिंहासन हैं। सभाके सर्वोच्च सिंहासनपर यक्षराज कुबेर सुशोभित होते हैं। श्वेत बादलोंके शिखर-जैसी प्रतीत होनेवाली यह सभा आकाशमें तैरती हुई-सी दृष्टिगोचर होती है।

इनकी सभाके समीपमें ही चित्ररथवन एवं अलकापुरी है। मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी, मेनका आदि अप्सराएँ, किन्नर, यक्ष और गन्धर्वगण कुबेरकी सभामें उपस्थित होते हैं। ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा अन्य ऋषिगण इस सभामें यथासमय विराजमान होते हैं।

कभी-कभी भगवान् शंकर भी कुबेरकी इस सभामें पधारते हैं और ये उनका यथोचित स्वागत करते हैं। श्रेष्ठ निधियोंमें प्रमुख शंख और पद्म—ये दोनों मूर्तिमान् होकर अन्य सब निधियोंके साथ धनके स्वामी कुबेरकी उपासना करते हैं।

देवसभाओंके विशेष वर्णनके लिये पद्म आदि पुराण, कार्तिक, माघ आदिके मास-माहात्म्य, गरुडपुराण एवं महाभारतका विशेष रूपसे अवलोकन करना चाहिये।

प्रतिमोपासनाका मूल सूत्र—भावनाकी दृढ़ता

(श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश')

मूल वैदिक संहिताओं तथा अद्भुत ब्राह्मण आदिमें भी देव-प्रतिमाओंके निर्माण, चमत्कार तथा उनकी किसी भी प्रकारकी विकृतिमें शान्तिके उपाय निर्दिष्ट हैं। विविध आगमोंमें शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य, शक्ति आदि देवी-देवताओंकी सुवर्णमयी, मणिमयी, रजतमयी, ताम्रमयी, अष्टधातुमयी, शिलामयी, काष्ठमयी तथा मृण्मयी आदि प्रतिमाओंके निर्माण, प्रतिष्ठा, अर्चा एवं उत्सव आदिके विधान विस्तारसे निर्दिष्ट हैं। देवप्रतिमाओंका प्रचार-प्रसार जैन, बौद्ध तथा प्रायः अन्य सभी धर्मोंके द्वारा भी सुदूर जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, यूरोप एवं अमेरिकातकमें बहुत प्राचीन कालसे ही होता रहा है। वैदिक परम्पराका ही प्रभाव इन सभी धर्मोंपर परिलक्षित होता है, जैसे ज्योतिर्गणितका वार, नक्षत्र और खगोल-भूगोलपर हुआ है। इसमें भारतीय गणितशास्त्र ज्यामिति, शुल्बसूत्र एवं शिल्प, प्रतिमा तथा वास्तुकलाका प्रभाव ही प्रधान है। पाञ्चरात्र आदि आगमोंमें भी प्रतिमा एवं देवमन्दिर-निर्माण तथा पूजा-विधान आदिका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इनके उद्भव तथा पूर्ण विकास होने, इन ग्रन्थोंकी रचना एवं इनके सुदूर व्यापी प्रचार-प्रसारमें कितना समय लगा होगा? इसका प्रमाण भारतीय ज्योतिष-शास्त्र ही है। आधुनिक विद्वानोंका काल-मान तो बहुत अल्प है और वह निष्पक्ष विचारसे उचित नहीं सिद्ध होता । विविध पुराणों और आगमोंमें स्वयं इन्द्र, कुबेर, वरुण आदिद्वारा हजारों वर्षोंतक शिवलिङ्ग तथा देवी आदिकी प्रतिमाओंकी श्रद्धापूर्वक आराधना-उपासनाके द्वारा ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त करनेके अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं।

देवीपुराणके मतसे एक दिन देवराज इन्द्रने ब्रह्मासे प्रतिमाकी आराधनाके विषयमें कुछ प्रश्न किये। उसपर ब्रह्माने, प्रधान देवताओंने प्राचीन कालमें जिस-जिस देवताकी आराधना करके जैसा-जैसा वैभव प्राप्त किया था, उसके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा—'हे देवेश! पहले भगवान् शम्भुने अक्षमाला धारण करके मन्त्र-शक्तिमयी देवीकी आराधना की, इसीसे वे सबके स्वामी हुए हैं। मैं शैलमयी देवीकी पूजा करता हूँ, इस कारण यह सुदुर्लभ ब्रह्मत्व मुझे प्राप्त हुआ है। विष्णु सदा इन्द्रनीलमयी देवीकी अर्चना करते हैं, अतः उन्होंने सनातन-ब्रह्मत्व प्राप्त किया। इसी प्रकार विश्वेदेवगणने रौप्यमयी देवीकी तथा वायुने पित्तलमयी, वसुगणने कांस्यमयी, दोनों अश्विनीकुमारोंने पार्थिवमयी, वरुणने स्फटिकमयी, अग्निने अन्नमयी, दिवाकरने ताम्रमयी,

चन्द्रने मुक्तामयी, मातृकागणने वज्रलोहमयी देवीकी भक्तिपूर्वक आराधना करके परम वैभव प्राप्त किया था। अतएव हे इन्द्र! यदि तुम भी परम गति पाना चाहते हो तो मणिमयी प्रतिमा निर्माण करके देवीकी आराधना करो। इससे तुम्हारे सभी अभीष्ट सिद्ध हो सकते हैं।'

इसी प्रकार शिव, स्कन्द, लिङ्ग, गणेश आदि पुराणोंमें विविध देवताओं—शिव, विष्णु, सूर्य और गणेश आदिकी प्रतिमाओंकी दीर्घकालतक उपासना करने तथा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेका उल्लेख प्राप्त होता है। इससे प्रतिमा-पूजाकी अनादिता और अद्भुत महत्ता सिद्ध होती है। प्रतिमाकी विधिपूर्वक उपासनाके लिये शुभ मुहूर्तमें शिलाकाष्ठादिका ग्रहण, प्रतिमाका निर्माण, देव-मन्दिरमें उसकी प्रतिष्ठा आदि आवश्यक है। जिसके लिये गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और माल्य-आभरणादिद्वारा पहले प्रतिमाका अधिवासन करके पीछे नाना प्रकारकी वेद-मन्त्रोंकी ध्वनियोंके साथ उसकी स्थापना करनी होती है। समुचित विधानद्वारा प्रतिष्ठा और पूजा-उपासनासे देवताओंका अनुग्रह प्राप्त होता है।

प्रतिमाको गढ़कर उनकी पूजा करनेका कारण तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

चिन्मयस्याप्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

'साधकोंकी सुविधाके लिये ही उस चिन्मय, अप्रमेय, निष्कल और निराकार ब्रह्मके रूपकी कल्पना की गयी है।'

प्रतिमा-पूजामें श्रद्धा-भक्ति, देवतामें पूर्ण विश्वास, भावना-दार्ढ्य, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि, द्रव्य-शुद्धि और शास्त्रीय विधिसे उपचारोंका अनुसरण आवश्यक होता है। इनमें भी भावना और आस्थाका विशेष महत्त्व है। इस सम्बन्धमें उदाहरणभूत एक कथानक प्रस्तुत किया जा रहा है—

एक प्रकाण्ड विद्वान्‌के मनमें प्रौढावस्थामें देवोपासनाकी विशेष अभिरुचि जगी। उन्होंने बाजारसे बालगोपालकी पीतलकी एक प्रतिमा मोल ली और उसे विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठादि-संस्कारोंसे प्रतिष्ठित कर सिंहासनमें रखकर उपासनामें प्रवृत्त हो गये। शास्त्र-ज्ञानका अभाव था नहीं। लगन पूरी थी। शास्त्रमें अटल विश्वास एवं श्रद्धा थी। विघ्न एवं त्रुटि उनकी दृढ़ कर्मठतासे दूर ही स्तम्भित रह गये।

समय बीतता गया। एक-एक करके छः वर्ष [बीत] गये। 'गोपाल'का प्रत्यक्षीकरण नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों बीतता पण्डितजी अधिक उत्साह, लगन, निष्ठा एवं सावध[ानीसे] अर्चन करते, पर कहाँतक करते? एक दिन चिन्ताने उन[्हें] ही दबाया, सोचने लगे—'छः वर्ष बीत गये। अभ[ी] गोपालके दर्शन न हो सके। मेरे विधानमें कहाँ त्रुटि [है]' अपनी त्रुटिका उन्होंने बड़ी सावधानीसे निरीक्षण किया, कोई त्रुटि दृष्टिगत न हो सकी। इसी समय किसीकी प्रेर[णासे] उन्हें यह ज्ञात हुआ कि भगवती दुर्गा 'माता' होनेके क[ारण] उपासकको शीघ्र कृपा करके दर्शन देती हैं। तदनुसार उ[न्होंने] माताकी उपासनाका निश्चय किया।

सिंहासनके ऊपर ही एक ताक था, उन्होंने 'बा[ल-]गोपाल'को उठाकर उसीमें रख दिया और सिंहासन[पर] 'भद्रकाली'की मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी और बड़ी श्रद्ध[ासे] पूजा-अर्चा प्रारम्भ कर दी।

दिन-पर-दिन बीतते गये। वही लगन, वही निष्ठा, व[ही] सावधानी। उनका आह्निक ब्राह्म-मुहूर्तसे प्रारम्भ होत[ा] मध्याह्न-संध्या कर वे निवृत्त होते। दोपहर भोजन, थो[ड़ा] विश्राम, पुनः स्वाध्याय तब सायं संध्या और पुनः रात्रि-पूजा[में] बैठते तो रातके तीनतक बज जाते। कभी तो सम्पूर्ण रा[त्रि] जागरण ही हो जाता।

एक-दो-तीन करके छः शारदीय नवरात्र बीत गये। कुछ भ[ी] प्रत्यक्ष नहीं हुआ। निराशाकी बदली फिर घिर आयी। वे शुद्ध सात्त्विक वातावरणमें पले थे। पूरा जीवन उनका शास्त्राध्ययनमें बीत गया था। संस्कार शुद्ध थे। शास्त्रपर तो अविश्वास कैसे करते! अपनी त्रुटि कोई दिखायी नहीं देती। व्याकुल हो उठे वे पण्डित!

उस दिन वे सिंहासनके सम्मुख दैनिक हवन समाप्त करके बैठे थे। हृदय अत्यन्त ही दुःखी था। साक्षात्कार न होनेपर भी बारह वर्षकी एकनिष्ठ साधनाने उनके हृदयको निर्मल कर दिया था, पर हृदय अत्यन्त व्यथित था। उनका साक्षात्कार न होनेके कारण व्यथाके संवेगमें वे अपने-आपको, देशको, कालको भूले जा रहे थे। और दृष्टि गयी उनकी छः वर्षपूर्व 'बाल-गोपाल'की मूर्तिपर, जिसे सिंहासनके ऊपरके ताकमें रखकर वे भूल-से ही गये थे। वह मूर्ति वहीं रखी है। हवन,

धूप आदिका धूम्र मूर्तिके बाहर निकले हुए मुखपर होता हुआ जा रहा है। और इसी समय उन्हें विचार आया—ओह ! माँ काली प्रत्यक्ष हों भी तो कैसे ? मैं जो हवनादि करता हूँ, उसे तो ताकमेंसे सिर निकाले यह ग्वाला ग्रहण कर लेता है। उन्होंने कहा—'अच्छा, ठहर जा ! मैं तेरी नाकमें रूई ठूँस देता हूँ। फिर देखूँ, कैसे मेरी माँके निमित्त किये हवनका गन्ध तू बीचमें ग्रहण करता है।' बस पण्डितजी रूई लेकर उठ खड़े हुए और 'बाल-गोपाल'की नाकमें ठूँसनेका प्रयत्न करने लगे।

किंतु यह क्या ! हँसते हुए मुरली-मनोहरने प्रत्यक्ष हो उनका हाथ पकड़ लिया। पण्डितजी स्तब्ध थे। श्यामसुन्दर हँस रहे थे। होश आया तो झगड़ पड़े पण्डितराज और बोले—'और बात फिर होगी, पहले यह बता गोपाल ! किस शास्त्रमें लिखा है कि तू नाकमें रूई ठूँसनेसे दर्शन देता है। मैं छः वर्ष पूर्ण शास्त्रीय विधानसे तेरा अर्चन करता रहा। तब कहाँ सो रहा था तू ? और आज नाकमें रूई ठूँसते ही सामने आ गया।'

श्यामसुन्दर बोले—'मेरा अर्चन तुमने किया ही कब पण्डितराज ! जड मूर्तिका अवश्य अर्चन करते रहे। उसमें तुमने प्राण-प्रतिष्ठाकी क्रिया अवश्य सम्पन्न की थी, पर वह फिर भी मूर्ति ही तो रही—जडमूर्ति ! उसमें चेतनावत्ताकी दृढ़ भावना तुममें हुई कब ? आज तुममें मेरी ओर चेतनता और देवत्वकी दृढ़ आस्था उत्पन्न हुई, तभी तो तुम भूल गये कि जड मूर्ति गन्ध ग्रहण नहीं करती। आज तुमने मुझे चेतन मान लिया और मैं साक्षात् तुम्हारे सम्मुख प्रकट हो गया।'

'तो माँ कालीके दर्शन मुझे क्यों नहीं हुए ?' पण्डितजीने प्रश्न किया। खिलखिला पड़े वासुदेव !

वही बात ! अरे बाबा, कालीकी जडमूर्तिका ही तो अर्चन करते हो—माँ तो सर्वदा तुम्हारे सम्मुख रही। अब भी है, पर तुमने उसमें चैतन्यत्वकी अनुभूति ही कब की ? यह देखो, यह मूर्ति है अथवा परम चैतन्य ?' वासुदेवने इङ्गित किया।

पण्डितजीकी दृष्टि सिंहासनकी ओर गयी तो माँ भद्रकालीकी मूर्ति मृदु मुस्कान बिखेरती परम वात्सल्यपूर्ण दृगोंसे उनकी ओर देख रही थी। पण्डितजी आत्म-विस्मृत हो माँके चरणोंमें लोट गये।

इससे सिद्ध होता है कि देवार्चन या देवोपासनामें श्रद्धा, भक्ति, योग, ध्यान, मन्त्र, स्तोत्रोंके पाठ और प्रणाम आदि उपचारोंके नियमोंके पालनके साथ-साथ प्रत्यक्ष व्यक्तिकी उपासनाकी तरह देव-विग्रहमें दृढ़ आस्था एवं उपस्थितिकी भावना भी होनी चाहिये। तभी देव-दर्शनके लिये तीव्र उत्कण्ठा और संवेग उत्पन्न होता है और '**तीव्रसंवेगानामासन्नः**'—इस योगसूत्रके अनुसार फिर तत्काल देवताका साक्षात्कार भी हो जाता है। इसलिये उपासकके मनमें प्रेम, भक्ति, शरणागति, अनन्य भावना होनी आवश्यक है। देवदर्शनमें विलम्ब होनेमें तीव्र भावना तथा तीव्र उत्कण्ठा और अनन्यताका अभाव ही प्रतिबन्धक होता है।

जैन आगमोंमें देववादकी अवधारणा

(अणुव्रत-अनुशास्ता, युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी)

अवधारणाएँ तीन प्रकारकी होती हैं—शास्त्रीय, वैज्ञानिक और व्यावहारिक। शास्त्रीय अवधारणाओंके साथ धर्मों एवं दर्शनोंकी परम्परा जुड़ी रहती है। विज्ञान अपनी विरासतके आधारपर आगे बढ़ता है। उसपर किसी भी धर्म या दर्शनका विशेष आधिपत्य नहीं होता। व्यवहार प्रतिबद्ध और अप्रतिबद्ध दोनों प्रकारका हो सकता है। मनुष्यकी प्रकृति अनुसंधानकी है। वह शास्त्र, विज्ञान और व्यवहार—सबको अपने चिन्तन-मननका विषय बना लेता है। शास्त्रोंकी परम्परा बहुत प्राचीन है। आधुनिक विज्ञानका इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। शास्त्रोंमें जो वैज्ञानिक तत्त्व हैं, उनको शाश्वत माना जा सकता है। व्यावहारिक अवधारणाओंमें प्राचीनता और नवीनताका मिश्रण है।

आत्मवादी दर्शनोंमें आत्मा

दर्शनके क्षेत्रमें दो धाराएँ चल रही हैं—आत्मवादी और अनात्मवादी। अनात्मवादी दर्शन आत्माके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करते। आत्माका अस्वीकार कर्म, कर्मबन्ध और बन्धनके

हेतुओंका अस्वीकार है। बन्धनके अभावमें मोक्ष और मोक्षके उपायोंकी प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है। अनात्मवादी व्यक्तियोंके लिये पूर्वजन्म और पुनर्जन्मकी आस्था अर्थशून्य हो जाती है। ऐसे व्यक्ति इस दृश्य जगत्से परे किसी चेतन सत्तामें विश्वास नहीं करते।

आत्मवादी दर्शनोंने आत्माके स्वतन्त्र अस्तित्वको स्वीकार किया है। आत्माके सम्बन्धमें उनकी अवधारणाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, पर उसके अस्तित्वको लेकर कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। कुछ दार्शनिक आत्माको अङ्गुष्ठ-प्रमाण मानते हैं, कुछ तन्दुल-प्रमाण मानते हैं, कुछ लोक-प्रमाण मानते हैं और कुछ शरीर-प्रमाण मानते हैं। इन मान्यताओंकी समीक्षा अभी यहाँ प्रासंगिक नहीं है।

आत्मा है और उसके दो रूप हैं—शुद्ध आत्मा तथा अशुद्ध आत्मा। शुद्ध आत्मा परमात्मा है। वह जन्म-मृत्युकी परम्परासे मुक्त है। अशुद्ध आत्मा संसारमें परिभ्रमण करती है। परिभ्रमणके मुख्य स्थान चार हैं—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति। जैन-शास्त्रोंकी अवधारणाके अनुसार यह लोक तीन भागोंमें विभक्त है— ऊर्ध्व लोक, तिर्यक् लोक और अधोलोक। निम्न लोकमें मुख्य रूपसे तिर्यक् लोक और अधोलोक। निम्न लोकमें मुख्य रूपसे नरकगतिके जीव रहते हैं। तिर्यक् लोकमें मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी अवस्थिति है। ऊर्ध्व लोकमें देवताओंका निवास है। यह वर्गीकरण स्थूल दृष्टिसे है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो तिर्यञ्चगतिके जीवन इस समूचे लोकमें परिव्याप्त हैं। मनुष्य तिर्यक् लोकतक सीमित है। देवताओंका अस्तित्व तीनों लोकोंमें है।

जैनागमोंमें देवता

इन्द्रभूति गौतम भगवान् महावीरके प्रथम शिष्य थे। उन्होंने भगवान्से प्रश्न किया—'भन्ते! देव कितने प्रकारके होते हैं?' भगवान्ने उत्तर दिया—'गौतम! देव पाँच प्रकारके होते हैं—भव्यद्रव्यदेव, नरदेव, धर्मदेव, देवातिदेव और भावदेव। जो मनुष्य या तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीव आगामी भवमें देवयोनिमें उत्पन्न होनेवाले हैं, वे जबतक वहाँ उत्पन्न नहीं होते, भव्यद्रव्यदेव कहलाते हैं। संक्षेपमें इनको भावी देव कहा जा सकता है। जो जीव मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होते हैं और चक्रवर्ती सम्राट् होते हैं, उनको चक्ररत्न प्राप्त होता है। उनके सामने नौ निधियोंका आविर्भाव होता है। उनका भण्डार समृद्ध होता है। बत्तीस हजार राजा उनका अनुगमन करते हैं। उनके राज्यकी सीमा समुद्रतक विस्तृत रहती है। ऐसे शक्ति-सम्पन्न और प्रभुता-सम्पन्न मनुष्येन्द्र या नरदेव कहलाते हैं।

संयत, जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी और गृहवासका परित्याग कर अप्रतिबद्ध विहार करनेवाले मुनि धर्मदेव होते हैं। वे स्वयं मोक्ष-धर्मकी साधना करते हैं और जनताको धर्मका पथदर्शन देते हैं। साधनाका परिपाक होनेपर सिद्धिके शिखरपर आरोहण कर लेते हैं। उनकी सिद्धिकी पहली कसौटी है अनन्त ज्ञान और दर्शनका आविर्भाव। अन्तहीन ज्ञान और दर्शनकी उपलब्धि कर वे अर्हत् कहलाते हैं। उनके लिये 'जिन' शब्दका प्रयोग भी आता है। केवल ज्ञानकी सम्पदाको प्रधान मानकर उन्हें केवली कहा जाता है। वे केवलज्ञानके आलोकमें अतीत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंको जानते-देखते हैं, इसलिये उनको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी माना गया है। जो धर्मदेव इस स्थितितक पहुँच जाते हैं, उन्हें देवातिदेव या देवाधिदेव कहा जाता है।

पाँचवें प्रकारमें वे देव आते हैं, जो देवगति नाम-गोत्र-कर्मका वेदन करते हैं। लोकमें प्रचलित देव शब्दका प्रयोग इस कोटिके देवोंके लिये ही होता है, इसलिये वे भावदेव कहलाते हैं। उनको चार वर्गोंमें विभक्त किया गया है—भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनपति देव नीचे लोकमें रहते हैं। वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव तिर्यक् लोकमें रहते हैं। ऊर्ध्व लोकमें निवास करनेवाले देव वैमानिक कहलाते हैं। वैमानिक देव सब देवोंमें उच्चकोटिके देव हैं। जैनशास्त्रोंमें इन सभी देवोंका विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

देवत्व-प्राप्तिके उपाय

देव कौन बन सकता है और कैसे बन सकता है, इन प्रश्नोंके संदर्भमें भी जैन आगमोंमें विशेष प्रकाश डाला गया है। मनुष्यगति और तिर्यञ्चगतिके प्राणी देवगतिमें उत्पन्न हो सकते हैं। वहाँ देवत्वप्राप्तिके कारणोंकी चर्चा करते हुए मुख्य रूपसे चार कारणोंका उल्लेख किया गया है—

१-सराग-अवस्थामें संयमकी साधना करना।

२-गृहस्थ-जीवनकी आचार-संहिताका पालन करना।

३-तत्त्वका सम्यक् अवबोध पाये बिना ही तपस्या करना।

४-मुक्तिकी इच्छा बिना ही आत्माको निर्मल बनानेवाला विशेष अनुष्ठान करना।

तिर्यञ्चगतिमें जन्म लेनेवाले पशु-पक्षी आदि प्राणी चिन्तनशील नहीं होते। उनको कभी कोई आकस्मिक अवसर मिलता है और वे विकासके सोपानपर चढ़ जाते हैं। मनुष्य चिन्तन और विवेकसम्पन्न प्राणी है। विकासकी सारी सम्भावनाएँ उसमें निहित हैं। फिर भी सब मनुष्य अपनी क्षमताका लाभ नहीं उठाते। वे कामभोगोंमें आसक्त होकर मनुष्यतासे भी नीचेकी ओर प्रस्थान कर देते हैं। ऐसे लोगोंको प्रतिबोध देनेके लिये एक व्यावहारिक उदाहरण दिया जाता है—

एक बनिया था। उसके तीन पुत्र थे। बनियेने उन तीनोंको एक-एक हजार कार्षापण (ताँबेका एक प्राचीन सिक्का) देकर व्यापार करनेके लिये भेजा। एक निश्चित अवधिके बाद उन्हें लौट आना था। तीनों भाई गये। एक भाईने व्यापार किया और सादगीसे जीवन बिताया। उसका व्यापार चला। मितव्ययी होनेके कारण उसके पास पूँजी बढ़ती गयी। दूसरे भाईने व्यापार किया। उसे व्यापारमें जितना लाभ मिलता, वह भोजन, मकान आदिपर खर्च कर डालता, मात्र उसने मूल पूँजीको सुरक्षित रखा। तीसरे भाईने व्यापार नहीं किया। जो पूँजी उसके पास थी, उसे खाने-पीने तथा व्यसनोंमें समाप्त कर दिया।

इस उदाहरणको प्रतीक बनानेसे निष्कर्ष यह निकलता है कि मनुष्य-जीवन मूलभूत पूँजी है। अध्यात्मकी साधनाकर पवित्र जीवन जीनेवाला उस पूँजीको बढ़ाता है, देवगतिको प्राप्त होता है। जो विषय-वासनामें फँसता है, वह मूल पूँजीको खोता है, नरक और तिर्यञ्चगतिको प्राप्त करता है। जो मध्यम प्रकारका आचरण कर पुनः मनुष्य-जन्मको प्राप्त करता है, वह मूल पूँजीको सुरक्षित रखता है।

जैन-देवता नाम और आकारसे अप्रतिबद्ध हैं

मनुष्य देवताओंका उपासक है। वह इष्ट-सिद्धिके लिये, विघ्ननिवारणके लिये और अपने मनस्तोषके लिये उनका स्मरण करता है, पूजन करता है, मनौतियाँ मानता है और उन्हें प्रतिष्ठित करता है। प्रश्न यह है कि मनुष्यकी कल्पनाका देव कैसा है? वैदिक परम्परामें ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रमुख देवोंकी भूमिका निभाते हैं। जैन-परम्परामें देववादकी धारा दो दिशाओंमें प्रवाहित है। लौकिक देवोंको नाम और आकार दोनों प्राप्त है। पर लोकोत्तर देवोंके साथ यह प्रतिबद्धता नहीं है। अप्रतिबद्धताके संकल्पको अभिव्यक्ति देते हुए कहा गया है—

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

संसार-बीजको अङ्कुरित करनेवाले दो तत्त्व हैं—राग और द्वेष। जो व्यक्ति राग और द्वेषको क्षीण कर लेता है, उसे मेरा नमस्कार है। उस व्यक्तित्वकी पहचान ब्रह्माके रूपमें हो, विष्णुके रूपमें हो, शिवके रूपमें हो या जिनके रूपमें हो। नामके प्रति ज्ञानी उपासकका कोई विशेष आग्रह नहीं होता। उसकी दृष्टिमें नमस्करणीय है व्यक्तिकी अर्हता और वह है वीतरागता। (क्रमशः)

प्रे०—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्यमें देवता

(डॉ० श्रीविजयकुमारजी जैन)

भारतीय धार्मिक परम्परामें सदैव ही अलौकिक शक्तियोंका महत्त्व रहा है। बौद्ध धर्ममें भी इन अलौकिक शक्तियोंका समावेश हुआ है, जिनके अन्तर्गत ब्रह्मा, शक्र, देवता, देवपुत्र आदि अलौकिक शक्तियोंका वर्णन मिलता है। भगवान् बुद्धने अपनेको देवता, भार, ब्रह्मा, श्रवण, ब्राह्मणोंमें अनुत्तर घोषित किया था[१]। संयुक्त निकायका प्रथम सगाथवर्ग लौकिक शक्तियोंके चित्रणसे परिपूर्ण है, जिसका संक्षिप्त साररूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

ब्रह्मा—ब्रह्मा हिन्दू धार्मिक परम्परामें सृष्टिकर्ताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। पालि-साहित्यमें ये सद्धर्मके सहायक रूपमें वर्णित हैं। संयुक्त निकायमें छः ब्रह्माओंके नाम मिलते हैं—सहम्पति-ब्रह्मा, बक-ब्रह्मा, सुब्रह्मा, शुद्धावास-प्रत्येक-ब्रह्मा,

१-सदेव के लोके समारके सब्रह्मके सस्समण ब्राहम्मणिया पजाय सदेव मनुस्साय तथागतो अरियो। (संयुक्त निकाय ५, पृ० ३७३)

तदुप्रत्येक ब्रह्मा एवं संतकुमार ब्रह्मा[१]। बक-ब्रह्मा-सुत्तमें बहत्तर-बहत्तर ब्रह्माओंकी संख्या बतलायी गयी है। सहम्पति-ब्रह्माको बौद्ध धार्मिक परम्परामें विशेष सम्मान दिया गया है। उपदेश देनेके प्रति भगवान् बुद्धके उदासीन होनेपर सहम्पति-ब्रह्माने ही उपदेशके लिये उन्हें प्रेरित किया था[२]। भगवान्‌द्वारा धर्मके प्रति गौरव मानकर विहार करनेकी बात सोचनेपर सहम्पति-ब्रह्माने आकर भगवान्‌की बातका समर्थन करते हुए कहा था कि यही बुद्धोंकी परम्परा है[३]।

सहम्पति-ब्रह्मा सद्धर्ममें सहायक हुए। सहम्पति-ब्रह्मा संघके प्रति श्रद्धालु थे। वे भिक्षुओंके शान्तचित्त और एकाग्र रहनेकी पुष्टि करते हुए कहते हैं कि एकान्त सेवन करना चाहिये। यदि मन न लगे तो संघमें मिलकर संयत और स्मृतिमान् होकर विहार करना चाहिये[४]।

बक-ब्रह्माके विषयमें भगवान् बुद्धने बताया कि वे ब्रह्मलोकमें शीलव्रतके कारण उत्पन्न हुए। उन्होंने पहले प्यासेको पानी पिलाया था, गङ्गामें बहते हुएको बचाया था, नावको सर्पराजसे मुक्त कराया था, इसी पुण्यके कारण वे ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके रूपमें उत्पन्न हुए[५]।

देवता—संयुक्त निकायके प्रथम संयुक्त देवता-संयुक्तमें देवताओंकी भगवान् बुद्धके साथ वार्ता बतलायी गयी है। देवताओंके अन्तर्गत सतुल्लपकायिक, शुद्धावास, घटीकार, त्रायस्त्रिंश एवं उज्झान सज्ञी नामक देवताओंके नाम मिलते हैं[६]।

देवपुत्र—देवपुत्रोंकी विशेषता देवताओंके समान ही है। उनमेंसे कुछ कभी-कभी अपनी ज्योतिको चमकाते हुए जैतवनमें आते थे और उनका भगवान् बुद्धसे वार्तालाप होता था। कुछ देवपुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—काश्यप, माघ, मागध, दामलि, कामद, सुदत्त, सुब्रह्मा, ककुध तथा अनाथपिण्डि आदि[७]।

शक्र—बौद्ध साहित्यमें शक्रके सात नामोंका उल्लेख मिलता है—मघवा, पुरिन्दद, शक्र, वासव, सहस्राक्ष, सुजम्पति एवं देवेन्द्र।

देवेन्द्र शक्रके सात व्रत बतलाये गये हैं—१-माता-पिताकी परिचर्या, २-ज्येष्ठोंका सम्मान, ३-मधुर-भाषण, ४-परनिन्दा-परिवर्जन, ५-उदारतापूर्वक दान-कर्म, ६-सत्य-सम्भाषण और ७-क्रोधका परित्याग—जिनके कारण वे इस पदपर आरूढ हुए थे[८]।

शक्रको क्षमाशील, क्रोधरहित, शान्तिका प्रतीक, मधुरभाषी, निष्कपट, धर्मपरायण, उत्साही एवं बलशाली कहा गया है।

भगवान् बुद्धने देवेन्द्र शक्रको पुण्यके प्रतापसे त्रायस्त्रिंश-लोकमें ऐश्वर्य पाकर राज्य करते हुए रात्रि और सौजन्यका प्रशंसक बतलाया है। भिक्षुओंको भगवान् शिक्षा देते हैं कि इन्द्रका अध्यवसाय अनुकरणीय है। वे जिस भी सामान्य या दुर्गम कार्योंको प्रारम्भ करते हैं, उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं, चाहे कितनी भी विघ्न-बाधाएँ आ जायँ। देवेन्द्र शक्रका विभिन्न प्रसंगोंमें असुरोंसे युद्धका वर्णन मिलता है।

भगवान्‌के परिनिर्वाण प्राप्त होनेपर देवेन्द्र शक्रने कहा था कि सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और निरुद्ध होना उनका स्वभाव है, वे उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं। बिलकुल शान्त हो जाना ही सुख है।

संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है, न शत्रु। जो व्यक्ति किसीको शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं, वे वास्तवमें अपनी ही हानि करते हैं।—भक्तराज प्रह्लाद

१-ब्रह्म संयुक्त। पृ० १३७—१५३
२—४-संयुक्त निकाय ५, पृ० १३९, १५२
५-ब्रह्म संयुक्त पृ० १४३
६-देवता संयुक्त पृ० २३—३३,
७-देवपुत्र संयुक्त पृ० ४३—६६
८-शक्र संयुक्त पृ० २३०

देवता और उनके महनीय चरित्र
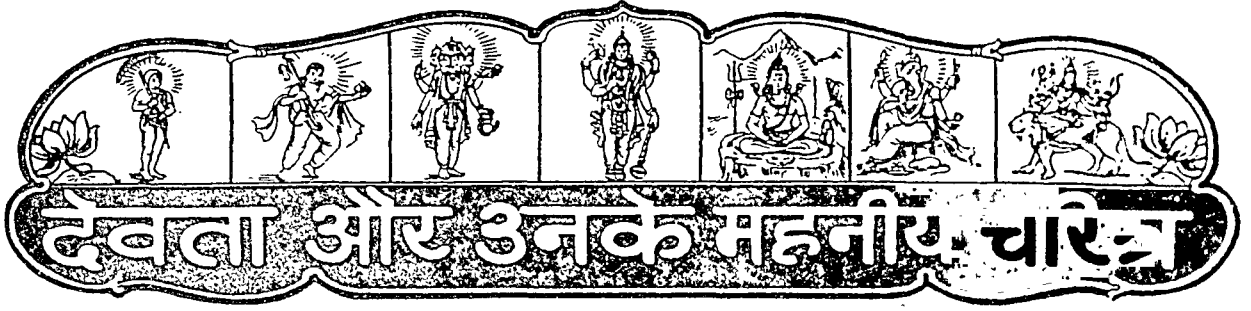
[प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज विशेष सामर्थ्यवान् थे। उनकी धन-सम्पत्ति पूर्ण थी, शरीर आरोग्य था, परिवार सुखी था। सबके हृदयमें शान्ति थी। जगत्का व्यवहार उनके लिये क्रीडा-कौतुक था। उनकी इच्छा एवं स्मरण करनेमात्रसे उन्हें देवताओंके दर्शन हो सकते थे और उनका शरीर भी ब्रह्मलोकतक जा सकता था। हजारों कोस दूरकी किसी वस्तुको देखनेका उनमें सामर्थ्य था। दूर और निकटका व्यवधान उनके लिये नगण्य था। जिसपर वे प्रसन्न होते, उन्हें वरदान देनेकी क्षमता उनमें थी, जिसपर वे रुष्ट होते, उन्हें दण्ड भी दे सकते थे। इस प्रकार निग्रह और अनुग्रहकी पूर्ण क्षमता थी उनमें। स्वर्गके देवता भी उनकी सहायताकी अपेक्षा किया करते। प्राचीन ग्रन्थोंमें इस बातके अनेक प्रमाण हैं। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। अपने पूर्वजोंको जो महान् शक्तियाँ प्राप्त हुई थीं, वह देवताओंकी उपासना और सम्बन्धका ही फल था।

आज जो व्यक्ति स्थूल जगत्की उलझनोंमें संलग्न है, यदि वह संसारमें एकच्छत्र सम्राट् हो जाय, तब भी उसका जीवन पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि कोई-न-कोई अभाव उसके जीवनके साथ लगा ही रहता है। इस स्थूल जगत् और भगवत्प्राप्तिके बीचमें एक सूक्ष्म जगत् भी है जो कि आध्यात्मिक उन्नतिमें सीढ़ीका काम करता है। वास्तवमें इस सूक्ष्म लोकमें इस लोककी अपेक्षा अधिक ज्ञान, अधिक शक्ति, अधिक ऐश्वर्य, अधिक सुख और अधिक सुव्यवस्था है। वहाँके शासक जगत्पर भी आधिपत्य रखते हैं और यहाँकी प्रगति एवं प्रवृत्तियोंमें उनकी मुख्य प्रेरणा रहती है। जैसे यह स्थूल शरीर हम-आप नहीं हैं, वास्तवमें हम-आप इसके अंदर रहनेवाले जीव हैं, वैसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य-चन्द्र प्रत्येक ग्रहमण्डल और भिन्न पदार्थोंमें एक दिव्य जीव निवास करता है, जिसको पृथ्वीदेवता, अग्निदेवता आदि नामोंसे कहते हैं। स्थूल जगत्के रोग-शोक आदि इन्हींके द्वारा नियन्त्रित और मर्यादित हैं। इनका एक संगठित राज्य है और उनके पद, पदाधिकारी और उनके समयकी निश्चित अवधि है। कोई प्रत्येक युगमें बदलते हैं, कोई मन्वन्तरमें तथा कोई कल्पमें बदलते हैं। कभी-कभी इन पदोंपर तपस्वी जीव भी आ जाते हैं और कभी-कभी ब्रह्मलोकसे अधिकारी पुरुष भी भेजे जाते हैं। देवताओंके राजा इन्द्र हैं, न्यायाधीश धर्मराज हैं, कुबेर कोषाध्यक्ष हैं, इन सबके आचार, व्यवहार तथा सामर्थ्य-शक्तिके वर्णन वेदोंमें, पुराणोंमें और धर्मग्रन्थोंमें प्राप्त हैं।

सूक्ष्म जगत्के देवताओंमें अनेक भेद हैं—ब्राह्मस्वर्गके देवता, माहेन्द्रस्वर्गके देवता, भौमस्वर्गके देवता। इनमें कुछ तो प्रजारूपसे निवास करते हैं, कुछ अधिकारी-रूपसे। उनके शरीरमें स्थूल पञ्चभूत बहुत ही न्यून परिमाणमें होते हैं। पृथ्वी, जलकी मात्रा तो नहींके बराबर होती है। इसीसे उन्हें पार्थिव भोजनकी आवश्यकता नहीं होती, केवल सूँघनेसे अथवा केवल अमृतपान करनेसे ही उनका जीवन परिपुष्ट रहता है। ब्राह्मस्वर्गमें तो गन्ध या पानकी भी आवश्यकता नहीं होती, इसलिये यज्ञ-यागादिका अधिकांश सम्बन्ध माहेन्द्रस्वर्गसे ही है। भौमस्वर्गके देवता पितर हैं।

देवता दो प्रकारके होते हैं—(१) नित्य देवता, (२) नैमित्तिक देवता। नित्य देवताओंका पद प्रवाहरूपसे नित्य होता है। जैसे—प्रत्येक प्रलयके पश्चात् इन्द्रपद रहेगा ही। इनके अधिकारी बदलते रहते हैं, किंतु पद ज्यों-का-त्यों रहता है। इस समय जो बलि हैं, वे ही आगे इन्द्र हो जायँगे। इनके बदलनेका समय निश्चित रहता है, यह नियम प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चलता है। नैमित्तिक देवताका पद समय-समयपर बनता है और नष्ट हो जाता है। जैसे—कोई नवीन ग्रामका निर्माण हुआ तो उसके अधिकारी नये ग्राम-देवता बना दिये जायँगे। नवीन गृहके लिये नवीन वास्तुदेवता भी गृहीत कर लिये जायँगे। परंतु उस ग्रामके, गृहके टूटते ही उनका वह अधिकार नष्ट हो जायगा। ग्रामदेवताकी पूजासे ग्राम तथा गृहदेवताकी पूजासे गृहका कल्याण होता है। अब भी भारतके गाँवमें किसी-न-किसी रूपमें ग्रामदेवता, गृहदेवताकी पूजा की जाती है।

देवताओंकी संख्या नहीं हो सकती, जितनी वस्तुएँ हैं उतने ही देवता हैं। इसीसे शास्त्रोंमें देवताओंको असंख्य कहा गया है। महर्षि गौतम आदिने देवताओंकी संख्या तैंतीस करोड़ बतलायी है। कहीं-कहीं देवताओंकी संख्या ३,३३,३३३ कही गयी है। मुख्यतः तैंतीस देवता माने गये हैं, जिनकी संख्या इस प्रकार पूरी होती है—द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, अष्ट वसु, इन्द्र तथा

प्रजापति। निरुक्तके दैवतकाण्डमें देवताओंके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार किया गया है। वहाँके वर्णनसे यही तात्पर्य निकलता है कि ये कामरूप होते हैं, वे स्वेच्छासे स्त्री-पुरुष या अन्य रूप धारण कर सकते हैं। वेदान्तदर्शनमें कहा गया है—देवता एक ही समय अनेक स्थानोंमें भिन्न-भिन्न-रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं।

लौकिक उन्नति करनेकी इच्छा हो तो वह सरलतासे सिद्ध हो सकती है। ये देवोपासनाके छोटे-से-छोटे फल हैं। जो लोग इससे ऊपर उठते हैं, स्थूल शरीर और स्थूल जगत्को क्षणिक समझकर सूक्ष्म जगत्में ही विहार करना चाहते हैं, वे देवोपासनाके द्वारा ों कल्पभरके लिये स्थान प्राप्त कर सकते हैं। वे अपनी तपस्या एवं उपासनाके द्वारा इन्द्र हो सकते हैं। देवोपासनाके द्वारा यह कुछ बहुत ही सुलभ है। परंतु वास्तवमें जो सबसे ऊँची बात है, वह है परम लक्ष्यकी प्राप्ति, -जीवनका लक्ष्य है शाश्वत शान्ति। यह शाश्वत शान्ति ही भगवत्प्राप्ति है, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना है, :-सागरसे मोक्ष पाना है और यही है अखण्ड आनन्द। इस परम उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इन लोकोंके भोगोंसे विरक्त होना यक है। पूर्ण वैराग्य देवताओंकी उपासनामें बाधक नहीं साधक ही है। देवता रुष्ट हों तो इन्द्रियों और मनका संयम अत्यन्त । हो जाता है, क्योंकि वे इनके अधिष्ठातृ देवता हैं। इसीलिये प्राचीन कालमें ऋषिगण यज्ञ-यागादिके द्वारा इनको संतुष्ट किया थे।

ापने शास्त्र यह कहते हैं कि ये यज्ञ, देवोपासना आदि सकामभावसे किये जाते हैं तो इस लोककी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती परलोकमें इन्द्रत्व और पारमेष्ठ्य-पदकी प्राप्ति होती है और यदि यही कर्म निष्कामभावसे किये जाते हैं तो अन्तःकरणको रके भगवान्की भक्ति अथवा तत्त्वज्ञानके हेतु होते हैं। चाहे सकाम हो या निष्काम, किसी भी अवस्थामें देवोपासना ायक ही होती है। जो लोग इन्द्रियोंका संयम करके मनको एकाग्र एवं परमात्मामें स्थिर करना चाहते हैं, उनके लिये भी पना बड़ी सहायक है। सूर्यकी उपासनासे, जो कि उनके सामने बैठकर गायत्रीके जपसे होती है, ब्रह्मचर्य स्थिर होता है ाँखें बुरे विषयोंपर नहीं जातीं। नित्य और नैमित्तिक कर्मोंमें देवपूजाके जितने भी मन्त्र हैं, उनमें कहा गया है कि अमुक देवता न्द्रियोंको संयमित करें, मनको विषयोंसे विमुख करें और अपराधोंकी पुनरावृत्ति न हो, ऐसी कृपा करें। संध्या और ायज्ञ-जैसे नित्यकर्म भी एक प्रकारसे देवोपासना ही हैं और देवताओंकी सहायता प्राप्त करनेके लिये ही जीवनसे उनका म्बन्ध जोड़ दिया गया है।

ीता, जो अध्यात्मशास्त्रका उज्ज्वल प्रकाश है, में प्रसंगवश कई बार देवपूजाका उल्लेख हुआ है। सात्त्विक पुरुषोंका वर्णन ए यह कहा गया है कि 'यजन्ते सात्त्विका देवान्' अर्थात् सात्त्विक पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं। शारीरिक तपोंमें म स्थान देवपूजाको ही प्राप्त है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलोंमें जैसे यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि बताते हुए कहा कि यज्ञके द्वारा तुम उन्नति करो, यज्ञ तुम्हारी समस्त कामनाओंको पूर्ण करे। वहाँ स्पष्ट कहा गया है—मनुष्य यज्ञद्वारा ोंको प्रसन्न करे और देवता मनुष्योंको उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरेके सहकारी बनकर परम कल्याण प्राप्त करें। यहाँ कहा गया है कि संसारकी सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति देवताओंसे ही प्राप्त होती है, इसलिये उनकी वस्तु उनको दिये बिना जो ं वे एक प्रकारके चोर हैं—'स्तेन एव सः'। भगवान्की यह वाणी प्रत्येक साधकको सर्वदा स्मरण रखनी चाहिये कि इस ज्ञका जो अनुष्ठान नहीं करता, वह इन्द्रियोंके भोगोंमें रमनेवाला पापी व्यर्थ ही जीवन धारण करता है।

ा सृष्टिके कर्ता, धर्ता, हर्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं। ये ही परमदेव हैं। इन्हींको कर्तापनकी दृष्टिसे ब्रह्मा, धर्तापनकी दृष्टिसे विष्णु र्तापनकी दृष्टिसे शिव कहते हैं। यद्यपि ये तीनों नाम एक ही ईश्वरके हैं, परंतु अपने शास्त्रोंमें इन्हें त्रिदेवके नामसे कहा गया तीनोंमेंसे ब्रह्माकी उपासना प्रचलित नहीं है, क्योंकि वे सृष्टिका कार्य स्वाभाविक रूपसे करते रहते हैं और सृष्टिके लिये करना आवश्यक नहीं है। संसारकी स्थितिके लिये अथवा संसारसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त करनेके लिये उपासना ी है। यही कारण है कि इन त्रिदेवोंमें विष्णु और शिवकी उपासना ही विशेष रूपसे प्रचलित है। संसारकी विभिन्नताओंके ; रूपमें गणेशकी और प्रकाशके रूपमें सूर्यकी उपासना होती है। इन सबके साथ यूँ कहिये कि इन सबके रूपमें की अचिन्त्य-शक्ति है, इसलिये केवल शक्तिकी भी आराधना होती है। इस प्रकार विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और -ये पाँचों भगवान्के ही स्वरूप हैं। उपास्य देवोंमें इन्हींका मुख्य स्थान है। जिस देवताकी जो शक्ति होती है, वही उनकी पत्नी ाक्तिमान्के साथ शक्तिका अभेद है। समय-समयपर इन सभीके अवतार हुआ करते हैं और इस प्रकार निखिल जगत्की क्षा होती है। —सम्पादक]

पञ्चायतनके देवता

सनातनधर्ममें जो देवकार्य होते हैं, वे जगत्‌के मूल उपादान पञ्चमहाभूतके अधिष्ठाता पञ्चदेवताकी उपासनापर आधारित हैं। यह विश्व-प्रपञ्च पञ्चमहाभूतोंका विपरिणाम है। पञ्चमहाभूत—सत्त्व, रज और तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे समुद्भूत हैं। आकाशतत्त्व विशुद्ध सत्त्वगुण-प्रधान है तो वायुतत्त्व सत्त्व और रजके विमिश्रणका विपरिणाम है। अग्नितत्त्व विशुद्ध रजोगुण-प्रधान है तथा जलतत्त्व रजोगुण और तमोगुणके विमिश्रणका विपरिणाम है एवं पृथ्वीतत्त्व विशुद्ध तमोगुण-प्रधान है। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पाँच विभिन्न तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमें आकाश, अग्नि और पृथ्वी—ये तीन तत्त्व क्रमशः सत्त्व, रज और तमोगुणके विशुद्ध विपरिणाम हैं तथा वायु और जल-तत्त्व क्रमशः सत्त्व-रज तथा रज-तमके विमिश्रणके विपरिणाम हैं। समस्त जीवोंके शरीर उक्त पञ्चतत्त्वोंसे समुद्भूत हैं। जिस शरीरमें जिस तत्त्वका आधिक्य होता है, तदनुसार ही उस जीवका तादृश जन्मजात स्वभाव होता है।

यह स्वभाव-वैषम्य तत्तत् शरीरवर्ती अमुकामुक तत्त्वके न्यूनाधिक्य तारतम्यके कारण ही होता है। मनुष्योंमें भी कोई स्वभावतः सौम्य तथा दूसरे महाक्रोधी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि मनुष्यवर्ग पञ्चविध प्रकृति-सम्पन्न है।

यद्यपि समस्त जीवोंके उपास्य एकमात्र श्रीमन्नारायण भगवान् ही हैं, परंतु पञ्चविध प्रकृतिवाले जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुरूप ही उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। श्रीभगवान्‌ने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें घोषणा की है—

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ (३ । ३३)

अर्थात् समस्त जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, इसमें निग्रह सफल नहीं हो पाता। लोकमें भी 'स्वभावो दुरतिक्रमः' यह उक्ति सुप्रसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें कृपालु भगवान् जीवोंके उद्धारके लिये उपासकोंकी भावनाके अनुसार उनके कल्याणके लिये अपने विभिन्न रूपोंकी कल्पना करते हैं।

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' (रामपूर्वतापिन्युपनिषत् ७) अर्थात् उपासना करनेवालोंको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेके लिये परब्रह्मके बहुविध रूपोंकी कल्पना होती है। तदनुसार आगम-शास्त्रोंमें एक ही श्रीमन्नारायण पञ्चतत्त्वोंके अधिष्ठाताके रूपमें पञ्चविध वर्णित हुए हैं—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात् 'आकाश-तत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु, अग्निकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वी-तत्त्वके शिव तथा जल-तत्त्वके अधिष्ठाता गणेश हैं।'

सुयोग्य वैद्य जैसे रोगीकी प्रवृत्तिका मनन करके तदनुसार ही उसकी शारीरिक व्याधिकी निवृत्तिके लिये औषध और पथ्यका निर्धारण करता है, उसी प्रकार सुयोग्य गुरु और परम पिता प्रभु भी साधककी प्रकृतिके अनुसार उसकी मानसिक आधि (काम-क्रोध आदि) के उपशमनके लिये उपासनारूप औषध और संयमरूप पथ्यके लिये प्रेरणा करते हैं। अतः तत्तत् तत्त्वप्रधान-प्रकृति-विशिष्ट साधकोंके लिये तत्तद् देवतारूप परमात्मप्रभुकी उपासना उपादेय होती है। यही पञ्चदेवोपासनाका अन्तरङ्ग रहस्य है।

वास्तवमें अपने शास्त्रोंके अनुसार सबका सार-तत्त्व एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्तस्वरूप, सच्चिदानन्द ही परम तत्त्व है। उसका न कोई नाम है न कोई रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण है न कोई जाति ही है तथापि गुण-सम्बन्धका आरोपण कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं देवी और कहीं सूर्यनारायण कहा गया है। ये पञ्चदेवता प्रत्येक साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं। इन एक-एक देवोंके विभिन्न अवतार होते हैं तथा विभिन्न स्वरूपोंमें इनकी उपासना चलती है।

पञ्चदेवताकी लिङ्ग-पूजा—भगवान् श्रीशंकराचार्यने पाँचों देवताओंकी लिङ्ग-पूजाकी भी व्यवस्था दी है, जिसके अनुसार कुछ लोग एक साथ ही प्रतिदिन पञ्चदेवकी पूजा करते हैं। वे पञ्चलिङ्ग इस प्रकार हैं—१—शिवका बाणलिङ्ग, २—विष्णुका शालग्राम-लिङ्ग, ३—सूर्यका स्फटिक-बिम्ब, ४—शक्तिका धातु-यन्त्र और ५—गणपतिका रक्तवर्णिक चतुष्कोण प्रस्तर।

जिसका जो देवता इष्ट होता है, उसी देवताके लिङ्गको केन्द्र-स्थानमें रखकर तथा अन्य चार लिङ्गोंको चारों ओर स्थापित कर आवरण-देवताके रूपमें पूजा करनी पड़ती है। इसी प्रकार पञ्चायतन-देवताओंकी आराधना मूर्तिके रूपमें भी होती है। जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णुको ही मुख्य अङ्गी तथा शेष चारोंको उनके अङ्ग मानकर पूजा करते हैं। इसी प्रकार स्मार्त शैव शिवको, शाक्त शक्तिको, सौर

पञ्चायतनके देवता

सनातनधर्ममें जो देवकार्य होते हैं, वे जगत्के मूल उपादान पञ्चमहाभूतके अधिष्ठाता पञ्चदेवताकी उपासनापर आधारित हैं। यह विश्व-प्रपञ्च पञ्चमहाभूतोंका विपरिणाम है। पञ्चमहाभूत—सत्त्व, रज और तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे समुद्‌भूत हैं। आकाशतत्त्व विशुद्ध सत्त्वगुण-प्रधान है तो वायुतत्त्व सत्त्व और रजके विमिश्रणका विपरिणाम है। अग्नितत्त्व विशुद्ध रजोगुण-प्रधान है तथा जलतत्त्व रजोगुण और तमोगुणके विमिश्रणका विपरिणाम है एवं पृथ्वीतत्त्व विशुद्ध तमोगुण-प्रधान है। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पाँच विभिन्न तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमें आकाश, अग्नि और पृथ्वी—ये तीन तत्त्व क्रमशः सत्त्व, रज और तमोगुणके विशुद्ध विपरिणाम हैं तथा वायु और जल-तत्त्व क्रमशः सत्त्व-रज तथा रज-तमके विमिश्रणके विपरिणाम हैं। समस्त जीवोंके शरीर उक्त पञ्चतत्त्वोंसे समुद्‌भूत हैं। जिस शरीरमें जिस तत्त्वका आधिक्य होता है, तदनुसार ही उस जीवका तादृश जन्मजात स्वभाव होता है।

यह स्वभाव-वैषम्य तत्तत् शरीरवर्ती अमुकामुक तत्त्वके न्यूनाधिक्य तारतम्यके कारण ही होता है। मनुष्योंमें भी कोई स्वभावतः सौम्य तथा दूसरे महाक्रोधी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि मनुष्यवर्ग पञ्चविध प्रकृति-सम्पन्न है।

यद्यपि समस्त जीवोंके उपास्य एकमात्र श्रीमन्नारायण भगवान् ही हैं, परंतु पञ्चविध प्रकृतिवाले जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुरूप ही उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। श्रीभगवान्ने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें घोषणा की है—

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ (३ । ३३)

अर्थात् समस्त जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, इसमें निग्रह सफल नहीं हो पाता। लोकमें भी 'स्वभावो दुरतिक्रमः' यह उक्ति सुप्रसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें कृपालु भगवान् जीवोंके उद्धारके लिये उपासकोंकी भावनाके अनुसार उनके कल्याणके लिये अपने विभिन्न रूपोंकी कल्पना करते हैं।

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' (रामपूर्वतापिन्युपनिषत् ७) अर्थात् उपासना करनेवालोंको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेके लिये परब्रह्मके बहुविध रूपोंकी कल्पना होती है। तदनुसार आगम-शास्त्रोंमें एक ही श्रीमन्नारायण पञ्चतत्त्वोंके अधिष्ठाताके रूपमें पञ्चविध वर्णित हुए हैं—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥

अर्थात् 'आकाश-तत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु, अग्निकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वी-तत्त्वके शिव तथा जल-तत्त्वके अधिष्ठाता गणेश हैं।'

सुयोग्य वैद्य जैसे रोगीकी प्रवृत्तिका मनन करके तदनुसार ही उसकी शारीरिक व्याधिकी निवृत्तिके लिये औषध और पथ्यका निर्धारण करता है, उसी प्रकार सुयोग्य गुरु और परम पिता प्रभु भी साधककी प्रकृतिके अनुसार उसकी मानसिक आधि (काम-क्रोध आदि) के उपशमनके लिये उपासनारूप औषध और संयमरूप पथ्यके लिये प्रेरणा करते हैं। अतः तत्तत् तत्त्वप्रधान-प्रकृति-विशिष्ट साधकोंके लिये तत्तद् देवतारूप परमात्मप्रभुकी उपासना उपादेय होती है। यही पञ्चदेवोपासनाका अन्तरङ्ग रहस्य है।

वास्तवमें अपने शास्त्रोंके अनुसार सबका सार-तत्त्व एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्तस्वरूप, सच्चिदानन्द ही परम तत्त्व है। उसका न कोई नाम है न कोई रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण है न कोई जाति ही है तथापि गुण-सम्बन्धका आरोपण कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं देवी और कहीं सूर्यनारायण कहा गया है। ये पञ्चदेवता प्रत्येक साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं। इन एक-एक देवोंके विभिन्न अवतार होते हैं तथा विभिन्न स्वरूपोंमें इनकी उपासना चलती है।

पञ्चदेवताकी लिङ्ग-पूजा—भगवान् श्रीशंकराचार्यने पाँचों देवताओंकी लिङ्ग-पूजाकी भी व्यवस्था दी है, जिसके अनुसार कुछ लोग एक साथ ही प्रतिदिन पञ्चदेवकी पूजा करते हैं। वे पञ्चलिङ्ग इस प्रकार हैं—१—शिवका बाणलिङ्ग, २—विष्णुका शालग्राम-लिङ्ग, ३—सूर्यका स्फटिक-विम्ब, ४—शक्तिका धातु-यन्त्र और ५—गणपतिका रक्तवर्णिक चतुष्कोण प्रस्तर।

जिसका जो देवता इष्ट होता है, उसी देवताके लिङ्गको केन्द्र-स्थानमें रखकर तथा अन्य चार लिङ्गोंको चारों ओर स्थापित कर आवरण-देवताके रूपमें पूजा करनी पड़ती है। इसी प्रकार पञ्चायतन-देवताओंकी आराधना मूर्तिके रूपमें भी होती है। जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णुको ही मुख्य अङ्गी तथा शेष चारोंको उनके अङ्ग मानकर पूजा करते हैं। इसी प्रकार स्मार्त शैव शिवको, शाक्त शक्तिको, सौर

सूर्यको और गाणपत्य गणेशजीको मुख्य मानते हैं। पूजा वे पाँचोंकी करते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो नाम-रूपकी विभिन्नता होनेपर भी तत्त्वतः ये पाँचों एक ही हैं। यहाँ आगे इनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

भगवान् श्रीगणपति

सनातन वैदिक हिन्दूधर्मके उपास्य देवताओंमें भगवान् श्रीगणेशका असाधारण महत्त्व है। किसी भी धार्मिक या माङ्गलिक कार्यका आरम्भ बिना उनकी पूजाके प्रारम्भ नहीं होता। इतना ही नहीं, किसी भी देवताके पूजन और उत्सव-महोत्सवका प्रारम्भ करते ही महागणपतिका स्मरण और उनका पूजन करना अनिवार्य है। इतना महत्त्व अन्य किसी देवताका नहीं प्राप्त होता।

गणेश शब्दका अर्थ है—गणोंका स्वामी। हमारे शरीरमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण हैं, इनके पीछे जो शक्तियाँ हैं, उन्हींको चौदह देवता कहते हैं। इन देवताओंके मूल प्रेरक हैं भगवान् श्रीगणेश। वस्तुतः भगवान् गणपति शब्दब्रह्म अर्थात् ओंकारके प्रतीक हैं, इनकी महत्ताका यह मुख्य कारण है। श्रीगणपत्यथर्वशीर्षमें कहा गया है कि ओंकारका ही व्यक्त स्वरूप गणपति देवता हैं। इसी कारण सभी प्रकारके मङ्गल-कार्यों और देवता-प्रतिष्ठापनाओंके आरम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा की जाती है। जिस प्रकार प्रत्येक मन्त्रके आरम्भमें ओंकारका उच्चारण आवश्यक है, उसी प्रकार प्रत्येक शुभ अवसरपर भगवान् गणपतिकी पूजा एवं स्मरण अनिवार्य है। यह परम्परा शास्त्रीय है। वैदिक धर्मान्तर्गत समस्त उपासना-सम्प्रदायोंने इस प्राचीन परम्पराको स्वीकार कर इसका अनुसरण किया है।

कुछ लोग शंका करते हैं—गणेश तो शिवजीके पुत्र हैं, भगवान् शंकरके विवाहमें वे पैदा भी नहीं हुए थे, फिर उनका पूजन वहाँ कैसे हुआ ?

वास्तवमें भगवान् गणेश किसीके पुत्र नहीं, वे अज, अनादि एवं अनन्त हैं। ये जो शिवजीके पुत्र गणेश हुए, वे तो उन गणपतिके अवतार हैं। जैसे विष्णु अनादि हैं, परंतु राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, हयग्रीव—ये सब उनके अवतार हैं। मनु, प्रजापति, रघु, अज—ये सभी रामकी उपासना करते थे। दशरथनन्दन श्रीराम उन अनादि रामके अवतार हैं। इसी प्रकार शिवतनय गणपति उन अनादि अनन्त भगवान् गणेशके अवतार हैं।

भगवान् गणपतिका स्वरूप अत्यन्त मनोहर एवं मङ्गलदायक है। वे एकदन्त और चतुर्बाहु हैं। वे अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते हैं। उनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्त वस्त्रधारी हैं। रक्तचन्दनके द्वारा उनके अङ्ग अनुलिप्त रहते हैं। वे रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा सुपूजित होते हैं। अपने स्वजनों, उपासकोंपर कृपा करनेके लिये वे साकार हो जाते हैं। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत्के कारण, अच्युत

तथा प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे पुरुषोत्तम सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हुए[१]।

वस्तुतः गणेश-पूजन एक साकार, परिमित, परिच्छिन्न शक्तिका प्रतीक न होकर निर्गुण परब्रह्म उपासनाका प्रतीक है। वे अपने उपासक भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, अभयानन्दसंदोह हैं। मानव-जीवनमें उनकी उपासना सर्वोपरि है।

भगवान् श्रीगणेश उमा-महेश्वरके पुत्र हैं। वे अग्रपूज्य हैं, गणोंके ईश हैं, स्वस्तिक-रूप हैं तथा प्रणवरूप हैं। उनके अनन्त नामोंमें—सुमुख, एकदन्त, कपिल (जिनके श्रीविग्रहसे नीले और पीले वर्णकी आभाका प्रसार होता रहता है), गजकर्णक, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशन, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र तथा गजानन—ये बारह नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन नामोंका पाठ अथवा श्रवण करनेसे विद्यारम्भ, विवाह, गृह-नगरोंमें प्रवेश, गृह-नगरसे निर्गम तथा किसी भी संकटके समय कोई विघ्न नहीं होता।

मोदक-प्रिय गणेश विद्या-बुद्धि और समस्त सिद्धियोंके दाता कहे जाते हैं। वे अपने भक्तको विद्या और अविद्या—इन दोनोंसे दूर करके निजस्वरूपका बोध करा देते हैं।

भगवान् श्रीगणेशको प्रसन्न करनेका साधन बड़ा ही सरल और सुगम है, उसे प्रत्येक अमीर-गरीब व्यक्ति कर सकता है। उसमें न विशेष खर्चकी, न दान-पुण्यकी, न विशेष योग्यताकी और न विशेष समयकी ही आवश्यकता है, आवश्यकता है केवल शुद्धभावकी।

पीली मिट्टीकी डली ले लो, उसपर लाल कलावा (मोली) लपेट दो, बस, भगवान् गणेश साकार-रूपमें उपस्थित हो गये। रोलीका छींटा लगा दो और चार बतासे चढ़ा दो, यह भोग लग गया और—

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

यह छोटा-सा श्लोक बोल दो मन्त्र हो गया। बस, इतने मात्रसे ही भगवान् गणेश आपपर प्रसन्न हो जायँगे। क्योंकि दयालुताकी मूर्ति हैं वे। कुछ भी न बने तो दूब ही चढ़ा दो और अपने सारे कर्म सिद्ध कर लो। व्यय कुछ भी नहीं और लाभ सबसे अधिक। यही तो उनकी विलक्षण महिमा है।

मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथाएँ

मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेश वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य नित्य देवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरोंपर जगत्‌के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्‌भुत और अलौकिक होते हैं। मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेशके नाम-स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्तिका परिष्कार होता है, समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है और समस्त विघ्नों एवं दुःखोंका आत्यन्तिक विनाश होकर परम कल्याण भी होता है। इनकी प्रसन्नतासे निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती रहती है।

भगवान् गणपतिके प्राकट्य, उनकी लीलाओं तथा उनके मनोरम विग्रहके विभिन्न रूपोंका वर्णन विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें उपलब्ध होता है। लीलाविहारी भगवान् सर्वसमर्थ हैं। कल्पभेदसे उनके अनेक अवतार हुए हैं एवं अनेकों लीलाएँ हुई हैं। उनके सभी चरित अनन्त हैं। वे सभी परिपूर्णतम, परम अनुपम, परमादर्श, परम मनोरम एवं परम ध्येय, परम गेय तथा परम वन्द्य हैं। यहाँ मङ्गलमूर्ति उन्हीं गजवदनकी कुछ लीलाओंका संक्षेपमें परिचय दिया जा रहा है, इनके श्रद्धापूर्वक पठन एवं मननसे अवश्य लाभ होगा।

१-एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्। रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
(गणपत्यथर्वशीर्ष० ९)

विभिन्न पुराणोंमें भगवान् श्रीगणेशकी प्राकट्य-कथा

पद्मपुराणमें

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके पश्चात् भगवान् शंकर रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयमें अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शंकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुख हाथीके समान था। क्रीडा करते हुए उन्होंने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गङ्गाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहेली मानती थीं। उनके पुण्यमय जलमें पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गयी। शंकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया। देव-समुदायने उसे 'गाङ्गेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया। पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें वर्णित श्रीगणेश-प्राकट्यकी मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमयी कथाका यह सार है।

लिङ्गपुराणमें

लिङ्गपुराणके पूर्वार्धमें सर्वपूज्य भगवान् श्रीगणेशके प्राकट्यकी कथा इस प्रकार है—एक बारकी बात है। देवताओंने परस्पर विचार किया कि 'प्रायः सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एवं चतुर्मुखकी आराधना कर उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं। दैत्योंके कारण हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस कारण हमलोग अपनी विजय एवं दैत्योंके कार्यमें विघ्न उपस्थित करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करें।'

सुर-समुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओंसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

देवताओंकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'करुणामूर्ति प्रभो! देवशत्रु दानवोंकी उपासनासे संतुष्ट होकर आप उन्हें वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। उन सुरद्रोही दनुजोंके कर्ममें विघ्न उपस्थित हुआ करे, हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु!' कहकर परम संतुष्ट वरद आशुतोषने सुर-समुदायको आश्वस्त किया। कुछ ही समयके पश्चात् सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कृपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मङ्गलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमें उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण एवं ब्रह्मवादियोंका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो, यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उसके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्में अनुचित ढंगसे अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं वृद्ध भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम

विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें तथा सर्वत्र ही पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीनों लोकोंमें जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे देवता हों अथवा और कोई, उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो लोग या मनुष्य तुझ विनायककी पूजा करेंगे, वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे। जो लोग फलकी कामनासे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी भी पूजा करेंगे, किंतु तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उन्हें तुम विघ्नोंद्वारा बाधा पहुँचाओगे[१]।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन गणोंके साथ उन्होंने भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। फिर वे त्रैलोक्यपति पशुपतिके सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपतिकी अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके धर्मकार्यमें विघ्न[२] पहुँचाना आरम्भ कर दिया। जिससे दैत्योंके कार्यकी सफलतामें बाधा पड़ने लगी।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें बताया गया है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर पार्वतीजीके समीप गये और उनकी स्तुति करके कहने लगे—'हे देवि! गणेशरूप जो श्रीकृष्ण हैं, वे कल्प-कल्पमें तुम्हारे पुत्र होते हैं। अब वे शिशु होकर शीघ्र ही तुम्हारी गोदमें आयेंगे।' ऐसा कहकर विप्ररूपधारी श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। तब एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार, सर्वाङ्गमनोहर शिशु माता पार्वतीजीकी शय्यापर प्रादुर्भूत हो गया। बालक इतना सुन्दर और सुगठित शरीरका था कि उसे देखनेके लिये समस्त ऋषि-मुनि, ब्रह्मा-विष्णु आदि देवतागण आने लगे। एक दिन उस सुन्दर शिशुको देखने शनिदेव भी आये। शनिदेवकी पत्नीने किसी बातसे रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़से पृथक् हो जायगा।' अतः वे आकर चुपचाप पार्वतीजीके समीप बैठ गये। पार्वतीने बार-बार कहा—'शनि! तुम मेरे पुत्रको देखते क्यों नहीं? देखो, कितना सुन्दर सुललित शिशु है।' शनिने बहुत कहा— 'माँ! मेरी स्त्रीने मुझे शाप दे दिया है, जिसके कारण मेरी दृष्टि अनिष्टकारक हो सकती है।' किंतु माँने उनकी बात मानी नहीं, देखनेको कहती ही रहीं। शनिकी भी इच्छा, उस शिशुको देखनेकी हुई। ज्यों ही उन्होंने गणेशकी ओर देखा, त्यों ही उनका सिर धड़से पृथक् हो गया। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब भगवान् विष्णु पुष्पभद्रा-नदीके अरण्यसे एक गजशिशुका मस्तक काटकर लाये और गणेशजीके मस्तकपर जमा दिया। तभीसे गणेशजी 'गजानन' हो गये।

स्कन्दपुराणमें

स्कन्दपुराणमें लिखा है—"माता पार्वतीने अपने उबटनकी बत्तियोंसे एक शिशु बनाकर उसे जीवित करके पुत्र मान लिया और कहा—'मैं स्नान कर रही हूँ, तुम किसीको भीतर मत आने देना।' इसी बीच शिवजी आ गये। इन्होंने शिवजीको रोका। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। शिवजीने इनका मस्तक काट लिया। इसे सुनकर पार्वतीजी 'पुत्र-पुत्र' कहकर बहुत रुदन करने लगीं। उसी बीच गजासुर शिवजीसे लड़ने आया। शिवजीने उसका मस्तक काटकर इनके धड़पर जमा दिया। इससे ये 'गजानन' हुए।"

१- लिङ्गपुराण १०५। १५—२७

२- समस्त जगत्की दैनन्दिन युग-कल्प आदि गणनासे व्यष्टि किंवा समष्टिकी सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक जगद्व्यापारको कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा वा कर्तुम् विघ्नोंकी भी कहीं-कहीं आवश्यकता है। अच्छी भी कोई बात रुक-रुककर चलती रहे या किसी एक विशिष्ट व्यवस्थासे चले, किंवा रूपान्तरसे चले, इसके लिये प्रतिबन्धकोंकी योजना रहती है। (श्रीगणेश-मीमांसा)

शिवपुराणमें

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा—श्वेतकल्पमें गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है। उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण' में इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और विजया— ये दो सखियाँ थीं।

एक दिन उन दोनों सखियोंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'सखी ! सभी गण रुद्रके ही हैं।' नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर रहते हैं। असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है। वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हमलोगोंके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये।' माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमें थीं। लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते ? निश्चय ही इन गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल एवं मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया—

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलस
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षण
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयव
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपरा
वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधा
नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनु
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यः कश्चिदिहा

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १३। २

वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका वह शरीर वि शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण अ उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—तुम मेरे पुत्र हो। हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा न

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम प पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्व 'माता ! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका बताया प्र अवश्य करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो।' महा पार्वतीने कहा—'तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। चाहे कहींसे भी आया हो, मेरी आज्ञाके बिना मेरे अन्तःपु न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

इसके अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपने दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया और स्व सखियोंके साथ स्नान करने चली गयीं।

कुछ समय बाद भगवान् शिव वहाँ आये औ प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि दण्डधारी गणराजने 'देव ! माताजी स्नान कर रही हैं, उनकी आज्ञाके बि भी भीतर नहीं जा सकता। मैं यहाँपर माताका द्वाररक्ष

भगवान् शिव, शिवाके प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अ थे। उसके द्वारा अपने ही घरमें प्रवेशसे रोके जानेपर हो उठे और बोले—'अरे हठी बालक ! जानते प्रत्यक्ष शिव ही हूँ और तुम मेरा मार्ग अवरुद्ध कर र

'आप चाहे जो कोई हों, किंतु मेरी माताकी आज्ञाके बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' भगवान् शिव उसकी अवहेलना कर ज्यों ही घरमें प्रवेश करने लगे, त्यों ही गणराजने अपनी यष्टि (छड़ी) आगे बढ़ा दी और रास्ता रोककर पुनः माताकी प्रतिज्ञा दोहरायी।

फिर क्या था, महाकाल अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने अपने गणोंको युद्धकी आज्ञा दी। भयंकर युद्ध हुआ, किंतु शिवा-पुत्रके सामने उनका तेज एवं बल क्षीण हो गया और वे भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे। शिव यह वृत्तान्त देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और रौद्ररूप धारणकर अनेक देवताओं तथा गणोंके साथ कालरूपमें युद्धके लिये उपस्थित हुए। भीषण संग्राममें गणराजका वह अद्भुत पराक्रम देखकर अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने त्रिशूल, पिनाक आदिसे उनपर प्रहार किया और अन्तमें भगवान् शिवने अपना तीक्ष्णतम शूल उनपर फेंका, जिससे गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

पुत्रके शिरश्छेदनसे शिवा अत्यन्त कुपित हो गयीं। उन्होंने सहस्रों रौद्र शक्तियोंको उत्पन्न किया और विश्व-संहारका संकल्प ले लिया। उन शक्तियोंके जाज्वल्यमान तेजने सभी दिशाओं एवं सभी भुवनोंको दग्ध करना प्रारम्भ कर दिया। सर्वत्र हाहाकार मच गया। देवता, ऋषि-मुनि सभी अत्यन्त भयभीत हो गये।

देवता, ऋषि-महर्षियोंने माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उनकी भावपूर्ण स्तुति-प्रार्थना की और विश्व-रक्षाके लये पुनः प्रार्थना की।

जननीका हृदय द्रवित हो गया। वे कहने लगीं—'यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आप सभीके लिये पूजनीय मान लिया जाय तथा उसे सर्वाध्यक्ष पद प्राप्त हो जाय तो यह संहार रुक सकता है।'

ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये। ऋषि-महर्षि, देवगण, भगवान् शंकरके पास गये। उन्होंने कहा—'उत्तर दिशाकी ओर चलनेपर जो जीव प्रथम मिले, उसीका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

देवता उत्तरकी ओर चल पड़े। मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसके एक ही दाँत था। देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया और अभिमन्त्रित जलसे सिञ्चन किया। सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे वह बालक चैतन्यशक्ति-युक्त हो उठा। उस समय उसकी शोभा बहुत सुन्दर थी—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चातिसुप्रभो ललिताकृतिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु०, खं० १७।५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रंग लाल था, मुखमण्डलपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एवं शिवगण आनन्दविभोर हो गये। सबका दुःख दूर हो गया। पार्वतीको यह सुखद संवाद ज्ञात हुआ। माता दौड़ती हुई आयीं और गजवदनको जीवित देख उनके आनन्दकी सीमा न रही। उस समय सभीके द्वारा वहाँ अद्भुत आनन्दोत्सव मनाया गया। समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया। दयामयी माँ तथा अन्य शक्तियोंने उसे अनेक वरदान तथा वस्त्राभूषण प्रदान किये। सभी देवता गजमुखको लेकर आशुतोष शिवके पास पहुँचे और परमपिताकी गोदमें उन्हें बिठा दिया। वे परम आनन्दित हो उठे और उनके मस्तकपर वरद हस्त रखते हुए कहने लगे—**'पुत्रोऽयमिति मे परः**—यह मेरा दूसरा पुत्र है।' त्रिदेवोंने उन्हें अग्रपूज्यताका वर प्रदान किया और उन्हें सर्वाध्यक्ष-पदपर अभिषिक्त किया। वृषवाहन शंकरने विघ्ननाशक होनेका वर दिया।

इस प्रकार उनके आविर्भाव-लीलासे सर्वत्र आनन्द छा गया। सभी देवता ऋषि-महर्षि अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इधर भगवान् गजवदन भी अपनी मनोरम बाल-लीलाएँ दिखाकर सबको आनन्दित करने लगे।

भगवान् गणेशकी बाल-लीला—उमा-महेश्वरके अलौकिक पुत्रद्वय स्कन्द और गणेश अद्भुत बाल-लीला करते थे। उन्हें देखकर माता-पिता अत्यन्त सुखी होते और उनका पालन अतिशय स्नेहसे करते थे। गणेशकी परम मनोहारिणी बाल-लीलाओंका ग्रन्थोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थानपर उल्लेख है—

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः॥

'बालक श्रीगणेश अपने पिता शंकरजीके मस्तकपर सुशोभित बाल चन्द्रकलाको कमलनाल समझकर उसे खींच लानेके लिये उनकी गोदमें चढ़कर ऊपर लपके, परंतु तृतीय नेत्रसे निकली लपटोंकी आँच लगी, तब जटाजूटमें बहनेवाली गङ्गाका जल पीनेको बढ़े तो सर्प फुफकार उठा। इस फुफकारसे घबराये हुए गणेशको माता पार्वती बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गयीं। ऐसे बाल गणेश भगवान् हमारे सभी पाप-तापोंका निवारण करें।'

स्कन्द और गणेशमें बड़ी प्रीति थी। वे सदा मिल-जुलकर साथ-साथ बाल-क्रीडा किया करते थे और एक-दूसरेके बिना रह नहीं सकते थे। वे दोनों शिशु अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सेवा भी करते थे। इस कारण उन बालकोंपर माता-पिताका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

भगवान् श्रीगणेशकी विवाह-लीला—धीरे-धीरे दोनों बालक विवाह-योग्य हुए। माता-पिता आपसमें विवाह-सम्बन्धी परामर्श करने लगे। शिव और शिवाको वे समान-रूपसे प्राणप्रिय थे। वे सोच रहे थे, इन बालकोंका मङ्गल-परिणय किस प्रकार करें?

'पहले मेरा विवाह होगा।' सहसा मूषकवाहनने निवेदन किया।

'नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।' स्कन्द बोल पड़े।

बालकोंकी यह बात सुनकर दोनों चकित हो गये। फिर एक दिन शिव और शिवाने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—'बालको! तुम दोनों हमें अत्यधिक प्रिय हो। हमने तुम्हारे लिये एक शर्त रखी है, तदनुसार तुममेंसे जो कोई सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौट आयेगा, वही विवाहका प्रथम अधिकारी होगा।'

फिर क्या था कार्तिकेय अपने मयूरपर आरूढ़ हो मन्दरगिरिसे पृथ्वीकी परिक्रमाके लिये तुरंत चल पड़े। मूषकवाहन गणेश क्षणभर तो ठिठके, किंतु विद्या-बुद्धिके आकर गणपतिने तुरंत ही एक युक्ति खोज डाली। उन्होंने पवित्र होकर माता-पिताके लिये आसन बिछा डाले और उनके पास जाकर आसनासीन होनेकी आग्रहपूर्वक प्रार्थना करने लगे। उनके आसीन होनेपर भगवान् श्रीगणेशने अपने माता-पिताकी भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मङ्गलमय चरणकमलोंमें बार-बार दण्डवत् प्रणाम किया। फिर वे भक्तिविभोर हो माता-पिताको प्रणाम करते हुए उनकी परिक्रमा करने लगे। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया और अपना मङ्गलपरिणय प्रथम कर देनेके लिये कहने लगे। माता-पिता उसके बुद्धि-चातुर्य एवं शास्त्रज्ञानसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। शास्त्र-वचन है कि—

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लिये जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है, क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताके चरणकमल ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये माता-पिता और स्त्रीके लिये पति रूप सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं[१]।

भगवान् शिव और शिवाने पुत्रके वचनोंका अनुमोदन कर उन्हें विवाहके लिये सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

यह संवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनकी 'सिद्धि'-'बुद्धि' नामक अद्भुत लावण्य एवं दिव्य गुणोंसे सम्पन्न दो कन्याएँ थीं। उन्हींके साथ देवसमुदायके मध्य गजवदनका विवाह सम्पन्न

४-पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः। तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्। तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्। अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्। पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ३९—४२)

हुआ। उस समय सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। यथासमय भगवान् गणपतिको सिद्धिसे 'क्षेम' तथा बुद्धिसे 'लाभ' नामक दो सुन्दर पुत्र प्राप्त हुए।

इधर मयूरवाहन कार्तिकेय जब सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा कर वापस लौटे तो देवर्षि नारदद्वारा उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ। इसपर वे अपने माता-पिताको प्रणामकर खिन्न-मन होकर वहाँसे क्रौञ्च पर्वतपर चले गये। शिवा-शिवने उन्हें बहुत रोका, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

पुत्र-स्नेहसे तथा वियोगसे दुःखी शिवा-शिव भी वहाँ जाकर मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग तथा शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये और प्रत्येक पर्वपर वहाँ पुत्रके दर्शनके लिये जाया करते हैं।

महाभारतमें

भगवान् श्रीगणेशका महाभारत-लेखन— सत्यवतीनन्दन महर्षि वेदव्यास पञ्चमवेद महाभारतकी मानसी-सृष्टिकर विचार करने लगे कि इस ग्रन्थरत्नका कैसे प्रचार हो? उसी समय पितामह उनकी बात जानकर आश्रमपर पधारे। व्यासजीने उनका आसन, अर्घ्य, पाद्यादिसे यथोचित स्वागत-सत्कारकर निवेदन किया—'भगवन्! मैंने सम्पूर्ण लोकोंसे पूजित, सभी शास्त्रोंका सारभूत, वेदों तथा वेदाङ्गोंका गुह्यतम रहस्यरूप और लोकोपकारी सम्पूर्ण सामग्रियोंसे सुसज्जित एक विशाल महाकाव्यकी रचना की है, परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके ऐसा कोई नहीं है।'

उनके कल्याणकारी काव्यकी प्रशंसा करते हुए पितामह ब्रह्माजीने बुद्धिनिधान भगवान् गणपतिके स्मरणका निर्देश दिया और वे स्वधाम लौट गये। उनके स्मरण करते ही भक्तवाञ्छा-कल्पतरु मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेश उपस्थित हुए। महर्षिने उनसे प्रणामपूर्वक महाभारतके लेखनकी प्रार्थना की।

इसपर श्रीगणेशजीने कहा—'महर्षे! आपका प्रस्ताव हमें अत्यन्त आनन्दित कर रहा है, किंतु यदि लिखते समय मेरी लेखनी क्षणभरके लिये न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ'—

श्रुत्वैतत् प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा० आदि० १।७८)

इसपर व्यासजी बोले—'भगवन्! आप ठीक कहते हैं, वैसा ही होगा, किंतु आप किसी भी प्रसङ्गको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।'

'ॐ' कहकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने महाभारतका लेखन प्रारम्भ किया और उनके अनुग्रहसे महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थरत्न जगत्को प्राप्त हुआ। गुणगणनिधान उन भगवान् श्रीगणेशको नमस्कार है।

भगवान् गणेशके विभिन्न अवतार

भगवान् श्रीगणेश परमतत्त्व हैं। भक्तों, उपासकों एवं साधकोंपर अनुग्रह करनेके लिये सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी वे एक देशमें प्रकट होते हैं, दुष्टोंका दमन करते हैं और समस्त प्राणियोंको सुखी करते हैं। उनके नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ अनन्त हैं। प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं। यहाँ उनके कतिपय अवतारोंका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है[१]—

१-महोत्कट विनायक

कृतयुगमें भगवान् गणपति 'महोत्कट विनायक' नामसे प्रख्यात हुए। उन महातेजस्वी प्रभुके दस भुजाएँ थीं, उनका वाहन सिंह था, वे तेजोमय थे। उन्होंने देवान्तक तथा नरान्तक आदि प्रमुख दैत्योंके संत्राससे संत्रस्त देव, ऋषि-मुनि, मनुष्यों तथा समस्त प्राणियोंको भयमुक्त किया।

गणेशपुराणमें कथा आती है कि देवान्तक तथा नरान्तक दो भाई थे। अपनी अखण्ड तपस्याके प्रतापसे उन्होंने भगवान् शंकरसे त्रैलोक्य-विजयका वर प्राप्त कर लिया था। फिर क्या था, अभिमानके वशीभूत देवान्तक तथा नरान्तक अपनी

१-गणेश तथा मुद्गलपुराणके आधारपर यह विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आसुरी सेनाके साथ तीनों लोकोंमें उपद्रव मचाने लगे। देवता भी उनका सामना न कर सके। कुछ ही समयमें पृथ्वी, स्वर्ग तथा पातालमें उनका आसुरी साम्राज्य फैल गया। सभी प्राणी अत्यन्त दुःखी हो गये। देवता, तपस्वी, ऋषि-मुनि सदाचारी ब्राह्मण यत्र-तत्र अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन-निर्वाह करने लगे।

देवमाता अदिति अपने पुत्रोंकी यह दशा देख अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। वे अपने प्राणप्रिय आराध्य कश्यपजीके पास गयीं और अपना कष्ट उन्हें बतलाया। उन्होंने कहा—'देवि ! चिन्तित न होओ। शीघ्र ही तुम्हारे गर्भसे साक्षात् परमात्मा विनायकरूपमें आविर्भूत होंगे, तुम उनकी उपासना करो।'

अदिति मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेशके कठोर तपमें संलग्न हो गयीं। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर परम दीप्तिमान् देवाधिदेव गजानन प्रकट हुए। उनके दस भुजाएँ थीं, वे हाथोंमें परशु, कमण्डलु आदि धारण किये हुए थे। उनके कानोंमें अनुपम कुण्डल झिलमिला रहे थे, ललाटमें कस्तूरीका तिलक लगा हुआ था, मङ्गलकण्ठमें मोतियोंकी माला सुशोभित थी। उन्होंने कटिमें स्वर्णिम कटिसूत्र एवं नाभिपर सर्प धारण कर रखा था। उनकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि-बुद्धि उनके साथ थीं। उन मङ्गल-मूर्ति प्रभुके मङ्गलमय विग्रहपर दिव्याम्बर शोभा दे रहे थे।

माता अदितिने उन्हें बार-बार प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और पुत्ररूपमें प्रकट होकर कल्याण करनेकी उनसे प्रार्थना की। 'तथास्तु' कहकर भगवान् गणेश अपने दिव्य लोकको चले गये। इस अनुग्रहसे देवमाता अदिति और कश्यप अत्यन्त प्रसन्न थे।

उधर पृथ्वीदेवी, सभी देवगण, ऋषि-मुनि असुरोंसे त्रस्त होकर ब्रह्माको साथ ले भगवान् विनायककी प्रार्थना करने लगे। उनकी प्रार्थनापर आकाशवाणी हुई कि 'धैर्य धारण करो, भगवान् गणपति अदितिके गर्भसे महोत्कटरूपमें अवतरित होंगे और दुष्टोंका वधकर सबका कल्याण करेंगे।' इस वचनसे सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

कुछ समयके पश्चात् अदितिके गर्भसे मङ्गलमय वेलामें भगवान् विनायकका दिव्य अवतरण हुआ। वह बालक कान्तिसे सम्पुष्ट अङ्गोंवाला सर्वाङ्गसुन्दर तो था ही, साथ ही अत्यन्त ओजस्वी और विलक्षण दीप्तिमान् भी था महान् उत्कट ओजःशक्तिके कारण वे 'महोत्कट' विख्यात हुए।

तीनों लोकोंमें महोत्कटके आविर्भावका शुभ संव गया। असुरोंको छोड़ सभी अत्यन्त आनन्दित हो देवान्तक आदि असुरोंने उन्हें छोटेपनमें ही मार डालने कभी विरजा राक्षसीके रूपमें, कभी शुक (तोते) के राक्षसोंको भेजा, किंतु वे प्रभुके हाथों मारे गये, उन्हें र मिली। फिर महोत्कटने धूम्राक्ष, जृम्भा, अन्धक, नरान्तक देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरों तथा उनकी सेनाको अनेक लीलाओंसे मारकर त्रैलोक्यको सुखी विश्वकी रक्षा की। इन असुरोंका भगवान्‌के हाथों मृत्यु उद्धार हो गया। देवान्तक-युद्धमें प्रभु द्विदन्तीसे एकद गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक' के नामसे क प्रतिष्ठित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

२-मयूरेश्वर

त्रेतामें भगवान् गणेशने 'मयूरेश्वर' नामसे अ ग्रहणकर अनेक लीलाएँ कीं और महाबली सि अत्याचारोंसे सबको मुक्त किया।

कठोर तपस्या एवं सूर्यकी आराधनासे वर पाकर सि अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया। उसकी सेनामें असुरोंका प्राबल्य गया था, जिससे न्याय और सत्य-धर्मके मार्गपर चलनेवाले वह पीड़ित करने लगा। अकारण नर-नारियों, अनाथ, अब छोटे शिशुओंकी हत्या करनेपर वह गर्वका अनुभव करत पृथ्वीपर रक्तकी सरिता बहने लगी। वह पातालमें गया अ वहाँ उसने अपना आधिपत्य जमा लिया। ससैन्य स्वर्गलोक चढ़ाई कर वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओंको पराभूतकर उस स्वर्गमें भी अपना दानवी शासन फैला दिया। सर्वत्र हाहाक मच गया।

इस भयंकर कष्टसे मुक्ति पानेके लिये देवताओंने अ गुरु बृहस्पतिकी शरण ली। उन्होंने पूजासे शीघ्र प्रस होनेवाले, परमाराध्य विनायकके संकष्ट-चतुर्थीव्रतका अनुष्ठ बतलाया तथा उनका स्मरण करनेके लिये निर्देश दिय देवताओंने वैसा ही किया।

परमप्रभु विनायक प्रकट हुए। सभी देवगणोंने उनकी
ा की। परमप्रभु गणेश शिव-प्रिया माता पार्वतीके यहाँ
रित होकर पृथ्वीका भार उतारनेका वचन देकर अन्तर्धान
ये। माता पार्वती भी परमप्रभु गणेशका दर्शन प्राप्त
के लिये भगवान् शंकरसे उपदिष्ट एकाक्षरी गणेशमन्त्र
का जप करने लगीं।

कुछ ही समय बाद भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथि
। सभी ग्रह-नक्षत्रोंके शुभस्थ एवं अच्छे मङ्गलमय
ं विराट्रूपमें पार्वतीके सम्मुख भगवान् श्रीगणेशका
ारण हुआ। माता पार्वती बोलीं—'प्रभो! मुझे अपने
पका दर्शन कराइये।' सर्वसमर्थके लिये सब कुछ सम्भव
तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्भुज शिशु क्रीडा करने
। उनके शरीरकी शोभा-कान्ति अद्भुत लावण्य एवं
से सम्पन्न थी। उनका वक्षःस्थल विशाल था। उनके
कमलोंमें छत्र, अङ्कुश और ऊर्ध्व-रेखायुक्त कमल आदि
चिह्न थे। उनका नाम मयूरेश पड़ा। मयूरेशके
र्भावसे ही प्रकृतिमें सर्वत्र एक दिव्य आनन्दकी अनुभूति
लगी। आकाशसे देवता सुमन-वृष्टि करने लगे।
योंके आश्रममें आनन्दकी लहर दौड़ गयी।

उनकी दिव्य लीलाएँ आविर्भावके समयसे ही प्रारम्भ हो
। इधर सिन्धु यह वृत्तान्त जानकर अत्यन्त भयभीत हो
। उसने बालकके वधके लिये अनेक असुरोंको
नवेशमें भेजना प्रारम्भ कर दिया, किंतु सब मारे गये। फिर
ने दुष्ट वृकासुर तथा कुत्तेके रूपधारी नूतन नामक दैत्यका
किया। अपने शरीरसे असंख्य गणोंको उत्पन्नकर
लासुरकी बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा
ूलसे कमलासुरके मस्तकको काट डाला। उसका मस्तक
ा नदीके तटपर जा गिरा। देवताओं तथा ऋषियोंकी
ंनापर गणेश वहाँ मयूरेश (मोरेश्वर) नामसे प्रतिष्ठित
।

दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी देवताओंको अपने कारागारमें
। बना लिया, तब भगवान्ने दैत्यको ललकारा। भयंकर
र हुआ। असुर-सैन्य पुनः पराजित हुआ। सिन्धुके पुत्र धर्म
र अधर्म भी मार डाले गये।

कुपित मायावी दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे
मयूरेशपर प्रहार करने लगा। परंतु सर्वशक्तिमान्के लिये
अस्त्र-शस्त्रोंका क्या महत्त्व। सभी निष्फल हो गये। अन्तमें
महादैत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर
पड़ा। उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। देवगण मयूरेशकी स्तुति
करने लगे। भगवान् मयूरेशने सबको आनन्दित कर, सुख-
शान्ति प्रदान किया, अन्तमें अपनी लीलाका संवरणकर वे
परमधामको पधार गये।

३-श्रीगजानन

द्वापरयुगकी बात है। चतुर्मुख ब्रह्मा आनन्दमग्न हो शयन
कर रहे थे। जब उनकी निद्रा पूर्ण हुई, तब जँभाई
लेते समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म
लेते ही उसने भयंकर गर्जना की। त्रैलोक्य काँपने लगा।
विधाता पुत्रके सौन्दर्यसे मोहित हो गये, उन्होंने अरुणवर्ण
होनेसे उसका नाम 'सिन्दूर' रखा और त्रैलोक्य-विजयका वर
प्रदान किया।

वर प्राप्तकर सिन्दूर अज्ञानवश उन्मत्त हो उठा। उसकी
भयंकर गर्जना सुनकर समुद्र क्षुब्ध हो गया। पृथ्वी डगमगाने
लगी। वरके प्रभावसे उसके बाहुओंमें असीम शक्ति प्राप्त थी।
कुटिल सिन्दूरने पितामहसे उनके पुत्र-स्नेहका विचार न कर
कहा—'मैं अपने वरकी परीक्षा आपपर ही करना चाहता हूँ।
देखूँ तो वरके प्रभावसे मेरी बाहुओंमें कितना बल आया है।
मैं आपको बाहुपाशमें लेना चाहता हूँ।' पितामह दुःखी हुए।
उन्होंने शाप दे दिया—'जाओ, अपनी नीचतासे तुम
असुर-योनिको प्राप्त हो जाओ।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी आगे
बढ़ने लगे, किंतु वह दुष्ट सिन्दूर उनका पीछा कर लिया।
ब्रह्माजी विष्णुके पास पहुँचे और सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें बताया।
उसी समय पीछेसे दौड़ता हुआ सिन्दूर भी वहाँ आ पहुँचा।
उसने भगवान् विष्णुकी भी अवहेलना की। सिन्दूरकी भुजाएँ
युद्धके लिये फड़क रही थीं। विष्णुने युद्धके लिये भगवान्
शंकरके पास जानेको कहा। सिन्दूर दौड़ता-दौड़ता समाधिमग्न
भगवान् शंकरके पास पहुँचा। माता पार्वती परमप्रभुके पास ही
स्थित थीं। उसने माता पार्वतीकी ओर कुदृष्टि डाली थी कि
शंकरजीकी समाधि खुल गयी। उन्होंने देखा एक असुर
पार्वतीके ऊपर कुदृष्टि डाले हुए है। उनके नेत्रोंसे ज्वालाग्नि
बरसने लगी। वे मदान्ध सिन्दूरको मारनेके लिये उद्यत हो

गये। उसी समय माता पार्वतीने गणेशजीका स्मरण किया। तत्क्षण ब्राह्मणवेशमें मयूरेश उपस्थित हो गये और उन्हें असुरसे मुक्ति दिलायी। फिर शंकरजीका दुष्ट असुर सिन्दूरसे युद्ध हुआ। असुर पराजित हुआ और पृथ्वीलोकको पलायित हो गया।

माताने ब्राह्मणवेशधारी उस पुरुषसे पूछा—'भगवन्! आप कौन हैं? जिन्होंने समयपर आकर दुष्ट दैत्यसे मुझे मुक्ति दिलायी।' गणेशजी अपने मनोरम रूपमें प्रकट हो गये और कहा—'माँ! मैं आपका पुत्र हूँ। मैं इस द्वापरमें 'गजानन' नामसे अवतरित होकर इस दुष्ट दैत्य सिन्दूरका विनाश करूँगा।' ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये।

इधर सिन्दूरने पृथ्वीलोकमें पहुँचते ही अत्याचारों, पापाचारोंकी बाढ़ लगा दी। धर्म-सत्कर्मका लोप हो गया। सभी प्राणी अनाथ होकर प्रभुका स्मरण करने लगे और दुष्ट दैत्यसे मुक्तिकी प्रार्थना करने लगे। देवताओंने अपने गुरु बृहस्पतिके उपदेशसे विनायककी स्तुति की। परमदेव गणपति प्रकट हुए और उन्हें आश्वस्त कर अन्तर्धान हो गये।

कुछ समयके पश्चात् माता पार्वतीके सम्मुख एक दिव्य तेजोमय बालक आविर्भूत हुआ। उसका नाम गजानन हुआ। सभी देवताओं तथा ऋषि-महर्षियोंने पार्वतीनन्दनका नमन किया। उस समय गणेश चतुर्भुजी थे। नासिकाके स्थानपर सूँड़ सुशोभित था। मस्तकपर चन्द्रमा तथा हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। वे दिव्य गन्ध तथा दिव्य वस्त्राभरणोंसे अलङ्कृत थे। उनका उदर विशाल एवं उन्नत था, हाथ-पाँव छोटे-छोटे और कर्ण शूर्पाकार थे। आँखें छोटी-छोटी थीं, ऐसा विलक्षण मनोरम रूप था गजाननजीका।

देवता अपने भक्तोंका कष्ट देख नहीं सकते। कैसे वह दूर हो, इसी प्रयत्नमें वे लगे रहते हैं। उनका एक भक्त था वरेण्य। उसकी स्त्री पुष्पिकाके नवजात शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी थी, किंतु पुष्पिका प्रसव-कष्टसे मूर्च्छित थी और यह बात जान नहीं पायी थी। इधर आविर्भूत शिशु गणेशने माता-पितासे कहा कि 'मेरे भक्तका अनर्थ होनेवाला है, मैं उसकी स्त्रीके आसन्न संकटसे व्यग्र हूँ, अतः शीघ्र मुझे पुष्पिकाके पास उसकी चेतना लौटनेसे पूर्व पहुँचा दीजिये। यदि विलम्ब होगा और वह स्त्री कहीं जान जायगी कि मेरे पुत्रको राक्षसी हर ले गयी है तो वह जीवित नहीं बचेगी, उसकी प्राण-रक्षा करनी है।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकर और [illegible] पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने नन्दीको कहकर गजान[illegible] नवजात शिशुके रूपमें चुपचाप पुष्पिकाके पास रखवा दि[illegible] शिशुको रखकर नन्दी लौट आये। रात्रि व्यतीत [illegible] पुष्पिकाकी वेदना समाप्त हुई, उसने अपने शिशुकी [illegible] देखा उसके चार भुजाएँ थीं, वह गजवक्त्र था, उसका [illegible] तिलकसे सुशोभित तथा दिव्य वस्त्राभरणों एवं अलङ्करण[illegible] अलङ्कृत था।

ऐसे अद्भुत बालकको देखकर दोनों स्त्री-पुरुष अत्[illegible] भयभीत हो गये। राजा वरेण्यने अपने पुत्रको वनमें छोड़ दिया। वहाँ महर्षि पराशरने बालकको देखा। पहले [illegible] विस्मित हुए, किंतु शुभ लक्षणों तथा दिव्य तेजको देखते [illegible] उन्हें यह समझते देर न लगी कि ये तो साक्षात् परमात्मा [illegible] अवतरित हुए हैं। उन्होंने अपनेको धन्य माना। करबद्ध हो[illegible] स्तुति करने लगे। फिर आदरपूर्वक उन्होंने उसे अपनी गोद[illegible] ले लिया और आश्रममें ले आये। उनकी सहधर्मिणी तपस्वि[illegible] वत्सलाने उन्हें देखा तो उसका वात्सल्य उमड़ पड़ा। शिशु[illegible] आश्रममें आ जानेसे वहाँ सर्वत्र अलौकिक प्रभाव दिखलाय[illegible] पड़ने लगा। दोनों तापस उनका पालन-पोषण करने लगे।

जो सम्पूर्ण विश्वका भरण करनेवाले हैं,वे ही प्रभु अपन[illegible] लीलासे आश्रममें पोषित हो रहे हैं। धन्य है प्रभुकी लीला [illegible] इसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि-योगी, ज्ञानी एवं तपस्वी भी नही[illegible] समझ पाये। राजा वरेण्यतक यह शुभ संवाद पहुँचा, वहाँ भी सभी लोग आनन्दित हो गये।

युद्धाकाङ्क्षी, मदोन्मत्त, सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, आततायी दैत्य सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच चुका था। उसके भयसे देवपूजन, यज्ञ-यागादि सभी पवित्र एवं शुभ कर्म बंद हो गये थे। सिन्दूरने सभीको त्रस्त कर रखा था। देवता उसके बन्धनमें संत्रास पा रहे थे।

गजाननका अवतार तो दुष्टोंके विनाशके लिये हुआ था। उन्होंने शीघ्र ही युद्धमें उसे परास्त कर दिया, उसकी सम्पूर्ण दानवी सेनाका संहार कर दिया। उस समय क्रुद्ध गजाननने उस सिन्दूरका रक्त अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। तभीसे

सिन्दूरहा, सिन्दूरप्रिय तथा सिन्दूरवदन कहलाये। ाननको सिन्दूरलिप्त-वदन देखकर मुदित देवगण आकाशसे प्रवृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। देवगणोंने नकी प्रार्थना की। राजा वरेण्य तथा रानीने आकर अपनी ज्ञानताके लिये बार-बार उनसे क्षमा माँगी। तब प्रसन्न होकर भुने कहा—'तुम दोनोंने पूर्वजन्ममें तपस्यासे पुत्ररूपमें प्राप्त रनेकी जो इच्छा मुझसे व्यक्त की थी और तब तुमने मोक्षको ो छोड़ दिया था, अतः इस जन्ममें सिन्दूरका वध तथा सुख-ान्तिकी स्थापना करनेके लिये मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपमें वतरित हुआ था। अब मेरा प्रयोजन पूर्ण हो चुका है।' ऐसा हकर सबको आनन्दित करते हुए भगवान् गजानन अन्तर्धान हो गये। भक्तप्रवर वरेण्यको सद्गति प्राप्त हुई। अपने भक्त वरेण्यको गजाननने जो ज्ञानोपदेश दिया था, वह 'गणेश-गीता'के नामसे लोकमें विख्यात हुआ।

४-श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशजीका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु' के नामसे विख्यात होगा। कलिके अन्तमें घोर पापाचार बढ़ जानेपर, वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादा नष्ट हो जानेपर, देवताओंकी प्रार्थनापर सद्धर्मके पुनःस्थापनके लिये वे इस पृथ्वीपर अवतरित होंगे और कलिका विनाशकर सत्ययुगकी अवतारणा करेंगे। ऐसे दयालु, शरणागतरक्षक, दीनबन्धु, भक्त-हितकारी भगवान् गणेशजीको कोटिशः नमस्कार है।

पूर्वमें गणेशपुराणमें वर्णित भगवान्‌के चार लीलावतारोंका स्वल्प परिचय दिया गया है। आगे मुद्गलपुराणपर आधारित णेशजीके अनन्त अवतारोंमेंसे मुख्य आठ अवतारोंका यहाँ स्थानाभावके कारण नामोल्लेखमात्र किया जा रहा है, उनकी वेस्तृत लीला-कथाएँ वहीं देखकर लाभ उठाना चाहिये।

१-वक्रतुण्ड—इनका वाहन सिंह है तथा ये मत्सरासुरके हन्ता हैं।

२-एकदन्त—ये मूषकवाहन एवं मदासुरके नाशक हैं।

३-महोदर—इनका वाहन मूषक है, ये ज्ञानदाता तथा मोहासुरके नाशक हैं।

४-गजानन—इनका वाहन मूषक है, ये सांख्योंको सिद्धि देनेवाले एवं लोभासुरके हन्ता हैं।

५-लम्बोदर—इनका वाहन मूषक है तथा ये क्रोधासुरका विनाश करनेवाले हैं।

६-विकट—इनका वाहन मयूर है तथा ये कामासुरके हन्ता हैं।

७-विघ्नराज—इनका वाहन शेष है और ये ममासुरके प्रहर्ता हैं।

८-धूम्रवर्ण—इनका वाहन मूषक है तथा ये अहंतासुरके नाशक हैं।

श्रीगणेशजीके इन लीलावतारों तथा इनके द्वारा मारे गये असुरोंके नामोंको देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्यक्तिके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ममता तथा अहंतारूप अन्तःशत्रुओंका विनाश करनेके लिये तथा उसपर अनुग्रह करने तथा उसे परमपद प्राप्त करानेके लिये ही परमप्रभुका लीलावतार होता है। इन लीला-कथाओंके पठन, श्रवण और मनन-चिन्तनसे परम कल्याण होता है। काम-क्रोधादि आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके संवर्धनके लिये मङ्गलमूर्ति भगवान् गणेशका स्मरण श्रेयस्कर मार्ग है। इनका स्मरण-अर्चन सतत करना चाहिये।

भगवान् गणपतिका ध्यान-स्वरूप

परिधान, आभूषण, आयुध, परिवार, पार्षद और वाहन आदि

भगवान् श्रीगणेश आद्य पूज्य देव हैं। उनका स्वरूप नितान्त अव्यक्त, अचिन्त्य और अपार है। उनका रूप परम आराध्य, असामान्य और ध्येय है। वे देवपूज्य, निरुपम और मङ्गलात्मा हैं। उनकी सूँड़ सिद्धिप्रदा है। उनका मुख छोटे हाथीके शिशुके मुखके समान बड़ा ही लावण्यमय है। वे सर्वदा प्रणम्य हैं।

श्रीगणेश एकदन्त हैं, चतुर्भुज हैं। उनके चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरदमुद्रा है। वे मूषक-चिह्नकी

भुजावाले हैं। उनका वर्ण रक्त है। वे लम्बोदर, रक्तवस्त्रधारी और सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले हैं। उनके शरीरपर लालचन्दनका लेप है। वे लाल-लाल पुष्पोंद्वारा पूजित हैं, भक्तोंपर कृपा करते हैं, जगत्के कारण और अच्युत हैं। वे सृष्टिके पहलेसे आविर्भूत हैं तथा प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। उनका ध्यान करनेवाला योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ होता है (गणपत्यथर्वशीर्ष, उप० ९)।

प्रमुख पुराणोंके रचयिता महर्षि व्यासजीने चार श्लोकोंमें भगवान् गणेशके रूप-सौन्दर्यका अमित मनोमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह उनके पौराणिक रूपका भव्य वर्णन है। महर्षि व्यासकी उक्ति है कि 'मैं विशालकाय, तपाये हुए स्वर्ण-सदृश प्रकाशवाले, लम्बोदर, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, एकदन्त श्रीगणनायककी वन्दना करता हूँ। जिन्होंने मौञ्जीमेखला, कृष्ण-मृगचर्म तथा नाग-यज्ञोपवीत धारण कर रखे हैं, जिनके मौलिदेशमें बालचन्द्र सुशोभित हो रहा है, मैं उन गणनायककी वन्दना करता हूँ। जिन्होंने अपने शरीरको विविध रत्नोंसे अलंकृत किया है, अद्भुत माला धारण की है, जो स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त होते हैं, उन गणनायककी मैं वन्दना करता हूँ। जिनका मुख हाथीके मुखके समान है, जो सर्वदेवोंमें श्रेष्ठ हैं, सुन्दर कानोंसे विभूषित हैं, उन पाश और अङ्कुश धारण करनेवाले श्रीगणपतिदेवकी मैं वन्दना करता हूँ'—

एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।
लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम्॥
मुञ्जकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतिनम्।
बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्॥
चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम्।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥
गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २-३, ६-७)

श्रीतत्त्वनिधि, मन्त्रमहोदधि, मन्त्ररत्नाकर, रूपमण्डन, शिल्परत्न, मन्त्रमहार्णव, अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदागम आदि अनेक ग्रन्थोंमें भगवान् गणेशके विभिन्न रूपोंका वर्णन प्राप्त होता है। वे चतुर्भुज हैं साथ ही द्विभुज तथा षोडशभुज, अष्टभुज एवं षड्भुज-रूपमें भी चित्रित उनके शरीरका वर्ण अरुणोदयकालीन सूर्यके रंगका बत गया है तथा वे शारदीय चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले रू अङ्कित हैं। कहीं वे स्वर्णपिङ्गल हैं तो कहीं श्वेत और वर्णवाले चित्रित किये गये हैं। हेरम्ब-गणपति सिंहपर सि एवं पाँच मुखवाले वर्णित किये गये हैं।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माने श्रीगणेशके सर्वाङ्गका बड़ा मन ध्यान किया है—'मोतियों और रत्नोंसे भगवान् गणेश मुकुट जटित है, सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दनसे चर्चित है, उ मस्तकपर सिन्दूर शोभित है, गलेमें मोतियोंकी माला वक्षःस्थलपर सर्प-यज्ञोपवीत है, बाहुओंमें बहुमूल्य रत्नज बाजूबंद हैं, उनकी अँगुलियोंमें मरकतमणि जटित अँगूठी उनके लंबेसे उदरकी नाभि चारों ओरसे सर्पोंद्वारा वेष्टित रत्नजटित करधनी है, स्वर्णसूत्र-लसित लाल वस्त्र हैं, भाल चन्द्रमा है, दाँत सुन्दर हैं और उनके हाथ वरदादि मुद्राअ शोभायमान हैं।' (गणेशपुराण, उपा० १४। २१—२५)

अङ्ग-प्रत्यङ्ग, वस्त्र, अङ्गराग, अलंकार-आभूष

श्रीगणेशके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा अलंकार-आभू आदि उन्हींके स्वरूप होनेके नाते अपने-आपमें परिपूर्ण उन्हींके अभिव्यक्त पूर्ण विग्रह हैं। उन्हें अलंकार-आभूषणों प्राप्ति सूर्य, चन्द्र, वायु, लक्ष्मी, सावित्री और भारती आदि हुई है, ऐसा विवरण ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपति-खण्डके तेर अध्यायमें मिलता है। उनके आभूषण स्वर्णनिर्मित वर्णित कि गये हैं। वे हेमभूषणों तथा सुनहरे रंगके वस्त्रोंसे अलंकृ होकर उदयकालीन सूर्यके समान दीप्तिमान् दीख पड़ते हैं

उनके चरणकमलकी महिमाका वर्णन उन्हींकी कृप सम्भव है। उनकी चरणधूलि, जो इन्द्रके मस्तक मन्दारपुष्पके मकरन्दकणोंके सम्मिश्रणसे अरुण वर्णकी गयी है, समस्त विघ्नोंका नाश कर देती है। यथा—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नान् हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

(बँगला 'स्तवकवचमाल

श्रीगणेशजीद्वारा अहिवेष्टन तथा उनके लम्बोदर हो अनेक प्रसङ्ग पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। 'ब्रह्मपुराण'में व मिलता है कि गणेशजी पूर्ण तृप्त होनेपर भी अधिक देरत

ाके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं भैया कार्तिकेय आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभावके कारण के प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने ोदमें कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये म्बोदर' हो जाओ।' ऐसा कहकर उन्होंने श्रीगणेशजीका ा 'लम्बोदर' रख दिया।

पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो
यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः ।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराज
लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः ॥

(ब्रह्मपुराण ११४ । ११)

उनके वक्षःस्थलपर नागयज्ञोपवीत शोभित रहता है— **र्पयज्ञोपवीतिनम्।'** (गणेशपुराण, उपा० १४ । २२)। उनके ठमें रत्न और मणिजटित मालाएँ तथा पुष्पोंकी मालाएँ भित रहती हैं। उनके हस्तके सम्बन्धमें विभिन्न ध्यानोंका र्नन मिलता है। श्रीतरुणगणपतिके ध्यानमें उल्लेख है—

पाशाङ्कुशापूपकपित्थजम्बू-
स्वदन्तशालीक्षुमपि स्वहस्तैः ।
धत्ते सदा यस्तरुणारुणाभः
पायात् स युष्मांस्तरुणो गणेशः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

हेरम्ब-गणपतिके ध्यानमें अभय और वरद-मुद्रायुक्त स्तका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अभयवरदहस्तः पाशदन्ताक्षमाला-
सृणिपरशु दधानो मुद्गरं मोदकं च ।
फलमधिगतसिंहः पञ्चमातङ्गवक्त्रो
गणपतिरतिगौरः पातु हेरम्बनामा ॥

श्रीगणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका मुख एक ही ाँतसे अलंकृत है। एकदन्त-गणपति प्रकृति-पुरुषकी एकताके तीक अथवा द्योतक हैं। उनके एकदन्त होनेका तात्त्विक रूपण मुद्गलपुराणमें उपलब्ध होता है। 'एक' मायाका तीक है और 'दन्त' मायाचालक सत्ताका सूचक है।

एक श्लोकमें उनके गण्डस्थलके सौन्दर्यका वर्णन इस कार है—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥

श्रीगणेशजीका मस्तक सिन्दूरसे अरुण तथा मुकुटसे विभूषित रहता है—

मुकुटेन विराजन्तं मुक्तारत्नयुजा शुभम् ।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं सिन्दूरारुणमस्तकम् ॥

(गणेशपुराण, उपा० १४ । २१)

उनके मस्तकपर कस्तूरीका भव्य तिलक सुशोभित रहता है। श्रीगणेशजीके मस्तकका अलंकार चन्द्रमा है, जिसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'भालचन्द्रं लसद्दन्तं शोभाराजत्करं परम् ।'

(गणेशपुराण, उपा० १४ । २५)

आयुध आदि

श्रीगणेशजी विघ्नोंका नाश करनेवाले हैं। उनके असंख्य आयुध हैं, जिनका उपयोग निस्संदेह विघ्नोंको नष्ट करनेके लिये निरन्तर होता रहता है। प्रधानरूपसे उनके दस आयुध हैं—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र। (उत्तरकामिकागम, पटल ६८)

त्रिपुरासुरको पराजित करनेके लिये नारदके उपदेशसे तपद्वारा शिवजीने गणेशजीको प्रसन्न कर लिया। वे उनके सामने प्रकट हो गये। वे पञ्चमुख विनायक थे, दस भुजाओं और आयुधोंसे युक्त थे—

पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः ।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः ॥
अग्न्यर्कशशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः ।

(गणेशपुराण,उपा० ४४ । २६-२७)

श्रीगणेशजीके हाथ उपर्युक्त दस आयुधोंसे विभूषित होनेके साथ-ही-साथ ध्वजा, बाण, धनुष, कमण्डलु, इक्षुदण्ड, दंत, मुद्गर आदिसे भी युक्त हैं तथा वे श्रीगणपति अनेक श्रीविग्रहोंमें वर्णित हैं। श्रीगणेशजीके प्रायः सभी श्रीविग्रहोंके हाथमें अङ्कुश रहता है।

श्रीगणेशजीको मोदकप्रिय कहा जाता है। वे अपने एक हाथमें मोदकपूर्ण पात्र रखते हैं। मोदकको महाबुद्धिका प्रतीक बताया गया है। हिमाचलने भगवती पार्वतीको श्रीगणेशजीका

ध्यान करनेकी जो विधि बतायी है, उसमें उन्होंने मोदकका उल्लेख किया है—

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्॥
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकान् बिभ्रतं करैः।

(गणेशपुराण, उपा० ४९। २१-२२)

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें उल्लेख है कि मोदकका निर्माण अमृतसे हुआ है। पार्वतीने कुमार और गणेशको जन्म दिया। दोनों सभी देवोंके हितकारी हैं। देवताओंने बड़ी श्रद्धासे अमृतनिर्मित एक दिव्य मोदक पार्वतीको दिया।

दोनों पुत्रोंने पार्वतीजीसे मोदक माँगा। भगवतीने कहा कि 'इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त हो जाता है। इसको सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानका तत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है। तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणमें श्रेष्ठता प्राप्त करके पहले आयेगा, उसीको यह मोदक दूँगी।' स्कन्द तो तीर्थयात्राके लिये मयूरपर चल पड़े और गणेशजीने माता-पिताकी केवल परिक्रमा कर ली। माताने दोनोंको समझाया कि 'माता-पिताके पूजनके समान दूसरा कोई भी अनुष्ठान नहीं है। मैं देवनिर्मित मोदक गणेशको ही प्रदान करती हूँ।'

'अतो ददामि हेरम्बे मोदकं देवनिर्मितम्।'

(पद्म०, सृष्टि० ६५। १९)

उपर्युक्त पौराणिक आख्यानसे गणेशजीकी मोदक-प्रियताकी पुष्टि होती है।

परिवार तथा पार्षद

श्रीगणेशजी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके उपास्य तथा परम आराध्य हैं। गणेशजीकी पूजासे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'

(पद्म०, सृष्टि० ५१। ५६)

श्रीगणेशजीके साथ-ही-साथ उन्हींकी प्रसन्नता और पूजाके लिये उनके परिवार—पत्नी और पुत्रोंका चिन्तन निस्संदेह परम मङ्गलास्पद है। इससे सर्वसिद्धियोंका फल प्राप्त होता है, अज्ञान और भ्रान्तिका नाश होता है तथा समस्त मङ्गल अपने-आप उपस्थित हो जाते हैं।

गणेशजी सिद्धि और बुद्धिके द्वारा सेवित उनके पति साथ-ही-साथ वे अपने उपासकोंको सिद्धि और बुद्धि प्रदान करते रहते हैं। जो उनकी उपासना करते हैं, वे अ कार्यमें सिद्धि—पूर्णता प्राप्त करते हैं, साथ ही बुद्धि-ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न होते हैं। श्रीगणेशजीद्वारा सिद्धि-बु प्रदान करनेका आशय है कि योगनाथ श्रीगणेश सिद्धि अ बुद्धिके साथ सदा-सर्वदा आनन्द-क्रीडामें तत्पर रहते हैं बुद्धि विश्वात्मिका है, ब्रह्ममयी है, सिद्धि उसको विमोहि करनेवाली है। उन दोनोंके साथ मङ्गलमय गणेश मङ्गलमयी लीला चलती रहती है।

सिद्धि-बुद्धिके अतिरिक्त पुष्टिको भी उनकी पत्नी कहा गया है। श्रीगणेशजीके वाम-भागमें सिद्धि और दक्षिण-भागमें बुद्धिकी संस्थिति बतायी जाती है।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके कुमारखण्डमें श्रीगणेशजीके सिद्धि-बुद्धिके साथ विवाहका प्रसङ्ग वर्णित है। एक समय प्रेममें मग्न भवानी और शंकरने विचार किया कि हमारे दोनों पुत्र गणेश और स्कन्द विवाहके योग्य हो गये हैं। उन्होंने दोनोंको बुलाकर कहा कि 'तुम दोनोंमें जो पहले पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटेगा, उसका ही विवाह पहले होगा।' कुमार स्कन्द मन्दराचलसे पृथ्वीकी परिक्रमा करने चल पड़े और

बुद्धिमान् गणेशजीने भगवान् शंकर और भगवती अम्बिकाको आसनपर बिठाकर उनकी सात बार परिक्रमा की। उन्होंने वेदप्रतिपादित यह वचन कहा—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥

(शिवपु०, रुद्र० सं०, कुमार० १९। ३९)

आशय यह है कि 'जो माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसको पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल मिलता है।' इस तरह श्रीगणेशजीने अपने विवाहित होनेकी योग्यता प्रमाणित की। प्रजापति विश्वरूपकी सिद्धि-बुद्धि नामक दो कन्याओंसे गणेशजीका विवाह सम्पन्न हो गया। गणेशकी पत्नी सिद्धिसे क्षेम और बुद्धिसे लाभ नामके शोभासम्पन्न दो पुत्र हुए।

गणेशपुराणके उपासनाखण्ड (१५। ३४—३९) में उल्लेख है कि 'ब्रह्माजीने गणेशका पूजन किया। श्रीगणेशजीकी कृपासे उनकी पूजाकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाके समय दो कन्याएँ आयीं। उनके नेत्र सुन्दर थे, मुख प्रसन्न था, वे रत्नजटित आभूषणोंसे शोभित थीं, दिव्य गन्धसे युक्त थीं, उनके वस्त्र दिव्य थे। वे मालाएँ पहने थीं। ब्रह्माजीने उन दोनोंको दक्षिणामें भेंट करनेकी इच्छा की। गणेशजीकी कर्पूरसे आरती की, उनको पुष्पाञ्जलि समर्पित की, उनकी सहस्रनामोंसे स्तुति की तथा प्रदक्षिणा की। ब्रह्माद्वारा पूजित गणेश सिद्धि-बुद्धिको स्वीकार कर अन्तर्धान हो गये।'

रूपमण्डनमें, 'गणेशायतन'—गणेश-मन्दिरके प्रसङ्गमें श्रीगणेशजीके पार्षद अथवा प्रतीहारोंका विवरण उपलब्ध होता है। वे द्वारकी रक्षा करते हैं, द्वारपालका कार्य करते हैं। उनकी संख्या आठ है। एक-एक द्वारपर दो-दो प्रतीहार रहते हैं। उनके यथाक्रम नाम हैं—अविघ्न और विघ्नराज, सुवक्त्र और बलवान्, गजकर्ण और गोकर्ण तथा सुसौम्य और शुभदायक।

उल्लेख है कि श्रीगणेशजीके मन्दिरमें उनके विग्रहके बायें गजकर्ण, दायें सिद्धि, उत्तरमें गौरी, पूर्वमें बुद्धि, दक्षिण-पूर्वमें बालचन्द्रमा, दक्षिणमें सरस्वती, पश्चिममें कुबेर और पीछे धूम्रकके विग्रहोंकी स्थापना होनी चाहिये—

वामाङ्गे गजकर्णं तु सिद्धिं कुर्याच्च दक्षिणे।
पृष्ठदेशे तथा द्वौ च धूम्रको बालचन्द्रमाः॥
उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सरस्वती।
पश्चिमे यक्षराजश्च बुद्धिः पूर्वे व्यवस्थिता॥

(रूपमण्डन ५। १९-२०)

श्रीगणेशके आठों द्वारपाल वामनाकार हैं। वे सौम्य स्वभावके और कठोर मुखवाले होते हैं। आठोंके दो-दो हाथ तो तर्जनी-मुद्रा और दण्डसे विभूषित रहते हैं तथा पूर्वद्वारपर स्थित अविघ्न और विघ्नराजके दो हाथोंमें परशु और पद्म रहते हैं, दक्षिण-द्वारपर स्थित सुवक्त्र और बलवान्के दो हाथोंमें खड्ग और खेटक रहते हैं, पश्चिम-द्वारपर स्थित गजकर्ण और गोकर्णके दो हाथोंमें धनुष-बाण होते हैं और उत्तरद्वारपर स्थित सुसौम्य और शुभदायकके दो हाथ पद्म तथा अङ्कुशसे भूषित रहते हैं। (रूपमण्डन ५। २१—२५)

वाहन आदि

हमारे शास्त्र और पुराणोंमें सिंह, मयूर और मूषकको श्रीगणेशजीका वाहन कहा गया है। गणेशपुराणके क्रीडाखण्ड (१। १८—२१) में उल्लेख है कि 'कृतयुग'में गणेशजीका वाहन सिंह है, वे दस भुजावाले, तेजःस्वरूप और विशालकाय तथा सबको वर देनेवाले हैं, उनका नाम विनायक है। त्रेतामें उनका वाहन मयूर है, वे छः भुजावाले हैं, उनका वर्ण श्वेत है, वे तीनों लोकोंमें विख्यात 'मयूरेश्वर' नामवाले हैं। द्वापरमें उनका वर्ण लाल है, वे आखु—मूषकवाहन हैं, उनके चार भुजाएँ हैं, वे देवता और मनुष्योंके द्वारा पूजित हैं, उनका नाम 'गजानन' है एवं कलियुगमें उनका धूम्रवर्ण है, वे घोड़ेपर आरूढ़ रहते हैं, उनके दो हाथ हैं, उनका नाम 'धूम्रकेतु' है, वे म्लेच्छवाहिनीका विनाश करते हैं।'

श्रीगणेशजीका सर्वप्रसिद्ध वाहन 'मूषक' है। उन्होंने वाहनरूपमें मूषककी प्राप्ति भगवती वसुन्धरासे की थी। उल्लेख है—

'वसुन्धरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम्।'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३। १२)

श्रीगणेशजीका स्वरूप मानवीय बुद्धिद्वारा अग्राह्य है। उनका रूप उनकी कृपासे ही ग्राह्य अथवा ज्ञेय है। सिंहासनपर सिद्धि-बुद्धिसे युक्त तथा समस्त अलंकारों और आयुधोंसे भूषित गजेन्द्रवदन सिन्दूराभ गणपतिका सौन्दर्य वर्णनातीत होते हुए भी पुण्यवानोंके द्वारा आस्वाद्य है। वे गणाधीश्वर हैं,

गणगजराजेश्वर हैं। उनकी पूजामें साक्षात् जगज्जननी अम्बिका परमेश्वरी उन्हें स्वर्णसिंहासन प्रदान करती हैं। हिमवान्द्वारा पार्वतीजीको गणेश-मूर्तिके पूजन-विधानमें भगवतीद्वारा उन्हें सम्बोधित करनेके प्रसङ्गमें निरूपण है—

स्वर्णसिंहासनं दिव्यं नानारत्नसमन्वितम्।
समर्पितं मया देव तत्र त्वं समुपाविश॥

(गणेशपु०, उपा० ४९। २५)

सौन्दर्यमण्डित तथा अनन्तानन्दसुख-समन्वित श्रीगणेशके सिंहासनकी महिमाका चिन्तन अत्यन्त मङ्गलप्रद और सिद्धिप्रदायक है। सिंहासनकी प्राप्ति उन्हें शक्रसे हुई थी—

'रत्नसिंहासनं शक्रः'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३। ८)

महामति पुष्पदन्तने 'गणेशमहिम्नःस्तोत्र'के १७वें श्लोकमें सिंहासनस्थ गणपतिका जो सौन्दर्य-वर्णन किया है वह बड़ा ही ललित ध्यान है—

अनर्घ्यालंकारैररुणवसनैर्भूषिततनुः
करीन्द्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट्।
स्मितास्यात्तन्मध्येऽप्युदितरविबिम्बोपमरुचिः
स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा॥

श्रीगणेशजीके दिव्य रत्नसिंहासनका समलंकरण दिव्य रत्नच्छत्रसे सम्पन्न होता है। उन्हें रत्नच्छत्रकी प्राप्ति वरुण देवतासे हुई थी। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें उल्लेख है—**'रत्नच्छत्रं च वरुणः'** (गणपति० १३। ९)।

श्रीगणेशजीकी वेष-भूषा, अलंकार, पार्षद तथा आयुध और वाहन आदि सब-के-सब दिव्य हैं। इनके चिन्तनमात्रसे मनुष्यका हृदय स्वानन्दलोकके अधिपति श्रीगणेशजीकी सहज भक्तिका अधिकारी होकर समस्त सिद्धियोंसे सम्पन्न हो जाता है।

विविध गणपतियोंके नाम

'श्रीतत्त्वनिधि' ग्रन्थमें भगवान् गणपतिके बत्तीस नाम-रूपोंका जो वर्णन प्राप्त होता है वह इस प्रकार है—

१-**बालगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
२-**तरुणगणपति**-रक्तवर्ण, अष्टहस्त।
३-**भक्तगणपति**-श्वेतवर्ण, चतुर्हस्त।
४-**वीरगणपति**-रक्तवर्ण, दशभुज।
५-**शक्तिगणपति**-सिन्दूरवर्ण, चतुर्भुज।
६-**द्विजगणपति**-शुभ्रवर्ण, चतुर्भुज।
७-**सिद्धगणपति**-पिङ्गलवर्ण, चतुर्भुज।
८-**उच्छिष्टगणपति**-नीलवर्ण, चतुर्भुज।
९-**विघ्नगणपति**-स्वर्णवर्ण, दशभुज।
१०-**क्षिप्रगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
११-**हेरम्बगणपति**-गौरवर्ण, अष्टहस्त, पञ्चमातङ्गमुख, सिंहवाहन।
१२-**लक्ष्मीगणपति**-गौरवर्ण, दशभुज।
१३-**महागणपति**-रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, दशभुज।
१४-**विजयगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
१५-**नृत्तगणपति**-पीतवर्ण, चतुर्हस्त।
१६-**ऊर्ध्वगणपति**-कनकवर्ण, षड्भुज।
१७-**एकाक्षरगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
१८-**वरगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
१९-**त्र्यक्षगणपति**-स्वर्णवर्ण, चतुर्बाहु।
२०-**क्षिप्रप्रसादगणपति**-रक्तचन्दनाङ्कित, षड्भुज।
२१-**हरिद्रागणपति**-हरिद्रावर्ण, चतुर्भुज।
२२-**एकदन्तगणपति**-श्यामवर्ण, चतुर्भुज।
२३-**सृष्टिगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
२४-**उद्दण्डगणपति**-रक्तवर्ण, द्वादशभुज।
२५-**ऋणमोचनगणपति**-शुक्लवर्ण, चतुर्भुज।
२६-**ढुण्ढिगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
२७-**द्विमुखगणपति**-हरिद्वर्ण, चतुर्भुज।
२८-**त्रिमुखगणपति**-रक्तवर्ण, षड्भुज।
२९-**सिंहगणपति**-श्वेतवर्ण, अष्टभुज।
३०-**योगगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्भुज।
३१-**दुर्गागणपति**-कनकवर्ण, अष्टहस्त।
३२-**संकष्टहरणगणपति**-रक्तवर्ण, चतुर्भुज।

इस प्रकार यहाँ विविध अनन्त गणपतियोंमेंसे कतिपय गणपतियोंके केवल नाममात्रका उल्लेख किया गया है। उनकी आकृतियों, वस्त्रों, आयुधों एवं वाहनोंका भेद तन्त्रोंसे जानना आवश्यक है। यहाँ केवल 'सिंह-गणपति'का ध्यान लिखा

जाता है। इसके भी उल्लेखका विशेष कारण यह है कि विश्वमें गणपतिकी केवल 'गजाननता' ही प्रसिद्ध है। परंतु वे 'सिंहानन' भी हैं, यह उनके इस ध्यानसे अवगत होता है—

वीणां कल्पलतामरिं च वरदं दक्षे विधत्ते करै-
र्वामे तामरसं च रत्नकलशं सन्मञ्जरीं चाभयम्।
शुण्डादण्डलसन्मृगेन्द्रवदनः शङ्खेन्दुगौरः शुभो
दीव्यद्रत्ननिभांशुको गणपतिः पायादपायात् स नः॥

'जो दायें हाथोंमें वीणा, कल्पलता, चक्र तथा वरद (मुद्रा) धारण करते हैं और बायें हाथोंमें कमल, रत्नकलश, सुन्दर धान्य-मञ्जरी एवं अभय लिये रहते हैं, जिनका सिंहसदृश मुख शुण्डादण्डसे सुशोभित है, जो शङ्ख और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण हैं तथा जिनका वस्त्र दिव्य रत्नोंके समान दीप्तिमान् है, वे शुभस्वरूप (मङ्गलमय) गणपति हमको अपाय(विनाश) से बचावें।'

देवताओंके सम्बन्धमें मुनियोंका एक निश्चय

एक बार मुनियोंको यह संदेह हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों देवताओंमें कौन श्रेष्ठ हैं, किनकी आराधना की जाय? ऐसा विचारकर वे तपस्वी मुनि ब्रह्मलोकमें गये। उनके अन्तःकरणकी बात जाननेपर श्रीब्रह्माजीके मुखसे उस समय यह श्लोक उच्चरित हुआ—

अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते। महेशाय च द्वावेतौ मय्यास्तां सुमुखौ सदा॥

'उन भगवान् अनन्तको नमस्कार है, जिनका अन्त नहीं मिलता तथा जो सबसे महान् ईश्वर हैं, उन भगवान् शंकरको भी नमस्कार है। वे दोनों देवता सदा मुझपर प्रसन्न रहें।' इन वचनोंको सुनकर भगवान् विष्णु और शंकरकी श्रेष्ठताका निश्चय किया, तदनन्तर वे सब मुनिजन क्षीरसागरको गये। ऋषियोंकी मनोदशा जानकर योगेश्वर भगवान् विष्णुने तब इस प्रकार उच्चारण किया—

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्। सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे॥

'मैं सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक परब्रह्मरूप भगवान् ब्रह्मा और सदाशिवको प्रणाम करता हूँ। वे दोनों मेरे लिये मङ्गलकारी हों।'

यह सुनकर उन ब्रह्मर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे वहाँसे भी चल पड़े—और कैलासपर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शंकर गिरिराजनन्दिनी उमासे इस प्रकार कह रहे हैं—

एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णुसद्मनि। सदा तपः संचरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः॥

'देवि! मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एकादशीको जागरणपूर्वक नृत्य करता हूँ तथा उन्हीं दोनोंकी प्रसन्नताके लिये तपस्या किया करता हूँ।'

यह सुनकर मुनिलोग वहाँसे सीधे अपनी तपःस्थलीको वापस लौट आये और परस्परमें विचार करने लगे कि ईश्वरत्वके साक्षात् प्रतीक—ब्रह्मा, विष्णु और महेशने एक-दूसरके समक्ष अपनी-अपनी लघुताका जो परिचय दिया, वह हम सबकी प्रेरणाका स्रोत बन गया है। उन्होंने विचार किया कि उन महान् त्रिदेवोंमें जब इतनी उदारता है तो फिर हम उनकी संतानें शिवके समक्ष विष्णुको छोटा मानें या ब्रह्माके आगे महेशको कनिष्ठ समझें तो इससे बड़ी अज्ञानता और क्या होगी? तत्त्वतः वे तीनों भिन्न-स्वरूप होकर नित्य अभिन्न हैं, एक हैं। एक ही परब्रह्म परमात्माके नित्य चिन्मय स्वरूप हैं। उन्होंने निश्चय किया कि वे त्रिदेव एक समान हैं, सबके लिये आराध्य हैं, जो जिसकी आराधना करना चाहे करे, इनमें भेदभाव साधनामें बाधक है।

(श्रीरामनरेशजी दीक्षित, शास्त्री)

भगवान् सूर्य
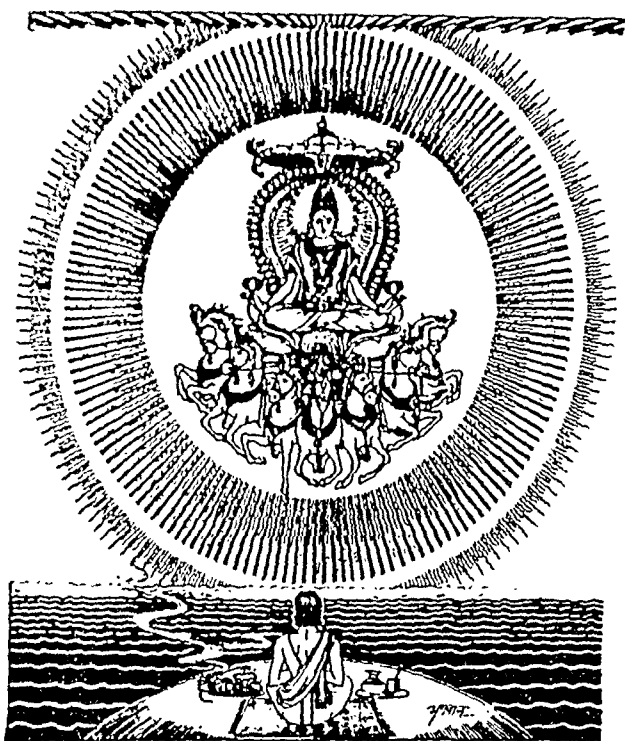
भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं—प्रकाशरूप हैं। उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके तीन रूप माने गये हैं—(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार तथा (३) सगुण-साकार। यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण-निराकार हैं तथापि अपनी माया-शक्तिके सम्बन्धसे सगुण-साकार भी हैं। उपनिषदोंमें इनके स्वरूपका मार्मिक वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत।'

(छान्दो० १।३।१)

'जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्गीथरूपसे उपासना करनी चाहिये।' **'आदित्यो ब्रह्मेति** (छान्दो० ३।३।१)। आदित्य ब्रह्म है'—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये।

'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति'

(मैत्रा० ५।३)

'आदित्य ही ओम् है—इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करना चाहिये।'

चाक्षुषोपनिषद्में यह वर्णन आया है कि सांकृति मुनिने आदित्यलोकमें जाकर भगवान् सूर्यको नमस्कार किया और चाक्षुष्मती-विद्या-प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की। महामु[नि] याज्ञवल्क्यने भी आदित्यलोकमें जाकर और उन्हें प्रणामक[र] कहा—"भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका व[र्णन] कीजिये।' सूर्यदेवने दोनोंको दोनों विद्याएँ दीं।

भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्व (अध्याय ४८। २१-२८) भगवान् वासुदेवने साम्बको उनकी जिज्ञासाका उत्तर देते हु[ए] कहा—'सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, वे इस समस्त जगत्के नेत्र [हैं।] इन्हींसे दिनका सर्जन होता है। इनसे अधिक निर[न्तर] रहनेवाला कोई देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न हो[ता] है और अन्तसमयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होता है। कृत आ[दि] लक्षणोंवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जित[ने] भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्यगण, वसुगण रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस[्त] भूर्भुवःस्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग (पर्वत), नाग, नदियाँ समुद्र तथा समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हे[तु] दिवाकर ही हैं। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थ[ों]में प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है[।] इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेप[र] सब अस्तंगत हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। अतः समस्त वेदोंमें वे परमात्मा नामसे पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें 'अन्तरात्मा' नामसे अभिहित किया जाता है। ये बाह्यात्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत्-स्थितिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्य देवता हैं।'

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक—सूर्यमण्डल है। प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं, सूर्यसे ही दिन-रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है। सूर्य सम्पूर्ण संसारके प्रकाशक हैं, इनके विना सब अन्धकार है। सूर्य ही जीवन, तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—

'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुःश्रोत्रे आत्मा मनः'

(नारायणोपनिषद् १५)

' मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥'

(तै० उ० १।५।२)

भूः, भुवः एवं स्वः— इन तीन लोकोंकी अपेक्षा 'महः' जो चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्यमें ही समस्त लोक वृद्धिको प्राप्त करते हैं। आदित्यलोक महान् है। भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों लोक इसके अवयव—अङ्ग हैं और यह अङ्गी है। आदित्यके योगसे ही अन्य लोकादि महत्ता प्राप्त करते हैं, अतः आदित्यकी महिमा अद्वितीय है।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है। वे रक्तकमलपर विराजमान हैं, उनका वर्ण हिरण्यमय है, उनकी चार भुजाएँ हैं। वे दो भुजाओंमें पद्म धारण किये हैं और उनके दो हाथ अभय तथा वर-मुद्रासे सुशोभित हैं, वे सप्ताश्वयुक्त रथमें स्थित हैं। जो उपासक ऐसे उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं और उनकी कृपासे मनुष्यके मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति ॥

भगवान् सूर्य अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको प्रेरित करती रहती है—उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ। यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा ? परंतु परमात्माका अवतार तो होता ही है। तो उनका क्या अवतार हुआ ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया ? इस सम्बन्धमें पुराणोंमें एक कथा प्राप्त होती है, तदनुसार एक बार देवासुर-संग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया, तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षामें सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माता अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं, उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुःखी होकर वे सूर्यकी उपासना-प्रार्थना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोप (किरणोंके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर तेरे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।' इतना कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो यम-नियमसे रहने लगीं। महर्षि कश्यपजी इस समाचारसे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको मार्तण्डके नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमें पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये महर्षि कश्यप ही सूर्यके पिता हैं।

भगवान् आदित्य या सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। निरुक्तमें इन्हें द्युस्थानीय देवोंमें परिगणित किया गया है। ब्रह्मसूत्रमें भगवान् आदित्यको ही परब्रह्म परमात्मा माना गया है।[१]

भगवान् सूर्यका स्वरूप

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १।११५।१)— इस वेद-वचनके अनुसार भगवान् भास्कर ही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं। भगवान् सूर्य सभी स्थावर-जङ्गमात्मक विश्वके अन्तरात्मा हैं। वास्तवमें इन्हें उदयसे अस्ततक दैनन्दिन सृष्टिके प्रत्यक्ष ही उद्भावक, जागरणकर्ता, संचालनकर्ता तथा रात्रिमें प्रजावर्गके शयन कर जानेपर उनको विश्राम देनेवाला माना गया है। सूर्य या आदित्य देवाधिदेव, सर्वदेवात्मक, सम्पूर्ण विश्वके साक्षी, स्वामी, क्षणसे लेकर

१-'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'। (१।१।२०)

युगादिकालके प्रवर्तक; धाता, विधाता, पोषक, आप्यायक सम्पूर्ण विश्वके आधार; प्रकाश, ऊष्मा एवं जीवनके मूलस्रोत वायु; आकाश आदिके मूल कारण; योगियोंद्वारा एकमात्र प्राप्य तत्त्व; वालखिल्य, पञ्चशिख, शुकदेव तथा भक्तों, साधकों एवं उपासकोंके स्तोतव्य तथा प्राप्यस्थानके रूपमें निर्दिष्ट हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा तथा गणेश आदि देवगणोंका बिना साधना एवं भगवत्कृपाके प्रत्यक्ष दर्शन होना सम्भव नहीं। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार केवल भावनाके द्वारा ही ध्यान और समाधिसे उनका अनुभव हो पाता है, किंतु नित्य-निरन्तर सबको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले तो भगवान् भुवनभास्कर सूर्य ही हैं। सौर सम्प्रदायके अनुसार वेदोक्त सहस्रबाहु, सहस्रशीर्षा, प्रजापति, परमपुरुष, पुराणात्मा, सभी भुवनोंके गोप्ता, आदित्य वर्णसे निर्दिष्ट ये प्रत्यक्ष सूर्यदेव ही हैं—

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः॥

(भविष्यपुराण १।७७।१९, २०)

जिस प्रकार कदम्बका पुष्प अतिसुन्दर केशरकिञ्जल्कसे आवृत रहता है, उसी प्रकार सहस्ररश्मि भगवान् सूर्य भी अखण्डमण्डलाकार तेजःपुञ्जरश्मिसे सभी दिशाओंमें व्याप्त हैं। वेदमें वर्णित सहस्रशीर्षा भगवान् हिरण्यगर्भ मण्डलाकारमें व्याप्त तेजःपुञ्जके मध्य उपस्थित हैं। जिस प्रकार विशाल कुम्भमें अग्नि व्याप्त होकर अग्निकुम्भके सदृश हो जाता है, उसी प्रकार सहस्ररश्मि भगवान् सूर्यका दिव्य रश्मिमण्डल अग्निकुम्भके आकारमें होकर पृथ्वी एवं आकाशमण्डलको संतप्त करने लगता है।

य एष तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिकः।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव प्रतपत्येष सर्वतः॥

(साम्बपु० ७।५६)

परम दिव्य तेजःपुञ्ज ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान् हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं, उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्यमण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोक-पर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है। पुराणकी कथाके अनुसार छाया तथा संज्ञा—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं। भगवान् सूर्यकी ये दो पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर कार्यरत रहती हैं।

कहते हैं कि देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है, यह मुनि एवं महर्षियोंके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है, जिसके कारण भगवान् सूर्यके द्युलोक-व्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेपर विद्यानामकी शक्ति उत्पन्न हुई। **'विद्ययामृतमश्नुते'** इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्हें अमृतपानका अवसर मिला।

अविद्या प्रेयमार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे संयुक्त होनेपर अर्थात् छाया और तेजके परस्पर मिलनेसे अविद्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है। वेद-शास्त्रज्ञाता विद्वान् भी प्रेय-ऐहिक विषयसुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं।

सूर्यरश्मि—ग्रह-मण्डल—भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं। जिस प्रकार घरके मध्य उज्ज्वल दीपक ऊपर-नीचे सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के अधिपति सूर्य हजारों रश्मियोंसे ऊपर-नीचेके भागोंको प्रकाशित करते हैं।

सूर्यकी हजारों रश्मियोंमें तीन सौ रश्मियाँ पृथ्वीपर, चार सौ चान्द्रमस—पितृलोकपर तथा तीन सौ देवलोकपर प्रकाश फैलाती हैं। रश्मिके साथ सूर्यतेजका प्रकाश तथा अग्नितेजकी ऊष्मा—दोनोंके परस्पर मिश्रणसे ही दिन बनता है। केवल अग्निकी ऊष्माके साथ सूर्यका तेज मिलनेपर रात्रि होती है। यथा—

प्रकाश्यं च तथौष्ण्यं च सूर्याग्न्योर्ये च तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाख्यायेते दिवानिशम्॥

(साम्बपु० अ० ७)

सूर्य दिन-रातमें समान प्रकाश करते हैं। उनकी रश्मियाँ

रात्रिमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश उत्पन्न करती हैं। सूर्यका नित्य प्रकाशमान तेज दिनमें प्रकाश-उष्णमें तथा रात्रिमें केवल अग्नि-उष्णमें विद्यमान रहता है। सूर्यकी रश्मियाँ व्यापक हैं, परस्पर मिलकर गर्मी, वर्षा, सरदीका वातावरण उत्पन्न करती हैं।

अखण्डमण्डलाकारमें व्याप्त भगवान् सूर्यका तेज एक है। जिस प्रकार उनकी रश्मियोंसे दिन-रात्रि, गर्मी, वर्षा, सरदी उत्पन्न होकर नियमित व्यवहारमें प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, ग्रह तथा नक्षत्र-मण्डल सूर्यरश्मिसे उत्पन्न होकर उसीमें प्रतिष्ठित—अधिष्ठित रहते हैं।

भगवान् सूर्यका परिवार

प्रायः अधिकांश पुराणोंमें सूर्यलोकमें सूर्यके परिवारकी स्थिति समानरूपसे निर्दिष्ट हुई है। वहाँ वे अपने समस्त परिवार, परिकर एवं परिच्छदोंके साथ सुशोभित रहते हैं। इस संदर्भमें भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें उपलब्ध सामग्री विशिष्ट कोटिकी है, तदनुसार—सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि सभी देवता, ऋषिगण स्थित रहते हैं तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व, नाग, यक्ष तथा रम्भादि अप्सराएँ नृत्य-गीत करते हुए उनकी स्तुति करते रहते हैं। तीनों संध्याएँ मूर्तिमान् रूपमें उपस्थित होकर वज्र एवं नाराच धारण किये भगवान् सूर्यकी स्तुति करती हैं। वे सात छन्दोमय अश्वोंसे युक्त हैं। घटी, पल, ऋतु, संवत्सरादिकालके अवयवोंद्वारा निर्मित दिव्य रथपर आरूढ़ होकर सुशोभित रहते हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण अपने ललाटपर अर्धचन्द्राकार कमल धारण किये हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे उनके सारथिका कार्य करते हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें दाहिनी ओर राज्ञी (संज्ञा[१]) और बायीं ओर निक्षुभा (छाया) नामकी दो पत्नियाँ स्थित रहती हैं। उनके साथमें पिङ्गल नामके लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं।

इनके साथ ही भगवान् सूर्यकी दस संतानें हैं। संज्ञा (अश्विनी) से वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। इनमेंसे रेवन्त नामक पुत्र सभी प्रतिमा तथा चित्रादिमें नित्य उनके साथ विशेष रूपसे प्रविष्ट रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवता तथा सौरमण्डलके ग्रह-नक्षत्रादि भी मूर्तिमान्-रूपमें उनकी उपासना करते हैं। इनके परिवारकी मुख्य कथा जो भविष्य, मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, मार्कण्डेय तथा साम्ब आदि पुराणोंमें वर्णित है, उसका सारांश संक्षेपमें इस प्रकार है—

विश्वकर्मा (त्वष्टा) की पुत्री संज्ञा (त्वाष्ट्री) से जब इनका विवाह हुआ, तब वह अपनी प्रथम तीन संतानों—वैवस्वत मनु, यम तथा यमी (यमुना) की उत्पत्तिके बाद उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपने ही रूप-आकृति तथा वर्णवाली अपनी 'छाया' को वहाँ स्थापित कर अपने पिताके घर होती हुई 'उत्तरकुरु' में जाकर वडवा (अश्वा) का रूप धारण कर अपनी शक्तिवृद्धिके लिये कठोर तप करने लगी। इधर सूर्यने छायाको ही पत्नी समझा तथा उससे उन्हें सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टि (भद्रा)—ये चार संतानें हुईं, जिन्हें वह अधिक प्यार करती, किंतु वैवस्वत मनु तथा यम, यमीका निरन्तर तिरस्कार करती रहती।

एक दिन दुःखी होकर धर्मराज (यमराज) ने छायापर पैर उठाया, जिसपर उसने उसके पैरको गिर जानेका शाप दे दिया। इसपर उन्होंने अपने पिता सूर्यसे कहा कि—'यह हमलोगोंकी माता नहीं हो सकती, क्योंकि एक तो वह निरन्तर हमें तिरस्कृत करती है, यमीकी ताड़ना भी करती है, वहीं दूसरी ओर सावर्णिमनु आदिको अधिक प्यार करती है। मेरे द्वारा दुःखी होकर पैर उठानेपर उसने उसे गिर जानेका शाप दे दिया, जो अपनी माताके लिये कभी सम्भव नहीं है। संतान माताका कितना ही अनिष्ट करे, किंतु वह अपनी संतानको कभी शाप नहीं दे सकती।' यह सुनकर सूर्यने कहा—'तुम दुःखी न होओ, तुम्हारा पैर नहीं गिरेगा, केवल इसका एक लघु कण कृमि लेकर पृथ्वीपर चले जायँगे।' ऐसा कहकर सूर्य कुपित होकर छायाके पास गये और उसके केश पकड़कर पूछा—'सच-सच बता, तू कौन है? कोई भी माता अपने पुत्रके साथ

१-पुराण, आगम एवं शिल्पग्रन्थोंमें इनके सुरेणु, त्वाष्ट्री, द्यौ, वडवा तथा प्रभा—ये नाम भी आते हैं।

[illegible] निम्नकोटिका व्यवहार नहीं कर सकती।' यह सुनकर छाया भयभीत हो गयी और सारा रहस्य प्रकट कर दिया।

सूर्य तत्काल संज्ञाको खोजते हुए विश्वकर्माके घर पहुँचे। विश्वकर्माने तेज न सहन करनेके कारण उसके उत्तरकुरुमें तप करनेकी बात बतायी। विश्वकर्माने सूर्यकी इच्छापर उनके तेजको खरादकर कम कर दिया। अब भगवान् सूर्य अश्वरूपमें वडवा (संज्ञा, अश्विनी)के पास उससे मिले। वडवाने परपुरुषके स्पर्शके भयसे सूर्यका तेज नाकोंसे फेंक दिया, उसीसे दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई, जो देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो गुह्यकों एवं अश्वोंके अधिपतिरूपमें प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विशाल परिवार प्रतिष्ठित हो गया, जिसकी पूजा-उपासना सदासे होती रही है।

सूर्योपासना

प्रत्यक्ष देव भगवान् सविताकी नित्य त्रिकाल उपासना करनी चाहिये। सूर्यकी उपासना करनेवाला परमात्माकी ही उपासना करता है। वैदिक सूक्तों, पुराणों तथा आगमादि ग्रन्थोंमें भगवान् सूर्यकी नित्य आराधनाका निर्देश है। आगमोंमें प्रपञ्चसारके पंद्रहवें पटल तथा शारदातिलकके चौदहवें पटलमें सपरिकर सूर्योपासनाका निर्देश प्राप्त होता है। इनके साथ सभी ग्रह, नक्षत्रोंकी आराधना भी अङ्गोपासनाके रूपमें आवश्यक होती है। मन्त्र-महोदधि, श्रीविद्यार्णव आदि कई ग्रन्थोंको देखनेसे उनके जपनीय मन्त्र मुख्यरूपसे दो प्रकारके मिलते हैं। प्रथम मन्त्र है—'**ॐ घृणि सूर्य आदित्य ॐ**' तथा द्वितीय मन्त्र है—'**ॐ ह्रीं घृणि सूर्य आदित्यः श्रीं ह्रीं मह्यं लक्ष्मीं प्रयच्छ।**' इस मन्त्रका मूल तैत्तिरीय शाखाके नारायण-उपनिषद्‌में प्राप्त है, जिसपर विद्यारण्य तथा सायणाचार्य—दोनोंके भाष्य प्राप्त हैं।

इनकी उपासनामें इनकी नौ पीठ-शक्तियों—दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता एवं सर्वतोमुखीकी भी पूजा की जाती है।

सूर्यकी आराधनासे महाराज राज्यवर्धनको दीर्घ आयुकी प्राप्ति

भगवान् श्रीरामके पूर्वज सूर्यवंशी राजा दमके पुत्र महाराज राज्यवर्धन बड़े विख्यात नरेश हुए हैं। वे अत्यन्त सजगतासे धर्मपूर्वक अपने राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यमें सभी लोग सुखी एवं प्रसन्न थे। प्रजा धर्मके अनुकूल रहकर ही विषयोंका उपभोग करती थी। दीनोंको दान दिया जाता एवं यज्ञोंका आयोजन होता रहता।

राजा राज्यवर्धनको सुखपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए बहुत समय बीत गया। एक दिन महाराज राज्यवर्धनकी महारानी उनके सिरमें तेल लगा रही थीं। उसी समय उन्हें अपने पतिके सिरमें एक सफेद बाल दिखायी दिया। उसे देखकर उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसू देखकर पृथ्वीपति राज्यवर्धनने साग्रह पूछा—'प्रिये! तुम्हारे इस प्रकार दुःखी होनेका कारण क्या है?' रानीने उत्तर दिया। 'नाथ! आपके मस्तकका यह पका हुआ श्वेत केश ही मेरे दुःखका कारण है।' राजाने कहा—'कल्याणि! मैंने सभी तरहसे अपना कर्तव्य-पालन कर लिया है, अतः अब जीवनकी क्या चिन्ता है? जन्मनेवालेकी तो मृत्यु निश्चित है ही, अतः अब मुझे वनमें जाकर तपस्या करनी चाहिये।'

महाराजके वनगमनकी बात सुनकर सभी प्रजाजन व्याकुल हो उठे। प्रजापालक राज्यवर्धनके अनुरागके सामने प्रजावर्ग नतमस्तक था, कृतज्ञ था। सभी लोगोंने महाराजसे आग्रहपूर्वक कहा—'नाथ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर कुछ दिन और प्रजा-पालन करें।' तत्पश्चात् सभी प्रजाजन महाराज राज्यवर्धनकी दीर्घ-आयुके लिये भगवान् भास्करकी आराधनामें लग गये। कुछ लोगोंने विधिपूर्वक भगवान् भास्करको अर्घ्य देना आरम्भ किया। कुछ लोगोंने 'सूर्यसूक्त'का पाठ प्रारम्भ किया, कुछने वेदमन्त्रोंके जप, स्वाध्याय एवं कुछने व्रत-उपवासद्वारा भगवान् सूर्यदेवको प्रसन्न करना चाहा। सभी लोगोंकी एक ही अभिलाषा थी कि महाराज राज्यवर्धनकी आयु बढ़े।

अन्तमें कृपालु भगवान् सूर्यदेव प्रजाजनकी आराधनासे प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये और उन्होंने उनका अभीष्ट वर (राज्यवर्धनकी यौवनयुक्त लंबी आयु) प्रदान किया। सभी प्रजाजन भगवान् भास्करकी कृपा प्राप्तकर परम प्रसन्न हो गये।

महाराज राज्यवर्धनको जब यह बात ज्ञात हुई तो वे

प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने सोचा—'मैं तो लंबी आयुका उपभोग करूँगा, परंतु मेरे परिवार एवं प्रजाके लोग तो समयपर मृत्युको प्राप्त होंगे ही।' अतः वे भी अपनी रानीके साथ कामरूप (आसाम) पर्वतपर जाकर भगवान् दिवाकरकी आराधनामें लग गये। भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये महाराज राज्यवर्धन एवं रानी व्रत-उपवासादि करते हुए उनकी पूजा-स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् सूर्य कृपा करके उनके सामने प्रकट हो गये और उनके इच्छानुसार उन्होंने राजपरिवार एवं प्रजाजनकी आयु भी राजाके समान ही लंबी होनेका वर प्रदान किया। भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्तकर महाराज राज्यवर्धन एवं सभी प्रजाजन सुखपूर्वक रहने लगे।

सूर्यार्घ्य-दान

भगवान् सूर्यके अर्घ्यदानकी विशेष महत्ता है। प्रतिदिन प्रातःकाल रक्तचन्दनादिसे मण्डल बनाकर, पीठशक्तियोंकी स्थापना, पूजाकर ताम्रमय पात्रमें जल, लालचन्दन, तण्डुल, श्यामाक, रक्तकमल (अथवा रक्तपुष्प) और कुश आदि रखकर घुटने टेककर प्रसन्नमनसे सूर्यमन्त्रका जप करते हुए अथवा निम्नलिखित श्लोकका पाठ करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये तत्पश्चात् प्रदक्षिणा एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिये—

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सुपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥
सरक्तवर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुङ्कुमाद्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद॥

(शिवपुराण, कैलाससं० ६। ३९-४०)

'सिन्दूरवर्णके-से सुन्दर मण्डलवाले, हीरकरत्नादि आभरणोंसे अलङ्कृत, कमलनेत्र, हाथमें कमल लिये, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि (सम्पूर्ण सृष्टि) के मूलकारण (हे प्रभो! आदित्य) आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सुवर्णपात्रमें रक्तवर्णके कुङ्कुम, कुश, पुष्पमालादिसे युक्त रक्त-स्वर्णिम जलद्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्घ्यको ग्रहणकर प्रसन्न हों।'

इस अर्घ्यदानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर आयु, आरोग्य, धन, धान्य, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, कलत्र, तेज, वीर्य, यश, कान्ति, विद्या, वैभव और सौभाग्यको प्रदान करते हैं तथा सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक और दयालु हैं, वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान करते हैं। उसके लिये मुक्ति भी सुलभ हो जाती है, इसमें संदेह नहीं।

भगवान् सूर्यकी दशाङ्ग-उपासनामें उनके मन्त्र, ध्यान, कवच, हृदय, पटल, सूक्त, स्तोत्र, स्तवराज, शतनाम, सहस्रनाम, उनके चरित्रका पठन तथा यजन-पूजन आदि भी संनिविष्ट रहते हैं।

सूर्योपासकोंको निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही शय्या त्यागकर शौच-स्नान करना चाहिये।

२-स्नानोपरान्त श्रीसूर्यनारायणको तीन बार अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

३-नित्य संध्याके समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

४-प्रतिदिन उनके शतनाम तथा स्तोत्र अथवा सहस्रनामका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये तथा उनके मन्त्रका जप करना चाहिये।

५-आदित्यहृदयका नियमित पाठ करना चाहिये।

६-स्वास्थ्य-लाभकी कामना एवं नेत्ररोगसे बचने एवं अंधेपनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद् (अक्षि-उपनिषद्) का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।

७-रविवारको तेल, नमक नहीं खाना चाहिये तथा एक समय हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये।

वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोंमें भगवान् सविताकी सर्वज्ञता, सर्वाधिपता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

सूर्योपासनाका चमत्कार

सूर्योपासनाका प्रत्यक्ष फल तत्काल प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं। श्रीकृष्ण-पुत्र साम्ब तथा मयूर कवि इनकी ही कृपासे कुष्ठरोगसे मुक्त हुए, यह बात सर्वविदित है। इसी प्रकार युधिष्ठिर भी जब द्यूतमें सब कुछ गँवाकर वनकी ओर चले तो उनके पीछे उनके परिवारके अतिरिक्त ब्राह्मण एवं

प्रजावर्गकी एक विशाल पंक्ति भी चलने लगी। उस समय वे किसी भी प्रकार उनके पालन-पोषणमें समर्थ नहीं हो पा रहे थे और प्रजाप्रिय होनेके कारण वे उनका परित्याग भी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने अपनी स्थिति अपने पुरोहित महर्षि धौम्यजीसे निवेदित की। उन्होंने कहा कि 'सृष्टिके आरम्भसे ही भगवान् सूर्य सम्पूर्ण प्रजाका पिताकी भाँति ओषधि एवं अन्नोंकी उत्पत्तिके द्वारा पालन-पोषण करते आ रहे हैं। अतः यह अन्न सूर्य-रूप ही है। आप उनके एक सौ आठ नामोंसे उनकी उपासना करें, वे तत्काल प्रकट होकर आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगे।' धर्मराजने पुरोहितजीके निर्देशानुसार श्रद्धा-भक्तिसे प्रायः सोलह श्लोकोंमें निबद्ध सूर्याष्टोत्तरशतनाम*का जप किया। फलस्वरूप भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने एक ताम्रपीठर (बटलोई) उन्हें प्रदान किया, जिसमें अपार फल,

मिष्टान्न और अन्य दिव्य इच्छित भोज्य पदार्थ अक्षय बने रहते थे, किंतु द्रौपदीके भोजनके पश्चात् सब लुप्त हो जाता था। साथ ही उन्होंने वनवासके बाद राज्य-प्राप्तिका वरदान भी प्रदान किया। भगवान् श्रीरामने भी भगवान् सूर्यकी उपासना (आदित्यहृदयस्तोत्रके पाठ) से ही रावणपर विजय प्राप्त की थी। अतः अपने परम कल्याणके लिये नित्य उपास्य भगवान् सविताकी आराधना करनी चाहिये।

स्तोत्र-साहित्य और आदित्यहृदयस्तोत्र

सभी देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये जितनी उपासना-पद्धतियाँ एवं साधन शास्त्रोंमें बताये गये हैं, उन सबमें स्तोत्र ही प्रधान है। इस बातका स्वयं आचार्य यास्कने दैवतकाण्डके आरम्भमें संकेत किया है, तदनुसार सम्पूर्ण वेदराशि स्तुतिमात्र ही है। कोई ऋषि या त्रिकालदर्शी महर्षि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदिकी इच्छासे जिस देवताको तत्त्वतः उस पदार्थका अधिष्ठाता मानकर उसकी स्तुति करते हैं, वही उस मन्त्र या सूक्तका देवता होता है और इस प्रकारकी स्तुतियाँ परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत एवं आध्यात्मिक—इन तीन भागोंमें विभक्त होकर कामनासिद्धिका कारण बनकर मन्त्र, ऋचा या स्तुतियाँ कहलाती हैं। इनमें परोक्ष स्तुतियाँ वे हैं, जिनमें देवताका नाम लेकर दूरसे आह्वान किया जाता है। प्रत्यक्ष स्तुतियाँ वे हैं, जो देवताके सामने आ जाने या मध्यम पुरुषकी क्रिया अथवा **'त्वम्'** इस सर्वनामसे अभिहित होती हैं। आध्यात्मिक स्तुतियाँ देवता और ऋषिके एकात्मभावनासे उत्तमपुरुषकी क्रिया एवं सर्वनामसे व्यपदिष्ट **'अहम्'** पदके प्रयोगसहित व्यवहृत होती हैं।

सम्पूर्ण वेदराशिमें परोक्ष तथा प्रत्यक्षकृत स्तुतियाँ अधिक हैं, किंतु आध्यात्मिक स्तुतियाँ अत्यल्प हैं। इन स्तुतियोंमें ही समस्त ज्ञान-विज्ञान ग्रथित हैं।

परवर्ती पुराण-आगमादिमें भी यह स्तुति-परम्परा रोचक कथाओंके योगसे विशेष रमणीय होकर पल्लवित, पुष्पित एवं प्रतिफलित होती गयी। भगवान् आदित्यकी स्तुतियाँ भी वेद, पुराण, आगम तथा काव्योंमें प्राधान्येन प्राप्त होती हैं।

---

* यह स्तोत्र अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। इसके पाठसे पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति तथा समस्त आपत्तियोंसे मुक्ति हो जाती है। विशेष प्रभावकारी होनेके कारण महाभारत, वनपर्व (३।१६—३१) का यह 'अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र' ब्रह्मपुराण (३३।३३—४५), स्कन्दपुराण, काशीखण्ड (४४।१—१३), स्कन्दपुराण कुमारिकाखण्ड (४३।१८—३०), स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड (४४।१—१६), पद्मपुराण, भूमिखण्ड, नरसिंहपुराण (२०।१—१४) तथा हरिवंशपुराण-विष्णुपर्वमें भी प्रायः यथावत् प्राप्त होता है। (यह स्तोत्र 'मङ्गलाशासनम्' प्रकरणमें दिया गया है अतः उसे वहीं देखना चाहिये)।

स्वतन्त्र स्तोत्र भी अनेक हैं, किंतु उनमें साम्बकृत 'साम्बपञ्चाशीतिस्तोत्र[1]' तथा मयूरकविकृत 'सूर्यशतक'[2]के साथ-साथ वाल्मीकीय रामायणमें अगस्त्यप्रोक्त[3] तथा भविष्यपुराणके नामसे प्राप्त सुमन्तुप्रोक्त[4]—ये दो 'आदित्य-हृदयस्तोत्र' सम्पूर्ण साहित्यमें शीर्षस्थानीय स्तोत्ररत्न हैं।

भविष्यपुराणके नामसे प्राप्त जो आदित्यहृदय नामक एक स्तोत्र है, वह प्रायः दो सौ श्लोकोंमें उपनिबद्ध है। इसका भगवान् कृष्णने अर्जुनको तथा सुमन्तुने शतानीकको उपदेश किया था। इसके पाठसे मनुष्य दुःख, दारिद्र्य, कुष्ठ आदि असाध्य रोगोंसे मुक्त होकर महासिद्धिको प्राप्त कर लेता है[5]। इसके ६३वें श्लोकमें सूर्यको ही अग्नि, वायु, कुबेर आदि सर्वदेवात्मक, सर्वभूतात्मक, सर्वलोकात्मक, धाता, विधाता, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, प्रजापति, स्वाहा, स्वधा, यज्ञ, परमपुरुषोत्तम, सनातन तथा परब्रह्म बताया गया है। ये लोकचक्षु, लोकसाक्षी, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्यके प्रदाता और प्राणियोंके सर्वविध कल्याणकारक हैं।

इस स्तोत्रमें अर्घ्यदान-विधि तथा उसकी महिमाका विस्तारसे विवेचन है। इसके श्लोक सुन्दर तथा पूजन आदि प्रयोगमें सर्वत्र उच्चरित होते हैं। **'ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती°'**, **'नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे°'** तथा **'एहि सूर्य सहस्रांशो°'** आदि श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये हैं। श्लोक १३३ से १५५ तक बड़े सुन्दर छन्दोंमें आदित्य-मण्डलकी भावपूर्ण प्रार्थना की गयी है, जिनमेंसे एक श्लोक यहाँ प्रस्तुत है—

यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु सम्प्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥

(आदित्यहृ° श्लोक १४६)

इसका भाव है—जो रोगोंका विनाश करनेमें समर्थ है, ऋक्, यजुः और साम—इन तीनों वेदोंमें सम्यक् प्रकारसे गाया गया है एवं जिसने भूः, भुवः तथा स्वः—इन तीनों लोकोंको प्रकाशित किया है, भगवान् सूर्यका वह मण्डल मुझे पवित्र करे।

साधकोंको यथासम्भव सूर्योपासनामें नित्य आदित्य-हृदयस्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

संध्योपासनाका भगवान् सूर्यसे सम्बन्ध

मनुस्मृति (४।९४)के अनुसार, ऋषियोंके दीर्घ आयुष्य, विशदप्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस्वका एकमात्र मूलकारण दीर्घकालीन संध्यामें सौरी गायत्रीका जप एवं सूर्योपस्थान आदि क्रियाएँ ही थीं। संध्याकाल सूर्योदयसे तीन नाडी (लगभग ७२ मिनट) पहले तथा तीन नाडी बादतक और सायंकालमें सूर्यास्तसे तीन नाडी पहले तथा तीन नाडी बादमें और ठीक मध्याह्नसे १.३० घण्टा पहले तथा बादका समय माना जाता है। ऋषिगण इन तीनों कालोंमें प्राणायाम और समाधिद्वारा भगवान् सविताके वरेण्य तेजका ध्यान करते हुए गायत्री-मन्त्रका जप करते थे।

संध्याके अङ्गोंमें यद्यपि प्राणायाम, मार्जन तथा अघमर्षण आदि भी सम्मिलित होते हैं, किंतु इनमें अधिक समय नहीं लगता, दीर्घकालका तात्पर्य सावित्री या सौरी गायत्रीके जपमें निहित है। तदुपरान्त सूर्योपस्थान, सूर्यार्घ्य, सूर्यनमस्कार एवं प्रदक्षिणा आदि कृत्य सम्मिलित हैं। इस प्रकार गायत्रीके माध्यमसे सूर्यनारायणकी ही आराधना की जाती है।[6]

सूर्यनमस्कार— सूर्यनमस्कारका सम्बन्ध योग एवं प्राकृतिक चिकित्सासे भी जुड़ा हुआ है। सूर्यकी ऊष्मा एवं प्रकाशसे स्वास्थ्यमें अभूतपूर्व लाभ होता है और बुद्धि-

---

१-२—इन दोनों स्तोत्रोंके पाठसे क्रमशः साम्ब तथा मयूरको कुष्ठरोगसे मुक्ति मिली थी।

३-इसके पाठसे श्रीरामने रावणपर विजय पायी थी।

४-इसका प्रभाव भी सर्वव्यापी है, जिससे यह पूर्वोक्त तीनोंसे अधिक प्रचलित हो गया है।

५-यज्जपान्मुच्यते जन्तुर्दारिद्र्यादाशु दुस्तरात्। लभते च महासिद्धिं कुष्ठव्याधिविनाशनम्॥ (आदित्यहृदयस्तोत्र १६)

६-यद्यपि मूल सावित्री या सौरी गायत्री मन्त्र चारों संहिताओंमें एक-रूपमें प्राप्त होता है और योगियाज्ञवल्क्यस्मृतिमें इसका बृहद्भाष्य भी उपलब्ध होता है तथापि संध्याकी विशेष विधि जाननेके लिये अपनी-अपनी शाखाओंसे सम्बन्धित गृह्यसूत्रों तथा परिशिष्टोंको देखना चाहिये।

वैराग्यकी प्राप्ति भी होती है। सूर्यनमस्कारकी विधियोंमें मुख्यरूपसे हस्तपादासन, एकपादप्रसरणासन, द्विपादप्रसरणासन, भूधरासन, अष्टाङ्ग प्रणिपातासन तथा सर्पासन—इन आसनोंकी प्रक्रियाएँ अनुलोम-विलोम-क्रमसे की जाती हैं।

सूर्यके प्रकाश एवं सूर्यकी उपासनासे कुष्ठ, नेत्र आदिके रोग दूर हो जाते हैं और सभी प्रकारका आरोग्य-लाभ होता है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥

(मत्स्यपु० ६८।४१)

अर्थात् 'मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी) से ज्ञान और भगवान् जनार्दन विष्णुसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये।'

ज्योतिषशास्त्र एवं भगवान् सूर्य

गणित (बीजगणित, अङ्कगणित, ज्यामिति), होरा एवं संहिता—इन तीन स्कन्धोंसे युक्त ज्योतिषशास्त्र वेदका चक्षुभूत प्रधान अङ्ग है। इस विद्यासे भूत, भविष्य, वर्तमान, अनाहत, अव्यवहित, अदृष्ट-पदच्छिन्न सभी वस्तुओं तथा त्रिलोकका हस्तामलकवत् ज्ञान हो जाता है। ज्योतिष-ज्ञानविहीन लोक अन्य ज्ञानोंसे पूर्ण होनेपर भी अंधेके तुल्य होता है। इस महनीय ज्योतिषशास्त्रके प्राण तथा आत्मा और ज्योतिश्चक्रके प्रवर्तक भगवान् सूर्य ही हैं। वे स्वर्ग और पृथ्वीके नियामक होते हुए उनके मध्यविन्दुमें अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके केन्द्रमें स्थित होकर ब्रह्माण्डका नियमन और संचालन करते हैं। उनके ही द्वारा दिशाओंका निर्माण, कला, काष्ठा, पल, घटी, प्रहरसे लेकर अब्द, युग, मन्वन्तर तथा कल्पपर्यन्त कालोंका विभाजन, प्रकाश, ऊष्मा, चैतन्य, प्राणादि वायु, झंझावात, विद्युत्, मेघ, वृष्टि, अन्न तथा प्रजावर्गकी सृष्टि और संचालन भी होता है। भगवान् सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप तथा लता-वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥

(श्रीमद्भागवत ५।२०।४६)

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार सूर्य समस्त ग्रह एवं नक्षत्र-मण्डलके अधिष्ठाता तथा कालके नियन्ता हैं। ग्रहोंमें कक्षा-चक्रके अनुसार सूर्यके ऊपर मंगल तथा फिर क्रमशः गुरु तथा शनि हैं तथा नीचे क्रमशः शुक्र, बुध तथा चन्द्रकक्षाएँ हैं। सूर्य, चन्द्र एवं गुरुके कारण पाँच प्रकारके संवत्सरों—वत्सर, परिवत्सर, अनुवत्सर, इडावत्सर तथा संवत्सरका निर्माण होता है।

सूर्य सिंह राशिके स्वामी हैं। मेषके दस अंशमें स्थित होकर उच्च तथा कन्या राशिमें नीच कहलाते हैं। इनका आकार ह्रस्व, समवृत्त, वर्ण क्षत्रिय, प्रकृति पुरुष, संज्ञा क्रूर, गुण सत्त्व, रंग लाल, निवासस्थान देवालय, भूलोक एवं अरण्य, उदयप्रकार पृष्ठोदय, प्रकृति पित्त, दृष्टि आकाशकी ओर, मुँह पूरबकी ओर रहता है। ये कटुकरसके विधाता एवं धातु-स्वरूप हैं तथा अग्नि इनके देवता हैं। माणिक्य धारण करने तथा हरिवंशश्रवणसे सूर्यकृत अरिष्टकी शान्ति होती है। ये ग्रहोंके राजा हैं। इनकी मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पतिसे नैसर्गिक मित्रता, शुक्र तथा शनिसे शत्रुता तथा बुधसे उदासीनता है। सूर्यसे पिता, आत्मा, प्रताप, आरोग्यता और लक्ष्मी आदिका विचार किया जाता है। ये अपनी उच्चराशि, द्रेष्काण, होरा, रविवार, नवांश, उत्तरायण, मध्याह्न, राशिके आरम्भ, मित्रके नवमांश, लग्नसे दसवें भावमें सदा बलवान् होते हैं। सूर्य अशुभ होनेपर अग्निरोग, ज्वरवृद्धि, जलन, क्षय, अतिसार आदि रोगोंसे एवं राजा, अधिकारी, देव, ब्राह्मण और सेवकोंसे चित्तमें व्याकुलता रहती है। पाराशरी चक्रानुसार सूर्यकी महादशा छः वर्ष रहती है।

सूर्य-ग्रहण—अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए अमावास्याको चन्द्रविम्बके ठीक सामने अथवा सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जानेपर उसकी छायासे सूर्यविम्ब जब दिखायी नहीं देता, तब सूर्यग्रहण होता है। प्रायः सूर्यग्रहण अल्पग्रास ही होता है।

आदित्य-सम्बन्धी व्रत

उपासनाके अङ्गोंमें व्रतानुष्ठानका अत्यधिक महत्त्व है। व्रत-निबन्ध-ग्रन्थोंके परिशीलनसे यह स्पष्ट दीखता है कि व्रतसमुदायपर भगवान् सूर्यका सर्वाधिक प्रभाव है। सूर्यके व्रत—षष्ठी, सप्तमी आदि तिथियों, सभी द्वादश संक्रान्तियों

एवं रविवार आदिसे सम्बद्ध हैं तथा अति प्राचीन कालसे ही प्रचलित हैं। पुराणोंमें व्रत-सम्बन्धी विशाल साहित्य उपलब्ध है। भविष्यपुराणको तो एक प्रकारसे 'व्रत-पुराण' ही कहा जा सकता है। उसमें सप्तमीकल्प संक्रान्ति, नक्षत्र तथा वारादिमें प्रायः अनेकों आदित्य-व्रत, उनकी विधियाँ एवं कथाएँ भरी पड़ी हैं।

षष्ठी-व्रतोंमें भाद्रशुक्लकी सूर्यषष्ठी (लोलार्कषष्ठी) मुख्य हैं। सप्तमीव्रतोंमें आषाढ़ शुक्लकी वैवस्वत-सप्तमी, भाद्रशुक्लकी मुक्ताभरण-सप्तमी, मार्गशीर्षशुक्लकी मित्र-सप्तमी, पौष-शुक्लकी मार्तण्ड-सप्तमी, माघकृष्णकी सर्वाप्ति-सप्तमी और शुक्लपक्षकी रथ-सप्तमी (अचला सप्तमी या सूर्यजयन्ती अथवा महाजयन्ती) अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त सूर्यसे सम्बन्धित जया, विजया, निक्षुभार्क, अपराजिता आदि सप्तमी-व्रत भी अधिक मान्य हैं। सूर्यके संक्रान्ति-व्रतोंमें रूप-संक्रान्ति, सौभाग्य-संक्रान्ति, धन-संक्रान्ति, आज्ञा-संक्रान्ति, ताम्बूल-संक्रान्ति, विशोक-संक्रान्ति और मनोरथ-संक्रान्ति आदि प्रसिद्ध हैं।

वार-व्रतोंमें कुष्ठहर आदित्य-व्रत, आशादित्य-व्रत तथा संक्रान्तिके दिन रविवार पड़नेपर आदित्य-हृदयवारव्रत आदि विशेष महत्त्वके माने गये हैं। इस दिन गौकी पूजाकर सूर्यकी ओर मुखकर आदित्यहृदयस्तोत्रके पाठसे सभी कामनाओंकी पूर्ति होती है और अक्षय सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार इन व्रतानुष्ठानोंके अतिरिक्त सूर्योपासनासे सम्बन्धित यज्ञ, दान, तप, (पञ्चाग्नितापन) आदि बहुतसे साधन वेद, पुराण, आगम तथा निबन्ध-ग्रन्थोंमें निर्दिष्ट हैं। दानसागरमें सौर दानोंका एक स्वतन्त्र बड़ा प्रकरण है। इसके अतिरिक्त सूर्यकी प्रसन्नताके अन्य और भी कई साधन हैं, जिन्हें इनके मूल आकर ग्रन्थोंमें ही देखा जा सकता है।

अस्तु, कोई भी व्यक्ति सकाम हो या निष्काम अथवा मोक्षकी इच्छा रखता हो, उसे अनुदिन त्रिकाल संध्याओंमें, रविवार आदिके दिन, सप्तमी, संक्रान्ति आदि नैमित्तिक पर्वों, महोत्सवोंके अवसरपर यथाशक्ति श्रद्धा-भक्ति एवं उपलब्ध सामग्रीद्वारा सूर्यकी पूजा-आराधनासे अपने मनुष्य-जीवनको सफल बनाना चाहिये। भुवनभास्करको कोटिशः नमन है, वे हमें अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलें—'**तमसो मा ज्योतिर्गमय।**'

श्रेष्ठ भागवत कौन हैं ?

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः। वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा। सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥
त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥
विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

(श्रीमद्भागवत)

'जिसके चित्तमें कामना और कर्मोंके बीजका उदय ही नहीं होता, जिसके एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् हैं, वह श्रेष्ठ भागवत है। जिसकी दृष्टिमें शरीर और धनमें अपने-परायेका भेद नहीं है, जो सब प्राणियोंके लिये सम है, शान्त है, वह श्रेष्ठ भागवत है। जिन्होंने अपने मन, इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर पाया है, उन देवताओंके लिये जो अभी ढूँढ़नेकी वस्तु है, भगवान्के उन चरणकमलोंसे, त्रिलोकीकी सम्पत्तिके लिये भी जो आधे क्षण या निमेषतक भी अलग नहीं होते, वे निरन्तर भगवत्स्मरण-परायण पुरुष वे श्रेष्ठ वैष्णव हैं। विवशतासे पुकारनेपर भी जो पापोंका नाश करते हैं, वे भगवान् प्रेमकी रस्सीसे अपने चरण-कमलोंके बँध जानेके कारण स्वयं जिसके हृदयको नहीं छोड़ सकते, वह भक्त श्रेष्ठ भागवत है।'

भगवान् विष्णु

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामोंके वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण-निराकाररूपमें है, उसी प्रकार सगुण-साकाररूपमें भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मप्रभुकी ही शक्तिसे व्याप्त है। उन्हींके उन्मेष और निमेषमात्रसे संसारकी उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण-सगुण दोनोंसे विलक्षण भी हैं। वे चराचर जगत्के सर्जक, पालक-पोषक, संहारक, षडैश्वर्य-सम्पन्न, कर्तुमकर्तु-मन्यथाकर्तुं समर्थ होते हुए भी भक्तोंकी पुकार सुनते आये हैं। व्यापक होनेपर भी वे एकदेशमें अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचार-दृष्टिसे जो निर्गुण है, भावदृष्टिसे वही सगुण बन जाता है; जो अव्यक्त है, वही साधकों-भक्तोंके लिये व्यक्त भी हो जाता है। **'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्'** उनके सगुण-साकार सौम्य चतुर्भुज-स्वरूपका भक्तजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुष करनेके-लिये वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये रहते हैं। राम-कृष्णादि उन्हींके अवतार

भगवान् नारायण श्रीविष्णु अत्यन्त दयालु अकारण ही जीवोंपर करुणा-वृष्टि करते रहते हैं शरणमें जानेपर तो परम कल्याण हो ही जाता है। भगवान्के नामोंका कीर्तन, स्मरण, उनका दर्शन, गुणोंका श्रवण और उनका पूजन करता है, वे भगव भक्तके सभी पाप-तापोंको विनष्ट कर देते हैं।

भगवान् विष्णु अपरिमित गुणोंके आकर हैं तथा सद्गुण हैं। तथापि उनके अनन्त गुणोंमें भक्तवत्सल सर्वोपरि है। चतुर्विध भक्त जिस भावनासे उनकी शरण करते हैं, जिस कामनासे उनका भजन करते हैं, वे उस-उस कामना-भावनाको परिपूर्ण करते हैं। ध्रुव, ग द्रौपदी आदि अनेक भक्तोंकी रक्षा उन्होंने की। जब प्र किसी प्रकारसे हिरण्यकशिपु नष्ट नहीं कर सका तो भग स्वयं नृसिंह-रूपमें प्रकट होकर हिरण्यकशिपुका उद्धार और अपने भक्तकी रक्षा की। उस समय नृसिंह भग विकराल क्रोधको देखकर कोई उनके पास न जा यहाँतक कि श्रीलक्ष्मीजी जो सदैव उनके पास रहती हैं, कहने लगीं—'मैंने प्रभुका ऐसा रूप कभी नहीं देखा तब सभी देवताओंने कहा कि 'जिसके निमित्त भगवान्ने विकराल रूप धारण किया है, उसीको उनके पास चाहिये।' प्रह्लाद निर्भय होकर श्रीभगवान्के पास गये। निर्भीक प्रह्लादको नृसिंह भगवान्ने अपनी लेकर कहा—

क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत्
क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते।
आलोचितं विषममेतदभूतपूर्वं
क्षन्तव्यमङ्ग यदि मदागमने विलम्बः॥

'मेरे प्रिय भक्त प्रह्लाद! कहाँ तो तुम्हारा यह क शरीर और सुकुमार अवस्था और कहाँ उसपर मत जल्लादोंद्वारा दी गयी कठोर यातना। परंतु वे सारी विषम

अबतक मैं देखता ही रह गया। मुझे आनेमें जो विलम्ब हुआ, उसके लिये मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ।'

भक्तवत्सल भगवान्को भक्तोंका कल्याण करनेमें यदि विलम्ब हो जाय तो भगवान् उसे अपनी भूल मानते हैं और उसके लिये उससे क्षमा-याचना करते हैं। उसकी रक्षा करते हैं; क्योंकि उनका नाम लेनेपर भी भक्तको यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता।

प्रह्लाद भी तो भक्तोंके आदर्श ही ठहरे। भगवान् बार-बार कुछ माँगो-कुछ माँगो कहते जा रहे हैं, किंतु वह तो दर्शनमात्रसे कृतार्थ हो चुका था। फिर भी उसने माँगा अवश्य परंतु क्या माँगा? जनम-जनमतक उनके चरण-कमलोंमें अखण्डभक्ति और हृदयमें कामनाके बीजका सर्वथा नाश।

यही है सच्चे भगवद्भक्तका यथार्थ स्वरूप। इसीलिये भगवद्भक्तोंमें प्रह्लादजीका नाम सर्वोपरि है।

भक्त प्रह्लादका चरित्र जिस प्रकार एक ओर भक्तहृदयके सच्चे स्वरूपका दिग्दर्शन कराता है, उसी प्रकार दूसरी ओर भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलताका अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, श्रीराम, कृष्णादि अवतारोंमें अनेकों आख्यान आये हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि भगवान् जीवोंके कल्याणके लिये ही अनेक रूप धारण करते हैं।

वेदोंमें अनेक प्रकारसे इन्हीं भगवान् विष्णुकी अनन्त महिमाका गान किया गया है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।'

(ऋक्० ७।९९।२)

'हे विष्णुदेव! कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न हुआ है और न होनेवाला है, जिसने आपकी महिमाका अन्त पाया हो।'

वैदिक पुरुष-सूक्तमें जिस परमात्मतत्त्वका निरूपण किया गया है, वह विष्णुतत्त्व ही है। श्रुतिसार-सर्वस्व, भक्तवाञ्छा-कल्पद्रुम भगवान् श्रीहरिकी महिमाका सभी शास्त्रोंमें गान हुआ है—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

(हरिवंश० ३।१३२।४५)

इसीलिये भगवान् नारायण ही परम ध्येय हैं, परम उपास्य हैं और यही समस्त शास्त्रोंका सारतत्त्व भी है।

भगवान् विष्णुका स्वरूप-ध्यान

जो शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित, पीताम्बरसे सुशोभित, सुन्दर कमलोंके समान नेत्रोंवाले, वनमाला तथा कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले, श्री एवं भूदेवियोंके साथ नित्य रहनेवाले, शेषशायी नारायणका ध्यान करता है वह मुक्त हो जाता है।

यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

(नरसिंहपु० १६।१७)

'जो सदा उन विश्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, स्वरूपनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।'

यद्यपि भगवान्की रूप-माधुरी और उनका वैभव अपार है, वर्णनातीत है तथापि वाल्मीकि, व्यासादि महर्षियोंने जो उनकी रूप-माधुरीका आस्वाद कराया है, वह अत्यन्त विलक्षण है। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदद्वारा ध्रुवके लिये निरूपित भगवत्स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है—

विष्णुभगवान्के मुखारविन्दपर प्रसन्नता झलक रही है। उनके वदन और नयनोंसे आनन्द छलक रहा है। उनकी नासिका मनोरम है, भ्रू-युगल कमनीय हैं, कपोलयुगल रुचिर हैं। वे तो कामदेवादिसे भी अधिक सुन्दर हैं। वयमें वे तरुण हैं, नित्यकिशोर जो ठहरे। उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग रमणीय हैं। होंठ उनके गुलाबी हैं और अपाङ्गों (नेत्रोंके कोनों) में किंचित् अरुण आभा दृष्टिगत हो रही है। प्रपन्नजनके लिये परम आश्रय हैं। वे 'नृम्ण' अर्थात् स्वजनोंके परमोत्तम धन हैं, चिन्तामणिके समान समस्त अभिलाषाओंके पूरक हैं। शरणागतोंके रक्षक एवं करुणा-वरुणालय हैं। उनके वक्षःस्थलके दक्षिण भागमें श्रीवत्स अर्थात् भृगु-पदका चिह्न सुशोभित है। वे घनश्याम हैं तथा समस्त प्रपञ्चमें अपनी अतर्क्य-शक्तिके प्रभावसे व्याप्त हैं। गलेमें वे आजानुलम्बिनी वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसमें समस्त ऋतुओंके सुन्दर सुगन्धित पुष्प ग्रथित हैं और मध्यमें कदम्ब-कुसुम भी लगा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ हैं और वे अपने चारों

कर-कमलोंमें क्रमशः पाञ्चजन्य शङ्ख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा और एक लीला-पद्म धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकके ऊपर किरीट-मुकुटके रत्नोंकी किरणावली छिटक रही है। कानोंमें उनके मकराकृति कुण्डल चमक रहे हैं। बाहुओंमें केयूर और मणिबन्धों (कलाइयों) में रत्न-खचित कङ्कण विराज रहे हैं। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ-नामक रत्नकी भी शोभाको बढ़ा रही है। कोमल मञ्जुल पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उत्तरीय भी पीताम्बरका ही है। कटितटपर कलित काञ्चीकी छटा अतिशय कमनीय है। चरण-कमलोंमें सुवर्णमय मणि-जटित नूपुर मुखरित हो रहे हैं। कहाँतक कहें, त्रिलोकीमें जितने भी दर्शनीय हैं, उन सबसे अधिक आकर्षक हैं वे। इतने आकर्षक होनेपर भी उनमें बड़ी शान्ति है। अतएव उन्हें एक बार देख लेनेपर दर्शकके मन और नयनोंमें पुनः-पुनः उनका दर्शन करते रहनेकी प्यास-सी बनी रहती है। जो उनका आराधन करते हैं, वे (विष्णुभगवान्) उनके हृदयकमलकी कर्णिकापर अपनी नखमणियोंसे सुशोभित चरण-कमलोंकी स्थापना करके स्वयं भी उनके अन्तःकरणमें निवास करने लगते हैं। वे जब कृपा करके भक्तकी ओर निहारते हैं, तब उनके अधरपर स्मित और नयनोंमें अनुराग भरा रहता है।

इसी प्रकार भगवान्‌की एक मनोरम झाँकीके दिव्य दर्शन उस समय अर्जुनको होते हैं, जब श्रीकृष्ण उन्हें एक मृत ब्राह्मणके उद्धार करनेके लिये ले चलते हैं—

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम्।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम्।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्॥

(श्रीमद्भा० १०।८९।५५-५६)

'उन्होंने सजल जलदकी-सी नील-कान्ति, सुन्दर पीत-वसन, प्रसन्न-वदन, मनोमोहक विशाल नेत्र, विशिष्ट मणियोंसे जटित किरीट-कुण्डलोंकी प्रभासे सुशोभित सहस्र कुन्तल, सुदीर्घ सुन्दर आठ भुजाएँ, शुभ्र कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्सकी शोभासे युक्त, वनमाला-विभूषित, महाप्रभावशाली, विभुस्वरूप पुरुषोत्तमोत्तम श्रीमन्नारायणको शेषनागकी शय्यापर सुखपूर्वक आसीन देखा।'

ऐसे करुणावरुणालय श्रीहरिकी अपने भक्तों-आराधकों-पर परम अनुकम्पा रहती है। भगवान्‌का नाम-स्मरणमात्र ही सब प्रकारके पापोंका नाश कर देता है। इतिहास-पुराणोंमें इस विषयमें अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। यहाँपर दो-एक आख्यान उदाहरणके लिये संक्षेपमें दिये जा रहे हैं—

अजामिलपर कृपा

अजामिलने एक श्रेष्ठ कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया था। वह अनेक अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न था। शील, सदाचार, विनम्रता, सत्यता, पवित्रता—ये सभी गुण उसमें सहज ही विद्यमान थे। उसने शास्त्रोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। गुरुजन एवं अतिथियोंकी सेवामें वह कभी त्रुटि नहीं करता था। उसकी वाणीमें संयम था। गुणज्ञ होकर भी अहंकाररहित होना बहुत कठिन है, परंतु उसे तो अहंकार छू भी नहीं गया था।

उसके पिता नित्य यज्ञ किया करते थे। उनके लिये वनसे फल-फूल, समिधा, कुश आदि हवन-पूजनकी समग्र सामग्री वही लाता था। एक दिन वह यज्ञ-सामग्री लेकर वनसे लौट रहा था। संयोगवश उसकी दृष्टि एक युवकपर पड़ी जो शृङ्गारचेष्टाओंके द्वारा एक वेश्याके साथ आनन्दित हो रहा था। उन दोनोंको इस उन्मत्तावस्थामें देखकर अजामिलने अपने मनको बहुत रोकना चाहा, परंतु कुसङ्ग उसपर अपना प्रबल प्रभाव डाल चुका था। वह बार-बार उस दृश्यको देख-देखकर आनन्दित होने लगा। सच है, कुसङ्गने किसका विनाश नहीं किया।

अजामिल मोहाच्छन्न हो चुका था, उसका विवेक कुण्ठित हो गया। वह उस वेश्याके पास जा पहुँचा। अब तो वेश्याकी प्रसन्नता ही अजामिलकी प्रसन्नता थी। वह प्रसन्न रहे, इसके लिये अजामिल अपना घर-बार लुटाने लगा। उस कुलटाकी कुचेष्टाओंसे प्रभावित हो वह अपनी विवाहिता पत्नीको भी भूल गया एवं उसका परित्याग कर उस वेश्याके घर ही रहने लगा। अब वेश्याके बड़े कुटुम्बके भरण-पोषणका सारा भार अजामिलपर ही था। कुसङ्गके दुष्परिणाम-

स्वरूप सदाचारी एवं शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मपालक अजामिल आज एक कुलटाके कुटुम्ब-पालनके लिये न्यायसे-अन्यायसे जिस किसी प्रकार भी धन मिलता, लाता। बहुत दिनोंतक अपवित्र अन्न खाने तथा उस कुलटाका संसर्ग करनेसे अजामिलकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अब वह धन संचित करनेके लिये कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जुएमें छलसे हरा देता, कभी किसीका धन चुरा लेता। दूसरे प्राणियोंको सतानेमें अब उसे तनिक भी हिचक नहीं थी। इसी प्रकार पाप कमाते-कमाते अजामिल बूढ़ा हो गया। उस वेश्यासे उसके दस संतानें हुईं। उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम था 'नारायण'। वृद्ध अजामिल उसे बहुत प्यार करता था। अब वह अधिक समय उस बच्चेको खिलानेमें ही लगाता था। उसके प्रति उसका प्रगाढ़ ममत्व था।

मृत्यु किसको छोड़ती है? अजामिलकी मृत्युका समय ॥ आया। हाथोंमें फंदे लिये डरावने यमदूत उसे लेने पहुँच ये। उन भयंकर यमदूतोंको देखकर उसने उच्च स्वरसे अपने ्रेय पुत्र नारायणको पुकारा—'नारायण! नारायण!!' उसके ाण प्रयाण कर रहे थे।

'नारायण' नामका उच्चारण सुनते ही भगवान् विष्णुके ार्षद तत्काल अजामिलके पास पहुँच गये और उन्होंने ब्लपूर्वक अजामिलको उन यमदूतोंके पाशसे मुक्त कर दिया। मदूतोंने बहुत कुछ कहा, परंतु कृपासिन्धुकी कृपा अजामिल-र मानो बरस गयी थी। विष्णुपार्षदोंने कहा—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। ८,१८)

'जिस समय इसने 'ना-रा-य-ण'—इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय (केवल उतनेसे ही) इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। यमदूतो! जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं।'

भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम एक अमोघ साधन है। पापी-दुरात्मा अजामिलने 'नारायण' नामके उच्चारण-मात्रसे भगवत्कृपाका अनुभवकर कालान्तरमें विष्णुलोक प्राप्त किया।

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

प्राचीन समयमें पुरुषोत्तमपुरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था भद्रतनु। वह देखनेमें सुन्दर था और पवित्र कुलमें उत्पन्न हुआ था। माता-पिता उसे बचपनमें ही अनाथ करके परलोक चल बसे थे। कोई संरक्षक न होनेसे भद्रतनु युवावस्थामें कुसङ्गमें पड़ गया। युवावस्था, धन, स्वतन्त्रता और कुसङ्ग—इन चारमेंसे एक ही मनुष्यको पतनके मार्गपर ले जानेमें पर्याप्त है, परंतु जहाँ चारों हों, वहाँ तो विनाश आया ही मानना चाहिये। भद्रतनु कुसङ्गके प्रभावसे स्वाध्याय, संयम, नित्यकर्म आदिसे विमुख हो गया। सत्य, अतिथि-सत्कार, उपासनादि सब उसके छूट गये। वह धर्मका निन्दक हो गया, सदा परधन तथा परस्त्रीको पानेकी घातमें रहने लगा। भोगासक्त और काम-क्रोध-परायण हो गया। जुआ, चोरी, मदिरापान प्रभृति दोष उसमें आ गये।

नगरके पास ही सुमध्या नामकी एक सुन्दरी वेश्या रहती थी। बुरे सङ्गमें पड़कर उसका भी पतन हो गया था, किंतु इस वृत्तिसे उसे बहुत घृणा थी। वह अपनी दशापर सदा दुःखी रहती, पछताती। उसके हृदयमें धर्मका भय था, परलोकपर विश्वास था, ईश्वरपर आस्था थी। अपने उद्धारके लिये वह भगवान्‌से सदा प्रार्थना करती रहती थी।

भद्रतनुका सुमध्यापर वासनामय प्रेम था; पर सुमध्या उससे सचमुच प्रेम करती थी। उसने भद्रतनुको अनेक बार समझाना चाहा। जुआ-शराब आदिके भयंकर परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करनेके प्रयत्नमें वह लगी रहती थी। इस ब्राह्मण-युवकके पतनसे उसे बड़ा दुःख होता था।

एक दिन भद्रतनुके पिताका श्राद्ध-दिवस आया। श्रद्धा न होनेपर भी लोक-निन्दाके भयसे उसने श्राद्धकर्म किया, किंतु उसका चित्त सुमध्यामें लगा रहा। श्राद्धकर्मसे छुटकारा पाकर वह वेश्याके यहाँ पहुँच गया। सुमध्या ब्राह्मण-कुमारकी मूर्खतापर हँसने लगी। उसे भद्रतनुपर क्रोध आ गया। उसने कहा—'अरे ब्राह्मण! धिक्कार है तुझे। तेरे-जैसे पुत्रके होनेसे अच्छा था कि तेरे पिता पुत्रहीन ही रहते। आज

और पिताका श्राद्ध-दिन है और तू निर्लज्ज होकर एक वेश्याके यहाँ आया है। मेरे इस शरीरमें हड्डी, मांस, रक्त, मज्जा, मेद, मल, मूत्र आदिके अतिरिक्त और क्या है ? ऐसे घृणित शरीरमें तूने क्यों सौन्दर्य मान लिया है ? मैं तो वेश्या हूँ, अधम हूँ, मुझपर आसक्त होनेमें तो तेरी अधोगति ही होनी है। यही आसक्ति यदि तेरी भगवान्में होती तो पता नहीं अबतक तू कितनी ऊँची स्थितिको पा लेता। जीवनका क्या ठिकाना है, मृत्यु तो सिरपर ही खड़ी है। कच्चे घड़ेके समान काल कभी भी जीवनको नष्ट कर देगा। तू ऐसे अल्पजीवनमें क्यों पापमें लगा है ? विचार कर। मनको मुझसे हटाकर भगवान्में लगा। भगवान् बड़े दयालु हैं, वे तुझे अवश्य अपना लेंगे।'

सुमध्याके वचनोंका भद्रतनुपर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगा—'सचमुच मैं कितना मूर्ख हूँ, एक वेश्यामें जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है। ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर भी मैं पाप करनेमें ही लगा रहा। जब मृत्यु निश्चित है और मृत्युके पश्चात् पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके पास जाना भी निश्चित ही है, तब क्यों मैं और पाप करूँ ? मैंने तो जप-तप, अध्ययन, पूजन, हवन-तर्पण आदि कोई सत्कर्म किये नहीं। मुझसे भगवान्की उपासना भी नहीं हुई, अब मेरी क्या गति होगी ? कैसे मेरा पापोंसे छुटकारा होगा।' इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ वह सुमध्याको पूज्यभावसे प्रणाम करके लौट आया। सुमध्याने भी उसी समयसे वेश्या-वृत्ति छोड़ दी और वह भगवान्के भजनमें लग गयी।

भद्रतनु पश्चात्ताप करता हुआ मार्कण्डेय मुनिके समीप गया। वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर उससे बड़े स्नेहसे कहा—'तुम्हारी बुद्धि पापसे अलग हुई, यह तुमपर भगवान्की कृपा है। जो पहले पापी रहा हो, पर पापप्रवृत्ति छोड़कर भगवान्के भजनका निश्चय कर ले, तो वह भगवान्का प्रिय पात्र है, भगवान् ही उसे पापसे दूर होनेकी सद्बुद्धि देते हैं। तुमने अनेक जन्मोंमें भगवान्की पूजा की है, अतः तुम्हारा कल्याण शीघ्र होगा। मैं इस समय एक अनुष्ठानमें लगा हूँ, अतः तुम दान्तमुनिके पास जाओ। वे सर्वज्ञ महात्मा तुम्हें उपदेश करेंगे।'

भद्रतनु वहाँसे दान्तमुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी महापापी हूँ। मैंने सदा पाप ही किये हैं। आप सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं। कृपया मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका उपदेश कीजिये।'

दान्तमुनिने कृपापूर्ण स्वरमें कहा—'भाई! भगवान्की कृपासे ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। मैं तुम्हें वे उपाय बतला रहा हूँ, जिनसे मनुष्य सहज ही भव-बन्धनसे छूट जाता है।' मुनिने भद्रतनुको पाखण्डका त्याग तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, असत्य और हिंसाका त्याग—ये दो 'निषेध' और दया-शान्ति-दमका सेवन करते हुए भगवान्की पूजा, भगवन्नामोंका जप तथा अहोरात्रव्रत, पञ्चमहायज्ञ और भगवद्गुणानुवाद-श्रवण—ये चार 'विधि' रूप उपदेश किये और **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस द्वादशाक्षर मन्त्र-जपसे शीघ्र ही भगवद्दर्शन होंगे—यह भी बताया।

दान्तमुनिसे उपदिष्ट होकर भद्रतनु एकान्तमें जाकर मन लगाकर श्रद्धापूर्वक, निष्ठासे भगवान्का भजन तथा मन्त्र-जप करने लगा। भगवान्की अनन्य भक्तिसे भद्रतनुका हृदय शुद्ध हो गया। अतः उसपर कृपा करनेके लिये उसके सम्मुख दयामय प्रभु श्रीविष्णु प्रकट हो गये।

भगवान्का दर्शन करके भद्रतनुको बड़ा आनन्द हुआ, वह गद्गदस्वरसे स्तुति करने लगा। भगवान्की महिमाका

वर्णन करते हुए उसने भगवद्भक्तोंके भावका बड़ा सुन्दर वर्णन किया। उसने कहा—'भगवन्! जिनका भजन करके लोग समस्त विपत्तियोंसे छूट जाते हैं और परमपद प्राप्त कर लेते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धन, स्तुति, दान, तपस्याके बिना केवल भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो कृपापूर्वक गौ, ब्राह्मण और साधुओंका नित्य हित करते हैं; जो दीन, अनाथ, वृद्ध और रोगियोंका दुःख दूर करते हैं; जो देवता, नाग, मनुष्य, राक्षस और कीट-पतङ्गमें भी समानभावसे विराजमान हैं; जो पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र—सबमें समदृष्टि हैं; जिनके तनिक लीलापूर्वक रोष दिखलानेपर पर्वत भी तृणके समान हो जाता है और जिनके तुष्ट होनेपर तृण भी पर्वताकार हो जाता है—उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जैसे पुण्यात्मा पुरुषका मन पुण्यमें, पिताका पुत्रमें तथा सती स्त्रीका अपने पतिमें लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन आपमें लगा रहे। जैसे कामीका मन स्त्रीमें, लोभीका धनमें, भूखेका भोजनमें, प्यासेका जलमें, गरमीसे व्याकुलका चन्द्रमाकी शीतलतामें और जाड़ेसे ठिठुरतेका सूर्यमें लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन आपमें लगा रहे।'*

भगवान्‌की कृपाका अनुभव करके भद्रतनु विह्वल होकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। भगवान्‌ने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्‌का दर्शन करते ही भद्रतनुकी मुक्तिकी इच्छा दूर हो गयी थी। वह तो भक्तिका भूखा हो उठा था। उसने भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया, फिर भी मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ। आपके चरणोंमें जन्म-जन्म मेरा अनुराग अविचल रहे।'

जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो।

(पद्मपुराण, क्रियायोग० १७। ९१)

भगवान्‌ने उसे 'सख्य-भक्ति' प्रदान की। उसके अनुरोधपर उसके गुरु दान्तमुनिको भी भगवान्‌ने दर्शन दिये। दान्तमुनिने भी भगवान्‌से भक्तिका ही वरदान माँगा। गुरु-शिष्य दोनोंको कृतार्थ करके भगवान् अन्तर्धान हो गये। भक्तिमय जीवन बिताकर अन्तमें गुरु दान्तमुनि और शिष्य भद्रतनु दोनों ही भगवान्‌के परम धामको प्राप्त हुए।

भगवान्‌के विविध अवतार

सत्त्वगुणसम्पन्न जीव साधनामें उन्नति करते-करते जब इस दशापर पहुँच जाते हैं कि श्रीभगवद्दर्शनके बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता, तब श्रीभगवान् अपने दिव्यधामसे अवतीर्ण होकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका हेतु है। बालक ध्रुवके समाराधनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसपर अनुग्रह प्रदर्शित करनेके लिये मधुवनमें अवतीर्ण हुए थे। इस अनुग्रह-प्रदर्शनको गीतामें 'साधुपरित्राण' कहा गया है।

संतोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते समय श्रीभगवान् कभी-कभी संतोंके विरोधी और विपक्षियोंका निग्रह भी करते हैं, जैसे कि गजेन्द्रके उद्धारके साथ ही ग्राहका निग्रह भी किया। गीतामें इस निग्रहको 'दुष्कृतकारियोंका विनाश' कहा गया है।

लीलाविभूतिके गुणमय विलासमें जब धर्मका अपकर्ष तथा अधर्मका उत्कर्ष हो जाता है, तब भी श्रीभगवान् यहाँ सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिये आया करते हैं। इस प्रकारके अवतारके उदाहरण हैं श्रीराम, जिन्होंने अपने आदर्श सच्चरित्रोंके द्वारा वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय और अन्ताराष्ट्रिय मर्यादाओंकी स्थापना करके मानवको उन्नत जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा दी।

इस प्रकार अवतारके तीन हेतु हैं—पहला अनुग्रह अथवा साधुपरित्राण, दूसरा निग्रह अथवा दुष्कृतकारियोंका विनाश और तीसरा धर्मसंस्थापन। जिस प्रकार कोई सम्राट् अपने साम्राज्यमें सज्जनोंको पुरस्कारद्वारा प्रोत्साहित करके और दुर्जनोंको तिरस्कारद्वारा निरुत्साहित करके प्रजामें अभ्युदयशील सामञ्जस्य स्थापित करता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी यथासमय अवतीर्ण होकर यथायोग्य निग्रहानुग्रह प्रदर्शित

* पुण्यात्मनां यथा पुण्ये निजपुत्रे यथा पितुः। यथा पतौ सतीनां च तथा त्वयि मनोऽस्तु मे॥
यूनां चित्तं यथा योनौ लुब्धानां च यथा धने। क्षुधितानां यथान्ने च तथा त्वयि मनोऽस्तु मे॥
घर्मार्तानां यथा चन्द्रे शीतार्तानां यथा रवौ। तृष्णार्तानां यथा तोये तथा त्वयि मनोऽस्तु मे॥

(पद्मपुराण, क्रियायोग० १७। ३९—४१)

करते हुए अपनी सृष्टिमें धर्मकी स्थापना किया करते हैं। समस्त धर्मोंका पर्यवसान श्रीभगवत्साक्षात्कारमें ही है। भगवत्साक्षात्कार तभी हो सकता है, जब भगवान्‌में निष्ठा हो। निष्ठा तभी होती है, जब अनुराग हो। अनुराग उसीमें होता है, जिसकी ओर आकर्षण होगा। अतएव जीवजातको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ही श्रीभगवान् अवताररूपमें ऐसी-ऐसी मनोमोहिनी क्रीडाएँ करते हैं कि जिन्हें सुनकर श्रोताओंका मन उनमें बलात् आसक्त हो जाता है—

'भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥'

(*श्रीमद्भागवत १०। ३३। ३७*)

बालक, युवक और वृद्ध, पण्डित और मूर्ख, राजा और प्रजा, स्त्री और पुरुष, विषयी और विरागी—सभीका भगवल्लीला-श्रवणसे उधर आकर्षण होता है, जो परिणाममें प्रपञ्चातीत परमात्मातक पहुँचा देता है। ज्ञान-विज्ञानविनाशन कामको गीतामें आचार्य रामानुजके अनुसार बुद्धिसे भी बलवत्तर बताया गया है—**'यो बुद्धेः परतस्तु सः॥'** (३। ४२)।

उसी महापाप, महावैरी, दुष्पूर कामको भक्तजन अनायास जीत सकें, इसलिये भगवान् अपने अवतार-चरित्रोंद्वारा 'मदन-दमन' लीलाएँ करते हैं। उदाहरणके लिये कोटि-कन्दर्पदर्पहा श्रीकृष्णकी योगमायाद्वारा प्रसाधित रासलीलाका दर्शन करके उस समय अनेक देवादि भी भगवन्निष्ठ होकर कृतकृत्य हो गये और अब भी उस परम उज्ज्वल लीलाका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करनेवालोंके मदनरूपी हृदयरोगका स्वयमेव शमन हो जाता है—

'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥'

(*श्रीमद्भागवत १०। ३३। ४०*)

नित्यविभूतिसे लीलाविभूतिमें श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि रूपोंमें श्रीभगवान्‌का अवतार आगम-ग्रन्थोंमें 'विभव' कहलाता है। श्रीमत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम (जामदग्न्य), राम (दाशरथि), कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस अवतार प्रसिद्ध हैं।

श्रीवराह, सनकादि, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि—ये बाईस 'अवतार' कहलाते हैं। ह हयग्रीवकी संख्या मिलानेसे चौबीस होते हैं। आगम अन्यान्य अवतारोंके भी नाम उपलब्ध होते हैं।

अवतारके कतिपय भेद

विभवके दो भेद हैं—'स्वरूपावतार' 'आवेशावतार'। जब श्रीभगवान् स्वरूपमें अर्थात् र अवतीर्ण होते हैं, तब उनका वह रूप 'स्वरूपावतार' क है, जैसे दाशरथि श्रीराम, किंतु जब किसी जीवा परमात्माकी शक्तिका आवेश होता है, तब उसे 'आवेश कहते हैं, जैसे जामदग्न्य राम।

जिस रूपमें परब्रह्म परमात्मा अपने समग्र माधुर्यको लिये हुए ही अवतीर्ण होते हैं, उसे 'पूर्णावतार हैं, किंतु जिस रूपमें आवश्यकतानुसार वे अपने प्र आंशिक प्राकट्य ही दिखलाते हैं, उसको 'अंशावतार' हैं। अंशके तुरीय भागको 'कला' कहते हैं—

'अंशस्तुरीयो भागः स्यात् कला तु षोडशी मता।

(*सात्त्वततन्त्र ३*

अतएव अंशावतारका अवान्तर-भेद होनेसे कलाव उसीके अन्तर्भूत समझना चाहिये।

श्रीलक्ष्मीजीका अवतार

जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-स अवतार लिया करते हैं, उसी प्रकार भगवती श्रीलक्ष्मीज अवतार लिया करती हैं। यों तो श्री और विष्णु एकतत्त्व तथापि भक्तानुग्रहके लिये वे दो रूपोंमें प्रकाशित होत श्रीजीका अवतार शास्त्रसिद्ध है। पुराणका वचन है—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥

(*विष्णुपुराण १। ९। १*

नित्य परिकरका अवतार

कभी-कभी श्रीभगवान्‌के अस्त्र-शस्त्र, वाहन, प धाम आदिका भी अवतार होता है। लक्ष्मणजी शेष अवतार हैं। भरतजी सुदर्शनके अवतार हैं और शत्रुघ्न पाञ्चजन्यके अवतार हैं, जैसा कि शास्त्रका वचन है—

शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतो सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी।
बभूवतुश्चक्रदरौ च दिव्यौ कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ॥

(अध्यात्मरा० उत्तर० ९। ५७)

जरासंध-सेनाद्वारा आक्रान्त मथुराकी रक्षाके उद्देश्यसे श्रीकृष्णभगवान् अधर्मध्वंसका विचार कर ही रहे थे कि उनके दिव्य रथ आकाशसे अवतीर्ण हुए। वे सूर्यके समान प्रकाशमान थे, समस्त उपयोगी सामग्रीसे सम्पन्न थे। शस्त्रास्त्र भी वहाँ सुसज्जित थे। श्रीमद्भागवत (१०। ५०। ११-१२) का वचन है—

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥
आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया।

श्रीभगवान्के आयुध, वाहन, धाम—सभी दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं। नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं, अवतारवेलामें भी दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर वे पुरुषविग्रहमें भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥

(वा० रा०, उत्तर० १०९। ७)

इस प्रकार सर्वसमर्थ श्रीभगवान् सर्वसुलभ होनेके लिये कभी अकेले, कभी सपरिकर प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते हैं और धर्मसंस्थापन करते हैं, असज्जनोंका निग्रह करते हैं और सज्जनोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं। उस अवतारकी रूपमाधुरी, गुणमाधुरी और लीला-माधुरीका श्रवण, स्मरण, कथा-कीर्तन और ध्यान परममङ्गलप्रसविता हैं।

श्रीविष्णुभगवान्के व्यूह

परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिसे परे हैं, मानव-मनोभूमिसे अतीत हैं। किंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ये प्रकृतिसे परे ही परे हैं, प्रकृतिमें नहीं। परमात्मा प्रकृतिसे परे भी हैं और प्रकृतिमें भी हैं। त्रिपाद्-रूपसे वे प्रकृतिसे परे हैं और एकपाद्रूपसे प्रकृतिमें हैं। इस प्रकार परमात्माकी दो विभूतियाँ हैं। एक तो त्रिपाद्विभूति और दूसरी एकपाद्विभूति। त्रिपाद्विभूतिको 'नित्यविभूति' कहते हैं और एकपाद्विभूतिको 'लीलाविभूति'। इस एकपाद्विभूतिमें श्रीभगवान् जगत्के उदय, विभव और लयकी लीला किया करते हैं। आत्माराम, आप्तकाम परमात्माका प्रकृतिके साथ यह विहार चिरन्तन है, अनादि-अनन्त है। इस विहार-स्थलीके देश-कालका ज्ञान मानव-मनीषामें नहीं समाता। अर्थात् मनुष्य यह नहीं जान सकता कि भगवान् जिस प्रकृति-नटीके साथ अपना महारास कर रहे हैं, उसका परिमाण केवल इतना है, क्योंकि प्रकृतिके असंख्य ब्रह्माण्ड-भाण्डोंको अहर्निश बनाने-बिगाड़नेके अनवरत कार्यको समग्ररूपमें जाननेकी शक्ति किसी व्यक्तिके मस्तिष्कमें नहीं है। इसी प्रकार कोई यह भी नहीं जान सकता कि प्रकृतिके साथ भगवान्का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ और कबतक चलेगा। मनुष्य केवल यह कहकर शान्त हो जाता है कि यह विहार अनादिकालसे चला आ रहा है और अनन्त कालतक चलता रहेगा।

इस जगत्की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि, स्थिति और प्रलय। जड प्रकृतिमें परमात्माके ईक्षणसे—संकल्पसे कभी तो विकासोन्मुख परिणाम हुआ करता है, जिसे 'सृष्टि' कहते हैं और कभी विनाशोन्मुख, जिसे प्रलय कहते हैं। सृष्टि और प्रलयके मध्यकी दशाका नाम 'स्थिति' है। जब परमात्मा जगत्की रचना करते हैं, तब वे 'प्रद्युम्न', जब पालन करते हैं, तब 'अनिरुद्ध' और जब संहार करते हैं तब 'संकर्षण' कहलाते हैं। इन रूपोंका नाम 'व्यूह' है।

संकर्षण

श्रीपरतत्त्व भगवान्के यद्यपि अनन्त कल्याणगुण हैं तथापि उनमेंसे छः मुख्य हैं। उन्हीं छः गुणोंमेंसे जब वे ज्ञान और बलका प्रकाशन करते हैं, तब उनका नाम संकर्षण होता है। संकर्षणमें अन्य चार गुणोंका अर्थात् वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेजका निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण पद्मरागके समान है। ये नीलाम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें क्रमशः हल, मूसल, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजाका लक्षण है। ये जीवके अधिष्ठाता बनते हुए ज्ञानगुणसे शास्त्रका प्रवर्तन करते हैं और बलनामक गुणसे जगत्का संहार।

प्रद्युम्न

जब वे ही भगवान् वीर्य और ऐश्वर्यका प्रकाशन करते हैं, तब उनका नाम'प्रद्युम्न' होता है। इनमें ज्ञान, बल, शक्ति और

तेजका केवल निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण रविकिरणके समान है। ये रक्ताम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें धनुष, बाण, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मकर इनकी ध्वजाका चिह्न है। मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता होते हुए ये वीर्य-नामक गुणसे धर्मका प्रवर्तन करते हैं और ऐश्वर्य नामक गुणसे जगत्‌की सृष्टि।

अनिरुद्ध

जब परब्रह्म परमात्मा शक्ति और तेजका प्रकाशन करते हैं तब उनका नाम 'अनिरुद्ध' होता है। इनमें ज्ञान, बल, वीर्य और ऐश्वर्यका निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण नील है। ये शुक्लाम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मृग इनकी ध्वजाका चिह्न है। अहंकारके अधिष्ठाता होते हुए ये तेज-नामक गुणसे आत्मतत्त्वका प्रवर्तन करते हैं और शक्ति-नामक गुणसे जगत्‌का भरण-पोषण।

व्यूहान्तर

इस प्रकार त्रिव्यूहका वर्णन हुआ। कभी-कभी षाड्गुण्यमूर्ति परतत्त्व श्रीभगवान् भी व्यूहोंमें सम्मिलित होते हैं। उस समय वे 'व्यूह वासुदेव' कहलाते हैं। ये शशि-गौर और पीताम्बरधारी हैं एवं चार कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। गरुड इनकी ध्वजाका चिह्न है। इस प्रकार भगवान्‌के चार व्यूह होते हैं। इन व्यूहोंके और भी रूपान्तर हैं। केशव, नारायण और माधव—ये तीन वासुदेवके विलास हैं। केशव स्वर्णाभ हैं और चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्यामवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनीलके समान वर्णवाले हैं और चार गदाएँ धारण करते हैं।

गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये तीन संकर्षणके विलास हैं। गोविन्द चन्द्र-गौर हैं और चार शार्ङ्गधनुष धारण करते हैं। विष्णु पद्म-किञ्जल्कवर्ण हैं और चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्जवर्ण हैं और चार मूसल धारण करते हैं।

त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्नके विलास हैं। त्रिविक्रम अग्निवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्याभ हैं और चार वज्र धारण करते हैं। श्रीधर पुण्डरीकवर्ण हैं और चार पट्टिश धारण करते हैं।

हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर—ये तीन अनिरुद्धके विलास हैं। हृषीकेश तडिदाभ हैं और चार मुद्गर धारण करते हैं। पद्मनाभ सूर्याभ हैं और शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष तथा खड्ग धारण करते हैं। दामोदर इन्द्रगोपवर्ण हैं और चार पाश धारण करते हैं।

उपर्युक्त विवेचनका सारांश यह है कि एकपाद्विभूतिमें लीलानिमित्त धारण किये हुए परमात्माके अनेक रूप 'व्यूह' कहलाते हैं।

श्रीविष्णुके आभूषण, आयुध, पार्षद, वाहन आदि

भगवान् विष्णु सबमें व्याप्त हैं, इसलिये वे समस्त रूपोंमें स्वरूपतः अभिन्न हैं। उनके अङ्ग, आभूषण, आयुध, पार्षद, वाहन और धाम सब-के-सब सम्पूर्णरूपसे उन्हींके स्वरूप हैं। चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं, उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे अगम्य हैं। वे समस्त जगत्‌के निर्माता होनेपर भी उससे परे हैं। उनके स्वरूप और लीला-रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपटभावसे उनके चरण-कमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है। उनकी चरण-कृपासे ही उनके स्वरूप, रूप और समस्त चरित्रका रहस्य समझमें आता है।

पुराणोंमें विष्णुके साकार-रूपका बड़ा ही रमणीय चित्रण प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुका वर्ण वर्षाके लिये उन्मुख सजल मेघके समान है। वे चतुर्भुज हैं। वे सूर्यके समान तेजस्वी और देवताओंके स्वामी हैं। उनके दाहिने हाथोंमेंसे एकमें सुवर्ण और रत्नोंसे भूषित शङ्ख शोभित है तो दूसरेमें सुगन्धपूर्ण पद्म विलसित है। बायें हाथोंमेंसे एकमें चक्र प्रतिष्ठित है, जिसकी तेजोमयी आकृति सूर्यमण्डलके समान है तथा बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करनेवाली कौमोदकी गदा दूसरेमें शोभित है (पद्म०, भूमि० ८६। ८०-८३)।

भगवान् विष्णुकी ग्रीवा शङ्खके समान है, मुख गोल है तथा नेत्र बड़े ही मनोहर हैं, दाँत रत्नोंके समान चमकीले हैं। बाल घुँघराले हैं, होंठ बिम्बाफलके समान लाल हैं, मस्तकपर मनोरम किरीट है। कौस्तुभमणिसे उनकी कान्ति विशेषरूपसे

बढ़ गयी है, सूर्यके समान तेजोमय कुण्डल हैं, पुण्यमय श्रीवत्सचिह्न देदीप्यमान है। उनके श्याम विग्रहपर बाजूबंद, कंगन और मोतियोंके हार नक्षत्रोंके समान प्रभासित हैं। स्वर्णिम पीताम्बरसे उनकी सुषमा द्विगुणित हो गयी है। रत्नजटित मुँदरियोंसे शोभित अङ्गुलियोंसे भगवान् विष्णुका सौन्दर्य निखर उठता है। समस्त आयुधोंसे सम्पन्न और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित श्रीहरि गरुडकी पीठपर विराजमान हैं—

सर्वायुधैः सुसम्पूर्णो दिव्यैराभरणैर्हरिः।
वैनतेयसमारूढो लोककर्ता जगत्पतिः॥

(पद्म०, भूमि० ८६। ९१)

भगवान् विष्णुके उपर्युक्त रूप-सौन्दर्य और भाव-माधुर्य तथा लीला-ऐश्वर्यका रसास्वादन प्रत्यक्ष-रूपसे अधिकारी भक्तको सहज सुलभ होता है।

आभूषण-परिधान

भागवत-सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ सुन्दर, सरस तथा मधुर होता है। भगवान् सुन्दरतम और मधुरतम हैं, उनकी सुन्दरता किसी विशेष आभूषण या परिधानसे बढ़ जाती हो—यह बात नहीं है, वास्तवमें होता तो यह है कि उन पदार्थोंका सौन्दर्य विशिष्ट हो उठता है, जिनका उपयोग भगवान्‌के समलङ्करणके लिये होता है। भगवान् अनन्त हैं, उनका रूप-सौन्दर्य अनन्त है, इसी प्रकार उनके शृङ्गार-उपकरण और प्रसाधन भी अनन्त हैं। भगवान् विष्णुके चरण-नूपुरसे मुकुटपर्यन्त समस्त आभूषण असाधारण महत्त्वसे सम्पन्न हैं तथा उन्हींके अभिन्न अङ्ग अथवा रूप हैं, सब-के-सब अभेद हैं। अङ्गविशेषमें अलग-अलग रूपमें अभिव्यक्त होकर भी स्वरूपतः एक हैं।

भगवत्स्वरूपभूत जिस तेजसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा वाक् आदि तेज भी 'प्रकाश' प्राप्त करते हैं, उस (चिन्मय आलोक) को परमेश्वरकी उपासना करनेवाले 'कौस्तुभमणि' कहते हैं—

येन सूर्याग्निवाक्चन्द्रतेजसा स्वस्वरूपिणा॥
वर्तते कौस्तुभाख्यमणिं वदन्तीशमानिनः।

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २३-२४)

श्रीविष्णुपुराणमें उल्लेख है कि इस जगत्‌के निर्लेप तथा निर्गुण और निर्मल आत्माको—शुद्ध क्षेत्रज्ञ स्वरूपको श्रीहरि कौस्तुभमणिरूपसे धारण करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी वर्णन है कि कौस्तुभमणि भगवान्‌के गलेमें जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योतिकी प्रतीक है—

'कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः।'

(१२। ११। १०)

देवता और दैत्योंके संयुक्त श्रमसे अमृतमन्थनकालमें समुद्रसे इस पद्मरागमणिकी उत्पत्ति हुई और श्रीहरिने तत्काल ही अपने वक्षःस्थलको इससे अलङ्कृत करनेकी इच्छा की। यह उनके वक्षका अलङ्कार है—

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः।
तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ॥

(श्रीमद्भागवत ८। ८। ५)

श्रीकौस्तुभमणिकी दिव्य ज्योति ही भगवान्‌के रूपमें व्यवस्थित विष्णुके वक्षमें परम माङ्गलिक श्रीवत्स-चिह्न है—

'तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः॥'

(श्रीमद्भागवत १२। ११। १०)

'गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्' (२२-२३)में ब्रह्माके प्रति श्रीनारायणकी उक्ति है कि 'लक्ष्मीका निवासभूत जो श्रीवत्स है, वह मेरा स्वरूप ही है। वह लाञ्छन अर्थात् चन्द्राकृति रोमपङ्क्तिसे सुशोभित है। ब्रह्मवादी उसे श्रीवत्सलाञ्छन कहते हैं।'

श्रीविष्णुके वक्षःस्थलपर अङ्गुष्ठ-प्रमाण श्वेत बालोंका दक्षिणावर्त भँवरका-सा वह चिह्न श्रीवत्सरूपमें स्वीकार किया जाता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें वर्णन मिलता है कि जिस समय नर-नारायण धर्मपर आरूढ़ होकर गन्धमादन पर्वतपर तप कर रहे थे, उसी समय प्रजापति दक्षके यज्ञका आरम्भ हुआ। दक्षने यज्ञमें रुद्रके लिये भाग नहीं दिया। रुद्रने यज्ञका विध्वंस कर डाला। उन्होंने क्रोधपूर्वक अपने प्रज्वलित त्रिशूलका प्रयोग किया। वह त्रिशूल यज्ञको भस्मकर बदरिकाश्रममें नर-नारायणके निकट जा पहुँचा और नारायणकी छातीमें बड़े वेगसे आ लगा। उससे निकलते हुए तेजकी लपटसे नारायणके केश मूँजके समान रंगवाले हो गये। नारायणको इसीलिये 'मुञ्जकेश' कहा जाता है (महाभा०

१२ । ३४२ । ११२)। उन्होंने हुंकारसे त्रिशूलको हटा दिया और वह शंकरके हाथमें चला गया। इसपर रुद्रदेव उन ऋषियोंपर टूट पड़े। तब विश्वात्मा नारायणने अपने हाथसे उन आक्रमणकारी रुद्रदेवका गला पकड़ लिया, जिससे वह नीला हो गया। इसी कारण भगवान् रुद्र 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन देवदेवोंको युद्धमें संलग्न देखकर ब्रह्माजीने दोनोंको समझाया। फलतः रुद्रने क्रोधाग्निका त्याग कर दिया। नारायण प्रसन्न होकर रुद्रदेवसे गले मिले। श्रीहरिने कहा—

अद्यप्रभृति श्रीवत्सः शूलाङ्को मे भवत्वयम्।
मम पाण्यङ्कितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ३४२ । १३४)

'आजसे आपके शूलका यह चिह्न मेरे वक्षःस्थलमें वत्सके नामसे प्रसिद्ध होगा और आपके कण्ठमें मेरे हाथके चिह्न अङ्कित होनेके कारण आप 'श्रीकण्ठ' भी कहलायेंगे।'

श्रीविष्णु अपनी सत्त्व-रज आदि गुणोंवाली मायाको मालाके रूपमें अपने कण्ठमें धारण करते हैं—

'स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

श्रीविष्णुकी वैजयन्तीमाला मुक्ता, माणिक्य, मरकत, नील और हीरक पञ्चमणिमयी है। यह पञ्चतन्मात्राओं और भूतोंके संघातके रूपमें स्वीकृत है।

श्रीविष्णु अ, उ, म्—इन तीन मात्रावाले प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं—

'ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

श्रीनारायणकी स्वीकृति है कि मेरी चार भुजाएँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार केयूरोंसे विभूषित हैं—

'धर्मार्थकामकेयूरैर्दिव्यैर्दिव्यमयेरितैः।

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २७)

सत्त्व, रज, तम और अहंकारके प्रतीकरूपमें ही श्रीहरिकी भुजाएँ वर्णित हैं। धर्म-ज्ञानादियुक्त सत्त्वगुण ही उनके रूप पर्यङ्कपर बिछे हुए कमलके रूपमें स्वीकृत हैं—

'धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १३)

वेदको ही उनका 'पीताम्बर' कहा जाता है। उनके नवनीलनीरदकान्तिमय शरीरपर पीताम्बर बड़ा ही मनोरम दीख पड़ता है—

'वासश्छन्दोमयं पीतम्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

भक्तोंको भगवान्का पीताम्बर बहुत प्रिय होता है। भक्तराज भीष्मपितामहने अन्त-समयमें पीताम्बर-लसित चतुर्भुज श्रीकृष्णविग्रहके सौन्दर्य-रसास्वादनके द्वारा अपनी आँखें तृप्त कीं—

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥

(श्रीमद्भागवत १ । ९ । ३०)

भगवान् विष्णुके हाथमें शोभित पद्म सम्पूर्ण विश्वका प्रतीक है—

'पद्मं विश्वं करे स्थितम्।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य—इन छः पदार्थोंका नाम ही '*लीलाकमल*' है, जिसे भगवान् अपने हाथमें धारण करते हैं—

'भगवान् भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १८)

क्षर—सम्पूर्ण विनाशी शरीर और उत्तम जीव—ये दोनों भगवान् विष्णुके कानोंके झलमलाते कुण्डल हैं—

'क्षरोत्तरं प्रस्फुरन्तं कुण्डलं युगलं स्मृतम्।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २९)

श्रीमद्भागवतमें वर्णन मिलता है कि देवाधिदेव भगवान् सांख्य और योगरूप मकराकृतकुण्डल धारण करते हैं—

'बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले।'

(१२ । ११ । १२)

भगवान् विष्णु सब लोकोंको अभय करनेवाले ब्रह्मलोकको मुकुटके रूपमें धारण करते हैं।

'मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १२)

भगवान्का कूटस्थ सत्स्वरूप ही किरीट कहा जाता है। स्वयं भगवान्की उक्ति है—

'कूटस्थं सत्त्वरूपं च किरीटं प्रवदन्ति माम्।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २८)

भगवान् विष्णुके समस्त आभूषण, वेष-भूषा आदि परम वन्दनीय हैं। उनके सौन्दर्यका अङ्कन विशिष्ट पुण्याचरणके फलस्वरूप किसी-किसी प्राणीके नेत्रमें उतरता है तो उतर जाता है।

आयुध

भगवान्के आयुध अनन्त और असंख्य हैं। उनमेंसे केवल कुछका ही विवरण प्रस्तुत किया जाता है। शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष, बाण, परशु, पाश, खड्ग आदि भगवान् विष्णुके प्रधान आयुध हैं।

भगवान् विष्णुका शङ्ख 'पाञ्चजन्य' कहलाता है। पाञ्चजन्य शङ्ख जलतत्त्वरूप कहा गया है—

'अपां तत्त्वं दरवरम्'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १४)

भगवान् विष्णु आयुधके रूपमें सुदर्शनचक्र धारण करते हैं। पुराणोंमें भगवान्के इस आयुधकी महत्तापर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसे तेजस्तत्त्वरूप बताया गया है—

'तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम्।'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १४)

अग्निपुराणके ३०६वें अध्यायमें सुदर्शनचक्रके ध्यान आदिका वर्णन उपलब्ध होता है। जो इस प्रकार है— 'भगवान् चक्राकार कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी आभा अग्निसे भी तेजस्विनी है। उनके मुखमें दाढ़ें हैं। वे चतुर्भुज होकर भी अष्टभुज हैं। अपने हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल, अङ्कुश, पाश एवं धनुष धारण किये हैं। उनके केश पिङ्गलवर्ण और नेत्र लाल हैं। चक्र श्रीविष्णुका स्वरूप है और उनसे अभिन्न है।'

वामनपुराणमें कथा आती है कि सुदर्शनचक्रकी प्राप्ति भगवान् विष्णुको शिवजीसे हुई थी। श्रीदामानामक एक विख्यात असुर था। उसने भगवान् विष्णुसे श्रीवत्सको हरनेकी इच्छा की। उस असुरके वधके लिये भगवान् विष्णु शंकरके पास गये। जगन्नाथ श्रीहरि हिमालयके रमणीय स्थलपर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। शिवने प्रसन्न होकर विष्णुको सुदर्शनचक्र और परम पद प्रदान किया। कालचक्रके समान सुदर्शनचक्र प्रदान कर शंकरने कहा—

'यह श्रेष्ठ आयुध सभी आयुधोंका विनाशक है। इसका नाम 'सुदर्शन' है। इसके बारह अरे और नौ नाभियाँ हैं। यह वेगमें गरुडके समान है। इन अरोंमें शिष्ट पुरुषोंकी रक्षाके लिये देवता, मेष आदि बारह राशियाँ तथा छहों ऋतुएँ रहती हैं। चन्द्र, सूर्य, वरुण, इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति, वायु, अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि, तपस्य और उग्रतप—ये बारह देव रहते हैं। इनमें चैत्रसे फाल्गुनतक बारहों मास रहते हैं। आप इस आयुधसे देवशत्रुओंका संहार कीजिये।···· यह अमोघ है, देवराज (इन्द्र) इसकी पूजा करते हैं। मैंने यह मन्त्रमय आयुध तपोबलसे धारण कर रखा है।' (वामनपु० ८२ ।२५-२६,३०)

गदा आयुधकी उत्पत्ति और कार्य आदिपर पुराणोंमें अमित प्रकाश डाला गया है। भगवान्की उक्ति है कि आदिविद्याको ही गदा समझना चाहिये, जो मेरे हाथमें सदा स्थित रहती है—

'आद्या विद्या गदा वेद्या सर्वदा मे करे स्थिता।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

भगवान् विष्णु मन, इन्द्रिय और शरीर-सम्बन्धी शक्तियोंसे युक्त प्राणतत्त्वरूप कौमोदकी गदा धारण करते हैं—

'ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत्।'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १४)

वायुपुराणके १०९ वें अध्यायमें गदाकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—प्राचीन कालमें वज्रसे भी परम कठोर 'गद' नामका एक असुर था। ब्रह्माकी प्रार्थनापर उसने अपनी हड्डियाँ उन्हें दे दीं। ब्रह्माके कहनेपर विश्वकर्माने उन हड्डियोंकी एक अद्भुत गदा बनायी और उसे स्वर्गलोकमें स्थापित किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें घोर तपस्या कर देवताओं और ब्रह्मासे 'हेति' नामक असुरने अस्त्र-शस्त्र, मनुष्य, सुदर्शनचक्र आदिसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त किया तथा देवताओंको पराजित कर इन्द्रपद छीन लिया। उसके वधके लिये देवताओंने गदा विष्णुको समर्पित कर दी। हरिने सबसे पहले उस गदाको धारणकर हेति असुरका विनाश किया—

'दधार तां गदामादौ देवेभ्यो गदाधरः।'

([illegible])

इसलिये भगवान् 'आदिगदाधर' कहलाते हैं।

भगवान्‌के खड्गका नाम नन्दक है। खड्ग आकाशके समान निर्मल एवं आकाशरूप है—

'नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिम्'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १५)

विष्णुपुराणके प्रथम अंशके बाईसवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'भगवान् जो निर्मल खड्ग धारण करते हैं, वह अविद्यामय कोशसे आच्छादित विद्यामय ज्ञान है।' भगवान्‌की ढाल तमोमय—अज्ञानरूप है। श्रीमद्भागवत (१२। ११। १५)में वर्णन है—

'चर्म तमोमयम्।'

भगवान्‌का शार्ङ्गधनुष कालरूप कहा गया है—

'कालरूपं धनुः शार्ङ्गम्'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १५)

भगवान्‌ने स्वीकार किया है कि आदिमाया ही शार्ङ्ग नामक धनुष है—

'आद्या माया भवेच्छार्ङ्गम्'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

शार्ङ्गधनुषकी उत्पत्तिका आख्यान महाभारतके अनुशासनपर्वके १४१वें अध्यायमें दाक्षिणात्य पाठके अनेक श्लोकोंमें वर्णित है—भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा कि 'युगान्तरमें कण्वमुनिने विकट तपस्या की। उनके मस्तकपर कालक्रमसे बाँबी जम गयी। ब्रह्माने प्रसन्न होकर वर दिया तथा तपस्याके स्थलपर ही उन्होंने एक बाँस देखा। उस बाँसके द्वारा जगत्‌का उपकार करनेके उद्देश्यसे कुछ सोचकर ब्रह्माने उस (वेणु) को हाथमें ले लिया और उसे धनुषके उपयोगमें लगाया। उन्होंने मेरे और भगवान् विष्णुके लिये तत्काल दो धनुष बनाकर दिये। मेरे धनुषका नाम 'पिनाक' हुआ और श्रीहरिके धनुषका नाम 'शार्ङ्ग'। उस वेणुके अवशेषसे एक तीसरा धनुष बनाया गया, जिसका नाम 'गाण्डीव' हुआ।

पिनाकं नाम मे चापं शार्ङ्गं नाम हरेर्धनुः।
तृतीयमवशेषेण गाण्डीवमभवद्धनुः॥

(महाभा०, अनु० १४१)

'शार्ङ्गधनुष' की गणना दिव्य धनुषोंमें की गयी है। गाण्डीव धनुष वरुणका है, विजय धनुष देवराज इन्द्र धारण करते हैं और शार्ङ्ग भगवान् विष्णुके हाथमें शोभित होता है—

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिविचारिणाम्।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः॥
शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः॥

(महाभारत, उद्योग० १५८। ५)

उपर्युक्त तीनों धनुष दिव्य कहे गये हैं। 'शार्ङ्ग' वैष्णव धनुषके रूपमें प्रसिद्ध है।

इन्द्रियोंको ही भगवान्‌के बाणोंके रूपमें कहा गया है—

'इन्द्रियाणि शरानाहुः'

(श्रीमद्भा० १२। ११। १६)

मुसल, पाश, अङ्कुश आदि अन्य वैष्णव आयुध हैं। पद्मको यद्यपि भगवान्‌के हाथका शृङ्गारपरक आभरण कहा जाता है, तथापि आयुधके रूपमें भी इसकी मान्यता है।

द्वारपाल तथा पार्षद

अष्टकुल नाग विष्णुके द्वारपालके रूपमें परिगणित हैं, ये महासर्प एलापत्र, अनन्त, महापद्म, शङ्कु, अंशुकम्बल, तक्षक, कर्कोटक और वासुकि हैं। ये द्वारपाल विष्णुके आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं। ये अपने हृदयमें सदा भगवान्‌का ध्यान करते रहते हैं। भगवान्‌के धाममें इनकी कृपाके बिना प्रवेश नहीं हो पाता। भगवान्‌की कीर्तिका वर्णन करना इनका स्वभाव है। शेष अथवा अनन्त भगवान् आदिपुरुष नारायणके पर्यङ्करूपमें क्षीरसागरमें विराजमान रहते हैं। ये अपने सहस्र मुखोंसे शेष भगवान्‌का अनवरत गुणानुवाद करते रहते हैं। ये जीवको भगवान्‌की शरणमें ले जाते हैं। ये भगवान्‌के नित्य परिकरके रूपमें स्वीकृत हैं। समस्त देवगणोंसे वन्दित शेष-नामधारी भगवान् अनन्त अशेष भूमण्डलको मुकुटके समान धारण करते हैं। ब्रह्माकी आज्ञासे शेष पृथ्वीको अपने अनन्त फणोंपर रखकर विराजमान हैं—

अधोभूमौ वसत्येवं नागोऽनन्तः प्रतापवान्।
धारयन् वसुधामेकः शासनाद् ब्रह्मणो विभुः॥

(महाभा०, आदि० ३६। २४)

भगवान् विष्णुके पार्षद असंख्य हैं, उनमेंसे सोलह पार्षद प्रमुख हैं। इनके नाम क्रमशः विष्वक्सेन, सुषेण, जय, विजय, बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद,

कुमुदाक्ष, शील और सुशील हैं। भगवान्‌के प्रधान पार्षद 'विष्वक्सेन' हैं।

भगवान्‌के पार्षद भगवद्धाममें ही निवास करते हैं। उन पार्षदोंका उज्ज्वल आभासे युक्त श्यामशरीर पीले वस्त्रोंसे शोभित रहता है और शतदल कमलके समान कोमल नेत्र हैं। उनके प्रत्येक अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है। वे कोमलताकी मूर्ति हैं। सभी पार्षदोंके चार-चार भुजाएँ हैं। यद्यपि वे स्वयं तेजस्वी हैं, तथापि मणिजटित सुवर्णके प्रभामय आभूषण धारण किये रहते हैं। उनकी छबि मूँगे, वैदूर्यमणि और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान है। उनके कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कण्ठमें मालाएँ शोभित रहती हैं।

भगवान्‌के सभी द्वारपाल और प्रमुख पार्षद आदि धन्य हैं, जिन्हें नित्य भगवत्सांनिध्य सहज-सुलभ रहता है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, अजेय हैं। पर उनके नित्यपार्षद उनकी रक्षा और सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। इन वैष्णव पार्षदोंकी चरण-धूलि परम वन्दनीय है। वे प्रभुकी कृपाके असाधारण पात्र हैं।

वाहन, पर्यङ्क और सिंहासन

भगवान् विष्णुके प्रमुख वाहनके रूपमें सुपर्ण—गरुडकी गणना की जाती है। गरुड नित्यमुक्त और अखण्डज्ञान-सम्पन्न माने जाते हैं। उनको 'सर्ववेदमयविग्रह' कहा जाता है। श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि बृहत् और रथन्तर नामक सामवेदके दो विभाग ही गरुडके पंख हैं और उड़ते समय इन पंखोंसे सामगानकी ध्वनि निकलती है—

'आकर्णयन् पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥'

(३।२१।३४)

यद्यपि गरुड भगवान्‌के नित्य परिकर हैं, तथापि कश्यप और विनतासे जन्म होनेसे उनको 'वैनतेय' कहा जाता है। भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका उल्लेख करते हुए श्रीमद्भगवद्-गीता (१०।३०)में अपने-आपको 'वैनतेय' कहा है—

'वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥'

तीनों वेदोंका नाम ही 'गरुड' है। वेद परमात्माका वहन करते हैं, इसलिये उन्हें 'वाहन' कहा जाता है। वे गरुडके पर्याय स्वीकार किये गये हैं।

'त्रिवृद् वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥'

(श्रीमद्भा० १२।११।१९)

महाभारतके आदिपर्वके अनेक अध्यायोंमें गरुडका विस्तृत आख्यान प्राप्त होता है। एक बार अमृत लेकर गरुड आकाशमें उड़ते जा रहे थे कि भगवान् विष्णुका उन्हें साक्षात्कार हो गया। भगवान्‌ने उनको वर देनेकी इच्छा प्रकट की। गरुडने वर माँगा कि 'मैं आपकी ध्वजामें स्थित रहूँ तथा अमृत पीये बिना ही अजर-अमर हो जाऊँ।' भगवान् विष्णुसे ऐसा वर माँगकर गरुडने कहा कि मैं आपको भी वर देना चाहता हूँ। इसपर भगवान्‌ने उनसे अपना वाहन होनेका वर माँगा। गरुड भगवान्‌के वाहन हो गये।

भगवान्‌ने गरुडको अपना ध्वज बना लिया—उनको ध्वज-पर स्थान दिया और कहा—'इस प्रकार तुम मेरे ऊपर रहोगे।'

गरुडको 'सुपर्ण' कहा जाता है। गरुड अमृत लेकर बड़े वेगसे उड़ते जा रहे थे कि इन्द्रने रोषपूर्वक वज्रसे उनपर आघात किया। गरुडने विनम्रतासे मधुर वाणीमें यह कहकर कि 'जिनकी हड्डियोंसे यह वज्र बना है, उन महर्षि (दधीचि) का मैं सम्मान करूँगा, आपका और आपके वज्रका भी आदर करूँगा। इसलिये अपना एक पंख, जिसका आप कहीं अन्त न पा सकेंगे, त्याग देता हूँ।' पंख त्याग दिया। उसको देखकर लोगोंने कहा कि 'जिसका यह सुन्दर पंख-पर्ण है, वह पक्षी 'सुपर्ण' नामसे विख्यात हो।'

हृष्टानि सर्वभूतानि नाम चक्रुर्गरुत्मतः ।
सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति ॥

(महाभा०, आदि० ३३।२३।२४)

क्रियाशक्तियुक्त मन ही भगवान्‌का रथ है। तन्मात्र रथके बाहरी भाग हैं। वर-अभय आदि मुद्राओंसे अभयदान, वरदान आदिरूपमें क्रियाशीलता—गति प्रकट होती है।

.... आकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥

(श्रीमद्भा० १२।११।१६)

मूलप्रकृति ही भगवान्‌की शेषशय्या है, जिसपर वे विराजमान रहते हैं—

'अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।'

(श्रीमद्भा० १२।११।१३)

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१। ६। ३०)में वर्णन मिलता है कि मेरुपर्वतके पूर्वभागमें लवणसमुद्रके मध्यमें सलिलान्तःसंस्थित विष्णुलोक अपने ही प्रकाशसे विभासित है। उसमें भगवान् वर्षा ऋतुके चार मासोंमें लक्ष्मीद्वारा सेवित होकर शेषपर्यङ्कपर शयन करते हैं—

तत्र स्वपिति घर्मान्ते देवदेवो जनार्दनः।
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्यङ्कमाश्रितः॥

पद्मपुराणके उत्तरखण्डके २२८वें अध्यायमें भगवान् विष्णुके सिंहासनका सुन्दर वर्णन मिलता है। वैकुण्ठधामके अन्तर्गत अयोध्यापुरीमें भगवान्‌के अन्तःपुरमें स्थित दिव्य मण्डप है, यह रत्ननिर्मित है। मण्डपके मध्यभागमें रमणीय सिंहासन है, यह सर्ववेदस्वरूप है, शुभ है। वेदमय धर्मादि देवता सिंहासनको घेरे रहते हैं। धर्म-ज्ञान-ऐश्वर्य, वैराग्य, ऋक्-यजुः-साम-शक्ति, आधार-शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा-शक्ति तथा धर्मादिकी शक्ति सब उपस्थित रहते हैं। सिंहासनके मध्यभागमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। कूर्म, नागराज अनन्त, गरुड, छन्द, सम्पूर्ण वेदमन्त्र उसमें पीठरूप धारण कर स्थित रहते हैं। यह दिव्य योगपीठ है। इसके मध्यमें अष्टदल कमल है, जो अरुणोदयकालीन सूर्यके समान है। इसके बीचमें 'सावित्री' नामकी कर्णिका है, जिसपर देवताओंके स्वामी परमपुरुष विष्णु लक्ष्मीके साथ विराजमान रहते हैं—

ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान्॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २२८। २७)

भगवान् विष्णु अनन्त हैं, उनके वाहन आदि असंख्य हैं। समस्त जीवशक्ति—चेतन-समूह ही उनका वाहन है। ऐसे अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण सभीके आराध्य हैं—उपास्य हैं।

परम प्रभुकी प्रार्थना

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

'जो सबसे पूर्व ब्रह्माको रचते हैं तथा उनके लिये वेदोंको प्रकाशित करते हैं, मैं मुमुक्षु होकर आत्मबुद्धिसे प्रकाशमान उन परम देवताके शरणापन्न होता हूँ। हे जगत्‌के कारण सत्स्वरूप परमात्मा! तुझे नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! तुझे नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! तुझे नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! तुझे नमस्कार है। तुम्हीं एक शरणमें जाने योग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हो, तुम्हीं एक पूजा करने योग्य हो। तुम्हीं एक जगत्‌के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हो। तुम्हीं एक जगत्‌के कर्ता, पालक, और संहारक हो। तुम्हीं एक निश्चल और निर्विकल्प हो। तुम भयोंको भय देनेवाले हो, भयंकरोंमें भयंकर हो, प्राणियोंकी गति हो और पावनोंको पावन करनेवाले हो। अत्यन्त उच्च पदोंके तुम्हीं नियन्त्रण करनेवाले हो, तुम परसे पर हो, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हो। हम तुम्हारा स्मरण करते हैं, हम तुमको भजते हैं। हम तुम्हें जगत्‌के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। सत्स्वरूप, निरालम्ब तथा एकमात्र शरण लेने योग्य आश्रय इस भवसागरकी नौकारूप ईश्वरके हम शरण जाते हैं।'

परात्पर भगवान् शिव

भगवान् शिव और उनका नाम समस्त संसारके मङ्गलोंका मूल है। शिव, शम्भु और शंकर—ये तीन उनके मुख्य नाम हैं और तीनोंका अर्थ है—कल्याणकी जन्मभूमि, सम्पूर्ण रूपसे कल्याणमय, मङ्गलमय और परमशान्तमय। उपनिषदोंमें विशेष महत्त्वपूर्ण तथा मुमुक्षुओंके लिये सार-सर्वस्व माण्डूक्य-उपनिषद् मुख्य रूपसे इनकी ही महिमामें पर्यवसित होता है। वह ओंकारके भी चारों वर्णोंको इन्हींका स्वरूप मानता है। वेद तथा आगमोंमें भगवान् शिवको विशुद्ध ज्ञानस्वरूप बतलाया गया है। समस्त विद्याओंके मूलस्थान भगवान् शिव ही हैं। उनका यह दिव्य ज्ञान किसी स्वाध्याय आदि साधनसे उत्पन्न न होकर स्वतःसम्भूत है। इसीलिये वे शान्ति एवं तृप्तिके मूर्तिमान् विग्रह बताये गये हैं और समस्त शक्तियोंके भी मूल आश्रय एवं एकमात्र स्थान भी वे ही हैं।

ज्ञान, बल, इच्छा और क्रिया-शक्तिमें शिवके समान कोई भी दूसरा तत्त्व नहीं है, फिर उनसे अधिक होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान् शिव सबके मूलकारण, मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एवं ईश्वरके भी ईश्वर होनेके कारण महामहेश्वर भी कहे गये हैं, उनका कोई भी कारण, आधार या नियन्ता नहीं है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेता० उप० ६। ८)

भगवान् शिव ईश्वरोंके भी ईश्वर, सभी देवताओंके भी परम दैवत या आराध्यदेव हैं, सभी स्वामियोंके स्वामी, परसे पर, एकमात्र स्तुति और नमस्कार करने योग्य हैं। वे नित्य, अनादि और अजन्मा हैं, सभी भासमान ज्योतियोंके मूलभूत प्रकाशक हैं। वे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनोंसे परे तुरीय परमेश्वर, पूर्णप्रकाशयुक्त हैं। उनका आदि और अन्त न होनेसे वे अनन्त हैं। वे सभी पवित्रकारी पदार्थोंको भी पवित्र करनेवाले हैं, इसलिये भी वे समस्त कल्याण, मङ्गल और विशुद्ध ज्ञानपुञ्जोंके भी मूलकारण कहे गये हैं। इस प्रकार भगवान् शिव सर्वोपरि परात्पर तत्त्व हैं।

वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषण, श्मशानवासी कहे जानेपर भी त्रैलोक्याधिपति, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूपोंसे आविर्भूत, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं।

आशुतोष एवं अवढरदानी होनेके कारण वे अत्यन्त शीघ्र ही प्रसन्न होकर पूर्वोपार्जित सम्पूर्ण दोष-पापोंको क्षमा कर शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान-विज्ञान तथा अपने आपको देकर अपने नामोंकी सार्थकता सूचित करते हैं। वेदोंमें भी पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, शतरुद्रिय आदिके द्वारा भगवान् शंकर ही स्तुत होते हैं। आगमोंमें शैवागम, पाशुपतागम, शाक्तागम, गाणपत्यागम, सुप्रभेदागम तथा अंशुमद्भेदागम आदिमें भगवान् शिवके विभिन्न स्वरूपोंके ध्यानके साथ, उनके परिवार, परिकर, परिच्छेद, मन्दिरनिर्माण, निर्वाणदीक्षा, शिवलिंगोंके भेद तथा उनकी पूजा-उपासनापर ही प्रकाश प्राप्त

होता है। सम्पूर्ण विश्वमें शिवमन्दिर, ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भूलिंग तथा छोटे-छोटे चबूतरों या प्रतिमाओंपर भगवान् शंकरकी जितनी अधिक मात्रामें पूजा-उपासना देखी जाती है, उससे भी यह सिद्ध होता है कि भगवान् शिव देवाधिदेव महादेव हैं।

पुराणोंमें विशेष रूपसे शिव, लिंग, खण्डात्मक तथा स्कन्धात्मक स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वायु, ब्रह्माण्ड, अग्नि तथा सौरादिमें शिवके अनुग्रहपूर्ण कथा, आख्यान एवं उपाख्यानोंके साथ-साथ उनकी सरलतम उपासना-पद्धति, मन्त्रजप, शतनाम, सहस्रनाम और उनके अमृतमय, मङ्गलमय चरित्रोंका निरूपण हुआ है। केवल देवता ही नहीं, अपितु ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, सिद्ध, महात्मा, विद्याधर, असुर, नाग, किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिवके निरन्तर ध्यान-संस्तवन, पूजन तथा यजन आदि करते रहते हैं और उनकी कृपासे शीघ्र सिद्धि लाभ प्राप्त कर अन्तमें शिवसायुज्यको भी प्राप्त कर लेते हैं।

प्रायः सभी पुराणोंमें उनके दिव्य एवं अनुग्रहपूर्ण अलौकिक रमणीय चरित्रोंका चित्रण हुआ है। सृष्टिके आरम्भमें दक्ष प्रजापतिने अपनी सद्गुणवती पुत्री सतीका विवाह भगवान् शंकरके साथ सम्पन्न कराया, जिसमें सभी ब्रह्मादि देवताओंकी सम्मति एवं उपस्थिति थी। कुछ दिनों बाद सतीने अपने पिता दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें अपने पति भगवान् सदाशिवकी निन्दा सुनकर तथा अपमान देखकर अपना शरीर योगाग्निमें जलाकर भस्म कर डाला। प्राण-परित्यागके समय उन्होंने भगवान् नारायणसे वर माँगा कि 'वे अगले जन्ममें भी भगवान् शिवकी पत्नी हों।' वरदानके फलस्वरूप वे दूसरे जन्ममें हिमाचलके घरमें उनकी पत्नी मेनाके गर्भसे उनकी द्वितीय पुत्री गङ्गाकी लघुभगिनीके रूपमें आविर्भूत हुईं। हिमवान्ने बड़े लाड़-प्यारसे उनका पालन किया। देवर्षि नारदके उपदेश एवं निर्देशसे वे भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगीं। उनकी तपस्या सिद्ध हुई और ब्रह्मादि सभी देवताओंने उन्हें अभीष्ट सिद्धिका वरदान दिया। सप्तर्षियोंने शुभ मुहूर्त निश्चयकर भगवान् शंकर तथा हिमवान् दोनोंको सूचना दी। बड़े समारोहके साथ सभी देवता, ऋषियों, मुनियों तथा शिवगणोंके सांनिध्यमें भगवान् शंकरने पार्वतीका पाणिग्रहण किया और वे पार्वतीके साथ अपने निवास-स्थान कैलासमें चले आये। कुछ दिनों बाद भगवान् कार्तिकेयका जन्म हुआ, जिन्होंने तारकासुरका वध किया। उनके द्वितीय पुत्र आदिपूज्य देवता भगवान् गणपति हैं, जिनके लीलामय चरित्रोंका वर्णन गणेशपुराण तथा मुद्‌गल आदि पुराणोंमें बड़े विस्तारसे हुआ है।

परिवार, पार्षद, निवास एवं आयुध

भगवान् शिवका परिवार बहुत बड़ा है। वहाँ सभी द्वैतोंका अन्त दीखता है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ, चौंसठ योगिनियाँ, मातृकाएँ तथा भैरवादि इनके सहचर तथा सहचरी हैं। अनेक रुद्रगण, जिनके अध्यक्ष वीरभद्र हैं, इनके साथ रहते हैं। माता पार्वतीकी सखियोंमें विजया आदि प्रसिद्ध हैं। गणपति-परिवारमें उनकी पत्नी सिद्धि, बुद्धि तथा क्षेम और लाभ दो पुत्र हैं, उनका वाहन मूषक है। भगवान् कार्तिकेयकी पत्नी देवसेना तथा वाहन मयूर है। भगवती पार्वतीका वाहन सिंह कहा गया है तथा स्वयं भगवान् शिव धर्मावतार नन्दीपर आरूढ होते हैं।

वाण, रावण, चण्डी, रिटि तथा भृङ्गी आदि उनके मुख्य पार्षदोंमें परिगणित हैं। इनके द्वाररक्षकके रूपमें कीर्तिमुख प्रसिद्ध हैं, उनकी पूजाके बाद ही मन्दिर आदिमें प्रवेश तथा भगवान् शिवकी पूजा करनेका विधान है, इससे भगवान् शंकर अति प्रसन्न होते हैं।

यद्यपि भगवान् शिव सर्वत्र व्याप्त हैं तथापि काशी एवं कैलास—ये दो उनके मुख्य निवास-स्थान कहे गये हैं। भक्तोंके हृदय-प्रदेशमें तो वे सर्वदा निवास करते ही हैं।

उनके अनेक आयुध हैं जैसे—त्रिशूल, टंक (छेनी), कृपाण, वज्र, अग्नियुक्त कपाल, सर्प, घण्टा, अंकुश, पाश तथा पिनाक धनुष। इन सबमें भी त्रिशूल और पिनाक—ये उनके दो मुख्य आयुध हैं।

विविध नाम

भगवान् शंकरके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। समुद्र-मन्थनके समय वासुकिनागके मुखसे भयंकर विषकी ज्वालाएँ उठीं और समुद्रके जलमें मिश्रित होकर वे कालकूट विषके रूपमें प्रकट हो गयीं। वे ज्वालाएँ आकाशमें व्याप्त होने लगीं, जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि और चराचर जगत्

जलने लगा। सभी देवगणों तथा ऋषि-मुनियोंको दु:खित देखकर भगवान् विष्णुके अनुरोधपर उन्होंने तत्काल उस विषको अपनी योगशक्तिसे आकृष्ट कर कण्ठमें धारण कर लिया। इसीसे वे नीलकण्ठ कहलाये। उसी समय समुद्रसे अमृतकिरणोंसे युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हें देवताओंके अनुरोधपर भगवान् शंकरने उस उद्दीप्त गरलकी शान्तिके लिये अपने ललाटपर धारण कर लिया और चन्द्रशेखर, शशिशेखर यह नाम पड़ गया। अपनी जटाओंमें गङ्गा धारण करनेसे वे गङ्गाधर कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त शिवके अनन्त नाम हैं।

वाहन

स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शंकरका वाहन बनूँ और तब दीर्घकालतक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्तमें भगवान्ने उनपर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमें उनके सदाके लिये वाहन बन गये—**'वृषो हि भगवान् धर्मः।'**

सुर और असुर दोनोंके उपास्य

भगवान् शिव देवताओंके उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होंने अनेक असुरों-अन्धक, दुन्दुभी, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदिको भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मदसे दुराचारको प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर, भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदिका संहारकर उनका उद्धार भी कर दिया। गजासुरका गजाजिन ही भगवान् शिवके अजिन-वस्त्रके रूपमें सुशोभित होता है। कुबेरादि लोकपालोंको आपकी ही कृपासे उत्तर दिशाका स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षोंका स्वामित्व, राजाधिराज तथा राजराजका महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शिवके विविध स्वरूप, ध्यान एवं उपासना

भगवान् शिवके नाम-रूप अनन्त हैं। शास्त्रोंमें उनकी उपासना भी निर्गुण, सगुण, लिंगविग्रह तथा प्रतिमाविग्रहमें परिकरसहित अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपोंमें उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति तथा योगीश्वर आदि अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शिवका एक विशिष्ट रूप लिंगरूपमें भी है, जिसमें ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भूलिंग, नर्मदेश्वर, अन्य रत्नादि तथा धात्वादि लिंग एवं पार्थिवादि लिंग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपोंकी भी उपासना भक्तजन बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं।

पञ्चमूर्ति

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ हैं। ये ही उनके पाँच मुख भी कहे जाते हैं। शिवपुराणके अनुसार शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीडा, दूसरी तपस्या, तीसरी लोकसंहार, चौथी अहंकारकी अधिष्ठात्री और पाँचवीं ज्ञानप्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है।

अष्टमूर्ति

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं। पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चलिंगोंकी दक्षिण भारतमें विशेष उपासना होती है। क्षेत्रज्ञमूर्तिकी पशुपतिनाथके रूपमें आराधना की जाती है।

ज्योतिर्लिंग

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, परमेश्वर (ओंकारेश्वर), केदारेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक, वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर तथा घुश्मेश्वर—ये प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिंग हैं।

भगवान् शिवके तत्तत्स्वरूपपरक यद्यपि अनेक ध्यान-स्वरूप शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन नाम-रूपोंसे उनकी उपासना भी होती है, उनमेंसे कुछ ध्यान यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

जिन भगवान् शङ्करके ऊपरकी ओर गजमुक्ताके समान किंचित् श्वेत-पीत वर्ण, पूर्वकी ओर सुवर्णके समान पीतवर्ण,

दक्षिणकी ओर सजलमेघके समान सघन नीलवर्ण, पश्चिमकी ओर स्फटिकके समान शुभ्र उज्ज्वल-वर्ण तथा उत्तरकी ओर जपापुष्प या प्रवाल-वर्णके समान रक्तवर्ण—इस प्रकार पाँच मुख हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका मुकुट बालचन्द्रसे सुशोभित है, जिनके शरीरकी प्रभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके समान है और जिनके दस हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टंक (छेनी), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अङ्कुश, पाश तथा अभयमुद्रा विराजमान हैं, ऐसे उपमारहित, भव्य, उज्ज्वल भगवान् सदाशिवके विग्रहका ध्यान करना चाहिये।

२. महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

भगवान् मृत्युञ्जय अपने ऊपरके दो हाथोंमें स्थित दो कलशोंके द्वारा आर्त व्यक्तिके सिरको अमृतजलसे आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंमें क्रमशः मृगमुद्रा तथा वलयाकार रुद्राक्षमाला लपेटे हुए हैं, दो हाथोंको गोदमें रखकर उसपर अमृत-कलश लिये हुए हैं तथा अन्य दो हाथोंसे उसे ऊपरसे ढके हुए हैं। इस प्रकार आठ हाथोंसे युक्त, सुन्दर कैलास-पर्वतपर स्थित, स्वच्छ कमलपर विराजमान और ललाटपर बालचन्द्रमाको मुकुटके रूपमें धारण किये हुए ऐसे तीन नेत्रोंवाले देवाधिदेव भगवान् मृत्युञ्जय महादेवका मैं ध्यान करता हूँ।

३. महेश

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलङ्कारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभय है, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करे।

४. अर्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शंकरके सम्मिलित स्वरूपको, जिनके अङ्गोंमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बालचन्द्रमा तथा मुकुट विराजित हैं, मैं प्रणाम करता हूँ।

उपासना

वेदादि शास्त्रों, शैवपुराणों, शैवागमों तथा पाशुपतादि आगमोंमें भगवान् शिवकी मूर्त तथा अमूर्त एवं लिंग-विग्रहोंकी आध्यात्मिक और प्रतिमारूपमें उपासना-पद्धतिपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। सगुण रूपमें भी इनके विग्रहोंकी अर्चा-पूजाके लिये अनेक स्वतन्त्र निबन्ध-ग्रन्थ, शिवार्चन-चन्द्रिका, लिंगार्चनचन्द्रिका, पूजापङ्कज-भास्कर, दक्षिणामूर्तिसंहिता तथा महामृत्युञ्जय-पञ्चाङ्ग आदि भी प्राचीन कालसे प्रचलित रहे हैं। प्रतिमा-निर्माण-कलाओंमें इनकी अघोर, तत्पुरुष, मृत्युञ्जय आदिके निर्माणपर विस्तारसे बतलाया गया है। शिवलिंग-निर्माणकी प्रक्रिया भी बड़ी जटिल है, अग्निपुराण आदिमें इसपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। शुद्ध रीति एवं विधानके अनुसार लिंग-निर्माणमें मान आदिकी दृष्टिसे पर्याप्त गणनाकी आवश्यकता होती है, किंतु नर्मदेश्वर आदिमें इसकी आवश्यकता नहीं होती। ज्योतिर्लिंग तो स्वयं ही प्रकट हुए माने जाते हैं और उनकी उपासना प्राचीन कालसे होती आ रही है, यही बात स्वयम्भू लिंगोंमें भी है।

इसके अतिरिक्त अध्यात्मदृष्टिसे शिवकी अष्टमूर्ति-रूपमें उपासना पुराणों तथा आगमोंमें निरूपित है।

मन्त्र-उपासनामें पञ्चाक्षरी **(नमः शिवाय)** और महामृत्युञ्जयका बहुत अधिक प्रचार है। मृत्युञ्जय मन्त्रके जप-अनुष्ठानादिसे सभी प्रकारके मृत्युभय दूर होकर दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है। साथ ही अमरत्वकी प्राप्ति भी होती है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राष्ट्रभीति, महामारी-शान्ति, अन्य उपद्रवोंकी शान्ति तथा अभीष्ट-प्राप्तिके लिये रुद्राभिषेक आदि अनुष्ठान किये जाते हैं। साथ ही पार्थिव-पूजाका भी विशेष महत्त्व है।

प्रायः अधिकांश शिवोपासनाओंमें रुद्राष्टाध्यायीका पाठ, शैवमन्त्रका जप, पञ्चोपचार या षोडशोपचार-पूजन और जलधारासे तथा कभी-कभी विशेष-विशेष कामनाओंकी पूर्तिके लिये इक्षुरस, पञ्चामृत एवं रत्नोदक आदिसे भी शिवाभिषेकका विधान है। महारुद्र, कोटिरुद्र तथा अतिरुद्रादि यज्ञ-यागादि भी विशेष अवसरोंपर सम्पन्न किये जाते हैं। इसमें भी मुख्यरूपसे रुद्राध्यायके मन्त्रोंसे विधिपूर्वक आहुतियाँ दी जाती हैं।

शिवोपासनामें जहाँ रत्नोंसे परिनिर्मित रत्नेश्वर आदि शिवलिंगोंकी पूजामें अपार समारोहके साथ विशाल वैभवका [illegible]योग होता है, वहाँ सरलताकी दृष्टिसे केवल बिल्वपत्र, जल, [illegible]क्षत और मुखवाद्य (मुखसे बम-बमकी ध्वनि निकालना) [illegible]े भी परिपूर्णता मानी जाती है और भगवान् शिवकी कृपा [illegible]हज उपलब्ध हो जाती है। इसीलिये वे आशुतोष और [illegible]दारशिरोमणि कहे गये हैं।

[illegible]शवोपासनाके कुछ आवश्यक नियम

भगवान् शिवके विशिष्ट उपासकोंके लिये कुछ आवश्यक नियमोंका विधान है, जिसमें त्रिपुण्ड्रधारण, भस्मावलेपन, रुद्राक्षमालापर मन्त्रजप तथा रुद्राक्ष-धारण भी आवश्यक माना जाता है। भगवान् शिवको धत्तूरपुष्प, श्वेतमन्दार और बिल्वपत्र, जलधारा, शतरुद्रियका पाठ तथा पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप अति प्रिय है, इससे वे शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इनकी पूजामें केतकी-पुष्पका निषेध किया गया है।

प्रदक्षिणा

भगवान् शिवकी प्रदक्षिणा भी विशिष्ट रूपसे होती है। मन्दिरके पीछे जल-नालिका-प्रवाहको सोमसूत्र कहा जाता है। वहाँसे चलकर मन्दिरके सामने नन्दीश्वरके पीछेतक जाया जाता है और पुनः वहाँसे जाकर सोमसूत्रतक लौटकर आना होता है। भगवान् शिव इस प्रदक्षिणा-क्रमसे बहुत प्रसन्न होते हैं। **'शिवस्यार्ध प्रदक्षिणा'** अर्थात् शिवकी (इस प्रकारसे) आधी परिक्रमा की जाती है। सोमसूत्रका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये।

शिवस्तोत्र

स्तोत्रोंकी दृष्टिसे शिवस्तोत्रका साहित्य सर्वाधिक विशाल प्रतीत होता है। पं० जगद्धरभट्टविरचित 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' अकेले ही एक विशाल ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त पुष्पदन्त-विरचित शिवमहिम्नःस्तोत्र, आचार्य शंकरके मन्त्राक्षमालिका और दूसरे शिवस्तोत्र भी बड़े रमणीय हैं। उनके पञ्चाक्षरस्तोत्रकी भी अत्यधिक महिमा है।

स्कन्दादि पुराणों तथा महाभारतादिमें शतनाम, सहस्रनाम तथा अनेक स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। शिवसहस्रनामपर नीलकण्ठादि आचार्योंकी विस्तृत व्याख्याएँ भी अति महत्त्वकी हैं। मंगल, बृहस्पति, शनि और चन्द्रमाकी अनिष्टकारक दशा, अन्तर्दशाओंमें तथा भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये शिव सहस्रनामका जप, पाठ विशेष फलदायी माना गया है।

व्रत

व्रतोंमें शिवरात्रि भगवान् शंकरके प्रादुर्भावकी रात्रि मानी जाती है। यद्यपि शिवरात्रि मुख्यरूपसे फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको होती है तथापि प्रत्येक मासकी कृष्ण चतुर्दशीको भी मासशिवरात्रिके नामसे उपोषित होती है। प्रदोषकालकी त्रयोदशीको शिवप्रदोषव्रत होता है। व्रतोंकी दृष्टिसे दोनों पक्षोंकी तृतीया तिथियाँ भगवती पार्वतीसे सम्बद्ध हैं तथा उपाङ्गललिता, हरतालिका एवं कजली आदि व्रत उनके नामसे अनुष्ठित होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक मासकी उभय पक्षोंकी चतुर्थी तिथियाँ भगवान् शिवके वरद पुत्र गणेशजीके व्रतोंसे सम्बन्धित हैं, जैसे गणेश-चतुर्थी, संकष्टहरचतुर्थी आदि। दोनों पक्षोंकी षष्ठी तिथियाँ कुमार कार्तिकेयजीसे सम्बद्ध हैं। सप्तमी,

अष्टमी और नवमी तिथियोंको भी शिव-पार्वतीसे सम्बद्ध माना गया है और अमावास्याके भी स्वामी भगवान् शंकर ही माने गये हैं। सोमवार तथा श्रावणमासमें आस्तिक भक्त-जन बड़े समारोहके साथ उपवास, पूजन, अभिषेक, यजन तथा रात्रि-जागरण आदि करते हैं। इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं और अवढरदानी होकर सुख-शान्ति प्राप्त कराकर अन्तमें अपने धामको प्राप्त कराते हैं। अतः भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

शिव और शक्ति

शिव और शक्ति—ये परम शिव अर्थात् परम तत्त्वके दो रूप हैं। शिव कूटस्थ तत्त्व हैं और शक्ति परिणामिनी है। विविध वैचित्र्यपूर्ण संसारके रूपमें अभिव्यक्त शक्तिके आधार एवं अधिष्ठान शिव हैं। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा हैं। शक्ति दृश्य, चल एवं नाम-रूपके द्वारा व्यक्त सत्ता है। शक्ति-नटी शिवके अनन्त, शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थलपर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका रूप धारणकर तथा उनके अंदर सर्ग, स्थिति एवं संहारकी त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है।

शिव और शक्ति एक दूसरेसे उसी प्रकार अभिन्न हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसकी धवलता। शिवकी आराधना शक्तिकी आराधना है और शक्तिकी उपासना शिवकी उपासना है।

भगवान् शंकरकी आराधनाका प्रत्यक्ष फल

मृत्युञ्जय-मन्त्रकी महिमा

(भद्रायु और कीर्तिमालिनीकी कथा)

दशार्ण-देश (वर्तमान मध्यप्रदेशके उत्तरपूर्वका एक भाग-विशेष) के राजा वज्रबाहुकी सुमति नामकी एक रानी थी। एक बार जब वह गर्भवती थी, तब उसकी सपत्नियोंने उसे विष दे दिया। भगवत्कृपासे उसका गर्भस्थ भ्रूण विनष्ट तो नहीं हो पाया, किंतु वह व्रणयुक्त हो गया। फलतः जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका शरीर भी व्रणसे भरा था। दोनों माँ-बेटेके शरीर घावोंसे भर गये। राजाने अनेकों प्रकारके उपचार किये, परंतु कुछ भी लाभ होते न देख निराश हो सुमतिसे द्वेष रखनेवाली अपनी अन्यान्य स्त्रियोंकी सलाहसे, रानी सुमतिको उसके बच्चेके साथ वनमें छुड़वा दिया। वह वहाँ छोटी-सी कुटिया बनाकर रहने लगी। वनमें सुमतिको दुःसह कष्ट होने लगे, शरीरकी पीड़ासे उसे बारंबार मूर्च्छा आने लगी, उसके बालकको तो पहले ही कालने कवलित कर लिया।

उसे जब चेतना आयी तो वह बहुत ही कातरभावसे भगवान् शंकरसे प्रार्थना करने लगी—'हे प्रभो! आप सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, दीन-बन्धु-दुःखहारी हैं, मैं आपकी शरण हूँ, अब मुझे एकमात्र आपका ही अवलम्बन है।' उसकी इस कातरवाणीको सुनते ही करुणामय आशुतोषका आसन डोल उठा। शीघ्र ही शिवयोगी वहाँ प्रकट हुए और

उन्होंने सुमतिको मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करनेको कहा और अभिमन्त्रित भस्मको उसकी तथा उसके बच्चेकी देहमें लगा दिया। भस्मके स्पर्शमात्रसे ही उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी और बालक भी प्रसन्नमुख हो जी उठा। सुमतिने शिवयोगीकी शरण ली। शिवयोगीने बालकका नाम 'भद्रायु' रखा।

सुमति और भद्रायु दोनों मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करने लगे और इधर राजा वज्रबाहुको अपनी निर्दोषपत्नी और अनाथ बालकको व्यर्थ कष्ट पहुँचानेका दुष्परिणाम भी भुगतना

पड़ा। उसके राज्यको शत्रुओंने अपहृत कर राजाको बंदीगृहमें डाल दिया।

एक दिन भद्रायुके मन्त्र-जपसे प्रसन्न हो शिवयोगी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने उसे एक खड्ग और एक शंख दिया तथा बारह हजार हाथियोंका बल देकर वे अन्तर्धान हो गये। भद्रायुने अपने पिताके शत्रुओंपर आक्रमण कर उन्हें मार डाला और पैतृक राज्यको अधिकृत कर पिताको बंदीगृहसे मुक्त किया। उसका यश चारों ओर फैल गया। चित्राङ्गद और सीमन्तिनीने अपनी कन्या कीर्तिमालिनीका विवाह भद्रायुके साथ कर दिया।

भद्रायुने शिवपूजा करते हुए सहस्रों वर्षोंतक सुखपूर्वक प्रजाको सुख-शान्ति पहुँचाते हुए अविचल राज्य किया और अन्तमें शिवसायुज्यको प्राप्त हुआ। यह मृत्युञ्जय-मन्त्रके जपका लोकोत्तर माहात्म्य है।

रुद्राभिषेक और रुद्राक्षकी महिमा
(सुधर्मा और तारककी कथा)

काश्मीर देशके भद्रसेन राजाका पुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारक दोनों ही महान् शिवभक्त और पितृभक्त थे। दोनों ही नित्य सर्वाङ्गमें विभूति धारण करते, गलेमें रुद्राक्षकी माला पहनते और सदा शिवपूजनमें लगे रहते थे। एक बार महामुनि पराशरजी राजाके यहाँ पधारे। उनसे राजाको यह ज्ञात हुआ कि सुधर्माकी आजसे सातवें दिन अकालमृत्यु होनेवाली है। इससे राजाको बड़ा शोक हुआ। राजाके पूछनेपर पराशरजीने बताया कि 'यदि रुद्राष्टाध्यायीकी दस हजार आवृत्तियोंके द्वारा शंकरजीका जलाभिषेक किया जाय तो तुम्हारे पुत्रकी अपमृत्यु टल सकती है।' श्रीशिवजीकी कृपासे कुछ भी असम्भव नहीं है। मुनिके वचनसे राजाको कुछ आश्वासन मिला। राजाने अनेक ब्राह्मणोंको आमन्त्रितकर उनके द्वारा रुद्राभिषेक प्रारम्भ करवा दिया। सातवें दिन दोपहरके समय सुधर्माकी मृत्यु हो गयी। पराशरमुनिने रुद्राभिषेकके पवित्र एवं अभिमन्त्रित जलसे सुधर्माके मृत शरीरको अभिषिक्त किया और पवित्र मन्त्रीकृत रुद्राक्षके द्वारा कुछ जल-विन्दु उसके मुखमें डाले। भगवान् शंकरकी कृपासे राजकुमारके प्राण लौट आये। पूछनेपर राजकुमारने बतलाया कि 'मुझे यमराज ले जा रहे थे, इतनेमें ही अकस्मात् एक तेजोमयी श्वेतकाय जटाजूटधारी मूर्तिने प्रकट होकर यमराजको फटकारा और मुझे उनसे छुड़ा लिया। यमराज मुझे छोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।' राजपरिवारमें आनन्द छा गया। सब लोग शिवभक्तिमें लग गये। राजपुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारकने शिवभक्तिकी महिमाका कथा, कीर्तन, अभिषेक आदिके द्वारा सर्वत्र प्रचार कराया।

प्रदोष-व्रतकी महिमा
(धर्मगुप्तकी कथा)

विदर्भ-देशमें सत्यरथ नामके एक परम शिवभक्त, पराक्रमी और तेजस्वी राजा थे। उन्होंने अनेक वर्षोंतक राज्य किया, परंतु कभी एक दिन भी शिवपूजामें किसी प्रकारका अन्तर न आने दिया।

एक बार शाल्वदेशके राजाने दूसरे कई राजाओंको साथ लेकर विदर्भपर आक्रमण कर दिया। सात दिनतक घोर युद्ध होता रहा, अन्तमें दुर्दैववश सत्यरथको परास्त होना पड़ा, इससे दुःखी होकर वे देश छोड़कर कहीं निकल गये। शत्रु नगरमें घुस पड़े। रानीको जब यह ज्ञात हुआ तो वह भी राजमहलसे निकलकर सघन वनमें प्रविष्ट हो गयी। उस समय उसके नौ मासका गर्भ था और वह आसन्नप्रसवा ही थी। अचानक एक दिन अरण्यमें ही उसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बच्चेको वहाँ ही अकेला छोड़कर वह प्यासके मारे पानीके लिये वनमें एक सरोवरके पास गयी और वहाँ एक मगर उसे निगल गया।

उसी समय उमा नामकी एक ब्राह्मणी विधवा अपने शुचिव्रत नामक एक वर्षके बालकको गोदमें लिये उसी रास्तेसे होकर निकली। बिना नाल कटे उस बच्चेको देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि यदि इस बच्चेको अपने घर ले जाऊँ तो लोग मुझपर अनेक प्रकारकी शंका करेंगे और यदि यहीं छोड़ देती हूँ तो कोई हिंस्र पशु

अष्टमी और नवमी तिथियोंको भी शिव-पार्वतीसे सम्बद्ध माना गया है और अमावास्याके भी स्वामी भगवान् शंकर ही माने गये हैं। सोमवार तथा श्रावणमासमें आस्तिक भक्त-जन बड़े समारोहके साथ उपवास, पूजन, अभिषेक, यजन तथा रात्रि-जागरण आदि करते हैं। इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं और अवढरदानी होकर सुख-शान्ति प्राप्त कराकर अन्तमें अपने धामको प्राप्त कराते हैं। अतः भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

शिव और शक्ति

शिव और शक्ति—ये परम शिव अर्थात् परम तत्त्वके दो रूप हैं। शिव कूटस्थ तत्त्व हैं और शक्ति परिणामिनी है। विविध वैचित्र्यपूर्ण संसारके रूपमें अभिव्यक्त शक्तिके आधार एवं अधिष्ठान शिव हैं। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा हैं। शक्ति दृश्य, चल एवं नाम-रूपके द्वारा व्यक्त सत्ता है। शक्ति-नटी शिवके अनन्त, शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थलपर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका रूप धारणकर तथा उनके अंदर सर्ग, स्थिति एवं संहारकी त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है।

शिव और शक्ति एक दूसरेसे उसी प्रकार अभिन्न हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसकी धवलता। शिवकी आराधना शक्तिकी आराधना है और शक्तिकी उपासना शिवकी उपासना है।

भगवान् शंकरकी आराधनाका प्रत्यक्ष फल

मृत्युञ्जय-मन्त्रकी महिमा

(भद्रायु और कीर्तिमालिनीकी कथा)

दशार्ण-देश (वर्तमान मध्यप्रदेशके उत्तरपूर्वका एक भाग-विशेष) के राजा वज्रबाहुकी सुमति नामकी एक रानी थी। एक बार जब वह गर्भवती थी, तब उसकी सपत्नियोंने उसे विष दे दिया। भगवत्कृपासे उसका गर्भस्थ भ्रूण विनष्ट तो नहीं हो पाया, किंतु वह व्रणयुक्त हो गया। फलतः जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका शरीर भी व्रणसे भरा था। दोनों माँ-बेटेके शरीर घावोंसे भर गये। राजाने अनेकों प्रकारके उपचार किये, परंतु कुछ भी लाभ होते न देख निराश हो सुमतिसे द्वेष रखनेवाली अपनी अन्यान्य स्त्रियोंकी सलाहसे, रानी सुमतिको उसके बच्चेके साथ वनमें छुड़वा दिया। वह वहाँ छोटी-सी कुटिया बनाकर रहने लगी। वनमें सुमतिको दुःसह कष्ट होने लगे, शरीरकी पीड़ासे उसे बारंबार मूर्च्छा आने लगी, उसके बालकको तो पहले ही कालने कवलित कर लिया।

उसे जब चेतना आयी तो वह बहुत ही कातरभावसे भगवान् शंकरसे प्रार्थना करने लगी—'हे प्रभो! आप सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, दीन-बन्धु-दुःखहारी हैं, मैं आपकी शरण हूँ, अब मुझे एकमात्र आपका ही अवलम्बन है।' उसकी इस कातरवाणीको सुनते ही करुणामय आशुतोषका आसन डोल उठा। शीघ्र ही शिवयोगी वहाँ प्रकट हुए और

उन्होंने सुमतिको मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करनेको कहा और अभिमन्त्रित भस्मको उसकी तथा उसके बच्चेकी देहमें लगा दिया। भस्मके स्पर्शमात्रसे ही उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी और बालक भी प्रसन्नमुख हो जी उठा। सुमतिने शिवयोगीकी शरण ली। शिवयोगीने बालकका नाम 'भद्रायु' रखा।

सुमति और भद्रायु दोनों मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करने लगे और इधर राजा वज्रबाहुको अपनी निर्दोषपत्नी और अनाथ बालकको व्यर्थ कष्ट पहुँचानेका दुष्परिणाम भी भुगतना

पड़ा। उसके राज्यको शत्रुओंने अपहृत कर राजाको बंदीगृहमें डाल दिया।

एक दिन भद्रायुके मन्त्र-जपसे प्रसन्न हो शिवयोगी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने उसे एक खड्ग और एक शंख दिया तथा बारह हजार हाथियोंका बल देकर वे अन्तर्धान हो गये। भद्रायुने अपने पिताके शत्रुओंपर आक्रमण कर उन्हें मार डाला और पैतृक राज्यको अधिकृत कर पिताको बंदीगृहसे मुक्त किया। उसका यश चारों ओर फैल गया। चित्राङ्गद और सीमन्तिनीने अपनी कन्या कीर्तिमालिनीका विवाह भद्रायुके साथ कर दिया।

भद्रायुने शिवपूजा करते हुए सहस्रों वर्षोंतक सुखपूर्वक प्रजाको सुख-शान्ति पहुँचाते हुए अविचल राज्य किया और अन्तमें शिवसायुज्यको प्राप्त हुआ। यह मृत्युञ्जय-मन्त्रके जपका लोकोत्तर माहात्म्य है।

रुद्राभिषेक और रुद्राक्षकी महिमा

(सुधर्मा और तारककी कथा)

काश्मीर देशके भद्रसेन राजाका पुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारक दोनों ही महान् शिवभक्त और पितृभक्त थे। दोनों ही नित्य सर्वाङ्गमें विभूति धारण करते, गलेमें रुद्राक्षकी माला पहनते और सदा शिवपूजनमें लगे रहते थे। एक बार महामुनि पराशरजी राजाके यहाँ पधारे। उनसे राजाको यह ज्ञात हुआ कि सुधर्माकी आजसे सातवें दिन अकालमृत्यु होनेवाली है। इससे राजाको बड़ा शोक हुआ। राजाके पूछनेपर पराशरजीने बताया कि 'यदि रुद्राष्टाध्यायीकी दस हजार आवृत्तियोंके द्वारा शंकरजीका जलाभिषेक किया जाय तो तुम्हारे पुत्रकी अपमृत्यु टल सकती है।' श्रीशिवजीकी कृपासे कुछ भी असम्भव नहीं है। मुनिके वचनसे राजाको कुछ आश्वासन मिला। राजाने अनेक ब्राह्मणोंको आमन्त्रितकर उनके द्वारा रुद्राभिषेक प्रारम्भ करवा दिया। सातवें दिन दोपहरके समय सुधर्माकी मृत्यु हो गयी। पराशरमुनिने रुद्राभिषेकके पवित्र एवं अभिमन्त्रित जलसे सुधर्माके मृत शरीरको अभिषिक्त किया और पवित्र मन्त्रीकृत रुद्राक्षके द्वारा कुछ जल-विन्दु उसके मुखमें डाले। भगवान् शंकरकी कृपासे राजकुमारके प्राण लौट आये। पूछनेपर राजकुमारने बतलाया कि 'मुझे यमराज ले जा रहे थे, इतनेमें ही अकस्मात् एक तेजोमयी श्वेतकाय जटाजूटधारी मूर्तिने प्रकट होकर यमराजको फटकारा और मुझे उनसे छुड़ा लिया। यमराज मुझे छोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।' राजपरिवारमें आनन्द छा गया। सब लोग शिवभक्तिमें लग गये। राजपुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारकने शिवभक्तिकी महिमाका कथा, कीर्तन, अभिषेक आदिके द्वारा सर्वत्र प्रचार कराया।

प्रदोष-व्रतकी महिमा

(धर्मगुप्तकी कथा)

विदर्भ-देशमें सत्यरथ नामके एक परम शिवभक्त, पराक्रमी और तेजस्वी राजा थे। उन्होंने अनेक वर्षोंतक राज्य किया, परंतु कभी एक दिन भी शिवपूजामें किसी प्रकारका अन्तर न आने दिया।

एक बार शाल्वदेशके राजाने दूसरे कई राजाओंको साथ लेकर विदर्भपर आक्रमण कर दिया। सात दिनतक घोर युद्ध होता रहा, अन्तमें दुर्दैववश सत्यरथको परास्त होना पड़ा, इससे दुःखी होकर वे देश छोड़कर कहीं निकल गये। शत्रु नगरमें घुस पड़े। रानीको जब यह ज्ञात हुआ तो वह भी राजमहलसे निकलकर सघन वनमें प्रविष्ट हो गयी। उस समय उसके नौ मासका गर्भ था और वह आसन्नप्रसवा ही थी। अचानक एक दिन अरण्यमें ही उसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बच्चेको वहाँ ही अकेला छोड़कर वह प्यासके मारे पानीके लिये वनमें एक सरोवरके पास गयी और वहाँ एक मगर उसे निगल गया।

उसी समय उमा नामकी एक ब्राह्मणी विधवा अपने शुचिव्रत नामक एक वर्षके बालकको गोदमें लिये उसी रास्तेसे होकर निकली। बिना नाल कटे उस बच्चेको देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि यदि इस बच्चेको अपने घर ले जाऊँ तो लोग मुझपर अनेक प्रकारकी शंका करेंगे और यदि यहीं छोड़ देती हूँ तो कोई हिंस्र पशु

भक्षण कर लेगा। वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उसी समय भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हुए और उस विधवासे कहने लगे—'इस बच्चेको तुम अपने घर ले जाओ, यह राजपुत्र है। अपने पुत्रके समान ही इसकी रक्षा करना और लोगोंमें इस बातको प्रकट न करना, इससे तुम्हारा भाग्योदय होगा।' इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणीने उस राजपुत्रका नाम धर्मगुप्त रखा।

वह विधवा दोनोंको साथ लेकर उस बच्चेके माता-पिताको ढूँढ़ने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाण्डिल्य ऋषिके आश्रममें पहुँची। ऋषिने बतलाया कि 'राजा सत्यरथका देहान्त हो गया है। पूर्वजन्ममें प्रदोष-व्रतको अधूरा छोड़नेके कारण ही उसकी ऐसी गति हुई है तथा रानीने भी पूर्वजन्ममें अपनी सपत्नीको मारा था, उसीने इस जन्ममें मगरके रूपमें इससे बदला लिया।'

ब्राह्मणीने दोनों बच्चोंको ऋषिके पैरोंपर डाल दिया। ऋषिने उन्हें शिवपञ्चाक्षरी मन्त्र देकर प्रदोष-व्रत करनेका उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने ऋषिका आश्रम छोड़कर एकचक्रा नगरीमें निवास किया और वहाँ वे चार महीनेतक शिवाराधन करते रहे। दैवात् एक दिन शुचिव्रतको नदीके तटपर खेलते समय एक अशर्फियोंसे भरा स्वर्णकलश मिला, उसे लेकर वह घर आया। माताको यह देखकर अत्यन्त ही आनन्द हुआ और इसमें उसने प्रदोषकी महिमा देखी।

इसके बाद एक दिन वे दोनों लड़के वनविहारके लिये एक साथ निकले, वहाँ अंशुमती नामकी एक गन्धर्वकन्या क्रीडा करती हुई उन्हें दीख पड़ी। उसने धर्मगुप्तसे कहा कि 'मैं एक गन्धर्वराजकी कन्या हूँ, श्रीशिवजीने मेरे पितासे कहा है कि अपनी कन्याको सत्यरथ राजाके पुत्र धर्मगुप्तको प्रदान करना।' गन्धर्वकन्याको 'यही धर्मगुप्त है' ऐसी जानकारी होनेपर उसने विवाहका प्रस्ताव रखा।

धर्मगुप्तने वापस आकर मातासे यह बात कही। ब्राह्मणीने इसे शिवपूजाका फल और शाण्डिल्य मुनिका आशीर्वाद समझा। बड़े ही आनन्दसे अंशुमतीके साथ धर्मगुप्तका विवाह हो गया। गन्धर्वराजने बहुत धन और अनेकों दास-दासी उन्हें प्रदान किये। इसके पश्चात् धर्मगुप्तने अपने पिताके शत्रुओंपर आक्रमणकर विदर्भ-राज्यको प्राप्त किया। वह सदा प्रदोष-व्रतमें शिवाराधन करते हुए उस ब्राह्मणी और उसके पुत्र शुचिव्रतके साथ सैकड़ों वर्ष सुखसे राज्य करता रहा और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त हुआ।

शिव-विष्णुकी अभिन्नता

तात्त्विक दृष्टिसे भगवान् शिव तथा श्रीविष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। मूलतः जगन्नियन्ता, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी एक परमात्माके ये दो स्वरूप प्रतीत होते हैं।—

'यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।'

भागवत, विष्णु आदि वैष्णव पुराणोंमें विष्णुरूपसे और शिव, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म आदि शैव पुराणोंमें ये ही शिव-रूपसे संस्तुत एवं महिमामण्डित होते हैं। दो प्रकारकी अभिव्यक्ति होनेपर भी ये दोनों परस्पर एक दूसरेके उपासक, प्रशंसक एवं अभिन्न सुहृद् हैं। श्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवत-व्याख्याकी प्रस्तावनामें ही इस तथ्यको प्रतिपादित करते हुए सुस्पष्ट कर दिया है और कहा है कि—

माधवोमाधवीशौ द्वौ सर्वसिद्धिविधायिनौ।
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ॥

अर्थात् मा-पति या रमापति विष्णु और उमापति भगवान्

महादेव दोनों ही ज्ञान, तप, अष्टाङ्गयोगैश्वर्यके विधायक हैं। ये ही दोनों सच्चे विश्वके कल्याणकारक एवं संचालक होते हुए एक दूसरेकी अभिन्न आत्मा हैं और निरन्तर एक दूसरेकी पूजा, स्तुति, हितसाधन और उपासनामें संलग्न रहते हैं।

पुराणोंमें यह भी कहा गया है कि शिव और विष्णु एक दूसरेकी अन्तरात्मा हैं, हृदय हैं—'**शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।**' इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, जो इन दोनोंमें भेदबुद्धि रखता है, उसे कोई सिद्धि नहीं मिलती। शिवसहस्रनाम तथा विष्णुसहस्रनामादिमें दोनोंको अभिन्न बताया गया है। शास्त्रोंमें सर्वत्र भगवान् शिव एवं विष्णुका यथार्थरूपसे अभेदत्व प्रतिपादित किया गया है। यहाँ उन दोनोंकी अनन्यताका एक पौराणिक आख्यान दिया जा रहा है—

एक बार भगवान् नारायण अपने वैकुण्ठलोकमें सोये हुए थे। स्वप्नमें वे क्या देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिवाले, त्रिशूल-डमरूधारी, स्वर्णाभरणभूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादि-सिद्धिसेवित त्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम और आनन्दातिरेकसे उन्मत्त होकर उनके सामने नृत्य कर रहे हैं। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु हर्षगद्गद हो सहसा शय्यापर उठकर बैठ गये और कुछ देरतक ध्यानस्थ बैठे रहे। उन्हें इस प्रकार बैठे देखकर श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि 'भगवन्! आपके इस प्रकार उठ बैठनेका क्या कारण है?' भगवान्ने कुछ देरतक उनके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और आनन्दमें निमग्न हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्तमें कुछ स्वस्थ होनेपर वे गद्गद-कण्ठसे इस प्रकार बोले—'हे देवि! मैंने अभी स्वप्नमें भगवान् श्रीमहेश्वरका दर्शन किया है। उनकी छवि ऐसी अपूर्व आनन्दमय एवं मनोहर थी कि देखते ही बनती थी। मालूम होता है, शंकरने मुझे स्मरण किया है। देवि! चलो, कैलासमें चलकर हमलोग महादेवके दर्शन करें।'

यह कहकर दोनों कैलासकी ओर चल दिये। मुश्किलसे कुछ दूर गये होंगे कि देखते हैं कि भगवान् शंकर स्वयं गिरिजाके साथ उनकी ओर चले आ रहे हैं। अब भगवान्के आनन्दका क्या ठिकाना? मानो घर-बैठे निधि मिल गयी। पास आते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले। मानो प्रेम और आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा हो। एक-दूसरेको देखकर दोनोंके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे और शरीर पुलकायमान हो गया। दोनों ही एक दूसरेसे लिपटे हुए कुछ देर मूकवत् खड़े रहे। प्रश्नोत्तर होनेपर मालूम हुआ कि शंकरजीको भी रात्रिमें इसी प्रकारका स्वप्न हुआ कि मानो विष्णुभगवान्को वे उसी रूपमें देख रहे हैं, जिस रूपमें वे अब उनके सामने खड़े थे। दोनोंके स्वप्नका वृत्तान्त अवगत होनेपर दोनों ही लगे एक दूसरेसे अपने यहाँ लिवा ले जानेका आग्रह करने। नारायण कहते—'वैकुण्ठ चलिये' और शम्भु कहते—'कैलास चलिये।' दोनोंके आग्रहमें इतना अलौकिक प्रेम था कि यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कौन कहाँ जाय? इतनमें ही क्या देखते हैं कि वीणा बजाते, हरिगुण गाते नारदजी कहींसे आ निकले। बस, फिर क्या था? लगे दोनों ही उनसे निर्णय कराने कि कहाँ चला जाय? बेचारे नारदजी तो स्वयं ऊहापोहमें थे। उस अलौकिक मिलनको देखकर वे तो स्वयं अपनी सुध-बुध भूल गये और लगे मस्त होकर दोनोंका गुणगान करने। अब निर्णय कौन करे? अन्तमें यह निश्चय हुआ कि भगवती उमा जो कह दें वही ठीक है। भगवती उमा पहले तो कुछ देर चुप रहीं। अन्तमें वे दोनोंको लक्ष्य करके बोलीं—'हे नाथ! हे नारायण! आपलोगोंके निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेमको देखकर तो यही समझमें आता है कि आप दोनोंके निवासस्थान अलग-अलग नहीं हैं, जो कैलास है वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है वही कैलास है, केवल नाममें ही भेद है। यही नहीं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप दोनोंका आत्मा भी एक ही है, केवल शरीर देखनेमें दो हैं। और तो और, मुझे तो अब यह स्पष्ट दीखने लगा कि आप दोनोंकी भार्याएँ भी एक ही हैं, दो नहीं। जो मैं हूँ वही श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी हैं वही मैं हूँ। केवल इतना ही नहीं, मेरी तो अब यह दृढ़ धारणा हो गयी है कि आपलोगोंमेंसे एकके प्रति जो द्वेष करता है वह मानो दूसरेके प्रति ही करता है, एककी जो पूजा करता है वह स्वाभाविक ही दूसरेकी भी करता है और जो एकको अपूज्य मानता है वह दूसरेकी भी पूजा नहीं करता। मैं तो यह समझती हूँ कि आप दोनोंमें जो भेद मानता है, उसका चिरकालतक घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आप लोग मुझे इस प्रसङ्गमें अपना मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवञ्चना कर रहे हैं। अब मेरी यह प्रार्थना है कि आप दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारिये। श्रीविष्णु यह समझें कि हम

शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलास-गमन कर रहे हैं।

इस उत्तरको सुनकर दोनों परम प्रसन्न हुए और भगवती उमाकी प्रशंसा करते हुए दोनों प्रणामालिङ्गनके अनन्तर हर्षित हो अपने-अपने लोकको चले गये।

लौटकर जब श्रीविष्णु वैकुण्ठ पहुँचे तो श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि 'प्रभो! सबसे अधिक प्रिय आपको कौन है?' इसपर भगवान् बोले—'प्रिये! मेरे प्रियतम केवल श्रीशंकर हैं। देहधारियोंको अपने देहकी भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं। एक बार मैं और शंकर दोनों ही पृथिवीपर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतमकी खोजमें इस आशयसे नि कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतमकी खोजमें देश-देशान्त भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी दे पश्चात् मेरी श्रीशंकरजीसे भेंट हो गयी। ज्यों ही हमलोग चार आँखें हुईं कि हमलोग पूर्वजन्मार्जित विद्याकी भाँति दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गये। वास्तवमें मैं ही जनार्दन हूँ मैं ही महादेव हूँ। शिवकी अर्चा करनेवाला शिवभक्त अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिवकी पूजा नहीं क वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।'

शिवभक्त-गाथा

भगवान् शंकरकी समस्त जीवोंपर परम अनुकम्पा है। अपने भक्तों तथा आराधकोंके लिये वे अपना सर्वस्व निछा करनेको सदा उद्यत रहते हैं। उनकी अनुकम्पासे न जाने कितनोंका उद्धार हो चुका है। यहाँ उनकी अपार करुणाका ए उदाहरण दिया जा रहा है—

परम शिवभक्त उपमन्यु

प्राचीन कालकी बात है। यशस्वी वेदज्ञाता परम शिवभक्त ऋषि व्याघ्रपाद इस नश्वर देहको त्यागकर शिवलोकको पधार गये थे। उनके पुत्र उपमन्यु और धौम्य अभी बालक थे। वे एक दिन मुनियोंके आश्रमपर जा पहुँचे। मुनियोंने उनको दूध पिलाया। वे घर लौट आये और मातासे भी दूध माँगने लगे। घरमें दूध नहीं था। ऋषि-पत्नीने चावलका आटा पानीमें मिलाकर बालकोंको दे दिया, पर उन्होंने दूध चख लिया था, अतः कहा—'यह तो दूध नहीं है।' माताने कहा—'वत्स! हम नदियोंके किनारे पर्वतोंकी गुफाओंमें एवं तीर्थोंपर तप करनेवाले तपस्वी हैं, हमारे यहाँ दूध कहाँ रखा है? हमारे आश्रयदाता तो भगवान् शिव हैं। उनको प्रसन्न करो, वे प्रसन्न होकर तुम लोगोंको दूध-भात देंगे। तुम श्रद्धापूर्वक उन्हींकी शरण जाओ।'

माताके वचन सुनकर बालक उपमन्युने हाथ जोड़कर पूछा—'माँ! भगवान् शिव कौन हैं? वे कहाँ रहते हैं? उनके दर्शन कैसे होंगे? उनका रूप कैसा है?'

बालकके सरल वचनोंको सुनकर माताकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं। बच्चेका मस्तक सूँघकर बड़े प्रेमसे वह बोलीं—'बेटा! शिव कहाँ नहीं हैं? सारा विश्व शिवमय है। वे सब प्राणियोंके हृदयमें वास करते हैं, भक्तोंपर दया कर उन्हें दर्शन दिया करते हैं। तत्त्वज्ञानके बिना उनको पाना बहु ही कठिन है। लोग उनके अनेक रूप बतलाते हैं, पर उन यथार्थ चरित्रको कोई नहीं जानता। वे जिसपर कृपा कर अपना रूप अवगत कराते हैं, वही जान सकता है। वे निराकार रूपसे सर्वत्र विराजमान हैं और साकाररूपसे नि महाकैलासमें रहते हैं। उनका श्वेत वर्ण है, उनके मस्तकप चन्द्रमा विराजित हैं, वे सर्पका यज्ञोपवीत पहने हुए हैं। मनक हरनेवाले भगवान् शिव यज्ञकी वेदीमें, यज्ञस्तम्भमें ए यज्ञाग्निमें विशेषरूपसे निवास करते हैं। वे निष्कल, मायाके ईश्वर, आदि, अन्त और जन्मरहित हैं। उन परमात्मरू महेश्वरका ज्ञान केवल भक्तिसे हो सकता है। तुम उनके भक्त बनो, उनमें मन लगाओ, उनमें निष्ठा रखो, उनकी शरण होओ, उनका ही भजन करो, ऐसा करनेसे तुम्हारी मनःकामना पूर्ण होगी।'

माताके इस उपदेशसे उपमन्युकी भगवान् शिवमें अविचल भक्ति हो गयी। वह तपस्यामें लग गया। एक हजार दिव्य वर्षोंतक उसने दाहिने अँगूठेके अग्रभागपर खड़े रहकर भगवान् शिवको संतुष्ट किया। भगवान् शिवने उसके अनन्य

भावकी परीक्षाके लिये इन्द्रके रूपमें प्रकट होकर कहा—'वत्स ! मैं प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो, वर माँग लो !'

उपमन्युने कहा—'देवराज ! मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मैं तो भगवान् शंकरका दास होना चाहता हूँ। वे जबतक प्रसन्न न होंगे, तबतक मैं तपसे विरत नहीं होऊँगा। तीनों भुवनोंके सार, सबके आदिपुरुष, अद्वितीय, मृत्युरहित रुद्रको प्रसन्न किये बिना किसीको शान्ति नहीं मिल सकती। मेरे दोषोंके कारण यदि मेरा फिर जन्म हो तो उसमें भी भगवान् शिवपर ही मेरी अक्षय भक्ति बनी रहे।'

इन्द्रने कहा—तुम्हारा कहना तो ठीक है, पर उस शिवके होनेमें ही तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?

उपमन्युने कहा—'वे अव्यक्त, आदि और बीजरूप हैं। यह सारा दृश्य जगत् जिसमें लीन होता है, उसी तत्त्वका नाम शिव है, इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। वे मायासे परे परमज्योतिःस्वरूप हैं। हे देवराज ! मैं तो केवल उन महेश्वरका ही दर्शन करना चाहता हूँ और उनसे ही वर माँगूँगा, दूसरे किसीसे नहीं।' यह कहकर उपमन्यु व्याकुल होकर सोचने लगा कि भगवान् शंकर अभीतक प्रसन्न नहीं हुए।

इतनेमें ही उपमन्युने देखा कि ऐरावत हाथीने चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले बैलका रूप धारण कर लिया। उस समय भगवान् शिव माता उमाके साथ उसपर विराजमान थे। वे पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभित हो रहे थे। उनके शान्तिमय शीतल प्रखर तेजसे सहस्रों सूर्योंके समान दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। वे अनेक प्रकारके आभूषण पहने हुए थे। उनके उज्ज्वल सफेद वस्त्र थे, श्वेत पुष्पोंकी सुन्दर माला गलेमें थी। वे श्वेत चन्दन मस्तकपर लगाये हुए थे। श्वेत ही ध्वजा थी और श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। धवल-चन्द्रयुक्त मुकुट था। सुन्दर शरीरपर सुवर्णकमलोंसे गुँथी हुई और रत्नोंसे जड़ी हुई माला शोभायमान हो रही थी। ऐसे देवमुनिवन्दित भगवान् शंकरके दर्शनकर उपमन्यु प्रार्थना करने लगा—'हे देवाधिदेव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हाथमें वज्र लिये पीले और रक्तवर्णवाले हे देवदेव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महेन्द्ररूप ! हे महादेव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' इसपर भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा— 'वत्स उपमन्यु ! मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ, मैंने परीक्षा करके देख लिया कि तुम मेरे दृढ़ भक्त हो। बोलो, तुम क्या चाहते हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शंकरके कृपापूर्ण वचनोंको सुनकर उपमन्युके आनन्दकी सीमा नहीं रही, उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। वह गद्गद-स्वरसे कहने लगा—'प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते, वे देवदेव आज मेरे सामने विराजमान हैं। इससे अधिक और क्या चाहिये ? इसपर भी यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे।'

उपमन्युके वचन सुनकर भगवान् शंकरने कहा—'उपमन्यो ! तू जरा-मरण-रहित, यशस्वी, तेजस्वी, दिव्यज्ञान-युक्त हो गया। तुम्हारे सारे दुःख दूर हो गये। तुम सर्वज्ञ सुन्दर अग्नि-सदृश तेजस्वी हो गये। तुम कल्पान्तजीवी होकर अन्तमें मेरे समीप पहुँच जाओगे। मुझमें तुम्हारी अचल भक्ति होगी, मेरा स्मरण करते ही मैं तुम्हें दर्शन दूँगा।'

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शिव अदृश्य हो गये। यही उपमन्यु ऋषि भगवान् श्रीकृष्णके शिवोपासना-विधिके दीक्षागुरु थे।

लिंग-रहस्य एवं लिंगोपासना

भगवान् महेश्वर अलिंग हैं। प्रकृति ही प्रधान लिंग है, महेश्वर निर्गुण हैं प्रकृति सगुण है। प्रकृति या लिंगके ही विकास और विस्तारसे विश्वकी सृष्टि होती है। अखिल ब्रह्माण्ड लिंगके ही अनुरूप बनता है। ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिंग अनन्तकोटि हैं। सारी सृष्टि लिंगके ही अन्तर्गत है, लिंगमय है और अन्तमें लिंगमें ही सारी सृष्टिका लय भी होता है। इसी तरहका भाव स्कन्दपुराणके इस श्लोकसे व्यक्त होता है—

आकाशं लिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥

आकाश लिंग है, पृथ्वी उसकी पीठिका है, सब देवताओंका आलय है। इसमें सबका लय होता है, इसीलिये इसे लिंग कहते हैं।

लिंग शब्दका साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है। देव-चिह्नके अर्थमें लिंग-शब्द शिव-लिंगके लिये ही प्रयुक्त होता है और प्रतिमाओंको मूर्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्तिमान्‌के ध्यानके अनुसार होता है, परंतु लिंगमें आकार या रूपका उल्लेख नहीं है। वह चिह्नमात्र है।

वास्तवमें शिवलिंग सम्पूर्ण वेदमय, समस्त देवमय, समस्त भूधर, सागर, गगनमिश्रित सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्डमय माना जाता है। वह शिवशक्तिमय, त्रिगुणमय और त्रिदेवमय भी सिद्ध होनेसे सबके लिये उपास्य है। इसीलिये सृष्टिके प्रारम्भसे ही समस्त देवता, ऋषि, मुनि, असुर, मनुष्यादि विभिन्न ज्योतिर्लिंगों, स्वयम्भूलिंग, मणिमय, रत्नमय, धातुमय, मृण्मय, पार्थिव तथा मनोमय आदि लिंगोंकी उपासना करते आये हैं। स्कन्दपुराणानुसार इसी उपासनासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, सूर्य, चन्द्र आदिका स्वर्गाधिपत्य, राजराजाधिपत्य, दिक्पालपद, लोकपालपद, प्राजापत्य-पद तथा पृथ्वीपर राजाओंके सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्यकी प्राप्ति होती आयी है। मार्कण्डेय, लोमश आदि ऋषियोंके दीर्घायुष्ट्व, नैरुज्य, ज्ञान-विज्ञान तथा अणिमादिक अष्ट ऐश्वर्योंकी सिद्धिका मूल कारण भी योगयोगेश्वर भगवान् शंकरके मूल प्रतीक लिंगका विधिवत् पूजन ही रहा है।

भारतवर्षमें 'पार्थिव' पूजाके साथ ही विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिंग प्रतिष्ठित और पूजित होते हैं। ये अचल मूर्तियाँ होती हैं। बाणलिंग या सोने-चाँदीके छोटे लिंग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन पाशुपत-सम्प्रदाय एवं लिंगायत-सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ भी रखते हैं।

लिंग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं। गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है। उसमेंसे कुछका संक्षेपमें यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

१-गन्धलिंग दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन और तीन भाग कुङ्कुमसे बनाये जाते हैं। शिवसायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है।

२-पुष्पलिंग विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथ्वीके आधिपत्य-लाभके लिये पूजे जाते हैं।

३-गोशकृल्लिंग, स्वच्छ कपिलवर्णकी गायके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, अशुद्ध स्थानप गोबरका व्यवहार वर्जित है।

४-बालुकामयलिंग, बालूसे बनाकर पूज विद्याधरत्व और फिर शिवसायुज्य प्राप्त करता है।

५-यवगोधूमशालिजलिंग, जौ, गेहूँ, चावलके ः बनाकर श्रीपुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

६-सिताखण्डमयलिंग मिस्रीसे बनता है, इसके आरोग्यलाभ होता है।

७-लवणजलिंग हरताल, त्रिकटुको लवणमें मि बनता है। इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है।

८-तिलपिष्टोत्थलिंग तिलको पीसकर उसके बनाया जाता है, यह अभिलाषा सिद्ध करता है।

९—११-भस्ममयलिंग सर्वफलप्रद है, गुडो प्रीति बढ़ानेवाला है और शर्करामयलिंग सुखप्रद है।

१२-वंशाङ्कुरमय (बाँसके अंकुरसे निर्मित) वंशकर है।

१३-१४-पिष्टमय विद्याप्रद और दधिदुग्धोद्भ कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है।

१५—१८-धान्यज धान्यप्रद, फलोत्थ फ धात्रीफलजात मुक्तिप्रद, नवनीतज कीर्ति और र देता है।

१९—२४-दूर्वाकाण्डज अपमृत्युनाशक, कर्पूरज प्रद, अयस्कान्तमणिज सिद्धिप्रद, मौक्तिक सौभा स्वर्णनिर्मित महामुक्तिप्रद, राजत भूतिवर्धक है।

२५—३३-पित्तलज तथा कांस्यज मुक्तिद, आयस और सीसकज शत्रुनाशक होते हैं। अष्ट सर्वसिद्धिप्रद, अष्टलौहजात कुष्ठनाशक, वैदूर्यज शत्रुदर्प और स्फटिकलिंग सर्वकामप्रद है।

परंतु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, लोहा—इन द्रव्योंके लिंगोंकी पूजा कलियुगमें वर्जि पारेका शिवलिंग विहित है यह महान् ऐश्वर्यप्रद है।

लिंग बनाकर उसका संस्कार पार्थिव लिंगोंको छ प्रायः अन्य लिंगोंके लिये करना पड़ता है। स्वर्णपात्रमें अंदर तीन दिनोंतक रखकर फिर **'त्र्यम्बकं यजामहे०'** मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी षोडशोपचार

करनी उचित है। फिर पात्रसे उठाकर लिंगको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है। फिर प्राणप्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिवलिंग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाते हैं। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिट्टी ग्रहण करते हैं। परंतु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ सामान्य मृत्तिकाका प्रयोग भी किया जा सकता है।

लिंग साधारणतया अङ्गुष्ठप्रमाणका बनाया जाता है। पाषाणादिके लिंग इससे बड़े भी बनते हैं। लिंगसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठका मान होना चाहिये। योनिपीठ या मस्तकादि अङ्ग बिना लिंग बनाना अशुभ है।

लिंगमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है। लिंगके मूलमें ब्रह्मा, मध्य देशमें त्रैलोक्यनाथ विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिङ्ग महादेव हैं। अतः एक लिंगकी पूजामें सबकी पूजा हो जाती है।

नर्मदादि नदियोंमें पाषाणलिंग भी मिलते हैं। नर्मदाका वाणलिङ्ग भुक्ति-मुक्तिप्रदायक होता है। वाणलिंगकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदीकी भी बनायी जाती है।

परंतु नदीसे वाणलिंग निकालकर पहले परीक्षा की जाती है फिर संस्कार। परीक्षण-विधि इस प्रकार है—पहले एक बार लिंगके बराबर चावल लेकर तौले। फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिंग यदि हलका ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिंग पूजनीय है। यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिंग उदासीनोंके लिये पूजनीय है। जब वाणलिंग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है। संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य विधिसे गणेशादिकी पूजा होती है। फिर वाणलिंगको स्नान कराते हैं, स्नान कराकर यह ध्यान-मन्त्र—

ॐ प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यं च महाप्रभम्।
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्॥
शृङ्गारादिरसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरम्॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा करनी होती है। यथासम्भव षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। फिर जप करके स्तवपाठ करनेका नियम है। वाणलिंगकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

इस लिंगको वाणलिंग इसलिये कहते हैं कि वाणासुरने तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिंगरूपमें प्रकट रहें। एक वाणलिंगकी पूजासे अनेक और लिंगोंकी पूजाका फल मिलता है।

पार्थिव-पूजा

'**ॐहराय नमः**' इस मन्त्रसे मिट्टी लेकर '**ॐ महेश्वराय नमः**' मन्त्रसे अँगूठेके पोरभरका लिंग बनाना चाहिये। तीन भागमें बाँटे। ऊपरी भागको लिंग, मध्यको गौरीपीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं। दाहिने या बायें किसी एक ही हाथसे लिंग बनाये। असमर्थ पूजक दोनों हाथ लगा सकते हैं। लिंग बन जाय तो उसके सिरपर नन्ही-सी मिट्टीकी गोली बनाकर रखी जाती है। उसकी संज्ञा वज्र है। पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गात्रपर हाथ रखकर '**ॐ हराय नमः**' और '**ॐ महेश्वराय नमः**' कहे। पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें बिल्वपत्र आवश्यक है। माथेपर भस्म या मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला अवश्य होनी चाहिये। आसनशुद्धि, जलशुद्धिपर्वक गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इस प्रकार भगवान् शंकरका ध्यान करें—

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

—यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिंगके मस्तकपर फूल रखे। तब '**ॐ पिनाकधृक् इहागच्छ इहागच्छ, इह तिष्ठ इह तिष्ठ, इह संनिधेहि, इह संनिधेहि, इह संनिरुद्ध्यस्व इह संनिरुद्ध्यस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।**' कहे। इसी प्रकार आवाहनादि करे। आवाहनादि पाँच मुद्रा दिखाकर करना चाहिये। पीछे '**ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव**' इस मन्त्रसे लिंग-प्रतिष्ठा करे। फिर '**ॐ पशुपतये नमः**' मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ाये। फिर मस्तकपरका वज्र फेंककर चार शुद्ध अक्षत चढ़ाये। फिर पाद्यादि दशोपचार '**ॐ एतत् पाद्यम्**

ॐ नमः शिवाय नमः।' 'ॐ इदमर्घ्यम् ॐ नमः शिवाय नमः' इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ पूजन करे। शिवार्चनमें बिल्वपत्रका उपयोग आवश्यक है और स्नानके पहले मधुपर्क। इसके बाद शिवकी अष्टमूर्तिकी पूजा विहित है। यह गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वसे लेकर उत्तरावर्ती मार्गसे आठवीं दिशा अग्निकोणपर इस प्रकार सम्पन्न की जाती है— 'एते गन्धपुष्पे ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' (पूर्व)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्तये नमः' (ईशान)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः' (उत्तर)। 'एते गन्धपुष्पे ॐउग्राय वायुमूर्तये नमः' (वायव्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः' (पश्चिम)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः (नैर्ऋत्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः' (दक्षिण)। एते गन्धपुष्पे ॐईशानाय सूर्यमूर्तये नमः (अग्निकोण)। इस प्रकार अष्टमूर्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्य॰' इत्यादि मन्त्रोंसे करे। फिर दाहिने हाथका अँगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा 'बम्-बम्' शब्द करते हुए दाहिना गाल बजावे। पूजाके अन्तमें महिम्नःस्तोत्र कोई शिव-स्तुति पढ़ना चाहिये। प्रणाम करनेके अनन्त हाथसे अर्घ्यजलसे आत्मसमर्पण करके लिंगके म थोड़ा जल चढ़ाये और कृताञ्जलि हो क्षमा-प्रार्थना क

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर

—इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन चाहिये। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाव संहारमुद्राद्वारा एक निर्माल्यपुष्प सूँघते हुए त्रिकोणमण्डलके ऊपर डाल देना चाहिये। इस सम भावना करनी चाहिये कि भगवान् सदाशिवने मेरे हृद प्रवेश किया है। इसके बाद **'एते गन्धपुष्पे ॐ चण नमः'**, **'ॐ महादेव क्षमस्व'** कहकर पार्थिव लिंगक मण्डलके ऊपर रख देना चाहिये।

संक्षेपमें पार्थिव-पूजनका यही विधान है। विशे एवं उपासनाके लिये तत्तत् पूजन तथा उपासना-पद्ध अवलोकन करना चाहिये।

सर्वं शिवमयं जगत्

एक शिव ही नाना रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं। यह जगत् ईश्वरसे अलग है, ऐसी बुद्धि अज्ञानमूलक है। सभी ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, अज्ञानसे ही नानात्वबुद्धि हो रही है। जीव मायाके वश होकर आत्माको पर अलग समझता है। श्रवण-मननादि साधनोंके द्वारा जब वह मायासे छूट जाता है, तब उसी क्षण शिवस्वरूप हो जा शिव सर्वव्यापी हैं, सभी प्राणियोंमें समभावसे स्थित हैं। जैसे अग्नि सभी लकड़ियोंमें है, जहाँ संघर्षण होता है वहीं हो जाती है, इसी प्रकार जो व्यक्ति शिवभक्ति और श्रवण-मननादि साधनाका अवलम्बन करता है, वह सर्वत्र सम स्थित शिवके दर्शन सहज ही कर सकता है। स्थावर-जङ्गम सभी शिव-स्वरूप हैं, सभी शिव है, शिव ही सब है संसारमें शिवके सिवा और कुछ है ही नहीं।

जीव जब अज्ञानसे छूटकर उत्तम ज्ञानी होता है, तब उसी क्षण अहंकारसे मुक्त होकर शिवतादात्म्यरूप मुक्तिक करता है। जैसे दर्पणमें अपना ही स्वरूप देखा जाता है, वैसे ही ज्ञानके द्वारा शिवको भी सर्वव्यापीरूपसे सर्वत्र दे सकता है। ऐसा पुरुष पहले जीवन्मुक्त होता है और शरीरपात होनेपर शिवरूपी निर्गुण ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाता है

ज्ञानी पुरुष शुभकी प्राप्तिमें प्रसन्न नहीं होता, अशुभको पाकर कोप नहीं करता। जिसका सुख-दुःखमें सम वही ज्ञानी है। मुक्त होते ही सब बन्धन टूट जाते हैं, उसके बाद फिर कभी बन्धन नहीं होता।

शिवतत्त्वका ज्ञान शिवभक्तिसे होता है, भगवान्‌में प्रीति होनेसे भक्ति होती है, प्रीति गुण-रहस्यादिके श्रवणसे है, श्रवण सत्संगसे प्राप्त होता है, सत्संगका मूल सद्गुरु है। इसलिये सद्गुरुके द्वारा शिवतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके निश्चय ही मुक्त हो जाता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको शिवकी भक्ति करते हुए सदा उनका भजन करना चाहिये, करनेपर निश्चय ही शिवकी प्राप्ति होगी।

पराशक्ति भगवती श्रीदुर्गा

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चकी अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती श्रीदुर्गा ही सम्पूर्ण विश्वको सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्वप्रपञ्च उन्हींसे उत्पन्न होता है और अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाता है। जैसे दर्पणमें आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि-प्रपञ्च प्रतीत होता है, किंतु दर्पणको स्पर्श कर देखा जाय तो वहाँ वास्तवमें कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, वैसे ही सच्चिदानन्दरूपा महाचिति भगवतीमें सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पणके बिना प्रतिविम्बका भान नहीं होता, दर्पणके उपलम्भमें ही प्रतिविम्बका उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड, नित्य, निर्विकार महाचितिमें ही—उसके अस्तित्वमें ही प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होनेपर भास्यके उपलम्भकी आशा नहीं की जा सकती।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसकमेंसे कुछ नहीं है तथापि वह चिति, भगवती, दुर्गा आदि स्त्री-वाचक शब्दोंसे, आत्मा, पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दोंसे और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक-शब्दोंसे भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक—इन सबसे पृथक् होनेपर भी उस-उस शरीरके सम्बन्धसे या वस्तुके सम्बन्धसे वही अचिन्त्य, अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा महाचिति भगवती दुर्गा, आत्मा, पुरुष, ब्रह्म आदि शब्दोंसे व्यवहृत होती है। मायाशक्तिका आश्रयणकर वे ही अनेक रूपोंमें व्यक्त होती हैं।

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण। ये दोनों बातें भी ठीक हैं; क्योंकि उन एकके ही तो ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशीला रहती है, तव उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती है और जव वह महाशक्तिमें मिली रहती है, तब महाशक्ति निर्गुण है। इन अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामञ्जस्य है। वे जिस समय निर्गुण हैं, उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई वर्तमान है और जव वे सगुण कहलाती हैं, उस समय भी वे गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही हैं। उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसे उनका वैसा ही रूप भान होता है। वास्तवमें वे कैसी हैं, क्या हैं—इस बातको वे ही जानती हैं।

इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता बनते हैं, जिनसे विश्वकी उत्पत्ति होती है। इन्हींकी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पालन और संहार करते हैं। दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, कान्ति, लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तियाँ हैं। ये ही गोलोकमें श्रीराधा, साकेतमें श्रीसीता, क्षीरोदसागरमें लक्ष्मी, दक्षकन्या सती, दुर्गतिनाशिनी मेनकापुत्री दुर्गा हैं। ये ही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री और गायत्री हैं।

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूपा प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं, ये ही मायाधीश्वरी हैं, ये ही सर्जन-पालन-संहारकारिणी आद्या नारायणी शक्ति हैं और ये ही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर होती हैं। परा और अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा ये ही दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वैत, अद्वैत दोनोंका समावेश है। ये ही वैष्णवोंकी श्रीनारायण और महालक्ष्मी, श्रीराम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा, शैवोंकी श्रीशंकर और उमा, गाणपत्योंकी श्रीगणेश और ऋद्धि-सिद्धि, सौरोंकी श्रीसूर्य और उषा, ब्रह्मवादियोंकी शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या तथा शाक्तोंकी महादेवी हैं। ये ही पञ्चमहाशक्ति,

दशमहाविद्या तथा नवदुर्गा हैं। ये ही अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिताम्बा हैं। ये ही शक्तिमान् और शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं। ये ही माता, धाता, पितामह हैं; सब कुछ ये ही हैं।

यद्यपि श्रीभगवती नित्य ही हैं और उन्हींसे चराचर-प्रपञ्च व्याप्त है तथापि देवताओंके कार्यके लिये वे समय-समयपर अनेक रूपोंमें जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होनेपर भी 'देवी उत्पन्न हुईं—प्रकट हो गयीं', इस प्रकारसे कही जाती हैं—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

(दुर्गासप्तशती १। ६४—६६)

दुर्गादेवीका आविर्भाव

दुर्गादेवीके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है[1]—प्राचीन कालमें दुर्गम नामक एक महाबली असुर उत्पन्न हुआ था। उसने ब्रह्मासे एक अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। उसके प्रभावसे उसने चारों वेदोंको विश्वसे लुप्त कर लिया था। बलके घमण्डमें आकर उसने विश्वको अपमानित और पीड़ित कर रखा था। उसके उत्पातोंको सुनकर देवता भी भयभीत हो गये। वेदोंके अदृश्य हो जानेसे सम्पूर्ण धर्म-क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और अवर्षण होनेसे घोर अकाल पड़ गया, नदी और नद तो सूख ही गये, समुद्र भी सूखने लगे थे। भोजन और पानीके अभावसे लोग चेतनाहीन हो रहे थे। तीनों लोकमें त्राहि-त्राहि मची थी। तब देवताओंने भगवतीकी शरण ली। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक कहा—'माँ! जैसे आपने शुम्भ-निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, मधु-कैटभ तथा महिष आदि असुरोंका वधकर हमारी रक्षा की है, उसी तरह दुर्गमासुरसे भी हमें बचाइये और इसके द्वारा लाये गये अकालसे प्राणियोंकी रक्षा कीजिये।'

देवताओंकी करुणापूर्ण वाणीसे कृपामयी देवी प्रकट हो गयीं और अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका उन्हें दर्शन कराया। अन्न और जलके लिये छटपटाते जीवोंको ः उन्हें बड़ी दया आयी और उनके अनन्त नेत्रोंसे अश्रु सहस्त्रों धाराएँ प्रवाहित हो उठीं। उन धाराओंसे सब ले हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर देवीने गौओंके लिये सुन्दर घास और दूसरे प्राणियोंके

यथायोग्य भोजन प्रस्तुत किये। उन्होंने शुद्ध महात्मा पुरु अपने हाथसे दिव्य फल बाँटे। देवता, ब्राह्मण मनुष्योंसहित सभी प्राणी संतुष्ट हो गये।

तब देवीसे देवताओंने कहा—'माँ! जैसे आपने स विश्वको मरनेसे बचाकर हमलोगोंको तृप्त किया, वैसे ही अब दुष्ट दुर्गमासुरसे हमारी रक्षा कीजिये। उसने वेदोंका अप कर लिया है, जिससे सारी धर्मक्रिया ही लुप्त हो गयी है।'

देवीने कहा—'देवगण! मैं आपकी इच्छाएँ करूँगी। अब आपलोग निश्चिन्त होकर यथास्थान जायँ।' देवता उन्हें प्रणामकर यथास्थान लौट गये। लोकोंमें आनन्द छा गया।

दुर्गमासुर यह जानकर अत्यन्त विस्मित हुआ, सो

१-शिवपुराण, उमा० अ० ५०।

लगा—मैंने तो तीनों लोकोंको रुला डाला था, सब भूख-प्याससे मर रहे थे, देवता भी भयभीत थे, किंतु यह क्या हो गया, कैसे हो गया? वस्तुस्थितिसे अवगत होते ही दुर्गमासुरने अपनी आसुरी सेना लेकर देवलोकको घेर लिया। करुणामयी माँने देवताओंको बचाने तथा विश्वकी रक्षा करनेके लिये देवलोकके चारों ओर अपने तेजोमण्डलकी चहारदीवारी खड़ी कर दी और स्वयं घेरेसे बाहर आ डटीं।

देवीको देखते ही दैत्योंने उनपर आक्रमण कर दिया। इसी बीच देवीके दिव्य शरीरसे सुन्दर रूपवाली—**काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी** और **मातङ्गी**—ये दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। साथ ही असंख्य मातृकाएँ भी प्रकट हो गयीं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और वे सभी विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। इन शक्तियोंने देखते-देखते दुर्गमासुरकी सौ अक्षौहिणी सेनाको काट डाला। इसके पश्चात् देवीने दुर्गमासुरका तीखे त्रिशूलसे वध कर डाला और वेदोंका उद्धारकर उन्हें देवताओंको दे दिया।

(शिवपु०, उमा०, सं० अ० ५०)।

इस प्रकार देवीने दुर्गमासुरका वधकर विश्वकी रक्षा की। उन्होंने दुर्गम अुसरको मारा था इसीलिये उनका नाम 'दुर्गा' प्रसिद्ध हुआ। शताक्षी एवं शाकम्भरी भी उन्हींका नाम है। वे दुर्गतिनाशिनी हैं, इसलिये भी वे दुर्गा कहलाती हैं।

भगवती दुर्गाका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार निरूपित है—

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

'सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जया'नामवाली दुर्गादेवीका ध्यान करें। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रु-समुदायको भय देनेवाली हैं, उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण किये हुए रहती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कन्धेपर आरूढ हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।'

ये ही महादेवी भगवती श्रीदुर्गा साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी हैं—

'सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति? साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।' (देव्यथर्वशीर्ष)

देवताओंने देवीका उपस्थान (उनके निकट पहुँच) कर उनसे प्रश्न किया—'आप कौन हैं?' देवीने कहा—'मैं ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न होता है।'

यही निर्गुणस्वरूपा देवी जीवोंपर दया करके स्वयं ही सगुण-भावको प्राप्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश-रूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारकार्य करती हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं —

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, प्रकृति० २। ६६। ७—१०)

'तुम्हीं विश्वजननी मूलप्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्म-स्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीज-स्वरूपा, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंकी भी मङ्गल हो।'

उपनिषदोंमें इन्हींको पराशक्तिके नामसे कहा गया है—

तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः

किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् सैषा पराशक्तिः। (बह्वृचोपनिषद्)

'उस पराशक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए। उसीसे सब मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ और बाजा बजानेवाले किन्नर सब ओरसे उत्पन्न हुए। समस्त भोग्य पदार्थ और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम, मनुष्यादि प्राणिमात्र हैं, सब उसी पराशक्तिसे उत्पन्न हुए। ऐसी वह पराशक्ति है।'

इसी तत्त्वको ऋग्वेदोक्त देवीसूक्तमें अम्भृण ऋषिकी वाङ्नाम्नी कन्याके मुखसे स्वयं पराम्बा प्रकट करती हैं—

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यह-
मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥

(ऋ० १०।१२५।१)

'मैं एकादश रुद्र रूपसे विचरण करती हूँ, मैं सब वसुओंके रूपमें अवस्थान करती हूँ, मैं ही विष्णु आदि द्वादश आदित्य होकर विचरण करती हूँ, मैं ही समस्त देवताओंके रूपमें अवस्थान करती हूँ, मैं ही आत्माके रूपमें अवस्थान करके मित्र और वरुणको धारण करती हूँ, मैं ही इन्द्र एवं अग्निको धारण करती हूँ। मैंने ही दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण कर रखा है।'

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥

(ऋ० १०।१२५।३)

'मैं ही निखिल ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हूँ, उपासकगणको धनादि इष्टफल देती हूँ। मैं सर्वदा सबको ईक्षण करती हूँ, उपास्य देवताओंमें मैं ही प्रधान हूँ, मैं ही सर्वत्र सब जीवदेहमें विराजमान हूँ, अनन्त ब्रह्माण्डवासी देवतागण जहाँ कहीं रहकर जो कुछ करते हैं, वे सब मेरी ही आराधना करते हैं।'

इसी विस्तार-वर्णनको सप्तशतीमें '**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा**' अर्थात् 'इस जगत्में मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है, मैं ही एक हूँ', तथा—'**यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता**' ऐसा कहकर अपने विराट् स्वरूपके प्रभावको जगदम्बाने प्रकट किया है।

वास्तवमें वह सबसे बड़ी महाविद्यारूप, सबसे बड़ी मायारूप, सर्वोत्तम मेधारूप, सबसे अधिक शक्तिशालिनी, सत्यरूपिणी, शिवा, सुन्दरी एवं दिव्यरूपा है। वह '**निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या**'—समस्त देवगणोंकी शक्तियोंके समूहकी मूर्ति है। वह महाविद्यारूपसे जीवको ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराकर मोक्ष प्रदान करती है और वही अविद्यारूपसे उसको सांसारिक बन्धनोंमें फँसाती है। अनन्त ब्रह्माण्डोंकी आधारभूता सनातनी वह अव्याकृता, परमा एवं आद्या प्रकृति है।

प्रकृति, माया, शक्ति—सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसके अनेकधा नाम हैं। वस्त्र, सूत, बिनौला, रूई, कपासमें व्याप्त एक ही तत्त्वके समान विष्णु, शिव, गणपति, सूर्य, शक्ति, महामाया, दुर्गा, गौरी प्रकृतिके भिन्न-भिन्न नाम होते हुए भी तत्त्वतः एक ही हैं। जो चेतनात्मा देवताओंकी दिव्य शक्तियोंमें देवता कहलाता है, वही देवीकी दिव्य मूर्तियोंमें देवी कहलाता है। इसमें भेद-भावका भान अज्ञानका सूचक है। वह चेतनात्मा अदृष्ट और निर्लिप्त है। जो कुछ करती है, उसकी पराशक्ति प्रकृति ही करती है। जिस प्रकार एक स्वर्णकार बिना स्वर्णके कटक-कुण्डलादि आभूषण बनानेमें असमर्थ है, उसी प्रकार बिना प्रकृति-शक्तिके परमेश्वरका ऐश्वर्य सृष्टिके कार्यमें निरर्थक है।

स्वयं परमेश्वरतक इस बातको स्वीकार करते हैं—

'ईश्वरोऽहं महादेवि केवलं शक्तियोगतः।'
'शक्तिं बिना महेशानि सदाहं शवरूपकः॥'
'शक्तियुक्तो यदा देवि शिवोऽहं सर्वकामदः॥'

अर्थात् 'हे महादेवि! केवल शक्तिके योगसे ही मैं ईश्वर हूँ। शक्तिके बिना मैं शवरूप हूँ। जब शक्तियुक्त होता हूँ, तब ही सर्वकामप्रद कल्याणकारी शिव मैं होता हूँ।'

सृष्टिक्रममें आद्य एवं प्रधान (प्रकृष्टा) देवी होनेके कारणसे ही इसको प्रकृति कहते हैं। यह त्रिगुणात्मिका है, '**सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः**'—ऐसा शास्त्रोंमें

लिखा है। 'प्रकृति' शब्दके 'प्र,कृ,ति'—ये तीन अक्षर क्रमशः सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके द्योतक हैं। तत्तद्‌गुणानुसार वह परिणामस्वरूपा है। दुर्ज्ञेया होनेके कारण दुर्गा—प्रकृतिको हम दुर्गा कहते हैं। दुर्गा शब्दमें 'दु' अक्षर दुःख, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दारिद्र्यादि दैत्योंका नाश-वाचक है, रेफ रोगघ्न है, गकार पापघ्न और आकार अधर्म, अन्याय, अनैक्य, आलस्यादि अनेक असुरोंका नाशकर्ता है। सर्वसम्पत्स्वरूपा प्रकृति लक्ष्मी कहलाती है; वाक्, बुद्धि, विद्या, ज्ञानरूपिणी प्रकृति सरस्वती कहलाती है। इसी प्रकार सावित्री, राधा, सीता, तुलसी, मनसा, षष्ठी, चण्डी, काली, तारा, बाला, अन्नपूर्णा, गौरी, छिन्नमस्ता इत्यादि सभी स्वगुण-प्रधानांशरूपानुसार नाम धारण करती हैं।

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणके कृष्णजन्मखण्डके पचासवें अध्यायमें श्रीमन्नारायण महर्षि श्रीनारदजीसे कहते हैं—

जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता।
गरीयसीति जगतां माता शतगुणैः पितुः॥

'जगज्जननी प्रकृति है और जगत्‌का पिता पुरुष है। जगत्‌में पितासे शतगुणा (सौगुना) अधिक महत्त्व माताका है।'

अतः इसमें लेशमात्र संशयको स्थान नहीं कि इस विश्वके सृष्टि-क्रममें माया या प्रकृतिकी, जो कि स्त्रीरूप है, सर्वत्र व्यापकता और प्रधानता है। उसका ईश्वरतकपर पूर्ण अधिकार है। ईश्वरी, प्रकृति या ऐश्वर्यशक्तिके ही कारण हम ईश्वरको ईश्वर कहते हैं। नाम भिन्न है, तत्त्व एक है। प्रकृति ईश्वर है और ईश्वर पराशक्ति प्रकृति है। ईश्वरकी मातृ-भावसे उपासना करनेसे वे ही शक्तिरूपमें शक्तिभावापन्न अपने भक्तके अनेक कष्टोंका निवारण करते हुए उसे अपनेमें मिलाकर मुक्त कर देते हैं।

शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद

भगवतीने वाक्सूक्तमें यह बतलाया है कि —'मेरा आश्रय ब्रह्म है'—'**मम योनिः ········ समुद्रे**', इससे प्रतीत होता है कि आश्रय एक तत्त्व हुआ और आश्रयी दूसरा तत्त्व। इस तरह परब्रह्म और उसकी शक्ति दोनों पृथक्-पृथक् दो तत्त्व प्रतीत होते हैं और अद्वयवाद ही अनुपपन्न होने लगता है? किंतु वास्तविकता ठीक इससे विपरीत है। सच तो यह है कि पराम्बा दुर्गाने अपना आश्रय बतलाकर द्वैतको ही निरास किया है। यदि पराम्बा अपनेको आश्रित न बतलातीं, स्वतन्त्र बतलातीं तभी द्वैतकी आपत्ति आती। ब्रह्मको अपना आश्रय बतलाकर पराम्बाने व्यक्त कर दिया है कि मुझमें और परब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, क्योंकि शक्ति और शक्त्याश्रयमें कोई भेद नहीं होता। अग्निकी दाहिका और प्रकाशिका शक्तियाँ अग्निको छोड़कर नहीं रह सकतीं। फिर भी जो आश्रय एवं आश्रयीकी भेद-प्रतीति होती है, उसके उत्तरमें देवीभागवतमें कहा गया है कि '**भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्**' अर्थात् यह भेद-प्रतीति बुद्धि-भ्रम है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् (४।१०)में त्रिगुणात्मिका प्रकृति और मायाकी अभिन्नताका निरूपण करते हुए कहा गया है कि प्रकृति ही माया है और महेश्वर उसके अधिष्ठाता हैं—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

कोई भी कार्य शक्तिके बिना नहीं हो सकता। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—एक मनुष्य बीमार होकर बिछौनेपर पड़ा था। प्रतिदिन बीमारी बढ़नेके कारण वह बिछौनेसे उठकर बाहर नहीं आ सकता था। एक दिन उसका एक मित्र उसे देखनेके लिये आया और घरके दरवाजेपर खड़ा होकर पुकारने लगा—'भाई! जरा बाहर आओ।' रोगीने शय्यापरसे ही उत्तर दिया—'हे मित्र! मुझमें शय्यासे उठकर बाहर आनेकी शक्ति नहीं है, तुम्हीं अंदर आ जाओ।' इस प्रकार रोगी मनुष्यके कथनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि शक्ति एक वस्तु है, जिसके बिना वह शय्यासे उठकर बाहर नहीं आ सकता। रोगी मनुष्यकी शक्ति क्षीण हो गयी है, परंतु उसमें जीवन तो है। शक्त (रोगी मनुष्य) जीवन होते हुए भी शक्ति बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। शक्तिके बिना बैठना-उठना, चलना-फिरना आदि साधारण क्रियाएँ भी नहीं हो सकतीं। शक्तिके द्वारा ही सब कार्य हो सकते हैं। शक्तिसे सब काम हो जाता तो शक्तकी आवश्यकता न होती, यह कथन भी सम्भव नहीं है।

चार मास बीतनेपर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो गया और उसके शरीरमें वल तथा शक्ति आ गयी। उसी समय उसका

मित्र फिर मिलनेके लिये आया और दरवाजेपर आकर पहलेके समान उसे बाहर आनेके लिये कहने लगा। उस मनुष्यने उत्तर दिया कि—'शक्ति होते हुए भी मुझे बाहर आनेकी इच्छा नहीं है, तुम्हीं अंदर आ जाओ।' इस कथनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि उसमें शक्ति है, परंतु इच्छा न होनेसे वह बाहर नहीं आता। प्रत्येक कार्यके करनेमें शक्तकी इच्छाके अनुसार बर्तना पड़ता है। शक्ति स्वतन्त्र नहीं है तथा शक्ति बिना शक्त अकेले कोई काम नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट जान पड़ता है कि शक्ति और शक्तके सम्बन्धसे प्रत्येक कार्य सिद्ध होते हैं।

ब्रह्म, परमात्मा आदि शक्तके नाम हैं। मायाः प्रकृति आदि शक्तिके नाम हैं। अग्निमें दाह-शक्ति है दाह-शक्तिका अग्निके साथ जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही स ब्रह्मका ब्रह्मकी शक्तिके साथ है। जैसे अग्निकी दाह-शक्ति अ पृथक् नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्ति भी ब्रह्मसे पृथक् है। शक्ति चिदानन्द-स्वरूपिणी है और परमात्माकी स सृष्टि आदि सब कार्योंको करनेवाली है। अपने उपासकों, आराधकों, साधकों तथा समस्त विश्वपर असीम अनुकम्पा है।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—ये तीनों नाम जगन्नियन्ता परमात्माकी चितिशक्तिके हैं। शास्त्रकारोंका दृढ़ विश्वास है कि परमात्माको स्वरचित सृष्टिकी मर्यादारक्षार्थ युग-युगमें अपनी अलौकिकी योगमायाका आश्रय कर पुरुष या स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होना पड़ता है। जब वे पुरुषवेषमें अवतार लेते हैं, तब जगत् उनकी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामोंसे स्तुति करता है और जब वे स्त्रीरूपसे जगत्में अवतीर्ण होते हैं, तब उन्हें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश—रज, सत्त्व और तमःप्रधान हैं, उसी प्रकार चितिशक्तिके ये तीनों रूप भी सत्त्व, रज, तम आदि गुणोंकी अधिकताके अनुसार वेष धारण करते हुए तत्तद्गुणानुरूप कार्य करते हैं। चितिशक्तिके तमःप्रधान रौद्ररूपको महाकाली कहते हैं, जो प्रधानतया दुष्टोंका संहार करती है। सत्त्वप्रधान वैष्णवरूपको महालक्ष्मी कहते हैं जो जगत्का पालन करती है। रजःप्रधान ब्राह्मीशक्तिको सरस्वती कहते हैं, जो प्रधानतया जगत्की उत्पत्ति और उसमें ज्ञानका संचार करती है। दुर्गासप्तशतीमें चितिशक्तिके इन तीनों स्वरूपोंकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकार है—

स्वारोचिष-मन्वन्तरमें चक्रवर्ती राजा सुरथ राज्य करता था। एक समय शत्रुओंद्वारा पराजित होकर वह अपने राज्यमें आकर शासन करने लगा, परंतु वहाँपर भी उसके शत्रुओंने आक्रमण कर दिया, जिससे दुःखी होकर वह शिकारके बहानेसे वनमें जाकर मेधा मुनिके आश्रममें रहने लगा। परंतु वहाँ भी उसे रात-दिन अपने राज्य-कोष आदिकी ही चिन्ता घेरे रहती थी। एक समय राजा आश्रमके निकट घूम रहा था उसकी दृष्टि एक वैश्यपर पड़ी। उसे उदास देखकर पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किसलिये आये हो? मुख उदास और चिन्तित क्यों प्रतीत होता है?' राजाके सुनकर विनीतभावसे वैश्य कहने लगा कि 'महाराज नाम समाधि है। मैं उच्च कुलमें उत्पन्न वैश्य हूँ, दुर्भाग्यवश मेरे दुष्ट पुत्रोंने मेरा धन छीनकर मुझे निकाल जिससे मैं इस वनमें भटकता फिरता हूँ। मुझे अपने स्व कुशल-समाचार नहीं प्राप्त होनेसे मैं सर्वदा चिन्तित रह यद्यपि अर्थलोलुप पुत्रोंने मुझे निकाल दिया, फिर भी मेर उनके मोहको नहीं छोड़ता। इस प्रकार परस्पर बातें क दोनों आश्रममें गये और राजाने ऋषिके आगे विनीत कहा कि 'क्या कारण है कि मेरा सम्पूर्ण राज्य छिन जाने अभीतक उसमें मेरी आसक्ति बनी हुई है और यही दश वैश्यकी हो रही है? आप हमें उपदेश देकर नि छुड़ाइये।'

मुनिने कहा—'राजन्! महामायाकी विचित्र ल द्वारा समस्त प्राणी ममता और मोहके गर्तमें पड़े हुए हैं

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।

(श्रीदुर्गासप्तशती १।५५

जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भ

विष्णुकी महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक आकृष्टकर मोहमें डाल देती है। उसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है। वह जिसपर प्रसन्न होती है, उसे मुक्ति प्रदान करती है और वही संसारके बन्धनका हेतु है। मुक्तिकी हेतुभूता सनातनी पराविद्या वही है।'

राजाने पूछा—महाराज ! जिसका आपने वर्णन किया, वह महामाया देवी कौन है और कैसे उत्पन्न हुई है ? उसके गुण, कर्म, प्रभाव और स्वरूप कैसे हैं ?

ऋषिने कहा—वह नित्या है, समस्त जगत् उसकी मूर्ति है, उसके द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है। फिर भी देवकार्य करनेके लिये वह जब प्रकट होती है, तब उसे उत्पन्न हुई कहते हैं।

महाकालीकी उत्पत्ति

प्रलयकालमें सम्पूर्ण संसारके जलमग्न होनेपर भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें सो रहे थे। उस समय भगवान्के कर्णकीटसे उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो घोर राक्षस ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हो गये। भगवान्के नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने असुरोंको देखकर भगवान्को जगानेके लिये एकाग्रहृदयसे भगवान्के नेत्रकमलस्थित योगनिद्राकी स्तुति की—

'हे देवि ! तू ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली है, तू ही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा है, दारुण कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तू ही है। तूने जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको भी योगनिद्रावश कर दिया है और विष्णु, शंकर एवं मैं (ब्रह्मा) शरीर ग्रहण करनेको बाधित किये गये हैं। ऐसी महामायाशक्तिकी स्तुति कौन कर सकता है ? हे देवि ! अपने प्रभावसे इन असुरोंको मोहित कर मारनेके लिये भगवान्को जगा।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर वह महामाया भगवती भगवान्के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु तथा हृदयसे बाहर निकलकर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयी। भगवान् भी उठे और देखा कि दो भयङ्कर राक्षस ब्रह्माको खानेके लिये उद्यत हो रहे हैं। ब्रह्माकी रक्षाके लिये स्वयं भगवान् उनसे युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परंतु वे राक्षस नहीं मरे। तब महामायाने उन राक्षसोंकी बुद्धि मोहित कर दी, जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णुभगवान्से कहने लगे कि 'हम तुम्हारे युद्धसे अति संतुष्ट हुए हैं, तुम ईप्सित वर माँगो।' भगवान् कहने लगे—'यदि आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ।' मधु-कैटभने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाँ पृथ्वी जलसे ढकी हुई हो वहाँ हमको नहीं मारना।' अन्तमें भगवान्ने उनके सिरोंको अपनी जंघाओंपर रखकर चक्रसे काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये उस सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्तिने महाकालीका रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

'खड्ग, चक्र, गदा, धनुष, बाण, परिघ, शूल, भुशुण्डी, कपाल और शङ्खको धारण करनेवाली, सम्पूर्ण आभूषणोंसे सुसज्जित, नीलमणिके समान कान्तियुक्त, दस मुख, दस पादवाली महाकालीका मैं ध्यान करता हूँ, जिसकी स्तुति विष्णुभगवान्की योगनिद्रास्थितिमें ब्रह्माजीने की थी।'

महालक्ष्मीकी उत्पत्ति

एक समय देवता और दानवोंमें सौ वर्षतक घोर युद्ध हुआ। देवताओंका राजा इन्द्र था और दानवोंका महिषासुर। पराक्रमी दानवोंद्वारा देवताओंको पराजित कर महिषासुर जब स्वयं इन्द्र बन बैठा, तब सम्पूर्ण देवगण पद्मयोनि ब्रह्माजीको आगे कर भगवान् विष्णु और शंकरके पास गये और उन्हें अपनी सम्पूर्ण विपत्ति-गाथा सुनायी। देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकर कुपित हो गये और उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उनके शरीरसे एक महान् तेजःपुञ्ज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्वलित पर्वतकी तरह सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ नारी-शरीर बन गया। उस भगवतीको देखकर सब देवता प्रसन्न हुए और उसे अपने-अपने शस्त्र समर्पण किये। तब प्रसन्न होकर देवीने अट्टहास किया, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं, समुद्र

उछलने लगे, पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी डगमगाने लगे, देवताओंने जयध्वनि की और मुनिगण स्तुति करने लगे। उस भयङ्कर गर्जनाको सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित दानव-सेनाको लेकर वहाँ आया और तेजःपुञ्ज महालक्ष्मीको उसने देखा। तदनन्तर असुरोंका देवीके साथ अति भयङ्कर युद्ध हुआ, जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकारकी माया करके थक गया और अन्तमें महालक्ष्मीके द्वारा मारा गया। देवताओंने भगवतीकी विविध प्रकारसे स्तुति की। इस प्रकार महालक्ष्मीने रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'स्वहस्तकमलमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, शक्ति, खड्ग, चर्म, शङ्ख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाली, कमलस्थित, महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मीका हम ध्यान करते हैं।'

महासरस्वतीकी उत्पत्ति

पूर्वकालमें जब शुम्भ और निशुम्भने इन्द्रादि देवताओंके सम्पूर्ण अधिकार छीन लिये तथा वे स्वयं ही यज्ञभोक्ता बन बैठे, तब अपने अधिकारोंको पुनः प्राप्त करनेके लिये देवताओंने हिमालयपर जाकर देवी भगवतीकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। उस समय पतितपावनी भगवती पार्वती आयीं और उनके शरीरमेंसे शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदेवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली थीं, इसलिये उनका कौशिकी नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इसलिये उन्हें कालिका कहते हैं। तदनन्तर भगवती कौशिकी परम सुन्दर रूप धारण कर बैठी हुई थीं कि उन्हें चण्ड-मुण्ड नामक शुम्भ-निशुम्भके दूतोंने देखा। उन्होंने जाकर शुम्भ-निशुम्भसे कहा कि 'हे दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परम मनोहरा रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञ रूप आजतक किसीने नहीं देखा। आपके पास ऐरावत हाथी, पारिजात तरु, उच्चैःश्रवा अश्व, ब्रह्माका विमान, कुबेरका खजाना, वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविध रत्न विद्यमान हैं, पर ऐसा स्त्रीरत्न नहीं है, अतः आप उसे ग्रहण कीजिये।' दूतोंकी वाणी सुनकर शुम्भ-निशुम्भने अपने सुग्रीव नामक दूतको उस देवीको प्रसन्न करके अपने पास लानेको कहा। दूतने जाकर देवीको शुम्भ-निशुम्भका आदेश सुनाया और उनके ऐश्वर्यकी बहुत प्रशंसा की। देवीने कहा कि तुम जो कुछ कहते हो सो सब सत्य है, परंतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा कर ली थी, वह यह है कि—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। १२०)

'जो मुझे संग्राममें जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करेगा, वह मेरा पति होगा।' अतः तुम अपने स्वामीको जाकर मेरी प्रतिज्ञा सुना दो कि मुझे युद्धमें जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर ले। दूतने देवीको बहुत समझाया, परंतु देवीने नहीं माना। तब कुपित होकर दूतने सम्पूर्ण वृत्तान्त शुम्भ-निशुम्भको जाकर सुनाया, जिससे कुपित होकर उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचनको देवीके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा। परंतु देवीने थोड़े ही समयमें उसे सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड और मुण्डको भी देवीने मार डाला। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने अपनी समस्त सेना लेकर देवीको चारों ओरसे घेर लिया। भगवतीने घण्टाध्वनि की, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। इसी समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इन्द्रादिके शरीरोंसे शक्तियाँ निकलकर चण्डिकाके पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्तत् शक्तिके अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहनसे युक्त थीं। उन शक्तियोंके मध्यमें स्वयं महादेवजी आये और देवीसे बोले कि 'मुझे प्रसन्न करनेके लिये सम्पूर्ण दानवोंका संहार कीजिये।' उसी समय देवीके शरीरसे अति भीषण चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई और शिवजीसे बोली कि 'हे भगवन्! आप हमारे दूत बनकर दानवोंके पास जाइये और उन्हें कह दीजिये कि यदि तुम जीना चाहते हो तो त्रैलोक्यका राज्य इन्द्रको समर्पित कर पाताललोकको चले जाओ।' शिवजीने शुम्भ-निशुम्भको देवीकी आज्ञा सुनायी, पर वे बलगर्वित दानव कब माननेवाले थे। निदान भयंकर युद्ध

छिड़ गया और अस्त्र-शस्त्र-प्रहार होने लगे। शक्तियोंद्वारा आहत होकर दानव-सेना गिरने लगी। तब क्रुद्ध होकर रक्तबीज युद्धभूमिमें आया। इस दानवके रक्तसे उत्पन्न दानव-समूहसे सम्पूर्ण युद्ध-स्थल भर गया, जिससे देवगण काँप उठे। तब चण्डिकाने कालीसे कहा कि 'तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीरसे निकले हुए रक्तका पान करो, जब यह क्षीणरक्त होगा तब मारा जायगा।' फिर देवीने रक्तबीजपर शूलप्रहार किया। उससे जो रक्त निकला, उसे काली पीती गयीं। क्षीणरक्त होते ही देवीके प्रहारसे वह धराशायी हो गया। तत्पश्चात् शुम्भ और निशुम्भ भी युद्ध-भूमिमें मारे गये। देवगण हर्षित होकर जयध्वनि करने लगे। महासरस्वतीने जो रूप धारण किया, उसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'स्वहस्तकमलमें घण्टा, त्रिशूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष और बाणको धारण करनेवाली, गौरी-देहसे उत्पन्न, शरद् ऋतुके शोभा-सम्पन्न चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, तीनों लोकोंकी आधारभूता, शुम्भादि दैत्यमर्दिनी महासरस्वतीको हम नमस्कार करते हैं।'

देवतागण महासरस्वतीकी स्तुति करने लगे—'हे देवि! आप अनन्त पराक्रमशाली वैष्णवी शक्ति हैं, संसारकी आदिकारण महामाया आप ही हैं। आपके द्वारा समस्त संसार मोहित हो रहा है। आप ही प्रसन्न होनेपर मुक्तिकी दाता हैं। हे देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ आपके ही भेद हैं, सम्पूर्ण स्त्रियाँ आपका ही स्वरूप हैं। आपके द्वारा समस्त संसार व्याप्त है। कौन ऐसी विशेषता है कि जिससे हम आपकी स्तुति करें! हे देवि! आप प्रसन्न हों और शत्रुओंके भयसे सर्वदा हमारी रक्षा करें। आप समस्त संसारके पापोंका और उत्पातके परिणामस्वरूप उपसर्गोंका नाश कर दीजिये।' देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती प्रसन्न होकर कहने लगीं—'हे देवगण! तुम्हारी की हुई स्तुतिके द्वारा एकाग्रचित्त होकर जो मेरा स्तवन करेगा, उसकी समस्त बाधाएँ मैं अवश्य नष्ट कर दूँगी।' यह कहकर देवगणके देखते-देखते ही भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

मेधा ऋषिने देवीकी उत्पत्ति और देवादिकृत स्तुति सुनाकर कहा कि 'हे राजन्! तुम और यह वैश्य तथा अन्य विवेकीजन इन महामाया भगवतीकी मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः तुम इन्हीं परमेश्वरीकी शरण ग्रहण करो। आराधना करनेसे वे मनुष्योंको शीघ्र ही भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कर देती हैं।' ऋषिके वचन सुनकर वे दोनों नदीके किनारे जाकर देवीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने लगे। देवीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अनेक संयम-नियमोंका पालन करते हुए तीन वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके तपको देखकर भगवती प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष आ खड़ी हुईं और बोलीं—'मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हूँ। इच्छित वर माँग लो!' तब राजाने अपने राज्य और वैश्यने ज्ञान-प्राप्तिकी याचना की। देवीने 'तथास्तु' कहा। दोनोंके मनोरथ पूर्ण हुए, वैश्य मुक्त हो गया और राजाने अपना राज्य प्राप्त किया तथा वह दूसरे जन्ममें सूर्यपुत्र होकर सावर्णिमनु हुआ।

दस महाविद्याएँ और उनकी कथाएँ

दस महाविद्याओंका सम्बन्ध परम्परातः सती, शिवा और पार्वतीसे है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, शक्ति, चामुण्डा, विष्णुप्रिया आदि नामोंसे पूजित और अर्चित होती हैं। महाभागवतपुराण (श्रीदेवीपुराण)में महाविद्याओंके प्रादु-र्भावकी एक रोचक कथा प्राप्त होती है, तदनुसार शिवसे द्वेष रखनेके कारण दक्ष प्रजापतिने सभी देवताओं तथा महर्षियोंको अपने यज्ञमें सादर आमन्त्रित किया, किंतु शिवकी उपेक्षा कर उन्हें नहीं बुलाया। सतीने पिताके उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी, शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, पर सती अपने निश्चयपर अटल रहीं। उन्होंने कहा—'मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त

करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी।[१]" यह कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। वे शिवको उग्र दृष्टिसे देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया। क्रोधाग्निसे दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहने हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, शीशपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा, था। वे बार-बार विकट हुंकार कर रही थीं। देवीका यह स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नके सूर्योंके समान तेजःसम्पन्न था और वे बारंबार अट्टहास कर रही थीं। देवीके इस विकराल महाभयानक रूपको देखकर शिव भाग चले। भागते हुए उनको दसों दिशाओंमें रोकनेके लिये देवीने अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट किया। देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं—**१- काली, २- तारा, ३- छिन्नमस्ता, ४- षोडशी, ५- भुवनेश्वरी, ६- त्रिपुरभैरवी, ७- धूमावती, ८- वगलामुखी, ९- मातङ्गी** और **१०-कमला**।

इन दस महाविद्याओंमें महाकाली ही मूलरूपा मुख्य हैं और उन्हींके उग्र और सौम्य दो रूपोंमें अनेक रूप धारण करनेवाली ये दस महाविद्याएँ ही हैं। महाकालीके दशधा प्रधान रूपोंको ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्यापति शिवकी शक्तियाँ ये दस महाविद्याएँ लोक और शास्त्रमें यद्यपि अनेक रूपोंमें पूजित हुईं, पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओंके भेदसे अनेक होते हुए भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारिभेदसे अलग-अलग रूप और उपासना-स्वरूप प्रचलित हैं। काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवतीके प्रकट-कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओंके सौम्य रूप हैं। ये ही महाविद्याएँ साधकोंकी परम धन हैं, जो सिद्ध होकर अनन्त सिद्धियाँ और अनन्तका साक्षात्कार करानेमें समर्थ हैं।

यद्यपि दस महाविद्याओंका स्वरूप अचिन्त्य है, त शाखाचन्द्रन्यायसे उपासक, स्मृतियाँ और परा चरणानुगामी इस विषयमें कुछ निर्वचन अवश्य कर लेते इस दृष्टिसे काली-तत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्र पर्याय इस महाशक्तिको तान्त्रिक ग्रन्थोंमें विशेष प्रधानत गयी है। वास्तवमें इन्हींके दो रूपोंका विस्तार ही महाविद्याओंके स्वरूप हैं। महानिर्गुणकी अधिष्ठात्री श होनेके कारण ही इनकी उपमा अन्धकारसे दी जाती महासगुण होकर वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं तो महानिर्गुण हो 'काली'। तत्त्वतः सब एक है, भेद केवल प्रतीतिमात्रका 'कादि' और 'हादि' विद्याओंके रूपमें भी एक ही श्री क्रमशः कालीसे प्रारम्भ होकर उपास्या होती हैं। एक 'संहारक्रम' तो दूसरेको 'सृष्टि-क्रम' नाम दिया जाता देवीभागवत आदि शक्ति-ग्रन्थोंमें महालक्ष्मी या शक्तिबीज मुख्य प्राधानिक बतानेका रहस्य यह है कि इसमें हादि विद्य क्रमयोजना स्वीकार की गयी है और तन्त्रों, विशेषकर अत गोपनीय तन्त्रोंमें कालीको प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृ यहाँ भी भेदबुद्धिकी सम्भावना नहीं है। ***'अगुनहिं सगुनहिं कछु भेदा'*** का तर्क दोनोंको दोनोंसे अभिन्न सिद्ध करता है

बृहन्नीलतन्त्रमें कहा गया है कि रक्त और कृष्णभे काली ही दो रूपोंमें अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' तो रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरी'—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ताप्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

उपासनाके भेदसे दोनोंमें द्वैत है, पर तत्त्वदृष्टिसे अद्वै है। वास्तवमें काली और भुवनेश्वरी दोनों मूल-प्रकृति अव्यक्त और व्यक्त रूप हैं। कालीसे कमलातककी यात्रा द सोपानोंमें अथवा दस स्तरोंमें पूर्ण होती है। द महाविद्याओंका स्वरूप इसी रहस्यका परिणाम है।

दस महाविद्याओंकी उपासनामें सृष्टिक्रमकी उपासन लोकग्राह्य है। इसमें भुवनेश्वरीको प्रधान माना गया है। वह समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति है। देवीभागवतके अनुसा

१- ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा। प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥
(महाभागवत० ८।२)

सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्चके पाये हैं। इस श्रीमञ्चपर भुवनेश्वरी भुवनेश्वरके साथ विद्यमान हैं। सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधनामें लगे हुए हैं। विद्वानोंका कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर अपनी शक्तियोंके सांनिध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, संग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योंको सम्पादित करते हैं। वह निर्विशेष तत्त्व 'परमपुरुष' पद-वाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति ही है भुवनेश्वरी।

महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी अन्यान्य कथाएँ

१-काली—दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। कालिकापुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओंने हिमालयपर जाकर महामायाका स्तवन किया। पुराणकारके अनुसार यह स्थान मतङ्गमुनिका आश्रम था। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवतीने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि 'तुमलोग किसकी स्तुति कर रहे हो।' तत्काल उनके श्रीविग्रहसे काले पहाड़के समान वर्णवाली एक दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़े काजलके समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा 'दुर्गासप्तशती'में भी है। शुम्भ-निशुम्भके उपद्रवसे व्यथित देवताओंने हिमालयपर देवीसूक्तसे देवीको बार-बार जब प्रणाम निवेदित किया, तब गौरी-देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया, वे ही 'काली' नामसे विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥

(दुर्गासप्तशती ५। ८८)

वास्तवमें कालीको ही नीलरूपा होनेसे 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तरसे 'तारा' नामका रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देनेवाली—तारनेवाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियोंसे रक्षणकी कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे उग्रतारिणी या 'उग्रतारा' हैं।

नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार—एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ, यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारदजी प्रकट हो गये। शिवजीने नारदजीसे उनका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरुके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवकी प्रेरणापर नारदजी वहाँ गये और उन्होंने उनसे शिवजीसे विवाहका प्रस्ताव रखा। देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य विग्रह-षोडशी प्रकट हुईं और उससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवीका प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी स्तुतिमें 'महाविद्या' तथा देवताओंकी स्तुतिमें **'लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये'** सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकाएँ आधारपीठ हैं, इनके भीतर स्थित शक्तियोंका साक्षात्कार शक्ति-उपासना है। शक्तिसे शक्तिमान्का अभेद-दर्शन, जीवभावका लोप और शिवभावका उदय किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध शक्ति-उपासनाकी चरम उपलब्धि है। कालीकी साधना यद्यपि दीक्षागम्य है तथापि अनन्य-शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, यन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी आधारपर भक्तिभावसे मन्त्र, जप, पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे काली प्रसन्न हो जाती हैं। कालीकी प्रसन्नता सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति है।

२-तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं, बृहन्नीलतन्त्रादि ग्रन्थोंमें उनके विशेष रूपकी चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये देवीको नीलविग्रह प्राप्त हुआ है। शव-रूप शिवपर प्रत्यालीढ मुद्रामें भगवती आरूढ़ हैं और उनकी नीले रंगकी आकृति नीलकमलोंकी भाँति तीन नेत्र तथा हाथोंमें कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्मसे विभूषिता उन देवीके कण्ठमें मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इस कारण वे महाकरुणामयी हैं।

शत्रुनाश, वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है।

रात्रिदेवी-स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाव और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं।

३-छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता'के प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। वहाँ स्नान करनेपर क्षुधाग्निसे पीड़ित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः याचना करनेपर देवीने पुनः प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। बादमें उन देवियोंने विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो शिशुओंको तुरंत भूख लगनेपर भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयीने अपने कराग्रसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बायें हाथमें आ गिरा और कबन्धसे तीन धाराएँ निकलीं। वे दो धाराओंको अपनी दोनों सहेलियोंकी ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपरकी ओर प्रवाहित थी, उसे वे स्वयं पान करने लगीं। तभीसे ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोधकी प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञ-शीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खड़ी हैं। इनकी नाभिमें योनिचक्र है। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोंकी देवियाँ उनकी सहचरियाँ हैं। वे अपना शीश स्वयं काटकर भी जीवित हैं, जिससे उनमें अपनेमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका संकेत मिलता है।

४-षोडशी— इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव वे षोडशी कहलाती हैं। षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली उन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। उनके चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर विराजिता षोडशी देवीके चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता। वस्तुतः उनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तोंको वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुतः उनकी कृपाका एक कण भी अभीष्टसे अधिक प्रदान करनेमें समर्थ है।

५-भुवनेश्वरी—देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रकी स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदि-शक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी और निखिल प्रपञ्चोंकी आदि कारण, सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकारसे पोषण प्रदान करनेवाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्रोंमें इनकी अपार महिमा बतायी गयी है।

देवीका स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्रमें सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवतमें देवीका 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि इस बीजमन्त्रके जपका पुरश्चरण करनेवाला और यथाविधि होम, ब्राह्मण-भोजन करानेवाला भक्तिमान् साधक साक्षात् प्रभुके समान हो जाता है।

वृद्धिंगत विश्वका अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है। सोमात्मक अमृतसे विश्वका आप्यायन (पोषण) हुआ करता है, इसीलिये भगवतीने अपने किरीटमें चन्द्रमा धारण कर रखा है। ये ही भगवती त्रिभुवनका भरण-पोषण करती रहती हैं, जिसका संकेत उनके हाथकी मुद्रा करती है। ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं। कृपादृष्टिकी सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर) से मिलती है। शासनशक्तिके सूचक अङ्कुश, पाश आदिको भी वे धारण करती हैं।

६-त्रिपुरभैरवी—इन्द्रियोंपर विजय और सर्वत्र उत्कर्षकी प्राप्ति-हेतु त्रिपुरभैरवीकी उपासनाका विधान शास्त्रोंमें कहा गया है। क्षीयमान विश्वके अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। उनके ध्यानमें बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्योंके समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं। रक्तसे उनके पयोधर लिप्त हैं। वे तीन नेत्र एवं

हिमांशु-मुकुट धारण किये, हाथमें जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं। ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं।

७-धूमावती—धूमावती देवीके विषयमें कथा आती है कि एक बार पार्वतीने महादेवजीसे अपनी क्षुधाको निवारण करनेका निवेदन किया। महादेवजी चुप रह गये। कई बार निवेदन करनेपर भी जब देवाधिदेवने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेवजीको ही निगल लिया। उनके शरीरसे धूमराशि निकली। तब शिवजीने शिवासे कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्ति वगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्याससे व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं।

८-वगलामुखी—पीताम्बरा विद्याके नामसे विख्यात वगलामुखीकी साधना प्रायः शत्रुभयसे मुक्त होने और वाक्सिद्धिके लिये की जाती है। इनकी उपासनामें पीतवस्त्र, हरिद्रामाला, पीत आसन और पीत पुष्पोंका विधान है। व्यष्टिरूपमें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाली और समष्टिरूपमें परमेश्वरकी संहारेच्छाकी अधिष्ठात्री शक्ति वगला या वगलामुखी हैं। ये देवी सुधासमुद्रके मध्य स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नवेदीपर, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। स्वयं पीतवर्णा होती हुई पीतवर्णके ही वस्त्र, आभूषण एवं माला धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमें मुद्गर है। इनके आविर्भावके विषयमें इस प्रकारकी कथा आती है—

सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट करनेवाला तूफान आया। प्राणियोंके जीवनपर संकट आया देखकर महाविष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा सरोवरके समीप जाकर भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे निकलकर पीताम्बराके रूपमें उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पातका स्तम्भन किया। वास्तवमें दुष्ट वही है, जो जगत्के या धर्मके छन्दका अतिक्रमण करता है। वगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करनेवाली महाशक्ति हैं। वे परमेश्वरकी सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गतिको अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होनेका यही रहस्य है। '**ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा** उ' आदि वाक्योंमें वगला-शक्ति ही पर्यायरूपमें संकेतित हैं। वे सर्वसिद्धि देनेमें समर्थ और उपासकोंकी वाञ्छाकल्पतरु हैं।

९-मातङ्गी—'मतङ्ग' शिवका नाम है, उनकी शक्ति 'मातङ्गी' है। उनके ध्यानमें बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं। चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं। त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, नीलकमलके समान कान्तिवाली और राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्मसात् करनेमें दावानलके समान हैं। ये देवी चार भुजाओंमें पाश, खड्ग, खेटक और अङ्कुश धारण किये हुए हैं तथा असुरोंको मोहित करनेवाली एवं भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली हैं। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासमें पारङ्गत होनेके लिये मातङ्गी-साधना श्रेयस्करी है।

१०-कमला—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी कमलाकी उपासना वास्तवमें जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। इनकी कृपाके अभावमें जीवमें सम्पत्-शक्तिका अभाव हो जाता है। मानव, दानव और देव—सभी इनकी कृपाके बिना पंगु हैं। विश्वभरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम दोनोंमें समान रूपसे प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याओंमें एक हैं। जो क्रम-परम्परा मिलती है, उसमें इनका स्थान दसवाँ है। (अर्थात् इनमें—इनकी महिमामें प्रवेशकर जीव पूर्ण और कृतार्थ हो जाता है।) सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व इनकी कृपाके प्रसादके लिये लालायित रहते हैं। ये परमवैष्णवी, सात्त्विक और शुद्धाचारा, विचार-धर्मचेतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमलपर है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये सुवर्णतुल्य कान्तिमती हैं। हिमालय-सदृश श्वेतवर्णके चार गजोंद्वारा शुण्डाओंसे गृहीत सुवर्ण-कलशोंसे स्नापित हो रही हैं। ये देवी चार भुजाओंमें वर, अभय और कमलद्वय धारण किये हुए हैं तथा किरीट धारण किये हुए क्षौम-वस्त्रका परिधान किये हुए हैं।

महाविद्याओंका स्वरूप वास्तवमें एक ही आद्याशक्तिके विभिन्न स्वरूपोंका विस्तार है। इनकी उपासनासे विजय, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती है। पारमार्थिक स्तरपर इन विद्याओंकी उपासनाका आशय अन्ततः मोक्षकी साधना है, भगवत्प्राप्तिकी साधना है।

त्रिदेव

सम्पूर्ण देव-समाजमें त्रिदेवोंकी प्रधानता है। इन्हें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी संज्ञासे अभिहित किया गया है। पर परमात्माका वास्तविक स्वरूप इनसे भी परे, शान्त, एकरस, अभय और ज्ञानरूप है। वह देवाधिदेव है। न उसमें मायाका मल है और न ही उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनोंसे परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्दकी पहुँच वहाँतक नहीं है। तत्त्वज्ञानियों एवं ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंने अपनी अगाध श्रद्धा, उत्कट भक्ति एवं अन्तर्मुखी शुद्ध बुद्धिद्वारा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत तथा उससे भी परे स्वतन्त्र, स्वयम्भू, स्वयंसंवेद्य तत्त्वका अनुभव करके यह स्पष्ट रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि वह सर्वश्रेष्ठ ईश्वर-तत्त्व निर्गुण-निराकार, सर्वव्यापी, अनन्त, सच्चिदानन्द, सकलैश्वर्यसम्पन्न 'एकमेवाद्वितीय' है।

उपनिषदोंके अनुसार वह सगुण होकर भी निर्गुण है। साकार होकर भी निराकार है। 'अपाणिपाद' होकर भी ग्रहण और गमन करनेवाला है। वह 'सर्वेन्द्रियगुणाभास' होनेपर भी 'सर्वेन्द्रियविवर्जित' है। निर्विकल्प होकर भी सविकल्प है, दूर है और समीप है। इतना ही नहीं वह 'अवाङ्मनसगोचर' होकर भी बुद्धिगम्य है। संक्षेपमें वह '**अणोरणीयान्महतो महीयान्**' सब कुछ है। इस प्रकार परस्परविरोधी वर्णन करनेपर यद्यपि परमेश्वरमें अलौकिकत्व तो सिद्ध हो जाता है, तथापि यह उसका सर्वाङ्गीण वर्णन नहीं है। क्योंकि अनित्य शब्द उस नित्यका निर्वचन कर ही नहीं सकते। इसीसे अन्तमें 'नेति-नेति' कहकर उसे अनिर्वचनीय कहा गया है।

जब उस अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें सृष्टिप्रवाह होता है, उस समय नानाविध सम्पन्न रजोगुणसे प्रेरित वही परब्रह्म सगुण होकर हिरण्यगर्भके रूपमें प्रकट होता है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। (यजुर्वेद २३। १)

इस क्रममें जब सृष्टिका प्रसार होनेपर उसका पालन या रक्षण अत्यावश्यक हो जाता है, तब वही भगवान् सत्त्वगुण-प्रधान विष्णुरूपसे इसका पालन करते हैं। अन्तमें प्राणिमात्रकी मङ्गलकामनासे प्रेरित हो तमोगुण-प्रधान शिवरूपमें प्रकट होते हैं और इसका संहार करने लगते हैं। श्रीमद्भागवतपुराणके अनुसार परमब्रह्म अपनी शक्तिसे सक्रिय होकर ब्रह्माका रूप धारण करके वाच्य तथा वाचक शब्द और उसके अर्थके रूपमें प्रकट होते हैं तथा अनेकों नाम, रूप और क्रियाएँ स्वीकार करते हैं। वे ही जगत्के धारण-पोषणके लिये धर्ममय विष्णुरूप स्वीकार करके देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि रूपोंमें अवतार लेते हैं तथा विश्वका पालन-पोषण करते हैं। प्रलयका समय आनेपर वे ही भगवान् अपने बनाये हुए इस विश्वको कालाग्नि रुद्रका रूप ग्रहण करके अपनेमें लीन कर लेते हैं—

स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्। नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माकर्मकः परः॥

स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक्। पुष्णाति स्थापयन् विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः॥

ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः। संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः॥

(२। १०। ३६, ४२-४३)

कवि-कुल-चूडामणि महाकवि कालिदासने अपनी एक स्तुतिमें ब्रह्मा, विष्णु और शंकर— इन तीनों देवोंको तत्त्वतः एक ही निरूपित करते हुए कहा है—

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनुबिभ्रते। अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने॥

'सृष्टि, स्थिति, संहाररूप कार्य करनेसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपसे स्थित हे परमात्मन्! तुम्हें नमस्कार है।' वस्तुतः एक ही परमेश्वर इस विश्वमें विविध गुणोंसे सम्पन्न होकर आविर्भाव-तिरोभाव, उत्कर्षापकर्ष करके अनेक लीलाएँ करता हुआ विभिन्न नाम-रूपोंसे पुकारा जाता है। किंतु इससे उसके मूलस्वरूप या पूर्वस्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता।

ब्रह्मा, विष्णु और शिवके एकत्व-विषयक रहस्यको सुस्पष्ट करते हुए श्रीमद्भागवतपुराणमें भगवान्ने स्वयं कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्। आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज। सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि। ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्। पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्। सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

(४।७।५०—५४)

'मैं ही जगत्का प्रथम एवं परम कारण तथा ब्रह्मा और महादेव हूँ। मैं सबकी आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश एवं उपाधिशून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्की रचना, पालन और संहार करता रहता हूँ और मैंने ही उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर—ये नाम धारण किये हैं। ऐसा जो भेदरहित, विशुद्ध परब्रह्मस्वरूप मैं हूँ, उसीमें अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखता है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर, हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी बुद्धि कभी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भक्त प्राणिमात्रको मुझसे भिन्न कभी नहीं देखता। हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर— तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं, अतः जो हममें भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है।'

त्रिदेव तत्त्वतः एक हैं, इनमेंसे एककी उपासना करनेसे सच्चे भक्तके मनमें स्वतः ही दूसरेके प्रति श्रद्धा-भावना जाग्रत् हो उठती है। समन्वयात्मक देव-पूजा एवं देव-दर्शनका यही स्वरूप भुक्ति और मुक्तिके संदर्भमें चरम साध्य है। त्रिदेवोंमें विष्णु एवं शिवका परिचय पञ्चदेव प्रकरणमें दिया जा चुका है। यहाँपर ब्रह्माजीका संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण दिया जा रहा है—

विश्वसृष्टिके निर्माता भगवान् ब्रह्मा

बृहद्देवतात्रयीमें आदिदेव ब्रह्माका सर्वप्रथम स्थान है। इनके प्रातःस्मरण करनेसे सभी प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं। सभी माङ्गलिक कार्योंके प्रारम्भिक पूजनमें इनका स्मरण-पूजन करनेका विधान है। वेदोंमें सृष्टिकर्ता देवताके लिये विश्वकर्मन्, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा तथा प्रजापति—ये नाम आये हैं। वहाँ प्रजापति ब्रह्माको परब्रह्म परमात्माके रूपमें स्वीकार किया गया है। उनका आविर्भाव सर्वप्रथम हुआ—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

(मुण्डक० १।१)

ब्रह्माजीका आविर्भाव

महाप्रलयके बाद कालात्मिका शक्तिको अपने शरीरमें निविष्टकर भगवान् नारायण दीर्घकालतक योगनिद्रामें निमग्न रहे। महाप्रलयकी अवधि समाप्त होनेपर उनके नेत्र उन्मीलित हुए और सभी गुणोंका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु प्रबुद्ध हुए, उसी समय उनकी नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसकी कर्णिकाओंके ऊपर स्वयम्भू ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण ज्ञानमय एवं वेदमय कहे गये हैं, प्रकट होकर बैठे दिखायी पड़े। उन्होंने शून्यमें अपने नेत्रोंको चारों ओर घुमा-घुमाकर देखना

प्रारम्भ किया। इसी उत्सुकतामें देखनेकी चेष्टा करनेसे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख प्रकट हो गये।

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥

(श्रीमद्भा० ३।८।१६)

किंतु उन्हें कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ा और उन्हें यह चिन्ता हुई कि इस नाभिकमलमें बैठा हुआ मैं कौन हूँ और कहाँसे आया हूँ? तथा यह कमल भी कहाँसे निकला है। बहुत चिन्तन करनेपर और दीर्घकालतक तप करनेके बाद उन्होंने उन परमपुरुषका दर्शन किया, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। जो मृणाल-गौर शेषशय्यापर सो रहे थे और जिनके शरीरसे महानीलमणिको लज्जित करनेवाली तीव्र प्रकाशमयी छटा दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थी। ब्रह्माजीको इससे बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण विश्वका तथा अपना भी मूल कारण समझकर उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान्ने भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर उनसे कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप तपःशक्तिसे समृद्ध हो गये हैं और आपको मेरा अनुग्रह भी प्राप्त है। अब आप सृष्टि करनेका प्रयत्न कीजिये। आपको अबाधित सफलता प्राप्त होगी। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सरस्वतीदेवीने उनके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके चारों मुखोंसे उपवेद और अङ्गोंसहित चारों वेदोंका सस्वर गान कराया। पुनः उन्होंने सृष्टि-विस्तारके लिये सनकादि चार मानस-पुत्रोंके बाद मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष आदि मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया और आगे स्वायम्भुवादि मनु आदिसे सभी प्रकारकी सृष्टि होती गयी।

सभी पुराणों तथा स्मृतियोंमें सृष्टि-प्रक्रियामें सर्वप्रथम ब्रह्माके ही प्रकट होनेका वर्णन आता है। वे मानसिक संकल्पसे प्रजापतियोंको उत्पन्न कर उनके द्वारा सारी प्रजा एवं जीव-निकायकी रचना करते-कराते हैं, इसीलिये वे प्रजापतियोंके भी पति कहे जाते हैं। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा कर्दम—ये दस मुख्य प्रजापति हैं। इन दसों प्रजापतियोंकी संतानोंसे सभी प्रकारकी सृष्टिका विस्तार हुआ। इन दसोंमें भी मरीचि (के पुत्र कश्यप) तथा दक्ष प्रजापतिकी अनेक प्रकारकी संतानें हुईं और उससे सम्पूर्ण त्रैलोक्य व्याप्त हो गया।

प्रजा-विस्तारमें दक्षने अत्यधिक रुचि रखी, अतः ब्रह्माजीने उन्हें समस्त प्रजापतियोंका अध्यक्ष बना दिया। दक्षकी अनेक पुत्रियाँ थीं, जिनमेंसे अधिकांश चन्द्रमा, कश्यप और धर्मकी पत्नियाँ थीं तथा उनमेंसे एक भगवान् शंकरकी पत्नी सतीजी भी थीं। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपकी दस पत्नियाँ थीं, जो दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ थीं, उनमेंसे अदितिसे आदित्यादि देवता, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव-वर्ग उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार सभी देवता तथा देवताओंकी अन्य श्रेणियाँ विद्याधर, नाग, किन्नर आदिकी उन्हींसे उत्पत्ति हुई। भागवतादि पुराणोंके अनुसार भगवान् रुद्र भी उन्हींके ललाटसे उत्पन्न हुए।

मानवसृष्टिके मूल-हेतु स्वायम्भुव मनु भी उन्हींके पुत्र थे और उन्हींके दक्षिणभागसे उत्पन्न हुए थे। उन्हींके वाम-भागसे महारानी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपासे ही मैथुनी सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। सभी देवता ब्रह्माजीके पौत्र माने गये हैं, अतः वे पितामहके नामसे प्रसिद्ध हो गये। ब्रह्मा यों तो देवता, दानव तथा सभी जीवोंके पितामह हैं, किंतु सृष्टि-रचनाके कारण धर्मके ही पक्षपाती हैं, इसलिये जब कभी पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता और अनीति बढ़ती है तथा पृथ्वी माता दुराचारियोंके भारसे पीड़ित होती हैं तब कोई उपाय न देखकर वे देवताओंसहित ब्रह्माजीके पास ही जाती हैं, इसी प्रकार जब कभी देवासुरादि-संग्रामोंमें देवगण पराजित होकर अपना अधिकार खो बैठते हैं तो वे भी प्रायः ब्रह्माजीके पास ही जाते हैं और ब्रह्माजी यथाशक्ति बुद्धिसे भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर उन्हें अवतार ग्रहण करनेको प्रेरित करते हैं। अतः विष्णुके प्रायः चौबीस अवतारोंमें ये ही निमित्त बनते हैं। दुर्गा आदिके अवतारोंमें भी ये ही प्रार्थना करके उन्हें विभिन्न रूपोंमें अवतरित होनेकी प्रेरणा देते हैं और पुनः धर्मकी स्थापना करनेके पश्चात् देवताओंको यथायोग्य भागका अधिकारी बनाते हैं।

ब्रह्माका दिन ही दैनन्दिन सृष्टि-चक्रका समय होता है। उनका दिन ही कल्प कहलाता है। (एक कल्पमें चौदह मन्वन्तरका समय होता है) इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती

है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है। ब्रह्माकी परमायु ब्राह्मवर्षके मानसे एक सौ वर्ष है, इसे 'पर' कहते हैं। पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंके अनुसार इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध ५० ब्राह्म दिव्य वर्ष बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं अर्थात् यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। इस प्रकार उनके दिव्य सौ वर्षोंकी आयुमें अनेक बार सृष्टि और प्रलयका क्रम चलता रहता है।

ब्रह्माजीने ब्रह्मावर्तक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्करक्षेत्रमें विशाल यज्ञोंका आयोजन किया था, इसलिये ब्रह्माजीके कमलके नामपर पुष्कर और यज्ञके नामपर प्रयाग नामक मुख्य तीर्थ स्थापित हुए, जो समस्त तीर्थोंके गुरु और पुरोहित तथा सभी तीर्थोंके राजा माने गये हैं। स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) के अनुसार उन्होंने काशीके मध्यभागमें दस अश्वमेध यज्ञ भी किये थे, जिसके कारण वह स्थान दशाश्वमेध-क्षेत्र तथा दशाश्वमेधिक तीर्थके नामसे विख्यात हुआ।

आगमोंमें शैव और शाक्त आगमोंकी भाँति ब्रह्माजीकी पूजा-आराधनाका एक विशिष्ट सम्प्रदाय है, जो वैखानस आगमके नामसे प्रसिद्ध है। इस वैखानस आगमकी सभी आगम-सम्प्रदायोंमें मान्यता है। शाङ्कर-सम्प्रदायमें प्रायः सभी पूजा-उपासनामें इस सम्प्रदायको विशेष प्रामाणिक माना गया है। इनके नामसे वैखानस श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र तथा स्मृतियाँ (वैखानसस्मृति, प्रजापतिस्मृति) भी प्राप्त होती हैं। पुराणादि सभी शास्त्रोंके ये ही आदि वक्ता माने गये हैं।

ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद), न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा आदि ऋत्विज् प्रकट हुए। इनके पूर्वमुखसे ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिममुखसे सामवेद तथा उत्तर मुखसे अथर्ववेदका आविर्भाव हुआ। इतिहास-पुराणरूप पञ्चमवेदका भी उनके मुखसे आविर्भाव हुआ। साथ ही षोडशी, उक्थ्य, अग्निष्टोम, आप्तोर्याम, वाजपेय आदि यज्ञ; विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद और वृत्तियोंसहित चार आश्रम भी प्रकट हुए।

वर्णन आता है कि जब विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए तो विष्णुकी प्रेरणासे ही सरस्वतीने प्रकट होकर उनके चारों मुखोंसे वेदोंका उच्चारण कर समस्त ज्ञानराशिका विस्तार किया[1]। यज्ञ-कार्यमें सर्वाधिक प्रयुक्त होनेवाली पवित्र समिधा और प्रायः यज्ञीय काष्ठपीठ आदिके निर्माणमें सर्वोत्तम मान्य पलाश-वृक्ष ब्रह्माजीका ही स्वरूप माना जाता है। अथर्ववेद तो ब्रह्माजीके नामसे ही है, इसीलिये यह ब्रह्मवेद भी कहलाता है। पाँचों वेदोंके ज्ञाता और यज्ञके मुख्य निरीक्षक ऋत्विज्को ब्रह्मा नामसे ही कहा जाता है, जो प्रायः यज्ञकुण्डके दक्षिण-दिशामें स्थित होकर यज्ञ-रक्षा और निरीक्षणका कार्य करता है।

भगवान् ब्रह्माकी पूजा-उपासना

अमूर्त उपासनामें ब्रह्माजीकी सर्वत्र पूजा होती है और सभी प्रकारके सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र तथा वास्तु आदि चक्रोंमें उनकी पूजा मुख्य स्थानमें होती है, किंतु मन्दिरोंके रूपमें इनकी पूजा मुख्यतया पुष्कर-क्षेत्र तथा ब्रह्मावर्त-क्षेत्र (बिठूर) में देखी जाती है, वैसे इनके भित्तिचित्र और प्रतिमाचित्र तो सर्वत्र मिलते हैं। मध्वसम्प्रदाय, जिसके भेदाभेद, स्वतन्त्रास्वतन्त्र तथा द्वैतवाद आदि अनेक नाम हैं, के आदिप्रवर्तक आचार्य भगवान् ब्रह्मा ही माने गये हैं, इसलिये उडुपी आदि मुख्य मध्वपीठोंमें भी इनकी बड़े आदरसे पूजा-आराधनाकी परम्परा है।

ब्रह्माजीकी प्रतिमाके रूपमें व्यापक पूजा ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमें शिव, विष्णु, दुर्गा, राम, कृष्ण, हनुमान् आदिके समान नहीं देखी जाती। यद्यपि इसके कारण और आख्यान भी अनेक प्राप्त होते हैं तथापि मुख्य कथा पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें आती है, उसीमें यह भी बात आती है कि पुष्करके महायज्ञमें जब सभी देवता उपस्थित हो गये और सभीकी पूजा आदिके पश्चात् हवनकी तैयारी होने लगी, सभी देवपत्नियाँ भी उपस्थित हो चुकी थीं, किंतु ब्रह्माजीकी पत्नी सरस्वती देवियोंके बुलाये जानेपर भी विलम्ब करती गयीं, तब

१-प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि। स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥ (श्रीमद्भा० २।४।२२)

अपतीक यज्ञका विधान न होनेसे यज्ञारम्भमें अति विलम्ब देखकर इन्द्रादि देवताओंने कुछ समयके लिये सावित्री नामकी कन्याको, जो सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी, ब्रह्माजीके वामभागमें बैठा दिया। थोड़ी देरके पश्चात् सरस्वतीजी जब पहुँचीं तो यह सब देखकर क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने देवताओंको बिना विचार किये काम करनेके कारण संतानरहित होनेका शाप दे दिया और ब्रह्माजीको भी पुष्कर आदि कुछ क्षेत्रोंको छोड़कर अन्यत्र मन्दिर आदिमें प्रतिमा-रूपमें पूजित न होनेका शाप दे दिया। अतः उनकी प्रस्तर आदिकी प्रतिमाएँ प्रायः अन्यत्र नहीं देखी जाती हैं। किंतु मन्त्र, ध्यान और यज्ञादिमें उनका सादर आवाहन-पूजनके पश्चात् आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, स्तुति-पूजा भी होती है और सर्वतोभद्रादि चक्रोंमें सर्वाधिक प्रतिष्ठित-रूपसे वे उपास्य माने गये हैं। देवता तथा असुरोंकी तपस्यामें प्रायः सबसे अधिक आराधना इन्हींकी होती है। विप्रचित्ति, तारक, हिरण्यकशिपु, रावण, गजासुर तथा त्रिपुर आदि असुरोंको इन्होंने ही वरदान देकर अवध्य कर डाला था और देवता, ऋषि, मुनि, गन्धर्व, किन्नर तथा विद्याधरगण तो इनकी आराधनामें निरत रहते ही हैं।

स्वरूप-प्रतिमा-आभूषण आदि

रूपमण्डन, प्रतिमामण्डन, शिल्परत्न, चित्रमण्डन, काश्यपशिल्पम्, मत्स्य तथा विष्णुधर्मोत्तरादि पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजीकी कई प्रतिमाएँ और चित्र निर्मित होते हैं। जिनमें उनका चतुर्मुख या चतुर्भुजरूप, पद्मासनरूप, हंसारूढरूप, रथारूढरूप तथा प्रजापतिरूप—ये पाँच विशेष प्रसिद्ध हैं। इन सभी रूपोंमें ब्रह्माजी प्रायः चतुर्मुख, चतुर्भुज, जटायुक्त, अक्षमाला तथा कमण्डलु, वेदराशि और अभयमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। इनके प्रतिमानिर्माणके सम्बन्धमें मत्स्यपुराणमें कहा गया है कि ब्रह्माजीकी प्रतिमा कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंसे युक्त तथा चतुर्भुज होनी चाहिये। उनकी प्रतिमा कहीं हंसपर बैठी हुई तथा कहीं कमलपर विराजमान रहती है। उनका वर्ण कमलके भीतरी भागके समान अरुणवर्ण, नेत्र सुन्दर, हाथोंमें कमण्डलु, स्रुवा, दण्ड तथा स्रुच् (कहीं वेदराशि) प्रदर्शित करना चाहिये। उन्हें चारों ओर देवता, गन्धर्व और मुनिगणोंद्वारा स्तुत होते हुए तथा लोकोंकी रचनामें प्रवृत्त दिखाना चाहिये। वे श्वेतवस्त्रधारी, ऐश्वर्यसम्पन्न, मृगचर्म तथा दिव्य यज्ञोपवीतसे युक्त हों। उनके बगलमें आज्यस्थाली रहे और सामने चारों वेदोंकी मूर्तियाँ हों। उनकी बायीं ओर सावित्री, दाहिनी ओर सरस्वती तथा अग्रभागमें मुनियोंके समूह रहने चाहिये[१]।

अग्निपुराणमें बताया गया है कि ब्रह्माजी चतुर्मुख, चतुर्भुज एवं हंसपर आरूढ़ रहते हैं। उनकी लम्बी दाढ़ी, सिरपर जटाएँ, उदर-मण्डल विशाल है। वे दाहिने हाथोंमें अक्षसूत्र और स्रुवा एवं बायें हाथोंमें कुण्डिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं, उनके वामभागमें सरस्वती और दक्षिणभागमें सावित्री हैं[२]।

ब्रह्माजीका जो प्रजापति-रूप है, उसमें विशिष्ट बात यह है कि उनका स्वरूप, आभूषणादि तो ब्रह्माजीके समान ही रहता है, किंतु अन्तर यह है कि उन्हें चतुर्मुख-रूपमें प्रदर्शित नहीं किया जाता और न उनके वाहन हंसका ही प्रदर्शन होता है[३]। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें ब्रह्माजीके स्वरूप एवं आभूषणादिके रहस्यको स्पष्ट किया गया है, तदनुसार इनके पूर्वमुखको ऋग्वेदमय, दक्षिणको यजुर्वेदमय, पश्चिमको सामवेदमय तथा उत्तरको अथर्ववेदमय कहा गया है। इसी प्रकार उनकी चारों भुजाओंको चार दिशाओंका प्रतीक बताया गया है। संसारका सार ही जल है और सारा संसार जलपर ही आधृत है, सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी जलके आधारपर ही जीवन धारण करते

१- ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः। हंसारूढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः॥
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः। कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे॥
वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुचं चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः॥
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ्शुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम्॥
आज्यस्थालीं न्यसेत् पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः। वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम्॥
अग्रे च ऋषयस्तद्वत् कार्याः पैतामहे पदे। (मत्स्यपु० २६०।४०-४५)

२-अग्निपु० ४९।१४-१५

३-विष्णुधर्मोत्तरपु० ३।७३।१२

हैं, इसलिये उसके प्रतीक-रूपमें ब्रह्मा अपने हाथमें सजल कमण्डलु धारण करते हैं। उनके दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला है, जो क्षणसे लेकर कल्पतक काल-गणनाकी प्रतीक है। विविध कर्मोंके योगसे यज्ञका अनुष्ठान होता है। यज्ञमें कुछ कर्म तो बड़े उदात्त होते हैं और कुछ सामान्य भी होते हैं, जिन्हें शुक्लाशुक्ल कहा गया है। इसीलिये यज्ञके प्रतीकमें वे कृष्णाजिन-चर्मको धारण करते हैं, जिसका आधा भाग श्वेत तथा आधा कृष्ण है। संसारमें भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सात लोक हैं। इन सभी लोकोंका प्रतीक ब्रह्माजीका रथके स्थानमें उनका वाहन हंस कहा गया है, जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सातों लोक परिकल्पित हैं। भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल उत्पन्न हुआ था, वही उनका पद्मासन है, उस कमलकी कर्णिकाओंको सुमेरु पर्वतका स्वरूप माना गया है। संसारमें वनस्पतियाँ तथा ओषधियाँ भी विश्वकी शोभा बढ़ाती हैं तथा समग्र प्राणियोंके लिये उपकाररत रहती हैं। इन ओषधियोंके प्रतीक-स्वरूप ही भगवान् ब्रह्माके सिरपर जटाएँ सुशोभित रहती हैं। संसारको प्रकाशित करनेवाले सूर्य, चन्द्र तथा ज्योतिश्चक्र और बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले अनेक प्रकारके विद्या-स्थान भगवान् ब्रह्माके आभरणके रूपमें उनके ग्रीवा, कण्ठ और वक्षःस्थल तथा बाहुओंमें अलङ्कृत हुए हैं[1]। यही उनकी प्रतिमाका सारभूत रहस्य है। वे सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्तिके मूल कारण हैं और समस्त संसारमें व्याप्त हैं तथा समस्त विश्वको प्रतीकरूपमें अपने शरीरमें धारण किये हैं। भगवान् ब्रह्मा सभी देवताओंमें प्रधान हैं।

ब्रह्मसभा

महाभारत तथा अन्य पुराणोंमें ब्रह्मसभाका विस्तारसे वर्णन आया है। महाभारत सभापर्वके ११वें अध्यायमें देवर्षि नारदने युधिष्ठिरसे इसीका वर्णन किया है। ब्रह्माके मानसपुत्र होनेसे देवर्षि नारद प्रायः उसीमें निवास करते हैं। नारदजीके कथनानुसार इस सभाकी अन्य किसी देवताकी सभासे तुलना नहीं की जा सकती। इसमें इस सभाको 'सुसुखा' कहा गया है। इसे ब्रह्माजीने स्वयं अपने संकल्पसे उत्पन्न किया था। यह सभीके लिये सुखद है। यहाँ कभी किसी प्रकार उष्णता, शीत, क्षुधा-पिपासा, ग्लानिजनित बाधाएँ नहीं होतीं। यह सभा पद्मराग, वैदूर्य, मरकत आदि दिव्य मणियोंसे निर्मित है और यह किसी लौकिक स्तम्भ आदिसे धारण नहीं की जा सकती। यह नित्य है। यहाँ सूर्य और चन्द्रमा या अग्निके प्रकाशकी आवश्यकता नहीं होती। वह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। अतः उसे स्वयम्प्रभा सभा भी कहा जाता है। यह वरुण, कुबेर, इन्द्रादिके लोकोंसे ऊपर स्थित होकर स्वयं देदीप्यमान सूर्यकी दीप्तिसे भी अधिक प्रकाशयुक्त है। उस सभाके मध्यभागमें भगवान् ब्रह्मा सुशोभित होते हैं। वहाँ मुख्यरूपसे ब्रह्माजी अकेले ही निवास करते हैं, किंतु सभा लगनेपर दक्ष, प्रचेता, कश्यप आदि सभी प्रजापतिगण उनकी उपासना करते हैं। यहाँके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषय अप्राकृत और दिव्य हैं, ब्रह्माजीके अगल-बगलमें महातेजस्वी मार्कण्डेय, अगस्त्य, जमदग्नि, भरद्वाज आदि तेजस्वी महर्षि उपासना करते रहते हैं तथा योगियोंके आचार्य सनकादि तो वहाँ स्वभावसे ही रहते हैं। आठों अङ्गोंके सहित आयुर्वेद तथा चारों वेदादि अङ्गोंसहित वहाँ मूर्तिमान् होकर उनकी उपासना करते हैं। अश्विनी आदि नक्षत्रोंके साथ समस्त किरणोंसे संयुक्त चन्द्रमा भी उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। वायुदेवता, सभी मरुद्गण, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ, द्वादश आदित्यगण, रथन्तर साम और सभी प्रकारके आगमोंके मन्त्र भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित रहते हैं। आठों वसु, सभी पितृगण तथा विश्वकर्मा भी उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये स्वरूप धारणकर स्थित रहते हैं। इतिहास, पुराण, ज्योतिषादि वेदाङ्ग और तीनों प्रकारकी हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ,

---

१-ऋग्वेदः पूर्ववदनं यजुर्वेदस्तु दक्षिणम्। पश्चिमं सामवेदः स्यादाथर्वणमथोत्तरम्॥
ये वेदास्ते मुखा ज्ञेयाश्चतस्त्रो बाहवो दिशः। आप एव जगत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा॥
ताश्च धारयते ब्रह्मा तेन हस्ते कमण्डलुः। अक्षमाला विनिर्दिष्टा कालस्तु ब्रह्मणः करे॥
कलनात् सर्वभूतानां काल इत्यभिधीयते॥
तथैवोषधयो राजञ्जगद्धारणकारणाः। ब्रह्मणस्ता जटा ज्ञेयाः सर्वगस्य महात्मनः॥
प्रकाशकानि लोकस्य विद्यास्थानानि यानि च। तस्याभरणजातानि ज्ञेयानि परमेष्ठिनः॥
(विष्णुधर्मोत्तर पु० ३। ४६। ८—११, १७-१८)

पाकयज्ञ-संस्थाएँ, देवता तथा ग्रहमण्डल सोमलताके साथ उपस्थित होकर उपासनामें उपस्थित रहते हैं। भगवती सावित्री, सरस्वती, मेधा, धृति, श्रुति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा आदि सभी देवियाँ स्वरूप धारणकर उनकी स्तुति करती हुई वहाँ विद्यमान रहती हैं। वेदोंके सूक्त, गाथाएँ, कल्पसूत्र, भाष्य, न्यायादिदर्शन, काव्यशास्त्रादि भी शरीर धारणकर वहाँ उनकी उपासना करते हैं। कालचक्र क्षणसे लेकर युगपर्यन्त वहाँ मूर्तिमान् रहता है तथा धर्मचक्र भी कालचक्रके समान मूर्तिमान् होकर उनकी उपासनामें रत रहता है। अदिति, दिति, प्रभा, गौतमी आदि वेदोक्त देवियाँ और रुद्राणी, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी , पृथिवी, कामधेनु और ह्री, स्वाहा, कीर्ति आदि देवियाँ भी मूर्तिमान् होकर स्वरूप धारणकर उपासनामें तत्पर रहती हैं।

अन्य प्रजापति, नाग, सुपर्ण, विद्याधर तथा स्थावर-जङ्गम जीव भी वरुण आदि लोकपालोंके साथ उनकी उपासना करते हैं। पृथ्वी, जल, आकाशादिके अधिदेवता भी वरुणादि लोकपालोंके साथ उस ब्रह्मसभामें उपासनामें स्थित रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीकी सभा सभी प्रकारसे अद्भुत एवं अवर्णनीय है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भगवान् ब्रह्मा वेदज्ञानराशिमय, शान्त, प्रसन्न और सृष्टिके रचयिता, पालक तथा संचालकके रूपमें त्रिदेवोंमें सर्वप्रथम परिगणित होते हैं। ये ज्ञान, विद्या, धर्म, यज्ञ और समस्त शुभकर्मोंके प्रतीक-रूपमें लोकपितामह होकर सभीके कल्याणकी कामना करते हैं, क्योंकि सभी उनकी प्रजा हैं। इसीलिये प्रायः किसी भी रूपमें किसी प्रकार दिव्य जप-तप करनेवालोंके पास सर्वप्रथम कृपाभावपूर्ण होनेके कारण इन्हें ही प्रकट होते देखा गया है। सार-रूपमें ये कल्याणके मूल कारण हैं और समस्त पुरुषार्थोंके सम्पादनपूर्वक अपनी सभी प्रजा-संततियोंका सब प्रकार अभ्युदय देखना चाहते हैं, इसलिये ज्ञान, विद्या तथा समस्त शुभ पदार्थोंकी कामना एवं सावित्री और सरस्वतीदेवीके अधिष्ठाता होनेसे विद्या, बुद्धि एवं सभी शुभ मङ्गलमयी वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये इनकी आराधना सर्वाधिक फलवती होती है। विशेषकर ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविद्या एवं गो-ब्राह्मणादि समस्त सात्त्विक जीवोंके सजातीय सम्बन्धी होकर उनके मूल विषयोंके प्रदाता और विधाता होनेसे इनका *'यथा नाम तथा गुणः'* परमार्थतः पूर्णतया सत्य ही है।

भगवान् कार्तिकेय और उनकी उपासना

(१)

भगवान् कार्तिकेय आचार्य शंकरद्वारा प्रतिष्ठापित षण्मतोंमेंसे स्कान्द, स्वामिकुमार या सुब्रह्मण्य-सम्प्रदायके परम आराध्य, उपास्य एवं अभीष्ट देव हैं। भगवान् विष्णु तथा शिवके सहस्रनामोंमें 'स्कन्द' का भी नाम आया है। ये स्कन्द भूतभावन भगवान् शंकरके आत्मज तथा देवताओंके सेनापति हैं। गीतामें भगवान्ने इन्हें अपनी ही विभूति माना है— **'सेनानीनामहं स्कन्दः'** (१०। २४)। पुराण-साहित्यके महत्त्वपूर्ण महापुराण 'स्कन्दमहापुराण' के ये ही विशिष्ट वक्ता हैं, इसीलिये इनके नामसे ही वह प्रसिद्ध है। मयूर इनका वाहन है, इसीलिये ये मयूरवाहन भी कहे जाते हैं। इनके कार्तिकेय, स्कन्द, मुरुगन, स्वामिकुमार, विशाख, सुब्रह्मण्य, क्रौञ्चाराति, षडानन, षण्मुख, महासेन, शरजन्मा, पार्वतीनन्दन, मयूरवाहन (शिखिवाहन), सेनानी, गुह, वाहुलेय, तारकजित,

षाण्मातुर, शक्तिधर, कुमार, आग्नेय, षष्ठीप्रिय, ब्रह्मचारी तथा देवसेनाप्रिय आदि विशिष्ट नाम हैं।

भगवान् कार्तिकेय सभी विद्याओंके आचार्य विशेष-रूपसे युद्धविद्या, राष्ट्ररक्षा और साङ्ग्रामिक विजयके लिये मुख्य देवता हैं और इनकी उपासनासे राष्ट्रकल्याण, सभी कार्योंमें अद्भुत सिद्धि विशेषकर वाद-विवाद एवं युद्धमें विजय अवश्य होती है, वैसे ये सभी ज्ञान-विज्ञान एवं विद्याके भी प्रदाता और शीघ्र सिद्धि-विधायक माने जाते हैं। भारतीय कथा-साहित्यमें ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं कि इनकी उपासना करनेवाला साधक अत्यल्प समयमें ही सिद्धि प्राप्त करता है। इतना शीघ्र प्रसन्न होनेवाला कोई देवता नहीं देखा जाता। इसके अनेक उदाहरण बृहत्कथा आदि ग्रन्थोंके कथानकोंमें उपलब्ध हैं। यद्यपि इनकी उपासना समग्र भारतमें होती है, किंतु उत्तरमें काश्मीर-मण्डल तथा दक्षिणमें कुमारिका-क्षेत्रमें विशेष प्रतिष्ठित है। इनके नामसे अनेक विशिष्ट मन्दिर तथा तीर्थ आज भी वहाँ देखे जाते हैं। महीसागर-संगममें स्थित स्तम्भतीर्थ, कुमारेश्वरतीर्थ, मल्लिकार्जुनतीर्थ तथा गोदावरी-तटपर स्थित कुमारतीर्थ एवं कृत्तिकातीर्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

भगवान् कार्तिकेयका आविर्भाव एवं तारक-वध

इतिहास-पुराणोंके अनुसार वज्राङ्ग नामक दैत्य एवं उसकी पट्टमहिषी वराङ्गीसे ब्रह्माजीके वरदानसे एक अजेय पुत्र उत्पन्न हुआ, जो तारक नामसे प्रसिद्ध था। उसने तपस्याकर अत्यन्त अजेय शक्ति प्राप्त कर ली और भीषण सङ्ग्रामद्वारा देवताओं तथा सभी लोकपालोंको पराजित कर उनकी सारी समृद्धि और सभी अधिकार हस्तगत कर लिये। उसके भयसे यज्ञादि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना बंद हो गया तथा उसके अत्याचारोंसे पीडित सम्पूर्ण विश्वमें त्राहि-त्राहि मच गयी। विपन्न एवं कष्टापन्न होकर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने बहुत विचारकर कहा कि 'इस दुष्ट दैत्यके वधका एकमात्र उपाय भगवान् शिवके द्वारा उत्पन्न पुत्र ही हो सकता है। देवगणो ! आपलोग जानते ही हैं कि इस समय भगवान् शिव पत्नीविहीन हैं। उनकी पूर्वपत्नी सती जिन्होंने दक्षके यज्ञमें योगाग्निके द्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया था, वे ही इस समय नगाधिराज हिमालयकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्यामें संलग्न हैं। योगीश्वर शिव स्वभावसे ही विरक्त हैं और उन्होंने कामदेवको भी जलाकर भस्म कर दिया है। अतः आपलोग यदि किसी प्रकार उन्हें विवाह करनेके लिये सहमत कर लें तो आप सभीका अभीष्ट सिद्ध हो सकता है।'

इसपर सभी देवता भगवान् शङ्करके पास गये और उन्हें अपनी प्रार्थनाओंसे तारकासुरसे मुक्ति दिलाने तथा विवाहके लिये प्रसन्न कर लिया। भगवान्ने उन्हें आश्वस्त किया। कालान्तरमें शिव-पार्वतीको एक दिव्य पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई, जिसका प्रथम नाम स्कन्द हुआ। उनका जन्म गङ्गाके किनारे शरवणमें हुआ था, इसलिये उनका नाम शरजन्मा एवं गाङ्गेय भी है। उनके उत्पन्न होते ही छहों कृत्तिकाएँ (मातृकाएँ) वात्सल्यभावसे अभिभूत होकर 'मैं पयःपान कराऊँगी' यह कहती हुई उनके पास पहुँच गयीं। उनके वात्सल्यसे करुणार्द्र हो कुमार स्कन्दने अपने छः मुख कर लिये और छहोंका स्तनपान किया। इसीसे वे षण्मुख, षडानन तथा कार्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने क्रौञ्च भेदन किया, इसलिये वे कौञ्चाराति, क्रौञ्चनिषूदन, गुह आदि अनेक नामोंसे अभिहित हुए।

भगवान् स्कन्दके आविर्भावके समाचारसे देवताओंमें आनन्दकी लहर दौड़ गयी और देवताओं तथा समस्त जीववर्गके उद्वेजक तारकासुरके किरीट, कुण्डल आदि आभूषण पृथ्वीपर गिर पड़े। उसका शरीर काँपने लगा। सभी देवगण, ऋषि-मुनि देवराज इन्द्रको आगे कर वहाँ पहुँच गये और उनके जातकर्मादि सभी संस्कार सम्पन्न कर उन्हें देवताओंके सेनापति-पदपर विधिपूर्वक अभिषिक्त किया। साथ ही उनके वाम-भागमें देवसेना नामकी एक कन्याको स्थापित कर उनका विवाह भी सम्पन्न करा दिया। चैत्रमासकी षष्ठी तिथिको भगवान् स्कन्द सेनापति-पदपर अभिषिक्त हुए, तभीसे वे 'सेनानी' इस नामसे प्रसिद्ध हुए। देवताओंने प्रसन्न होकर भगवान् कार्तिकेयकी अक्षत, चन्दन, अंगराग, पुष्प-माल्य, माङ्गलिक सुगन्धित धूप, बालोचित कीडनक, छत्र, चँवर और अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उनकी अर्चना एवं विधिपूर्वक पूजा की। विष्णुने उन्हें युद्धके लिये दिव्य आयुध, अग्निने तेज, वायुने वाहन (मयूर), त्वष्टाने मनोऽनुकूल क्रीडनक तथा कामरूप धारण करनेकी शक्तिवाला एक कुक्कुट

(गुर्गा) आदि दिव्य वस्तुएँ प्रदान कीं तथा अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। सभी देवताओंने उनसे तारकासुरद्वारा प्राप्त विपत्ति और अपनी दुर्दशाका वर्णनकर उसके वधके लिये अनुरोध किया। इसपर भगवान् कार्तिकेयने उन्हें निर्भय करके आश्वस्त किया और कहा कि आपलोग निश्चिन्त होइये। मैं अवश्य उसके साथ युद्ध करूँगा। और फिर वे देवताओंके साथ संनद्ध होकर युद्धके लिये चल पड़े। इधर तारकासुरके सामने अनेकों अपशकुन होने लगे, जिसके कारण वह उद्भ्रान्त-सा हो गया। वह अट्टालिकापर बैठा ही था कि उसे ध्वजा-पताका एवं रणभेरियोंके निनादसे युक्त देवताओंकी सेना आती हुई दिखायी दी। उसने सेनाके साथ सेनापतिके रूपमें कुमारको देखा तो उसे तत्क्षण ब्रह्माका वह वचन स्मरण होने लगा कि 'तुम्हारी मृत्यु किसी बालकके हाथसे होगी।' वह भयभीत हो गया तथापि उसने अपने सेनापतियोंको बुलाकर कालनेमि आदि दैत्योंको शीघ्र ही दौड़कर इस सामने आनेवाले बालकको पकड़कर लानेको कहा और फिर स्वयं आगे बढ़कर कुमार कार्तिकेयसे कहने लगा—'अरे बालक ! क्या तुम भी लड़ना चाहते हो ? यदि तुम्हारे मनमें खेलनेकी इच्छा हो तो आओ गेंद खेला जाय।' इसपर देवताओंको आनन्दित करते हुए कुमार कार्तिकेयने तारकसे कहा—'अरे दुष्ट ! तुम मुझे बालक मत समझो। जैसे बाल सूर्यकी ओर देखना दुष्कर है और एक अक्षरका भी बीजमन्त्र अत्यन्त शक्तिशाली होता है, वैसे मैं तुम्हारे लिये कालके समान हूँ।'

यह सुनकर उस दैत्य तारकने तत्काल मुद्गरसे उनपर प्रहार कर दिया। किंतु स्कन्दने उसे अपने वज्रसे तुरंत निरस्त कर दिया। इसपर तारकने लौहमिश्रित भिन्दिपालसे प्रहार किया, जिसे उन्होंने अपने हाथसे पकड़ लिया और क्रुद्ध होकर तीव्र निनाद करती हुई अपनी गदा तारकपर फेंकी। इस प्रकार अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्ध हुआ। कार्तिकेयने खेल-खेलमें ही उसके सभी अस्त्रोंको काट डाला और अन्तमें एक तीक्ष्ण शक्ति उसकी ओर छोड़ दी, जो तीव्रगतिसे आगे बढ़ती हुई उसके वज्र-सदृश हृदयको विदीर्ण कर बाहर निकल गयी। तारक प्राणविहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके शिरोमुकुट तथा कुण्डल, कवच आदि छिन्न-भिन्न हो गये। उसके मरते ही विश्वके समस्त प्राणी यहाँतक कि नरकके जीव भी प्रसन्न हो गये। देवताओं, ऋषि-मुनियों तथा सिद्धादिकोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। उन्होंने प्रसन्न होते हुए कुमारको अनेक वर प्रदान किये और यह भी कहा—'जो महाबुद्धिमान् मरणधर्मा मनुष्य भगवान् स्कन्दसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा दूसरेको सुनायेगा, वह कीर्तिमान्, दीर्घायु, सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, शुभदर्शन, सभी प्राणियोंसे निर्भय और सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त हो जायगा। जो मनुष्य प्रातःकालिक संध्या करनेके बाद स्कन्द-चरित्रका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर महान् धनराशिका स्वामी होगा। भगवान् कार्तिकेयका चरित बालकों, रोगियों और राजद्वारपर सेवा करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वदा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है और अन्तमें स्कन्दकी सायुज्यताको प्राप्त करानेवाला है (मत्स्यपु० १६० । ३०-३७)।

कुमारके विभिन्न पुराणोंमें अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य वर्णित हैं, जिनमें तारकवधके बाद द्वितीय महत्त्वपूर्ण कार्य क्रौञ्चभेदन है। कहा जाता है कि एक दुर्जेय दैत्य क्रौञ्च, क्रौञ्चपर्वतका आश्रय लेकर हिमालयके एक भागमें स्थित होकर क्रौञ्चद्वीपपर शासन करता था तथा पर्वतकी आड़में रहनेके कारण भी देवोंके लिये अवध्य हो गया था। पुराण-कथाओंके अनुसार भगवान् शङ्करकी आज्ञासे कुमार कार्तिकेयने परशुरामजीको साथमें लेकर एक विशिष्ट शक्तिद्वारा एक ही साथ क्रौञ्च-पर्वतका भेदन करते हुए उसके पीछे छिपे हुए दैत्य क्रौञ्चका वध कर डाला, इसीसे कार्तिकेय क्रौञ्चारि, क्रौञ्चदारुण, क्रौञ्चरिपु आदि अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हो गये।

भगवान् कार्तिकेयकी उपासना

भगवान् कार्तिकेयकी उपासनाविधि विविध आगमोंमें विशेषतया कौमार एवं गाणपत्य आगमोंमें प्रतिपादित है। प्रयोगसार, शारदातिलक तथा अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें इनकी उपासना-पद्धतिमें किञ्चित् अन्तर भी दिखलायी देता है। श्रीतत्त्वनिधिमें भगवान् सुब्रह्मण्यके ज्ञानशक्ति सुब्रह्मण्य, स्कन्दसुब्रह्मण्य आदि १७ स्वरूपोंके उदार एवं सौम्य स्वभावका वर्णन किया गया है। प्रायः इनके ध्यानका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है।

भगवान् कार्तिकेयका **'ॐ वचद्भुवे नमः'** यह सप्ताक्षर मन्त्र बतलाया गया है। कहीं-कहीं प्रणवके बाद 'ह्रीं' कारके

भी उच्चारणका आदेश है। इनका ध्यान-श्लोक सुन्दर है, जिसमें बताया गया है कि इनकी कान्ति सिन्दूरकी भाँति रक्त-पीतवर्णयुक्त एवं मुखमण्डल चन्द्रमाके समान आह्लादक तथा अत्यन्त रमणीय है। इनके शरीरपर दिव्य आभरण—केयूर, हार, कुण्डल, वलय आदि सुशोभित हो रहे हैं तथा हाथोंमें अम्भोज (कमल), अभय, शक्ति तथा कुक्कुट धारण किये हुए हैं। इनके वस्त्र तथा अंगराग आदि सब रक्त उपकरणोंसे आलिप्त हैं। ये स्वर्गीय सौख्य प्रदान करनेवाले हैं। प्रणाम करनेवालोंकी भयराशिको नष्ट करनेके लिये निरन्तर उद्यत कृपालु भगवान् सुब्रह्मण्यकी हम उपासना करते हैं—

सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्वर्गस्य सौख्यप्रदम्।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुटधरं रक्ताङ्गरागांशुकं
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां भीतिप्रणाशोद्यतम्॥

(शारदातिलक १३। १२१)

इनकी उपासना-पद्धतिमें जप, ध्यान, हवन, तर्पण आदिका विस्तृत विधान है और किसी पीठपर स्थापित कार्तिकेय-यन्त्र या प्रतिमामें इनकी पूजाकी विधि निर्दिष्ट है। इनके परिकरोंमें जयन्त, अग्निवेश, सोनेके शूल तथा शक्ति आदि रखे जाते हैं। यन्त्रमें तथा पूजाके लिये निर्मित अष्टदल-कमलमें क्रमशः पूर्वकी ओरसे देवसेनापति, विद्या, मेधा, वज्र, शक्ति, कुक्कुट, मयूर तथा हस्तिकी अर्चना करनी चाहिये और बाह्यमण्डलमें इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानकी पूजा करनी चाहिये, फिर अन्तिम मण्डलमें इनके अस्त्रोंकी पूजा करनी चाहिये।

इनकी पूजा विशेषकर षष्ठीतिथिको विशेष फलदायी होती है। पूजनके पश्चात् छोटे-छोटे ब्रह्मचारी बालकोंको कुमारकी आत्मा मानते हुए देवबुद्धिसे उन्हें भोजन कराना चाहिये। इससे संतान, विजय, आयु, शक्ति, निर्भरता, लक्ष्मी, यश आदि प्राप्त होते हैं। पूजाके आगे-पीछे गणेशजीकी उपासना करनी चाहिये। कल्पग्रन्थोंमें इनके कवच, पटल, शतनाम तथा सहस्रनाम आदि भी प्राप्त होते हैं।

महर्षि वाल्मीकिने कहा है कि भगवान् कार्तिकेयके जन्मका प्रसङ्ग अत्यन्त पुण्यमय और समस्त मङ्गलोंका विधायक है। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर रहकर कार्तिकेयकी उपासना करता है और इस चरित्रका अनुसंधान करता है, वह अत्यन्त समृद्धिशाली, आयुष्मान्, पुत्र-पौत्रोंसे युक्त तथा अन्तमें भगवान् स्कन्दकी सायुज्यताको प्राप्त करता है—

कुमारसम्भवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च॥
भक्तश्च यः कार्तिकेये काकुत्स्थ भुवि मानवः।
आयुष्मान् पुत्रपौत्रैश्च स्कन्दसालोक्यतां व्रजेत्॥

(वा॰ रा॰, बाल॰ ३७। ३१-३२)

(२)

(डॉ॰ श्रीमती राधाकृष्णमूर्ति)

भगवान् कार्तिकेय (सुब्रह्मण्य) की उपासना प्राचीन कालसे ही सारे भारतमें प्रचलित है। उत्तर भारतमें ब्रह्मचारी कार्तिकेयके रूपमें इस देवताकी उपासना होती है तो दक्षिण भारतमें विशेषतया तमिल प्रदेशोंमें दो देवियोंके पति सुब्रह्मण्य या मुरुगनके नामसे बड़ी श्रद्धाके साथ इनकी पूजा-आराधना की जाती है। कार्तिकेय, सुब्रह्मण्य, मुरुगन, कुमार, स्कन्द इत्यादि कई नामोंसे सुविख्यात इस देवताको परब्रह्म मानकर की जानेवाली उपासना-पद्धति 'कौमारम्' कहलाती है और पञ्चायतन-पूजाके लिये जगद्गुरु शंकराचार्यद्वारा पुनः संस्थापित षण्मतोंमेंसे एक मानी जाती है । तमिल भाषाके प्राचीनतम साहित्यमें भी इस देवताके उल्लेखके साथ तत्सम्बन्धी उपासना-क्रमका भी विवरण उपलब्ध होता है। अतः यह सिद्ध है कि ईसा पूर्वकी शताब्दियोंमें ही सुब्रह्मण्यकी उपासना दक्षिण भारतमें विशेष लोकप्रिय हो चुकी थी।

दक्षिण भारतमें स्कन्दोपासना

यद्यपि सारे भारतमें सुब्रह्मण्योपासना व्यापकरूपमें की जाती है तथापि दक्षिण भारतमें इसको अधिक प्रामुख्य प्राप्त हुआ है और यहाँके लोगोंके जीवनका यह अभिन्न अङ्ग बन गयी है। तमिल प्रदेशोंमें सुब्रह्मण्यको 'मुरुगन' कहते हैं और तमिल भाषाके अधिदेवता मानते हैं। तमिलमें 'मुरुगु' शब्दके अर्थ हैं—सौन्दर्य, ताजगी, सौरभ, माधुर्य, दिव्यता और आनन्द। ये सभी गुण भगवान् सुब्रह्मण्यमें पाये जानेके कारण वे 'मुरुगन' नामसे प्रिय उपास्य बन गये। भगवान् मुरुगन

'शेयोन' (शिशु) भी कहलाते हैं। तमिलके प्राचीनतम ग्रन्थ 'तोलकाप्पियम' में शेयोनको कुरुञ्जि प्रदेश (पहाड़ी) का अधिदेवता कहा गया है। पुरनानूरु नामक प्राचीन ग्रन्थमें रणगजपर आरूढ़ विजयशील मुरुगनका वर्णन मिलता है। कुछ प्राचीन ग्रन्थोंमें सुब्रह्मण्यके मन्दिरोंका भी उल्लेख हुआ है।

सुब्रह्मण्य ज्ञानकी मूर्ति हैं। उन्होंने अपने पिता शिवको प्रणवमन्त्रका रहस्य समझाया, जिसके कारण वे तमिलमें तगप्पन स्वामी (पिताके आचार्य) कहलाते हैं। दक्षिण भारतमें भगवान् सुब्रह्मण्यके लिये कई नाम प्रयुक्त होते हैं, जिनमेंसे कुछ अधिक प्रचलित हैं, जैसे—स्वामी, षण्मुख, वेलवन, मुरुगन, कन्दन, गुह, वल्लीदेवसेनापति आदि। यद्यपि स्वामी शब्दका प्रयोग सामान्यतः सभी देवोंके लिये होता है, तथापि तमिलनाडुमें स्वामी या स्वामीनाथ विशेषरूपसे भगवान् सुब्रह्मण्यको ही सूचित करता है।

षण्मुख सुब्रह्मण्य

दक्षिण भारतमें षण्मुखके रूपमें भगवान् सुब्रह्मण्यकी उपासना अधिक प्रचलित है। इस देवताके षण्मुखके रूपमें प्रकट होनेके कई कारण बताये जाते हैं। कृत्तिका माताओंसे जब पार्वतीने छः शिशुओंको अपनी गोदमें लेकर गाढ़ आलिङ्गन किया, तब इन शिशुओंका षण्मुखवाला एक शरीर बन गया, जिसको भक्तोंने परमाराध्य मान लिया। शास्त्रोंमें यह भी कहा जाता है कि जब सनत्कुमार, नारद, अगस्त्य, ब्रह्मा, इन्द्र और सरस्वती गंधमादन पर्वतपर भगवान् स्कन्दके दर्शन करके उनसे षडक्षरी मन्त्रका उपदेश प्राप्त करनेके लिये आये, तब षडक्षरी तत्त्वको, इन षड्विभूतियोंको एक साथ उपदेश करनेके लिये सुब्रह्मण्यने षण्मुख धारण किया। **'शरवण भव'** इस षडक्षरी मन्त्रके अक्षरोंके द्वारा क्रमशः लक्ष्मी, विद्या, मोक्ष, शत्रुनाश, मृत्युञ्जय, नीरोगता—इन षट्तत्त्वोंको भूलोकपर स्थापित करनेके लिये नारदादि शिष्योंके सामने षण्मुख बनकर भगवान् प्रकट हुए। यह भी कहा जाता है कि ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः भगोंसे युक्त होनेके कारण षड्भगोंके प्रतीकके रूपमें वे षण्मुख धारण किये हैं। यह भी विश्वास करते हैं कि इस देवतामें षड्देवताओंका, षण्मतोंका समन्वय होनेके कारण वे षण्मुख कहलाते हैं। भगवान् सुब्रह्मण्य अपने छः मुखोंके द्वारा क्रमशः ज्ञान प्रदान करते हैं, वर देते हैं, यज्ञकी रक्षा करते हैं साधु-संतोंको वेदका उपदेश देते हैं, दुष्टोंका नाश करते हैं और गृहस्थोंको धर्मोपदेश देते हैं।

आयुध

देवोंके सेनाधिपति होकर कार्तिकेयने सूरपद्म, तारकासुर और सिंहमुख-जैसे असुरोंका संहार किया। अतः दक्षिण-भारतमें पाये जानेवाले शिल्पों, चित्रों एवं मूर्तियोंमें कहीं-कहीं तलवार, खड्ग, धनुष, बाण, पाश, अंकुश, भाला-जैसे आयुध पाये जाते हैं, परंतु भगवान् मुरुगनका मुख्य आयुध भाला है जो तमिलमें 'वेल' कहलाता है। यह वेल तो परब्रह्म सुब्रह्मण्यकी शक्तिका स्वरूप है, अतः **'शक्तिपाणिः'** कहकर उनकी स्तुति की जाती है। इस शक्तिरूपी वेलको सदा धारण करनेके कारण तमिल प्रदेशोंमें सुब्रह्मण्य 'वेलवन' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। भक्तजन इसी वेलको शिव-शक्तिके ऐक्यका चिह्न मानकर उनकी स्वतन्त्र पूजा करते हैं। 'वेल' वीरताका भी प्रतीक है, अतः प्राचीन और मध्यकालमें वेलकी उपासना योद्धाओंके लिये प्रेरकशक्ति और प्रोत्साहन देनेवाली सिद्ध हुई। पुलिन्द-कन्या वल्ली और देवसेना सुब्रह्मण्यकी दो देवियाँ हैं। वल्ली, देवसेना और आयुधवेल—ये तीनों भगवान्‌की इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति मानी जाती हैं।

वाहन और ध्वजा

'वेल' के साथ सुब्रह्मण्यका वाहन मयूर और ध्वजापर अङ्कित कुक्कुट भी पूज्य माने जाते हैं। ये दोनों बिन्दु और नादके प्रतीक हैं। तमिलभाषाके कवियोंद्वारा मयूराधिरूढ कुङ्कुमरक्तवर्ण सुब्रह्मण्यकी तुलना नील समुद्रमें उदित होनेवाले सूर्यसे की जाती है। इसका यह भी कारण है कि तमिलभाषी भक्त उगते सूरजको मुरुगनका ही रूप मानते हैं। पुराणोंके अनुसार चारों वेदोंका समन्वित रूप मयूर ही सुब्रह्मण्यका वाहन है। स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

मयूरभावं निगमास्तपसा प्राप्य षण्मुखम्।
उद्वाह्य तृप्तिं परमां सम्प्रापुः सर्वदा भुवि॥

समस्त वेद अपने उस परतत्त्व षण्मुखको प्राप्त करनेमें अपनेको अपूर्ण जानकर सब मिलकर समन्वितरूपमें मयूरके

रूपमें उन भगवान्‌का वाहन बने। षण्मुख ओंकारस्वरूप हैं और वेद ही उनके वाहन मयूर हैं। जिस तरह वेदस्वरूप मयूर और दिव्य ज्ञानको जाग्रत् करनेवाले कुक्कुटसे भगवान् मुरुगनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसी तरह छाग या अज (बकरा) से भी उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जैसे शंकराचार्यने 'सुब्रह्मण्यभुजङ्ग' में भगवान् स्कन्दकी आराधना करते समय '**नमश्छाग तुभ्यं॰**' कहकर अजकी भी वन्दना की है।

सेनापति और सेनागृह

दक्षिण भारतमें यह विश्वास किया जाता है कि देवोंके सेनाधिपति होनेके कारण भगवान् सुब्रह्मण्यने छः पवित्र स्थलोंमें सेनागृह स्थापित किया था। तमिल भाषामें इन्हें 'पड़ैवीडु' कहते हैं। ये षट्स्थल दक्षिणमें सुब्रह्मण्योपासनाके प्रधान केन्द्र हैं। भक्तोंको मान्य है कि ये षट्स्थल-शरीर षट्चक्रोंके प्रतीक हैं। ये सेनागृह—तिरुप्परकुन्रम्, तिरुचेन्दूर, पलनी, स्वामिमलै, कुन्रुतोराडल और पलमुदिरचोलै नामक नगरियोंमें स्थित हैं। इनमेंसे तिरुचेन्दूर नामक क्षेत्र समुद्रतटपर बसा हुआ है, जहाँकी एक गुफामें सुब्रह्मण्यस्वामीका सुन्दर मन्दिर है और शेष पाँच स्थल पहाड़ियोंपर स्थित हैं।

समष्टिदेवता

'सुब्रह्मण्य' का वाच्यार्थ है—'दिव्यानन्दरूपी परब्रह्मसे उत्पन्न अभिन्न तत्त्व'। यह भी कहा जाता है कि शिव और शक्तिके दिव्य प्रेमका जहाँ ऐक्य है वहाँ सुब्रह्मण्य है। अतः सुब्रह्मण्यकी उपासनासे शिव और शक्तिका भी अनुग्रह प्राप्त होता है। दक्षिण भारतमें सुब्रह्मण्य समष्टि देवता माने जाते हैं, क्योंकि अन्य मुख्य देवताओंसे उनका सम्बन्ध है। वे शिव और शक्तिके पुत्र हैं, विनायकके अनुज हैं, विष्णुके भानजे हैं और बालसूर्यसे अभिन्न हैं। अतः भक्तोंका दृढ़ विश्वास है कि भगवान् सुब्रह्मण्यकी उपासनासे सब देवता तुष्ट होते हैं।

मन्दिरोंमें उपासना

दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें सुब्रह्मण्यकी उपासना प्रधान या स्वतन्त्र देवताके रूपमें, सम्प्रधान देवताके रूपमें और परिवार-देवताके रूपमें होती है। ऐसे सैकड़ों देवालय हैं, जहाँ सुब्रह्मण्य प्रधान देवता हैं और शिव, विष्णु, गणेश आदि परिवार-देवताओंके रूपमें प्रतिष्ठापित हैं। भगवान् सुब्रह्मण्यके कई स्वतन्त्र गुफा-मन्दिर दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं। शिव और विष्णुके मन्दिरोंमें मुख्य परिवार देवताके रूपमें भी उनकी पूजा-अर्चना होती है। परिवार देवता सुब्रह्मण्यकी मूर्ति प्रधान गर्भगृहकी दीवारोंके अलग देवकोष्ठमें स्थापित रहती है या मन्दिरके प्राकारमें अलग गर्भगृहमें प्रतिष्ठापित होती है। काञ्चीनगरीके प्राचीन शिव-मन्दिरमें गर्भगृहकी उत्तरी दीवारके प्रकोष्ठमें भगवान् सुब्रह्मण्य अक्षमाला और कुण्डिकाको धारण करके ज्ञानकी मूर्ति बनकर भक्तोंको दर्शन दे रहे हैं।

प्राचीन संघ-साहित्यसे मालूम होता है कि सुब्रह्मण्य सम्प्रधान देवताके रूपमें भी उपास्य थे। शिव, बलराम, कृष्ण और शेयोन (मुरुगन) के नाम प्रायः एक साथ उल्लिखित मिलते हैं। वास्तुग्रन्थोंमें भी मन्दिर-निर्माणके समय देवता-मण्डलमें सुब्रह्मण्यके लिये विशेष स्थानकी सूचना मिलती है। पल्लववंशी राजाओंके उपलब्ध कुछ शिल्प-पट्टिकाओंमें शिव, नरसिंह, लक्ष्मी आदिके साथ सुब्रह्मण्य भी एक ही वेदीपर अङ्कित हैं। महाबलिपुरम्‌की त्रिमूर्ति-गुफामें सुब्रह्मण्य, शिव और विष्णुके मन्दिर साथ-साथ निर्मित हैं।

कुमारतन्त्रके अनुसार सुब्रह्मण्यकी पूजा-अर्चा चलायी जाती है। विधि-पूर्वक दैनिक अभिषेक, अर्चना, नैवेद्य आदिके अतिरिक्त फाल्गुनके उत्तरा नक्षत्रके दिन, आषाढ़ कृत्तिका, मार्गशीर्ष षष्ठी-जैसे मुख्य दिनोंमें विशेष पूजा और उत्सव भी होते हैं। प्रत्येक माह स्कन्द षष्ठी मनायी जाती है। स्कन्द अभिषेकप्रिय देवता हैं। इनका प्रतिदिन शुद्धोदक, तैल, पञ्चामृत, विभूति आदिसे अभिषेक होता है। पलनी नामक पुण्यस्थलमें सुब्रह्मण्य कौपीनधारी बनकर हाथमें दण्ड लिये योगीके रूपमें स्थित हैं। यहाँ भगवान्‌का अभिषेक किया हुआ पञ्चामृत सर्वरोगनाशक माना जाता है। मन्दिरोंमें सुब्रह्मण्यकी मूर्तिपर विभूति, चन्दन आदिका लेप लगाते हैं। विविध प्रकारके मिष्टान्नोंके साथ शहद और पिसा हुआ बाजरा भी सुब्रह्मण्यको इष्ट है।

सर्वप्रिय देवता

तमिल प्रदेशमें भक्तोंने भगवान् मुरुगनके साथ एक प्रकारका आत्मीय सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे अपनी-अपनी मनःकामनाके अनुसार भगवान्‌के अलग-अलग नामका स्मरण और पूजन करते हैं। 'कुमारतन्त्र' और 'श्रीतत्त्वनिधि' में

कर सकते थे ? अतः उन्होंने नरावतार भगवान्
नाकी तीव्र लालसाको फलीभूत करनेके लिये
णकर उनकी नित्य-परिचर्याका निष्कण्टक मार्ग
गैर वे एक दूसरा प्रेममय विशुद्ध सेवकका रूप
ी सेवा करनेके लिये अञ्जनाके गर्भसे प्रकट हो
मी तुलसीदासजीने इस रहस्यको दोहावली तथा
प्रकट किया है। वे कहते हैं कि श्रीरामकी
कर सरस प्रेमका और कोई भी कार्य नहीं हो
ी उपासनाका प्रतिफल देना परमावश्यक है,
विचारकर भगवान् शंकरने अपना रुद्रविग्रह
ामान्य वानरका रूप धारण कर लिया और
सम्भव कार्यों जैसे—समुद्रोल्लङ्घनकर सीताका
लंकापुरीका दाह करना, संजीवनी बूटी लाकर
ाणदान करना और महाबली अजेय दुष्ट
ध करना आदिका सम्पादन इन्हींके शौर्य या
त थी, इसे कोई दूसरे देवता या दानव आदि भी
ते थे—

म सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

(दोहावली १४३)

ये ग्राम-ग्राम, नगर-नगर तथा प्रायः सभी तीर्थोंमें
शिवके मन्दिर, शिवलिङ्गादि और प्रतिमाएँ प्राप्त
उनकी व्यापक उपासना देखी जाती है, उसी
हनुमान्‌जीके मन्दिर देखे जाते हैं। राममन्दिरोंमें तो
र्वत्र मिलते ही हैं। स्वतन्त्ररूपसे भी उनके
ग जहाँ-तहाँ मन्दिर मिलते हैं और घर-घरमें
सा आदिका पाठ होता है तथा इनकी उपासना
सके अतिरिक्त प्राचीन कालसे ही हनुमान्‌जीकी
अनेक स्तोत्र, पटल, पद्धतियाँ, शतनाम तथा
चलित हैं। हनुमान्‌जीकी सबसे बड़ी विशेषता है
भक्तकी रक्षा तथा उसके सर्वाभ्युदयके लिये सदा
ते हैं। इसीलिये ये जाग्रत्-देवताके रूपमें प्रसिद्ध
ाबाल-वृद्ध, नर-नारी सभीके उपास्य हैं। वे
साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। उनके ध्यान करने एवं
नसे निर्मल अन्तःकरणमें भक्तिका समुदय
भलीभाँति हो जाता है। बजरंगबली तथा महाबलीके रूपमें वे शक्ति, बल, वीर्य, ओज एवं स्फूर्तिके प्रदाता हैं। अखाड़ोंमें जहाँ उनकी मूर्ति उपलब्ध नहीं है, वहाँ अखाड़िये पहलवान एक मिट्टीकी चल-प्रतिमा बनाकर उन्हें प्रणामकर उनके साक्ष्यमें अपना अभ्यास करते हैं। वे शूरता, वीरता, पराक्रमके स्वरूप तो हैं ही, साथ ही दक्षता, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, नीतिमत्ता, सरलता एवं सौम्यताके भी अद्भुत आदर्श हैं। अतः गुरुरूपमें भी मारुतिनन्दन श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना की जा सकती है। आजकल कई साधक और उपासक सद्‌गुरुकी खोज करते हैं। एक तो इस कलिकालमें सद्‌गुरुका मिलना कठिन है और कोई मिल भी जाय तो मनश्चाञ्चल्यके कारण शंका और विभ्रमकी स्थिति बनी रहती है। अतः श्रीहनुमान्‌जी महाराज निरापद गुरुरूपमें सर्वसुलभ हैं। इनसे श्रेष्ठ सद्‌गुरु संसारमें दूसरा कौन हो सकता है? इसीलिये संत गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजका भी श्रीहनुमान्‌जीमें गुरु-भाव था। उन्होंने लिखा—

जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥

श्रीहनुमान्‌जीके स्मरणसे मनुष्यमें बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयता, नीरोगता, विवेक और वाक्पटुता आदि गुण स्वभावसे ही आ जाते हैं—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
अजाड्यं वाक्पटुत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥

—और प्रभुचरणोंमें उसकी अखण्ड अविचल भक्ति स्थिर हो जाती है, इससे उसका सर्वथा कल्याण हो जाता है। श्रीराम-भक्त हनुमान्‌जीको सदा स्मरण करना चाहिये। क्योंकि अपनी भावनाके अनुसार उनकी उपासनामें निरत रहना परम कल्याणकारी है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्रीहनुमान्‌जी भगवान् श्रीसीतारामजीके परम भक्त हैं। भक्तको हृदयमें बसा लिया जाय तो भगवान् स्वतः हृदयमें विराज जाते हैं। कारण, भक्तके हृदयमें भगवान् स्वाभाविक ही रहते हैं। इसलिये गोस्वामीजीने भी भक्तराज हनुमान्‌जीसे यही प्रार्थना की—

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लषन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

हनुमच्चरित्रके कुछ मङ्गलमय रोचक प्रसंग

समस्त अमङ्गलोंके विनाशक मङ्गलमूर्ति भक्तवर श्रीहनुमान्‌जीका चरित्र परमपवित्र, परम आदर्श तथा कल्याणमय तो है ही, साथ ही वह अति विचित्र भी है। यहाँपर अति संक्षेपमें उनके कुछ अंश दिये जा रहे हैं—

ब्रह्मादिपुराणोंके अनुसार श्रीहनुमान् वृषाकपि अर्थात् शिव-विष्णुके तेजोमय दिव्यविग्रहधारी देवताके रूपमें भी निरूपित हुए हैं। सभी पुराणों तथा विविध रामायणों आदिके अनुसार वैवस्वत मन्वन्तरके चौबीसवें त्रेतायुगमें वे अञ्जना नामकी अप्सरासे केसरीके पुत्र-रूपमें अवतीर्ण हुए। इसीलिये इनके आञ्जनेय तथा केसरीनन्दन ये नाम प्रसिद्ध हो गये। वायुके अंशसे उत्पन्न होनेसे वायुपुत्र या पवनपुत्र, श्रीरामकी सेवा करनेसे रामदूत, अर्जुनके रथकी ध्वजापर स्थित होकर हुंकारमात्रसे महाभारतके वीरोंको प्राणस्तब्ध करनेके कारण 'फाल्गुनसख' नामसे विख्यात हो गये। गरुड आदिके वेगके समान तीव्रगतिसे समुद्रलङ्घन करनेके कारण उनका 'उदधिक्रमण' नाम पड़ गया और कभी पराजित न होनेसे 'अपराजित' तथा शिवके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण 'शिवात्मज' और 'संकरसुवन' आदि नाम भी प्रसिद्ध हो गये। वैसे उनका सर्वप्रसिद्ध नाम तो हनुमान् है ही। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

कहा जाता है कि हनुमान्‌जीको जन्म ग्रहण करनेके पश्चात् बारह घंटे व्यतीत हो जानेपर अधिक भूख लगी। माताके पयःपानसे वे तृप्त नहीं हो सके। इससे चिन्तित होकर अञ्जना उनके लिये कुछ फल आदि लानेके लिये जंगलमें निकल गयीं, तबतक इधर सूर्योदय होने लगा। सूर्यको सहसा आकाशमें उठते देखकर हनुमान्‌जीने उसे कोई लाल फल समझा और पौराणिक कथाके अनुसार वे छलाँग लगाकर आकाशमें उछलकर सूर्यको निगलनेके लिये बढ़े। अमावास्या और प्रतिपदाकी सन्धि होनेके कारण उस समय ग्रहणका समय था और राहु भी सूर्यको ग्रस्त करनेके लिये पहुँचा था। हनुमान्‌जीका विशाल आकार-प्रकार और अपने सहित सूर्यबिम्बको निगलनेके लिये प्रोद्यत देख राहु पीछे भागा और उसने देवराज इन्द्रसे जाकर निवेदन किया कि एक दूसरा महाराहु मेरा अधिकार छीनकर मुझे भी ग्रस्त करना चाहता है, आप मेरी तथा संसारकी रक्षा करें। इसपर इन्द्रने तत्काल आकर अपने वज्रसे हनुमान्‌जीके मुखपर जोरोंसे प्रहार किया, जिससे उनकी हनु (ठुड्डी) टेढ़ी हो गयी। वज्रकी चोटसे हनुमान्‌जी पृथ्वीपर गिर रहे थे, किंतु वायुदेवने आकाशमें—बीचमें ही उन्हें रोक लिया और अत्यन्त प्रकुपित होकर अपना प्रवाह बंद कर दिया। इससे सभी देवता, मनुष्य तथा प्राणी मरणासन्न हो गये। सबका श्वास अवरुद्ध हो गया। यह देखकर ब्रह्माजी तत्काल उस स्थानपर पहुँचे और वायुके कथनानुसार हनुमान्‌जीको पूर्ण स्वस्थ कर उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया तथा अनेक आशीर्वाद दिये। तदनन्तर वायु देवता प्रवाहित होने लगे और हनुके टेढ़ी हो जानेसे उनका मुख्य नाम हनुमान् पड़ गया।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार हनुमान्‌जी अध्ययनके लिये भगवान् सूर्यके पास गये। वहाँ उनसे उन्होंने साङ्गोपाङ्ग सभी वेदविद्याएँ, सरहस्य समस्त आगम, पुराण, नीति एवं अर्थशास्त्र तथा दर्शन आदिका भी अध्ययन किया। वाल्मीकीय रामायणमें स्वयं भगवान् रामने इनके वाक्पाटव और व्याकरणज्ञानकी लक्ष्मणसे भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि जो ऋग्यजुः-साम आदिको साङ्गोपाङ्ग अर्थसहित नहीं जानता हो, वह इस प्रकार सम्भाषण नहीं कर सकता। साथ ही इसने अनेक व्याकरण आदि शास्त्रोंका भी गम्भीर अध्ययन किया है। क्योंकि इतनी देरतक अनेक प्रकारकी बातें करते रहनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्ध शब्द या दोषयुक्त शब्द नहीं उच्चरित हुआ।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४। ३। २८-२९)

आश्चर्यकी बात यह थी कि अत्यन्त ध्यानसे सारी विद्याओंको श्रवण करते ही वे सदाके लिये पूर्णभाव समझते हुए हृदयगत कर लेते थे और खड़े होकर भगवान् सूर्यके सामने अध्ययन करनेमें उनके रथकी गतिके तुल्य ही तीव्र वेगसे पीछेकी ओर चलना पड़ता था और भगवान् सूर्यकी बातोंको सुनने, समझनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी।

इस घटनाचक्रका गोस्वामी तुलसीदासजीने बड़ी श्रद्धासे अद्भुत क्रमसे उल्लेख किया जो इस प्रकार है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥

(हनुमानबाहुक ४)

सूर्यभगवान्‌के समीपमें हनुमान्‌जी विद्या पढ़नेके लिये गये, सूर्यदेवने मनमें बालकोंका खेल समझकर बहाना किया (कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सामने पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है)। हनुमान्‌जीने भास्करकी ओर मुख करके पीठकी तरफ पैरोंसे प्रसन्नमन आकाशमार्गमें बालकोंके खेलके समान गमन किया और उससे पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्रम नहीं हुआ। इस आश्चर्यजनक खेलको देखकर इन्द्रादि लोकपाल, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माकी आँखें चौंधिया गयीं तथा चित्तमें खलबली-सी उत्पन्न हो गयी। तुलसीदासजी कहते हैं—सब सोचने लगे कि यह मूर्तिमान् शौर्य अथवा साक्षात् वीररस अथवा मूर्तिमान् धैर्य या साहस अथवा इन सबोंका सम्मिलित साररूप एक ही घन-विग्रह आकाशमें उपस्थित हो गया है।

हनुमान्‌जी बालस्वभावसे कभी-कभी ऋषियोंके आसन, पात्र आदि इधर-उधर हटाकर रख देते थे, उनकी चञ्चलता देखकर ऋषियोंने उनसे कहा कि तुम्हें अपने बलका भान नहीं होगा। जब कोई स्मरण दिलायेगा तभी तुम्हारी शक्ति प्रस्फुरित होगी। यही कारण है कि सुग्रीवसे अत्यन्त मैत्री होनेपर भी बालीके द्वारा पराभूत किये जानेपर दसों दिशाओंमें भागते हुए सुग्रीवके साथ ये भी भागते ही रहते थे। ऋष्यमूक पर्वतपर जब राम-लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव भागने लगे तो हनुमान्‌जीने उनसे कहा तुम निरे वानर ही प्रतीत होते हो। ये लोग (राम-लक्ष्मण) सौम्य एवं सद्‌गुणशाली प्रतीत होते हैं। इनसे डरकर भागनेकी कोई आवश्यकता नहीं दीखती, इनसे मैत्री कर लाभ उठाना चाहिये। मैं वेष बदलकर इनका पूरा पता लेकर तुमसे बतलाता हूँ, फिर वे राम-लक्ष्मणके पास पहुँचकर निःसंकोच भावसे इस प्रकार बात करने लगे कि स्वयं श्रीरामको कहना पड़ा कि लक्ष्मण! आजतक मुझे कोई ऐसा मधुरभाषी और वार्तालापकुशल व्यक्ति नहीं मिला, इसने बड़े मधुर और सीमित शब्दोंमें अपने सारे भावोंको व्यक्त कर दिया है, इसके सभी शब्द यथास्थान अलंकार एवं व्याकरणकी दृष्टिसे उपयुक्त स्थानपर प्रयुक्त हुए हैं। इसकी वाणी ऐसी है कि यदि कोई शत्रु तलवार लेकर प्रहार करने चला हो तो भी सदाके लिये उसका क्रीतदास बन जायगा। यह व्यक्ति जिसका मन्त्री या दूत बनेगा, उसके सारे कार्य अव्याहत रूपसे सिद्ध होते जायँगे।

एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः॥

(वा० रा० ४।३।३५)

'जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त हों, उस राजाके सभी मनोरथ दूतोंकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाते हैं।'

इसलिये तुम इससे पूरी बातें कर मैत्री-स्थापना करो। संसारमें ऐसा व्यक्ति मिलना असम्भव प्रतीत होता है। बादमें विस्तृत वार्तालापके अनन्तर दोनों व्यक्ति सुग्रीवके पास गये और उनसे मैत्री हुई तदनन्तर बालीका वध हुआ एवं अंगदको युवराज बनाकर सुग्रीवको सम्पूर्ण वानरोंका राजा बनाया गया और सीताके अन्वेषणके लिये दसों दिशाओंमें वानरोंको भेजा गया।

श्रीरामको यह भलीभाँति ज्ञात था कि सीताका पता इनके अतिरिक्त और कोई भी लगानेमें समर्थ नहीं होगा। अतः उन्हें अपने पास बुलाकर स्वनामाङ्कित मुद्रिका भी प्रदान कर दी एवं सभीके असमर्थ होनेपर ऋषिशापसे अभिशप्त हनुमान्‌जी भी जामवंतके द्वारा उनकी शक्तिका स्मरण दिलानेपर उन्हें अपने बलका भान हो आया और उन्होंने ही विराट्‌रूप बनाकर समुद्रको लाँघकर बड़ी कुशलतासे सीताजीका पता लगाया तथा उनसे वार्तालाप कर उन्हें मुद्रिका भी प्रदान कर दी, साथ ही उनसे प्रत्यभिज्ञानके रूपमें चूड़ामणि लेकर रावणके बलको जाननेके लिये अशोकवाटिका-ध्वंस, लंकादहन और अगणित राक्षस योद्धाओंका वधकर वे सकुशल समुद्र लाँघकर पुनः

भगवान् रामके पास पहुँच गये।

भगवान् श्रीराम इनके बुद्धिकौशल एवं पराक्रमको देखकर आश्चर्यचकित हो गये और उन्हें बहुत सम्मानितकर अपना दुर्लभ आलिङ्गन प्रदान किया—

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्त्वस्य महात्मनः॥

(वा० रा०, युद्ध० १।१३)

'इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है।'

बादमें श्रीरामजीने उन्हींके परामर्शसे लंका-विजयकी योजना बनायी। जब श्रीराम समुद्रपर पुल बाँधकर ससैन्य लंका पहुँचे तो प्रारम्भिक युद्धमें ही हनुमान्‌जीने रावणकी प्रायः सम्पूर्ण सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला और उसके राजप्रासादके शिखर तथा कलश भी तोड़ डाले। फिर अनेक कुम्भ-निकुम्भ आदि प्रबल दैत्योंका वध किया और मेघनाद, कुम्भकर्ण तथा रावणके वधमें भी अपार सहायता पहुँचायी। लक्ष्मण-शक्ति तथा नागपाश-बन्धनमें इन्होंने समस्त वीरोंकी रक्षा की और विशल्यकरणी, शल्यसंधानी तथा अमृतसंजीवनी आदि बूटियोंको लाकर लक्ष्मण तथा अन्य सभीको निर्व्रण तथा स्वस्थ कर दिया।

अन्य रामायणोंके अनुसार अहिरावणके द्वारा राम-लक्ष्मणको पाताल ले जाये जानेपर, विभीषणके द्वारा संकेत प्राप्त होनेपर हनुमान्‌जी वहाँ पहुँच गये और सदलबल अहिरावणको मारकर वे राम-लक्ष्मणको कंधेपर लेकर ले आये।

रावण-वधके पश्चात् जब वनवासकी अवधि पूरी हो रही थी तो भरतके प्राणत्यागकी आशंकापर भगवान् श्रीरामने द्रुतगामी हनुमान्‌जीको तत्काल अयोध्या पहुँचकर सूचना देनेको कहा। तब वे पुष्पकविमानसे भी पहले तत्क्षण अयोध्या पहुँचे और लंका-विजयपूर्वक श्रीरामके सीतासहित सपरिकर पुष्पकविमानपर अयोध्या-आगमनकी पूर्व-सूचना उन्हें दे दी, जिससे प्राणत्यागके लिये उद्यत भरत प्रसन्न-मन होकर अयोध्यावासियोंके साथ स्वागतकी तैयारी करने लगे। अयोध्यामें श्रीरामराज्याभिषेकके बाद प्रायः सुग्रीव, जामवंत, अंगदादि सभी श्रीरामके सहायकोंके वापस लौट जानेपर भी हनुमान्‌जी श्रीरामके साथ ही उनके नित्य-परिकरमें प्रधान सेवकके रूपमें सेवामें रत रह गये। वे उनकी सेवाके लिये उनके सामने नित्य हाथ जोड़े स्थित रहते हैं। बुधकौशिक (महर्षि विश्वामित्र) ने अपने अत्यन्त प्रसिद्ध रामरक्षा नामक स्तोत्रमें उन्हें इसी प्रकार निरूपित किया है—

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्॥

इतिहास-पुराणोंके अनुसार भगवान् श्रीरामने प्रायः एकादश सहस्र वर्षतक पृथ्वीपर शासनकर रामराज्यकी स्थापना की। श्रीहनुमान्‌जी इतने दिनोंतक उनकी समस्त लीलाओंमें सेवकके रूपमें उपस्थित रहे। श्रीराम जब लीलासंवरणके समय नित्य साकेतधामको प्रस्थान करनेके लिये उद्यत हुए तो उन्होंने हनुमान्, विभीषण, जामवन्त, मैन्द तथा द्विविदको पृथ्वीपर ही रहनेको कहा और विशेषकर श्रीहनुमान्‌जीको सम्बोधित कर कहा कि तुम मेरी कथामें ही मेरी भावनाकर इस पृथ्वीलोकपर कल्पपर्यन्त निवास करो। जबतक धरातलपर भूधर-सागर रहेंगे, तबतक मेरी कथाका प्रचार-प्रसार करते रहो और तुम मेरी कथाओंमें रुचि रखकर उसे सुना-सुनाया करो, हनुमान्‌जीने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य की।

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।
यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा० रा० ७।१०८।३३-३६)

एक अन्य स्थलपर श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा—कपिश्रेष्ठ! मेरे प्रति तुम्हारे किये गये उपकारकर्म अनन्त हैं। उनके लिये यदि प्राण भी दिये जायँ तो शरीरमें रहनेवाले प्राण केवल दस ही हैं। अतः इन सबका प्रत्युपकार सम्भव नहीं। इसलिये वे तुम्हारे उपकारकर्म मेरे शरीरमें ही पच जायँ, यही मेरी कामना है; क्योंकि व्यक्ति आपत्तिमें फँसकर ही प्रत्युपकारका पात्र बनता है। 'तुम आपत्तिमें फँसो' इसकी मैं किसी भी दशामें कल्पना नहीं करना चाहता—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(वा० रा० ७।४०।२३-२४)

भगवान् श्रीरामने यह भी कहा कि जबतक मेरी कथा संसारमें रहेगी, तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे तथा जबतक ये लोक बने रहेंगे तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी—

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः ॥

(वा० रा० ७ । ४० । २१-२२)

भगवान्की आज्ञाके अनुसार श्रीहनुमान्जी किम्पुरुषवर्षमें रहकर राममन्त्रका जप करते रहते हैं और उनका ही ध्यान करते हुए वहाँके निवासियों तथा अन्य ऋषि, मुनि, गन्धर्वों, सिद्ध-विद्याधरों आदिको रामकी अमृतमयी कथा सुनाते रहते हैं तथा अपने भक्तोंका कल्याण करते रहते हैं। महाराज परीक्षित्से शुकदेवजीने भी श्रीमद्भागवतमें बड़ी श्रद्धापूर्वक इस तथ्यको व्यक्त करते हुए कहा है—

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते। आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति। ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ।

(श्रीमद्भागवत ५ । १९ । १—३)

राजन्! किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी संनिधिके रसिक परम भागवत श्रीहनुमान्जी अन्य किन्नरोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वोंके सहित आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् रामकी परम कल्याणमयी गुणगाथा गाते रहते हैं। श्रीहनुमान्जी उसे सुनते हैं और स्वयं भी इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं। 'हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है।'

हनुमान्जीका सिन्दूर-प्रेम

हनुमान्जीके ध्यानोंमें उन्हें सिन्दूरारुण-विग्रह कहा गया है और प्रायः उनके सभी प्रतिमा-विग्रहोंपर उनके नवीनीकरणके लिये किसी मंगलवारको घृतमिश्रित सिन्दूर-कल्प चढ़ानेकी सुदीर्घ परम्परा है। इस सम्बन्धमें कई कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमेंसे दो यहाँ संक्षिप्तमें लिखी जा रही हैं—

सिन्दूरके विषयमें यह प्रसिद्धि है कि उसमें अस्थि एवं व्रणसंधानकी अद्भुत शक्ति है। आयुर्वेदके अनुसार सिन्दूररस एवं सिन्दूरादितैल सभी प्रकारके व्रण-विस्फोटोंके संधानमें अद्भुत रूपसे कार्य करता है। हनुमान्जीके सम्बन्धमें यह कथा है कि राज्याभिषेकके पश्चात् जब सभी लोग दरबारमें बैठे थे तो भगवान् श्रीराम सभीको उपहाररूपमें कुछ वस्त्र, आभूषण, रत्न आदि प्रदान कर रहे थे। उन्होंने एक दिव्य हार, जो विभीषणके कोषसे प्राप्त हुआ था, सीताजीको दे दिया और कहा कि जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हो उसे तुम इसे दे सकती हो। जगन्माता सीताकी वत्सलता हनुमान्जीके प्रति अधिक थी और उन्होंने उस दिव्य हारको उनके गलेमें डाल दिया। हनुमान्जीको यह बड़ा विचित्र लगा और भरे दरबारमें उस हारको तोड़ने लगे तथा मालाके दानोंको तोड़कर उसके भीतर ध्यानसे देखने लगे। इस प्रकार मालाकी कई मणियोंको तोड़कर उन्होंने देखा। अयोध्याके सब दरबारी हँसने लगे और कहने लगे कि आखिर हनुमान् बंदर ही ठहरे, इन्हें मणियोंका मूल्य क्या मालूम? उनमेंसे किसी एकने साहसकर पूछा कि इनमें तोड़-तोड़कर तुम क्या देखते हो? इसपर हनुमान्जीने कहा कि मैं इसकी बहुमूल्यताकी परख कर रहा हूँ, किंतु इसके भीतर न कहीं रामका रूप दीखता है और न कहीं रामका नाम। इसीलिये तोड़कर फेंकता जा रहा हूँ। तब उसने कहा कि तुम अपने शरीरके भीतर देखो कि इसके भीतर कहीं रामका नाम या रूप चित्रित है? इसपर हनुमान्जीने अपने सारे शरीरको विदीर्ण कर डाला और आश्चर्यकी बात थी कि सारे शरीरमें सीतारामका नाम और उन्हींका दिव्य रूप दिखायी देने लगा।

भगवती सीता माता भी यह सब देख रही थीं, उन्होंने

हनुमान्‌जीको शरीरको चीरने-फाड़नेसे रोका और सिन्दूरादितैलके सहारे उनके भग्न अस्थियों और अन्य भागोंको भी जोड़कर निर्व्रण, सुसन्धित एवं स्वस्थ कर दिया और वे सुन्दर सिन्दूरारुण-विग्रहके रूपमें सुशोभित होने लगे। तबसे यह परम्परा चलती रही और मन्दिरस्थ विग्रहोंमें भी यही विधान प्रायः एक-दो मासमें उनके नवीनीकरणके लिये अवश्य किया जाता है। भगवती सीताके प्रसादरूपमें सिन्दूर ग्रहण करनेके कारण वह उन्हें बहुत प्रिय हो गया और इस लेपसे वे सीतारामजीकी स्मृतिके साथ बहुत प्रसन्न होते हैं।

इसकी एक दूसरी कथा भी कही जाती है जो इस प्रकार है—शास्त्रोंमें यह प्रसिद्ध है कि सिन्दूर माङ्गलिक एवं सौभाग्य द्रव्य है और उसके धारणसे सीमन्तिनी स्त्रीके पतिके आयुष्यकी अभिवृद्धि होती है। भगवती सीता भी सदा इसे श्रद्धापूर्वक धारण करती थीं। एक दिन हनुमान्‌जी उसी समय पहुँच गये और कहने लगे—श्रद्धासे अपने मस्तकपर यह आप क्या लगा रही हैं और क्यों लगा रही हैं? इसपर भगवती सीता माताने कहा—'वत्स! इसके धारण करनेसे तुम्हारे स्वामीकी आयुकी वृद्धि होती है।' तब हनुमान्‌जीने कहा—'इस स्वल्प द्रव्यसे हमारे स्वामीकी कितनी आयुष्य-वृद्धि होगी?' और अपने सारे शरीरपर सिन्दूर पोतकर उनके पास पुनः उपस्थित हुए तथा कहा कि 'अब देखिये हमारे स्वामीकी अपार आयुष्य-वृद्धि होगी और उनका कभी भी कहीं बाल बाँका नहीं होगा।' इसीलिये मैंने प्रचुररूपसे समग्र शरीरपर इस सौभाग्य एवं सुमङ्गल द्रव्यको धारण कर लिया है।'

हनुमदुपासना

हनुमान्‌जीकी उपासनापर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं तथा सभी मन्त्र-सम्बन्धी निबन्ध-ग्रन्थोंमें इनकी उपासनाके अनेक प्रकरण प्राप्त होते हैं। आनन्दरामायणमें इनके कवच, पटल, स्तोत्र आदि भी सादर उपनिबद्ध हुए हैं। नारदादिपुराणों तथा यामल ग्रन्थोंमें और 'हनुमदुपासना' नामक कई ग्रन्थोंमें इनकी विस्तृत उपासना-पद्धति प्राप्त होती है। इनकी उपासनासे रामकी भक्ति तथा इनकी प्रसन्नता होनेपर वाद-जय, युद्धमें विजय, पृथ्वी एवं राज्यकी प्राप्ति, दीर्घ आयुष्य एवं सर्वाभ्युदय कल्याणकी प्राप्ति होती है। इनकी स्तुतियोंमें 'हनुमानचालीसा'का बहुत अधिक प्रचार है और इस प्रकारके बजरंगबाण, हनुमानबाहुक, हनुमानसाठिका आदि और भी अनेक सुन्दर पद्यबद्ध श्लोक प्रचलित हैं। इनके मन्त्र, ध्यान भी बहुत हैं। शारदातिलकोक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र सुन्दर, सरल एवं विशेष प्रभावशाली माना जाता है। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।**' इसके अतिरिक्त इनकी प्रसन्नताके लिये वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण एवं रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डके पाठ भक्तगण किया करते हैं। प्रत्येक मंगल एवं शनिवारको इनके मन्दिरोंमें भक्त बड़ी श्रद्धासे इनके दर्शन करते हैं और प्रायः ये दर्शनार्थियोंकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं। दक्षिण तथा पश्चिम भारतमें इनके अनेक मन्दिर हैं, जहाँ ये बालाजीके नामसे भी पूजित होते हैं। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके सायंकाल इनका जन्मोत्सव और कार्तिक अमावास्या तथा चैत्र पूर्णिमाको इनकी जयन्तियाँ मनायी जाती हैं एवं माङ्गलिक दर्शन किया जाता है। किसी भी रूपमें श्रद्धा एवं उपासनापूर्वक ध्यान करनेपर ये साधककी तत्काल सहायता करते हैं और निष्कामभावसे उपासना करनेपर वे उसे भगवान्‌की भक्ति आदि प्रदान कर भगवदनुग्रहसे उनका साक्षात् दर्शन कराते हुए सभी सिद्धियोंके साथ ज्ञान, वैराग्य, शम, दमादि षट्सम्पत्तियोंकी प्राप्ति कराकर दुर्लभ मोक्षपद भी प्रदान करा देते हैं। अतः श्रीहनुमान्‌जी सभी प्रकार सर्वदा पूज्य, वन्द्य एवं स्मरणीय हैं।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्। यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम्॥

'जीव-देहोंमें मनुष्यदेह दुर्लभ है, परंतु है वह क्षणभङ्गुर। इस दुर्लभ और क्षणभङ्गुर मनुष्यदेहमें वैकुण्ठप्रिय—हरिके प्यारे संतके दर्शन और भी दुर्लभ हैं। इस संसारमें आधे क्षणका भी सत्सङ्ग मनुष्योंके लिये एक अमूल्य निधि है, क्योंकि इस सत्सङ्गसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है।'

विष्णुस्वरूप भगवान् शालग्राम

शालग्राम भगवान् विष्णुके साक्षात् मूर्तिमान् विग्रह माने जाते हैं। अन्य प्रतिमा-विग्रहोंकी तरह इनमें प्राण-प्रतिष्ठादि संस्कारोंकी आवश्यकता नहीं होती तथा पूजा आदिमें भी आवाहन-विसर्जन आदि नहीं किया जाता, क्योंकि इस शिलामें भगवान् विष्णु नित्य संनिहित रहते हैं। अतः इनके पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, चन्दन, पुष्प, तुलसी आदि उपचारोंसे स्तुति-प्रदक्षिणा तथा प्रणामतक ही पूजाकी विधि है, विसर्जनकी नहीं। रात्रिमें शयन करानेके बाद पुनः प्रातःकाल जागरण कराया जाता है। इनके साथ तुलसीका नित्य संयोग माना जाता है। केवल शयनकालके अतिरिक्त ये तुलसीसे कभी अलग नहीं रहते। अतः शयन करानेके बाद तुलसी-पत्रको शालग्राम-शिलाके ऊपरसे हटाकर पार्श्वमें रख दिया जाता है। यदि कई शालग्राम हों तो सबसे उतारकर एक वस्त्रमें शिलाओंके पीछे रखनेकी परम्परा है।

भगवान् विष्णु पतिव्रता वृन्दाके शापसे शालग्राम-शिलाके रूपमें परिवर्तित हो गये और वृन्दा भी तुलसीके रूपमें परिवर्तित हो गयी। हिमालयके मध्य भागमें शालग्राम-शिखर है। यह शिखर शालग्राम-पर्वत तथा मुक्तिनाथके नामसे भी प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् विष्णुके गण्डस्थलसे समुद्भूत गण्डकी नामकी पवित्र नदी प्रवाहित होती है, जिसके गर्भमें शालग्राम-शिला प्रचुर रूपमें प्राप्त होती है। ये शिलाएँ साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और आकृति-भेदसे इनमें दामोदर, वासुदेव, नृसिंह, वामन, लक्ष्मी-नारायण आदि अवतारोंकी भी स्थिति मान्य है। इनमें भी चक्राङ्कित शालग्रामकी विशेष प्रतिष्ठा होती है। शास्त्रोंके अनुसार जहाँ शालग्राम-शिला होती है, वहाँ सभी तीर्थ और भुक्ति-मुक्ति भी स्थित रहते हैं और कोई दोष, पाप तथा अशुभ, अदृष्ट प्राणी नहीं प्रविष्ट होते हैं। शालग्रामका चरणोदक सभी तीर्थोंसे अधिक पवित्र माना जाता है।

शालग्राम सम संख्यामें ही पूजे जाते हैं, किंतु दो शालग्रामोंकी एक साथ पूजा नहीं की जाती। शालग्रामकी पूजा विषम संख्यामें नहीं करनी चाहिये; किंतु विषममें भी एक शालग्रामकी पूजाका विधान है।

शालग्रामकी पूजामें स्त्रियोंका अधिकार नहीं है, वे किसी ब्राह्मणके द्वारा पूजा करा सकती हैं। शालग्रामके साथ द्वारावती शिला तथा तुलसीदल रखनेका विधान है। शूलके समान नुकीले, विकृत मुखवाले तथा पिङ्गल वर्णके शालग्राम दूषित माने जाते हैं। इनकी पूजासे अनिष्टकी सम्भावना होती है, अतः पूजाके लिये इनका संग्रह नहीं करना चाहिये।

प्राचीन परम्पराके अनुसार भगवान् शालग्रामपर श्रीचक्र या श्रीयन्त्र निर्माण करनेसे उनकी महिमा और भी बढ़ जाती है। उनके दर्शनमात्रसे सभी पाप नष्ट होकर समस्त तीर्थों और देवताओंके दर्शनका फल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि शास्त्रानुसार उनमें सभी तीर्थ, सभी देवता, ऋषि, मुनि और पवित्र पर्वत, समुद्रादिकोंका भी वास रहता है तथा लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती आदि शक्तियाँ एवं साक्षात् त्रिपुरसुन्दरी शिवके साथ और लक्ष्मी भगवान् विष्णुके साथ निवास करती हैं। सभी ऋद्धि-सिद्धियाँ भी अनुग्रहकर उपासकको प्राप्त हो जाती हैं।

व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालग्रामकी संनिधिमें करनेसे विशेष फलप्रद होते हैं। विष्णुस्वरूप शालग्रामकी महिमा अनन्त है। धार्मिक विश्वासोंके अनुसार जो पुरुष अपने मृत्युकालमें शालग्रामके जलका पान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकगामी होता है। उसे मुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोगके बन्धनोंसे छूटकर भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लीन हो जाता है।

पद्म, स्कन्द, वाराह, ब्रह्मवैवर्त, देवीभागवत तथा भविष्यादि पुराणोंमें गण्डकी-क्षेत्र और शालग्राम-शिलाका विस्तारसे माहात्म्य, लक्षण तथा पूजा आदिकी विधिपर प्रकाश डाला गया है।

विधिपूर्वक शालग्रामके चरणोदक बनाने तथा उसके पान करनेकी अत्यधिक महिमा है। तदनुसार ताम्रपात्रमें तुलसी और शालग्रामको रखकर एक छोटेसे शङ्खमें तीर्थ-जलके द्वारा घण्टा बजाते हुए तथा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंका पाठ करते हुए शालग्राम भगवान्का अभिषेक किया जाता है। शङ्खके जलमें किञ्चित्

श्वेतचन्दन तथा सुगन्धित द्रव्य भी रहना चाहिये। इसीलिये शालग्राम-शिलोदकको अष्टाङ्ग कहा गया है। इसके श्रद्धापूर्वक पान करनेसे सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा अपमृत्यु एवं अकालमृत्युका भय नहीं होता। साथ ही मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

विष्णुप्रिया तुलसी

भक्तों एवं उपासकोंके लिये जितने भगवान् विष्णु नाराध्य एवं श्रद्धेय हैं, उतनी ही भगवती तुलसी भी श्रद्धेया, ज्या एवं वन्दनीया हैं। वे भी श्रीदेवीके समान भगवान्की नादिकालसे नित्य सहचरी रही हैं। इसलिये वे विष्णुप्रिया, ष्णुकान्ता एवं केशवप्रिया आदि नामोंसे अभिहित होती हैं। भगवान्के नित्यधाम—गोलोकमें उनके साथ देवीके रूपमें थत रहती हैं और लीला-विभूतिमें वे श्रीराधिकाके समान ही गवान्की लीलाओंमें सहयोग प्रदान करती हैं तथा लीलाके सङ्गमें ही वे वृन्दावनमें एक गोपीके रूपमें अवतरित होती हैं गैर पुनः किञ्चित् काल तपस्याकर वृन्दावनविहारीके रूपमें वतीर्ण हुए श्रीकृष्णस्वरूप नारायणको प्राप्त कर लेती हैं। इस म्बन्धमें पुराणोंमें अनेक आख्यान हैं और कल्पभेदसे उनमें ई स्थानोंपर घटना-चक्रोंमें भी कुछ भिन्नता प्राप्त होती है। न्हीं पुराणोंके अनुसार वे कुछ कालतक जालन्धरकी पत्नी रहती हैं और किन्हींके अनुसार शङ्खचूडकी । अन्तर्भावसे उनकी श्रद्धा भगवान् नारायणमें ही सदा रही और उन्हींको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तप भी करती रहीं। इनके यद्यपि अन्य कई नाम हैं, किंतु 'वृन्दा' इनका दूसरा प्रमुख नाम रहा है और जब इन्होंने गोपी-भावके शरीरका परित्याग कर दिया तो ये वृक्षके रूपमें परिवर्तित हो गयीं और वृन्दा एवं तुलसीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। इस प्रसङ्गमें इनकी मनःस्थितिको जानते हुए भगवान् विष्णुने जो अनुग्रह कर इन्हें अपनी पत्नी बनानेके लिये छलका अभिनय किया, उससे रुष्ट होकर इन्होंने उन्हें शिला बननेका शाप दिया और स्वयं गण्डकी नदीके रूपमें परिवर्तित हो गयीं तथा उन्हें अपने हृदयमें धारण कर लिया। इस प्रकार भी भगवान् नारायणका देवी तुलसीसे अनन्य सम्बन्ध स्थापित हो गया।

भगवान् शालग्राम साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और तुलसीके बिना उनकी कोई भी पूजा सम्पन्न नहीं हो सकती। उनके स्नान, नैवेद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प-माल्यादि अलंकरण और राजभोग आदिमें उनकी सर्वत्र उपस्थिति आवश्यक होती है। अनेक प्रकारके दिव्य उपकरण—मिष्टान्न, सुस्वादु व्यञ्जन आदि भी वे तुलसीके बिना स्वीकार नहीं करते। इसलिये भगवान् नारायणस्वरूप शालग्रामकी उपासनामें नैवेद्य आदिके अर्पणके समय मन्त्रोच्चारण और घण्टानादके साथ-साथ तुलसीपत्रका समर्पण भी उपासनाका मुख्य अङ्ग माना जाता है और प्रतिमा चाहे विष्णु, राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, लक्ष्मी-नारायण आदि किसीकी हो, उनके हाथोंमें भी तुलसी अर्पित की जाती है और उनकी प्रतिनिधिके रूपमें एक शालग्रामकी उपस्थिति तथा तुलसीका सांनिध्य आवश्यक होता है। यह उनके विष्णु-प्रियात्वका प्रमुख प्रमाण है। साथ ही तुलसीकी प्रायः अन्य सभी देवताओं और देवियोंकी उपासनामें पुष्प आदिके साथ इनका सम्मिश्रण होनेसे उस देवताकी भी प्रसन्नता शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

आज भी विष्णुवल्लभा तुलसीकी स्मृतिमें कार्तिक-मासमें सर्वत्र उनका जन्म एवं विवाहका उत्सव मनाया जाता है। विशेषकर कार्तिकमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिसे लेकर पूर्णिमातक विवाह-मण्डपकी रचना, विवाह-कौतुक और शालग्रामकी शिलाके साथ तुलसीके निवासस्थानके पास सभी प्रकारकी चित्र-रचना कर षोडशोपचार-पूजनपूर्वक शृङ्गारोत्सव मनाया जाता है। उस दिन श्रद्धालु लोग उपवास करते हैं। व्रतोद्यापनमें जप, हवन तथा ब्राह्मण-भोजन आदि भी होता है। उस दिन विष्णु-स्तोत्रोंके साथ-साथ तुलसीके कवच आदि पञ्चाङ्गोंके स्तोत्रोंका पाठ भी किया जाता है और विवाह आदिके मङ्गल-गीत तथा मङ्गल-आरती आदि भी सम्पन्न की जाती है। इससे अनन्त पुण्यफलकी प्राप्ति होती है।

तुलसीके माहात्म्यपर भी प्रायः सभी पुराणोंमें तथा पाञ्चरात्रोंमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इनके अनुसार जहाँ तुलसीके पौधे होते हैं या तुलसी-वन होता है, वह स्थान या उद्यान महान् तीर्थ हो जाता है और वहाँ यमकिंकरोंका प्रवेश नहीं होता। जहाँ भगवान्‌की तुलसी-मञ्जरियोंसे पूजा होती है, वहाँके लोग मोक्षके भागी होते हैं और उपासकोंको पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता।

तुलसीकाननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिंकराः॥
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी भवेन्नरः॥

तुलसी-वृक्षमें मूलसे लेकर उसकी छायातकमें सभी देवता तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं और वहाँ सभी कल्याण-मङ्गलोंका अधिष्ठान होता है। देवता भी तुलसीके संनिधानसे मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलाषा करते हैं[1]। जलमें तुलसीदल मिलाकर जो व्यक्ति स्नान करता है, उसे सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जलपूर्ण घड़ेमें तुलसी डालकर उस पवित्र जलसे भगवान् शालग्राम या अन्य देवताओंका अभिषेक करनेसे तो देवताओं तथा भगवान्‌को ऐसी तृप्ति होती है जो अमृतपूर्ण हजारों घड़ोंसे भी सम्भव नहीं है—

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेद्धरेः।
या च तुष्टिर्भवेन्नॄणां तुलसीपत्रदानतः॥

(ब्र० वै०, प्रकृ० २१।३९-४०)

तुलसी-वनमें या तुलसी-वृक्षके समीप किया गया कोई भी अनुष्ठान, जप, तप तथा रामायण, गीता, भागवत आदिके पाठ सभी कामनाओंको पूर्ण करते हुए उसके हृदयको भी शुद्धकर शुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिपूर्वक उसे भगवत्प्राप्ति एवं मुक्तिके भी योग्य बना देते हैं। इसी प्रकार तुलसी-वृक्षके नीचेकी मृत्तिकाकी भी अपार महिमा कही गयी है। उसके मस्तकमें लगानेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तुलसीकी मालाका भी बहुत महत्त्व है। वैष्णवोंमें उसकी कण्ठी भी पहननेका नियम है। इससे यमदूतोंका भय नहीं होता। भगवान् विष्णुके तथा उनके सभी अवतारोंके मन्त्र तुलसीमालापर जपनेसे सद्यः सिद्धि प्रदान करते हैं। वैसे अन्य भी देवीके मन्त्र और सात्त्विक मन्त्र तथा नाम-मन्त्र भी तुलसीकी मालापर जपे जाते हैं।

तुलसीकी मालाको सदा पवित्र स्थानमें ही रखना चाहिये। उसे कभी भी अपवित्रावस्था या अपवित्र स्थानमें स्पर्श नहीं होने देना चाहिये। श्राद्धके भोज्य पदार्थों तथा कव्य आदिमें तुलसीके प्रयोगसे पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। अतः श्राद्ध-तर्पणमें भी इसका प्रयोग करना चाहिये। प्राचीन कालसे लोगोंके प्राणान्त-समयपर मुखमें तुलसी, गङ्गाजल तथा सुवर्ण रखनेकी परम्परा है। लोगोंका विश्वास है कि इससे यमदूत वहाँ फटकने नहीं पाते और वह भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त करता है। विष्णुदूत वहाँ उसकी रक्षा करनेके लिये पहले पहुँच जाते हैं। भगवान् शङ्कर देवर्षि नारदसे तुलसीकी महिमा बताते हुए कहते हैं—जिनका मृत शरीर

१- तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च वरानने॥

(ब्र०वै०, प्रकृति० २१।३७-३८)

तुलसीकाष्ठसे जलाया जाता है, वे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। मृत पुरुषके सम्पूर्ण अङ्गोंपर तुलसीकाष्ठ रखनेके पश्चात् उसका दाह-संस्कार किया जाय तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं—

यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठशतस्य हि।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च॥

(पद्मपु०, उत्तर० २४।६)

'यदि दाहसंस्कारके समय अन्य लकड़ियोंके भीतर एक भी तुलसीका काष्ठ हो तो करोड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।'

तुलसीके पत्ते, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं—

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखात्वक्स्कन्धसंज्ञितम्।
तुलसीसम्भवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम्॥

(पद्मपु०, उत्तर० २४।२)

भगवती तुलसीका नामोच्चारण करनेसे ही असुरारि भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। कलियुगमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष लहलहाता रहता है। तुलसीके द्वारा मधुसूदनकी पूजा करनेसे प्रत्येक मनुष्य, विशेषतः भगवान्‌का भक्त नरसे नारायण हो जाता है।

आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रमें तुलसीकी महत्ता सर्वत्र प्रख्यात है ही, साथ ही विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगोंके उपचारमें भी तुलसीका अद्भुत चमत्कार देखा जाता है। इस सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। यह विविध प्रकारके ज्वरों, प्रतिश्याय, कास, श्वास आदि रोगोंमें रामबाणका काम करती है। इसके अतिरिक्त अन्य कई चिकित्साके प्रयोगोंमें इसका उपयोग होता है। इस पौधेके पार्श्ववर्ती क्षेत्रमें दूषित कीटाणुओं तथा विविध रोगोंको उत्पन्न करनेवाले तत्त्वों तथा क्षुद्र जीव-जन्तुओंका प्रवेश नहीं हो पाता और शुद्ध वायु तथा सात्त्विक भावोंका स्वाभाविक रूपसे संचार होता है, जिससे मनः-शुद्धि और शरीर-स्वास्थ्यमें भी आशातीत लाभ होता है। कुछ अनुसंधान-कर्ताओंके मतानुसार यह शूल और प्लीहाका भी निवारक है तथा गायके दहीके साथ कुछ अधिक मात्रामें दीर्घकालतक प्रयोग करनेसे कैंसर आदि भयंकर रोगोंका भी विनाश हो जाता है।

इस प्रकार भगवती विष्णुप्रिया तुलसी सभी प्रकारसे लोकोपकारमें सहायक होती हैं। उपासनाके द्वारा इस लोक और परलोकमें सब प्रकारका कल्याण करती हैं और वायुके द्वारा संचरित होकर सुदूरतक वायुमण्डलके सभी प्रकारके प्रदूषणोंको दूर करती हुई उसे शुद्ध और सात्त्विक बना देती हैं तथा दूसरी तरफ इसके पत्र, मञ्जरी, काष्ठ, मृत्तिका आदि सभी ओषधियों आदिमें प्रयुक्त होकर अपार लाभ प्रदान करते हैं।

तुलसीकी उपासना-सम्बन्धी प्रयोगोंके कुछ विशेष नियम हैं, जो शास्त्रोंमें विस्तारसे निर्दिष्ट हैं, यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है—

तुलसी कभी बासी नहीं होती और अपवित्रतासे यदि असंस्पृष्ट हो तो उसका पुनः-पुनः उपयोग भी होता है। तुलसीके अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्य बासी हो जाते हैं।

पूजामें बासी पुष्प और बासी जल वर्जित है, परंतु तुलसीदल और गङ्गाजल बासी होनेपर भी वर्जित नहीं हैं—

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥

(स्क० पु०, वै० मा०, मा० ८।९)

रविवार, अमावास्या, द्वादशी एवं संक्रान्तिके दिन तुलसीका चयन निषिद्ध है। इसलिये उन दिनोंके पूजनके लिये उससे पूर्वकी तिथियोंमें ही उनका चयन कर लेना चाहिये। ग्रहणके समय तथा आधी रातके बाद भी तीन घंटेतक चयन नहीं करना चाहिये।

देवकार्य और पितृकार्यके लिये स्नान करके ही तुलसीकी पत्तियाँ उतारनी चाहिये—

अस्नात्वा तुलसीं चित्वा यः पूजां कुरुते नरः।
सोऽपराधी भवेत् सत्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥

(वायुपुराण)

'बिना स्नान किये जो तुलसी-चयन करके उससे पूजा करता है, निश्चय ही वह अपराधी है और उसकी सारी पूजा निष्फल होती है।'

तुलसीदल-चयन करते समय निम्नाङ्कित श्लोकका पाठ करना मङ्गलकर होता है—

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने।
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्॥
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि।

(पद्मपु०, सृ० ६३। ११—१३)

'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्‌की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मञ्जरियोंद्वारा मैं सदा ही श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, ऐसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलिमलका नाश करनेवाली हो।'

श्रद्धा और भक्ति श्रीविष्णुप्रिया तुलसीकी तुष्टिके लिये आवश्यक है। पूजाके पूर्व स्नानादिसे निवृत्त होकर तुलसीके समीप बैठकर हाथ जोड़े और उनका मङ्गलमय ध्यान करे। ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये तुलसीके वृक्षमें पाद्यादि षोडशोपचारसे भक्तिपूर्वक इस देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजोपरान्त 'नामाष्टक' का पाठ करे, यह स्तोत्ररूपी नामाष्टक अत्यन्त पुण्यप्रद है—

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

(देवीभा० ९। २५। ३२-३३)

'वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें परिणत है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक'का पाठ करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।'

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करे—

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥

(पद्मपु०, पा० ७६। ६६)

'जो दर्शन-पथमें आनेपर सारे पाप-समुदायका नाश कर देती है, स्पर्श किये जानेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम किये जानेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचे जानेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ाये जानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसीदेवीको नमस्कार है।'

भगवती महालक्ष्मी

भगवती महालक्ष्मी मूलतः भगवान् विष्णुकी अभिन्न-शक्ति हैं और सूर्य एवं उनकी प्रभा तथा अग्निकी दाहिका-शक्ति एवं चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके समान वे उनकी नित्य सहचरी हैं। पुराणोंके अनुसार वे पद्मवनवासिनी, सागरतनया और भृगुकी पत्नी ख्यातिकी पुत्री होनेसे भार्गवी नामसे विख्यात हैं। इन्हें पद्मा, पद्मालया, श्री, कमला, हरिप्रिया, इन्दिरा, रमा, समुद्रतनया, भार्गवी, जलधिजा इत्यादि नामोंसे भी अभिहित किया गया है। इनके कई शतनाम तथा सहस्रनामस्तोत्र उपलब्ध होते हैं। ये वैष्णवी शक्ति हैं। भगवान् विष्णु जब-जब अवतीर्ण होते हैं, तब-तब वे लक्ष्मी, सीता, राधा, रुक्मिणी आदि रूपोंमें उनके साथ अवतरित होती हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी देवी कमलाकी उपासना वस्तुतः जगदाधार-शक्तिकी ही उपासना है। इनकी कृपाके अभावसे जीवमें ऐश्वर्यका अभाव हो जाता है। विश्वम्भरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम सभीमें समान रूपसे प्रचलित है। इनकी गणना तान्त्रिक ग्रन्थोंमें दस महाविद्याओंके अन्तर्गत कमलात्मिका नामसे हुई है।

पुराणोंके अनुसार प्रमादग्रस्त इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी महर्षि दुर्वासाके शापसे समुद्रमें प्रविष्ट हो गयीं फिर देवताओंकी प्रार्थनासे जब वे प्रकट हुई, तब उनका सभी देवता, ऋषि-मुनियोंने अभिषेक किया और उनके अवलोकन-मात्रसे सम्पूर्ण विश्व समृद्धिमान् तथा सुख-शान्तिसे सम्पन्न हो गया। इससे

प्रभावित होकर इन्द्रने उनकी दिव्य स्तुति की, जिसमें कहा गया है कि लक्ष्मीकी दृष्टिमात्रसे निर्गुण मनुष्यमें भी शील, विद्या, विनय, औदार्य, गाम्भीर्य, कान्ति आदि ऐसे समस्त गुण प्राप्त हो जाते हैं, जिससे मुनष्य सम्पूर्ण विश्वका प्रेम तथा उसकी समृद्धि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकारका व्यक्ति सम्पूर्ण विश्वका आदर एवं श्रद्धाका पात्र बन जाता है—

त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥

(विष्णुपु० १। ९। १३०)

विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदके पञ्चम आत्रेय मण्डलका खिलसूक्त (श्रीसूक्त) देवी लक्ष्मीसे ही सम्बद्ध है। पुराणों तथा रामायण-महाभारतादि आर्ष ग्रन्थोंके अनुसार इनके 'विष्णुपत्नी' रूपकी सर्वमान्यता है। ये सुवर्णवर्णा चतुर्भुजा अनिन्द्य सौन्दर्यसे सम्पन्न हैं। सर्वाभरणभूषित कमलके आसनपर स्थित हो अपने कृपाकटाक्षसे भक्तोंकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति करती हैं। इनकी उपासना अत्यन्त श्रेयस्करी है। श्रीसम्प्रदायकी आद्य-प्रवर्तिकाके रूपमें इनका उल्लेख मिलता है। पुराणोंमें इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कई कथाएँ प्राप्त होती हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार सृष्टिके पहले रासमण्डलमें स्थित परमात्मा श्रीकृष्णके मनसे एक गौरवर्णा देवी प्रकट हुईं, जो रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था और मुखपर मन्द हास्यकी छटा थी। वे नवयौवना देवी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री तथा फल-रूपसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाली थीं। वे ही स्वर्गलोकमें स्वर्गलक्ष्मी तथा राजाओंके यहाँ राजलक्ष्मी कहलाती हैं—

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः।
एका देवी गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।

(ब्रह्मवै०पु०,०ब्र०ख० ३। ६५-६६)

इसी पुराणमें समुद्रमन्थनोपरान्त सिन्धुसुतारूपमें भगवती लक्ष्मीके प्राकट्य और विष्णु-वरणकी भी बात आती है। समग्रतः लक्ष्मीकी उत्पत्तिके विषयमें यही कथा प्रायः सर्वानुमोदित है। अन्य देवियोंकी भाँति लक्ष्मीजीके भी कई ध्यान, स्तोत्र, कवच, पटल आदि प्राप्त होते हैं। भगवान् विष्णुके दिव्य शरीरमें उनका वक्षःस्थल ही विशेष रूपसे भगवती कमलाका निवासस्थान निरूपित किया गया है[1]। भगवान् विष्णु और लक्ष्मीका परस्पर अभेद-सम्बन्ध है। जगत्पिता भगवान् विष्णु जैसे सर्वव्यापक हैं,उसी प्रकार उनकी दिव्य शक्ति महालक्ष्मी भी सर्वव्यापिका हैं[2]।

देवी लक्ष्मीका ध्यान

देवी महालक्ष्मी आदिभूता, त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त-भेदसे उनके दो रूप हैं। वे उन दोनों रूपोंसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। स्त्री-रूपमें इस संसारमें जो कुछ भी दृश्यमान है, वह सब लक्ष्मीजीका ही विग्रह है। भगवती महालक्ष्मीके अनेक ध्यान हैं, यहाँ शारदातिलकसे एक ध्यान-श्लोक दिया जा रहा है—

कान्त्या काञ्चनसंनिभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बलसितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

(८। ४)

'जिनकी कान्ति सुवर्ण-वर्णके समान प्रभायुक्त है और जिनका हिमालयके समान अत्यन्त ऊँचे उज्ज्वल वर्णके चार गजराज अपनी सूँड़ोंसे अमृत-कलशके द्वारा अभिषेक कर रहे हैं, जो अपने चार हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा और दो कमल धारण किये हुई हैं, जिनके मस्तकपर उज्ज्वल वर्णका भव्य करीट सुशोभित है, जिनके कटि-प्रदेशपर कौशेय (रेशमी) वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं। ऐसी कमलपर स्थित भगवती लक्ष्मीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

१- तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत् परमं विभूतेः। (श्रीमद्भा० ८। ८। २५)

२- त्वयैतद् विष्णो चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्। (अग्निपु० २३७। १०)

लक्ष्मीजीका निवास-स्थान

जिस स्थानपर भगवान् श्रीहरिकी चर्चा होती है और उनके गुणोंका कीर्तन होता है, वहींपर सम्पूर्ण मङ्गलोंको भी मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती लक्ष्मी सदैव निवास करती हैं। जहाँ भगवान् श्रीकृष्णका तथा उनके भक्तोंका यश गाया जाता है, वहीं उनकी प्राणप्रिया भगवती लक्ष्मी सदा विराजती हैं। जिस स्थानपर शङ्खध्वनि होती है तथा शङ्ख, तुलसी और शालग्रामकी अर्चना होती है, वहाँ भी लक्ष्मी सदा स्थित रहती हैं। इसी प्रकार जहाँ शिवलिङ्गकी पूजा, दुर्गाकी उपासना, ब्राह्मणोंकी सेवा तथा सम्पूर्ण देवताओंकी अर्चना की जाती है, वहाँ भी पद्ममुखी साध्वी लक्ष्मी सदा विद्यमान रहती हैं।

आमलक-फल, गोमय, शङ्ख, शुक्ल वस्त्र,श्वेत एवं रक्त कमल, चन्द्र, महेश्वर, नारायण, वसुन्धरा और उत्सव-मन्दिर आदि स्थानोंपर लक्ष्मी नित्य ही स्थित रहती हैं। ब्रह्मपुराण (गोदावरी-माहात्म्य) तथा विष्णुस्मृतिमें भगवती लक्ष्मीके निवासभूमियोंका बड़े रम्य श्लोकोंमें वर्णन हुआ है।

देवी लक्ष्मीकी उपासना

देवी लक्ष्मीकी उपासना-विषयक परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भाद्रमासकी शुक्लाष्टमीसे लेकर आश्विन-कृष्णाष्टमीतक लक्ष्मीव्रतका विधान है, इससे ऐश्वर्य, सौभाग्य, धन, पुत्रादिकी प्राप्ति होती है। लोक-परम्परामें आश्विनपूर्णिमा (शरत्पूर्णिमा) और कार्तिक-अमावास्या (दीपावली) को लक्ष्मीजीकी पूजा की जाती है। प्रकाश और समृद्धिकी देवीके रूपमें विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीका दीपमालिकोत्सवसे भी सम्बन्ध है। उस दिन अर्धरात्रिमें इनकी विशेष पूजा होती है। पुराणों और आगमोंमें इनके अनेक स्तोत्र हैं, जिनमें इनके चरित्र भी उपनिबद्ध हैं। इन सभी स्तोत्रोंमें इन्द्रद्वारा किया गया संस्तवन 'श्रीस्तोत्र' सर्वाधिक विख्यात है। वह अग्नि, विष्णु तथा विष्णुधर्मोत्तर आदि पुराणोंमें प्रायः यथावत् रूपमें प्राप्त होता है। राष्ट्रसंवर्धन और राज्यलक्ष्मीके संरक्षणके लिये इसका पाठ विशेष श्रेयस्कर माना गया है। इनकी दशाङ्ग-उपासनाकी सम्पूर्ण विधि पटल, पद्धति, शतनाम, सहस्रनाम आदि स्तोत्रों और श्रीसूक्तके सम्पूर्ण विधान लक्ष्मीतन्त्र आदि विविध आगमोंमें प्राप्त है, जिनका एकत्र संग्रह शाक्तप्रमोदमें श्रीकमलात्मिका-प्रकरणमें प्राप्त होता है। सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्में भी इनकी उपासनाकी सम्पूर्ण विधि प्रतिपादित है। इनकी आराधनासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति एवं अनेक प्रकारके अभीष्टोंकी सिद्धि सहजमें हो जाती है।

वाग्देवता भगवती सरस्वती

भगवती सरस्वती समस्त ज्ञान, विज्ञान, विद्या, कला, बुद्धि, मेधा, धारणा, तर्कशक्ति एवं प्रत्यभिज्ञाकी प्रतिनिधि-स्वरूपा वाणीकी अधिष्ठात्री शक्ति हैं। यद्यपि सभी देवता विशेष ज्ञान एवं योगैश्वर्यसिद्धियोंसे सम्पन्न होते हैं तथापि 'शब्दब्रह्म' शब्दसे व्यपदिष्ट ज्ञानात्मिका शक्ति भगवती शारदा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी ही हैं और ये महालक्ष्मी तथा महाशक्त्यात्मिका महामाया, महाकाली आदिसे भिन्न नहीं हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें इनका मुख्य नाम 'श्री' और अपर नाम है श्रीपञ्चमी। वसन्तपञ्चमीको इनका आविर्भाव-दिवस माना जाता है। इस दिन इनकी विशेष पूजा-अर्चा, उपासना आदिके द्वारा इनके सांनिध्य-प्राप्तिकी साधना की जाती है। आचार्य व्याडिने अपने प्रसिद्ध कोषमें स्पष्टरूपसे निर्दिष्ट करते हुए कहा है कि 'श्री' शब्द लक्ष्मी, सरस्वती, बुद्धि, ऐश्वर्य, अर्थ-धर्मादि पुरुषार्थों, अणिमादि सिद्धियों, सौन्दर्य तथा माङ्गलिक उपकरणों एवं वेशरचना—इन अर्थोंमें प्रयुक्त है—

लक्ष्मीसरस्वतीधीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु ।
उपकरणवेशरचना च श्रीरिति प्रथिता ॥

अन्य कोषोंमें इन्हें भारती, ब्राह्मी, गीर्देवी, वाग्देवी, वाणी, भाषा, शारदा, त्रयीमूर्ति आदि नामोंसे अभिहित किया गया है।

समस्त विश्वका दैनन्दिन कार्य-व्यापार वाणीके व्यवहारपर ही आधृत है। विश्वकी विभिन्न भाषाओं, पशु-पक्षियोंकी वाणी, सांकेतिक लिपि-पद्धति तथा संकेत-चिह्नोंमें भी मूलतः इन्हींकी चमत्कृत-शक्ति संनिहित है। इसीलिये विश्वके सभी भागोंमें भी अनादिकालसे ही अनेक नाम-रूपोंसे इनकी उपासना-पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं।

प्राचीन ऋषि-महर्षि समस्त राग-द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, मोह, मद आदिपर विजय प्राप्तकर अन्तःकरणको अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मलकर ब्रह्मविद्याके रूपमें अहर्निश इन्हींकी उपासना करते थे और इनको प्राप्तकर जीवन्मुक्ति-सुखका प्रत्यक्ष अनुभव करते थे तथा क्रमसे अन्तमें विदेहमुक्ति तथा कैवल्यको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाते थे—

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४।९)

शब्दजातद्वारा निर्मित स्वर-पाठसहित त्रयी-विद्याके रूपमें भगवती सरस्वती ब्रह्माके मुखसे विवर्तित हुई हैं।

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

(श्रीमद्भागवत २।४।२२)

'जिन्होंने सृष्टिके समय ब्रह्माके हृदयमें पूर्वकल्पकी स्मृति जागरित करनेके लिये ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीको प्रेरित किया और वे अपने अङ्गोंके सहित वेदके रूपमें उनके मुखसे प्रकट हुईं, वे ज्ञानके मूलकारण भगवान् मुझपर कृपा करें, मेरे हृदयमें प्रकट हों।'

इसके अतिरिक्त आन्वीक्षिकी विद्या, विश्व-व्यापार-संचालिका वार्ता-विद्या और समस्त लोकोंकी प्रशासिका दण्डनीति-विद्या तथा अन्य भी ज्योतिष, कर्मकाण्डादि दिव्य ज्ञानमयी विद्याएँ इनके ही स्वरूप हैं।

भगवती शारदाका मूल स्थान शशाङ्कसदन अर्थात् अमृतमय प्रकाशपुञ्ज है, जहाँसे वे निरन्तर अपने उपासकोंके लिये पचास अक्षरोंके रूपमें ज्ञानामृतकी धारा प्रवाहित करती हैं। उनका विग्रह शुद्ध ज्ञानमय, आनन्दमय है और इसीलिये उनके उपासकोंके हृदयमें ज्ञानयुक्त शान्ति अक्षुण्ण बनी रहती है तथा किसी भी बाह्य आकर्षण या विपत्तिकी बाधाओंमें वे समभावसे आनन्दमें ही स्थित रहनेमें समर्थ हो जाते हैं, जो अन्य किसी साधनासे सम्भव नहीं, उनका तेज दिव्य एवं अपरिमेय है और वे ही शब्दब्रह्मके नामसे विद्वानों और पुण्यात्माओंके द्वारा संस्तुत होती हैं, समस्त संसारमें व्याप्त शब्दार्थरूपिणी वाणीकी अधीश्वरी वे सबकी रक्षा करें।

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशदर्णैः क्रमाद्
व्याप्तं येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत्।
शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतं
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महः॥

(शारदातिलक १।१)

ध्यान-स्वरूप—आगमोंमें इनके अनेक प्रकारके ध्यान बतलाये गये हैं। इन्हें कहीं हंसके ऊपर तथा कहीं कमलपर स्थित बतलाया गया है। पूर्णज्ञानस्वरूपिणी होनेके कारण वे सदा आनन्द-उल्लाससे युक्त रहती हैं और उनके मुखमण्डलपर सदा प्रसन्नता एवं मधुर, मन्दस्मित सुशोभित होता रहता है। उनके कुछ-ध्यानस्वरूप इस प्रकार हैं—

हंसारूढा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्त्रजा दीप्तहस्ता
श्वेताब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्॥

'जो हंसपर विराजमान हैं, शिवजीके अट्टहास, हार,चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल वर्णवाली हैं तथा वाणीस्वरूपा हैं, जिनका मुख मन्द-मुसकानसे सुशोभित है और मस्तक चन्द्ररेखासे विभूषित है तथा जिनके हाथ पुस्तक, वीणा, अमृतमय घट और अक्षमालासे उद्दीप्त हो रहे हैं, जो श्वेत कमलपर आसीन हैं, वे सरस्वतीदेवी आपलोगोंकी अभीष्ट-सिद्धि करनेवाली हों।'

वाणीं पूर्णनिशाकरोज्ज्वलमुखीं कर्पूरकुन्दप्रभां
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकां निजकरैः सम्बिभ्रतीमादरात्।
वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां च तुङ्गस्तनीं
दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं हंसाधिरूढां भजे॥

'जिनका मुख पूर्णिमाके चन्द्र-सदृश गौर है, जिनकी अङ्गकान्ति कर्पूर और कुन्द-पुष्पके समान है, जिनका मस्तक अर्धचन्द्रसे अलंकृत है, जो अपने हाथोंमें वीणा, अक्षसूत्र, अमृत-पूर्ण कलश और पुस्तक धारण करती हैं तथा उँचे स्तनोंवाली हैं, जिनका शरीर दिव्य आभूषणोंसे विभूषित है और जो हंसपर आरूढ हैं, उन सरस्वती देवीका मैं

आदरपूर्वक ध्यान करता हूँ।'

भगवती शारदा अत्यन्त दयार्द्र-हृदया हैं। अत्यधिक ज्ञान होनेसे उनमें अत्यधिक करुणा होना भी स्वाभाविक है। अन्य सम्पत्तियाँ देनेसे वे उतनी मात्रामें ह्रसित होती हैं किंतु शारदाकी सम्पत्ति देनेसे वह नित्य अभिवृद्धिको प्राप्त होती है। अतः उनकी उदारता एवं अनुकम्पा भी अपने उपासकोंपर नित्य-निरन्तर वृद्धिंगत होती जाती है। ज्ञप्तिरूपा भगवती सरस्वती अपने उपासकोंको प्राग्जन्मान्तरीय तथा भविष्यका ज्ञान कराती रहती हैं, उनका अपने भक्तोंपर अपार अनुग्रह रहता है। कुछ निदर्शन इस प्रकार है—

योगवासिष्ठके मण्डपोपाख्यानमें राजा पद्मकी पत्नी लीलाने उनकी स्वल्पकालीन आराधना की थी, इससे भगवती शारदाने प्रसन्न होकर उसे भविष्यका ज्ञान करा दिया था। जब उसके पतिका शरीर सहसा शान्त हो गया तो उसके स्मरण करते ही वे पुनः पहुँच गयीं और उसके शरीरको एक मण्डपके अन्तर्गत कमलपुष्पोंसे आवृतकर रखनेको कहा। फिर उन्होंने लीलाको थोड़ी ही उपासनासे पुनः आकाशगमनादिकी शक्ति प्रदान कर दी। अनेक लोकालोकोंके दर्शन कराये तथा पुनः उसके पतिको भी जीवित कर दिया। पुनः उन दोनोंको ब्रह्म-विद्याका उपदेश कर दिव्यज्ञानसे संयुक्त करके मोक्षको भी प्राप्त करा दिया । योगवासिष्ठमें यह कथा विस्तारसे प्रतिपादित है। इसी प्रकार उनके विशेष अनुग्रहके दूसरे भी कई उदाहरण हैं।

पुराणोंमें सत्यव्रत नामके ऋषिके मुखसे जो सर्वथा गूँगे थे, केवल 'ऐं'-'ऐं' सहसा उच्चरित हो जानेके कारण उन्हें समस्त शास्त्रोंका सहसा ज्ञान हो गया और आध्यात्मिक दिव्यज्ञानके द्वारा आत्मदर्शन भी प्राप्त हो गया। स्वाभाविक जिज्ञासासूचक 'ऐं' पद ही भगवतीका बीजमन्त्र वाग्बीजके नामसे विख्यात है। यह भगवती शारदाका ही कृपा-प्रसाद था।

वेदोंमें सरस्वती नदीको भी वाग्देवताका रूप माना गया है। वेदोंमें अन्य नदियोंसे सरस्वती नदीके महिमामय अधिक मन्त्र मिलते हैं। इससे ऋषियोंके हृदय भगवती सरस्वतीके प्रति विशेष श्रद्धान्वित होने और सरस्वतीदेवीके द्वारा विशेष कृपा प्राप्त करनेका प्रमाण प्राप्त होता है। पुराणोंमें उनके प्रायः तीस स्थानोंपर पुण्यात्माओंके यज्ञ आदिके अवसरपर नदीरूपमें प्रकट होकर प्रवाहित होनेके अत्यन्त रमणीय उपाख्यान प्राप्त होते हैं। जब ब्रह्माजी पुष्करमें यज्ञ कर रहे थे तो ऋषियोंकी प्रार्थनापर ब्रह्मपत्नी सरस्वती नदीके रूपमें वहाँ प्रकट हुई थीं। अत्यन्त प्रभायुक्त शरीर होनेके कारण उस समय उनका नाम सुप्रभा था। नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंके द्वादशवर्षीय सत्रमें उनके ध्यान करनेपर काञ्चनाक्षी रूपमें प्रकट हुईं। गया नगरीमें जब महाराज गय यज्ञानुष्ठान कर रहे थे, तब वहाँ उनके ध्यान करनेपर सरस्वती नदीके रूपमें प्रकट हुईं। प्रयागकी सरस्वती तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही हैं। इसी प्रकार मनोरमा, सुरेणु, ओघवती तथा विमलोदका आदि नामोंसे वे उत्तरकोशल, कुरुक्षेत्र, पुण्यमय हिमालय पर्वत आदि अनेक स्थानोंपर कृपापरवश होकर प्राणियोंको पवित्र करनेके लिये नदीके रूपमें प्रवाहित हुई हैं।

इस प्रकार वे प्रायः पवित्र जलके रूपसे बाह्यशुद्धि एवं शुद्धविद्या और ज्ञानशक्तिके रूपमें अन्तःकरणको प्रक्षालित कर साधकको निर्मल कर ब्रह्मसम्पन्नताकी योग्यता प्रदान करनेके लिये सभी प्रकार बद्धपरिकर और प्रयत्नशील रहती हैं।

वाग्देवी भगवती सरस्वतीकी उपासना

वेदों तथा आगम-ग्रन्थोंमें सरस्वतीकी उपासनासे सम्बन्धित अनेक मन्त्र, यन्त्र, स्तोत्र, पटल एवं पद्धतियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें सरस्वती-रहस्योपनिषद्, प्रपञ्चसार, शारदातिलक आदि ग्रन्थ विशेष महत्त्वके हैं। चरित्र-ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठ, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, बृहद्धर्मपुराण आदि उल्लेख्य हैं। महर्षि वाल्मीकि, व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शौनक आदिके इनकी साधना-उपासनासे कृतार्थता प्राप्त होनेकी कथाएँ प्राप्त होती हैं। महर्षि विश्वामित्रपर कृपाकर इन्होंने अनेक शास्त्रोंके ज्ञानके साथ-साथ उन्हें गायत्री-रूपमें दर्शन दिया तथा गायत्री-मन्त्रका ऋषित्व प्राप्त कराया। महर्षि वाल्मीकिपर अनुग्रहकर रामायण-रचना करनेकी शक्ति प्रदान की। महर्षि व्यासको वेदोंके निर्माण तथा पुराण, महाभारत आदिके निर्माण करनेकी शक्ति प्रदान करनेकी कथा बृहद्धर्म-पुराणमें स्पष्टरूपसे प्राप्त होती है। महर्षि व्यासके स्वल्प आराधनाके बाद प्रकट होकर ये उनसे कहती हैं कि 'व्यास! तुम मेरी प्रेरणासे रचित वाल्मीकिके रामायणको पढ़ो, वह मेरी शक्तिके कारण सभी काव्योंका सनातन बीज बन गया है। उसमें रामचरित्रके रूपमें मैं साक्षात् मूर्तिमती शक्तिके रूपमें

प्रतिष्ठित हूँ—

पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम्।
यत्र रामचरितं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्॥

(बृहद्धर्म० १।३०।४७)

आगमोंमें इनके कई मन्त्र निर्दिष्ट हैं। जिनमें दस अक्षरोंका यह मन्त्र—**'ऐं वाग्वादिनि वद वद स्वाहा'** सर्वार्थसिद्धिप्रद तथा विशेषकर सर्वविद्याप्रदायक कहा गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें प्रदिष्ट उनका एक मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।'

सरस्वतीके उपासकोंके लिये आगमोंमें कुछ विशेष नियम भी निर्दिष्ट हैं, जिनका पालन आवश्यक होता है और इससे भगवती शारदा विशेष प्रसन्न होती हैं। उनमेसें कुछ मुख्य नियम इस प्रकार हैं—

वेद, पुराण, रामायण, गीता आदि सद्ग्रन्थोंका आदर करना चाहिये और उन्हें देवीका स्वरूप मानते हुए पवित्र स्थानपर रहना चाहिये, अपवित्र स्थानपर नहीं रखना चाहिये। अपवित्र अवस्थामें स्पर्श नहीं करना चाहिये तथा पृथ्वीपर अनादरसे नहीं फेंकना चाहिये, ऊँचे काष्ठफलक आदिपर ही रखना चाहिये। यथासम्भव शुद्धबुद्धिसे ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिये एवं सात्त्विक आहारका प्रयोग करना चाहिये। ब्राह्मी एवं वच ओषधियोंका यथासम्भव प्रयोग करना चाहिये तथा नियमतः प्रातःकाल उठकर सरस्वतीका ध्यान करना चाहिये। निषिद्ध तिथियों तथा ग्रहण आदिके समय वेदादि सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। यथासम्भव भगवती शारदाकी श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन, श्वेत वस्त्रालङ्कारोंसे पूजा करनी चाहिये और व्रत-अनुष्ठान आदिमें स्वयं भी श्वेत चन्दन, वस्त्र-माल्य आदि धारण करने चाहिये।

देवी सरस्वती उपासककी एक बारकी स्वल्प उपासनासे भी उसकी अत्यन्त सुपरिचिता हो जाती हैं और अपनी माताकी तरह सदा उसकी रक्षा करती हैं और ज्ञान प्रदानकर उसे अपना लेती हैं तथा मोक्षतक पहुँचा देती हैं। अतः कल्याणकामीको शारदाम्बाकी उपासना अवश्य करनी चाहिये।

गौका आधिदैविक स्वरूप

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि॥

(अथर्व० १०।१०।१,४)

'हे अवध्य गौ! उत्पन्न होते समय तथा उत्पत्तिके पश्चात् भी मेरा तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे शरीर, रोम और खुरोंको भी मेरा प्रणाम है। जिसने द्युलोक, भूमण्डल एवं समुद्रको भी सुरक्षित रखा है, उस सहस्र धाराओंसे दुग्ध देनवाली गौको लक्ष्यमें रखकर हम इस स्तोत्रका पाठ करते हैं।'

गौ मानव-संस्कृतिकी रीढ़ है। **'मातरः सर्वभूतानां गावः'** के अनुसार गाय पृथ्वीके समस्त प्राणियोंकी जननी है। आर्य-संस्कृतिमें पनपे शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी सम्प्रदायोंमें उपासना एवं कर्मकाण्डसम्बन्धी विभिन्नताएँ भले ही रही हों, पर गौके प्रति प्रायः वे सभी आदर-भाव रखते हैं।

महाभारतके आश्वमेधिक पर्वमें गौके सर्वदेवमय रूपकी तथ्यता प्रतिपादित है—

शृंगमध्ये तथा ब्रह्मा ललाटे गोर्वृषध्वजः।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ॥
साध्या देवाः स्थिताः कक्षे ग्रीवायां पार्वती स्थिता।
पृष्ठे च नक्षत्रगणाः ककुद्देशे नभःस्थलम्॥
अष्टैश्वर्यमयी लक्ष्मीर्गोमये वसते सदा।
चत्वारः सागराः पूर्णास्तस्या एव पयोधराः॥

'गौके शृंगोंके मध्यमें ब्रह्मा, ललाटमें भगवान् शङ्कर, ों कर्णोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य तथा ३में साध्य देवता, ग्रीवामें पार्वती, पीठपर नक्षत्रगण, कुद्में आकाश, गोबरमें अष्टैश्वर्यसम्पन्न लक्ष्मी तथा स्तनोंमें ूसे परिपूर्ण चारों समुद्र निवास करते हैं।'

ब्राह्मणको नमस्कार करने और गुरुके पूजनसे जो फल ाप्त होता है, वही फल गौ माताके स्पर्शसे प्राप्त हो जाता है। ्र संसारमें सारे हव्य, कव्य, गव्य, घृत, दधि, दुग्ध, वेष्यान्न, मिष्टान्न और श्रेष्ठ ओषधियाँ गव्य पदार्थोंपर ही ाश्रित हैं। वाल्मीकीय रामायणके अनुसार जहाँ गौ होती है, हाँ सभी प्रकारकी समृद्धि, धन-धान्य एवं सृष्टातिसृष्ट भोज्य दार्थोंका प्राचुर्य होता है—

विद्यते गोषु सम्भाव्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ज्ञातितो भयम्॥

इस श्लोकके प्रथम चरणमें गायपर ही तीनों लोकोंको ्रतिष्ठित स्वीकार किया गया है। अतः गाय प्रत्यक्ष देवता है। ्समें सर्वांशतः सत्त्वगुण विद्यमान रहते हैं। शास्त्रोंमें गायके गोबर-जैसे तत्त्वमें महालक्ष्मीका निवास बतलाया गया है। गोमयसे लिप्त हो जानेपर पृथ्वी पवित्र यज्ञभूमि बन जाती है और वहाँसे सारे भूत-प्रेत एवं अन्य तामसिक प्राणी-पदार्थ अपसृत हो जाते हैं। गोमूत्रमें गङ्गाजीका निवास होता है। जो पाप किसी प्रायश्चित्तसे दूर नहीं होते, वे गोमूत्रसहित अन्य चार गव्य पदार्थोंसे युक्त होकर पञ्चगव्य-रूपमें अस्थि, मन, प्राण और आत्मामें स्थित पाप-समूहोंके प्रक्षालनकी क्षमता रखते हैं। पञ्चगव्य-प्राशनके मन्त्रमें भी कहा गया है—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य सर्वं नश्यतु तत्क्षणात्॥

(अथर्ववेद)

गौको साक्षात् देवस्वरूप मानकर उसकी रक्षा न केवल प्रत्येक मानवमात्रका कर्तव्य है वरन् धर्म भी है। यह एक ऐसी प्रत्यक्ष देवता है जो अनन्तकालसे सम्प्रदाय और मत-मतान्तरोंकी शृङ्खलासे ऊपर उठकर मानवमात्रको अपना कृपा-प्रसाद प्रदान करती आ रही है। समृद्धिकी कामनावाले विश्वके हर मानवके लिये गौ आराध्यके सदृश प्रणम्य एवं पूजनीय है।

गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः॥
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

'गौएँ लक्ष्मीका मूल हैं, उनमें पापका लेश भी नहीं है। गौएँ ही मानवको अन्न एवं देवताओंको श्रेष्ठ हविष्य प्रदान करती हैं। गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक श्वास लेता है, उस स्थानकी न केवल शोभा-वृद्धि होती है वरन् वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है।'

तीर्थ-स्थानोंमें जाकर स्नान-दानसे, ब्राह्मण-भोजनसे, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, तप, दान, आराधन, पृथ्वी-परिक्रमा, वेद-स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण करनेपर जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य बुद्धिमान् मानव गौको हरी घास देकर प्राप्त कर लेता है—

तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यत्तु सर्ववाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥

एक बार भगवान् शङ्करद्वारा ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ऋषियोंका कुछ अपराध हो गया। ऋषियोंने उन्हें घोर शाप दिया। जिसके भयसे त्रस्त होकर शङ्कर गो-लोक पहुँचे और माता सुरभिका स्तवन करने लगे—

सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमो नमः॥
या त्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि च भूतलम्।
देवानां च तथा संघान् पितृणामपि वै गणान्॥
सर्वैर्ज्ञाता रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनी।
त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसमन्वितम्॥

त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा।
आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा॥
त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा।
ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः॥
कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी।
त्वया विरहितं किंचिन्नास्ति त्रिभुवनेष्वपि॥
सर्वदेवमयि त्वं हि सर्वभूतविवृद्धिदा।
सर्वलोकहिता नित्यं मम देहहिता भव॥
प्रणतस्तव देवेशि पूजये त्वां सदानघे।
स्तौमि विश्वार्तिहन्त्रीं त्वां प्रसन्ना वरदा भव॥

(स्कन्द०, नागर० अध्याय २५८)

जिन-जिन महाशक्तियोंको धरतीकी धारणा-शक्ति बताया गया है, उनमें भी गौ प्रमुख है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

शास्त्रोंमें कहा गया है—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां सर्वदेवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥

'जो सब प्रकारकी भूति, लक्ष्मी है, जो सभी देवताओंमें विद्यमान है, वह गौ-रूपिणी देवी हमारे पापोंको दूर करे। जो सभी प्रकारसे पवित्र हैं, उन लक्ष्मीरूपिणी सुरभि कामधेनुकी संतान तथा ब्रह्मपुत्री गौओंको मेरा बार-बार नमस्कार है।'

वेदोंमें पृथ्वीको भी गो-रूपा माना गया है। गायोंके गोबरसे शुद्ध खाद एवं उससे उत्पन्न वृषभोंकी सहायतासे श्रेष्ठ एवं सात्त्विक कृषि तथा यज्ञीय हविष्यके योग्य श्रेष्ठ सोलह प्रकारके अन्नोंकी उत्पत्ति होती है। इससे प्राणिमात्र एवं देवगण तृप्त होते हैं। गायोंकी विशेष महत्तापर स्कन्दपुराण, महाभारत आदिमें एक अत्यन्त रोचक उपाख्यान उपलब्ध होता है। इसके अनुसार एक बार महर्षि च्यवन गङ्गाजलमें निमग्न होकर तपश्चर्यामें रत थे। दैवयोगसे अन्य मछलियोंके साथ मछेरोंके द्वारा फेंके हुए जालमें वे भी बँध गये। जब मछेरोंने मछलियोंके साथ महर्षिको देखा तो अत्यन्त भयभीत हो गये। तब महर्षिने उनसे कहा—'तुम लोगोंका कोई दोष नहीं है। मछलियोंके बेचनेसे तुम्हारी जीविका ठीकसे नहीं चलती, अतः मछलियोंके साथ मुझे भी बेच दो।'

यह सुनकर मछेरे घबड़ाये। फिर किसी प्रकार साहस बटोरकर वे ऋषिको बेचनेके लिये तैयार हुए। तब राजा सुदासको महर्षिको खरीदनेके लिये बुलाया गया। महर्षि च्यवनने राजासे कहा—'राजन्! मेरा उचित मूल्य देकर इन मछेरोंको संतुष्ट करो। फिर मैं यथास्थान चला जाऊँगा।' राजाने पहले एक ग्राम और बादमें हजार ग्राम महर्षिके मूल्यके रूपमें निश्चित किया। इसपर महर्षि बहुत बिगड़े और बोले—'क्या यही मेरा उचित मूल्य है?' अन्तमें राजाने डरते हुए अपना सम्पूर्ण राज्य महर्षिके मूल्य-रूपमें अर्पित करनेकी बात कही, पर महर्षिने इसे भी स्वीकार नहीं किया। वे क्रुद्ध होकर कहने लगे—'क्या मैं महर्षि नहीं हूँ? मेरा इतना ही मूल्य हो सकता है। सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान और तपस्याओंका फल मेरे हृदयमें स्थित है। तुम अपने सभी मन्त्रियों, पुरोहितों एवं जनपदके विशिष्ट विद्वानोंके साथ समुचित मन्त्रणा करके मेरा उचित मूल्य निर्धारित करो।' राजाने वैसा ही किया। बहुत विचार करनेके उपरान्त ब्राह्मणोंने—

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति॥

—इस शास्त्र-वचनके आधारपर महनीया गौ देवीको ही महर्षिके तुल्य मूल्य निश्चित किया। इसपर महर्षि च्यवन प्रसन्न होकर बोले—'यही मेरा समुचित मूल्य है।' अन्तमें राजाने एक गाय देकर महर्षिको जालसे मुक्त कराया। इस प्रकार महर्षि जो स्वयंको सम्पूर्ण पृथ्वीकी सम्पत्तियोंसे अधिक मान रहे थे, वे एक गायके मूल्यको सम्पूर्ण पृथ्वी एवं अपनेसे भी अधिक स्वीकार करके धन्य हो गये। इस प्रकारकी अनेकों कथाएँ धर्मग्रन्थोंमें भरी पड़ी हैं, जिनसे गायके सर्वातिशायी माहात्म्यका परिचय मिलता है। अतः सभी प्राणियोंको विश्वदेवी गौ माताको नमन करते हुए यही कामना करनी चाहिये—

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

'गाय सदा मेरे आगे, पीछे और चारों ओर रहे। मैं गायोंके बीचहीमें निवास करूँ।'

(स्वा० ओं० आ०)

गङ्गावतरण

गङ्गा नदीका देवत्व

(डॉ० श्रीरामसुन्दरजी दीक्षित)

आर्य-संस्कृतिमें गायत्री, गीता एवं गायकी जो प्रतिष्ठा है, वह समन्वित देवनदी गङ्गामें विद्यमान है। महाभारतमें इसे त्रिपथगामिनी, वाल्मीकीय रामायणमें त्रिपथगा और रघुवंश तथा कुमारसम्भवमें एवं 'शाकुन्तल' नाटकमें त्रिस्रोता कहा गया है—

गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च।
त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता॥

(वा० रा० १।४४।६)

यह त्रिपथगा स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोकको पवित्र करती हुई प्रवाहित होती है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें गङ्गाको त्रैलोक्यव्यापिनी कहा गया है—

'ब्रह्मन् विष्णुपदी गङ्गा त्रैलोक्यं व्याप्य तिष्ठति'

शिवस्वरोदयमें इडा नाडीको गङ्गा कहा गया है। पुराणोंमें गङ्गाको 'लोकमाता' कहा गया है—

पापबुद्धिं परित्यज्य गङ्गायां लोकमातरि।
स्नानं कुरुत हे लोका यदि सद्गतिमिच्छथ॥

(पद्मपु० ७।९।५७)

तैत्तिरीय आरण्यक तथा कात्यायन श्रौतसूत्रमें गङ्गाका उल्लेख हुआ है। वेदोत्तरकालमें गङ्गाको अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। पुराणोंमें गङ्गाके प्रति अतिशय पूज्यभाव प्रकट किया गया है।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार गङ्गाकी उत्पत्ति हिमालय-पत्नी मैनासे बतायी गयी है। गङ्गा उमासे ज्येष्ठ थीं। पूर्वजोंके उद्धारके लिये भगीरथने अत्यधिक कठोर तप किया। ब्रह्माजी भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न हो गये। गङ्गाको धारण करनेके लिये भगीरथने अपने तपसे भगवान् शंकरको संतुष्ट किया। एक वर्षतक गङ्गा उनकी ही जटाओंमें भटकती रहीं। अन्तमें प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने एक जटासे गङ्गा-धाराको छोड़ा। देवनदी गङ्गा भगीरथके पीछे-पीछे कपिल मुनिके आश्रममें गयीं एवं उन्होंने सगरपुत्रोंका उद्धार किया।

देवीभागवतपुराणानुसार भगवान् विष्णुकी तीन पत्नियाँ थीं। कलहके कारण परस्परके शापवश गङ्गा और सरस्वतीको नदीरूपमें पृथ्वीपर आना पड़ा। गङ्गा अवतरित होकर पतितपावनी बनीं—

गङ्गे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी॥
भारतं भारती शापात् पापदाहाय पापिनाम्।
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते॥

(देवीभा० ९।६।४९-५०)

सत्यवादी नृप हरिश्चन्द्रके वंशमें आठवीं पीढ़ीमें सगरका जन्म हुआ था। काशीमें गङ्गाके घाटपर (वर्तमान हरिश्चन्द्र-घाटपर) राजा हरिश्चन्द्रने चाण्डालका दास्यकर्म किया था। कुछ लोगोंका तर्क है कि पूर्वसे ही विद्यमान गङ्गाको भगीरथ क्यों लाये? अस्तु, स्कन्दपुराणके श्लोकोंसे उपर्युक्त शङ्काका समाधान हो जाता है—

त्रयाणामपि लोकानां हिताय महते नृपः।
समानैषीत्ततो गङ्गां यत्रासीन्मणिकर्णिका॥
प्रागेव मुक्तिः संसिद्धा गङ्गासङ्गात् ततोऽधिका।
यदा प्रभृति सा गङ्गा मणिकर्ण्यां समागता॥

(स्कन्द०, काशी० ३०।३,९)

'तीनों लोकोंके महान् कल्याणके लिये राजा भगीरथ गङ्गाको पृथ्वीपर लाये, जहाँ सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली मणिकर्णिका पहलेसे ही विराजमान थी। अब गङ्गाके आ जानेसे उसका प्रभाव और अधिक बढ़ गया।' इस प्रकार स्कन्दपुराणके श्लोकोंसे सुस्पष्ट है कि वाराणसीमें गङ्गा-आगमनके पूर्व मणिकर्णिका अवस्थित थी।

श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धानुसार राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी नापनेके समय भगवान् वामनका बायाँ चरण ब्रह्माण्डके ऊपर चला गया। वहाँ ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्के पादप्रच्छालनके बाद उनके कमण्डलुमें जो जलधारा स्थित थी, वह उनके चरणस्पर्शसे पवित्र होकर ध्रुवलोकमें गिरी और चार भागोंमें विभक्त हो गयी—१-सीता, २-अलकनन्दा, ३-चक्षु, ४-भद्रा। सीता ब्रह्मलोकसे चलकर गन्धमादनके शिखरोंपर गिरती हुई पूर्व दिशामें चली गयी। अलकनन्दा अनेक पर्वत-शिखरोंको लाँघती हुई हेमकूटसे गिरती हुई दक्षिणमें भारतवर्ष चली आयी। चक्षु नदी माल्यवान् शिखरसे गिरकर केतुमालवर्षके मध्यसे होकर पश्चिममें चली गयी। भद्रा नदी

गिरि-शिखरोंसे गिरकर उत्तरकुरुवर्षके मध्यसे होकर उत्तर दिशामें चली गयी।

विन्ध्यगिरिके उत्तरभागमें इन्हें भागीरथी गङ्गा कहते हैं और दक्षिण भागमें गौतमी गङ्गा (गोदावरी) कहते हैं।

भारतीय साहित्यमें गङ्गावतरणकी दो तिथियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रथम वैशाख शुक्ल पक्षकी तृतीया (आदित्यपुराण) और द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ल पक्षकी हस्तनक्षत्रसहित बुधवारसे युक्त दशमी तिथि (स्कन्दपुराण)। द्वितीय तिथि गङ्गा-दशहराकी है, जो राजा भगीरथसे सम्बद्ध प्रतीत होती है।

गङ्गाजल शारीरिक एवं मानसिक क्लेशोंका पूर्णतः विनाशक है। अस्तु, पुराणोंमें स्थान-स्थानपर इसकी महिमाका उल्लेख हुआ है। गङ्गा वस्तुतः लोकमाता एवं विश्वपावनी है। गङ्गाके आश्रयसे मानव भौतिक उन्नति नहीं अपितु मानवताको उपकृत करने-हेतु आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकता है। अविलम्ब सद्गतिके इच्छुक सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये गङ्गा ही एक ऐसा तीर्थ है, जिनके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है। गङ्गाके नामस्मरणसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शन-मात्रसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूईका ढेर क्षणभरमें भस्म हो जाता है, वैसे ही गङ्गा-जलके स्पर्श होनेपर मनुष्यके सारे पाप एक क्षणमें ही दग्ध हो जाते हैं। जो सैकड़ों योजन दूरसे भी गङ्गा-गङ्गा कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुलोकको प्राप्त होता है। शुकदेवजी कहते हैं—

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम्।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः॥
संनिवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम्॥

(श्रीमद्भा० ९।९।१४-१५)

गङ्गाजीकी महिमाके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, क्योंकि गङ्गाजी भगवान्‌के उन चरण-कमलोंसे निकली हैं, जिनका श्रद्धाके साथ चिन्तन करके बड़े-बड़े मुनि निर्मल हो जाते हैं और तीनों गुणोंके कठिन बन्धनको काटकर तुरंत भगवत्स्वरूप बन जाते हैं। फिर गङ्गाजी संसारका बन्धन काट दें, इसमें कौन बड़ी बात है।

जीवनमें अनुस्यूत देवता

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

प्रत्येक प्राणी देवताओंका ऋणी है, क्योंकि इसके शरीरका एक-एक कण देवताओंके अंशसे उत्पन्न एवं अनुप्राणित है। इस पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंका शरीर पार्थिव कहा जाता है। इसलिये कि यह पृथ्वीतत्त्वसे बना है। यद्यपि इस शरीरका निर्माण केवल पृथ्वीसे ही नहीं, अपितु जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन तत्त्वोंसे भी हुआ है। परंतु इसमें पृथ्वी-तत्त्वकी प्रचुरता होनेसे इसे पार्थिव कहा जाता है।

शरीरको उत्पन्न करनेवाली माता कही जाती है, इस दृष्टिसे पृथ्वी हमारी माता है। ऋग्वेदने अनेक स्थलोंमें पृथ्वी-देवीको माता कहकर हमें सीख दी है कि हम इन्हें माता ही मानें। वास्तविकता तो यह है कि जन्म देनेवाली हमारी माताका शरीर भी पृथ्वीदेवीकी ही देन है। अतः पृथ्वीदेवी माताओंकी भी माता हैं।

हरिवंशपुराणमें वर्णन आया है कि पृथ्वीदेवी शरीरको केवल जन्म देकर हमसे अलग नहीं हो जातीं, अपितु रहनेके लिये आधार बनती हैं, वस्त्रके लिये रूई उपजाती हैं, भरण-पोषणके लिये अन्न उगाती हैं और जो भी हम कामना करते हैं, उसकी पूर्ति करती रहती हैं।

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा॥
चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठायोनिरेव च।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी॥

(हरिवंशपु०, हरिवंशपर्व ६।४३-४४)

पृथ्वीदेवीका महाराज पृथुसे विशिष्ट सम्बन्ध माना गया है। युगादिसे क्रमागत सुख-सुभिक्ष आदिका ध्रुववंशमें उत्पन्न दुराचारी राजा वेनके द्वारा यज्ञ, हवन, तप, स्वाध्याय एवं देवाराधनका परिवर्जन करा दिये जानेके कारण दीर्घकालीन अनावृष्टिसे प्रजा दुर्भिक्षग्रस्त हो गयी और सभी प्रकारके बीज भूमिमें अन्तर्हित हो गये। ऋषियोंने हुंकारद्वारा वेनको दग्ध कर दिया और उसके भस्मका मन्थनकर पृथुको बाहर निकाल लिया तथा उन्हें राज्य-पदपर अभिषिक्त कर दिया। पृथुने

योग-बलसे भूमिमें संनिविष्ट बीजराशिको निकालनेके लिये भूमिका ध्यान किया। पृथ्वी गोरूप धारणकर उनसे भयभीत होकर भागीं। पृथुने जब पीछा किया तो गोरूपधारिणी पृथ्वीने उन्हें शान्त होकर बीजों-ओषधियोंको दुहनेका निर्देश दिया और सारे बीज, अन्न तथा ओषधियाँ पुनः प्रकट हुईं। पुनः विधिपूर्वक कृषि और शस्य-ओषधियोंके उत्पन्न होनेसे सुभिक्ष हो गया। उसी समयसे भूमिका नाम पृथ्वी चल पड़ा और उसी अवसरपर अन्य देवता, ऋषियों, मुनियों, दानवों, गन्धर्वों आदिने अपनी इष्ट वस्तुएँ पृथ्वीदेवीसे प्राप्त कीं। पृथूपदिष्ट मार्गसे पृथ्वीदेवीके द्वारा अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्तकर विश्वके सभी जीव-जन्तु विशेषरूपसे प्रसन्न हो गये।

यह विषय अथर्वणसंहिता तथा भागवत, पद्म, मत्स्यादि पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। इन्हीं सब उपकारोंके बदले शास्त्रोंमें प्रतिदिन प्रातः उठकर पृथ्वीदेवीकी वन्दना करनेका विधान है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

पृथ्वीदेवी चेतन हैं

पृथ्वीदेवीके स्थूलरूपको ही हम देख पाते हैं, किंतु ब्रह्मलोकमें एक दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। पृथ्वीदेवीने सखियोंद्वारा लाये गये फूलोंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दिया और विनयावनत होकर प्रणाम किया। भगवान्‌ने पूछा—'देवि! तुमको तो मैं सुस्थिर और स्वस्थ करके यहाँ आया हूँ, फिर तुम किस कामसे यहाँ आयी हो?'

पृथ्वीदेवीने कहा—'मैं मुख्य-मुख्य पर्वतोंका विस्तृत परिचय आपसे चाहती हूँ।' भगवान्‌ने प्रसन्नताके साथ उन पर्वतादिका परिचय दिया। इस तरह पृथ्वीदेवीने हमारे भौगोलिक ज्ञानको बढ़ाया।

पृथ्वीदेवीकी इस परोपकारमयी प्रवृत्ति तथा उनके सविनय प्रेमको देखकर वाराहदेव बहुत प्रसन्न हुए। वे पृथ्वीदेवीको साथ लेकर गरुड़पर चढ़कर वेंकटगिरि गये। वहाँ स्वामिपुष्करिणीके तटपर हमलोगोंके कल्याणके लिये भूदेवी तथा श्रीदेवीके साथ आज भी निवास करते हैं (स्कन्दपु० वैष्णव, भूमिवाराहखण्ड)।

इतिहास-पुराणोंमें भगवती सीता एवं मंगलग्रहको पृथ्वीदेवीकी ही संतान कहा गया है।

वाराहपुराण, धरणीदेवी या पृथ्वीदेवी तथा वाराह-भगवान्‌के प्रश्नोत्तररूपमें निर्मित हुआ है, जिसमें अन्य पुराणोंके

कुकृत्यपर उतारू हो गये। अच्छा हुआ, मेरे धनका सदुपयोग हो गया। फिर भगवान्‌के कीर्तनमें लग गये।

कुँआ सूखा था। इसलिये वे उसमें डूबे नहीं, भगवान्‌की कृपासे उन्हें चोट भी नहीं लगी। इधरसे ही राजा लक्ष्मणसेनकी सवारी जा रही थी। लोगोंने कुएँसे कीर्तनकी आवाज सुनी। राजाको जब पता चला कि कुएँमें विपत्तिका मारा कोई पुरुष है, तब उन्होंने तत्क्षण उन्हें निकलवाया और उनकी चिकित्साके लिये देश ले आये। राजा पारखी थे। संतकी ऊँची स्थिति समझनेमें उन्हें देर न लगी, वे जयदेवके भक्त बन गये। राजाने उन दुष्टोंका परिचय पूछा, किंतु संतने बात फेर दी। वे नहीं चाहते थे कि लूटनेवालोंको कोई कष्ट दिया जाय।

संत जयदेव जितने भगवान्‌के प्रेमी थे, उतने ही वे विद्वान् भी थे। राजा लक्ष्मणसेनने चुने हुए पाँच विद्वानोंकी एक सभा बनायी, जिसे पञ्चरत्न कहा जाता था। पाँचों विद्वानोंने इनकी विद्वत्ताको सम्मानित किया और संत जयदेवको अपना अध्यक्ष बना लिया। पीछे सर्वाध्यक्षताका भार भी इनको वहन करना पड़ा।

एक बार राजाने संत जयदेवकी अध्यक्षतामें याचकोंको देनेके लिये विशेष आयोजन किया। वे दुष्टजन भी यहाँ माँगने आये। डाकुओंने जब संत जयदेवको अध्यक्ष-पदपर आसीन देखा तो वे डर गये। सोचने लगे कि कहीं यह हमें पकड़वा न लें। इतनेमें संतकी दृष्टि उनपर पड़ी, उन्हें देखकर उनपर दया आ गयी। वे सोचने लगे कि इनकी गरीबीने इन्हें दीन-हीन बना दिया है। इन्हें इतना दिलवा दिया जाय कि ये अपने कुकृत्यसे हट जायँ। उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! ये हमारे परिचित हैं, इनको अधिक धन दिया जाय।' इसके पूर्व संत जयदेव राजाके कहनेपर भी राजासे कभी कुछ याचना नहीं करते थे। इस बार उनके मुखसे इस तरहकी बात सुनकर राजाको बहुत प्रसन्नता हुई। राजाने डाकुओंको अपने पास बुलवाया और उनकी माँगसे अधिक सामग्री उन्हें दी। सामग्री पहुँचानेके लिये अपने नौकर भी दिये।

इस विशेष सम्मानसे सबको बड़ा कुतूहल हो रहा था। सोच रहे थे कि इन व्यक्तियोंका आखिर जयदेवसे क्या सम्बन्ध है। राजाके कर्मचारी भी इस कुतूहलसे ग्रस्त थे। रास्तेमें उन्होंने डाकुओंसे पूछा—'तुमलोगोंका संत जयदेवसे कौन-सा सम्बन्ध है?'

दुष्ट अपनी दुष्टता कभी नहीं छोड़ता, अपितु उसकी मात्रा बढ़ती ही जाती है। वे बोले—'तुम्हारा यह अध्यक्ष और हम एक राजाके यहाँ एक साथ काम करते थे। वहाँ इसने बहुत ही घृणित पाप किया था। जिसको हम अपने मुखसे कहना नहीं चाहते। राजाने इसे मृत्युदण्ड दिया था, किंतु हमलोगोंको दया आ गयी और इसकी जान बचा दी। केवल हाथ-पैर काटकर राजाको इसकी मौतका प्रमाण दे दिया। इसी उपकारसे उपकृत होकर इसने हमारे साथ यह व्यवहार किया है। दूसरे हमको इसलिये सम्मानित किया है कि हम इसके पापका कहीं भेद न खोल दें।'

बस, ज्यों ही उन दुष्टोंका वाक्य समाप्त हुआ, त्यों ही धरती फटी और सब-के-सब उसमें समा गये।

यह विलक्षण घटना देख सब हक्के-बक्के रह गये। सब सामान राजाके पास लौटा ले गये और यह घटना कह सुनायी। इसे सुनकर राजा विस्मयाभिभूत हो गये। दौड़कर संतके पास गये और एक साँसमें ही सब घटना कह सुनायी, सुनते ही संत रो पड़े। उन दुष्टोंकी उस दुर्गतिसे संतको असीम कष्ट हो रहा था। संतको रोते देख राजाका आश्चर्य द्विगुणित हो गया। थोड़ी ही देर बाद सब लोगोंने देखा—संत जयदेवके दोनों कटे हाथ और पैर फिरसे निकलकर ज्यों-के-त्यों हो गये। यह है पृथ्वीदेवीका भक्तोंपर अनुग्रह।

जल देवता

वेदोंमें जलको एक महनीय देवता माना गया है। ऋग्वेदके चार स्वतन्त्र सूक्तोंमें जलकी देवता-रूपमें स्तुति की गयी है। इसके अतिरिक्त कई प्रकीर्ण सूक्तोंके कतिपय मन्त्रोंमें इनकी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। साथ ही वाजसनेयी, काठक, कपिल, काण्व, तैत्तिरीय, मैत्रायणीय आदि संहिताओंके अतिरिक्त अथर्वणसंहितामें भी जल देवतासे सम्बन्धित अनेक सूक्त तथा मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। आचार्य यास्कने जल देवताको मध्यमस्थानीय देवता मानकर प्रसिद्ध अप्-सूक्तकी विस्तृत व्याख्या की है। विशेष रूपसे वहाँ **'आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥'** (ऋक्० १०९।१, यजु० ३६।१४ आदि) यह मन्त्र उद्धृत

किया गया है।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंके शरीरमें जलका पर्याप्त भाग है और उसे पान किये बिना बहुत देरतक कोई जीवित नहीं रह सकता तथा मनुष्यकी पवित्रता-सम्बन्धी शौच, स्नान, मार्जन, प्रक्षालन, देवपूजन आदि सभी क्रियाएँ एकमात्र जलपर ही आलम्बित रहती हैं। संध्यादि कर्मोंमें स्नान, मार्जन, अघमर्षण आदिसे सूर्यार्घ्यपर्यन्त जलका ही मुख्य प्रयोग होता है। कृषि, अन्नपाक और वस्त्रादि प्रक्षालनकी क्रियाओंमें जल देवता ही मुख्य कारण हैं। नदी आदि तीर्थों तथा भूमिके भी अन्तर्भागमें जल ही व्याप्त है। इसीलिये सम्पूर्ण प्राणी जलाधारपर ही अधिष्ठित रहते हैं और मत्स्यादि जलचरोंके लिये तो जल देवता ही सब कुछ हैं। इसलिये इन्हें जगत्का जीवन कहा गया है और कोई भी प्राणी इनके उपकारोंका बदला नहीं चुका सकता। अतः जल देवताकी जितनी भी पूजा-उपासना की जाय अल्प ही है।

जलका एक नाम जीवन है। यह प्राणीके जीवनका आधार है। इस जलके अधिपति देवता वरुण हैं। वेदने आदेश दिया है कि हम प्रतिदिन जलाधिपति वरुणकी नित्य प्रार्थना इस प्रकार किया करें—'हे दिव्य जलाधिपति वरुणदेव! आप हमारे स्नान और पानमें सुख प्रदान करते रहें। यह जल हमारे रोगोंका शमन करे और सारी भीतियोंको भी भगाता रहे' (यजु० ३६।१२)। ऋग्वेदमें भी आया है कि वरुण देवताके गृह जलीय होते हैं (१।२५।१०)। विश्वकर्माने इनकी सभा जलके भीतर रहकर ही बनायी थी (महा०, सभा० ९।२)। वहाँ प्रह्लाद, बलि आदि दैत्य, वासुकि आदि नाग उनकी उपासनामें रत रहते हैं (महा०,सभा० ९।१७)। जलके साथ वरुण देवताके इस घनिष्ठ सम्बन्धको सूचित करनेके लिये शास्त्रने इनके अम्बुद, अम्बुपति, अपाम्पति, जलाधिपति, यादसाम्भर्ता आदि बहुत-से नाम बताये हैं। हरिवंश, भविष्यपर्व (६१।२४) में वर्णन आता है कि उपयुक्त अवसर आनेपर इनकी सहायताके लिये चारों ओरसे समुद्र इनको घेरकर खड़े हो जाते हैं। नाग, कच्छप और मत्स्य भी इनको चारों ओरसे घेरकर अपनी कर्तव्यनिष्ठा निभाते हैं। निरुक्तने ऋग्वेदकी एक ऋचा उद्धृत कर यह बताया है कि वरुण देवता मेघमण्डलके जलमें विचरण करते हैं और आवश्यकता पड़नेपर पृथ्वीपर जल बरसाते हैं। ये निरन्तर मनुष्योंके कल्याणमें लगे रहते हैं।

अग्नि देवता

पृथ्वी और जलकी भाँति अग्निदेव भी प्राणियोंके जीवनके लिये अतीव उपयोगी हैं। अग्निसे देहमें गर्मी बनी रहती है। यदि देहमें यह ताप न रह जाय तो प्राणी तुरंत मर जाय। अग्निदेव मानव-शरीरमें सात रूपसे काम करते हैं। इन्हें सप्त धात्वग्नियाँ कहते हैं। इनमेंसे एक भोजन पचाकर रस बनाती है, दूसरी रससे रक्त, तीसरी रक्तसे मांस, चौथी मांससे मेद, पाँचवीं मेदसे अस्थि और छठी अस्थिसे मज्जा और सातवीं मज्जासे रेतका निर्माण करती है। अग्नि यह नाम ही सूचित करता है कि प्राणियोंकी भलाईके काममें ये देवता निरन्तर अपनेको आगे रखते हैं (निरुक्त ७।४)। अग्निदेवसे ही विश्वको ऋग्वेद प्राप्त हुआ है (मनुस्मृति १।२३)। अग्निपुराणके ये ही वक्ता हैं और इन्हींके नामपर उसका नाम 'अग्निपुराण' प्रसिद्ध हुआ।

निरुक्तके अनुसार मध्यमस्थानीय विद्युत् और उत्तमस्थानीय सूर्य—इन दोनोंको भी 'अग्नि' शब्दसे ग्रहण करना चाहिये। कारण, जलरूपी ईंधनसे बढ़ना और लकड़ीसे शान्त होना यह विद्युदग्निका स्वभाव है—'**उदकेनेवेन्धनः शरीरोपशमनः**' (निरुक्त)। इसके विपरीत पार्थिव अग्निका स्वभाव है कि यह पानीसे शान्त हो जाती है और काष्ठसे उद्दीप्त होती है—'**उदकोपशमनः शरीरदीप्तिः**' (निरुक्त ७।४)।

इस प्रकार अग्निदेव पार्थिवाग्नि, विद्युदग्नि और सूर्य—इन तीन रूपोंमें विभक्त होकर प्राणियोंका कल्याण करते हैं।

अग्निदेवकी उपासकोंपर कृपा

अग्निदेवकी कृपाके पुराणादिमें कई दृष्टान्त प्राप्त होते हैं, उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

महर्षि वेदके शिष्य उत्तङ्ककी शिक्षा पूर्ण हो चुकी थी। उन्होंने जब आग्रहपूर्वक अपने आचार्य दम्पतिसे गुरुदक्षिणाके लिये निवेदन किया, तो गुरुपत्नीने महाराज पौष्यकी पत्नीके दिव्य कुण्डल माँगे। उत्तङ्कने महाराजके पास पहुँचकर उनकी आज्ञासे महारानीसे कुण्डल प्राप्त कर लिये। रानीने उन्हें कुण्डल देकर सतर्क किया कि आप इन कुण्डलोंकी तक्षक नागसे रक्षा करेंगे, क्योंकि वह सदा इन्हें हड़पनेकी ताकमें

लगा रहता है। इसपर उत्तङ्कने कहा कि वह ऐसा नहीं कर सकेगा। यह कहकर वे जब कुण्डल लेकर चले तब तक्षक नाग क्षपणक-वेशमें उनके पीछे-पीछे चला। मार्गमें जब उत्तङ्क कुण्डलोंको जलाशयके किनारे रखकर संध्या आदि कर्ममें प्रवृत्त हुए तो तक्षक कुण्डल लेकर पातालमें प्रविष्ट हो गया। इन्द्रकी सहायतासे उत्तङ्क भी तक्षकके पीछे-पीछे उसके बिलको वज्रद्वारा खोदते हुए पातालमें पहुँच गये। पर वहाँ उन्हें तक्षकका कोई पता नहीं चला। नागलोककी दिव्य छटा देखकर उनकी बुद्धि भी प्रतिहत हो गयी। किंतु वहाँ भी देवताओंने उनकी सहायता की। पुरुषवेशमें स्थित इन्द्रने उत्तङ्कसे अपने पार्श्वमें स्थित अश्वरूपमें उपस्थित अग्निदेवके शरीरमें फूँक मारनेके लिये कहा। ऐसा करते ही सम्पूर्ण लोक धुएँसे भर गया और सभी नाग झुलसने लगे। इसपर तत्काल तक्षकने कुण्डल लाकर उत्तङ्कको समर्पित कर दिये। इस अवधिमें गुरुपत्नीके पुण्यकव्रतका समय भी प्राप्त हो गया था। उत्तङ्क दुःखित होकर यह सोचने लगा कि यदि कुण्डलोंको लेकर गुरुपत्नीके पास न पहुँच सकूँ तो सब व्यर्थ ही होगा। वह यह सोच ही रहा था कि इसी बीच कृपालु इन्द्रने कहा—'इसी अश्वपर सवार हो जाओ, यह तुम्हें तत्काल गुरुगृहमें पहुँचा देगा।' वस्तुतः वह अश्व अग्निदेव ही थे और उत्तङ्कके आरूढ़ होते ही उन्हें लेकर यथासमय उनके गुरुके पास पहुँच गये और उत्तङ्कने कुण्डल प्रदानकर गुरुपत्नीका पुण्यक-व्रत पूरा करा दिया। बादमें पूछनेपर महर्षि वेदने सारे रहस्योंको प्रकट करते हुए बताया कि पाताललोकमें सहायता करनेवाले सभी लोग देवता थे और इन्द्र हमारे विशेष मित्र हैं तथा उनके सहयोगी अश्ववेशमें उपस्थित अग्निदेवने वहाँ धुँआ भरकर तथा यहाँ पहुँचाकर विशेष सहायता की है।

उपकोसलको ब्रह्मविद्याका उपदेश

उपकोसल ब्रह्मचर्य ग्रहणकर गुरुकुलमें रह रहे थे। उनके गुरुका नाम सत्यकाम जाबाल था। उपकोसलने गुरुकी अग्नियोंकी तत्परतासे सेवा की थी। बारह वर्ष बीत चुके थे। एक दिन गुरुने सब छात्रोंका समावर्तन-संस्कार कर दिया, किंतु उपकोसलका नहीं। इससे वह बहुत व्यथित हुआ। वह सोच रहा था कि आखिर एक उसका ही संस्कार क्यों नहीं किया गया। गुरुपत्नी उपकोसलकी मनोभावना समझ गयीं, उन्होंने अपने पतिदेवसे कहा—'उपकोसलने अग्नियोंकी सेवा अच्छी तरहसे की है, इसे भी उपदेश दे दीजिये। नहीं तो हो सकता है कि अग्नियाँ इसकी ओरसे आपकी निन्दा कर बैठें।' गुरुदेवने पत्नीकी बात अनसुनी कर दी और कहीं चले गये। यह देख उपकोसलकी मानसिक चिन्ता अधिक बढ़ गयी। उसने अनशन करनेका विचार किया। इतनेमें गुरुपत्नीने कहा—'उपकोसल भोजन कर लो, समय हो गया है।' उपकोसलने कहा—'माताजी! मैं मनोव्यथासे व्यथित हूँ, भोजन नहीं करूँगा।' उपकोसल चिन्तित मुद्रामें बैठ गया। अग्निदेवसे अपने उपासककी यह दुर्गति नहीं देखी गयी। तीनों अग्नियाँ वहाँ एकत्रित हो गयीं और बोलीं—'उपकोसलने हमारी अच्छी सेवा की है और यह आज बहुत दुःखी है। हम सभी इसे उपदेश कर दें।' ऐसा कहकर अग्नियोंने प्राण और उसके आश्रयभूत आकाशतत्त्वका उपदेश किया और तीनोंने अपना-अपना स्वरूप भी बतलाया। फिर प्यारसे कहा—'वत्स उपकोसल! हमने अपनी विद्या और आत्मविद्या तुझसे कही है, अब तुम्हारे गुरुदेव इसके फलकी प्राप्तिका मार्ग बतलायेंगे।' अग्निदेवकी शिक्षा समाप्त होते ही गुरुदेव वहाँ आ पहुँचे। उपकोसलका मुखमण्डल ब्रह्मविद्याके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा था। गुरुदेवने पूछा—'सौम्य उपकोसल! तेरा यह मुख तो ब्रह्मवादीकी भाँति चमक रहा है। तुझे किसने उपदेश किया है?' उपकोसलने अग्निदेवकी कृपाकी बात कह सुनायी। गुरुदेव अपनी सफलतापर बहुत प्रसन्न थे। वे तो यही चाहते थे कि उपकोसलपर अग्निदेवकी कृपा बरस पड़े। इसीलिये उन्होंने उसे रोक रखा था। उपकोसलकी बुद्धिमें जब यह बात आयी, तो वह कृतज्ञ होकर गुरुके चरणोंपर लोट गया।

वायु देवता

गङ्गा, सरस्वती एवं भूदेवी आदिके समान वायु देवताके भी दो रूप हैं। एक रूपसे वे अपने लोकमें मूर्तिमान् रूपसे निवास करते हैं तथा वायव्य कोणके अधिष्ठाता देवताके रूपमें अष्टलोकपालों या दिक्पालोंमें परिगणित होते हैं। दूसरे रूपमें वे प्रवहमान वायु और उनचास मरुतोंके रूपमें विभक्त हैं और आवह-प्रवह आदि सप्त वातस्कन्धोंके रूपमें अन्तरिक्षसे लेकर पातालतक तथा सभी प्राणिवर्गोंके बाह्याभ्यन्तरमें व्याप्त होते

हैं। प्राणियोंके शरीरमें वायुदेव प्राण, अपान, नाग , धनंजय आदि दस रूपोंमें स्थित रहते हैं और उनके जीवन तथा कार्यकलापोंका संचालन करते हैं। इनका हमारे जीवनसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थोंमें '**वायुर्वै पवमानः**' आदि कहकर अनेक प्रकारसे उनकी प्रशंसा की गयी है। पुराणोंमें इनके चरित्र उपलब्ध होते हैं। वायुपुराण इन्हींके द्वारा कथित है। ये महाबली हनुमान् तथा भीम आदिके पितारूपमें भी वर्णित हुए हैं।

यही वायुदेव हमारे शरीरमें पाँच प्राणोंके रूपमें विभक्त होकर पाँच कार्य करते हैं—

(क) प्राणरूप वायुदेव नासिकासे लेकर नाभिस्थान-पर्यन्त रहकर २१६०० श्वास-प्रश्वासकी क्रिया करते हैं। (ऐत० उप० २ । ४) उदानवायु तो मृत्युके समय ऊर्ध्वगतिवाला होता है, परंतु प्राणवायु सदा ऊर्ध्वगति बना रहता है।

(ख) नाभिसे नीचे गुदापर्यन्त अपानवायु रहता है। मल-मूत्रका त्याग कराना इसका काम है (ऐत० उप० २ । ४) ।

(ग) सारे शरीरमें व्याप्त होकर समस्त अङ्गोंको गति प्रदान करना व्यान-वायुका काम है (ऐत० उप० २ । ४)) ।

(घ) ऊपरकी ओर जानेवाली नाडीसे गति करना उदानवायुका काम है। यह मरते समय पुण्यात्माको पुण्यलोकमें, पापात्माको नरकलोकमें और दोनोंके फलस्वरूप मनुष्यलोकमें पहुँचाता है (प्रश्न० उप० ३ । ३ । ७) । वमन कराना भी इसीका काम है।

(ङ) समानवायुका स्थान नाभि है। यहीं रहकर यह अन्नादिका समीकरण कर यथोचित अंशको उन-उन स्थानोंपर पहुँचाता रहता है। इसी बातको हरिवंशपुराणने सूत्ररूपसे कहा है—

'प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा'

(भविष्यपर्व ६२ । १२)

सात्वत-धर्मका उपदेश

नित्य जप-पूजन, हवन एवं देवपूजन आदि कार्य सम्पन्न कर शुद्ध भोजन करनेवाले आचारनिष्ठ ऋषि, मुनि, महात्मा, विघसाशी कहे जाते हैं। महाभारत, शान्तिपर्व (अ० १४८) में एक आख्यान आता है, जिसमें ऐसे ऋषियोंको वायु देवताने प्रत्यक्ष होकर सात्वत-धर्मका उपदेश दिया था। ऋषियोंने सुन रखा था कि विधिपूर्वक स्वाध्याय करने या संन्यासधर्मके पालन करनेसे जो गति मिलती है, उससे भी उत्तम गति भगवान्के अनन्य भक्तोंको प्राप्त होती है। किंतु उन्हें सात्वत-धर्मका ठीक-ठीक ज्ञान न था। वे इस धर्मको तत्त्वतः जानना चाहते थे। परंतु इसका कोई उपदेशक उन्हें नहीं मिला, जिससे वे बहुत हतोत्साह और उदास रहने लगे। उनके मानसिक कष्टकी कोई सीमा नहीं थी। वायु देवताने उनपर कृपा की। वायुदेवने विघसाशियोंको भगवान्के प्रति ऐकान्तिक भावकी महिमा बतायी, जिससे वे कृतार्थ हो गये।

धर्मके रहस्यका उपदेश

वायुदेवके द्वारा ही हमें यजुर्वेदकी प्राप्ति हुई है (मनुस्मृति १ । २३) । इनके द्वारा ही हमें वायुपुराण भी प्राप्त हुआ है। इन्होंने संसारके हितके लिये धर्मका रहस्य बतलाया है—

प्रतिदिन अग्निहोत्र, श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराये तथा पितरोंके लिये दीपदान एवं तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य श्रद्धा और एकाग्रताके साथ वर्षाऋतुके चार महीनोंतक पितरोंको तिलाञ्जलि देता है, उसे सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है (महा०, अनु० १२८ । २-३) ।

आकाश देवता

आकाशकी गणना पञ्चभूतोंमें सबसे प्रथम है। आकाशके अधिष्ठातृ-देवताकी पूजा पञ्चलोकपालोंमें की जाती है। गृह-निर्माणके समय गृहके बाहरी भागमें आकाश देवताकी पूजा होती है (मत्स्य० २५३ । २४) । भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियोंमें इनकी गणना है (मत्स्य० २६५ । ३९) ।

वेदान्त-ग्रन्थोंमें प्रायः सर्वत्र घटाकाश, मठाकाश और महाकाश—ये आकाशके तीन भेद बतलाये गये हैं। अध्यात्मरामायणके रामहृदयमें भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीसे भी आकाशके तीन भेद बतलाये हैं। वहाँ उन्होंने जलाशयके दृष्टान्तसे इन तीन भेदोंको स्पष्टरूपसे समझाते हुए कहा है कि एक आकाशके महाकाश, जलावच्छिन्न आकाश तथा प्रतिबिम्बाकाश—ये तीन भेद हैं। महाकाश सर्वत्र व्याप्त रहता है, जलावच्छिन्न आकाश जलाशयमें ही सम्मिलित रहता है तथा प्रतिबिम्बाकाश जलमें प्रतिबिम्बरूपसे अवभासित होता है—

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान्।

जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः॥

(अध्या० रा० १।१।४५)

वायुकी उत्पत्तिका कारणभूत आकाश सप्तस्वरूपमय नाद ब्रह्मसे व्याप्त है। जहाँ आकाश एक रूपसे मूर्तिमान् देवताके रूपमें अपने उपासकोंका कल्याण करते हैं, वहीं दूसरे रूपसे सर्वत्र व्याप्त रहकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा समस्त प्राणियोंके जीवनके प्राणरूपमें स्थित रहते हैं। अतः ये परमात्माके ही रूप हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जिस तरह प्राणियोंके शरीर, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप पाँच देवताओंसे व्याप्त हैं, उसी तरह हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण भी देवताओंसे अधिष्ठित हैं। श्रोत्रके देवता दिक्, त्वक्‌के वायु, चक्षुके सूर्य, जिह्वाके वरुण तथा घ्राणके अश्विनीकुमार देवता हैं। अन्तःकरणकी चार वृत्तियाँ होती हैं। उनमें मनके देवता चन्द्रमा, बुद्धिके ब्रह्मा, अहंकारके शंकर और चित्तके महत्तत्त्व देवता माने जाते हैं। इस प्रकार हमारे जीवनके कण-कणमें देवता अनुस्यूत हैं।

वेदोंमें प्रधान देवता—अग्निदेव

अग्निदेवता यज्ञके प्रधान अङ्ग हैं। ये सर्वत्र प्रकाश करनेवाले तथा उष्मा प्रदान करनेवाले एवं सभी पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाले हैं। यज्ञोंमें जो होता आदि ऋत्विज् होते हैं, वे अग्निदेवता ही हैं। सभी रत्न अग्निसे उत्पन्न होते हैं और सभी रत्नोंको यही धारण करते हैं। शाक्पूणि नामक निरुक्ताचार्यने सर्वप्रथम अग्नि शब्दकी तीन धातुओंसे निरुक्ति की थी। इसकी धातु **'अञ्ज'** है जो प्रकाश-अर्थमें है। दूसरी धातु **'दह'** है जो जलानेके अर्थमें है। जिसमें 'ह' का गकार हो गया है। तीसरी धातु है **'नी'** जिसका अर्थ है नयन करना-नेतृत्व करना। इस प्रकार अग्निदेवता दाह, प्रकाश और यज्ञके भागोंको नयन करनेके कारण ही अपने अनुगुण नामवाले प्रसिद्ध हैं।

वेदोंमें सर्वप्रथम ऋग्वेदका नाम आता है और उसमें प्रथम शब्द 'अग्नि' ही प्राप्त होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विश्व-साहित्यका प्रथम शब्द 'अग्नि' ही है। ऐतरेय आदि ब्राह्मणग्रन्थोंमें यह बार-बार कहा गया है कि देवताओंमें प्रथम स्थान अग्निका है और विष्णुका स्थान सबसे अन्तमें या चरम एवं परम है—

'अग्निर्वै देवानां प्रथमः विष्णुः परमः।'

आचार्य यास्क एवं सायणाचार्य ऋग्वेदके प्रारम्भमें अग्निकी स्तुतिका कारण यह बतलाते हैं कि अग्नि ही देवताओंमें अग्रणी हैं और सबसे आगे-आगे चलते हैं, युद्धमें सेनापतिका काम करते हैं, इन्हींको आगे कर युद्ध करके देवताओंने असुरोंको परास्त कर दिया था[1]।

निरुक्तके रचयिता महर्षि यास्कके अनुसार 'अग्नि' आद्य-स्थान या पृथ्वी-स्थानके सर्वप्रथम एवं सर्वमान्य देवता हैं। इसके आगे दैवतकाण्डके सातवें अध्यायके तीसरे खण्डमें अग्निदेवताके भक्ति-साहचर्यमें उनके परिकरोंका उल्लेख करते हुए यास्कने कहा है कि अग्नि पृथ्वी-स्थानसे सम्बद्ध इस लोक तथा प्रातःसवन नामक सोम-संस्थासे सम्बद्ध है। इनका ऋतु वसन्त कहा गया है। ये गायत्री छन्द, त्रिविध स्तोम और रथन्तर सामद्वारा उपगीत किये जाते हैं। पृथ्वी-स्थानके जितने भी देवता कहे गये हैं—जैसे आप्रीगण, ग्रावाण एवं अभिषव—ये सब इनके सहचर हैं और देवताओंमें आग्नायी इनकी पत्नी हैं। पुराणोंके अनुसार इनकी पत्नी स्वाहा हैं तथा पृथ्वी एवं इलादेवी भी इनके भक्ति-साहचर्यके अन्तर्गत आती हैं। ये सभी देवता अग्निदेवताके भक्ति-साहचर्यके अन्तर्गत आते हैं। ये सब देवताओंके मुख हैं और इनमें आहुतियों एवं हविष् आदिको डालकर इनके द्वारा संवाहित होकर देवताओंके भाग उनके पास पहुँचते हैं। यही सब देवताओंके भागको पहुँचाते हैं। इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य तथा ऋतुएँ इनके साथ संस्तुत एवं प्रार्थित होते हैं और प्रायः इनके साथ सम्बद्ध रहते हैं। केवल ऋग्वेदमें अग्निके दो सौ सकल सूक्त प्राप्त होते हैं और प्रायः दो सौ और सूक्तोंमें इनकी छिटफुट स्तुतियाँ मिलती

१-अग्रणीर्भवति। अग्निर्हि देवानां सेनानीः। (ऋक् ४।१।२०, निरुक्त ७।४।१४)
अग्निना वै मुखेन देवा असुरान् निर्जघ्नुः। (ऐ० ब्रा० ६।१४)

हैं तथा अन्य देवोंके साथ भी इनकी स्तुतियाँ की गयी हैं। इसी प्रकार यजुः, साम और अथर्ववेदमें भी अनेक सूक्तों एवं ऋचाओंमें इनकी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। ऋग्वेदके प्रथम सूक्तमें अग्निकी प्रार्थना करते हुए विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दा ऋषि कहते हैं कि मैं सर्वप्रथम अग्निदेवताकी ही स्तुति करता हूँ, जो सभी यज्ञोंके पुरोहित कहे गये हैं। पुरोहित राजाका सर्वप्रधान आचार्य होता है और वह उसके समस्त अभीष्टोंको सिद्ध करता है। इसी प्रकार अग्नि देवता भी आहुतियोंको पहुँचाकर देवताओंके और देवताओंके द्वारा यजमानके सभी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करवाते हैं।[१]

अग्निको देवता इसलिये कहा गया है कि ये दान करते हैं, दीपन करते हैं और द्योतन या सर्वत्र प्रकाश करते हैं। द्युस्थान या स्वर्गलोकमें निवास करते हैं, इसलिये इन्हें देवता कहा जाता है—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा, यो देवः सा देवता।

(निरुक्त, दैवत० ७। १५)

अग्निदेवकी प्रार्थना बहुत पहले भी भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियोंने की थी और इस समय या वर्तमान समयके भी ऋषि-महर्षि अग्निदेवताकी स्तुति करते हैं। वही सभी देवताओंको हविष् प्राप्त कराते हैं। अग्निकी प्रार्थनासे यजमान धन, धान्य, पशु आदि समृद्धिको प्राप्त करता है। प्रतिदिन उसकी शक्ति, प्रतिष्ठा, आयु, पुत्र, परिवार आदिकी वृद्धि होती है (यहाँतक मधुच्छन्दाने परोक्षरूपमें अग्निकी स्तुति की)। इसके बाद जब अग्नि प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हो गये, तब मधुच्छन्दा उनकी प्रत्यक्षरूपसे स्तुति करने लगे, वे कहते हैं कि 'हे अग्निदेव! आप पूरे यज्ञकुण्डमें व्याप्त हो गये हैं और यह हविष् सभी देवताओंको तृप्त करता हुआ स्वर्ग पहुँचता है। आप पूर्वदिशासे लेकर उत्तरदिशातक चारों दिशाओंमें आहवनीय, मार्जालीय, गार्हपत्य, आग्नीध्र-रूपोंमें स्थित हैं। अब यहाँ कोई भी राक्षस या यमलोकके प्राणी बाधा देनेके लिये नहीं आ सकते। वे किसीकी हिंसा नहीं कर सकते। आप सभी हविष्य ग्रहण करनेवाले देवताओंके साथ यहाँ पधारे हुए हैं और आप भूत, भविष्य, वर्तमान सभी बातोंको जानते हैं। आपकी कीर्ति समूचे संसारमें व्याप्त है। हे अग्ने! आप यज्ञ करनेवालेको धन-धान्य, गृह, क्षेत्र, उद्यान, स्त्री-पुत्र और गौ, अश्व, महिष-महिषी, हस्ती आदि पशुओंको प्रदान कर परम कल्याण करते हैं। हमलोग यज्ञके अनुष्ठान करनेवाले अपनी बुद्धिसे आपकी स्तुति करते हैं और समय-समयपर आहुति भी देते हैं। आप हमलोगोंको उचित फल प्रदान कीजिये, जैसे पिता अपने पुत्रकी रक्षा करता हुआ सभी प्रकारका कल्याण करता है, वैसे आप भी कृपापूर्वक हमारी रक्षा करते हुए हमारे सभी श्रेयोंकी रक्षा कीजिये।

अग्निदेवका स्वरूप-निरूपण

कर्मकाण्ड-ग्रन्थोंमें तथा मूल वैदिक संहिताओंमें भी जो अग्निदेवके स्वरूपका वर्णन किया गया है, उसमें उनका रंग सर्वथा लाल या रक्त-पीत-वर्णमिश्रित बताया गया है। यास्कीय निरुक्त (१३। ७) तथा ऋग्वेदसंहिता (४। ५८। ३) के भाष्योंके अनुसार चारों वेद ही अग्निदेवके शृङ्गस्वरूप हैं और प्रातः, मध्याह्न और सायंसवनरूपी तीन सोमयज्ञके अङ्ग इनके पैर हैं। सायणके अनुसार ब्रह्मोदन एवं प्रवर्ग्य नामकी दो इष्टियाँ इनके सिर या शीर्ष-स्थानीय हैं तथा यास्कके अनुसार प्रायणीय और उदयनीय—ये इनके दो सिर हैं। गायत्री आदि सातों छन्द इनके सात हाथ हैं और मन्त्र, ब्राह्मण, सूत्र (कर्मकाण्ड) ये तीन नियमोंसे बँधे हुए हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी फलोंकी वृष्टि करते हैं। ऋग्, यजुः, साम आदि वेदोंसे मुखरित होते हैं तथा महानुभावात्मक देवता यजमानोंके द्वारा यज्ञ-विधानसे उपचर्चित एवं उपासित होते हैं[२]।

ऋग्वेदके अनुसार उनका मुख एवं पृष्ठ नवनीतसे लिप्त है[३] तथा उनके दाँत अत्यन्त चमकीले और उनकी दाढ़ी सुवर्ण-वर्णकी है[४]।

१-इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। (गीता ३। १२)

अर्थात् यज्ञोंके द्वारा प्रसन्न होकर देवतालोग यज्ञ करनेवाले मनुष्योंका सब प्रकारसे कल्याण करेंगे।

२-चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश॥ (ऋ० ४। ५८। ३)

३-नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन्। घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान्॥ (ऋ० ३। १। १८)

४-स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः। हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः॥ (ऋ० ५। ७। ७)

भगवान् अग्निदेवकी सात जिह्वाएँ बतायी गयी हैं[1]। तदनुसार रूप और गुणोंके अनुसार उन जिह्वाओंके नाम इस प्रकार हैं—१-काली, २-कराली, ३-मनोजवा, ४-सुलोहिता, ५-धूम्रवर्णा, ६-स्फुलिङ्गिनी तथा ७-विश्वरुचि।

पुराणोंके अनुसार अग्निदेवकी पत्नी स्वाहाके पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्र हुए (भागवत ४।१।६०)। इनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या उनचास है[2]। भगवान् कार्तिकेयको अग्निदेवताका भी पुत्र माना जाता है तथा पुराणोंके अनुसार स्वारोचिष नामके द्वितीय मनु भी इनके पुत्र कहे गये हैं (श्रीमद्भा० ८।१।१९)।

अग्निदेव अष्टलोकपालों तथा दस दिक्पालोंमें द्वितीय स्थानमें परिगणित हैं। ये आग्नेयकोणके अधिपति हैं। अग्नि अथवा आग्नेय नामक प्रसिद्ध महापुराणके ये ही वक्ता हैं, जिसमें मुख्यरूपसे वेदविधान, कर्मकाण्ड, धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि उपवेदोंके साथ ही धर्म, दर्शन, राजनीति एवं वेदाङ्गोंका भी विस्तारसे निरूपण हुआ है। प्रभास-क्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर इनका मुख्य तीर्थ है (भागवत ३।१।२२), जिसके समीप भगवान् कार्तिकेय, श्राद्धदेव तथा गौओंके भी तीर्थ हैं।

अग्निदेवताका बीज मन्त्र 'रं' तथा मुख्य मन्त्र **'रं वह्निचैतन्याय नमः'** है।

ध्यान एवं नमस्कार-मन्त्र

प्रपञ्चसार, शारदातिलक तथा श्रीविद्यार्णव आदि तन्त्र-ग्रन्थोंमें उनके ध्यान एवं नमस्कारके कई मन्त्र मिलते हैं, जिनका आशय प्रायः समान ही है। यहाँ शारदातिलकके कुछ ध्यान उद्धृत किये जाते हैं—

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै-
र्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः॥

(शारदाति० ५।३४)

'अग्निदेव अपनी बड़ी-बड़ी चार भुजाओंमें क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा, शक्ति एवं स्वस्तिकको धारण किये हुए हैं। इनके तीन नेत्र हैं और शिरोभागमें जटाएँ सुशोभित हैं। ये कमलके आसनपर विराजमान हैं तथा इनकी कान्ति जपा-पुष्पके समान लाल है।'

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥

(शारदाति० ५।१९)

'मैं जाज्वल्यमान अग्निदेवकी वन्दना कर रहा हूँ, जो धन-धान्यको देनेवाले हैं तथा समस्त देवताओंके हविर्भागको यथास्थान पहुँचा देते हैं। इनकी कान्ति प्रज्वलित स्वर्णकी-सी है तथा इनकी ज्वालाएँ दसों दिशाओंमें व्याप्त हैं। ये पूर्णरूपसे अपने तेजोमय रूपमें स्थित हैं।'

हरिनाम-उच्चारणका फल

विष्णुदूत कहते हैं—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः। हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।२।१४-१५)

'भगवान्‌का नाम चाहे जैसे लिया जाय, किसी बातका सङ्केत करनेके लिये, हँसी करनेके लिये, रागका अलाप पूरा करनेके लिये अथवा तिरस्कारपूर्वक ही क्यों न हो, वह सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला होता है। पतन होनेपर, गिरनेपर, कुछ टूट जानेपर, डँसे जानेपर, बाह्य या आन्तर ताप होनेपर और घायल होनेपर जो पुरुष विवशतासे ही 'हरि' यह नाम उच्चारण करता है, वह यम-यातनाके योग्य नहीं।'
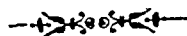
१-काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥ (मुण्डकोपनिषद् १।२।४)

२-अग्निदेवताकी वंशावली मत्स्यपुराण अ० ५१ में विस्तारसे दी गयी है।

शरीरस्थ देवता

(पं० श्रीसीतारामजी कविराज)

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् भगवान्ने जब अखिल विश्वकी रचना की, तब उन्होंने **'तत् सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्'** इस श्रुतिके अनुसार विश्वकी रचनाकर उसमें प्रवेश किया। श्रीभगवान्के प्रवेश करनेपर तत्तत् शक्तियोंके अधिष्ठाता सब देवता भी उनके साथमें आये। **'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'** के अनुसार जैसा यह विश्व बना, वैसा ही मनुष्यका शरीर भी बना। समस्त विश्वमें जितने देवता हैं, उतने ही देवता शरीरमें भी अवस्थित हैं। इस जगत्में भगवान् जैसे सर्वदेवाधिपतिके रूपमें विराजमान हैं उसी प्रकार इस शरीररूपी देवालयमें जीवात्मा सनातनदेवके रूपमें अवस्थित है। अतएव यह कहा गया—**'देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।'** इसीलिये ब्रह्माजी मनुष्यको बनाकर बड़े प्रसन्न हो गये, क्योंकि वह ब्रह्मको जान सकेगा। यह इसकी विशेष बात है।

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥

(श्रीमद्भा० ११। ९। २८)

वैसे तो भगवान्ने अपनी अचिन्त्य शक्तिसे—मायासे वृक्ष, सरीसृप (रेंगनेवाले जन्तु), पशु, पक्षी, डाँस और मछली आदि अनेकों प्रकारकी योनियाँ रचीं, परंतु उनसे उन्हें संतोष न हुआ। तब उन्होंने मनुष्य-शरीरकी सृष्टि की। यह ऐसी बुद्धिसे युक्त है जो ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है। इसकी रचना करके वे बहुत आनन्दित हुए।

इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं और उतने ही देवता भी हैं। उनमें और सब तो अप्रकट-रूपसे हैं, किंतु चौदह देवता (१० इन्द्रियोंके तथा चार अन्तःकरणके अधिष्ठाता) प्रकट-रूपमें हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१-चक्षुरिन्द्रियके देवता—चक्षुओंमें भगवान् सूर्यका निवास है और ये ही सूर्य चक्षुरिन्द्रियके अधिष्ठाता देवता हैं। इसीलिये चक्षुओंके द्वारा ही रूप-दर्शन सम्भव हो पाता है। रूपदर्शनका अधिकार चक्षुरिन्द्रियको ही है, अन्यको नहीं। नेत्र-सम्बन्धी विकृतियोंके लिये चाक्षुषोपनिषद्, सूर्योपनिषद् आदि सूर्यदेवतापरक उपासनाओंसे विशेष लाभ होता है।

२-घ्राणेन्द्रियके देवता—नासिकाके अधिष्ठाता देवता अश्विनीकुमार हैं। नासिकाके द्वारा गन्धका ज्ञान होता है। गन्ध-तत्त्वके अधिकारी देवता अश्विनीकुमार हैं। इनका नासिकामें अधिष्ठान है।

३-श्रोत्रेन्द्रियके देवता—श्रोत्र-कानके द्वारा शब्दका श्रवण होता है। इसके अधिष्ठाता दिक् देवता हैं। इससे शब्दका ज्ञान होता है।

४-जिह्वाके देवता—जिह्वामें वरुण देवताका निवास है, इससे रसका ज्ञान होता है। इसीलिये जिह्वाको रसना भी कहा जाता है।

५-त्वक्के देवता—त्वचाके द्वारा जीव स्पर्शका अनुभव करता है। इस त्वगिन्द्रियके अधिष्ठाता वायु देवता हैं, त्वचामें वायु देवताका निवास है।

६-हाथोंके देवता—ग्रहण-त्याग, बल-पराक्रम आदिसे सम्बद्ध सभी कर्म हाथोंके द्वारा सम्पन्न होते हैं, इनमें इन्द्र देवताका निवास होता है और ये ही हस्तेन्द्रियके अधिष्ठाता देवता हैं।

७-चरणोंके देवता—चरणोंके देवता श्रीविष्णु हैं, इनमें विष्णुका निवास है। इनके द्वारा धर्मकी सिद्धिके लिये तीर्थयात्रादि सेवाधर्म होते हैं।

८-वाणीके देवता—जिह्वामें दो इन्द्रियाँ हैं, एक रसना तथा दूसरी वाणी। रसनाके द्वारा आस्वादन होता है और वाणीके द्वारा सब शब्दोंका उच्चारण होता है। वाणीमें देवी सरस्वतीका निवास है, ये देवी वाणीकी अधिष्ठातृ-देवता हैं।

९-मेढ्र-उपस्थके देवता—यह गुह्येन्द्रिय है। यह आनन्दका अधिष्ठान है और इसमें प्रजापति देवताका निवास है। इससे प्रजा-संततिकी सृष्टि होती है।

१०-पायु-गुदाके देवता—इस इन्द्रियसे शरीरके मलका निःसरण होता है, जिससे शरीर शुद्ध होता है। इसमें मित्र देवताका वास है।

उपर्युक्त दस बाह्येन्द्रियाँ हैं, जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। अन्तःकरण भीतरी इन्द्रियाँ हैं। ये चार हैं—बुद्धि, अहंकार, मन और चित्त। इनका विवरण इस प्रकार है—

११-बुद्धीन्द्रियके देवता—बुद्धिके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं। इसीके द्वारा सांसारिक विषयोंका तथा सम्पूर्ण विवेक-ज्ञान होता है। यह बुद्धि जितनी निर्मल होती जाती है, उतना ही उसमें सूक्ष्म ज्ञान होता चला जाता है। गायत्री आदि मन्त्रोंमें सद्बुद्धिकी ही कामना की गयी है—**'धियो यो नः प्रचोदयात्।'** यह ब्रह्मगायत्री कहलाती है। इसीलिये गायत्रीकी विशेषरूपसे उपासना की जाती है। यही बुद्धि धीरे-धीरे निर्मल होकर ऋतम्भरा प्रज्ञा हो जाती है, फिर जब यह अतिसूक्ष्म हो जाती है तो इसीसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है—**'ज्ञायते सूक्ष्मया बुद्ध्या०।'**

१२-अहंकारके देवता—अहंतत्त्वके द्वारा अहं (मैं) का बोध होता है। यह सत्त्व, रज, तम तीन प्रकारका होता है। राजस तथा तामस अहंके द्वारा सांसारिक वस्तुओंका ज्ञान होता है और सत्त्वप्रधान अहंकारतत्त्वसे **'सोऽहं'** की भावना होती है। इस अहंके अभिमानी देवता रुद्र हैं।

१३-मनके देवता—मनका धर्म संकल्प-विकल्प है। सांसारिक और पारमार्थिक सभी अवस्थाओंमें मनका बड़ा महत्त्व है। श्रीमद्भागवतमें भिक्षुगीतमें इसका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

नायं जनो मे सुखदुःखहेतु-
र्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति
संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्॥

(११।२३।४३)

(भिक्षु कहते हैं—) मेरे सुख अथवा दुःखका कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न शरीर है और न ग्रह, कर्म एवं काल आदि ही हैं। श्रुतियाँ और महात्माजन मनको ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही सारे संसारचक्रको चला रहा है।

यह मन ही परम कारण है—**'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'** यही मन मननीय शक्ति बननेपर ईश्वरकी प्राप्ति करा देता है और इसी मनके निग्रह करनेके लिये ही व्रत, दान, नियम, यम, दम, धर्म, कथा तथा सत्कर्म अनुष्ठित होते हैं। मनका एकाग्र हो जाना ही बड़ा योग है, समाधि है। जैसा कि श्रीमद्भागवत (११।२३।४६) में कहा है—

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः॥

अर्थात् दान, अपने धर्मका पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत—इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, भगवान्‌में लग जाय। मनका समाहित हो जाना ही परम योग है।

इस प्रकार मन बड़ा प्रबल है। उसका निग्रह कर लेनेसे सांसारिक सुखोंकी उपलब्धि होती है और परतत्त्वकी भी प्राप्ति हो जाती है। मनके अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा हैं।

१४-चित्त-तत्त्वके देवता—यह चित्त ही चैतन्य है। शरीरमें जहाँ जो कुछ स्पन्दन होता है, चलन होता है—यह सब उसी चित्तके द्वारा होता है। सच्चिदानन्दमें तीन शब्द हैं, उसमेंसे सत्—निराकार निर्गुण ब्रह्मकी जो इच्छाशक्ति **(एकोऽहं बहु स्याम्)** है, वह इच्छाशक्ति चिद्विलास है। सत्‌के बाद चित् तत्त्व है, यही चैतन्यरूपा शक्ति है। इसीके द्वारा मनुष्यके शरीरमें तत्तत् शक्तियोंका आविर्भाव होता है। भगवान्‌ने ब्रह्माण्ड बनाया और वे सब देवता आकर इसमें स्थित हो गये, किंतु तब भी ब्रह्माण्डमें चेतना नहीं आयी और वह विराट् पुरुष उठा नहीं, किंतु जब चित्तके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञने चित्तके सहित हृदयमें प्रवेश किया तो विराट् पुरुष उसी समय जलसे उठकर खड़ा हो गया—

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा।
विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत॥

(श्रीमद्भा० ३।२६।७०)

इसी प्रकार समस्त विश्वको चेतन करनेवाली यह चित्-शक्ति ही है। उपासनाके द्वारा चित्त ही चित् बन जाता है। आगमोंमें विशेषकर काश्मीर-शिवाद्वैतदर्शनमें इसीका स्पन्द-रूपमें वर्णन किया गया है। इसीको चित्-शक्ति माना है। तन्त्रोंमें इसीको शक्ति-रूपमें मानकर भगवतीके नाना

रूपोंका वर्णन किया गया है। प्रकृति-शक्ति, चिच्छक्ति ही इसके देवता हैं। शक्तिकी उपासनाके द्वारा शिवका ज्ञान—ब्रह्मका ज्ञान होता है।

इस प्रकार भगवान् संसारमें सभी क्रियाओंका संचालन करनेवाले देवताओंके साथ इस शरीरमें विराजमान हैं और ये ही देवता मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-रूप चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाले हैं। श्रीमद्भागवत (२।३) में भी वर्णन आया है कि तत्तत् कामनाओंके लिये तत्तद् देवताओंकी पूजा-आराधना, उपासना करनी चाहिये। सदाचरण, सद्विचार तथा सत्कर्मोंके द्वारा इन इन्द्रियाधिष्ठातृ-देवताओंकी उपासना की जाती है। इससे मनुष्यकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और इन देवताओंके संतुष्ट हो जानेपर मनुष्यके हृदयमें विराजमान भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

यद्यपि भगवान् सदा-सर्वदा हृदयमें विराजमान हैं, परंतु वे उपासनाद्वारा ही मनुष्यकी अभिलषित कामनाओंकी पूर्ति करते हैं। जैसे गायोंके शरीरमें दूध-घी आदि पदार्थ रहते हैं, परंतु वे उससे मोटी नहीं हो जातीं, पर जब उसी शरीरस्थ दुग्धको थनोंसे दुहकर तक्रादिके रूपमें परिवर्तित कर उसे पिलाया जाय तो वे मोटी हो जाती हैं। इसी प्रकार ईश्वर हृदयस्थ होनेपर भी उपासनाके द्वारा ही कल्याण करता है।

प्रह्लादजीने भी दैत्य बालकोंको उपदेश देते हुए कहा कि असुर बालको! अपने हृदयमें ही आकाशके समान नित्य विराजमान भगवान्‌का भजन करनेमें कौन-सा विशेष परिश्रम है। वे समानरूपसे समस्त प्राणियोंके अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं और तो क्या अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर भोग-सामग्री इकट्ठी करनेके लिये भटकना—राम! राम!! कितनी मूर्खता है—

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः॥

(श्रीमद्भा० ७।७।३८)

अजपा-जप एवं षट्चक्रोंके देवता

स्वस्थ पुरुषके चौबीस घंटेमें २१,६०० श्वास-प्रश्वास होते हैं, इन श्वास-प्रश्वासोंमें **'हंसः'**, **'सोऽहं'** इस मन्त्रका निरन्तर जप स्वाभाविकरूपसे अनायास होता रहता है। इसीको अजपा-जप कहते हैं—

हक्कारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसोऽतिपरमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥

(श्रीविद्यावरिवस्या०)

मनुष्यके शरीरमें षट् चक्र हैं। उनमें सब देवताओंका निवास है। यदि प्रातःकाल सूर्योदयके समय यह अजपा-जप उन-उन देवताओंको संकल्पपूर्वक समर्पण कर दिया जाता है तो एक बड़ा यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हो जाता है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा—ये षट् चक्र हैं—

मूलाधारचक्र—यह चक्र उपस्थ और पायुके मध्यमें है। यह चार दलका पद्म है। इसके चार दलोंमें **वं शं षं सं**—ये चार वर्ण हैं। इसका कुंकुम वर्ण है। सिद्धि-बुद्धिसहित गणपति देवता यहाँ विराजमान हैं। इनको छः सौ मन्त्र समर्पित किये जाते हैं।

स्वाधिष्ठानचक्र—यह उपस्थके ऊपरी भागमें है। यह षट्दल-पद्म है और **बं भं मं यं रं लं**—ये छः अक्षर इनमें हैं। इसका वर्ण सिन्दूरके समान है। अपनी शक्ति भगवती सरस्वतीके साथ भगवान् ब्रह्मा यहाँ विराजमान हैं। इनको छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

मणिपूरचक्र—यह नाभिमें है। यह दस दलोंका पद्म है। इसमें **डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं**—ये दस अक्षर हैं। इसका वर्णन नील है। लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु इसमें विराजमान हैं। इनको छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

अनाहतचक्र—यह चक्र हृदयमें है। यह द्वादशदल-पद्म है। इसमें **कं** से **ठं** तक वर्ण हैं। इसका हेम वर्ण है। पार्वतीसहित परम शिव इसमें विराजमान रहते हैं। इसमें छः हजार जप समर्पित किया जाता है।

विशुद्धिचक्र—यह कण्ठमें है। यह षोडशदलका पद्म है। इसमें **अं** से लेकर **अः** तक सोलह स्वर पद्मके पत्रोंमें हैं। इसका शुद्ध स्फटिकके समान वर्ण है और इसमें प्राणशक्ति-सहित जीवात्मा विराजमान है। इसको एक हजार जप समर्पित होता है।

आज्ञाचक्र—यह भ्रूमध्यमें स्थित है। यह द्विदल-पद्म है। इसमें हं क्षं—ये दो वर्ण पद्मपत्रोंमें हैं। ज्ञानशक्तिसहित गुरु देवता इसमें विराजमान हैं। इन्हें एक हजार जप समर्पित किया जाता है। इसका विद्युद्वर्ण है।

इन छः चक्रोंके बाद मेरुदण्डके ऊपरी सिरेपर सहस्त्रदल-पद्मयुक्त सहस्रारचक्र है। पूरी पञ्चाशत् मातृकाके वर्णों (पचास वर्णों) को बीस बार उच्चारण करनेसे एक सहस्त्र मातृकाएँ हो जाती हैं और इसीके हजार दलोंमें ये मातृकाएँ हैं। नानावर्णयुक्त वर्णातीत पूर्णचन्द्रमण्डलयुक्त इस चक्रमें चिच्छक्तिसहित परमात्मा विराजमान हैं। इनको एक सहस्त्र जप समर्पित किया जाता है।

इस प्रकार संकल्पपूर्वक जप समर्पण करके '**हंसः**' में '**सोऽहं**' की भावना की जाती है और फिर दूसरे दिन २१,६०० जप अनायास होता है। उसे भी इसी प्रकार समर्पित किया जाता है।[१]

मन्त्रयोगके द्वारा कुण्डलिनीका जागरण करके इन षट्चक्रोंका भेदन किया जाता है। इससे तत्तत् सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। मन्त्र सिद्ध होनेपर कुण्डलिनी-शक्ति सुषुम्णामार्गसे शिरःस्थ ब्रह्मरन्ध्रमें जाती है। वहाँ शिव-शक्तिका समायोग होनेसे वहाँ स्थित चन्द्रमण्डलसे अमृतधाराएँ निकलती हैं, इससे योगीका शरीर उद्दीप्त हो [जाता] है। इसके लिये सद्गुरुके द्वारा मन्त्र प्राप्त करके उ[सका] विधिवत् पुरश्चरण करनेसे जब मन्त्र चैतन्य हो जाय तो षट्चक्र-भेदनकी क्रिया मन्त्रयोगके द्वारा सुगम हो जाती है।

सांसारिक जितनी भी सम्पत्तियाँ हैं यदि वे किसी एक मनुष्यको मिल जायँ तो भी वह अपूर्ण ही रहता है और उस[की] कई प्रकारकी इच्छाएँ बनी ही रहती हैं। जीव ब्रह्मका अंश [है।] ब्रह्ममें समस्त ज्ञान, समस्त शक्ति, समस्त विद्या, अ[नुशा]सनसत्ता आदि सब शक्तियाँ हैं। जीव भी उसीका अं[श] होनेसे उसको जब ये सब शक्तियाँ प्राप्त हों तब वह भी [ब्रह्म] हो जाता है। शास्त्रोंमें ब्रह्मसम्मिलन-योग्य शरीर बना[नेका] विधान है—'**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।**' और महायज्ञोंके द्वारा इस शरीरको ब्रह्मसम्मिलन-योग्य बन[ाया] जाता है। इसलिये मनुष्य-शरीरमें स्थित जो देवता हैं, उन[की] उपासना की जाय तो शीघ्र ही शरीर शुद्ध, पवित्र और ब्र[ह्म]*सम्मिलन-योग्य हो जाता है। इसीलिये कहा गया है*—'[यह] शरीर देवालय है और इसमें स्थित जीवरूप भगवान्के स[ाथ] अनेक देवता विराजमान रहते हैं'—

'**देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।**'

माता, पिता, अतिथि एवं आचार्यमें देवत्वकी अवधारणा

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीका एकादश अनुवाक सर्वसामान्यके कल्याणकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका है। समावर्तन-कालमें वेदाध्ययनके पश्चात् दीक्षान्त प्रवचन करते हुए आचार्य शिष्यको उपदेश देते हैं—'**देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।**' (तैत्ति० उप० १। ११)

देव और पितृ-कार्यमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। माता, पिता, आचार्य और अतिथि देवताओंके समान उपासना करने योग्य हैं।

जहाँ देवालयोंमें मन्त्रोंद्वारा प्राणप्रतिष्ठित श्रीविग्रहोंकी उपासना और पूजा-अर्चासे अभीष्ट फल प्राप्त होता है, वहीं हमारे दैनिक जीवनके अभिन्न अङ्ग-स्वरूप चलती-फिरती अ[ौर] जीती-जागती इन देव-प्रतिमाओंकी सेवा - शुश्रूषा ए[वं] उपासना तत्काल अभीष्ट फलदायिनी होती है। इनका अनुग्र[ह] तथा आशीर्वाद प्रत्यक्ष ही उपकारक होता है।

मातृदेवो भव

यह निर्विवाद सत्य है कि पुत्रोंके लिये माता-पिता साक्षात् देवता हैं—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(मनु० २। २२७)

१-इसकी समर्पण-विधि श्रीविद्यारत्नाकर आदि ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे वर्णित है।

'मनुष्यकी उत्पत्ति एवं पालन-पोषणमें माता-पिता जो कष्ट सहते हैं उनका सैकड़ों वर्षोंमें भी बदला नहीं चुकाया जा सकता।' जहाँ संतानका माता-पिताके प्रति श्रद्धावनत होना परम आवश्यक है, वहीं माताका उपदेश एवं कर्तव्य भी कैसा प्रणम्य, उदात्त और उच्च हो सकता है, यह हमें वाल्मीकीय रामायणमें देखनेको मिलता है।

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके माता-पिताकी आज्ञा-पालनार्थ वन-यात्राके समय वल्कल वस्त्र धारण करनेपर लक्ष्मणने भी राजकुमारोचित वस्त्राभूषणोंका परित्यागकर तत्काल वल्कल-वस्त्रोंको धारणकर अपनी माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम किया। माताने पुत्रको वनगमन-हेतु संनद्ध देखकर न तो शोक या विलाप ही किया और न विषादकी रेखाएँ ही उनके मुखमण्डलपर उभरीं, वरन् उन्होंने अपने पुत्रका मस्तक सूँघकर कहा—'बेटा !सुखपूर्वक प्रस्थान करो, तुम सदा यही ध्यान रखना कि श्रीराम ही तुम्हारे पितृस्थानीय महाराज दशरथके तुल्य हैं, और मेरे स्थानपर जनकनन्दिनी सीता ही तुम्हारी उपासनीया माता और दण्डक वन ही तुम्हारे लिये अयोध्याके समान सुखद निवासभूमि है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

(वा० रा० २।४०।९)

मातृ-पितृ-भक्तोंमें गणपतिदेवका नाम सर्वप्रथम उल्लेख्य है। एक बार भगवान् शङ्करने अपने पुत्रोंसे कहा कि जो द्रुतगतिसे समग्र पृथ्वीकी परिक्रमाकर मेरे पास प्रथम पहुँच जायगा, उसीका विवाह पहले होगा। अन्य कोई प्रतिद्वन्द्विता रखी जाती तो निश्चय ही गणेश उत्तीर्ण होनेके प्रति आशावान् होते, परंतु द्रुतगतिसे दौड़ना लम्बोदरके लिये कठिन कार्य था। विनायक खड़े-खड़े सोच रहे थे और शरजन्मा महाबली कार्तिकेय मयूरपर तीव्र वेगसे प्रस्थान कर चुके थे। अचानक अगाध बुद्धिसम्पन्न गणनायकके मस्तिष्कमें एक विचार आया और सामने आसनपर बैठे माता-पिताकी दौड़कर सात बार प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर खड़े होकर कहने लगे—'अब मेरे विवाहमें विलम्ब क्या है ?'

माता-पिताने हँसकर कहा—'बेटा ! पहले पृथ्वीकी परिक्रमा तो कर आ, कुमार तो चला गया, तू भी जा और उससे पहले लौट आ, फिर तेरा विवाह पहले कर देंगे।'

गणेश बोले—'वेदों और शास्त्रोंमें ऐसे वचन मिलते हैं कि जो पुत्र माता-पिताकी पूजा-प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। मैंने आप दोनोंकी प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं। अब मेरी दृष्टिमें कुछ करना शेष नहीं रह गया।' शास्त्रोंमें कहा भी गया है कि **'भूमेर्गरीयसी माता स्वर्गादुच्चतरः पिता।'** अर्थात् माता पृथ्वीसे भी अधिक और पिता स्वर्गसे भी अधिक महान् हैं।

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥

(मनु० २।२३०)

'वे (माता, पिता और आचार्य) ही तीनों (भूः, भुवः, स्वः) लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम) हैं, वे ही तीनों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) हैं और वे ही तीनों अग्नि (गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि) हैं।

माताको देवतुल्य माननेवाले ध्रुव, पाण्डव-जैसे अनेक आदर्श और मातृ-पितृ-भक्त श्रवण तथा पंढरी-जैसे जाज्वल्यमान नक्षत्रोंसे भारतीय संस्कृति आलोकित है।

महिमामें दस उपाध्यायोंसे आचार्य, सौ आचार्योंसे पिता और हजार पिताओंसे माता अधिक मानी गयी है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनु० २।१४५)

महाभारतके मार्कण्डेयसमाख्यापर्वमें मातृ-पितृ-भक्त धर्मव्याधका एक आख्यान आता है, जो इस प्रकार है—

कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मणको अपनी तपस्याका अहंकार हो गया था। एक बार जब वह किसी वृक्षके नीचे खड़ा था तो बगुलेने उसके सिरपर बीट कर दिया। उससे वह क्रुद्ध हो गया और उसने बगुलेको ज्यों ही क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखा तो वह बगुला जलकर भस्म हो गया। इससे उसका अहंकार और बढ़ गया। तत्पश्चात् वह भिक्षाहेतु एक गाँवमें पहुँचा। वहाँ एक गृहस्थके यहाँ ज्यों ही भिक्षाकी आवाज लगायी तो एक पतिव्रता स्त्रीने उससे 'ब्राह्मण देवता ! मैं अभी आती हूँ'—यह कहकर भीतर चली गयी और जब कुछ देरके

बाद निकली तो क्रुद्ध कौशिक ब्राह्मणने उसपर भी तेज दृष्टि डाली, तब वह कहने लगी—'विप्रवर ! मैं पतिके आ जानेके कारण उनकी सेवामें लग गयी थी, इसी कारण आनेमें मुझे विलम्ब हो गया, आप मुझे क्षमा करें।' इसपर भी कौशिक शान्त न हुए और अपनी तपःशक्तिके माहात्म्यका वर्णन करते हुए उसे भला-बुरा कहते रहे। वह कहने लगी कि 'मैं कोई बगुला नहीं हूँ। स्त्रीके लिये पतिसेवा ही परम धर्म है, उसीसे मैं सब कुछ जानती हूँ, आपको उस बगुलेके जलने तथा धर्मके रहस्यको भी जाननेके लिये मिथिलामें धर्मव्याधके पास जाना चाहिये। मुझे समय नहीं है कि मैं आपसे अधिक बात करूँ, किंतु धर्मव्याध आपको समझा देंगे।'

पतिव्रताके इस आश्चर्ययुक्त कथनको सुनकर जब कौशिक मिथिलामें धर्मव्याधके पास पहुँचा, तब उसके कर्मको देखकर उसे कुछ घृणा हुई, पर धर्मव्याधने पतिव्रताके मिलनेसे लेकर बगुलेके जलनेतककी सारी बातें उसे बता दीं। यह सब देख-सुनकर कौशिकको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने धर्मके मूल रहस्यको जानना चाहा, जिसके कारण धर्मव्याधको ऐसी सिद्धि प्राप्त हुई थी कि वह अप्रत्यक्ष एवं व्यवहित वस्तुओंको भी प्रत्यक्षकी भाँति देख सकता था।

उसके जिज्ञासा करनेपर धर्मव्याधने कहा कि माता-पिता ही मेरे प्रत्यक्ष देवता हैं, जिनकी सेवा-शुश्रूषाके कारण ही मुझे यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। ये ही मेरे देवता हैं। जो कुछ देवताओंके लिये करना चाहिये, वह मैं इन्हीं दोनोंके लिये करता हूँ। आइये, मैं आपको उन देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन कराता हूँ।

पिता माता च भगवन्नेतौ मद्दैवतं परम्।
यद्दैवतेभ्यः कर्तव्यं तदेताभ्यां करोम्यहम्॥

(महाभा०, वनपर्व २१४। १८)

पितृदेवो भव

विश्वजित् यज्ञमें वाजश्रवाके पुत्र गौतम (वाजश्रवस्) ने सम्पूर्ण धन दानमें दे दिया। गौतम-पुत्र कुमार नचिकेताने जब दक्षिणामें ब्राह्मणोंको बूढ़ी असमर्थ गौएँ ले जाते देखा तो आस्तिक्यबुद्धि वह अपने पिताके हितार्थ पूछ बैठा—'पिताजी ! आप मुझे किस ऋत्विज्को दक्षिणार्थ देंगे ?' पिताने प्रथम तो इसे बालककी नासमझी जानकर अनसुना कर दिया, परंतु जब तीसरी बार नचिकेताने पुनः पूछा—'**कस्मै दास्यसीति**'— आप मुझे किसे देंगे ?' तब पिताने क्रुद्ध होक कहा—'**मृत्यवे त्वा ददामीति**'—मैं तुझे यमको दूँगा।'

बालकने अपनी सहज बुद्धिसे सोचा—'यमका कौन-सा विशिष्ट कार्य है, जो आज पिताजी मेरेद्वारा सम्पादित करा चाहते हैं और वह यमलोक जा पहुँचा। यमराज बाल नचिकेताके बुद्धि-कौशलसे बहुत प्रभावित हुए और उन्हों उससे तीन वर माँगनेके लिये कहा। नचिकेताने प्रथम वर रूपमें यही माँगा कि—

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।

(कठो० १। १। १०

'हे मृत्यो ! मेरे पिता मुझपर क्रोधरहित हों तथा आपके द्वारा लौटा देनेपर मुझे पूर्ववत् पहचान कर वार्तालाप करें, यह प्रथम वर दीजिये।'

यह नचिकेताकी विचित्र पितृ-भक्ति थी, वह उनकी आज्ञासे यमपुरीतक जानेको उद्यत हो गये और वहाँ पहुँचकर अपने पिताकी प्रसन्नताकी याचना की और दुर्लभ आत्म-ज्ञान प्राप्तकर लौटा। इस प्रकार माता-पिताकी कटु प्रतीत होनेवाली आज्ञा भी पालन करनेपर कल्याणकारिणी ही सिद्ध होती है।

वनवासमें रामके वनगमनके क्लेशसे दुःखी होकर लक्ष्मणने महारानी कैकेयी और महाराज दशरथके लिये कुछ कटु वचन भी कह डाले थे; किंतु आत्मवान् श्रीराम तनिक भी पितृभक्तिसे विचलित नहीं हुए और उन्हें स्नेहसे समझाते हुए उन्होंने कहा—

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः
क्रोधात् प्रहर्षादथवापि कामात्।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं
कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः॥

(वा० रा० २। २१। ५९)

'लक्ष्मण ! महाराज हमारे गुरु, राजा और पिता होनेके साथ ही सम्माननीय वृद्ध महानुभाव हैं। वे काम, क्रोध या हर्षसे प्रेरित होकर जिस कार्यके लिये आज्ञा दें, उसका पालन करना हमारा परम धर्म है। क्रूर, हीन आचरणवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो पिताकी आज्ञाको धर्म समझकर पालन न करता हो'।

मर्यादापुरुषोत्तम राम इसके पूर्व मातासे भी स्पष्ट कह देते हैं—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥

(वा० रा० २। २१। ३०)

'माँ! मैं तुम्हारे चरणोंमें वन्दन कर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ, पर मुझमें पिताकी आज्ञा उल्लङ्घन करनेकी शक्ति नहीं है, अतः वनको ही जाना चाहता हूँ।'

'पितृदेवो भव' के प्रमाण-स्वरूप कण्डु मुनि, सगरपुत्र, परशुराम एवं देवव्रत भीष्म आदि भी अनेक उदाहरण हैं।

महाभारतके आरणेयपर्वान्तर्गत युधिष्ठिर-यक्ष-संवादमें भी **'किं स्विदुच्चतरं हि खात्'** अर्थात् आकाशसे ऊँचा क्या है? इसका प्रत्युत्तर देते हुए धर्मराज कहते हैं—**'खात् पितोच्चतरस्तथा'** अर्थात् पिता आकाशसे भी ऊँचा है।

स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र एवं बलराम कहते हैं—'यदि कोई मनुष्य एक सौ वर्षतक भी माता-पिताकी सेवा करता रहे तब भी वह उनके उपकारसे उऋण नहीं हो सकता।

न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा॥

(श्रीमद्भा० १०। ४५। ५)

आचार्यदेवो भव

विद्यारूपी नौकाके द्वारा अविद्या और उसके कार्यसे पार कर देनेके कारण ही आचार्यको बारम्बार नमस्कार किया गया है—**'ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः।'** (प्रश्नोप० ६। ८)।

जो समस्त विद्याओंके जन्मदाता हैं, वे जगद्गुरु श्रीकृष्ण भी आचार्यप्रतिष्ठाको सर्वोपरि मानकर काश्यपगोत्रीय सांदीपनिके आचार्यत्वमें गुरुकुलमें अध्ययन करते हैं तथा आचार्य भी अपने इष्टदेवकी भाँति पूज्य हैं। इस आदर्शको अपने व्यवहारद्वारा स्वयं जीवनमें चरितार्थ करते हैं—

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम्।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ॥

(श्रीमद्भा० १०। ४५। ३२)

गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये इस आदर्शको लोगोंके सामने रखते हुए कृष्ण-बलराम दोनों भ्राता बड़ी भक्तिसे इष्टदेवके समान उनकी सेवा करने लगे।

भृगुनन्दन परशुरामका विगलित हुआ अहं जब श्रीरामके समक्ष नत हो जाता है, तब परशुराम भगवान् श्रीरामके वास्तविक स्वरूपको प्रणाम कर जहाँ उनकी अनेकविध स्तुति करते हैं, वहीं यह भी कहते हैं कि मुक्तिका अमोघ साधन है ज्ञानसे सम्पन्न आचार्य (सद्गुरु) की प्राप्ति, जो आपकी कृपासे ही सम्भव है।

ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते।
वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते॥

(अध्यात्मरा०, बाल० ७। ४०)

मनुस्मृतिका यह सुभाषित इस विषयकी पुष्टि करता है कि आचार्य परमात्माकी मूर्ति हैं— **'आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः।'**

'आचार्यदेवो भव' के अनेकानेक प्रणम्य प्रदीप हमारे धर्मशास्त्रोंके आलोक हैं। आचार्य बृहस्पति, शुक्राचार्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, गर्गाचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य-जैसोंकी शृङ्खला अक्षुण्ण और अबाध गतिसे आज भी निरन्तर गतिमान् है। आरुणि, उपमन्यु, उत्तङ्क तथा एकलव्य आदिकी गुरुभक्ति प्रशंसनीय है।

अतिथिदेवो भव

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥

(कठो० १। १। ९)

(यमराजने नचिकेतासे कहा—)'आप नमस्कारयोग्य अतिथि होते हुए भी मेरे घर तीन रात्रितक भोजन किये बिना ही रहे, इसके बदलेमें मुझसे तीन वरदान माँग लें।' यमराजका यह कथन न्यायप्रदाता देवके मनोभावोंका द्योतक है, जो अतिथिको देवस्वरूप माननेका उत्तम उदाहरण है।

भारतकी प्राचीन सनातन परम्पराके अनुसार आतिथ्य भी एक उत्कृष्ट धर्म माना गया है। यदि अन्य कुछ सम्भव न भी हो तो कोई भी व्यक्ति आसन, कुशलप्रश्न, मृदु भाषण और जलादिके द्वारा सबका आतिथ्य कर सकता है, क्योंकि किसीके यहाँ भी इतनी वस्तुएँ सदा सुलभ रहती हैं और मृदु भाषण आदिमें कोई व्यय भी नहीं होता—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(महाभा०, वन० २। ५४)

भगवत्कृपासे मनुष्यने जो कुछ अर्जित किया है, उसमें जितनेसे अपना पेट भरे उतनेपर ही मनुष्यका अधिकार है, जो इससे अधिकपर अपना स्वामित्व मानता है, वह चोर है। उसे दण्ड मिलना चाहिये —

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

काशीनरेश उशीनरके पुत्र महाराज शिविका अतिथिरूपमें आये पक्षीतकके लिये देहार्पण, महात्मा विदुर, महाराजा संसृतिके पुत्र रन्तिदेव और अम्बरीषके आतिथ्य-उपाख्यान **'अतिथिदेवो भव'** का यशोगान कर रहे हैं। जहाँ हमारे धर्मशास्त्रोंमें अनेक यज्ञोंका विधान है, उसीमें 'अतिथि-यज्ञ' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार यज्ञमें आहुतियाँ देकर उसे सार्थक बनाया जाता है, उसी प्रकार अतिथिदेवके शुभागमनपर उसे नेत्र दे (स्नेहपूरित दृष्टिसे देखे), मन दे (मनसे हितचिन्तन करे), वाणी दे (सत्य, प्रिय, हित-वचन कहे)। जब वह जाने लगे तब दूरतक उसके पीछे-पीछे जाय और जबतक घरपर रहे, तबतक उसकी सेवामें संलग्न रहे। यह पाँच प्रकारकी दक्षिणाओंसे युक्त अतिथि-यज्ञ है।

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥

(महाभा०, वन० २।६१

मुद्गलपुराणका सक्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान इस बातकी पुष्टि करता है कि पिछले पाँच हजार वर्षों अद्वितीय राजसूय यज्ञकी तुलना सेरभर सत्तूके आतिथ्य बराबर भी नहीं हुआ, जो नेवलेके अर्धाङ्गको स्वर्णमें परिवर्ति न कर सका।

भारतीय संस्कृतिके इन उच्चादर्शों एवं उदात्त मनोभावों प्रायः सम्पूर्ण विश्वने सादर अनुसरण किया है। माता, पिता आचार्य एवं अतिथिमें देवत्वकी अवधारणा गहन चिन्तनप आधारित वैदिक परम्परा है, जिसके यथाशक्ति परिपालनसे ह मानव-जीवन वास्तविक रूपमें सार्थक हो सकता है।

इन तीनोंकी सेवामें ही मनुष्यका सम्पूर्ण श्रुति-स्मृति-विहित कृत्य परिपूर्ण हो जाता है। यही सेवा मनुष्यका श्रेष्ठ (साक्षात् सब पुरुषार्थका साधक) धर्म है और अन्य (अग्निहोत्रादि) धर्म तो उपधर्म हैं—

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी षष्ठी

पुराणोंमें षष्ठीदेवी बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं। नवजात शिशुके जन्मके छठे दिन जिन देवीके पूजनकी परम्परा है, वे षष्ठीदेवी हैं। लोकभाषामें इसे नवजात शिशुका 'छठी' महोत्सव भी कहते हैं। मूलप्रकृतिके छठे अंशसे उत्पन्न होनेके कारण ये 'षष्ठी' देवी कहलाती हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें ये 'देवसेना' नामसे प्रसिद्ध हैं। स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी होनेका सौभाग्य इन्हें प्राप्त है। बालकोंको दीर्घायु बनाना तथा उनका भरण-पोषण एवं रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है। अपने आराधकोंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योग एवं प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं।

एक पौराणिक कथा है—प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। उनके पिताका नाम था—स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि थी। परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। विवाहके पश्चात् सुदीर्घकालतक उन्हें कोई भी संतान नहीं हो सकी। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया और उनकी प्रेयसी भार्या मालिनीको चरु प्रदान किया। चरु-भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रतिभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई, परंतु वह कुमार मरा हुआ था। उसे देखकर समस्त रानियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्च्छा आ गयी।

राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये

पुत्रको छातीसे चिपकाकर दीर्घ स्वरसे रोने लगे। ; उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध कमणिके समान जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी से अनुपम शोभा हो रही थी। वह अनेक प्रकारके अद्भुत से विभूषित तथा पुष्पोंकी मालासे सुसज्जित था। उसीपर हुई एक देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके के समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे ा पानेवाली उन देवीके मुखपर प्रसन्नता छायी हुई थी। ाय भूषण उनकी छवि बढ़ाये हुए थे। योगशास्त्रमें पारङ्गत :वी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान ता था मानो वे मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने ाजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और आदरके साथ उनकी पूजा-स्तुति की। उन्हें प्रसन्न देखकर ाने उनसे परिचय पूछा।

भगवती देवसेनाने कहा—'राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी ‍या हूँ। जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम वसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामिकार्तिकेयको ‍ंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। भगवती लप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी ष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति ‍ुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन प्रिया, दरिद्र धन तथा कर्मशील ‍रुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, ‍ुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति — ये ‍ब कर्मके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी होता है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है।'

इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। राजाने देखा—सुवर्णके समान प्रतिभावान् वह बालक हँस रहा है। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उस बालकको लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं। यह देख राजाके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, उन्होंने पुनः देवीकी स्तुति की। तब संतुष्ट हुई देवीने राजासे कहा—

'राजन्! तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। तीनों लोकोंमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। इसका नाम सुव्रत होगा। यह सर्वगुणसम्पन्न होगा तथा इसमें समस्त विवेकशक्तियाँ विद्यमान रहेंगी। यह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ यह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। सभी इसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण यह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। यह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें इसकी कीर्ति फैल जायगी।'

इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें वह पुत्र दे दिया। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर दे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्न-मन होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर लौट आये। आकर पुत्र-विषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाया। यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्र-प्राप्तिके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया। भगवती षष्ठीदेवीकी पूजा की। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी।

षष्ठीदेवीका ध्यान

शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी भगवती षष्ठीदेवीका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठां च सुव्रताम्।
सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम्॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्।
पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, प्रकृति० ४३। ४९-५०)

'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका वर्ण है। रत्नमय आभूषणोंसे ये अलंकृत हैं। इन परम चित्स्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' इनका अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा।**' इनकी प्रार्थना इस स्तोत्रद्वारा करनी चाहिये—

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः।
शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः।
मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥
पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम्॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु॥
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा॥
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते॥
कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः।

(ब्रह्मवैवर्तपु०, प्रकृति० ४३। ५७—६६)

'देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षप्रदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, स्वयंमुक्त एवं मुक्तिदात्री, सारा, सारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामिकार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरि! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हे सुपूजिते! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है।'

षष्ठीदेवीकी आराधना करनेसे स्तोत्रमें वर्णित याचनाएँ तो सफल होती ही हैं साथ ही और भी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, जिसका वर्णन इस प्रकार है—

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्।
वर्षमेकं च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्ता महावन्ध्या प्रसूयते।
वीरपुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्॥
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः।
काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्॥
वर्षं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः।
रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च॥
मासं च पूज्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, प्रकृतिखण्ड ४३। ६७—७२)

जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इनका यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते

हान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान-प्रसव करनेकी ा प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपासे विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है। न्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका पाठ एवं श्रवण करें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्

(डॉ॰ श्रीराकेशमणिजी त्रिपाठी)

भारतीय जनजीवनमें वनस्पतियों, वृक्षों आदिमें भी वकी अवधारणा परम्परासे चलती आ रही है। भगवान् ृष्णने गीतामें अश्वत्थ वृक्षको अपनी विभूति बतलाया [१] वैसे भी पञ्चवट विशेष रूपसे पूजनीय हैं। भारतके धकांश प्रदेशोंमें पीपल, गूलर, बरगद, पाकड़ और मकी 'पञ्चवृक्षों'में गणना की जाती है। धार्मिक आस्थाके ुसार इनमें भी अश्वत्थ-(पीपल) का स्थान सर्वोपरि है।

अश्वत्थ वृक्षके आरोपणका पुण्य अक्षय होता है। कहा ता है कि इस लोकमें अश्वत्थ वृक्षके छायातलमें जिस प्रकार गी स्वच्छन्दतासे भ्रमण करते हुए सुख प्राप्त करते हैं, उसी कार इस वृक्षका आरोपणकर्ता मृत्युके पश्चात् विराम और श्राम प्राप्त करता हुआ नियन्ताके निकट निवास करनेका भाग्य प्राप्त कर लेता है। उन्हें न यमलोककी यन्त्रणा हो कती है न दारुण संताप ही।

विविध पुराणोंमें अश्वत्थ वृक्षका अनेकधा उल्लेख करते ए इसके माहात्म्यकी अधिक विशिष्टता प्रतिपादित की गयी । स्कन्दपुराणके अनुसार अश्वत्थ वृक्षके मूलमें विष्णु, तनेमें शव, शाखाओंमें नारायण, पत्तोंमें भगवान् श्रीहरि और फलोंमें सब देवताओंसे युक्त अच्युत सदा निवास करते हैं। यह वृक्ष मूर्तिमान् श्रीविष्णुस्वरूप है। महात्मा पुरुष इस वृक्षके पुण्यमय मूलकी सेवा करते हैं। इसका आश्रय करना मनुष्योंके सहस्रों पापोंका नाशक तथा सभी अभीष्टोंका साधक है।[२]

श्रीमद्भागवतके अनुसार द्वापरयुगमें परमधामगमनसे पूर्व योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इस परम पवित्र अश्वत्थ वृक्षके नीचे बैठकर ध्यानावस्थित हुए थे।[३]

पीपलके वृक्षको बिना प्रयोजनके काटना अपने पितरोंको काट देनेके समान है। ऐसा करनेसे वंशकी हानि होती है। यज्ञादि पवित्र कार्योंके उद्देश्यसे इसकी लकड़ी काटनेसे कोई दोष न होकर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अश्वत्थ वृक्षकी पूजा करनेसे समस्त देवता पूजित हो जाते हैं।

छिन्नो येन वृथाश्वत्थश्छेदिताः पितृदेवताः।
यज्ञार्थं छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात्॥
अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः॥

(अश्वत्थस्तोत्रम्)

अश्वत्थ वृक्षकी परिक्रमा करने एवं नित्यप्रति उसपर जल चढ़ानेसे अशुभ नष्ट हो जाता है। इस वृक्षके मूलमें थाला बनाकर वैशाख मासमें जल देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। इस वृक्षके दर्शन एवं श्रद्धापूर्वक नित्यप्रति नमनसे सम्पदामें वृद्धि तथा दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है। विष्णुरूप अश्वत्थदेवकी इस प्रकार प्रार्थना की जा सकती है—

अश्वत्थ सुमहाभाग सुभग प्रियदर्शन।
इष्टकामांश्च मे देहि शत्रुभ्यस्तु पराभवम्॥
आयुः प्रजां धनं धान्यं सौभाग्यं सर्वसम्पदम्।
देहि देव महावृक्ष त्वामहं शरणं गतः॥

(अश्वत्थस्तोत्रम्)

अश्वत्थ वृक्षकी प्रायः तीन बार प्रदक्षिणा करनेका विधान है। प्रायः हिन्दू बालिकाएँ बाल्यकालसे ही अश्वत्थ वृक्षसे

१-अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां॰ (गीता १०।२६)

२-मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च। नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः॥
फलेऽच्युतो न संदेहः सर्वदेवैः समन्वितः।
स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः। यस्याश्रयः पापसहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुघो गुणाढ्यः।
(स्कन्दपुराण, नागर॰ २४७।४१-४२, ४४)

३-भागवतपुराण ३।४।८

सम्बद्ध अनेक व्रतोंका पालन करती हैं। 'ज्ञानभास्कर' नामक ग्रन्थके अनुसार प्रबल वैधव्य-योगवाली कन्याको 'अश्वत्थ-व्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये।

बृहद्देवताकार महर्षि शौनकने 'अश्वत्थोपनयन' नामक महान् व्रतकी महिमा बतलाते हुए कहा है कि किसी शुभ दिनमें पुरुष पीपल वृक्षका आरोपण कर उसे आठ वर्षोंतक निरन्तर जल-दान करे। इस प्रकार उसका पुत्रवत् पालन एवं पोषण करता रहे। तत्पश्चात् उस वृक्षका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कर यदि उसका विधिवत् पूजन किया जाय तो अक्षय लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। अश्वत्थ वृक्षका रोपण करनेवाले व्यक्तिकी वंशपरम्परा कभी समाप्त नहीं होती, अपितु अक्षय रहती है। इसके आरोपणसे समस्त ऐश्वर्य एवं दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा पितृगण नरकसे छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं—

अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः।
धनायुषां समृद्धिस्तु पितॄन् क्लेशात् समुद्धरेत्॥

अश्वत्थकी पूजा एवं उसका स्पर्श प्रायः शनिवारको ही विशेष रूपसे किया जाता है। 'व्रतराज'में 'अद्भुतसागर'से संगृहीत अश्वत्थोपासना एवं उसकी प्रदक्षिणाकी विधि विस्तारसे वर्णित है, जिसमें इस विषयकी विवेचना करते हुए अथर्वण ऋषिने पिप्पलाद ऋषिसे कहा है[१]—

प्राचीन कालमें दैत्योंसे पीड़ित ब्रह्मादि सभी देवता श्रीविष्णुकी शरणमें गये। उन देवताओंने विष्णुसे प्रार्थना करते हुए कहा—'भगवन्! हम राक्षसोंसे निरन्तर पीड़ित रहते हैं। हमारे दुःखकी शान्ति किस प्रकार हो सकती है?' तब श्रीविष्णुने कहा—'मैं अश्वत्थ-रूपसे भूतलपर विद्यमान हूँ। इसलिये सभी प्रकारसे तुम्हें अश्वत्थ-वृक्षका सेवन करना चाहिये।'

अश्वत्थ-व्रतीको प्रातः नदी आदिमें स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् नित्य-नियमसे अश्वत्थकी जगह जाकर गोबरसे उसे लीपना एवं सूत्र तथा गेरूसे सुशोभित करना चाहिये। पूजाके द्रव्योंको एकत्रकर पुण्याहवाचन कराना चाहिये ऋत्विजोंका वरण करके पूजन प्रारम्भ करना चाहिये।

ध्यान और आवाहनके साथ विष्णुकी उपासना क[ी] उसी प्रकार नारायणमय पीपल वृक्षको श्वेत गन्ध, अक्षत, धूप, नैवेद्य समर्पित करते हुए ध्यानपूर्वक पुरुषसूक्तद्वारा करनेका विधान है। तत्पश्चात् उसीसे हवन, तर्पण एवं न[ा] करना चाहिये। श्वेतवस्त्रा लक्ष्मीके साथ पुरुषोत्तम वि[ष्णुका] चिन्तनपूर्वक अश्वत्थको अभिमन्त्रित कर प्रार्थना करे व्रतोत्सवके समय अनुष्ठानादिमें अश्वत्थ वृक्षकी एक सौ प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

अश्वत्थोपासना करनेवाले भक्तोंको हविष्यान्नका भ[ोजन] भूमिपर शयन, जितेन्द्रिय एवं मौन होकर ध्यानपूर्वक करनी चाहिये। विष्णुसहस्रनाम, पुरुषसूक्त एवं विष्णुसू[क्तका] पाठ पवित्र दिनोंमें करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नानादिके पवित्र होकर व्रतका उद्यापन करना चाहिये।

भगवान् बुद्धको सम्बोधिकी प्राप्ति बोधगयामें अ[श्वत्थ] वृक्षके नीचे ही हुई थी। इस वृक्षको बोधिद्रुम भी कहा है। आयुर्वेदके अनुसार अश्वत्थ मधुर, कषाय और शीतल इसके अनुपान-भेदपूर्वक सेवनसे कफ, पित्त और दाह होते हैं। इसके फलके सेवनसे रक्त-पित्त, विष, दाह, शोथ अरुचि आदि दूर होते हैं। इस वृक्षकी कोमल छाल पत्तेकी कली पुरातन प्रमेह-रोगमें अत्यन्त लाभप्रद पीपलके फलका चूर्ण अत्यन्त क्षुधावर्धक है। इसके अति[रिक्त] अन्य कई व्याधियोंके उपचारमें भी अश्वत्थ-वृक्षके मह[त्त्वका] संकेत आयुर्वेदके विविध ग्रन्थोंमें यथास्थान दृष्टिगत होता

तात्पर्य यह कि अश्वत्थ धार्मिक, आयुर्वेदिक सामाजिक सभी दृष्टिकोणोंसे भारतीय जनमानसके लि[ये] आराध्य एवं वन्दनीय है। इसकी महिमा अनन्त एवं अ[पार] है। यह वृक्षराज उपासककी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर[नेमें] समर्थ तथा पापहारी है।
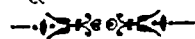
दूसरेकी उन्नति करनेमें स्वाभाविक ही तुम्हारी भी उन्नति हुआ करती है। दूसरोंकी भलाई करनेमें तुम अपने अहङ्[कार] और लौकिक हितको जितना ही भूलोगे, उतना ही उसका परिणाम अधिक शुभ होगा।

१-व्रतराज—अश्वत्थ-प्रदक्षिणा-विधि

गणदेवता

कुछ देवता ऐसे होते हैं जो सामूहिक रूपसे एक ही साथ यज्ञोंमें पहुँचकर हविर्भाग ग्रहण करते हैं, साथ ही अन्य पूजा-उपासनाओंमें भी सामूहिक रूपसे ही पूजित एवं उपासित होते हैं। अपने-अपने लोकोंमें भी वे सामूहिक रूपसे निवास करते हैं तथा उनका सदा कहीं भी एक ही साथ आना-जाना, उठना-बैठना होता है। इसमें उनका परस्पर प्रेम, स्नेहभाव और आन्तरिक सौहार्द ही मूल कारण होता है, न उनमें मतभेद उत्पन्न होता है, न वे विघटित होते हैं और न कभी अपने समूहसे कहीं अलग होकर स्थित रहते हैं। इन देवताओंकी पारस्परिक सौहार्द-भावनाको वेदोंमें 'संववन', 'संवदन' आदि नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिनमें सात्त्विक प्रेमकी ही निरन्तर अभिवृद्धि मूल तत्त्व होता है। जहाँ किसी गृह, परिवार, जनपद, राष्ट्र आदिमें विघटन प्रारम्भ होता है, वहाँ इन देवताओंकी आराधना और संवनन-सूक्त[1]का जप, हवन, पाठके द्वारा परस्पर सौहार्द एवं सद्भावकी प्राप्तिका प्रयत्न किया जाता है। यह विशेषतया विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्वकी भावनाके लिये महान् उपयोगी होता है।

इस प्रकारके देवताओंकी कई कोटियाँ हैं। विभिन्न कोशोंके अनुसार इनमें आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेवगण, साध्य, तुषित, आभास्वर, महाराजिक और मरुद्गण आदि विशेषरूपसे उल्लेख्य हैं। द्वादश आदित्यों, एकादश रुद्रगणों तथा अष्टवसुओंकी तैंतीस देवताओंमें भी गणना है। यहाँ इन गणदेवताओंका संक्षेपमें परिचय इस प्रकार दिया जा रहा है—

एकादश रुद्र

भगवान् रुद्रकी वेदोंमें अपार महिमा है। संहिता आदिमें जहाँ-जहाँ 'रुद्र'-पद आया है, आचार्य सायणने '**रुद्रस्य परमेश्वरस्य, रुद्रः परमेश्वरः, जगत्स्रष्टा रुद्रः**' आदि कहकर उन्हें परमात्मा ही माना है। 'रुद्राष्टाध्यायी','शतरुद्रिय' आदि तो भगवान् रुद्रकी महिमामें ही अनवरत निरत हैं। श्वेताश्वतर, माण्डूक्य, कठरुद्र, रुद्रहृदय, रुद्राक्षजाबाल, भस्मजाबाल, पाशुपतब्रह्म, योगतत्त्व तथा निरालम्ब आदि अधिकांश उपनिषदें एक स्वरसे रुद्रको ही विश्वाधिपति तथा महेश्वर बताती हैं। भगवान् रुद्रके शिव, महादेव, शङ्कर, शम्भु, भव, शर्व, मृड, उग्र आदि नाम वेदादि शास्त्रोंमें अनेक बार महिमामण्डित हुए हैं।

वैदिक संहिताओंमें इन्हें कोटि रुद्रों—असंख्य रुद्रोंके रूपमें विवर्तित कर यह भी बताया गया है कि ये मूलतः एक ही हैं और सम्पूर्ण विश्वमें सभी रूपोंमें व्याप्त हैं[2]।

शिवपुराणका आधासे अधिक भाग रुद्रसंहिता, शतरुद्रसंहिता और कोटिरुद्रसंहिता आदि नामोंसे भगवान् रुद्रकी ही महिमाका गान करता है। सभी पुराणोंमें इनका विस्तृत वर्णन है। ये मूलतः तो हैं एक पुनरपि ये ग्यारह रूपोंमें विभक्त दिखाये गये हैं। इन ग्यारह रुद्रोंके साथ ग्यारह रुद्राणियोंका भी वर्णन प्रायः सर्वत्र मिलता है, इनके नामोंमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। श्रीमद्भागवत (३।१२।१२-१३) में ये नाम इस प्रकार हैं—

रुद्र—मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत।

रुद्राणियाँ—धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा।

मूलतः 'रुद्र' शब्दकी व्युत्पत्तिमें निरुक्तकारसे लेकर सभी व्याख्याताओंने इस शब्दको '**रुद्**' धातुसे निष्पन्न माना है। 'रुद्रका रोदन' भी वेदोंमें विस्तारसे निरूपित है। तदनुसार ही सभी बालक एवं जीव उत्पन्न होते ही रोते हैं। भगवान् रुद्रके

१-ऋग्वेद १०।१९१

२-एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः। (तै० सं० १।८।६।१), एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः। (श्वेता० उप० ३।२०), एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै०। (अथर्वशिर० ५), असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् (यजु० १६।५४)

अश्रुबिन्दुओंसे समुद्भूत रुद्राक्ष सभी देवताओंको और रजत पितृगणोंको अत्यन्त प्रिय है। गणदेवताओंमें रुद्र विशेष महत्त्वके हैं। तैंतीस प्रमुख देवताओंमें इनका परिगणन है। अपनी आशुतोषता एवं अकारण-करुणासे भगवान् रुद्र भक्तों एवं उपासकोंके सर्वस्व हैं।

द्वादश आदित्य

माता अदितिके पुत्र होनेसे भगवान् सूर्यका नाम आदित्य भी है। वेदोंमें 'आदित्य' नामसे भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थोंमें आदित्योंकी संख्या बारह बतायी गयी है। वेदोंमें वर्णित तैंतीस देवताओंमें बारह आदित्यगण ये ही हैं। पुराणोंमें भी सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमें बारह महीनोंमें बारह आदित्य ही बारह नामोंसे अभिहित किये गये हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, त्वष्टा, विष्णु, अंशु, भग, पूषा तथा पर्जन्य।

महाभारतके आदिपर्वमें भी ये ही नाम आये हैं, किंतु नामोंके क्रममें अन्तर है। यथा—

अदित्यां द्वादशादित्याः सम्भूता भुवनेश्वराः।
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा॥
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते।
जघन्यजस्तु सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥

'अदितिके पुत्र बारह आदित्य हुए, जो लोकेश्वर हैं। धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, दसवें सविता, ग्यारहवें त्वष्टा और बारहवें विष्णु कहे जाते हैं। इन सब आदित्योंमें विष्णु छोटे हैं, किंतु गुणोंमें वे सबसे बढ़कर हैं।'

अष्टवसुगण

आठ देवताओंका एक विशिष्ट गण-विशेष है, जिसे अष्टवसु' कहा जाता है। वेदादिमें जो मुख्य तैंतीस देवता नेरूपित हैं, उनमें अष्टवसु भी परिगणित हैं। यास्काचार्यने त्रसुओंको इन्द्र, अग्नि एवं आदित्यके साथ संस्तुत होनेके कारण पृथिवीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय एवं द्युस्थानीय— इस प्रकार त्रिस्थानीय देवता बताया है (निरु० ७।४। ४१-४२)। पुराणोंके अनुसार दक्षप्रजापतिने अपनी आठ कन्याओंमेंसे दसका विवाह धर्मके साथ किया। उनमेंसे वसु' से उत्पन्न होनेके कारण ये 'वसु' कहलाये। ये संख्यामें आठ हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके नाम तथा क्रम भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत (६।६।१०-११) में इनके नाम इस प्रकार हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु तथा विभावसु। विष्णुपुराण (१।१५) के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं— आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। श्रीमद्भागवत (२।३।३) में उल्लेख आया है कि सभी प्रकारके ऐश्वर्यादिकी प्राप्तिके लिये भी वसुदेवताओंकी उपासना की जाती है—**'वसुकामो वसून्।'**

स्मृतियों तथा कहीं-कहीं पुराणादिमें वसुओंको पितृस्वरूप भी बतलाया गया है और श्राद्धादि कर्ममें तर्पण तथा पिण्डादि-दानसे इनकी पूजाकर पितरोंके रूपमें इन्हें आप्यायित किया जाता है। मनुस्मृति (३।२८४) का कथन है—

वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी॥

तात्पर्य यह है कि पिता वसुस्वरूप, पितामह रुद्रस्वरूप तथा प्रपितामह आदित्यस्वरूप हैं।

वसुगण पितरोंके अधिष्ठातृ-देवता हैं। श्राद्धादिके द्वारा तर्पित होकर ये प्रसन्न होकर दीर्घ आयुष्य, संतति, ऐश्वर्य, विद्या, सम्पूर्ण सुख-भोग, राज्य, स्वर्ग तथा अन्तमें मोक्षपद भी प्राप्त करा देते हैं—

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ्छ्राद्धेन तर्पिताः॥
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचा०२६९-२७०)

वसुगण धर्मके पुत्र होनेके कारण साक्षात् धर्मस्वरूप ही हैं।

तुषित और साध्यगण

आदित्यों तथा रुद्रोंके समान ही तुषितगण भी सञ्चारी देवगण हैं। पुराणोंके अनुसार चौदह मन्वन्तरोंके भेदसे प्रत्येक मन्वन्तरमें इन्द्र, सप्तर्षि, देवता आदि परिवर्तित होते रहते हैं और उनके नामोंमें भी भेद होता रहता है। पुराणोंमें तुषितगणोंकी भी विभिन्न मन्वन्तरोंके देवतारूपमें अतीव महिमा बतायी गयी है। इस सम्बन्धमें वायु, ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंमें एक कथानक प्राप्त होता है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

सृष्टिके आरम्भमें प्रजापति ब्रह्माने अपने मुखसे मन्त्रमय शरीरवाले बारह पुत्रोंको उत्पन्न किया, जिनके नाम इस प्रकार हैं—दर्श, पौर्णमास, बृहत्, रथन्तर, वित्ति, विवित्ति, आकूति, कूति, विज्ञाति, विज्ञात, मन और यज्ञ। 'जय' संज्ञक इन पुत्रोंको ब्रह्माजी सृष्टिके विस्तारकी आज्ञा देकर अन्तर्हित हो गये। किंतु उन्होंने सनकादि ऋषियोंके योगमार्गपर चलते हुए मोक्षकी ओर प्रवृत्त होनेकी चेष्टा की और पिताकी आज्ञापर विशेष ध्यान नहीं दिया।

कुछ समयके बाद ब्रह्माजीने आकर अपने जयनामक पुत्रोंकी इस प्रवृत्तिको देखकर क्रोधाविष्ट हो उनसे कहा—'मैंने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये ही तुमलोगोंको उत्पन्न किया था, किसी अन्य प्रयोजनसे नहीं, किंतु तुमलोगोंने मेरी आज्ञाकी उपेक्षा कर बिना संतति उत्पन्न किये ही जो मोक्षकी ओर मन लगाया है, यह उचित नहीं है। अतः मैं तुमलोगोंको शाप देता हूँ कि तुम्हारा संन्यास सिद्ध नहीं होगा और लगातार छः मन्वन्तरोंतक तुम सभी जन्म ग्रहण करते रहोगे।' इससे दुःखी होकर जयसंज्ञक उन देवताओंने उनसे क्षमा माँगी, तब प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'मेरा शाप मिथ्या तो नहीं हो सकता, किंतु सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके समाप्त हो जानेपर तुम सभी मेरे पास आ जाओगे, तभी तुम्हें शाश्वती सिद्धि एवं मुक्ति प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्हित हो गये। इधर 'जय' नामक उन देवगणोंने योगमार्गका आश्रयण कर अपनेको बारह विशाल सरोवरोंके रूपमें परिवर्तित कर लिया और शापके परिणामस्वरूप वे स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अजिताके गर्भसे प्रजापति रुचिके बारह पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुए, जो अजितगण नामसे विख्यात हुए। ये देवगण स्वायम्भुव मन्वन्तरके देवताओंके साथ यज्ञभागके अधिकारी हुए।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरमें वे ही पुनः तुषिताके गर्भसे स्वारोचिष मनुके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए। उस समय वे तुषित और प्राण इन नामोंसे विख्यात हुए। ये देवगण यज्ञभागके अधिकारी हुए।

तृतीय औत्तम मन्वन्तरमें वे देवगण सत्याके गर्भसे उत्तम मनुके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए और उनकी सत्य नामसे प्रसिद्धि हुई। ये ही सत्यनामक देवगण पुनः तामस नामक चतुर्थ मन्वन्तरमें तामस मनुकी हर्या नामक पत्नीसे हरि नामसे उत्पन्न होकर यज्ञभोक्ता बने। पञ्चम रैवत नामक मन्वन्तरमें विकुण्ठा-के पुत्रके रूपमें वैकुण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए।

छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें ये ही वैकुण्ठसंज्ञक द्वादश देवगण धर्मकी पत्नी तथा दक्षप्रजापतिकी कन्या साध्यासे धर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए और साध्य इनकी संज्ञा हुई। धर्मके यही बारह पुत्र 'साध्यगण' कहलाये। इनके नाम इस प्रकार हैं—मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, अपान, वित्ति, नय, हय, हंस, नारायण, विभु तथा प्रभु।

सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें ये ही स्वारोचिष मन्वन्तरके तुषितगण अथवा चाक्षुष मन्वन्तरके साध्यगण कश्यप एवं अदितिके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए जो द्वादश आदित्य कहलाये।

इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'जय' नामसे विख्यात जो बारह आदिदेवगण थे, वे ही शापवश सात मन्वन्तरोंमें क्रमशः अजित, तुषित, सत्य, हरि, वैकुण्ठ, साध्य तथा आदित्यगणोंके रूपमें विख्यात हुए। स्वारोचिष मन्वन्तरके जो द्वादशगण हैं, वे तुषितगण कहलाते हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें इनके नाम इस प्रकार परिगणित हैं—प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, रस, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन।

पुराणोंमें तथा कोशग्रन्थोंमें इन तुषितगणोंके नामों तथा संख्याओंमें भी कुछ अन्तर है। मूलतः ये बारह हैं तथापि योगकी दृष्टिसे इनकी संख्या कहीं छत्तीस तथा कहीं चौरासी बतायी गयी है। वैसे ये प्रत्येक मन्वन्तरमें स्थित रहते हैं तथा यज्ञोंमें उपस्थित होकर हविर्भाग ग्रहण करते हैं। ये सर्वदा प्रसन्न रहकर अपने-अपने भक्तों एवं उपासकोंका कल्याण करते रहते हैं।

आभास्वर

इन गणदेवताओंकी संख्या चौंसठ कही गयी है, वैसे तो सभी देवता कान्ति, दीप्ति, तेज और आभासे सम्पन्न होते हैं, पर इन आभास्वर देवताओंमें आभा, प्रकाश, रूप, तेज, लावण्य तथा कान्ति उन सबसे कुछ विशेष मात्रामें होती है। अतः ये विशेष भासित, उद्भासित होते हैं, जिसके कारण ये आभास्वर कहलाते हैं। इनमें भी शान्ति, मुदिता, उत्फुल्लता और सात्त्विकता तथा समोज्ज्वलता आदि गुण विशेषमात्रामें होते हैं। इनकी आराधनासे ज्ञान—विद्या आदिका प्रकाश, राष्ट्र एवं प्रजावर्गमें समुल्लास तथा अन्न-धन और सभी प्रकारके आनन्द-मङ्गलकी उपलब्धि होती है।

महाराजिक

महाराजिक देवतागण संख्यामें २२० होते हैं और यह देवसङ्घ सभी सङ्घोंसे बड़ा है। इतने बड़े देवताओंका सामूहिक रूपसे यज्ञोंमें आगमन, हविर्ग्रहण और एक ही साथ देव-सभाओंमें निवास तथा गमनागमन महान् प्रेम और सौहार्दका सूचक है। इनकी उपासनासे सभी प्रकारकी राज्य-संस्थाएँ, राष्ट्रसंघ, जनसमूह और विश्वके विभिन्न वर्ग, धर्म और विभिन्न भाषाओंके बोलनेवाले मनुष्य तथा उनके सहचर पशु-पक्षी सदा अत्यन्त प्रेमभावसे परोपकारकी भावनासे दूसरोंका हितचिन्तन करते हुए आनन्द एवं उल्लासके साथ निवास करते हैं। किसीके मनमें कभी ईर्ष्या, द्वेष या विघटनकारी प्रवृत्तियोंका उदय नहीं होता। इनकी उपासनासे उपासकमें शान्ति, सहिष्णुता, समञ्जसता, सात्त्विकता, निष्काम भक्ति और ज्ञानकी भी प्रवृत्ति होती है और उपासकका सर्वविध कल्याण होता है। इनकी पंक्ति (ये पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं) महान् है, इसलिये ये महाराजिक नामसे विख्यात हैं। तेज और दीप्तिकी अधिकताके कारण भी इनके नामकी अनुगुणता और सार्थकता सिद्ध होती है।

मरुद्गणोंका आविर्भाव और उनका माहात्म्य

मरुद्गण अनेक देवताओंका एक महत्त्वपूर्ण समूह-विशेष है। ये दितिके पुत्र हैं। वैदिक संहिताओं तथा पुराणेतिहासादि ग्रन्थोंमें अनेक बार इनकी महिमाका वर्णन हुआ है। केवल ऋग्वेदमें ही मरुद्गणोंकी स्तुतियों एवं महनीय कार्योंसे सम्बद्ध ३३ सकल सूक्त हैं। यज्ञ-यागादि अनुष्ठानोंमें विशेषरूपसे मरुद्देवताओंका आवाहन कर उन्हें आहुति दी जाती है। ये अत्यन्त दयालु हैं, शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने उपासक या आराधकको उसकी अभिलषित वस्तु प्रदान करते हैं। देवताओंमें यह अद्भुत विशेषता होती है कि वे बिना माँगे ही अभीष्ट-दुर्लभसे भी दुर्लभ वस्तु एवं महनीय पद प्राप्त करा देते हैं, क्योंकि वे अप्रतिमशक्ति-सम्पन्न होते हैं। इस सम्बन्धमें अनेक आख्यान पुराणादि ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। मत्स्यपुराण (अ०४९) में एक कथा आती है—

चन्द्रवंशमें ययाति नामके एक प्रसिद्ध सम्राट् थे। उनके पाँच पुत्रोंमें सबसे छोटे पुत्र पुरु थे, जो अत्यन्त पितृभक्त थे। पितृभक्तिसे अभिभूत हो पुरुने पिता ययातिको अपना यौवन दे डाला। इससे प्रसन्न हो पिताने उन्हें ही राज्यपदका अधिकारी घोषित किया। इसी वंशमें आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् दुष्यन्त हुए, जिनकी साध्वी पत्नी शकुन्तला इतिहासमें अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। उन्हींके संयोगसे समुत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् भरतके नामसे कुरुवंशियोंका कुल 'भारत' कहलाने लगा और युधिष्ठिर, अर्जुन आदि केवल 'भारत' नामसे सम्बोधित हुए और प्रजा भी 'भारतीय' कहलाने लगी।

दैवयोगसे भरतके सभी पुत्रोंका उच्छेद हो गया। इससे सारी प्रजा और सम्राट् भरतको बड़ी चिन्ता हुई। राजा भरतने पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर अनेक पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान किया, किंतु वे निष्फल रहे। उन्हें पुत्र प्राप्त न हो सका। राजा अत्यन्त दुःखी हो गये, सोचने लगे, अब क्या करूँ, किसकी आराधना करूँ, किसकी शरण जाऊँ ?

अन्तमें उन्हें मरुद् देवताओंका स्मरण हो आया। उन्होंने मरुद्गणोंको प्रसन्न करनेके लिये मन्त्री-पुरोहितोंके माध्यमसे

'मरुत्स्तोम'[1] यज्ञका विधिवत् अनुष्ठान कराया।

मरुद्देवता राजाके अनुष्ठानसे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। वे बृहस्पतिद्वारा उत्पन्न शिशु 'भरद्वाज' को पुत्ररूपमें लेकर प्रकट हुए और उसे दत्तक-पुत्र-रूपमें राजा भरतको समर्पित कर दिया, जो आगे चलकर 'वितथ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार मरुद्गणोंकी विश्वरक्षामें योगदानके अनेक आख्यान-उपाख्यान प्राप्त होते हैं।

मरुद्गणोंके आविर्भावके सम्बन्धमें प्रायः सभी पुराणेतिहास-ग्रन्थोंमें एक प्रसिद्ध आख्यान प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है—

मरुद्गणोंके आविर्भावका आख्यान

प्राचीन कालकी बात है, देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णु तथा देवगणोंद्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दिति शोकसे विह्वल हो गयीं। वह 'स्यमन्तपञ्चक' क्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर अपने पतिदेव महर्षि कश्यपकी आराधनामें तत्पर रहती हुई घोर तपस्या करने लगीं। दितिने सौ वर्षोंतक कठोर तपका अनुष्ठान किया। तपस्यासे संतप्त हुई दितिने वसिष्ठादि महर्षियोंसे अपनी शोक-निवृत्तिका उपाय पूछा। उन्होंने उसे पुत्र-शोक-विनाशक, पुत्र-प्राप्ति करानेवाले तथा इहलोक और परलोकमें अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करानेवाले मदनद्वादशीव्रत (चैत्रमाससे आरम्भकर वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको किया जानेवाला एक व्रत-विशेष, जिसमें विशेषरूपसे भगवान् विष्णुका पूजन होता है) का विधान बतलाया। दितिने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया।

दितिके इस व्रतानुष्ठान तथा तपस्यासे प्रसन्न हो महर्षि कश्यप उसके पास आये और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने वर माँगनेको कहा। दितिने इन्द्रका वध करनेवाले एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्रकी याचना की। महर्षिने वर देना स्वीकार कर लिया और कहा कि 'तुम आपस्तम्ब ऋषिसे प्रार्थना कर उनसे आज ही पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ।' उसकी प्रार्थनापर महर्षिने '**इन्द्रशत्रो विवर्धस्व**' इस मन्त्रसे अग्निमें आहुति दी। यज्ञकी समाप्तिपर महर्षि कश्यपकी कृपासे दितिकी अभिलाषा पूर्ण हुई। तदनन्तर उन्होंने कहा—'हे वरानने! तुम्हें सौ वर्षोंतक इसी तपोवनमें रहकर प्रयत्नपूर्वक इस गर्भस्थ शिशु रक्षा करनी होगी। यदि तुम भगवान्के ध्यानमें तत्पर रह अपना गर्भ शौच और संयमपूर्वक सौ वर्षोंतक धारण सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा, परंतु किसी प्रकार नियमोंमें त्रुटि हो गयी तो वह देवताओंका बन जायगा।' दितिने कहा—'ब्रह्मन्! मैं सौ वर्षोंतक व्र पालन अवश्य करूँगी। आप बतलाइये कि मुझे क्या-करना चाहिये, कौन-कौन-से काम छोड़ देने चाहिये और काम ऐसे हैं, जिनसे व्रत-भङ्ग नहीं होता।' इसपर कश्यप कहा—'प्रिये! इस व्रतमें किसी भी प्राणीको मन, वाणी क्रियाके द्वारा सताये नहीं, किसीको शाप या गाली न दे, न बोले, शरीरके नख और रोएँ न काटे और किसी भी अ वस्तुका स्पर्श न करे। जलमें घुसकर स्नान न करे, क्रो करे, दुर्जनोंसे बातचीत न करे, बिना धुला वस्त्र न पहने किसीकी पहनी हुई माला न पहने। जूठा न खाय, ल लाया हुआ और रजस्वलाका देखा हुआ अन्न भी न खाय अञ्जलिसे जल न पीये, जूठे मुँह बिना आचमन किये, सं समय बाल खोले हुए, बिना शृंगारके, वाणीका संयम बिना और बिना चद्दर ओढ़े घरसे बाहर न निकले। बि धोये, अपवित्र अवस्थामें, गीले पाँवसे उत्तर या पश्चिम करके, दूसरेके साथ, नग्नावस्थामें तथा सुबह-शाम सो चाहिये। संध्याकालमें भोजन न करे, वह न तो कभी मूलमें बैठे और न उसके निकट जाय। वह सामग्री—मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, सुनसान घ जाय, मनको उद्विग्न न रखे। नखसे, लुआठीसे अथवा पृथ्वीपर रेखा न खींचे। सदा नींदमें अलसायी हुई न र कठिन परिश्रमका कार्य न करे। लोगोंके साथ वाद-वि करे, शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। अमङ्गलसूचक वाणी न अधिक जोरसे हँसे नहीं।'

इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके स्त्रीको आवश्यक है कि 'वह सर्वदा पवित्र रहे, धुल धारण करे और सभी सौभाग्यके चिह्नोंसे सुसज्जित रहे माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा क

१-श्रौतसूत्रोंमें 'मरुत्स्तोम' यज्ञका विस्तारसे वर्णन है। तदनुसार यह एक एकाह-यज्ञ है और इसमें विशेषरूपसे ऋग्वेदके २४वें ४ से ६ ऋचाओंका गान एवं स्तवन होता है और प्रायः इन्हीं मन्त्रोंसे मरुद्गणोंको आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं (आश्व०, श्रौत०, उत्तर० ३। ११)

स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त (आयुर्वेदिक) ओषधियोंसे युक्त गुनगुने पानीसे स्नान करे। वह सदैव अपनी रक्षाका ध्यान रखे। प्रातःकाल कलेवा करनेसे पूर्व ही गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मीजी और भगवान् नारायणकी पूजा करे। इसके पश्चात् पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य, नैवेद्य और आभूषणादिसे सुहागिनी स्त्रियोंकी पूजा करे और पतिकी पूजाकर उसकी सेवामें संलग्न रहे तथा यह भावना करती रहे कि पतिका तेज मेरी कोखमें अवस्थित है। देवि! जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका पुत्र शीलवान् तथा दीर्घायु, होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निःसंदेह गर्भपातकी आशंका बनी रहती है। इसलिये तुम इस 'पुंसवन' नामक व्रतका पालन करो। इस प्रकार व्रतकी निर्विघ्न समाप्तिपर तुम्हें एक इन्द्रघाती पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब जा रहा हूँ।'

इतना कहकर महर्षि कश्यप वहीं अन्तर्धान हो गये। दिति भी पतिकी आज्ञा प्राप्तकर मनोयोगसे व्रतके नियमोंका प्रयत्नपूर्वक पालन करने लगी[1]।

इधर देवराज इन्द्र दैत्यमाता दितिके अभिप्रायको जानकर भयभीत हो गये और वे वेष बदलकर छद्मरूप धारणकर दितिके पास आये और उसकी सेवा करने लगे। वे दितिके लिये प्रतिदिन समय-समयपर वनसे फूल-फल, कन्द-मूल, समिधा-कुश, पत्ते, दूब, मिट्टी और जल लाकर उसकी सेवामें समर्पित करते। इन्द्र सदा दितिके छिद्रान्वेषण तथा उसके व्रत-भङ्गका अवसर ही ढूँढ़ा करते थे। ऊपरसे तो वे विनम्र, प्रशान्त तथा प्रसन्न-भावसे सेवा करते दीखते, किंतु भीतरसे उसकी त्रुटि पकड़नेकी चेष्टा करते रहते। उन्हें यह भय था कि यदि दितिका व्रत पूर्ण हो गया तो उनसे उत्पन्न बालक मेरा वध कर देगा। अतः वे प्रतिक्षण उस उपायको सोचते रहते, जिससे कि दितिका व्रत-भङ्ग हो जाय।

दिति अत्यन्त मनिस्वनी थीं, वह दृढ़तापूर्वक अपने व्रतके पालनमें संलग्न थीं। इससे वह अत्यन्त कृशकाय एवं दुर्बल हो गयी थीं। सौ वर्ष पूर्ण होनेमें अब केवल तीन दिन ही शेष थे। दिति अत्यन्त प्रसन्न थीं। एक दिन शामको वह आलस्ययुक्त हो जूठे-मुँह बिना आचमन किये और बिना पैर धोये ही सो गयीं और उन्हें नींद आ गयी।

दितिकी उस त्रुटिको पाकर इन्द्र हाथमें वज्र लेकर उनके उदरमें प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने सोनेके समान चमकते हुए गर्भके वज्रद्वारा सात टुकड़े कर दिये, जब वह गर्भ रोने लगा तब उन्होंने 'मत रो', 'मत रो' यह कहकर सातों टुकड़ोंमेंसे प्रत्येकके और भी सात-सात टुकड़े कर दिये[2]। उन उनचास गर्भ-खण्डोंने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा—'देवराज! तुम हमें क्यों मार रहे हो? हम तो तुम्हारे भाई हैं।' इस प्रकार वज्रसे छिन्न-भिन्न करनेपर भी जब वे उनचास टुकड़े जीवित ही रहे तो इन्द्रने इसमें दितिकी नारायणकी आराधनाको ही कारण माना और उनसे कहा कि तुम सब अवध्य होनेके कारण तथा दितिके पुत्र होनेपर भी दैत्योंसे भिन्न देवता माने जाओगे। क्योंकि गर्भमें स्थित रहकर रोते हुए मैंने तुम्हें **'मा रुदत'**—मत रोओ—ऐसा कहा है, इसलिये तुम सब 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होओगे और तुम्हें यज्ञोंमें भाग भी मिलेगा[3]। इन्द्रके वज्रसे काटे गये दितिके गर्भके उनचास टुकड़े ही उनचास मरुद्गणोंके रूपमें विख्यात हो गये। इन्द्रने इन्हें सोमपायी देवगणोंमें स्थान दिया। इसी समय इन्द्र दितिके गर्भसे बाहर निकल आये। जब दितिकी आँख खुली तो उन्होंने देखा कि अग्निके समान तेजस्वी उनचास बालक इन्द्रके साथ खड़े हैं, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। दितिके पूछनेपर इन्द्रने सारी घटना उन्हें बता दी। अपने दुष्कर्मके लिये बार-बार उनसे क्षमा माँगी। दिति देवराज इन्द्रके शुद्धभावसे संतुष्ट हो गयीं। अन्तमें देवराज इन्द्र उनचास मरुद्गणोंको विमानमें बैठाकर अपने साथ देवलोकको ले गये। वे यज्ञ-भागके अधिकारी बने तथा देवताओंके विशेष प्रेमपात्र हो गये। ये मरुद्गण

१-श्रीमद्भागवत ६।१८ तथा मत्स्यपु० अ० ७, ब्रह्माण्डपुराण उपो० अ० ३, वायुपुराण, उत्त० अ० ६, विष्णुपु० १।२१ आदि पुराणोंमें मरुद्गणोंका आख्यान विस्तारसे वर्णित है।

२-रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः॥ (श्रीमद्भा० ६।१८।६२)

३-*अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति*॥
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः। मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः॥ (मत्स्यपु० ७।६१-६२)

इन्द्रके सहायक देवताओंके रूपमें विशेष प्रसिद्ध हुए। पुराणोंमें इन उनचास मरुद्‌गणोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—

१-सत्त्वज्योति, २-आदित्य, ३-सत्यज्योति, ४-तिर्यग्ज्योति, ५-सज्ज्योति, ६-ज्योतिष्मान्, ७-हरित, ८-ऋतजित्, ९-सत्यजित्, १०-सुषेण, ११-सेनजित्, १२-सत्यमित्र, १३-अभिमित्र, १४-हरिमित्र, १५-कृत, १६-सत्य, १७-ध्रुव, १८-धर्ता, १९-विधर्ता, २०-विधारय, २१-ध्वान्त, २२-धुनि, २३-उग्र, २४-भीम, २५-अभियु, २६-साक्षिप, २७-ईदृक्, २८-अन्यादृक्, २९-यादृक्, ३०-प्रतिकृत् ३१-ऋक्, ३२-समिति, ३३-संरम्भ, ३४-ईदृक्ष, ३५-पुरुष, ३६-अन्यादृक्ष, ३७-चेतस, ३८-समिता, ३९-समिदृक्ष, ४०-प्रतिदृक्ष, ४१-मरुति, ४२-सरत, ४३-देव, ४४-दिश, ४५-यजुः, ४६-अनुदृक्, ४७-साम, ४८-मानुष और ४९-विश्[1]।

पुराणोंके अनुसार सृष्टि-चक्रमें धर्मकी समुचित व्यवस्थाके लिये स्वायम्भुवादि चौदह मन्वन्तरोंमें अलग-अलग मनु, सप्तर्षि तथा देवगण बतलाये गये हैं। इस सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके सात देवगणोंमें मरुद्‌गण भी परिगणित हैं[2]।

ये मरुद्‌गण बल, वीर्य एवं पराक्रमके भी अधिष्ठाता देव हैं। ओजकी प्राप्तिके लिये भी इनकी उपासना होती है।

आचार्य यास्कने मरुद्‌गणोंको मध्य या अन्तरिक्षस्थानीय देवताओंमें निर्दिष्ट किया है। मरुत् शब्दकी व्याख्यामें वे लिखते हैं कि मित या परिमित मात्रामें 'रव'—शब्द करनेके कारण अथवा शीघ्र ही कृपाकर अपार वस्तुओंको प्रदान करनेके कारण मरुत् कहलाते हैं।

वेदान्तसूत्रमें भगवान् व्यास तथा शंकर आदि भाष्यकारोंने **'एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः'** (२।३।८) इस सूत्रमें पर्याप्त विवेचना करते हुए बताया है कि मरुद्‌गणों या मातरिश्वा अर्थात् अपने उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्षमें साँस लेने, शब्द करने तथा विशेषरूपसे विचरण करनेके कारण इनके नामकी अन्वर्थकता है।

छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदोंमें 'वायु' को नित्य एवं अनादि माना गया है। इनकी उत्पत्तिका उल्लेख भी नहीं हुआ है, किंतु वेदान्त या उपनिषदोंके प्रकरणोंमें **'आकाशाद्वायुः'**— आकाशके द्वारा वायुकी उत्पत्ति हुई है—इस वचनके समन्वयमें आचार्य शंकरका कथन है कि जैसे अग्नि, जल या अन्य अभिव्यक्त पदार्थ तिरोहित या स्थानान्तरित होते देखे जाते हैं, वैसे सर्वव्यापक वायुमें प्राकट्य या तिरोहितत्व नहीं दीखता। वह सम्पूर्ण जगत्‌में तथा सभी प्राणियोंके अंदर-बाहर अनुस्यूत है, इसीलिये मरुद्गणों या मातरिश्वाको जगत्प्राण भी कहा गया है। क्योंकि इनके अभावमें कोई भी प्राणि-पदार्थ जीवित नहीं रह सकता। मरुत् शब्दकी व्युत्पत्तिमें आचार्य पाणिनि, शाकटायन, उज्ज्वलदत्त, क्षीरस्वामी, भरतस्वामी तथा रायमुकुट आदि विद्वानोंका भी यही निर्विवाद मत है।

मरुतोंकी प्रत्यक्ष-अनुमान आदि प्रमाणोंसे सिद्धि देवाधिदेव परमात्माकी सिद्धिमें भी सहायक है, क्योंकि जिस प्रकार प्राणकी शरीरके बाह्याभ्यन्तर व्याप्ति अनुमित तथा अनुभूत होती रहती है, वैसे ही उसके मूल कारण या उनसे भी सूक्ष्म तत्त्व मन, बुद्धि और चिदात्माकी भी संकल्प-विकल्प, विवेचना एवं नियमनके द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। इसी प्रकार समष्टि मातरिश्वासे अधिक सूक्ष्मतत्त्व महदाकाश, महत्तत्त्व एवं परब्रह्म परमात्माकी भी सुस्पष्ट अनुभूति एवं प्रमाण सिद्धि हो जाती है। इसी रहस्यको व्यक्त करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि जिस प्रकार आकाशमें स्थित, अपने लक्षणोंसे सर्वत्र व्याप्त मातरिश्वा (मरुत्) स्पष्ट अनुभूत एवं अनुभवगम्य होता है, उसी प्रकार यह आकाश, सभी मरुद्गण एवं तदन्तर्भूत जड चेतन-प्राणिवर्ग भी मुझमें स्थित हैं, यह सभीको समझना चाहिये—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥

(९।६)

१-वायुपु० ७।१२३-१३०, ब्रह्माण्ड, गरुड तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणादिमें भी ये नाम आये हैं, किंतु कुछ नामभेद है।

२-साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ। आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्तदेवगणाः स्मृताः॥ (मत्स्यपु० ९।२९)

विश्वेदेवगण और उनकी महिमा

(डॉ॰ श्रीबसन्तवल्लभजी भट्ट, एम्॰ए॰, पी-एच्॰डी॰)

'विश्वेदेव' देवताओंका एक समूह-विशेष है। ये *गणदेवता* भी कहलाते हैं। जिस प्रकार आदित्यों, रुद्रों, वसुगणों एवं मरुतोंका समूह है, वैसे ही 'विश्वेदेव' इस शब्दसे बहुत देवताओंका बोध होता है। आचार्य यास्ककी मान्यता है कि 'विश्वेदेव' में 'विश्व' शब्द 'सर्व' शब्दका पर्याय है, अर्थात् **'विश्वेदेवाः'** से तात्पर्य **'सर्वे देवाः'** अथवा सभी देवताओंसे है। 'विश्वेदेव' यह नाम इसीलिये सार्थक है कि वे सभी देवताओंके प्रतिनिधिस्वरूप हैं। ऋग्वेदमें विश्वेदेवोंकी महिमापरक पचाससे अधिक सूक्तोंके[1] अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि ऋग्वेदादिमें अग्नि, वरुण, मित्र, इन्द्र, रुद्र, द्वादश आदित्य, मरुद्गण, वसुगण, द्यावापृथिवी, अदिति, सरस्वती आदि नदियों—जितने भी देवताओंकी स्तुतियाँ हैं, प्रायः वे सभी विश्वेदेवगणोंकी ही स्तुतियाँ हैं। संहिताओंके साथ ही ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों तथा कर्मकाण्डके ग्रन्थोंमें इनके स्वरूप तथा कार्योंका उल्लेख प्राप्त होता है। निरुक्तके रचयिता आचार्य यास्कने दैवतकाण्डमें विश्वेदेवोंका संक्षेपमें सुन्दर परिचय दिया है और ऋग्वेदमें प्राप्त तीन ऋचाओं (१।३।७-९) को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए वैश्वदेवी गायत्रीके नामसे अभिहित किया गया है।

ऋग्वेदमें विश्वेदेवगणोंकी स्तुतिमें विनियुक्त, उनकी महिमाका ख्यापन करनेवाला तथा उनके कार्योंको बतानेवाला एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूक्त है,[2] जो सभी याज्ञिक अनुष्ठानों तथा पूजा-संस्कारादि शुभ कार्योंके प्रारम्भमें स्वस्तिवाचन, विघ्ननिवृत्ति एवं कल्याण-मङ्गलपाठके रूपमें सर्वत्र पठित होता है। इस सूक्तमें दस ऋचाएँ हैं, जिन्हें आचार्य सायणने अनेक प्रमाणोंके आधारपर वैश्वदेव-शस्त्र-प्रयोगमें ही विनियुक्त माना है। केवल दसवीं **'अदितिर्द्यौः॰'** इस ऋचाको अदितिदेवतापरक माना है। सूक्तका आरम्भ **'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो॰'** इस ऋचासे तथा समापन **'शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा॰'** इससे होता है।

इस सूक्तके ऋषि गौतम विश्वेदेवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि हे विश्वेदेवगण! आप सभी दिशाओंसे यहाँ शीघ्र ही पधारें और सभी यज्ञोंमें सम्यक् फल-साधनके लिये समस्त विघ्न-बाधाओंको निवृत्त करते हुए सम्यक् विधान करें। आप हमारे यज्ञकी तथा सभी ऋत्विजोंसहित यज्ञमें प्रवृत्त व्यक्तियोंकी रक्षा करें। आप सभी दिव्य गुणोंसे समलंकृत हैं। यहाँ सभी प्रकारके यज्ञ-साधनोंकी वृद्धिका विधान करें। हे विश्वेदेवगण! आप हमें कल्याणदायिनी सुन्दर बुद्धि प्रदान करें, हमारे शत्रुओंको निवृत्त करें। हम आप सभी विश्वेदेवोंसे सख्य या मैत्रीभाव स्थापित कर रहे हैं, आप हमें दीर्घ आयुष्य प्रदान करें। हम अत्यन्त प्राचीन वेदवाणीके द्वारा इस सत्रमें भजनीय एवं पूजनीय भग देवता, अपार धन-सम्पत्तिदायक एवं शत्रुओंके विनाशक मित्रदेवता, नित्य एवं सर्वसमृद्धिमती देवमाता अदिति, प्राणरूपी प्रजापति दक्ष, नित्यशोषणरहित *जगत्प्राण-स्वरूप सर्वत्र वर्तमान मरुद्गण,* मन्देह आदि असुरोंको नष्ट करनेवाले अर्यमारूप सूर्य, रात्रिके अभिमानी देवता वरुण, दो श्रेष्ठ अश्वयुक्त दो अश्विनीकुमार, सभी प्रकारके ज्ञान, ऐश्वर्य एवं समृद्धिसम्पन्ना सुभगा सरस्वतीदेवी आप सभीका सादर आवाहन कर रहे हैं। वायुदेवता हमें श्रेष्ठ ओषधि प्रदान करें। सर्वत्र सभी सुखोंकी उद्भवस्थाना भगवती पृथ्वी हमें श्रेष्ठ ओषधि, रत्न तथा फल आदि प्रदान करें और सभीके पिता द्यौरूपी वृष्टिदेवता भी हमें ओषधि प्रदान करें। सोमलताओंको रसरूप प्रदान करनेवाले, सोम-अभिषवके साधनभूत प्रस्तररूप देवता भी हमें श्रेष्ठ ओषधि प्रदान करें। देवताओंके चिकित्सक एवं निर्मल बुद्धियुक्त अश्विद्वय आप दोनों भी हमारी प्रार्थनाको सुनें और हमें श्रेष्ठ

१-ऋग्वेद १।१०५, १०६; २।२९; ३।५, ५४—५७; ४।५५; ५।४१—४३, ४६—५१; ६।४९—६१; ७।३४—३७, ३९-४०, ४२-४३,४८; ८।२७—३०,८३; १०।३१,३३, ३५-३६, ५२, ५६-५७, ६१—६६, ९२-९३, १०१, १२६, १२८, १३७, १४१, १६५, १८१।

२-ऋग्वेद प्रथम मण्डलका यह ८९वाँ सूक्त वाजसनेयिसंहिता २५।१४—२३, काण्वसंहिता तथा मैत्रायणीसंहिता और ब्राह्मण, आरण्यकोंमें भी प्रायः यथावत् रूपमें प्राप्त होता है।

ओषधि प्रदान करें।

परम ऐश्वर्यशाली तथा स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वके स्वामी इन्द्रका भी हम अपनी रक्षाके लिये आवाहन कर रहे हैं। वे अपने सत्कर्मोंद्वारा हमें प्रसन्न करें और पूषा देवता भी हमारे वेद-साधनोंके संवर्धनमें सभी उपायोंसे सहयोग प्रदान करें तथा हमारे शत्रुओंके विनाश तथा हमारी रक्षाके उपाय बनें। प्रभूत यशःसम्पन्न, स्तुतिसम्पन्न एवं यज्ञके हविर्लक्षणभूत अन्नसम्पन्न इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें। सारे संसारके रहस्योंके जाननेवाले, सभी ज्ञान, धन तथा समृद्धियोंका पोषण करनेवाले पूषा देवता हमारे लिये अविनाशी कल्याण (योग-क्षेम) का विधान करें। जिनके आयुध कभी नहीं घिसते अथवा जिनकी गति सदा अव्याहत बनी रहती है, वे तृक्षके पुत्र (तार्क्ष्य) गरुडदेव और सभी महान् देवताओंका पालन करनेवाले देवगुरु बृहस्पति हमारे लिये अविनाशी कल्याणका विधान करें। चितकबरे (सफेद-काले) घोड़ोंसे युक्त, गौको माताके समान माननेवाले, सुन्दर चालवाले, यज्ञोंमें आवाहन करनेपर पहुँच जानेवाले, सूर्यके समान तेज दृष्टिवाले विश्वेदेवस्वरूप मरुद्गण इस यज्ञमें पधारें।

हे विश्वेदेवगण! हम पूरी आयुतक कानोंद्वारा कल्याणमयी वार्ता सुनें, कल्याणदायक पदार्थोंका नेत्रोंद्वारा दर्शन करें और स्थिर एवं पुष्ट शरीरसे जीवनभर आपकी स्तुति-प्रार्थना करते रहें।

ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलके ५१वें सूक्तकी ११ से १५ ये पाँच ऋचाएँ ऋग्वेदीय स्वस्तिवाचन-मन्त्रके रूपमें विनियुक्त होती हैं, जिसका आरम्भ **'स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः'** इस प्रकारसे और अन्त **'स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव॰'** इस ऋचापर होता है। विश्वेदेवोंकी स्तुतिपरक इन ऋचाओंके पाठसे सर्वत्र सुख-शान्ति तथा क्षेम-मङ्गलकी अभिवृद्धि होती है।

ऋग्वेदके दो मन्त्र जो श्राद्धादि-कर्मोंमें विश्वेदेवोंके आवाहनमें प्रयुक्त होते हैं, विशेष महत्त्वके हैं, ये मन्त्र इस प्रकार हैं—

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्।
एदं बर्हिर्नि षीदत।
विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्[1]**॥**

(ऋग्वेद ६।५२।७, १३)

इन मन्त्रोंमें सभी विश्वेदेवताओंसे स्तुति तथा आवाहित किये जानेपर बिछाये गये कुशासनपर बैठनेकी प्रार्थना की गयी है।

सातवें मण्डलमें ९ सकल सूक्त हैं[2], जो विश्वेदेवगणोंकी स्तुतिमें प्रयुक्त हैं तथा कुछ आंशिक स्तुतियाँ भी हैं, इन सभी सूक्तोंमें प्रायः पूर्वोक्त इन्द्रादि देवोंको विश्वेदेवरूप मानकर मैत्रावारुणि वसिष्ठद्वारा उनसे शुद्ध बुद्धिकी कामना तथा वाणीमें परिष्कार, योगक्षेम, सुख-शान्ति और दीर्घ आयु प्रदान करते हुए यज्ञकी रक्षा तथा उसकी अभिवृद्धिके लिये प्रार्थना की गयी है। इन सभी सूक्तोंकी अन्तिम चौथाई ऋचामें **'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।'** यह पाठ उल्लिखित है, जिसका भाव है—'हे विश्वेदेवगण! आप सभी अपनी कल्याणकारी वृष्टियोंके द्वारा हमारी रक्षा करें, पालन करें तथा मङ्गल करें।'

ऋग्वेदके समान ही यजुष् तथा साम आदि संहिताओंमें भी विश्वेदेवगणोंका पर्याप्त उल्लेख हुआ है। सामवेदमें प्रायः सभी ऋचाएँ ऋग्वेदके समान ही हैं। अथर्ववेदमें कई स्वतन्त्र सूक्त हैं, जो ऋग्वेदमें नहीं आये हैं। अथर्ववेदके प्रथम काण्डके ३०वें सूक्तमें अथर्वा ऋषिने आयुष्कामनासे बड़ी श्रद्धा-भावनासे विश्वेदेवोंकी प्रार्थना की है। वे कहते हैं कि 'हे विश्वेदेवगण; वसुगण, धाता, अर्यमा! आप सभी मिलकर हमारे इस यजमानकी आयुकी रक्षा करें और कोई भी इसके सजातीय या विजातीय शत्रु इसकी हिंसा न कर सकें। सभी तैंतीस (११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु तथा द्यावापृथिवी) देवता, पितृगण इस आयुष्काम यजमानकी आयु बढ़ावें। यह सौ वर्षतक जीवित रहे और आधि-व्याधि एवं मृत्युके भयसे मुक्त रहे। प्रयाजके द्वारा उपासित अग्निदेव तथा तीनों सवनोंके द्वारा उपास्य अन्य विश्वेदेवता, इन्द्र, अग्नि आदि मुख्य देवगण अपने हविर्भागको ग्रहण करें और यजमान पुरुषकी आयुकी

१-ये दोनों मन्त्र यजुर्वेदमें क्रमशः ७।३४ तथा ३३।५३ में भी यथावत् प्राप्त होते हैं।
२-ऋग्वेद ७।३४—३७, ३९, ४०, ४२, ४३ तथा ४८ वाँ सूक्त।

रक्षा करें। मैं आप सभी देवताओंको इसकी आयुर्वृद्धिके लिये सत्रसद् (यज्ञशालाके सभासद्) के रूपमें नियुक्त करता हूँ।

यजुर्वेदमें ऋग्वेदकी अपेक्षा विश्वेदेवोंके मन्त्र कम प्राप्त होते हैं। कई मन्त्र तो वही हैं जो ऋग्वेदमें हैं। विशेषरूपसे पिण्ड-पितृयज्ञ-सूक्तों एवं श्राद्ध-सूक्तोंके अन्तर्गत प्राप्त होते हैं। इनमें **'विश्वे देवास आगत॰'** (यजु॰ ७।३४) तथा **'विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं॰'** (यजु॰ ३३।५३) ये दो विश्वेदेवोंके मन्त्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि 'हे विश्वेदेवगण! आप हमारी स्तुति एवं प्रार्थनाको सुनिये तथा इस बिछाये गये कुशासनपर बैठिये। इस बड़े पात्रमें अभिषुत सोमरसको आनन्दसे ग्रहण कीजिये। ये आप लोगोंके लिये ही निवेदित हैं; दूसरेके लिये नहीं। जो अन्तरिक्षमें निवास करते हैं, जो द्युलोकमें निवास करते हैं, जो अग्निके द्वारा आहुतियोंको ग्रहण करते हैं और जिनकी यज्ञोंमें सादर स्तुति होती है, वे विश्वेदेवगण यहाँ पधारकर इस कुशासनपर बैठकर अपना भाग ग्रहण करें।

पूर्वोक्त विवरणोंसे स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओंमें विश्वेदेवोंकी अत्यधिक महिमा कही गयी है और उनका 'विश्वेदेव' यह नाम इसलिये सार्थक है कि वे सभी देवताओंके प्रतिनिधिस्वरूप हैं। विश्वेदेवसे तात्पर्य है सभी देवता अर्थात् अग्नि, वरुण, मित्र, इन्द्र, द्वादशादित्य, मरुद्गण, वसुगण, द्यावापृथिवी आदि जितने भी देवता संहिताओंमें परिपठित हैं, प्रायः सभी देवता विश्वेदेवगण कहे गये हैं[1]। जहाँ वेदोंमें सभी देवोंको विश्वेदेव कहा गया है, वहीं महाभारत तथा पुराणादिमें इनकी संख्या कहीं तिरसठ, कहीं तेरह तथा कहीं दस बतायी गयी है। पुराणों तथा कर्मकाण्डादि एवं स्मृति-ग्रन्थोंमें विश्वेदेवोंका विशेष प्रयोजन श्राद्धके कर्माङ्गोंसे बतलाया गया है। पिण्ड-पितृयज्ञादि कर्मोंमें वैश्वदेवार्चन तथा वैश्वदेव-होम आवश्यक होता है।

महाभारतके अनुसार दक्ष प्रजापतिकी पुत्री विश्वाके पुत्र विश्वेदेव हैं, जो संख्यामें तिरसठ हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[2]—

बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पाष्णि समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्ति कृत्, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, वज्री, वरी, विश्वेदेव, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सूर्यसावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, वि दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्ता, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आ रश्मिवान्, सप्तकृत्, सोमवर्चा, विश्वकृत, कवि, अनु सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर।

इन विश्वेदेवोंके मुख अग्निदेवता कहे गये हैं अग्निमें हवन करनेसे ही इन्हें हव्य-कव्यकी प्राप्ति होती है यज्ञमें भी भाग प्राप्त होता है और श्राद्धके भी ये मुख्य हैं। इनके द्वारा ही पितरोंको दी गयी पुष्पमाला, गन्ध, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, अन्न, वस्त्र आदि वस्तुएँ प्राप्त होतं ये विश्वेदेवगण कालकी गतिको जाननेवाले हैं। विश्वेदे पितरोंका सहायक माना गया है और ब्रह्माजीद्वारा श्र पितरोंके साथ इनके भाग निश्चित किये गये हैं।

ब्रह्माजीद्वारा विश्वेदेवोंका श्राद्धमें भाग-निर्धा

ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घातपाद अ॰ १२ तथा वायुपु प्रायः समान शब्दोंमें विश्वेदेवोंकी उत्पत्तिसहित उनके नाम तथा प्रयोजनपूर्वक इतिहासका भी निरूपण हुआ है। तद् दक्षपुत्री विश्वाके गर्भसे दस संतानें हुईं। जननके कुछ पश्चात् जब ये बड़े हुए तो हिमालयके रमणीय शिखरपर मनसे उग्र तपमें प्रवृत्त हुए। उनकी तपस्या देखकर पित उनसे कहा कि 'आपलोग हमसे वर माँगें, हम आपकी कामनाको पूर्ण करें।' इसी समय लोकपावन ब्रह्माजी भी पहुँच गये और उन्होंने कहा—'हम भी आपलोगोंकी तपस् बहुत प्रसन्न हैं, आप क्या चाहते हैं?' इसपर उन्होंने कहा 'पितरोंके श्राद्धमें हमलोगोंको भी भाग मिलना चाहिये, इसी वरकी कामना करते हैं।' तब ब्रह्माजीने कहा- 'आपलोगोंको श्राद्धमें पितरोंके साथ अवश्य भाग प्र

1-मनुस्मृति (३।८४) में भी प्रायः वेदोंमें निर्दिष्ट विश्वेदेवोंका ही संकेत मिलता है और मन्त्र भी वही पढ़े गये हैं, जो ऋग्वेद तथा यजुर्वेद आ प्राप्त होते हैं।

2-महा॰ अनु॰ ९१।२९—३७।

होगा।' पितरोंने भी कहा—'ब्रह्माजी जैसा कह रहे हैं अवश्य ही वैसा होगा। हमलोगोंके लिये जो भी श्राद्ध उपकल्पित होगा उसमें आपलोगोंको सर्वप्रथम भाग प्राप्त होगा तथा आपकी गन्ध, माल्य, वस्त्र और अन्नसे पूजा भी पहले ही की जायगी। आपको ही पहले कव्य-भाग प्राप्त होकर हमलोगोंको अर्चन तथा अन्नका भाग दिया जा सकेगा। विसर्जन हमलोगोंका पहले तथा आप सबका बादमें होगा[1]। श्राद्धकी रक्षा और हमारे पास अन्नादिके पहुँचनेमें आपलोगोंका विशेष योग होगा।' इस प्रकार वर प्रदान कर पितरोंके साथ ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

पुराणोंमें धर्मकी पत्नी विश्वाके दस पुत्र बताये गये हैं, जो विश्वेदेव कहलाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, मुनि, पुरूरवा, आर्द्रवस तथा रोचमान।[2]

स्मृति-ग्रन्थोंमें इष्टि, नान्दीमुख, पार्वण आदि श्राद्धभेदोंके आधारपर विश्वेदेवोंकी संख्या क्रतु, दक्ष, ध्वनि (धुरि), रोचन (लोचन), पुरूरवा, आर्द्रव, काल, काम, सत्य तथा वसु—इस प्रकारसे दस ही बतायी गयी है, किंतु कहीं-कहीं नामान्तर है[3]।

शङ्ख, बृहस्पति आदि स्मृतियोंमें इष्टि (कर्माङ्ग-श्राद्ध), नान्दीमुख, पार्वण एवं नैमित्तिक श्राद्धोंमें दो-दो विश्वेदेवोंकी कीर्तन-पूजनकी विधि निर्दिष्ट है। तदनुसार इष्टि-श्राद्धमें क्रतु और दक्ष, नान्दीमुखमें सत्य और वसु, काम्य-श्राद्धमें धूलि और रोचन, पार्वण-श्राद्धमें पुरूरवा और आर्द्रव तथा नैमित्तिक श्राद्धमें काल और कामका नामसंकीर्तन एवं अर्चन होता है।

विश्वेदेवोंका स्वरूप—ये विश्वेदेवगण दो भुजाओंसे युक्त हैं और दोनों भुजाओंमें क्रमशः धनुष-बाण धारण किये हुए, श्वेत वस्त्र पहने, केयूर, कुण्डल, किरीट तथा कटक आदि आभूषणोंसे अलंकृत, धैर्य और सौन्दर्य आदि गुणोंसे संयुक्त, दिव्य चन्दन, माला, अङ्गराग आदिसे अनुलिप्त हैं। ये इन्द्रके अनुयायी हैं और स्वर्गकी रक्षा करनेवाले हैं—

वाणवाणासनधरा द्विभुजाः श्वेतवाससः।
केयूरिणः कुण्डलिनः किरीटकटकान्विताः॥
धैर्यसौन्दर्यसंयुक्ता दिव्यस्त्रगनुलेपनाः।
इन्द्रस्यानुचराः सर्वे गोप्तारस्त्रिदिवस्य ते॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणि, श्राद्धकल्पमें गरुडपुराणके वचन)

आभ्युदयिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट श्राद्धादि कर्मोमें श्राद्धके पूर्व विश्वेदेवोंका आवाहन-पूजन परमावश्यक होता है, उसकी संक्षिप्त विधि गरुडपुराण, पूर्वखण्ड अ० २१८ में दी गयी है। तदनुसार श्राद्धकर्ममें विश्वेदेवताओंका संकल्प-पूजनपूर्वक **'ॐ विश्वे देवास आगत०** तथा **ॐ विश्वे देवाः शृणुतेमं०'** इत्यादि ऋग्यजुःप्रसिद्ध दो मन्त्रोंसे विश्वेदेवोंका आवाहन किया जाता है। आवाहनके पौराणिक,तान्त्रिक मन्त्र भी निर्दिष्ट हैं—

ॐ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये अत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥

(ग० पु०, पू० ख० २१८।७)

तदनन्तर विश्वेदेव-पात्रका निर्माण होता है, जिसमें एक पलाशपत्रका एक पात्र (दोना) बनाकर उसमें प्रादेशमात्रके कुशोंसे पवित्री बनाकर रखा जाता है तथा फिर **'शन्नो देवीरभिष्टय०'** इस मन्त्रसे जल डाला जाता है। उसके बाद उसी पात्रमें जौ, तिल, चन्दन छोड़ना चाहिये। इस अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख स्थापितकर विश्वेदेवोंको अर्पित किया जाता है। **'विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुगयज्ञोपवीतानि नमः। गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु'**—यह कहकर गन्ध-पुष्पादि अर्पित किया जाता है और फिर विश्वेदेवोंकी सहायतासे ही पितृ-पितामहों आदिका श्राद्ध सम्पन्न किया जाता है। पुराणोंके अनुसार ये विश्वेदेवगण ही श्राद्धकी

१- ....।अस्माकं कल्पिते श्राद्धे युष्मानग्रासनं हि वै॥
भविष्यति मनुष्येषु सत्यमेतद्ब्रुवामहे। माल्यैर्गन्धैस्तथान्नेन युष्मानग्रेऽर्चयिष्यति॥
अग्रे दत्त्वा तु युष्माकमस्माकं दास्यते ततः। विसर्जनमथास्माकं पूर्वं पश्चात्तु दैवतम्॥
(ब्रह्माण्ड पु० ३।१२।११—१३)

२-विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः। क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो मुनिस्तथा॥
पुरूरवो ह्यार्द्रवसो रोचमानश्च ते दश। धर्मपुत्राः सुरा एते विश्वायां जज्ञिरे शुभाः॥
(ब्रह्माण्डपु० २।३।३०-३१)

३-प्रजापति-स्मृति १७९-१८०।

वस्तुओंको पितरोंतक पहुँचानेमें समर्थ होते हैं और उन्हें सम्यक्-रूपसे प्राप्त करा देते हैं।

विश्वेदेवोंकी कृपासे सुबन्धु जीवित हो उठे

इक्ष्वाकु-वंशमें असमाति नामके एक राजा थे। उनके बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु नामक ये चार भाई थे। ये पौरोहित्यका काम करते हुए राजाकी रक्षा करते थे। किसी कारणवश राजाने इन चारों पुरोहितोंका परित्याग कर दो अन्य मायावियोंका पुरोहितरूपमें वरण कर लिया, जिससे दोनों पुरोहित-वर्गमें कुछ द्वेषभाव रहने लगा। आगे चलकर मायावियोंने सुबन्धुको मार डाला। तीनों भाई अत्यन्त दुःखी हुए, उन्होंने विश्वेदेवोंकी प्रार्थना की, जिससे विश्वेदेव प्रसन्न हो गये और मृत सुबन्धुके मन और प्राण आवर्तित हो गये और उन्हें पुनः जीवन प्राप्त हुआ। यह विश्वेदेवोंकी आराधनाका ही फल था। इसलिये पुनर्जीवन-प्राप्तिके हेतु भी विश्वेदेवोंकी उपासना की जाती है।[1]

(क्रमशः)

अन्य देवता

वेदमाता गायत्री और उनका स्वरूप

(श्रीजनार्दनप्रसाद सिंहजी)

नमो नमस्ते गायत्रि सावित्रि त्वां नमाम्यहम्।
सरस्वति नमस्तुभ्यं तुरीये ब्रह्मरूपिणी॥

'हे गायत्री देवि! हे सावित्री! मैं आपको प्रणाम करता [हूँ]। हे सरस्वती देवि! आपको मेरा नमस्कार है। ब्रह्मरूपिणी [तु]रीयावस्था स्वरूपे! आपको मेरा नमस्कार है।'

परमात्मा तु या लोके ब्रह्मशक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्त्विका चैव गायत्री साभिधीयते॥

'समस्त लोकोंमें परमात्मस्वरूपिणी जो ब्रह्मशक्ति विराज [र]ही है वही सूक्ष्म-सत्-प्रकृतिके रूपमें गायत्रीके नामसे ही [अ]भिहित होती है।'

वेदमाता गायत्री ज्ञानकी जननी तथा भारतीय एवं आर्य-[सं]स्कृतिका प्राण है। गायत्री-मन्त्र वैदिक कालसे ही सर्वविदित [ए]वं प्रतिष्ठित है, जिसकी वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण एवं [अ]न्य शास्त्र एक स्वरसे महिमा गाते रहे हैं। गायत्री हमारी [भ]ारतीय एवं सनातन धर्मकी पुण्यतमा स्मृति एवं बहुमूल्य [ध]रोहर है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इस बातका गौरव [हो]ना चाहिये कि गायत्री-जैसा महान् अमोघ मन्त्र हमारा [अ]नादिकालसे परम्परागत ज्ञान एवं जीवनका प्रेरणा-स्रोत [र]हा है।

गायत्री हृदयकी चैतन्य ज्योति ब्रह्मरूपा है, जहाँ [प]हुँचनेके लिये प्राण, व्यान, अपान, समान एवं उदान—इन [पा]ँच प्राण-रूपी द्वारपालोंको वशमें करना पड़ता है। गायत्रीकी प्राणप्रक्रिया एक सनातन नैसर्गिक पद्धति है, जिसकी साधनासे साधकका शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक बल विकसित होता है। गायत्रीकी साधनासे हृदयस्थित ब्रह्मरूप गायत्रीका साक्षात्कार होनेके साथ-साथ साधकको लौकिक एवं पारलौकिक सुख तो प्राप्त होता ही है, उसकी कुल-परम्परामें पराक्रमी एवं वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं। यही नहीं, वरन् गायत्री इस संसारके समस्त क्रिया-कलापको शक्तिरूपेण परिचालित करती रहती है।

इतिहास-पुराणोंके आलोडन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि देवीभागवत, श्रीमद्भागवत आदि कई पुराणों और योगियाज्ञवल्क्य, ब्रह्मयोगियाज्ञवल्क्य, बृहद्योगियाज्ञवल्क्य तथा विश्वामित्र, काण्व आदि स्मृतियोंका निर्माण गायत्री-माहात्म्य एवं उसके जप-विधानके निर्देशके लिये ही हुआ है। इस सम्बन्धमें मत्स्यपुराण (अ० ५३) का सुप्रसिद्ध एक श्लोक इस प्रकार है—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
हयग्रीवं ब्रह्मविद्यां तं वै भागवतं विदुः॥

अर्थात् 'भागवत' उसीका नाम है, जिसमें गायत्री-सम्बन्धी धर्मोंका विस्तारसे वर्णन हो। यह बात श्रीमद्भागवत तथा देवीभागवतमें स्पष्ट परिलक्षित होती है। श्रीमद्भागवतके आदि-अन्तमें **'सत्यं परं धीमहि'** ये पद इसीके सूचक हैं। बादमें इन्हीं स्मृति, पुराण और कल्पसूत्रोंका आश्रय लेकर

[1] ऋग्वेद १०।५७—६० तकके चार सूक्तोंमें विश्वेदेवोंसे मृत सुबन्धुको जीवनदानकी प्रार्थना की गयी है। सुबन्धु जीवित हो गये। इससे विश्वेदेवोंकी महिमा तथा कृपाका किञ्चित् ख्यापन होता है।

वेदमाता गायत्री

ात्री-पञ्चाङ्ग, गायत्री-पुरश्चरणपद्धति, गायत्री-दशाङ्ग, ात्री-उपासना आदि कई निबन्ध-ग्रन्थ लिखे गये। सन्ध्या-ष्य, गायत्री-भाष्य और सन्ध्या-भाष्यसमुच्चयमें भी इस ्रयपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मोर प्राच्यसंस्थानसे ्राशित ७०० पृष्ठोंके 'सन्ध्या-गायत्रीमाहात्म्यसंग्रह' में पुराण ं स्मृतियोंके श्लोक संगृहीत हैं। 'गायत्रीसहस्रनाम' के भी भिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं।

गायत्री यद्यपि एक वैदिक छन्द है, तथापि इसकी एक ्रीके रूपमें मान्यता है। तीनों कालों और विविध गृह्यसूत्रोंके ्नुसार इनके ध्यानके अनेक भेद हैं। 'शारदातिलक' में भी ्रस्तारसे गायत्री-प्रकरण आया है। पौराणिक परिचयके ्नुसार ये ब्रह्माकी मानसपुत्री हैं (ब्रह्माण्ड० ४।४८।८६)। ्रंतु पद्मपुराणमें ये ब्रह्माकी शक्ति कही गयी हैं। इनका दूसरा ाम सावित्री भी है। पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें इनका विस्तृत चरित्र वर्णित है। इनकी महिमामें कहा गया है—

तत्सद् ब्रह्मस्वरूपा त्वं किंचित् सदसदात्मिका।
परात्परेशी गायत्री नमस्ते मातरम्बिके॥

'इस संसारमें जो कुछ सत्-असत् है, वह सब ब्रह्म-स्वरूपा गायत्री है। हे अम्बिके मातः! तुम्हीं परसे भी पर हो, तुम्हें नमस्कार है।'

जगत्की प्राणस्वरूप सूर्यमण्डलस्थित इस दिव्य चितिशक्तिकी अपने यहाँ अति महिमा बतायी गयी है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते॥

'एकाक्षर प्रणव ही परम ब्रह्म है और प्राणायाम ही परम तप है और मौनसे सत्य ही विशिष्टतर है। गायत्रीसे उत्तम कोई मन्त्र नहीं है।' भगवान् वेदव्यास कहते हैं—

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात् पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सार उच्यते॥
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चैव च पावनम्॥

'जिस प्रकार पुष्पोंका सारभूत मधु, दूधका घृत, रसोंका सार पय है, उसी प्रकार गायत्रीमन्त्र समस्त वेदोंका सार है। गायत्री वेदोंकी जननी और पाप विनाशिनी है तथा उससे अन्य कोई पवित्र मन्त्र पृथ्वीपर या स्वर्गपर नहीं है।'

श्रीयास्काचार्यने गायत्री छन्दकी विवृतिमें कहा है—

'गायतो मुखादुदपतत् इति च ब्राह्मणम्।'

ब्रह्माजीके मुखसे वेदोच्चारणके समय प्रकट होनेके कारण इनका नाम गायत्री है।

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत्॥

(संवर्त-स्मृति)

यहाँ गायत्रीको वेदविद्याका प्राण और ब्रह्मविद्या कहा गया है। महाव्याहृति एवं प्रणवयुक्त गायत्री पापोंका क्षय करती हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—**'गायत्री प्रोच्यते तस्माद् गायतां त्रायते यतः।'** इसे गायत्री इसलिये कहते हैं कि यह जप या मन्त्रोच्चारण करनेवालेकी रक्षा करती है।

भगवान् शंकराचार्यके मतसे—**'गीयते तत्त्वमनया गायत्रीति'**—जिसके द्वारा तत्त्वका गान किया जाता है, वह गायत्री है।

गायत्री मन्त्रका स्वरूप

गायत्री मन्त्र ऋक्, यजुः, साम, काण्व, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय, काठक आदि सभी वैदिक संहिताओंमें प्राप्त होता है[1]। यह एक-एक संहितामें तीन-तीन या चार-चार बार आया है, किंतु सर्वत्र इसका स्वरूप एक ही मिलता है। इसमें २४ अक्षर हैं। मन्त्रका मूल स्वरूप इस प्रकार है—

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।' (वाजसनेयी-सं० ३।३५)

सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्माके प्रसिद्ध वरणीय तेजका (हम) ध्यान करते हैं, जो परमात्मा हमारी बुद्धिको (सत्की ओर) प्रेरित करे।

याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंने जिस गायत्री-भाष्यकी रचना की है, वह भी इन २४ अक्षरोंकी ही विस्तृत व्याख्या है। महाव्याहृतियाँ इससे भिन्न हैं और जप-प्राणायाम आदिमें

१-ऋक्संहिता ३।६२।१०, साम० १४६२ आदि।

प्रयोगानुसार व्यवहृत होती हैं।

इस दिव्य महामन्त्रके द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र हैं। गायत्री मन्त्रके २४ अक्षर तीन पदोंमें विभक्त हैं। अतः यह त्रिपदा गायत्री कहलाती है। गायत्री दैहिक, दैविक एवं भौतिक त्रिविध तापहन्त्री, त्रिगुणात्मिका एवं पराविद्याका स्वरूप है।

गायत्रीके तीन रूप हैं—सरस्वती, लक्ष्मी एवं काली। इन तीनों रूपोंसे पालन करनेवाली गायत्री त्रिगुणात्मिका (सत्, रज, तमोयुक्त) होती हुई निरन्तर प्रकाशित रहती है।

ह्रीं श्रीं क्लीं चेति रूपेभ्यस्त्रिभ्यो हि लोकपालिका।
भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका॥

(गायत्रीसंहिता)

गायत्री ही वेदोंकी माता तथा समस्त शास्त्रोंका सार कही गयी है। निःसंदेह चारों वेदोंको इस गायत्रीने ही प्रकट किया है—

गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्तस्या असंशयम्॥

(गायत्रीसंहिता)

गायत्रीदेवीके अनेक रूप हैं, जिनमें उनके मुख्य ध्यानका स्वरूप इस प्रकार है—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

(शारदातिलक २१। १५)

गायत्रीके पाँच मुख, (पाँच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान तथा पञ्चतत्त्व—पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाशके धारक-प्रेरक) हैं। ये कमलपर विराजमान होकर रत्न-हार-आभूषण आदि धारण करती हैं। इनके दस हाथ हैं, जिनमें क्रमशः दस आयुध—शङ्ख, चक्र, कमलयुग्म, वरद, अभय, कशा, अङ्कुश, उज्ज्वल पात्र एवं रुद्राक्षकी माला सुशोभित होते हैं।

किसी ब्रह्मनिष्ठ उपासकसे गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा लेकर उसकी उपासनाका विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिये। शुद्ध वस्त्र धारणकर शुद्ध वायुमण्डलमें शरीर और मनको पवित्र करके गायत्रीकी उपासना करनेका विधान है। त्रैवर्णिकोंके लिये गायत्रीकी नित्य उपासना अनिवार्य है। इसलिये स्वस्थचित्तसे श्रद्धा और निष्ठापूर्वक नित्यप्रति निर्धारित समयपर गायत्रीकी उपासना करनी चाहिये। यदि किसी भी मन्त्रका जप-उपासना आदि करनेपर निर्दिष्ट फल प्राप्त न हो तो भी निराश नहीं होना चाहिये, अपितु जन्मान्तरीय अन्तरायके निराकरणपूर्वक अधिक उत्साहसे पुनः अनुष्ठान करना चाहिये।

सर्वप्रथम स्नानादिसे शुद्ध होकर आसनपर बैठकर पवित्र चित्तसे शिखाबन्धन, भस्म-धारणादि करना चाहिये। गायत्री-संहितामें एवं अन्यत्र धर्मशास्त्रोंके अनुसार आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण एवं न्यास—ये गायत्री-उपासनाके पाँच मुख्य अङ्ग माने गये हैं। गायत्री-शक्तिका यथाविधि ध्यान करके करमाला, रुद्राक्ष या तुलसीकी मालासे जप करना चाहिये। प्रातःकालमें माला नाभिके पास, मध्याह्नमें हृदयके पास एवं सायंकालमें नासिकाके समीप रखकर जप करना चाहिये।

गायत्रीकी प्रशंसा मन्वादि स्मृतिकारों तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने भी मुक्तकण्ठसे की है। इसके लाभ अनन्त हैं। विद्वानों, आचार्यों तथा गायत्रीपुरश्चरण-पद्धति आदि ग्रन्थोंसे इसकी पूर्ण विधि जानकर इसके जपानुष्ठानद्वारा अधिकारी उपासकको लाभ उठाना चाहिये।

सर्वमय भगवान्‌को प्रणाम करो

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्मण्डल, समस्त प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष आदि वनस्पति, नदियाँ और समुद्र सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं, किसी भी जड-चेतन पदार्थको भगवान्‌का स्वरूप समझकर अनन्यभावसे प्रणाम करना चाहिये।'

धनाध्यक्ष राजाधिराज कुबेर

इतिहास, पुराणोंके अनुसार राजाधिराज धनाध्यक्ष कुबेर समस्त यक्षों, गुह्यकों और किन्नरों—इन तीन देवयोनियोंके अधिपति कहे गये हैं। ये नवनिधियों—पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्चस्के स्वामी हैं[१]। एक निधि भी अनन्त वैभवोंकी प्रदाता मानी गयी है और राजाधिराज कुबेर तो गुप्त, प्रकट संसारके समस्त वैभवोंके अधिष्ठातृ-देवता हैं। जैसे देवताओंके राजा इन्द्र हैं, गुरु बृहस्पति हैं, उसी प्रकार कुबेर निखिल ब्रह्माण्डोंके धनाधिपति होते हुए भी प्रधानरूपसे देवताओंके धनाध्यक्षके रूपमें विशेष प्रसिद्ध हैं। महाभारतमें यह भी कहा गया है कि महाराज कुबेरके साथ, भार्गव-शुक्र तथा धनिष्ठा नक्षत्र भी दिखलायी पड़ते हैं। इन तीनोंकी पूर्ण कृपा हुए बिना अनन्त वैभव या गुप्त निधिकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये वैभव आदिकी प्राप्तिके लिये इन तीनोंकी संयुक्त उपासनाका विधान विहित है।

राजाधिराज कुबेरके अन्य जन्मोंकी कथाएँ

प्रायः सभी पुराणोंके अनुसार पूर्वजन्ममें कुबेर गुणनिधि नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण थे। उन्हें सभी शास्त्रोंका ज्ञान था और सन्ध्या, देववन्दन, पितृपूजन, अतिथिसेवा तथा सभी प्राणियोंके प्रति दया, सेवा एवं मैत्रीका भाव था। वे बड़े धर्मात्मा थे, किंतु द्यूतकर्मियोंकी कुसंगतिमें पड़कर धीरे-धीरे अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति गँवा डाले थे। इतना ही नहीं, द्विजाति-जनोचित आचरणोंसे च्युत भी हो गये। अत्यन्त स्नेहवश माता पुत्रके दुष्कर्मोंकी चर्चातक उनके पितासे न कर सकी थीं। एक दिन किसी प्रकार जब उनके पिताको पता चला और उन्होंने गुणनिधिकी मातासे अपनी सम्पत्ति तथा पुत्रके विषयमें उसका पता पूछा तो पिताके प्रकोप-भयसे गुणनिधि घर छोड़कर भागकर वनमें चला गया।

इधर-उधर भटकते हुए संध्या-समय वहाँ गुणनिधिको एक शिवालय दीख पड़ा। उस शिवालयमें समीपवर्ती ग्रामके कुछ शिवभक्तोंने शिवरात्रिव्रतके लिये समस्त पूजन-सामग्री और नैवेद्यादिके साथ शिवाराधनका विधान किया था। गुणनिधि क्षुधार्त तो था ही। नैवेद्यादि देखकर उसकी बुभुक्षा और तीव्र हो गयी। वह वहीं समीपमें छुपकर उनके रात्रिमें सोनेकी प्रतीक्षामें उनके सम्पूर्ण क्रियाकलापोंको बड़े ध्यानसे देख रहा था। रात्रिमें उनके सो जानेपर जब एक कपड़ेकी बत्ती जलाकर पकवानोंको लेकर भाग ही रहा था कि उसका पैर एक सोये हुए पुजारीके पैरसे टकरा गया और वह व्यक्ति चोर-चोर चिल्लाने लगा। गुणनिधि भागा जा रहा था कि चोर-चोरकी ध्वनि सुनकर नगर-रक्षकने उसके ऊपर वाण छोड़ा, जिससे तत्क्षण गुणनिधिके प्राण निकल गये।

यमदूत जब उसे लेकर जाने लगे तो भगवान् शंकरकी आज्ञासे उनके गणोंने वहाँ पहुँचकर उसे यमदूतोंसे छीन लिया और उसे कैलासपुरीमें ले आये। आशुतोष भगवान् शिव उसके अज्ञानमें ही हो गये व्रतोपवास, रात्रिजागरण, पूजा-दर्शन तथा प्रकाशके निमित्त जलाये गये वस्त्रवर्तिकाको आर्तिक्य मानकर उसपर पूर्ण प्रसन्न हो गये और उसे अपना शिवपद प्रदान किया। बहुत दिनोंके पश्चात् वही गुणनिधि शंकरकी कृपासे कलिङ्गनरेश होकर शिवाराधना करता रहा।

पुनः पाद्मकल्पमें वही गुणनिधि प्रजापति पुलस्त्यके पुत्र विश्रवामुनिकी पत्नी और भरद्वाज मुनिकी कन्या इडविडा (इलविला) के गर्भसे उत्पन्न हुए। विश्रवाके पुत्र होनेसे ये वैश्रवण कुबेरके नामसे प्रसिद्ध हुए तथा इडविडाके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण ऐडविड भी कहलाये।

उत्तम कुलमें उत्पन्न होने तथा जन्मान्तरीय शिवाराधनाके अभ्यासयोगके कारण वे बाल्यकालसे ही दिव्य तेजसे सम्पन्न, सदाचारी एवं देवताओंके भक्त थे। उन्होंने दीर्घकालतक ब्रह्माकी तपस्याद्वारा आराधना की, इससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ प्रकट हो गये और उन्होंने उसे लोकपाल-पद, अक्षय निधियोंका स्वामी, सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पकविमान तथा देवपद प्रदान किया—

> तद्गच्छ बत धर्मज्ञ निधीशत्वमपाप्नुहि ॥
> शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि।
> एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ॥

१-इन नौ निधियोंकी विस्तृत कथा मार्कण्डेयपुराणमें है, इनकी सिद्धि पद्मिनी विद्याके द्वारा होती है और कुबेर ही उसके देवता हैं।

प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज।

(वा० रा०, उ० ३। १८—२०)

वर देकर ब्रह्मादि देवगण चले गये। तब कुबेरने अपने ‌िता विश्रवासे हाथ जोड़कर कहा कि 'भगवन्! ब्रह्माजीने ‌ब कुछ तो मुझे प्रदान कर दिया, किंतु मेरे निवासका कोई ‌थान नियत नहीं किया। अतः आप ही मेरे योग्य कोई ऐसा ‌ुखद स्थान बतलाइये, जहाँ रहनेसे किसी भी प्राणीको कोई ‌ष्ट न हो।' इसपर उनके पिता विश्रवाने दक्षिण समुद्रतटपर ‌कूट नामक पर्वतपर स्थित विश्वकर्माद्वारा निर्मित, देवराज ‌द्रकी अमरावतीके समान अद्वितीय लंका नगरी कुबेरको ‌ान की और कहा कि वह नगरी स्वर्णनिर्मित है और वहाँ ‌ई कष्ट, बाधा नहीं है। पिताकी आज्ञासे कुबेर लंकाध्यक्ष ‌कर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ निवास करने लगे।

कुबेर शंकरजीके परम भक्त थे। बादमें इन्होंने भगवान् ‌करकी विशेषरूपमें आराधना की तथा भगवान् शंकरकी ‌ासे उन्होंने उत्तर दिशाका आधिपत्य, अलकानामकी ‌्यपुरी[1], नन्दनवनके समान दिव्य उद्यानयुक्त चैत्ररथ नामक ‌ तथा एक दिव्य सभा प्राप्त की। साथ ही वे माता पार्वतीके ‌ापात्र और भगवान् शंकरके घनिष्ठ मित्र भी बन गये। ‌ावान् शङ्करने कहा—

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर।
तपसा निर्जितश्चैव सखा भव ममानघ॥

'हे सौम्य धनेश्वर! अब तुम मेरे साथ मित्रताका सम्बन्ध ‌ापित करो, यह सम्बन्ध तुम्हें रुचिकर लगना चाहिये। ‌नघ! तुमने अपने तपसे मुझे जीत लिया है, अतः मेरा मित्र ‌कर (यहाँ अलकापुरीमें) रहो।'

‌बेरसभा

महाभारत, सभापर्वके १०वें अध्यायमें राजाधिराज ‌ेरकी सभाका विस्तारसे वर्णन है। तदनुसार उस सभाका ‌तार सौ योजन लम्बा और सत्तर योजन चौड़ा है। उसमें ‌द्रमाकी शीतल श्वेतवर्णकी आभा उदित होती रहती है। इस ‌ाको कुबेरने अपनी दीर्घ तपस्याके बलपर प्राप्त किया था। ‌ वैश्रवणी अथवा कौबेरी नामकी सभा कैलासके पार्श्व-भागमें स्थित है। इसमें अनेक दिव्य सुवर्णमय प्रासाद बने हुए हैं। बीच-बीचमें मणिजटित स्वर्णस्तम्भ बने हैं, जिसके मध्यमें मणिमयमण्डित चित्र-विचित्र दिव्य सिंहासनपर ज्वलित-कुण्डलमण्डित और दिव्य आभरणोंसे अलंकृत महाराज कुबेर सुशोभित रहते हैं। देवगण, यक्ष, गुह्यक, किन्नर तथा ऋषि-मुनि एवं दिव्य अप्सराएँ उनकी महिमाका गान करते हुए वहाँ स्थित रहते हैं।

इस सभाके चारों ओर मन्दार, पारिजात और सौगन्धिक वृक्षोंके उद्यान तथा उपवन हैं, जहाँसे सुगन्धित, सुखद शीतल, मन्द हवा सभामण्डपमें प्रविष्ट होती रहती है। देवता, गन्धर्व और अप्सराओंके गण संगीत एवं नृत्य आदिसे सभाको सुशोभित करते रहते हैं। इनकी सभामें रम्भा, चित्रसेना, मिश्रकेशी, घृताची, पुञ्जिकस्थला तथा उर्वशी आदि दिव्य अप्सराएँ नृत्य-गीतके द्वारा इनकी सेवामें तत्पर रहती हैं। यह सभा सदा ही नृत्य-वाद्य आदिसे निनादित रहती है, कभी शून्य नहीं होती। कुबेरके सेवकोंमें मणिभद्र, श्वेतभद्र, प्रद्योत, कुस्तुम्बुरु, हंसचूड, विभीषण, पुष्पानन तथा पिङ्गलक आदि मुख्य सेवक हैं।

राज्यश्रीके रूपमें साक्षात् महालक्ष्मी भी वहाँ नित्य निवास करती हैं। महाराज कुबेरके पुत्र मणिग्रीव और नलकूबर भी वहाँ स्थित होकर अपने पिताकी उपासना करते हैं। साथ ही अनेक ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि भी महात्मा वैश्रवणकी उपासनामें रत रहते हैं।

गन्धर्वोंमें तुम्बुरु, पर्वत, शैलूष, विश्वावसु, हाहा, हूहू, चित्रसेन तथा अनेक विद्याधर आदि भी अपने दिव्य गीतोंद्वारा महाराज वैश्रवणकी महिमाका गान करते रहते हैं। हिमवान्, पारियात्र, विन्ध्यादि पर्वत सेवामें प्रस्तुत रहते हैं तथा सभी देवयोनियाँ और शङ्ख, पद्म आदि निधियाँ भी मूर्तिमान् रूप धारणकर उनकी सभामें नित्य उपस्थित रहती हैं। उमापति भगवान् शिव भी महाराज कुबेरके अभिन्न मित्र होनेके कारण त्रिशूल धारण किये हुए भगवती पार्वतीके साथ वहाँ सुशोभित रहते हैं। इस प्रकार महाराज वैश्रवणकी सभा ब्रह्मा तथा सभी लोकपालोंकी सभासे अति विचित्र एवं दिव्य है।

१-इस पुरीके कैलाससारा, वसुसारा, वसुधारा तथा वसुस्थली—ये अन्य नाम भी हैं।

राजाधिराज कुबेर इस सभामें स्थित होकर अपने वैभवका दान करते रहते हैं।

महाराज कुबेरका स्वरूप और उनकी उपासना

महाराज वैश्रवण कुबेरकी उपासनासे सम्बन्धित मन्त्र, यन्त्र, ध्यान एवं उपासना आदिकी सारी प्रक्रियाएँ श्रीविद्यार्णव, मन्त्रमहार्णव, मन्त्रमहोदधि, श्रीतत्त्वनिधि तथा विष्णुधर्मोत्तरादि पुराणोंमें निर्दिष्ट हैं। तदनुसार इनके अष्टाक्षर, षोडशाक्षर तथा पञ्चत्रिंशदक्षरात्मक छोटे-बड़े अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। मन्त्रोंके अलग-अलग ध्यान भी निर्दिष्ट हैं। इनके एक मुख्य ध्यान-श्लोकमें इन्हें मनुष्योंके द्वारा पालकीपर अथवा श्रेष्ठ पुष्पकविमानपर विराजित दिखाया गया है। इनका वर्ण गारुडमणि या गरुडरत्नके समान दीप्तिमान् पीतवर्णयुक्त बतलाया गया है और समस्त निधियाँ इनके साथ मूर्तिमान् होकर इनके पार्श्वभागमें निर्दिष्ट हैं। ये किरीट-मुकुटादि आभूषणोंसे विभूषित हैं। इनके एक हाथमें श्रेष्ठ गदा तथा दूसरे हाथमें धन प्रदान करनेकी वरमुद्रा सुशोभित है। ये उन्नत उदरयुक्त स्थूल शरीरवाले हैं। ऐसे भगवान् शिवके परम सुहृद् भगवान् कुबेरका ध्यान करना चाहिये—

कुबेरका ध्यान

मनुजवाह्यविमानवरस्थितं गरुडरत्ननिभं निधिनायकम्।
शिवसखं मुकुटादिविभूषितं वरगदे दधतं भज तुन्दिलम्॥

मन्त्र-महार्णव तथा मन्त्र-महोदधि आदिमें निर्दिष्ट महाराज कुबेरके कुछ मन्त्र इस प्रकार हैं—

१-अष्टाक्षरमन्त्र— '**ॐ वैश्रवणाय स्वाहा।**'

२-षोडशाक्षरमन्त्र—'**ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः।**'

३-पञ्चत्रिंशदक्षरमन्त्र—'**ॐ यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा।**'

इसी प्रकार वहाँ बालरक्षाकर मन्त्र-यन्त्र भी निर्दिष्ट जिसमें—'**अया ते अग्ने समिधा०**' (ऋग्वेद ४।४।१ आदिका प्रयोग होता है। यह मन्त्र बालकोंके दीर्घायु आरोग्य, नैरुज्यादिके लिये बहुत उपयोगी है। इस प्र बालकोंके आरोग्य-लाभके लिये भी भगवान् कुबे उपासना विशेष फलवती होती है।

प्रायः सभी यज्ञ-यागादि, पूजा-उत्सवों तथा दिक्पालोंके पूजनमें उत्तर दिशाके अधिपतिके रूपमें कुबेर पूजन होता है। धनत्रयोदशी तथा दीपावलीके दिन कुबेर विधिपूर्वक पूजा होती है। यज्ञ-यागादि तथा विशेष पू आदिके अन्तमें षोडशोपचार पूजनके अनन्तर आर्तिक्य उ पुष्पाञ्जलिका विधान होता है। पुष्पाञ्जलिमें तथा राज अभिषेकके अन्तमें '**ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने०**' मन्त्रका विशेष पाठ होता है, जो महाराज कुबेरकी प्रार्थनाका मन्त्र है। महाराज कुबेर राजाओंके भी अधिपति धनोंके स्वामी हैं, अतः सभी कामना-फलकी वृष्टि कर वैश्रवण कुबेर ही समर्थ हैं।

व्रतकल्पद्रुम आदि व्रत-ग्रन्थोंमें कुबेरके उपास लिये फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशीसे वर्षभर प्रतिमास त्रयोदशीको कुबेर-व्रत करनेके अनेक विधान निर्दिष्ट इससे उपासक धनाढ्य तथा सुख-समृद्धिसे सम्पन्न हो ज है और परिवारमें आरोग्य प्राप्त होता है।

सारांशमें कहा जा सकता है कि कुबेरकी उपास ध्यानसे मनुष्यका दुःख-दारिद्र्य दूर होता है और अनन्त ऐश्वर्य प्राप्ति होती है। शिवके अभिन्न मित्र होनेसे कुबेरके भक्त सभी आपत्तियोंसे रक्षा होती है और उनकी कृपासे साध आध्यात्मिक ज्ञान-वैराग्य आदिके साथ उदारता, सौम्य शान्ति तथा तृप्ति आदि सात्त्विक गुण भी स्वाभाविक रू संनिविष्ट हो जाते हैं।

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥ (श्रीमद्भा० ११।२।३९

'संसारमें भगवान्के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते र चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये।'

देवताओंके चिकित्सक धन्वन्तरि एवं अश्विनीकुमार

(वैद्य श्रीअखिलानन्दजी पाण्डेय)

देव-चिकित्सक भगवान् धन्वन्तरि

जबसे इस सृष्टिका आविर्भाव हुआ तभीसे आयुर्वेद विद्यमान है। आचार्य चरकने समग्र ऐश्वर्य, समग्र ज्ञान एवं समस्त वैराग्यादि षड्विध-ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुषको योगिकोटिमें माना है। योगियोंमें अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य स्वाभाविक रूपसे रहते ही हैं। व्युत्पत्तिलभ्य अर्थके अनुसार शल्य-शास्त्रके सम्यग्ज्ञाता आद्यन्तपारङ्गत विद्वान् धन्वन्तरि कहलाते हैं। भागवतमें भगवान् विष्णुके अंशांशसे धन्वन्तरिकी उत्पत्ति मानी गयी है—

स वै भगवतः साक्षाद् विष्णोरंशांशसम्भवः॥
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक्।

(श्रीमद्भा० ८। ८। ३४-३५)

पुराणोंके अनुसार एक समय अमृत-प्राप्ति-हेतु देवासुरोंने जब समुद्र-मन्थन किया, तब उसमेंसे दिव्य कान्तियुक्त, अलङ्करणोंसे सुसज्जित, सर्वाङ्गसुन्दर, तेजस्वी, हाथमें अमृतपूर्ण कलश लिये हुए एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुए। वे ही आयुर्वेदके प्रवर्तक और यज्ञभोक्ता भगवान् धन्वन्तरि नामसे विख्यात हुए। उनका आविर्भाव कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको हुआ था। इनकी जयन्ती आरोग्य-देवताके रूपमें प्रतिवर्ष इसी तिथिपर मनायी जाती है। श्रीमद्भागवतमें इनके लिये—**'स्मृतिमात्रार्तिनाशनः'** विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भगवान् श्रीविष्णुके २४ अवतारोंमें इनकी भी गणना हुई है।

गरुडपुराणके कुछ अध्यायोंमें अष्टाङ्ग-हृदयका सारा संग्रह हुआ है। तदनुसार क्षीरसागरके मन्थनके अवसरपर भगवान् धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। उन्होंने देवादिके जीवनके लिये आयुर्वेदशास्त्रका उपदेश महर्षि विश्वामित्रके पुत्र सुश्रुतको दिया। सुश्रुत भी एक महान् आत्मा महापुरुष थे।

देवादीनां रक्षणाय ह्यधर्महरणाय च।
दुष्टानां च वधार्थाय ह्यवतारं करोति च॥
यथा धन्वन्तरिर्वंशे जातः क्षीरोदमन्थने।
देवादीनां जीवनाय ह्यायुर्वेदमुवाच ह॥
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने।

(गरुडपुराण, आचारकाण्ड १४५। ४१-४३)

धन्वन्तरिने प्रकट होनेपर अपने समक्ष उपस्थित भगवान् विष्णुका दर्शन किया। भगवान्ने उनसे कहा कि तुम अप् अर्थात् जलसे उत्पन्न हो, इसलिये तुम्हारा नाम अब्ज होगा। इसपर अब्जने कहा कि 'भगवन्! मुझे लोकमें कोई स्थान प्रदान करें। मेरे यज्ञभागकी व्यवस्था करें।' प्रभुने कहा—'तुम्हारा आविर्भाव देवताओंके पश्चात् हुआ है। देवताओंके ही निमित्त महर्षियोंने यज्ञ-आहुतियोंका विधान किया है। अतएव तुम यज्ञभागके अधिकारी नहीं हो सकते, किंतु अगले जन्ममें मातृ-गर्भमें ही तुम्हें अणिमादि सम्पूर्ण सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जायँगी और तुम देवत्वको प्राप्त हो जाओगे। तुम काशीराजके वंशमें उत्पन्न होकर अष्टाङ्ग आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार करोगे।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् भगवान् धन्वन्तरि इन्द्रके अनुरोधपर देवताओंके चिकित्सकके रूपमें अमरावतीमें रहने लगे।

यही धन्वन्तरि भगवान्के पूर्व-वचनानुसार पुनः अगले जन्ममें काशीराज दिवोदास धन्वन्तरि हुए। उन्होंने लोककल्याणार्थ 'धन्वन्तरिसंहिता' ग्रन्थकी रचना की। आचार्य धन्वन्तरिने विश्वामित्रके पुत्र सुश्रुतको सौ मुनि-पुत्रोंसहित अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा दी थी।

देववैद्य अश्विनीकुमार

सूर्यकी पत्नी संज्ञासे दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई थी। बड़े होनेपर दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके चिकित्सक हुए। ब्रह्माजीने दक्ष नामक प्रजापतिको सम्पूर्ण आयुर्वेदकी शिक्षा दी। ब्रह्माजीसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् पुनः दक्ष प्रजापतिने दोनों अश्विनीकुमारोंको आयुर्वेदका ज्ञान कराया और इन्होंने अश्विनीकुमारसंहिताका निर्माण किया।

देवासुर-संग्राममें जिन देवताओंको दानवोंने आहत कर दिया था, उनको इन्हीं स्वर्गवैद्योंने स्वस्थ, निर्व्रण एवं क्षतरहित कर दिया। जब इन्द्रकी भुजाका स्तम्भन हो गया था, तब उस

स्तम्भित भुजाको भी अश्विनीकुमारोंने ठीक किया। दक्ष-शापयुक्त चन्द्रमा राजयक्ष्मासे पीड़ित हो रहे थे तो अश्विनीकुमारोंने ही उन्हें रोगमुक्त किया। पूषाके दाँत एवं भग देवताके नष्ट हुए नेत्रोंका इन्होंने ही संधान किया। साथ ही भार्गव च्यवन जो असमयमें ही जराग्रस्त और विकलेन्द्रिय हो गये थे, अश्विनीकुमारोंने ही उन्हें एक ओषधिपूर्ण दिव्य कुण्डमें स्नान कराकर तत्काल स्वस्थ युवा और सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर बना दिया (चरकसंहिता, चिकित्सास्थान १-४)।

अश्विनीकुमार देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ, विद्वान् तथा चिकित्सकोंमें सबसे उत्तम हैं। इन्होंने महर्षि दधीचिद्वारा ब्रह्मविद्याका उपदेश प्राप्त किया था।

आयुर्वेदकी विभिन्न परम्पराओंमें इन्द्र, भरद्वाज, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, सुश्रुत, चरक आदि अनेक देवताओं और ऋषि-मुनियोंके सहयोगकी बात मिलती है। भावप्रकाशके आरम्भमें भावमिश्रने ऐसी प्रायः चार परम्पराओंका उल्लेख किया है, जो अनेक देवताओंके द्वारा संवर्धित होती हुई मनुष्योंतक प्राप्त हुई। इन सभीमें भी धन्वन्तरि एवं अश्विनीकुमारोंका योगदान विशेष उल्लेख्य है।

नाग देवता

(श्रीपरमहंसजी महाराज)

वेद एवं सभी पुराणोंके अनुसार नागोंकी उत्पत्ति महर्षि कश्यपकी पत्नी कद्रूसे हुई है। इसलिये उन्हें **'काद्रवेया महाबलाः'** भी कहा गया है। ये अदिति देवीके सौतेले पुत्र और आदित्योंके भाई हैं। अतएव सुस्पष्टतः नाग देवताओंमें परिगणित हैं। इनका निवास-स्थान पाताल कहा गया है। इसे ही 'नागलोक' भी कहा जाता है। नागलोककी राजधानीके रूपमें 'भोगवतीपुरी' का उल्लेख मिलता है। कथासरित्सागर-का प्रायः एक चतुर्थांश इस नागलोक और वहाँके निवासियोंकी कथाओंसे सम्बद्ध है। नागकन्याओंका सौन्दर्य देवियों एवं अप्सराओंके समान ही कहा गया है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने बल देकर रावणकी स्त्रियोंके निर्देशक दोहेका अन्त 'नाग कुमारि' पर ही किया है—

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि॥

(मानस १।१८२-ख)

भगवान् विष्णुकी शय्या नागराज अनन्तकी बनी हुई है। भगवान् शंकर एवं श्रीगणेशजी भी सितसर्पविभूषित हैं— **'सितसर्पविभूषिताय।'** भगवान् सूर्यके रथमें बारहों मास बारह नाग बदल-बदलकर उनके रथका वहन करते हैं। ऐसा प्रायः सभी पुराणोंमें निर्दिष्ट है। इस प्रकारसे देवताओंने भी सर्प-नागको धारण किया है, जिससे वे देवरूप हैं, ऐसा हमें मानना होगा, यह निर्विवाद है। सर्प—नाग वायु-पान करते हैं।

'नीलमतपुराण' और कल्हणकी 'राजतरंगिणी' के अनुसार कश्मीरकी सम्पूर्ण भूमि 'नीलनाग' की ही देन है। अब भी वहाँके अनन्तनाग आदि शहर इस तथ्यको पुष्ट करते हैं। यहाँ नाग देवताका सर्वाधिक सम्मान होता है। प्रारम्भिक प्रातःस्मरणीय पवित्र नागोंकी गणना इस प्रकार है—

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्।
शंखपालं धृतराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा॥
एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम्।
सायंकाले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः॥
तस्य विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत्।

अनन्त, वासुकि, शेष, पद्मनाभ, कम्बल, शंखपाल, धृतराष्ट्र, तक्षक और कालिय—ये नव नाग देवता हैं। ये प्रातः-सायं नित्य स्मरणीय हैं। इनका स्मरण करनेसे मनुष्यको नाग-विषका भय नहीं रहता और सर्वत्र विजय प्राप्त होती है।

भारतीय ऋषि-मुनियोंने नागोपासनापर अनेक व्रत-पूजा आदि निबन्ध-ग्रन्थोंकी रचना की है। प्रत्येक ग्राम-नगरमें नागका स्थान होता है। श्रावण मासमें नागपञ्चमी-व्रत किया जाता है।

संध्या-पूजाके उपरान्त नागोंके नमस्कार करनेकी परम्परा इस प्रकार है—

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी।
वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥

जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरेति च।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्।
तस्य नागभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत्॥

(देवीपुराण)

उपर्युक्त पौराणिक मन्त्र परम उपयोगी एवं उपादेय है। समस्त प्राणियोंके कुलकुण्डकुहरमें निवास करनेवाली कुण्डलिनी-शक्तिको भी सर्पिणीका ही रूप बताया गया है।

भारतमें शयनकालके समय नाग देवताओंके स्मरण करनेकी प्रथा है। इन नाग देवताके उच्चारणमात्रसे सर्प और उपसर्प भी घरमें नहीं रहते। वे जनमेजयके यज्ञमें आस्तीक मुनिसे वचनबद्ध हैं। आज भी इस मन्त्र-जपसे सर्प—नाग देवता चारपाईपर नहीं चढ़ते। उनके मन्त्रसे सर्पका विष उतर जाता है और मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। मन्त्र इस प्रकार है—

सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥
आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा॥

(महाभा०, आदिपर्व ५८। २५-२६)

नाग देवताकी पूजाका प्रत्यक्ष प्रमाण तथा उसके महत्त्वके संदर्भमें एक सत्कथा उद्धृत की जाती है—

राजस्थानमें बाड़मेर जिलाके अन्तर्गत बायतु ग्राम है। वहाँ एक खीमसींग नामके राजपूत सपत्नीक रहते थे। वहाँ रहते हुए उन्हें चालीस वर्ष बीत गये। संतान-प्राप्ति न होनेके कारण वे ग्रामका परित्याग कर अपने खेतमें झोंपड़ी बनाकर रहने लगे। एक दिन खीमसींगको अपने घरके पीछे एक श्वेत नाग दिखायी दिया। पहले तो उन्हें कुछ घबराहट हुई, फिर बादमें उनके मनमें आया कि यह सफेद नाग कोई देवता हैं, अतएव इनका स्वागत करना चाहिये। उन्होंने एक दूधभरा कटोरा नागके समीप रखा। नाग देवता सब दूध पी गये। बादमें अपने बिलमें प्रवेश कर गये। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। इसी प्रकार पूरा वर्ष बीत गया। एक दिन नाग देवताने स्वप्नमें प्रकट होकर कहा—'तुमलोग चिन्तित न हो। मेरी उपासनासे तुम्हारा उभय लोकोंमें कल्याण होगा।' तत्पश्चात् सभी प्रकारसे सम्पन्न खीमसींग विधिवत् नाग देवताके उपासनामें लग गये।

इधर तेजोशाह नामका एक संतानहीन धनवान् व्यापारी मैत्रीके कारण वहाँ खीमसींगसे मिलनेके लिये आया करता था। प्रसंगवशात् संततिहीनताकी चर्चा चलनेपर खीमसींगने उसे भी नाग देवताकी उपासना करनेका परामर्श दिया। तेजोशाहने नागके निवास-स्थानपर जाकर निवेदन किया कि यदि उसे पुत्र होगा तो वह खीमसींग और उसके अतिथियोंके भोजन-वस्त्र आदिका आजीवन व्यय वहन करेगा और नाग देवताका एक सुन्दर मन्दिर भी बनवायेगा। यह बात उसने अपनी पत्नीसे कही और उसे नित्य नागदेवको दूध भोग लगानेका निर्देश दिया। वह वैसा ही करने लगी।

एक दिन संयोगसे २०० वैरागी वैष्णव खीमसींगकी कुटियापर आये। पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार जब उनके भोजन आदिकी व्यवस्थाके लिये वे तेजोशाहके पास गये और अन्न आदिकी व्यवस्था करनेके लिये उचित द्रव्य माँगा; किंतु तेजोशाहने कुछ कृपणता दिखलायी। निराश होकर खीमसींग अपनी पत्नीसहित आत्महत्याके विचारसे नागसे डँसवानेके लिये उसके बिलके पास गये। संयोगवश उन्हें वहाँसे एक सुवर्णवलय प्राप्त हो गया। उसे लेकर वे पुनः सेठके पास गये तथा समुचित भोजनोपयोगी अन्न एवं दक्षिणाद्रव्यको लाकर वैष्णवोंके पास उपस्थित किया। वैष्णव-समुदाय भी भोजन आदिसे संतुष्ट हो यथास्थान चला गया। कुछ दिनों पश्चात् ही नाग देवताकी कृपासे तेजोशाहको एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उसने नाग देवताके स्थानपर एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया। इस मन्दिरमें जानेपर अब भी सर्वविष शान्त हो जाता है और भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण होती है।

इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ अन्य देश-प्रदेशोंमें भी होती रहती हैं। नागोंकी पूजा प्रायः सभी पर्वतीय क्षेत्रोंमें विशेषरूपसे होती है। इनमें 'कश्मीर' प्रधान है। भारतवर्षमें नागोंसे सम्बन्धित विस्तृत साहित्य प्राप्त होता है। गरुडपुराण, भविष्यपुराण, आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश आदि ग्रन्थोंमें एतत्सम्बन्धी सभी प्रकारके विषयोंका संग्रह हुआ है। समग्र भारतमें इनकी पूजा एक विशिष्ट देवताके रूपमें किये जानेकी सुदीर्घ परम्परा है।

मनुष्योंको नाग देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। भारतके प्रत्येक ग्रामों तथा नगरोंमें प्रायः नाग देवताका स्थान मिलता है, जहाँ भक्तजन अपनी श्रद्धा-भावनाके अनुसार पूजा-अर्चना करके लाभान्वित होते हैं।

देवयोनियोंका उद्भव एवं स्वरूप-परिचय

देवता भूलोकके निवासियोंसे सभी प्रकार विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न द्युलोक, स्वर्ग या अन्तरिक्षके निवासी कहे गये हैं। वे अप्रतिहतज्ञान, गमन आदि शक्तियोंसे संयुक्त अत्यन्त भव्य आकृति, रूप और ऐश्वर्यसे सम्पन्न होते हैं। उनकी आयु भी असीम और अपरिमित होती है। अतः वे अमर कहे गये हैं। उनकी अनेक कोटियाँ मानी गयी हैं, पर वे भी प्रायः सभी कश्यप-पत्नियोंकी ही संतानें हैं। उनका विस्तृत विवेचन विष्णु आदि पुराणोंमें प्राप्त होता है। मुख्य इन्द्र आदि देवता अदितिमाताकी संतान हैं। अन्य माताएँ दिति, दनु, सुरसा, विनता, कद्रू, मुनि, इला आदि कही गयी हैं। इनकी संतानें विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, अप्सरा, गुह्यक, दानव, दैत्य, राक्षस, सिद्ध, चारण, पिशाच, रुद्रगण, पितृगण, भूत-प्रेत आदि योनियाँ हैं। इस विषयमें इतिहास, पुराण, कोश आदिमें कई वचन प्राप्त होते हैं, जिनमेंसे दो यहाँ दिये जाते हैं—

विद्याधरोऽप्सरो यक्षो रक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यको सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥

(अमर० स्व० ११)

रामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीका एक दोहा भी समीचीन है—

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥

(मानस १।७-घ)

इनमेंसे कुछ योनियोंके सम्बन्धमें यहाँ संक्षेपमें लिखा जा रहा है—

(१) विद्याधर

प्राचीन इतिहास-पुराणों, धर्मशास्त्रों एवं कथासाहित्योंमें देवताओंकी कुछ विशिष्ट श्रेणियोंकी जहाँ चर्चा आयी है, वहाँ प्रायः सर्वप्रथम विद्याधरोंका ही उल्लेख किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष, अप्सरा आदि देवयोनियोंमें विद्याधरोंका विशेष महत्त्व है।

यादवप्रकाशने अपने वैजयन्ती कोशके आरम्भमें विद्याधरोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—'ये आकाशगामी होते हैं और स्वर्ग या अन्तरिक्षमें भी विहार करते हैं। सत्यवादी होते हैं तथा रूप-यौवनसे निरन्तर सम्पन्न होते हैं।' अग्निपुराणका कथन है कि ये आकाशचारी हैं और माला धारण किये रहते हैं—

'मालाविद्याधराश्च खे' (अग्नि० ५१।६)

कथासाहित्यके आलोडनसे यह स्पष्ट होता है कि देवयोनियोंमें मनुष्योंसे विशेष सम्पर्क रखनेवाली तथा मनुष्योंपर शीघ्र द्रवीभूत होनेवाली देवताओंकी यह विद्याधर-श्रेणी ही है। इनके नामसे भी स्पष्ट होता है कि ये विशिष्ट विद्याओंको धारण करते हैं। विद्याधरोंकी यह विद्या जन्मजात होती है। लिखने-पढ़नेसे इनका विशेष सम्बन्ध नहीं है। वाल्मीकीय रामायणमें महर्षि वाल्मीकिने इनकी इस सहजात विद्याको 'महाविद्या' नामसे अभिहित किया है और उस प्रकरणमें यह दिखलाया गया है कि 'जब हनुमान्‌जी समुद्रोल्लङ्घनके लिये उद्यत होते हैं और महेन्द्राचलपर स्थित होकर ऊपर उछलनेके लिये पर्वतको अपने पैरोंसे जोरसे दबाते हैं तो पर्वत काँपने लगता है और उसपर रहनेवाले विद्याधर सहसा यह समझ बैठते हैं कि इस पर्वतको कोई महासत्त्ववान् प्राणी भेदन कर रहा है। तत्काल वे अपनी पत्नियोंके साथ अन्तरिक्षमें निराधार खड़े हो जाते हैं।' इस आख्यानसे सिद्ध होता है कि विद्याधरोंमें यद्यपि गुटिका, अञ्जन आदि सिद्धियाँ, अणिमा, महिमा आदि अष्टसिद्धियाँ तथा अलक्षित या अन्तर्हित होने आदिकी शक्तियाँ रहती हैं, तथापि आकाशगमनकी सिद्धि उनमें विशेषरूपसे होती है। महर्षि वाल्मीकिने सुन्दरकाण्डके प्रथम सर्गके २२ से लेकर २८ श्लोकोंतक निरन्तर विद्याधरोंके स्वरूपका ही चित्रण किया है, इससे ज्ञात होता है कि ये विद्याधरगण प्रायः विशाल जलराशि तथा सुन्दर पर्वतोंके रमणीय अधित्यकाओंमें निवास करते हैं।

अनेक साहित्योंके आलोडनसे यह स्पष्ट होता है कि हिमालय पर्वतके रमणीय स्थल इनकी विशेष निवासभूमियाँ हैं और भगवान् शंकर इनके विशेष आराध्यदेव हैं। वाल्मीकिके वर्णनसे यह भी पता चलता है कि समुद्रकी वेलापर स्थित *सुबेलगिरि एवं महेन्द्राचलपर* भी इनका निवास था और अब भी वह इनकी निवासभूमि है। इसी प्रकार दूसरे साहित्योंमें अन्य विन्ध्य, पारियात्र आदि श्रेष्ठ पर्वत भी इनकी निवास-भूमियाँ कही गयी हैं।

स्वरूपतः ये अनेक विद्याओं विशेषकर संगीत-नृत्यमें पूर्ण पारङ्गत होते हैं और इनके पास अनायास अत्यन्त बहुमूल्य दिव्य सुवर्णपात्र, माल्य, अङ्गराग, अस्त्र-शस्त्र, भोजनके सभी उपकरण और दिव्य भक्ष्य-भोज्य, लेह्यादि पदार्थ भी सुलभ रहते हैं। इनके अङ्गोंपर केसर-कस्तूरी और सुगन्धित द्रव्योंके साथ-साथ बहुमूल्य पारिजातादिकी पुष्पमालाएँ और वस्त्राभूषण भी सुशोभित रहते हैं। वाल्मीकिके अनुसार इनकी पत्नी विद्याधरियाँ भी दिव्य हार तथा विशिष्ट आभूषणोंसे स्वभावतः अलंकृत रहती हैं।[1] चित्रकेतु विद्याधरोंके अधिपति कहे गये हैं। इनका विचित्र आख्यान इस प्रकार है—

राजा चित्रकेतुको विद्याधरत्वकी प्राप्ति

प्राचीन कालकी बात है, शूरसेन देशमें चक्रवर्ति-सम्राट् चित्रकेतु राज्य करते थे। उनके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। पृथ्वी स्वयं ही प्रजाकी इच्छानुसार अन्न, रस आदि पदार्थ दे दिया करती थी। महाराज भी स्वयं ऐश्वर्यसम्पन्न तथा सभी सद्गुणोंसे अलंकृत थे। उन्हींके समान रूप, कुल एवं गुणोंसे युक्त उनकी अनेक रानियाँ थीं, किंतु बहुत दिनोंतक उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। किसी प्रकार एक पुत्र उत्पन्न भी हुआ, तो सापत्न्य-ईर्ष्यावश चित्रकेतुकी अन्य रानियोंने उसे मार डाला। राजा अत्यन्त दुःखी हुए और प्राण-परित्याग करनेको उद्यत हो गये। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आये और कहने लगे—'राजन्! तुम दुःखी न होओ। मैं तुम्हें एक ऐसी विद्या दे रहा हूँ, जिससे तुम विद्याधरोंके सर्वोत्कृष्ट पदपर अधिष्ठित हो जाओगे।' देवर्षि नारदने उन्हें ॐकार-स्वरूप महाविभूतिपाद भगवान् चतुर्व्यूहकी अनन्य भक्तिका उपदेश दिया।

चित्रकेतुने अनन्यचित्तसे तन्मय होकर जैसे ही ... दिनोंतक जप किया वैसे ही अन्तिम क्षणोंमें वह सा... विद्याधरोंका अधिपति हो गया—

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया।
विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृपः॥

(श्रीमद्भा० ६।१६।...)

इस विद्याके प्रभावसे चित्रकेतुमें अनायास ... योगसिद्धियाँ संनिविष्ट हो गयीं और उसमें अप्रतिहत स... गति एवं मनके समान तत्काल आकाश-पातालमें ग... करनेकी शक्ति प्राप्त हो गयी। उसका मन शुद्ध हो गया। ... विद्याके बलपर उसने पातालमें भगवान् शेषके पास पहुँच... उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया। वहाँ उनसे भगवान्... मङ्गलमयी कथा सुनी और फिर प्रेमसे उसने भगवान्की स्... की। भगवान् उससे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'... विद्याधराधिपतित्व प्राप्तकर तथा मेरा दर्शनकर संसिद्ध... हो गये'—

'संसिद्धोऽसि तया राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे॥'

(श्रीमद्भा० ६।१६।५०)

इसके पश्चात् भगवान्ने विद्याधराधिपति चित्रकेतुको सर्वोपरि अद्वैत ज्ञानका उपदेश किया और बतलाया कि 'सिद्ध पुरुष सम्पूर्ण विश्वको अपनी आत्मामें ही देखता है। मेरे स्वरूपको विस्मृत करनेपर संसारका उदय होता है और मेरे गाढ़ चिन्तनसे संसार तिरोहित हो जाता है। मनुष्य-शरीर ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न है। इसे प्राप्तकर जो परमतत्त्वका साक्षात्कार नहीं करता, उसे परम शान्ति नहीं मिलती, इसलिये मेरा भक्त सारे दृष्ट एवं श्रुत मायामय पदार्थोंको विस्मृतकर एवं उनके प्रभावसे मुक्त होकर ज्ञान-विज्ञानसे नित्य संतुष्ट रहता है। बस, इतनी मात्र ही योगशक्तिकी निपुणता है। बुद्धिकी अन्तिम सूक्ष्म और सभी स्वार्थोंका अन्तिम पर्यवसान यही है कि सदा सर्वत्र परमात्माको ही देखे और किसी जीवसे भेद-भाव न रखे।' इतना कहकर भगवान् शेष अन्तर्धान हो गये और चित्रकेतु आकाशमें सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करने लगे। बड़े-बड़े सिद्ध,

---

१-हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः। विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह॥ (वा० रा० ५।१।२६)

मुनि चित्रकेतुकी स्तुति करने लगे और विद्याधरियाँ भी प्रभुका गुणगान करते हुए उनकी सेवामें लग गयीं।

बृहत्कथा एवं कथासरित्सागरमें अधिकतर पौराणिक कथाओंका भाव है और इनमें कुछ कथाएँ ऐतिहासिक भी हैं। उनमें वत्सराज उदयनके पुत्र नरवाहनदत्तको भी सर्वविद्याधरत्वकी प्राप्ति चित्रकेतुके समान ही प्रदिष्ट है। उसकी प्रायः सभी रानियाँ विद्याधरियाँ ही थीं। इस प्रसंगमें उसमें सैकड़ों विद्याधरों एवं विद्याधरियोंकी कथाएँ आती हैं। समग्रतः यह सारा ग्रन्थ देवयोनियोंकी कथाओंसे ही ओतप्रोत है। अतः विविध देवयोनियोंके विषयमें जिज्ञासुओंको यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये।

विद्याधरोंकी स्वरूप-प्रतिमा

विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण तथा शिल्परत्न आदि शिल्पशास्त्रोंमें विद्याधरोंकी प्रतिमाओंकी स्थापना देवमन्दिरोंमें आवश्यक बतलायी गयी है। यदि मन्दिरमें सम्भव न हो सके तो भित्तिके ऊपर इनकी प्रतिमाएँ अङ्कित होनी चाहिये। विद्याधरोंके साथ उनकी स्त्रियोंका भी अङ्कन आवश्यक बतलाया गया है। ये प्रतिमाएँ रक्त पुष्पोंकी माला, सुवर्णालंकार और रक्त आलेपनोंसे अलंकृत होनी चाहिये। विद्याधरोंके हाथमें खड्ग अङ्कित करना चाहिये। ये आकाशचारी हैं इसलिये इन्हें मन्दिरकी दीवालोंपर अथवा अंदरकी छतपर उड़ते हुए दिखाना चाहिये—

सपत्नीकाश्च ते कार्या माल्यालङ्कारधारिणः ॥
खड्गहस्ताश्च ते कार्या गगने वाथ वा भुवि।

(विष्णुधर्मोत्तर ३।४२।९-१०)

(२) अप्सरा

संसारमें सौन्दर्य सर्वप्रथम सर्वाधिक आकर्षणका विषय होता है। सुन्दर पुष्प, सुन्दर वाणी, सरित्-सरोवर, उद्यान-उपवन आदिकी मनोरम प्राकृतिक छटा सहृदय तथा सात्त्विक व्यक्तिको भी सहसा आकृष्ट कर लेती है। देवराज इन्द्र इस रहस्यसे सुपरिचित हैं। शताश्वमेधयागी देवेन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित होता है। देवताओंका सम्राट् होना और सम्पूर्ण मन्वन्तर या कल्पतक उस पदपर बने रहना असाधारण गौरवकी वस्तु है। अतः कई दूसरे चक्रवर्ती, सार्वभौम सम्राट् तथा ऋषि, मुनि, महात्मा जब शताश्वमेधयज्ञ या तीव्र जप-तप आदि साधनोंमें प्रवृत्त होते थे, तब इन्द्रका अमोघ अस्त्र होता था—अप्सराओंका प्रेषण। इससे सभी लोग प्रायः प्रभावित होकर साधनासे विच्युत हो जाते थे। इसमें अप्सराओंका सौन्दर्य ही मुख्य हेतु था। यद्यपि अप्सराओंमें सौन्दर्यके अतिरिक्त नृत्य, संगीत, नाट्यकला, विद्या, सौहार्द तथा अनेक अन्य भी श्रेष्ठ गुण होते हैं, उनमें देवताओंके समान ही अव्याहत मनोजव-गति, त्रैलोक्यमें आवागमनकी अबाध-शक्ति, इच्छानुसार रूप-परिवर्तन, दूर-श्रवण, परचित्तानुसंधान, मनोविज्ञानकी असीम अभिज्ञा भी देखी जाती है, तथापि प्रथम प्रभाव उनके दिव्य रूप-सम्पत्ति एवं सर्वाङ्गीण सौन्दर्यका ही पड़ता है। इसलिये विश्वके प्रायः सभी देशोंके साहित्यमें अप्सराओंकी महत्ता वैसे ही प्रख्यापित है, जैसे भारतके संस्कृत तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओंके साहित्यमें है।

विश्वकी अन्य भाषाओंमें भी 'अप्सरा' शब्द अपनी मूल प्रकृतिसे दूर नहीं गया है। अरबी, फारसी और तुर्की आदि भाषाओंमें यह 'परी' नामसे प्रचलित हुआ। आगे चलकर वहाँसे ग्रीक, लैटिन, रोमानियन, गोथिक, लिथुआनियन, जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें 'परी' से परिवर्तित होता हुआ 'फेयरी' बन गया। वैसे अप्सरस् और फेयरीजमें बहुत कुछ साम्य है।

अप्सराओंकी उत्पत्ति

निरुक्त, व्याकरण एवं वेदभाष्योंके अनुसार जलमें निवास करने, समुद्रके जलसे प्रकट होने और बड़े-बड़े जलाशयोंके आस-पास विचरण एवं विहार करनेके कारण **'अप्सु सरन्ति इति अप्सरसः'**—इस व्युत्पत्तिके अनुसार रूप और रसका सार होनेसे तथा जलराशिमें विशेष आनन्दके साथ तैरनेके कारण इनकी 'अप्सरा' संज्ञा मानी गयी है। पुरातत्त्ववेत्ता, पौराणिक समुद्र-मन्थन-कालमें रम्भाको आगे कर एक ही साथ अगणित अप्सराओंकी उत्पत्ति मानते हैं। वे अमृत-घटके उत्पन्न होनेके पहले प्रकट हुईं और उनके बाद तत्काल भगवती लक्ष्मी भी प्रकट हुई थीं। इसलिये उनकी महत्ता निःसंदेह अन्य रत्नोंकी अपेक्षा अत्यधिक है। कुछ कोशकारोंने गन्धर्वोंको इनका पति निरूपित किया है। परंतु कुछने गन्धर्व-पत्नियोंको गन्धर्वी कहकर अप्सराओंको स्वतन्त्र-योनिमें निर्दिष्ट किया है। सामान्यतया निरुक्तकारने उन्हें

द्युस्थाना देवियाँ मानकर देवताओंके देवलोकमें इन्द्र, वरुण, कुबेर आदिकी सभाओंमें नृत्य, गीत, नाट्य आदिके द्वारा मनोरञ्जन करनेवाली स्वतन्त्र नायिकाओंकी कोटिमें रखा है। निरुक्तके १०वें अध्याय तथा ११वें अध्यायके तृतीय खण्डमें उर्वशी आदि अनेक अप्सराओंकी चर्चा करते हुए 'अप्सरा' शब्दकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। इसके अतिरिक्त कुछ अप्सराएँ नारायणऋषिकी जंघासे भी उत्पन्न हुई थीं। जिनमें उर्वशी प्रधान थी। इन अप्सराओंकी संख्या बहुत अधिक थी। ये सब बादमें नारायणके द्वारा देवताओंको प्रदान कर दी गयी थीं। विष्णुपुराण आदिमें इन्हें महर्षि कश्यपकी पत्नी मुनिके द्वारा उत्पन्न कहा गया है। महाभारतमें जहाँ देव-सभाओंका वर्णन आया है, वहाँ इन्द्र-सभा, ब्रह्म-सभा, वरुण-सभा, सुमेरुगिरिके मस्तकपर स्थित देवसभा, कुबेरसभा, वायुदेव आदिकी सभाओंके वर्णन-प्रसंगमें अलग-अलग उन सभाओंको सुशोभित करनेवाली अनेकों अप्सराओंके नाम आये हैं। उनमेंसे कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध अप्सराओंके नाम रम्भा, मिश्रकेशी, चित्रसेना, विद्युत्पर्णी, घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, शुचिस्मिता, विश्वाची, चारुनेत्रा, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, सौरभेयी, बुद्बुदा, वर्गा, समीची, लता, इरा, विप्रचित्ति, क्रतुस्थला, निम्लोचा, तिलोत्तमा, सुकेशी, घनकेशी, सुगन्धा, कर्णिका, पूर्वचित्ति इत्यादि हैं।

काशीखण्ड-स्कन्दपुराणके अनुसार इनके १०६० कुल प्रधान हैं। वैसे इनकी कुल संख्या ३,५०,००,००० कही गयी है। मतान्तरसे अप्सराओंके कई कुल हैं और कई श्रेणियोंमें ये विभक्त हैं।

अप्सराओंसे सम्बन्धित कुछ विशेष आख्यान-उपाख्यान

भारतीय इतिहासके निर्माणमें अप्सराओंके योगदानकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। चन्द्रवंशीय क्षत्रियोंकी जिनकी आगे चलकर यदु, तुर्वसु, पूरु, अनु, द्रुह्यु और फिर उनकी वृष्णि, दाशार्ह आदि कई शाखाएँ हुईं, जिनमें तुर्वसुका कुल फारस, अरब आदि तुरुस्क देशोंमें फैल गया था। ये सब उर्वशीकी ही संततियाँ मानी गयी हैं। महाराज पुरूरवाकी पत्नी सभी इतिहास-पुराणोंमें उर्वशी ही बतलायी गयी है। सम्पूर्ण महाभारतके कौरव-पाण्डव आदि क्षत्रियवंश एवं यदुवंशमें उत्पन्न कृष्ण-बलराम एवं अन्य करोड़ों यदुवंशी भी इसी परम्परामें उत्पन्न हुए थे।

इसी प्रकार महर्षि विश्वामित्रद्वारा 'मेनका' अप्सराके गर्भसे जो शकुन्तला नामकी अद्वितीय इतिहास-प्रसिद्ध कन्यारत्नका प्राकट्य हुआ था और जिसे आधार बनाकर महाकवि कालिदासने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक अद्वितीय नाटककी रचना की, वह भी कथमपि उपेक्षणीय नहीं है। यही शकुन्तला महाराज दुष्यन्तकी पत्नी बनी और उसका पुत्र भरत इतिहास-प्रसिद्ध भरतवंशीय क्षत्रियोंका कुलपुरुष बना और महाभारत-ग्रन्थ, महाभारत-युद्ध, महाभारत-मञ्जरी, चम्पू-भारतम् आदि अमूल्य ग्रन्थोंका एवं कुछ विद्वानोंके अनुसार 'भारतवर्ष' के नामकरणका भी मुख्य कारण बना। इसी शकुन्तलाके पुत्र भरतके वंशमें भीष्म, भीम, अर्जुन आदि-जैसे वीर, युधिष्ठिर, विदुर आदि-जैसे धर्मात्मा विद्वान् पुरुष हुए। आगे चलकर इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुरी, कौशाम्बी, श्रावस्ती आदि नगरियोंका निर्माण इनके वंशजोंने किया। तत्पश्चात् वे अनेक छोटी-बड़ी शाखा-प्रशाखाओंवाले क्षत्रिय-कुलोंमें विभक्त हो गये। इतिहास-प्रसिद्ध उदयन एवं प्रद्योत आदि राजा भी इसी कुलके अन्तर्गत थे।

अप्सराओंकी अनेक रोचक कथाएँ पुराणोंमें भरी पड़ी हैं। यहाँ केवल दो-एक महत्त्वपूर्ण कथाओंका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है। एक बार कैलास पर्वतपर भगवान् शंकरके यहाँ विशेष उत्सव था और देवताओं-देवियोंके साथ-साथ प्रायः समस्त अप्सराओंका श्रेष्ठ कुल भी आकाश-मार्गसे कैलास जा रहा था। मार्गमें ही हरिद्वारके पास गङ्गाके जलमें खड़े होकर आकण्ठ-निमग्न महर्षि अष्टावक्र गायत्रीजपमें लीन होकर सुदीर्घकालसे तपश्चर्यामें निरत थे। जलमग्न महातपस्वीको देखकर अप्सराओंके मनमें बड़ी श्रद्धा उमड़ आयी। वे सब-की-सब विनयावनत होकर उन्हें दण्ड-प्रणाम करने लगीं और उनकी सब प्रकारसे प्रशंसा भी करने लगीं। महर्षि भी भावाभिभूत हो गये और आशीर्वाद देने लगे कि 'तुम्हें भगवान् नारायण पतिके रूपमें प्राप्त हों।' पीछे महर्षिको ऐसा लगा कि मौन-भंग हो जानेसे उनके जपकी प्रक्रिया और तपश्चर्या बाधित हो गयी। अतः कुछ क्षण विश्राम करने तथा तपःशुद्धिके विचारसे वे जलसे निकलकर नदीके

पुलिनपर चले आये। महर्षि अष्टावक्र आठ अङ्गोंसे टेढ़े थे और कुब्ज भी थे। उन्हें बाहर निकला देखकर अप्सराओंकी स्वाभाविक हँसी रोकेसे भी नहीं रुकी। वे सहसा अट्टहास कर हँस पड़ीं। उनकी हँसीकी बौछार महर्षिके कानोंमें तीखे बाणोंकी तरह प्रविष्ट हुई। फिर क्या था, उनके क्रोधका कोई पारावार ही न रहा और वे तुरंत बोल उठे—'अरी मूर्खाओ! तुम किसी भी दशामें विष्णुकी पत्नी होने योग्य नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि भावशून्य-नमस्क्रिया केवल अस्थि-चर्मतक ही सीमित थी। तुम्हें मेरी तपःशक्ति, मेरी विद्या, बुद्धि एवं भावनाओंका बिलकुल पता नहीं है। अतः नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेका तुमलोगोंका सौभाग्य अल्पकालीन ही रहेगा। कालान्तरमें तुम म्लेच्छ एवं दस्युओंकी सहचरी बनोगी एवं उनके द्वारा तुम्हें अनेक म्लेच्छ संतानें प्राप्त होंगी।' यह सुनकर अप्सराएँ अत्यन्त भयभीत हो गयीं। वे आकाश-मार्गसे नीचे आकर महर्षिके पास पहुँचीं, जहाँ वे पुलिनपर खड़े थे। वे सब-की-सब महर्षिके चरणोंमें सादर-सभीत प्रणिपात कर शापमुक्त करनेकी प्रार्थना—अनुनय-विनय आदि करने लगीं। महर्षि भी तत्काल करुणार्द्र एवं द्रवीभूत होकर उन्हें शापानुग्रह करते हुए कहने लगे—'अप्सराओ! मैंने क्रोधमें जो बात कह दी है, वह मिथ्या नहीं हो सकती तथापि तुमलोगोंकी दीनता और अनुनय-विनय तथा पश्चात्ताप करनेसे मैं तुम्हारे उद्धारका मार्ग अवश्य दिखाऊँगा। तुमलोग जब दस्युओंके चंगुलमें आ जाओगी और तुम्हारे पति भगवान् नारायण जब अपने नित्यलोकमें स्थित हो जायँगे, तब देवर्षि नारद मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पास जायँगे। वहाँ तुम्हारा प्रायः म्लेच्छोंके अधीन सामान्य स्त्रियोंके समान र तुम लोग देवर्षि नारदकी सेवा-पूजा एवं सत्कार आदि उनसे अपने भगवान् नारायणके साहचर्यकी पुनः-प्र उपाय पूछोगी और वहाँसे तुम्हें यह मिलनेकी घटना शापकी बात भी संस्मृत हो जायगी। इसपर देवर्षि नारद एक ऐसे सरल व्रतका उपदेश करेंगे, जिसके आचरणम तुम सब अपने अप्सराभावको प्राप्तकर खेचरीगतिसे यु जाओगी। खेचरीगतिसे युक्त होनेपर तुम्हें *आकाशगमन* एवं अन्य दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हो जायँगी तथा पुनः तुम स्वर्गलोकमें आ जाओगी और वह व्रत आगेके लिये भी पतित स्त्रियोंके कल्याणका हेतु बनेगा। तुम्हारी विशेष नि साक्षात् श्रीहरि भी प्रसन्न हो सकते हैं। प्रायः स अप्सराओंकी यह कथा मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, भविष्य आदिमें विस्तारके साथ आती है। इस व्रतका 'अप्सरोव्रत' है।

पुराणों एवं धर्मशास्त्रोंके अनुसार रणभूमिमें वीरग प्राप्त होनेवाले योद्धाओं, स्वधर्मका पालन करते हुए प्राणो करनेवाले राजाओंका अप्सराएँ स्वर्गमें मनोरञ्जन करती हैं

अप्सरालोक स्वर्गलोक एवं दस लोकपालोंकी सभा भिन्न है। अप्सरालोकसे ही आकर अप्सराएँ देवस यथासमय संगीत-नाट्य आदिका आचरण करती हैं। अप्सराओंके ७० भेद या कोटियाँ बतलायी गयी हैं।*

(क्रम

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१०।

'हे प्रभो! वाणी आपके गुणोंके गायनमें, कान आपकी कथाके श्रवणमें, हाथ आपके कर्ममें, मन आ चरणकमलोंकी स्मृतिमें, सिर आपके निवासस्थान जगत्के प्रणाममें और आँखें आपके शरीरभूत संतोंके दर्शनमें लगी र
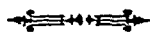
* यूनान, इटली तथा रूसी साहित्यमें भी इन दिव्य अप्सराओंके रहन-सहन एवं चरित्रोंपर अपार सामग्री है, जो भारतीय साहित्यसे अंशोंमें मिलती-जुलती है। भारतीय साहित्यमें जिसे 'श्वेतद्वीप' कहा गया है, वही पाश्चात्त्य भाषामें 'सोवियत लैंड' है। उधरके निवासियोंका भी श्वेत होता है। अतः कुछ लोग उन्हें अप्सराओं एवं अन्य दिव्य योनियोंकी संतान भी मानते हैं। जेम्स हेस्टिंग्सके 'एनसाईक्लोपीडिया अ एथिक्स एण्ड रेलीजन्स' ग्रन्थमें इसका वर्णन प्राप्त होता है।

मण्डलस्थ देवता

देवपूजन एवं यज्ञ-यागादिकार्योंमें मण्डलस्थ देवताओंके पूजनका भी विधान है, इससे कार्य-सिद्धि एवं उपासक-पूजकका सर्वविध कल्याण होता है। साङ्गोपाङ्ग पूजन-विधिमें मण्डलस्थ देवताओंके पूजनका विशेष महत्त्व है। इसलिये यज्ञ-यागादि तथा विवाहादि सभी माङ्गलिक कार्योंमें इन देवताओंका स्मरण और पूजन करना आवश्यक है। अतः यहाँ सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र, वास्तु, मातृका आदि मण्डलस्थ देवताओं तथा ग्रहमण्डलके देवताओंका विवरण और उनके चक्रोंका भी संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

षोडश मातृकाएँ

मङ्गलकार्योंमें भगवान् गणपतिके साथ षोडश मातृकाओंका स्मरण एवं पूजन करना चाहिये। इससे कार्यसिद्धि एवं अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। ये षोडश मातृकाएँ इस प्रकार हैं—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश॥

'गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना (षष्ठी), स्वधा, स्वाहा, माताएँ, लोकमाताएँ, धृति, पुष्टि, तुष्टि तथा स्वकीय कुलदेवता'—ये षोडश मातृकाएँ हैं। आगे क्रमशः इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१-माता गौरी

अप्रतिम गौर-वर्णा होनेके कारण पार्वती गौरी कही जाती हैं। ये नारायणी, विष्णुमाया और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा आदि देवता, सनक आदि मुनिगण तथा मनु प्रभृति सभी इनकी पूजा करते हैं। माता गौरी सबकी देखभाल और व्यवस्था करती हैं। यश, मङ्गल, सुख-सुविधा आदि व्यावहारिक पदार्थ तथा मोक्ष-प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये शरणागतवत्सला एवं तेजकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सूर्यमें जो तेज है, वह इन्हींका रूप है। ये भगवान् शङ्करको सदा शक्ति-सम्पन्न बनाये रखती हैं। सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धिदा, ईश्वरी आदि इनके सार्थक नाम हैं। ये दुःख, शोक, भय, उद्वेगको नष्ट कर देती हैं (देवीभाग० अ० ९)।

देवीके प्रमुख एक सौ आठ नामोंमें 'गौरी' नाम भी परिगणित है। यह नामावली स्वयं भगवतीने अपने पिता दक्षको उनके कल्याणके लिये बतायी थी (मत्स्यपुराण अ० १३)। यह नामावली बहुत ही प्रभावशाली है। जिस स्थानपर यह नामावली लिखकर रख दी जाती है, अथवा किसी देवताके समीप रखकर पूजित होती है, वहाँ शोक और दुर्गतिका प्रवेश ही नहीं हो पाता। माता गौरीकी मूर्ति कान्यकुब्जके सिद्ध-पीठपर विराजमान है। देवीके एक सौ आठ पीठोंमें यह अन्यतम पीठ है (देवीभा० ७।३०।५८)। विश्वपर जब-जब संकट आया है, तब-तब पराम्बाने उसे दूरकर विश्वको बचाया है (मार्क० ७८-७९)। माता गौरीने विश्वको यह वरदान दे रखा है कि जब-जब दानवोंसे बाधा उपस्थित होगी, तब-तब मैं प्रकट होकर उसका विनाश कर दिया करूँगी (मार्क० ८८।५१)।

गौरी-गणेशकी पूजाके बिना कोई कार्य सफल नहीं हो पाता। स्त्रियोंके लिये प्रतिदिन गौरीकी पूजा करनेका विधान है। आवाहनके मन्त्रमें माता गौरीका इस तरह परिचय दिया गया है—'ये हिमालयकी पुत्री, शङ्करकी प्रिया और गणेशकी जननी हैं'—

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम्।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम्॥

२-माता पद्मा

लक्ष्मीका एक नाम पद्मा भी है (ऋक्० परि० श्रीसूक्त, श्रीमद्भा०१०।४७।१३)। श्रीसूक्तमें माता लक्ष्मीके लिये

'पद्मस्थिता', 'पद्मवर्णा', 'पद्मिनी' 'पद्ममालिनी' 'पुष्करणी', 'पद्मानना', 'मद्मोरु', 'मद्माक्षि', 'पद्मसम्भवा', 'सरसिज-निलया', 'सरोजहस्ता', 'पद्मविपद्मपत्रा', 'पद्मप्रिया', 'पद्मदलायताक्षी' आदि पदोंका प्रयोग हुआ है (ऋक्० परि० श्रीसूक्त ४।२६)। इससे पता चलता है कि लक्ष्मीदेवीका पद्म (कमल) से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये सुगन्धित कमलकी माला पहनती हैं, इसीको हाथमें रखती और इसीपर निवास करना भी पसंद करती हैं। इनका वर्ण भी पद्मका-सा है; क्योंकि ये स्वयं पद्मसे उत्पन्न हुई हैं। पद्मकी पंखुड़ीकी भाँति इनकी बड़ी-बड़ी लुभावनी आँखें हैं। हाथ, चरण, ऊरु आदि सब अवयव पद्मकी भाँति हैं। अतः इनका 'पद्मा' नाम अन्वर्थक है।

इनका प्राकट्य समुद्र-मन्थनके अवसरपर हुआ था (महा०, आदि० १८।३५)। विष्णुभगवान्‌में इनकी परा अनुरक्ति थी। अतः इन्होंने पतिके रूपमें उन्हें ही वरण किया। वरणके अवसरपर इन्होंने जो माला उन्हें पहनायी थी, वह पद्मोंकी ही थी (भा० ८।८।२४)। लक्ष्मीके अनेक रूप हैं, उनमें 'पद्मा' विष्णुकी 'अनुरागिणीरूपा' हैं। गोपियोंने विष्णुके प्रति पद्माके प्रेमकी इस एकतानताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है (भाग० १०।४७।१३)। पद्माके अतिरिक्त अन्य रूपोंमें ये ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, सम्पत्तिका अम्बार लगा देती हैं और सर्वत्र शोभाका आधान करती हैं।

माता लक्ष्मीने अपने बहुत-से अवतारोंमें अपना नाम 'पद्मा' या एतदर्थक शब्द ही रखा है। आकाशराजकी अयोनिजा कन्याके रूपमें जब ये अवतीर्ण हुईं, तब इनका नाम पद्मावती, पद्मिनी और पद्मालया रखा गया (स्कन्दपु०, वै० ख०, भूमिवाराह-खण्ड)। भगवान् जब कल्किका अवतार ग्रहण करते हैं, तब लक्ष्मीका नाम 'पद्मा' ही होता है। कल्किपुराणमें भी इनकी पद्मप्रियताको द्योतित करनेके लिये पद्मघटित बहुत-से पद दिये गये हैं।

माता पद्माके कृपाकटाक्ष-पातमात्रसे समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति होकर सब सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। पुराणोंमें वर्णन आता है कि एक बार दुर्वासाके शापसे देवता श्रीहीन हो गये। वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। अमरावतीपर दैत्योंका अधिकार हो गया। घबराकर ब्रह्मा आदि देवता विष्णुकी शरणमें गये। विष्णुकी सन्मतिसे समुद्रका मन्थन हुआ, जिससे माता पद्माका आविर्भाव हुआ। देवता माता पद्माके चरणोंपर लोट गये। माता पद्माने देवताओंके भयको दूर करनेके लिये उनके भवनोंपर केवल एक दृष्टि डाल दी। बस, इतनेसे अमरावती दैत्योंसे खाली होकर सज-धज गयी। देवताओंको अपने प्रासाद पहलेसे भी अधिक मनोरम दीख पड़े। उन्हें पता ही नहीं चला कि दो क्षण-पूर्व ही वे कितने विपन्न और उद्विग्न थे। उस समय देवराज इन्द्रने जो स्तुति की थी, उसमें भी उन्होंने पद्मबहुल पदोंका विन्यास किया—

पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥

(देवीभा० ९।४२।५२)

माता पद्माके आवाहनमें जो श्लोक पढ़ा जाता है, उससे भी पद्मा नामकी अन्वर्थता प्रकट होती है। उसमें बताया गया है कि पद्माका मुख कमलकी भाँति है। वे कमलकी मालाओंपर बैठती हैं और कमलोंमें ही रहती हैं। जगत्प्रिया उन पद्मादेवीका मैं आवाहन करता हूँ—

पद्मिनीं पद्मवदनां पद्ममालोपरिस्थिताम्।
जगत्प्रियां पद्मवासां पद्मामावाहयाम्यहम्॥

आवाहनका एक अन्य मन्त्र इस प्रकार मिलता है—

सुवर्णाभां पद्महस्तां विष्णोर्वक्षःस्थलस्थिताम्।
त्रैलोक्यपूजितां देवीं पद्मामावाहयाम्यहम्॥

इससे ध्वनित होता है कि 'पद्मा' रूपसे ये निरन्तर विष्णुके वक्षःस्थलपर ही निवास किया करती हैं। 'ऐश्वर्य-लक्ष्मी' या 'धनलक्ष्मी' की भाँति कहीं अन्यत्र नहीं जातीं।

३-माता शची (इन्द्राणी)

वेदकी अनेक ऋचाओंमें माता शचीका वर्णन आया है। एक ऋचामें स्वयं देवराज इन्द्रने शचीकी प्रशंसामें कहा है कि विश्वमें जितनी सौभाग्यवती नारियाँ हैं, उनमें मैंने इन्द्राणीको सबसे अधिक सौभाग्यवती सुना है (ऋक्० १०।८६।११)। माता शची अन्तर्यामिणी हैं। जैसे सभी अवयवोंमें सिर प्रधान होता है, वैसे ही माता शची सबमें प्रधान हैं (ऋक्० १०।१५९।२)। ये षोडश शक्तियोंमें एक शक्ति मानी गयी हैं (ब्रह्माण्डपु० ४।४४।८४)।

इनकी रूपसम्पत्तिपर मुग्ध होकर देवताओंके राजा इन्द्रने
े विवाह किया था। इन्द्रको ये बहुत ही प्रिय हैं। **'इन्द्राणी
ा इन्द्रस्य प्रिया पत्नी'** (शत० १४।२।१।८)। शची
की सभामें उनके साथ सिंहासनपर विराजती हैं (महा०,
० ७।४)।

शची लक्ष्मीके समान प्रतीत होती हैं। ये पतिव्रताओंमें
और स्त्री-जातिकी आदर्श हैं (महा०,सभा० ७।४)। एक
इनके सतीत्वपर संकटकी घड़ी आ गयी। इन्द्रकी
अस्थितिमें राजा नहुषको इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित किया गया
राजा नहुष धर्मके पथपर चलनेवाले योग्य शासक थे।
इन्द्र-जैसे महत्त्वपूर्ण पदके लिये वे अपनेको योग्य नहीं
ानते थे। परंतु सब देवताओंने इन्हें अपना-अपना तेज
नकर समर्थ बनाया और एक वरदान भी दिया कि
सको तुम देख लोगे उसकी शक्ति तुममें आ जायगी।' यह
ान बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। अब देवों, दानवों, दैत्योंमेंसे
नहुषका सामना नहीं कर सकता था।

समर्थ नहुषसे देवताओंका कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो
था, देवता प्रसन्न थे। राजा नहुष भी प्रसन्न थे, क्योंकि ये
मनुष्यसे दुर्लभ स्वर्गसुख और ऐश्वर्यका भोग कर रहे थे।
-धीरे भोग-विलासने इनको अपनेमें लिप्त कर लिया।
की विवेक-शक्ति क्षीण होने लगी। एक बार शचीदेवीपर
की दृष्टि पड़ी। इनकी दृष्टि कलुषित होने लगी। माता
ीने इन्हें सावधान किया, किंतु नहुषकी आँखें नहीं खुलीं।
ञतः स्वर्गसे च्युत होकर नहुषको सर्प बनना पड़ा (महा०,
० ११।१५)।

माता शचीका आवाहन-मन्त्र इस प्रकार है—

दिव्यरूपां विशालाक्षीं शुचिकुण्डलधारिणीम्।
रत्नमुक्ताद्यलङ्कारां शचीमावाहयाम्यहम्॥

४-माता मेधा

विश्वके कल्याणके लिये आदिशक्तिने अपनेको उनचास
ोंमें अभिव्यक्त किया था (ब्रह्माण्ड० ४।४४।७०)।
हींमें माता मेधाकी भी गणना है। आदिशक्ति जैसे वाराणसीमें
शालाक्षीरूपसे, विन्ध्यपर्वतपर विन्ध्यवासिनीरूपसे,
ान्यकुब्जमें गौरीरूपसे और देवलोकमें शचीरूपसे विराजती
वैसे काश्मीर-मण्डलमें माता मेधाके रूपसे विराजती हैं
(मत्स्य० १३।४७)। यद्यपि माता मेधा सभी स्थलोंमें
और सभी प्राणियोंमें अनुस्यूत हैं, इसलिये सभी स्थलोंमें
और सभी प्राणियोंमें इनका दर्शन प्राप्त होता रहता है,
फिर भी पीठ-विशेषमें इनका प्राकट्य शीघ्र फलप्रद होता है
(मत्स्यपु० १३।२४-२५)।

यही आदिशक्ति प्राणिमात्रमें शक्ति-रूपमें विद्यमान हैं
(मत्स्यपु० १३।५३)। हममें जो निर्णयात्मिका बुद्धिशक्ति है
या धारणात्मिका मेधाशक्ति है, सब आदिशक्ति-रूप है।

माता मेधाके आवाहनके लिये जो मन्त्र पढ़ा जाता है,
उसमें बतलाया गया है कि माता मेधा बुद्धिमें स्वच्छता लाती
रहती हैं, इनकी आभा सूर्योदयकालीन सद्यःविकसित
कमलकी तरह है और ये कमलपर रहती हैं। इनका स्वरूप
बहुत ही सौम्य है—

वैवस्वतकृतफुल्लाब्जतुल्याभां पद्मवासिनीम्।
बुद्धिप्रसादिनीं सौम्यां मेधामावाहयाम्यहम्॥

५-माता सावित्री

माता सावित्रीका आविर्भाव भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वाके
अग्रभागसे हुआ है। इनका वर्ण स्फटिकके समान
उज्ज्वल तथा परिधानका रंग भी श्वेत है। ये सब प्रकारके
आभूषणोंसे भूषित हैं और हाथमें जपमाला लिये हुए हैं
(ब्रह्मवै० पु० १।४।१-२)। पुष्करपीठमें आदिशक्ति ही
सावित्रीके रूपमें विराजती हैं (पद्म० सृ० ख० अ० १७)।
इनका सावित्री नाम इसलिये पड़ा कि ये सृष्टि एवं वेदोंको
प्रकट करती हैं। सविता (सूर्य) के अधिष्ठातृ-देवता होनेसे ही
इन्हें सावित्री कहा जाता है। माता सावित्रीकी महिमा अत्यन्त
रहस्यमयी है। ये वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सम्पूर्ण वैदिक
वाङ्मय इन्हींका स्वरूप है (देवीभा० ९।२६।५४-५५)।
भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ये अपने सच्चिन्मय एवं
आनन्दमय रूपको निराकारसे साकार कर देती हैं। इनके वस्त्र-
आभूषण आदि सभी चिन्मय हैं (देवीभा० ९।२६)। इसीलिये
ब्रह्माने माता सावित्रीकी स्तुतिके अवसरपर इन्हें
सच्चिदानन्दरूप, परमानन्दरूप, नित्यानन्दरूप, सर्वस्वरूप और
सर्वमङ्गलरूप कहा है। यह भी कहा है कि माता सावित्रीके
स्मरणमात्रसे सब पाप भस्म हो जाते हैं (देवीभा०
९।२६।७९-८४)।

सावित्रीका मन्त्र है—'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं सावित्र्यै

सावित्रीकी पूजा सर्वप्रथम ब्रह्माने तत्पश्चात् से देवताओंने की। तदनन्तर विद्वानोंमें इनकी ालन हुआ। बादमें राजा अश्वपतिने इनकी आराधना भा० ९। २६। २—४)। राजा अश्वपतिको महर्षि माता सावित्रीकी पूजाके विधान, ध्यान आदि प्रयोग े। माता सावित्रीने राजा अश्वपतिकी उपासनासे प्रसन्न भिलषित वरदानमें एक तेजस्विनी कन्या दी, जिसने हुए पतिके प्राण लौटाये, अपने अंधे ससुरको आँखें यीं, गया हुआ राज्य भी दिलाया और पिताको सौ पुत्र इस तेजस्विनी सतीका नाम भी 'सावित्री' रखा गया कि यह सावित्री देवीके ही प्रसादसे उत्पन्न हुई थी। ीभागवत (९। २६। ५०—५२) में माता सावित्रीको भक्तिदा, शान्ता, सर्वसम्पत्प्रदा कहकर इनका सम्मान ाया है।

ाकृत जगत्में इनके आनेके सम्बन्धमें कहा गया है कि बिना जब ब्रह्माके द्वारा सृष्टिकी रचना नहीं हो पा रही थी, न्होंने वेदमाता सावित्रीकी बहुत स्तुति की। किंतु माता ो गोलोक छोड़कर ब्रह्माके पास नहीं आना चाहती थीं। ब्रह्माके बहुत अनुनय-विनय करनेपर श्रीकृष्णकी आज्ञासे ी ब्रह्माके पास आयीं (देवीभा० ९। २६। ७६—७८)। माता सावित्रीके स्थापन-मन्त्रमें उपर्युक्त बातें प्रायः ूपसे कही गयी हैं।

जगत्सृष्टिकरीं धात्रीं देवीं प्रणवमातृकाम्।
वेदगर्भां यज्ञमयीं सावित्रीं स्थापयाम्यहम्॥

६-माता विजया

आदिशक्तिका नाम विजया तब पड़ा, जब उन्होंने पराक्रमी दैत्यराज पद्मका उद्धार कर विश्वको नष्ट होनेसे ाया था (देवीपु० अ० ४५)। विजया-माता विष्णु, रुद्र र सूर्यके श्रीविग्रहोंमें निरन्तर निवास करती हैं। अतः इनकी दा विजय ही होती है। माता विजयाके आवाहनका मन्त्र म्रलिखित है—

विष्णुरुद्रार्कदेवानां शरीरेषु व्यवस्थिताम्।
त्रैलोक्यवासिनीं देवीं विजयामावाहयाम्यहम्॥

७-माता जया

आदिशक्तिने जैसे विजय दिलानेके लिये अपनेको विजयाके रूपमें आविर्भूत किया है, वैसे ही जयाके रूपमें भी। इसी बातको महाराज युधिष्ठिरने अपने स्तवनमें कहा है—

जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा।

(महा०, वि० ६। १६)

दुर्गासप्तशतीके पाठके प्रारम्भमें, कवचमें आदिशक्तिसे प्रार्थना की जाती है कि 'माँ! आप जयाके रूपमें आगेसे और विजयाके रूपमें पीछेसे मेरी रक्षा करें—

जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः।

माता जयाके आवाहनका मन्त्र इस प्रकार है—

सुरारिमथिनीं देवीं देवानामभयप्रदाम्।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं जयामावाहयाम्यहम्॥

८-माता देवसेना (षष्ठीदेवी)

लोककल्याणके लिये भगवतीने अपना आविर्भाव ब्रह्माके मनसे किया है। अतः ये ब्रह्माकी मानस-कन्या कही जाती हैं। ये जगत्पर शासन करती हैं। इनका देवसेना नाम इसलिये पड़ा कि इन्होंने दैत्योंसे ग्रस्त देवताओंकी रक्षाके लिये देवताओंकी ओरसे सेना बनकर युद्ध किया था (देवीभा० ९। ४६। २४)। इस सेनाके प्रधान सेनापति कुमार स्कन्द थे। ब्रह्माने देवसेनाका विवाह स्कन्दसे कर दिया था। देवसेना सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हैं (देवीभा० ९। ४६। २६)।

माता देवसेना मूल प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट हुई हैं। इसलिये इनका नाम षष्ठीदेवी भी है। ये विष्णुकी परम भक्त हैं और योगकी पराकाष्ठाको प्राप्त हैं (ब्र० वै० पु०, प्र० खं०, १। ८१)। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ये सदा आतुर रहती हैं। ये मूर्तिमती कृपा ही हैं। वत्सलता इनकी आँखोंसे झलकती रहती है। ये पुत्रहीनको पुत्र, प्रियाहीनको प्रिया-पत्नी और निर्धनको धन प्रदानकर बहुत संतुष्ट होती हैं (देवीभा० ९। ४६। २७)।

स्वामी कार्तिकेय इन्हें प्राणोंसे भी अधिक मानते हैं। माता देवसेना भी अपने पतिके समीपमें अनुरागसे सिक्त सुन्दरी युवतीके रूपमें निरन्तर रहती हैं। किंतु विश्वके सम्पूर्ण शिशुओंपर इनकी असीम कृपा बरसती रहती है, इसलिये

बच्चोंको प्यार करनेके लिये उनके पास योगसे वृद्धा माँ बनी रहती हैं (ब्रह्मवै० पु० २। ८२। ८३)। विश्वभरके बच्चोंके प्रति इनमें असीम ममता भरी रहती है। कभी-कभी तो बिना बुलाये ही बच्चेको संकटसे बचाने आ जाती हैं। इस विषयमें एक घटना इस प्रकार है—

स्वायम्भुव मनुके पुत्र राजा प्रियव्रतके एक मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ। यह देख बच्चेकी माँ मूर्च्छित हो गयी। विवश होकर राजा प्रियव्रत बच्चेको श्मशान ले गये। पुत्र-शोकसे वे बहुत उद्विग्न थे, किंतु कुछ कर नहीं सकते थे।

पिता-माताका बच्चेपर जितना अनुराग था, उससे कम अनुराग माता देवसेनाके पास न था। वे झट ब्रह्मलोकसे श्मशानमें उपस्थित हुईं। सम्राट्ने मृत शिशुको भूमिपर रख दिया और बहुत श्रद्धाभावसे माता देवसेनाकी पूजा और स्तुति की। माता देवसेनाने शिशुको जीवित कर दिया। अपने आशीर्वादसे उस बच्चेको गुणी, शुद्ध, योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंमें सिद्ध और यशस्वी बना दिया। (देवीभा० ९। ४६। ३९-४०)।

प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन और अन्नप्राशनके अवसरपर षष्ठीदेवी (माता देवसेना)की पूजा प्रत्येक घरमें होती है।

नारी-जातिके उच्च आदर्श माता देवसेनाके जीवनमें देखे जा सकते हैं (महा०, व० २२३—२२९)। इनके आवाहनका मन्त्र निम्नलिखित है—

मयूरवाहनां देवीं खड्गशक्तिधनुर्धराम्।
आवाहये देवसेनां तारकासुरमर्दिनीम्॥

९-माता स्वधा

मुनिवर नारायणने कहा है कि माता स्वधाकी पूजा वेदप्रतिपादित और सर्वसम्मत है (ब्र० वै० पु०२। ४१)। पितामह ब्रह्माने कहा है कि स्वधादेवीके नाम लेनेमात्रसे तीर्थ-स्नानका फल मिल जाता है, सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है और ब्राह्मण वाजपेय-यज्ञके फलका अधिकारी हो जाता है। यदि 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' तीन बार उच्चारण किया जाय तो श्राद्ध, बलिवैश्वदेव और तर्पणका फल प्राप्त हो जाता है (ब्र० वै० पु० २। ४१। २९-३०)।

भगवती स्वधा पितरोंको तृप्त कर देती हैं और श्राद्धके फलको बढ़ा देती हैं (ब्र० वै० पु० २। ४१)। जबतक माता स्वधाका आविर्भाव नहीं हुआ था, तबतक पितरोंको भूख और प्याससे पीड़ित रहना पड़ता था, क्योंकि ब्राह्मण आदि जो कुछ उनके उद्देश्यसे देते थे, वह उनको मिल नहीं पाता था। भूखसे पीड़ित होकर वे पितर ब्रह्माके पास पहुँचे और उन्होंने अपना कष्ट उनसे निवेदित किया। पितरोंके इस कष्टसे ब्रह्मा चिन्तित हो गये, वे सोचने लगे कि मैंने इनके भोजनके लिये कव्यकी व्यवस्था की थी; वह ब्राह्मणोंके द्वारा देनेके बाद भी पितरोंतक क्यों नहीं पहुँचता ? उन्होंने माता स्वधाका ध्यान किया। माता स्वधा प्रकट हो गयीं। वह मूलप्रकृतिकी अंशभूता और शुद्धस्वरूपा हैं। लक्ष्मीकी भाँति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। उनकी आभामें सैकड़ों चन्द्रमाके समान आह्लादता है। पितामहने भगवती स्वधाको पितरोंके हाथ सौंप दिया। मनुष्योंको एक गोपनीय बात भी बता दी कि पितरोंके उद्देश्यसे जो भी पदार्थ अर्पण किया जाय, उनमें 'स्वधा' अवश्य लगा दिया करें और तभीसे स्वधा लगाकर पितरोंको कव्य दिया जाने लगा, तब सब पदार्थ पितरोंको मिलने लगा।

उस समय सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों और मानवोंने माता स्वधाकी सविधि भावपूर्वक पूजा और स्तुति की। तब माता स्वधाने सबको मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। पितामह ब्रह्माने घोषणा की कि अन्य अवसरोंपर तो भगवती स्वधाका पूजन होना ही चाहिये, श्राद्धके अवसरपर पहले स्वधादेवीकी पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये। जो अभिमानवश स्वधादेवीकी पूजा न कर, श्राद्ध करता है तो उसे श्राद्ध और तर्पणका फल नहीं मिलता (ब्र० वै० पु० २। २२)। स्वधाका पूजन, ध्यान और स्तोत्र महत्त्वपूर्ण हैं।

माता स्वधाका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
पूज्यां पितॄणां देवानां श्राद्धानां फलदां भजे॥

इस प्रकार ध्यानकर शालग्राम-शिला अथवा कलशपर माता स्वधाका आवाहनकर—'*ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा*' इस मन्त्रसे पाद्य आदि उपचारोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। स्तुति और प्रणामके बाद स्तोत्रका पाठ करना

चाहिये। इस स्तोत्र-पाठसे मनुष्यकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। ब्रह्माने पूर्वकालमें इस स्तोत्रका पाठ किया था[1]।

माता स्वधाके आवाहनका प्रचलित मन्त्र नीचे दिया जाता है—

कव्यमादाय सततं पितृभ्यो या प्रयच्छति।
पितृलोकार्चितां देवीं स्वधामावाहयाम्यहम्॥

१०-माता स्वाहा

सृष्टिके आरम्भकालकी बात है। ब्रह्माने आजानदेवोंकी सृष्टि कर ली थी। उनके भोजनकी व्यवस्थाके लिये उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की। उस यज्ञमें जो आहुतियाँ दी गयीं, उनको ब्रह्माने देवताओंको दे दिया। उनसे देवताओंकी तृप्ति हो गयी, किंतु मनुष्य जो आहुतियाँ दे रहे थे, वे देवताओंको नहीं मिल रही थीं। देवताओंने ब्रह्मासे अपना कष्ट सुनाया । ब्रह्माने श्रीहरिके निर्देशसे माता स्वाहाका स्मरण किया। तब सर्वशक्ति-स्वरूपिणी भगवती अपनी कलासे स्वाहाके रूपमें प्रकट हुईं। उस समय माता स्वाहा कृष्णके अनुरागमें अनुरक्त थीं। श्रीकृष्णने स्वाहाका सम्मान किया और कहा कि वाराह-अवतारमें नाग्नजितीके रूपमें तुम मुझसे मिलोगी। इस समय तुम अग्निदेवताकी दाहिका शक्तिके रूपमें पत्नी बनकर देवताओंको आप्यायित करो।

अनुकूल अवसर देखकर ब्रह्माने अग्निदेवताको भगवती स्वाहाके पास भेजा। अग्निदेवता वहाँ आये और सामवेदमें कही गयी विधिके अनुसार स्वाहाकी पूजा और स्तुति की। स्वाहादेवी अनुकूल हो गयीं। बादमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक दोनोंका विवाह हुआ। तभीसे ऋषि, मुनि और द्विज स्वाहान्त मन्त्रोंका उच्चारण कर अग्निमें आहुति देने लगे और वह देवताओंको आहारके रूपमें प्राप्त होने लगी।

माता स्वाहाके ध्यान और पूजाका बहुत महत्त्व है। सामवेदमें इनका उल्लेख है (ब्र० वै० पु० २। ४१। ४६)।

माता स्वाहाका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

स्वाहां मन्त्राङ्गयुक्तां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्।
सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे॥

—इस प्रकार ध्यानकर शालग्राम-शिलापर माता स्वाहाका आवाहन निम्न मन्त्रसे करें—

हविर्गृहीत्वा सततं पितृभ्यो या प्रयच्छति।
तां दिव्यरूपां वरदां स्वाहामावाहयाम्यहम्॥

'**ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा**' इस मन्त्रसे पाद्य आदि उपचारोंद्वारा पूजा करे तथा स्तुति और प्रणाम करनेके बाद स्तोत्रका पाठ करना चाहिये[2]। इससे मनुष्यकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

११-मातरः (मातृगण)

शुम्भ और निशुम्भके अत्याचारोंसे विश्व त्रस्त था। देवताओंने त्राण पानेके लिये जगदम्बाकी स्तुति की । भगवती प्रकट हुईं। उन्होंने देवताओंको आश्वासन देकर बिदा कर

१-नारायण उवाच—

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्। श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥
श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। प्रियां विनीतां स लभेत् साध्वीं पुत्रगुणान्विताम्॥
पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी। श्राद्धाधिष्ठात्री देवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥
नित्या त्वं सत्यरूपासि पुण्यरूपासि सुव्रते। आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव॥
ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा। निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः॥
कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः। (देवीभा० ९। ४४। २७-३४)

२-वह्निरुवाच— स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी।
शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा। गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी। देवी जीवनरूपा च देवपोषणकारिणी॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वसिद्धिर्भवेत् तस्य इहलोके परत्र च॥
नाङ्गहीनं भवेत् तस्य सर्वकर्मसुशोभनम्। अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत् प्रियाम्॥
रम्भोपमां स्वकान्तां च सम्प्राप्य सुखमाप्नुयात्॥ (देवीभा० ९। ४३। ५०—५५)

दिया, स्वयं हिमालयपर रुक गयीं। इनके अनुपम रूप-लावण्यकी बात दैत्यराज शुम्भने सुनी। उसने सैन्यशक्तिसे माताको अपने अधीन बनाना चाहा। धूम्रलोचन, चण्ड और मुण्डको इनके पास भेजा; पर जब इनका वश न चला, तब शुम्भने बहुत बड़ी सेना भगवतीके विरुद्ध भेजी। माताने उनके कल्याणके लिये अपनेको सजी-सजाई अपार सेनाके रूपमें प्रस्तुत किया। इतनी बड़ी सेना देखकर शुम्भ युद्ध बंद कर देता तो रक्तपातसे बचा जा सकता था; किंतु अहंकारीको विचार-शक्ति नहीं होती। उस समय माताने अपनेको अनेक रूपोंमें प्रकट किया। ब्रह्मा, शिव, स्वामिकार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्रके शरीरसे पृथक्-पृथक् शक्तियाँ निकलकर उन-उन देवताओंके समान रूप धारणकर माताके पास आयीं। जिस देवताका जैसा रूप, जैसा भूषण और जैसा वाहन था वैसे ही रूप, वैसे ही भूषण तथा वैसे ही वाहनोंसे मण्डित होकर देवताओंके शरीरसे निकली हुई वे शक्तियाँ आयीं। ब्रह्माकी शक्ति ब्रह्माणी हंसयुक्त विमानपर हाथमें अक्षमाला और कमण्डलु लेकर आयीं। माहेश्वरी शक्ति-त्रिशूल लेकर आयीं। इस तरह स्कन्दकी शक्ति कौमारी, विष्णुकी शक्ति वैष्णवी, यज्ञ-वाराह-रूपधारी वाराहकी शक्ति वाराही आयीं और नृसिंहकी शक्ति नारसिंहीके रूपमें आयीं। इस तरह माताओंने अनेक रूप धारणकर असुरोंका संहार किया और विश्वका कल्याण किया (मार्कण्डेयपु० ८१—८७)।

माताओंके आवाहनका मन्त्र इस प्रकार है—

आवाहयाम्यहं मातृः सकला लोकपूजिताः।
सर्वकल्याणरूपिण्यो वरदा दिव्यभूषिताः॥

१२-लोकमाताएँ

अन्धकासुर वरदान प्राप्तकर देवताओंके द्वारा अवध्य हो गया था। एक बार उसने पार्वतीदेवीका अपहरण करनेका प्रयास किया। भगवान् शङ्करने उसे मना किया, किंतु वह किसकी सुननेवाला था। तब भगवान् रुद्रने उसपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रसे अन्धकासुरका शरीर छलनी हो गया। रक्तका प्रवाह चल पड़ा, किंतु प्रत्येक रक्तकणसे अनगिनत अन्धक उत्पन्न हो गये। उनके घायल शरीरोंसे बहते हुए रक्तसे और भी अन्धक प्रकट हो गये।

भगवान् शङ्करने अन्धकासुरका रक्त पीनेके लिये मातृकाओंकी सृष्टि की। मातृकाओंने अन्धकोंको रक्तशून्य बना दिया। भगवान् विष्णुने भी शुष्करेवती नामवाली एक मातृकाको प्रकट किया। इसने क्षणमात्रमें सम्पूर्ण अन्धकोंका रक्त चूस लिया। उसके बाद शङ्करने सब अन्धकोंको कालके गालमें भेज दिया।

भगवान् विष्णुने लोक-कल्याणके लिये अपने अङ्गोंसे बत्तीस अन्य मातृकाओंकी सृष्टि की। ये सभी महान् भाग्यशालिनी, बलवती तथा त्रैलोक्यके सर्जन और संहारमें समर्थ हैं। भगवान्ने उन सबको आदेश दिया कि जिस प्रकार मनुष्य और पशु अपनी संतानका पालन-पोषण करते आ रहे हैं, उसी प्रकार तुमलोग भी समस्त लोकोंकी रक्षा करो। विशेषकर शिवभक्तों तथा विष्णुभक्तोंकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये। मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे और तुम उनका मनोरथ पूर्ण करो (मत्स्यपु० अ० १७९)।

लोकमाताओंके आवाहनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

आवाहये लोकमातॄर्जयन्तीप्रमुखाः शुभाः।
नानाभीष्टप्रदाः शान्ताः सर्वलोकहितावहाः॥
आवाहये लोकमातॄर्जगत्पालनसंस्थिताः।
शक्राद्यैरर्चिता देवीः स्तोत्रैराराधनैस्तथा॥

१३-माता धृति

भगवती सतीने अपने पिताके हितके लिये साठ कन्याओंके रूपमें अपनेको व्यक्त किया। पिता दक्षने दूसरे जन्ममें उन तीर्थ-स्थानों (शक्ति-पीठों) पर जाकर भिन्न-भिन्न नामोंसे उनका स्तवन किया। इसके प्रभावसे वे फिर प्रजापति हो गये। उन १०८ रूपोंमें माता धृतिका भी नाम आता है। ये देवी पिण्डारकधाममें आज भी धृतिरूपसे विराज रही हैं (मत्स्यपु० १३।४८)।

माता धृतिका सब लोग वन्दन और स्तवन करते हैं। इन्हींके कारण सभी प्राणियोंमें धैर्य बना रहता है, ये न रहें तो सब लोग धैर्यहीन हो जायँ (ब्रह्मवै० पु० २।१।१०८)। इनकी कृपासे मनुष्य धर्ममें प्रवेश पा जाता है (महा०,आदि० ६६।१५)।

१४-माता पुष्टि

शक्ति-स्वरूपा सती विश्वेश्वर-तीर्थमें पुष्टिरूपमें विराजमान

पु० १३।४७)। माता पुष्टिके द्वारा ही संसारके सभी
ा पोषण होता रहता है। इनके बिना सभी प्राणी क्षीण
हैं (ब्रह्मवै०, पु० २।१।१०५)। इनके आवाहनका
त्रे दिया जाता है—

ायन्तीं जगत्सर्वं शिवां सर्वार्थसाधिकाम्।
पुष्टिकरीं देवीं पुष्टिमावाहयाम्यहम्॥

१५-माता तुष्टि

ादिशक्ति सभी प्राणियोंमें तुष्टिके रूपसे विराजती हैं।
ष्टिके कारण प्राणियोंमें संतोषकी भावना बनी रहती है।
न हों तो सब लोग संतोषरहित हो जायँ और संसार
य हो जाय (ब्रह्मवै० पु० २।१।१०६)। माता तुष्टि
प्रयोजन सिद्ध करती रहती हैं। इसलिये सब लोग
पूजा और वन्दना किया करते हैं। माता तुष्टिके
हनका मन्त्र इस प्रकार है—

आवाहयामि संतुष्टिं सूक्ष्मवस्त्रान्वितां शुभाम्।
संतोषभावयित्रीं च रक्षन्तीमध्वरं शुभम्॥

१६-कुलदेवता

मातृकाओंके पूजनक्रममें प्रथम भगवान् गणेशकी तथा
ामें अपने-अपने कुलदेवताकी पूजाका विधान है।
इसलिये कुलदेवताका पूजन करना चाहिये। अपने-अपने वंश-परम्परामें कुलपूर्वजोंद्वारा जो भी देवी-देवता पूजित होते आ रहे हों, उपास्य हों, आराध्य हों, उनका पूजन अवश्य करना चाहिये। इससे वंश, कुल, कुलाचार तथा मर्यादाकी रक्षा होती है, वंश नष्ट नहीं होने पाता और सुख, शान्ति एवं ऐश्वर्यकी भी प्राप्ति होती है।

षोडशमातृका-चक्र—माङ्गलिक कार्यों, याज्ञिक अनुष्ठानादि कर्मोंमें अग्निकोणकी वेदिका अथवा पाटेपर सोलह कोष्ठकके चक्रकी रचनाकर उत्तर मुख अथवा पूर्वमुखके

कुलदेवता १७	लोकमातरः १३	देवसेना ९	मेधा ५
तुष्टि १६	मातरः १२	जया ८	शची ४
पुष्टि १५	स्वाहा ११	विजया ७	पद्मा ३
धृति १४	स्वधा १०	सावित्री ६	गौरी २ गणेश १

क्रमसे सुपारी अथवा अक्षतपुञ्जोंपर क्रमशः गणेश, गौरी, पद्मा आदिकी स्थापना-आवाहन-प्राणप्रतिष्ठापूर्वक मातृकाओं-का पूजन करना चाहिये।

सप्तघृत-मातृकाएँ

मूल वैदिक संहिताओं तथा आयुर्वेद आदि शास्त्रोंमें शुद्ध गोघृतकी अपार महिमा प्रदर्शित की गयी है और इसे देवताओंका मुख्य एवं सर्वाधिक प्रिय भोज्य पदार्थ माना गया है। पितरोंकी तृप्तिके लिये भी घृत परम उपयोगी पदार्थ माना गया है। साथ ही इसके आज्य, सर्पि और मस्तु—ये तीन भेद भी बतलाये गये हैं। वैसे 'आयुर्वै घृतम्' कहकर इसे मनुष्योंके लिये भी आयु, पुष्टि, मेधा, प्रज्ञा, तेज, कान्ति, बलादिका संवर्धक बताया गया है। इसके अतिरिक्त घृत एक माङ्गलिक द्रव्य और पवित्र पदार्थ भी माना गया है। इसीलिये घृतपक्व अन्न या हविष्य पदार्थोंमें अशुद्धि नहीं मानी जाती। यदि अखण्ड गोघृत-दीपका कुछ दिन प्रयोग किया जाय तो सभी देवी-देवताओंका वहाँ संनिधान हो जाता है। इसलिये विशेष यज्ञों और शतचण्डी आदि अनुष्ठानोंमें अखण्ड-दीपका विधान किया जाता है और सभी माङ्गलिक कृत्यों एवं पूजा आदिके आरम्भमें ही 'साक्षीदीप'को प्रज्वलित कर दिया जाता है। पञ्चामृत, पञ्चगव्य और मधुपर्कादिमें पवित्रता एवं माङ्गल्यके लिये घृतको मुख्य पदार्थ माना गया है। अनेक आयुर्वेदिक ओषधियोंमें भी मेधा, प्रज्ञा, पुष्टि और बलवृद्धिके लिये मुख्य रूपसे घृतका प्रयोग किया जाता है। अशुभ तथा अनेक अनिष्ट एवं दुर्दृष्टोंको दूर करनेके लिये ग्रह-शान्तिविधानमें 'घृतच्छायादान' एक आवश्यक अङ्ग माना गया है। इसलिये सभी प्रकारके देवाराधनमें घृतका अनेकधा

प्रयोग दृष्ट होता है। शास्त्रोंमें देव-देवियोंकी प्रसन्नता तथा भीषण अनिष्टोंको दूर करनेके लिये घृत-धेनु एवं घृताचल आदिके दानका भी विधान किया गया है। देवी-देवताओंको विशेषरूपसे आज्य ही प्रिय होता है।

ऋग्वेदमें एक सम्पूर्ण सूक्त (४। ५८) घृतकी स्तुतिमें संलग्न है। उपनिषदोंमें परमात्माकी उपासना सम्पूर्ण संसारके साररूपमें उसी प्रकार दी गयी है, जैसे गव्य पदार्थोंमें घृत सार होता है अथवा दूसरी व्याख्या यों की गयी है कि जैसे गायके शरीरमें प्रत्यक्ष दूधमें भी स्थित घृत दिखलायी नहीं पड़ता, किंतु युक्तिके आश्रयसे मन्थानके द्वारा उसे गायके थनोंसे दुहकर और पुनः दही तथा फिर नवनीतको विलोडितकर उसे साररूपमें संगृहीत कर लिया जाता है, उसी प्रकार साधनोंके द्वारा परमात्माका साक्षात्कार कर लिया जाता है।

इस प्रकार घृत सर्वत्र शक्ति और कल्याण-मङ्गलका प्रतिनिधित्व करता है। परमात्माकी जो शक्ति है, उसे मुख्य सात रूपोंमें विवर्तित—श्री, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा तथा सरस्वती— इन नामोंसे अभिहित किया गया है और इन्हें घृतरूपमें ही प्रत्यक्ष माना गया है। घृतमातृकाके रूपमें उसकी आराधना कर विघ्न-निवृत्ति और अमङ्गलोंका अपसारण किया जाता है तथा कल्याण, मङ्गल एवं परासिद्धिकी प्राप्तिका प्रयत्न किया जाता है। परमात्म-प्राप्तिका यह मुख्य द्वार है।

श्रीर्लक्ष्मीश्च धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती।
मङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः॥

यहाँ श्री, लक्ष्मी, धृति आदि इन सात घृतमातृकाओंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१-श्रीदेवी—भगवान् विष्णुकी दो पत्नियाँ हैं—रमादेवी और भूमिदेवी। कई संहिताओंमें **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च'** के स्थानपर **'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ०'** ऐसा पाठ मिलता है और 'ह्री' को पृथ्वीदेवी, भूमिदेवी या भूदेवीका रूप माना गया है। ये अचल सम्पत्ति या ऐश्वर्यका प्रतिनिधित्व करती हैं। भूदेवीके रूपमें ये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती और सभी प्राणियोंका पालन एवं जीवनयात्राका निर्वाह करती हैं। अतः ये सभीकी प्रत्यक्ष माता होनेसे मातृका-रूपमें सर्वप्रथम उपास्य मानी गयी हैं।

२-माता लक्ष्मी—ये भगवान् विष्णुकी मूल शक्ति हैं और चल सम्पत्ति तथा सभी सौभाग्य एवं रूप, तेज, यश और प्रतिष्ठा आदिका प्रतिनिधित्व करती हैं। अतः ये अदृष्ट होनेपर भी विशेष महत्त्वकी हैं। समस्त सुख-सौभाग्यके मूल होनेके कारण मातृकाके रूपमें ये अवश्य उपास्य हैं।

३-धृति—धारण-लक्षणात्मिका होनेके कारण माता धृति धर्मका प्रतिनिधित्व करती हैं और धृति—धैर्यके लिये अपार ज्ञान, बुद्धि और मनन-शक्तिकी आवश्यकता है। धृतिके बलपर ही मनुष्य क्लेश-समुद्रको पारकर साहसद्वारा अभ्युदयको प्राप्त करता है। मन्वादि शास्त्रोंने तो **'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं०'** आदि सभी सद्गुणों और धर्मोंपर इन्हें ही प्रथम स्थान दिया है तथा इन्हींके कारण दूसरे सद्गुण भी प्राप्त होते हैं। अतः ये भी मातृकाके रूपमें अवश्य उपास्य, ध्येय एवं पूज्य मानी गयी हैं।

४-मेधा—मेधाशक्ति दीर्घकालीन स्मृतिके रूपमें जानी जाती हैं। इसीके द्वारा सम्पूर्ण शास्त्र मनुष्यके हृदयमें स्मृत रहते हैं। मेधा शक्ति न हो तो तत्काल विस्मृति हो जाती है, अतः सफलताके लिये तथा भगवान्की अविच्छिन्न स्मृति बनाये रखनेके लिये ही मेधाशक्तिकी आवश्यकता होती है और इसके लिये मेधाजनन-संस्कारका विधान है, जिसके लिये मुख्यरूपसे मातृकारूपमें मेधाशक्तिकी आराधना की जाती है। इसलिये इनकी सभी सत्कार्यों, विशेषरूपसे विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह तथा सभी यज्ञादि मङ्गल कार्योंमें श्रद्धापूर्वक उपासना आवश्यक मानी गयी है। ऋग्वेदके खिलभाग (१०। १५१) में मेधासूक्त पठित है।

५-पुष्टि—पुष्टि-शक्तिका प्राण और बलसे विशेष सम्बन्ध है। बलके बिना शरीरका चलना-फिरना, दसों इन्द्रियोंका स्पन्दन और उनकी गतिशीलता, बुद्धि एवं विद्या-शक्ति भी कुण्ठित हो जाती है। पुष्टिका शक्तिसे सीधा सम्बन्ध है। अतः इन्हें सभी शक्तियोंका केन्द्र कहा जा सकता है। इनके द्वारा सम्पोषण होनेसे प्राण, मन, सह, ओज, बल, तेज, प्रतिभा आदिका विकास होता है और मनुष्य सर्वत्र विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। इसीके सहारे धर्मका आचरण कर पुण्यलोकोंको भी प्राप्त करता है तथा अधिक धर्माचरणसे शाश्वत शान्ति एवं मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है। अतः सप्त मातृकाओंमें इनका मुख्य स्थान है और सभी माङ्गलिक कार्योंमें इनकी उपासना आवश्यक मानी गयी है।

६-श्रद्धा—पुराणोंमें श्रद्धादेवीको दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और धर्मकी पत्नी कहा गया है (श्रीमद्भा० ४।१।४९)। धर्मदेवताकी ये मुख्य शक्ति मानी गयी हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वचनानुसार श्रद्धाके बिना किया गया धर्म-कर्म असत् एवं निष्फल होता है और श्रद्धासे ही अनुष्ठित जप, तप, हवन, दान, पूजा, उपासना श्रेष्ठ फलदायक होते हैं[1]।

श्रद्धा उत्पन्न होते ही देवता तथा क्रियामें विश्वास होकर तारतम्यरूपसे फल-प्रदानकी शक्ति अंकुरित होने लगती है। ऋग्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण तथा हरिवंशादिमें अनेक श्रद्धा-सूक्त हैं और इनकी अपार महिमा प्रदिष्ट है। ये देवी परमात्म-प्राप्तिमें सर्वाधिक सहायिका होती हैं। वेदमें ऋषियोंके द्वारा बार-बार प्रार्थना की गयी है कि हमारी श्रद्धा देवताओंमेंसे किसी प्रकार न हटे। देवताओंमें—माता, पिता, गुरु, ईश्वर, अतिथि, गो तथा गङ्गादि पवित्र नदियाँ—सभी परिगृहीत होते हैं। हरिवंशमें श्रद्धा-माहात्म्यका अत्यन्त विस्तारसे वर्णन है। इस दृष्टिसे श्रद्धाका महत्त्व अत्यधिक है और वह सभी ऐहिक-पारलौकिक फलको देनेसे कामायनी भी कही गयी है। मातृकाओंमें इनका प्रमुख स्थान है।

७-सरस्वती—सरस्वतीदेवीका स्वरूपज्ञान विद्या-कलाके प्रतीकरूपमें मान्य है। वैसे वेदोंमें इनके अनेक रूप बतलाये गये हैं। जलका मुख्य रूप भी सरस्वान् अर्थात् समुद्र कहा गया है, इनकी पत्नी होनेसे ये सभी नदियोंकी भी प्रतीक मानी गयी हैं। ये समस्त देवताओं, ऋषियों, मुनियों तथा मानव-समुदायके अन्तःकरणकी शुद्धि विद्या-बुद्धिके द्वारा तथा बाह्य शरीरकी शुद्धि पवित्र जलके रूपमें कर सबको कृतार्थ करती हैं। पुराणोंमें इन्हें वेदवक्ता ब्रह्माकी प्रेरिका शक्ति और पञ्च सरस्वती, सप्तसारस्वततीर्थ, सप्तगङ्गा और पुनः अष्टादश सरस्वतीके रूपमें विवर्तित दिखाया गया है। इसलिये मातृकाओंके अन्तमें प्रतिष्ठित होनेपर भी इनका महत्त्व सर्वातिशायी है, क्योंकि ये ही वेद, शास्त्र और समस्त ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी तथा उत्पादिका शक्ति और विद्या-बुद्धिकी एकमात्र प्रतीक मानी गयी हैं। इनके बिना किसी प्रकारका ज्ञान सम्भव नहीं, अतः इनकी सभी माङ्गलिक कृत्यों तथा यज्ञादि अनुष्ठानोंमें पूजा-उपासनाका विधान है, वह अवश्यमेव करणीय है।

सप्तघृतमातृका-चक्र—सप्तघृतमातृका-पूजाविधानके लिये आग्नेय कोणमें सप्तकोष्ठात्मक चक्र निर्माण कर इन सप्त

पूर्व

॥ श्रीः ॥

o

o o

o o o

o o o o

o o o o o

o o o o o o

o o o o o o o
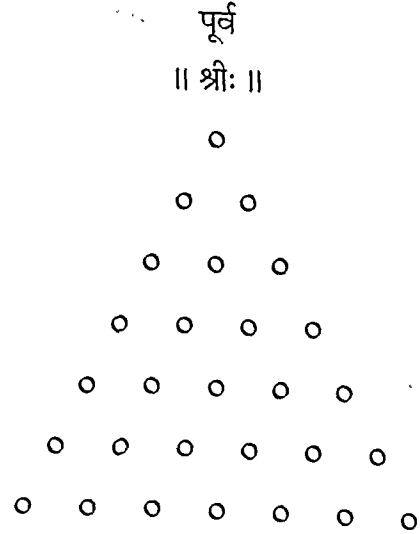
(वसोर्धारा)

घृतमातृकाओंकी स्थापना, प्रतिष्ठा तथा यथोपचार-पूजाकर घृतधाराके द्वारा विशेष पूजा करनेका विधान है। पद्धतियोंमें प्रादेशमात्र स्थान (प्रायः एक बालिश्त) में भी सात बिन्दुओं-पर दक्षिणसे उत्तरपर्यन्त क्रमशः श्रीसे लेकर सरस्वतीकी स्थापना करनेके बाद यथालब्धोपचारसे पूजन करके घृत-धाराके प्रस्रवणका विधान किया गया है। कर्मकाण्ड-पद्धतियोंमें इन सात माताओंके वैदिक और पौराणिक मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। इनकी विशेष पूजामें श्रीसूक्तके द्वारा षोडशोपचार-पूजन करना चाहिये। पूजा-विधान आदिके पूर्ण परिज्ञान एवं प्रक्रियाके लिये कर्मकाण्डके ग्रन्थादिका अवलोकन करना चाहिये।

हे मन ! श्रेष्ठ धैर्यको धारण कर। प्रसंगवश सुने जानेवाले अपमानकारक वचनोंको सहन कर। स्वयं नम्रतासे बोल और सब लोगोंको संतोष प्रदान कर।

१- अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ (गीता ९।३)

'वास्तु' शब्द **'वस निवासे'** धातुसे निष्पन्न होता है, जिसे निवासके अर्थमें ग्रहण किया जाता है। जिस भूमिपर मनुष्यादि प्राणी वास करते हैं, उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवप्रासाद, ग्राम, नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। वास्तुकी शुभाशुभ-परीक्षा आवश्यक है। शुभ वास्तुमें रहनेसे वहाँके निवासियोंको सुख-सौभाग्य एवं समृद्धि आदिकी अभिवृद्धि होती है और अशुभ वास्तुमें निवास करनेसे इसके विपरीत फल होता है। 'वास्तु' शब्दकी दूसरी व्युत्पत्ति-कथा वास्तुशास्त्रों तथा पुराणादिमें इस प्रकार प्राप्त होती है—

वास्तुके प्रादुर्भावके कथा-विषयमें मत्स्यपुराण (अ० २५१) में बताया गया है कि प्राचीन कालमें अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शङ्करके ललाटसे पृथ्वीपर जो स्वेदबिन्दु गिरे, उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ, जो विकराल मुख फैलाये था। उसने अन्धकगणोंका रक्त-पान किया, किंतु तब भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह भूखसे व्याकुल होकर त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हो गया। बादमें शङ्कर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी देवताओंने वास किया, इसलिये वह वास्तु (वास्तुपुरुष या वास्तुदेवता) के नामसे प्रसिद्ध हो गया। देवताओंने उसे गृहनिर्माणादिके, वैश्वदेव बलिके तथा पूजन-यज्ञ-यागादिके समय पूजित होनेका वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिये आज भी वास्तुदेवताका पूजन होता है। देवताओंने उसे वरदान दिया कि तुम्हारी सब मनुष्य पूजा करेंगे। इसकी पूजाका विधान प्रासाद तथा भवन बनाने एवं तडाग, कूप और वापीके खोदने, गृह-मन्दिर आदिके जीर्णोद्धारमें, पुर बसानेमें, यज्ञ-मण्डपके निर्माण तथा यज्ञ-यागादिके अवसरोंपर किया जाता है। इसलिये इन अवसरोंपर यत्नपूर्वक वास्तुपुरुषकी पूजा करनी चाहिये। वास्तुपुरुष ही वास्तुदेवता कहलाते हैं।

हिन्दू संस्कृतिमें देव-पूजाका विधान है। यह पूजा साकार एवं निराकार दोनों प्रकारकी होती है। साकार पूजामें देवताकी प्रतिमा, यन्त्र अथवा चक्र बनाकर पूजा करनेका विधान है। वास्तुदेवताकी पूजाके लिये वास्तुकी प्रतिमा एवं चक्र भ बनाया जाता है, जो वास्तुचक्रके नामसे प्रसिद्ध है।

वास्तुचक्र अनेक प्रकारके होते हैं। इसमें प्रायः ४९ र लेकर एक सहस्रतक पद (कोष्ठक) होते हैं। भिन्न-भि अवसरोंपर भिन्न-भिन्न पदके वास्तुचक्रका विधान है उदाहरणस्वरूप ग्राम तथा प्रासाद एवं राजभवन आदिव अथवा नगर-निर्माण करनेमें ६४ पदके वास्तुचक्रका विधा है। समस्त गृह-निर्माणमें ८१ पदका, जीर्णोद्धारमें ४९ पदका प्रासादमें तथा सम्पूर्ण मण्डपमें १०० पदका, कूप, वापी तडाग और उद्यान, वन आदिके निर्माणमें १९६ पदव वास्तुचक्र बनाया जाता है। सिद्धलिंगोंकी प्रतिष्ठा, विशे पूजा-प्रतिष्ठा, महोत्सवों, कोटि होम-शान्ति, मरुभूमिमें ग्राम नगर, राष्ट्र आदिके निर्माणमें सहस्रपद (कोष्ठक) वे वास्तुचक्रकी निर्माण और पूजाकी आवश्यकता होती है।

जिस स्थानपर गृह, प्रासाद, यज्ञमण्डप या ग्राम, नग आदिकी स्थापना करनी हो उसके नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुदेवक निर्माण करना चाहिये। सामान्य विष्णु-रुद्रादि यज्ञोंमें भं यज्ञमण्डपमें यथास्थान नवग्रह, सर्वतोभद्रमण्डलोंकी स्थापनाके साथ-साथ नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुपीठकी स्थापना आवश्यव होती है और प्रतिदिन मण्डलस्थ देवताओंकी पूजा-उपासन तथा यथासमय उन्हें आहुतियाँ भी प्रदान की जाती हैं। किं वास्तु-शान्ति आदिके लिये अनुष्ठीयमान वास्तुयाग-कर्ममें ते वास्तुपीठकी ही सर्वाधिक प्रधानता होती है। वास्तुपुरुषकं प्रतिमा भी स्थापित कर पूजन किया जाता है।

वास्तुदेवताका मूल मन्त्र इस प्रकार है—

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

(ऋग्वेद ७। ५४। १)

इसका भाव इस प्रकार है—हे वास्तुदेव! हम आपके सच्चे उपासक हैं, इसपर आप पूर्ण विश्वास करें और तदनन्तर हमारी स्तुति-प्रार्थनाओंको सुनकर आप हम सभी उपासकोंको आधि-व्याधिमुक्त कर दें और जो हम अपने धन-ऐश्वर्यकी

वास्तुमण्डलचक्र

पूर्व

ईशान (श्वेत), चरकी (धूम्र) — इन्द्र (पीत), ब्रह्मा (रक्त), स्कन्द (रक्त) — अग्नि (रक्त), विदारी (रक्त)

१.शिखी रक्त / ३२ दिति पीत	पीत	पीत	पीत	रक्त	श्वेत	कृष्ण	आकाश कृष्ण ८ / ९.वायु धूम्र
पीत	३१.अदिति / २.पर्जन्य	३.जयन्त	४.कुलिशायुध	५.सूर्य	६.सत्य	७.भृश / १०.पूषा	रक्त
कृष्ण	३०.सर्प	३४ आपवत्स श्वेत / ३३ आप श्वेत	३५.अर्यमा कृष्ण		३६ सावित्र रक्त / ३७ सविता रक्त	११.वितथ	श्वेत
श्वेत	२९.सोम	४४.पृथ्वीधर रक्त	४५.ब्रह्मा पीत		३८.विवस्वान् श्वेत	१२ गृहक्षत	पीत
भल्लाट कृष्ण	२८.					१३.यम	कृष्ण
रक्त	२७.मुख्य	४३.रुद्र रक्त / ४२.राजयक्ष्मा रक्त	४१.मित्र श्वेत		३९.विबुधाधिप रक्त / ४० जय रक्त	१४.गन्धर्व	रक्त
अहि रक्त	२६. / २३.	२२.असुर	२१.वरुण	२०.पुष्पदन्त	१९.सुग्रीव	१५. / १८.	भृङ्गराज कृष्ण
२५.रोग रक्त / २४.पाप पीत	श्वेत कृष्ण	पीत	श्वेत	रक्त	श्वेत	दौवारिक रक्त	१६.मृग पीत / १७.पितृ रक्त

उत्तर — कुबेर (श्वेत), पिलिपिञ्छ (पीत)

दक्षिण — यम (कृष्ण), अर्यमा (कृष्ण)

पापराक्षसी (कृष्ण), वायु (श्वेत) — जृम्भक (रक्त), वरुण (श्वेत), अनन्त (कृष्ण) — नैर्ऋति (कृष्ण), पूतना (पीत)

पश्चिम

कामना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही इस वास्तुक्षेत्र या गृहमें निवास करनेवाले हमारे स्त्री-पुत्रादि परिवार- परिजनोंके लिये कल्याणकारक हों तथा हमारे अधीनस्थ गौ, अश्वादि सभी चतुष्पद प्राणियोंका भी कल्याण करें।

वैदिक संहिताओंके अनुसार 'वास्तोष्पति' साक्षात् परमात्माका ही नामान्तर है; क्योंकि वे विश्वब्रह्माण्डरूपी वास्तुके स्वामी हैं। आगमों एवं पुराणोंके अनुसार वास्तुपुरुष नामक एक भयानक उपदेवताके ऊपर ब्रह्मा, इन्द्र आदि अष्टलोकपाल-सहित ४५ देवता अधिष्ठित होते हैं, जो वास्तुका कल्याण करते हैं। कर्मकाण्डग्रन्थों तथा गृह्यसूत्रोंमें इनकी उपासना और हवन आदिके अलग-अलग मन्त्र निर्दिष्ट हैं।

यद्यपि तडाग, आराम, कूप, वापी, ग्राम, नगर और गृह, प्रासाद तथा दुर्ग आदिके निर्माणमें विभिन्न प्रकारके कोष्ठकोंके वास्तुमण्डलकी रचनाका विधान है; किंतु उनमें मुख्य उपास्यदेवता ४५ ही होते हैं। हयशीर्षपाञ्चरात्र, कपिल-पाञ्चरात्र, वास्तुराजवल्लभ आदि ग्रन्थोंके अनुसार प्रायः सभी वास्तुसम्बन्धी कृत्योंमें एकाशीति (८१) तथा चतुष्षष्टि (६४) कोष्ठात्मक चक्रयुक्त वास्तुवेदीके निर्माण करनेकी विधि है। इन दोनोंमें सामान्य अन्तर है। एकाशीति पद वास्तुमण्डलकी रचनामें

उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिमसे १०-१० रेखाएँ खींची जाती हैं और चक्र-रचनाके समय २० देवियोंके नामोल्लेखपूर्वक नमस्कार-मन्त्रसे रेखाकरण-क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसी प्रकार चतुष्षष्टिपद वास्तुमण्डलमें दोनों ओरसे ९-९ रेखाएँ होती हैं। वास्तुवेदीमें श्वेत वस्त्र बिछाकर उसमें कुंकुम आदिके द्वारा पूर्व-पश्चिम ९ रेखाएँ खींची जाती हैं। ये ९ रेखाएँ ९ देवियोंकी प्रतिनिधिभूत हैं। इन्हें रेखा-देवता भी कहा जाता है। रेखा खींचते समय क्रमशः नाम-मन्त्रोंसे या वेद-मन्त्रोंसे इन देवियोंको नमस्कार करना चाहिये। रेखादेवियोंके नाम इस प्रकार हैं—लक्ष्मी, यशोवती, कान्ता, सुप्रिया, विमला, श्री, सुभगा, सुमति एवं इडा। इसी प्रकार उत्तर-दक्षिणकी रेखा-देवियोंके नाम इस प्रकार हैं—धान्या, प्राणा, विशाला, स्थिरा, भद्रा, स्वाहा, जया, निशा तथा विरजा।

इस प्रकार चतुष्षष्टि-कोष्ठात्मक वास्तुचक्रको निर्दिष्ट रंगोंके चावलों या चूर्ण आदिसे भरकर ४५ देवताओंका आवाहन-प्रतिष्ठापूर्वक लब्धोपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। मण्डलस्थ देवताओंके नाम इस प्रकार हैं। (स्थापना-क्रम एवं कोष्ठकोंके वर्ण चित्रमें देखने चाहिये)—

(१) शिखी, (२) पर्जन्य, (३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) भृश, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूषा, (११) वितथ, (१२) गृहक्षत, (१३) यम, (१४) गन्धर्व, (१५) भृङ्गराज, (१६) मृग, (१७) पितृ, (१८) दौवारिक, (१९) सुग्रीव, (२०) पुष्पदन्त, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) शेष, (२४) पाप, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मुख्य, (२८) भल्लाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप्, (३४) आपवत्स, (३५) अर्यमा, (३६) सावित्र, (३७) सविता, (३८) विवस्वान्, (३९) विबुधाधिप, (४०) जयन्त, (४१) मित्र, (४२) राजयक्ष्मा, (४३) रुद्र, (४४) पृथिवीधर तथा (४५) ब्रह्मा।

तदनन्तर मण्डलके बाहर ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणोंमें क्रमशः चरकी, विदारी, पूतना, पापराक्षसीकी पुनः पूर्वादि चार दिशाओंमें स्कन्द, अर्यमा, जृम्भक तथा पिलिपिच्छ देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये। उसके बाद पूर्वादि दस दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त—इन दशदिक्पालोंका आवाहन कर पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार चक्रस्थ सभी देवताओंका आवाहन, प्रतिष्ठा तथा वैदिक-पौराणिक अथवा नाममन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। वास्तुचक्रके उत्तर वास्तुकलशकी स्थापना-पूजा कर उसमें वास्तुदेवताकी प्रतिमाकी अग्न्युत्तारणपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक वास्तोष्पति या वास्तुदेवताकी पूजा-आराधना कर अन्तमें चक्रस्थ देवताओं तथा वास्तुदेवताओंको पायस-बलि देकर सर्वविध सुख-शान्ति एवं कल्याणके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये।

सर्वतोभद्र-चक्र एवं चक्रस्थ देवता

(क) सर्वतोभद्र-चक्र

उद्यापन, प्रतिष्ठा तथा यज्ञादि अनुष्ठान-कर्मोंमें सर्वतोभद्र-चक्र बनाकर नियत स्थानोंपर अक्षतपुञ्जों अथवा सुपारियोंपर नियत देवताओंका आवाहन कर पूजन किया जाता है। यह चक्र बहुत मङ्गलप्रद एवं कल्याणकारी माना जाता है। सर्वतोभद्रके दो अर्थ होते हैं—

१-जिस चक्रमें सब ओर भद्र नामक कोष्ठक-समूह हों, उसे सर्वतोभद्र-चक्र कहते हैं। इस चक्रमें प्रत्येक दिशामें दो-दो भद्र बने होते हैं, अतः यह विग्रह सार्थक होता है।

२-दूसरा अर्थ है जो पूजकका सब प्रकार कल्याण करे।

चक्र-निर्माण-विधि—एक चौकोर वेदी अथवा चौकीपर श्वेत वस्त्र बिछा दे। वस्त्र इतना बड़ा हो कि वह चौकीके चारों ओर आठ-आठ अङ्गुल नीचे लटक जाय। वस्त्रके चारों कोनोंको चौकीके चारों पावोंमें तानकर बाँध दे। सिलवट न रहे। अब चौकीके चारों ओर आठ-आठ अङ्गुल छोड़कर रँगे हुए सूतसे ईशानकोणसे प्रारम्भकर अग्निकोणतक रेखा खींचे, फिर अग्निकोणसे नैर्ऋत्यकोणतक। नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोणतक और वायव्यकोणसे ईशानकोणतक रेखाएँ खींचे। इस प्रकार चौकोर रेखा तैयार हो जायगी।

अब इस चौकोर रेखामें दक्षिणसे उत्तरकी ओर बराबर दो

सर्वतोभद्रचक्र
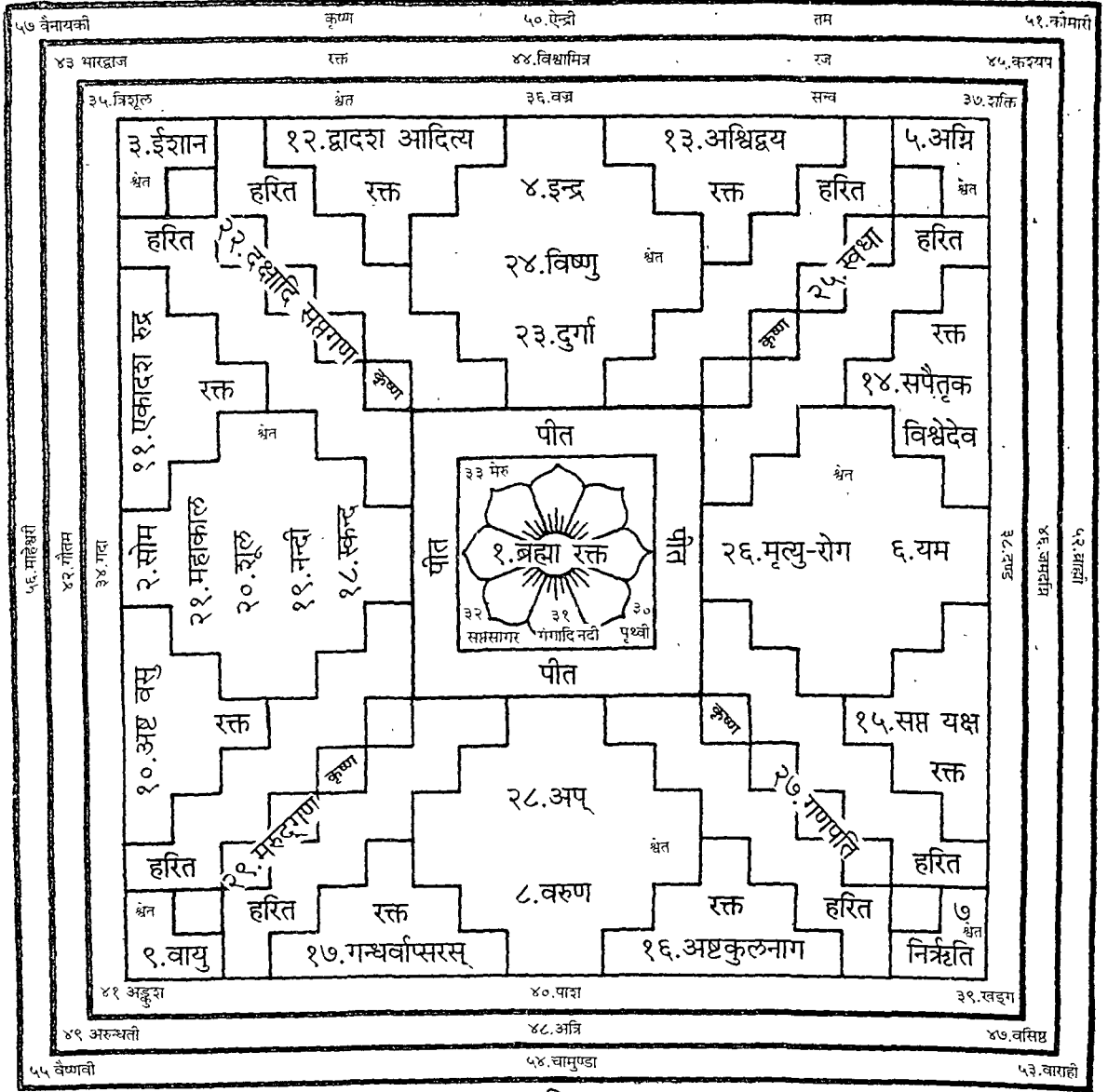
रेखाएँ खींचे। इस प्रकार चार रेखाएँ और तीन कोष्ठक तैयार हो जाते हैं। अब प्रत्येक कोष्ठकमें बराबर-बराबर दो-दो रेखाएँ और खींचे। इस प्रकार कुल मिलाकर दस रेखाएँ तैयार हो जायँगी और कोष्ठकोंकी संख्या ९ होगी। अब प्रत्येक कोष्ठकमें एक-एक रेखा और खींचे। इससे रेखाओंकी संख्या १९ हो जायगी। इसी प्रकार पश्चिमकी ओरसे पूरबकी ओर भी बराबर-बराबर ९ रेखाएँ खींचे। इस प्रकार रेखाओंकी संख्या १९×२=३८ हो जायगी।

१-खण्डेन्दुका निर्माण—ईशानकोणसे प्रारम्भकर प्रत्येक कोणके एक-एक कोष्ठकको श्वेत चावलसे भर दे। तदनन्तर इसके अगल-बगलवाले एक-एक कोष्ठकोंको भी श्वेत चावलसे भर दे। इस प्रकार तीन-तीन कोष्ठकोंका एक-एक खण्डेन्दु चारों कोनोंपर बन जायगा। कुल मिलाकर खण्डेन्दुमें १२ कोष्ठक होते हैं।

२-कृष्ण-शृङ्खला—खण्डेन्दुके कोणवाले कोष्ठकके ठीक नीचे एक खानेमें तिल अथवा काला चावल भर दे। इसके ठीक नीचे पूरबवाली दो कोष्ठक छोड़कर तीसरे कोष्ठकमें, तीन कोष्ठकोंको छोड़कर चौथेमें, फिर चार कोष्ठकोंको छोड़कर पाँचवेंमें और इसके बाद पाँच कोष्ठकोंको छोड़कर छठेमें काला चावल या तिल भर दे। इस प्रकार पाँच

कोष्ठकोंकी एक कृष्ण-शृङ्खला एक कोणमें तैयार हो जायगी। इसी विधिसे तीन तीनों कोणोंमें कृष्ण-शृङ्खला बना दे। इस प्रकार कृष्ण-शृङ्खलामें ५×४=२० कोष्ठक होते हैं।

३-वल्ली—ईशानकोणसे खण्डेन्दुके बगलवाले कोष्ठकके नीचे दो कोष्ठकोंको नीले रंगसे भरे (हरितका भी प्रचलन है)। उसके बाद उसके नीचे कृष्णमेखलासे सटे दो कोष्ठक, फिर उसके नीचे दो कोष्ठक, उसके नीचे दो कोष्ठक तथा उसके नीचे दो कोष्ठक और उसके नीचे एक कोष्ठकको नीले रंगसे भर दे। इसी प्रकार दूसरी ओर भी ११ कोष्ठकोंको भरे। इस तरह कृष्णमेखलाके एक ओर ११ कोष्ठक और दूसरी ११ कोष्ठक मिलाकर २२ कोष्ठकोंकी एक कोनेमें एक वल्ली तैयार हो जाती है। इसी प्रकार शेष तीन कोणोंमें वल्ली तैयार कर लेनी चाहिये। वल्लीकी कुल कोष्ठकोंकी संख्या २२×४=८८ होती है।

४-भद्र—वल्लीके सटे रिक्त ऊपरी पाँच कोष्ठकोंको लाल रंगसे भर दे, फिर तीन कोष्ठकोंको और फिर एक कोष्ठकको लाल रंगसे भरे। यही भद्र है। एक भद्रमें ९ कोष्ठक लगते हैं। ८ भद्रोंमें ७२ कोष्ठक होते हैं।

५-वापी—भद्रसे सटे ऊपरी २ कोष्ठकोंको श्वेत चावलसे भर दे। फिर उसके नीचेके ४ कोष्ठकों, उसके नीचेके ६ कोष्ठकों, पुनः उसके नीचेके ६ कोष्ठकों, उसके नीचे ४ कोष्ठकों तथा उसके नीचे २ कोष्ठकोंको श्वेत चावलसे भर दे। इस प्रकार वापीमें चौबीस कोष्ठक लगते हैं। चार वापियोंमें ९६ कोष्ठक होते हैं।

६-परिधि—अब वापीके नीचे ३६ कोष्ठकोंमें परिधि और मध्य बनाना है। परिधिके लिये वापीके सटे ही ठीक नीचे छः खानोंमें पीला रंग भर दे, इसी प्रकार चारों वापियोंसे सटे चार कोष्ठक, छः कोष्ठक तथा पुनः चार कोष्ठकोंमें पीला रंग भर दे। इस प्रकार परिधिमें २० कोष्ठक होते हैं।

७-मध्य—शेष १६ कोष्ठकोंको मध्य कहते हैं। इसका वर्ण लाल होता है। इसमें कर्णिकायुक्त अष्टदल-कमल बनाना चाहिये।

बाह्य परिधि—अब सर्वतोभद्रके बाहर तीन परिधियाँ बनानी हैं। पहली परिधिको सफेद चावल (सत्त्वगुण) से भरे। दूसरी परिधि लाल चावल (रजोगुण) से, तीसरी परिधि काले रंगके चावल (तमोगुण) से भरे।

सर्वतोभद्रमण्डलके कुल कोष्ठक ३२४ होते हैं। जिनमें १२ खण्डेन्दु, २० कृष्ण शृङ्खला, ८८ वल्ली, ७२ भद्र, ९६ वापी, २० परिधि तथा १६ मध्यके कोष्ठक होते हैं।*

(ख) सर्वतोभद्रमण्डलके देवता

सर्वतोभद्रमण्डलमें जिन इन्द्रादि देवताओं, मातृशक्तियों तथा ऋष्यादिकोंका आवाहन-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१-ब्रह्मा, २-सोम (चन्द्रमा), ३-ईशान, ४-इन्द्र, ५-अग्नि, ६-यम, ७-निर्ऋति, ८-वरुण, ९-वायु, १०-अष्टवसु, ११-एकादश रुद्र, १२-द्वादश आदित्य, १३-अश्विद्वय, १४-सपैतृक-विश्वेदेव, १५-सप्तयक्ष, १६-अष्टकुलनाग, १७-गन्धर्वाप्सरस्, १८-स्कन्द, १९-नन्दी, २०-शूल, २१-महाकाल, २२-दक्षादि सप्तगण, २३-दुर्गा, २४-विष्णु, २५-स्वधा, २६-मृत्यु-रोग, २७-गणपति, २८- अप्, २९-मरुद्गण, ३०-पृथ्वी, ३१-गङ्गादि नदी, ३२-सप्तसागर, ३३-मेरु, ३४-गदा, ३५-त्रिशूल, ३६-वज्र, ३७-शक्ति, ३८-दण्ड, ३९-खड्ग, ४०-पाश, ४१-अङ्कुश, ४२-गौतम, ४३-भरद्वाज, ४४-विश्वामित्र, ४५-कश्यप, ४६-जमदग्नि, ४७-वसिष्ठ, ४८-अत्रि, ४९-अरुन्धती, ५०-ऐन्द्री, ५१-कौमारी, ५२-ब्राह्मी, ५३-वाराही, ५४-चामुण्डा, ५५-वैष्णवी, ५६-माहेश्वरी तथा ५७-वैनायकी।

इनमेंसे ब्रह्मा, सोम, ईशान, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, अश्विद्वय, विश्वेदेव, अष्टकुलनाग, स्कन्द, दुर्गा, विष्णु, स्वधा,

---

* प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादिकोनविंशतिः। खण्डेन्दुस्त्रिपदः श्वेतः पञ्चभिः कृष्णशृङ्खला॥
नीलैकादशवल्ली तु भद्रं रक्तं पदैर्नव। पण्णवतियुता वापी परिधिः पीतविंशतिः॥
मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः रक्तं पद्मं सकर्णिकम्। परिध्यावेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वरजस्तमः॥
तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरेश्वरान्।
(ग्रहशान्तिमें स्कन्दपुराणके वचन)

गणपति, अप्, मरुद्गण तथा पृथ्वीदेवीका परिचय इसी अङ्कके तत्तत्-प्रकरणोंमें वर्णित है, अतः तदर्थ उन्हीं स्थलोंका अवलोकन करना चाहिये। शेषका परिचय यहाँ संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

सप्तयक्ष

सर्वतोभद्रमण्डलमें दक्षिण तथा नैर्ऋत्यकोणके बीचमें यम और निर्ऋति देवताके कोष्ठकोंके मध्यके कोष्ठकमें सप्तयक्षोंकी स्थापना एवं पूजा-अर्चा करनी चाहिये। पुराणोंमें मुख्यतया जो सप्तयक्ष वर्णित हैं, वे यक्षोंके अधिपति इन्द्रतुल्यपराक्रमी मणिभद्र और उनकी मुख्य संतानें हैं। मणिभद्रके साथ इनके विशेष बलिष्ठ और धर्मिष्ठ पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—मणिभद्र, सिद्धार्थ, सूर्यतेजा, सुमना, नन्दन, मणिमन्त और चन्द्रप्रभ। ब्रह्माण्ड तथा वायु आदि पुराणोंके अनुसार ये सभी पुण्यदर्शन, पुण्यजन तथा सदा पुण्यकर्ममें निरत रहनेवाले बताये गये हैं।

गन्धर्वाप्सरस्

(क) गन्धर्व—देवताओंकी एक जातिका नाम गन्धर्व है। दक्षसुता प्राधाने प्रजापति कश्यपके द्वारा १० देव-गन्धर्वोंको उत्पन्न किया था। उनके नाम हैं—सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, भानु और सुचन्द्र (महा०, आदि० ६५।४६-४८)। गन्धर्वोंमें हाहा-हूहू और तुम्बुरु बहुत प्रसिद्ध हुए हैं, ये भी प्राधाके ही पुत्र हैं (महा०, आदि० ६५।५२)। कश्यपकी अन्य पत्नी अरिष्टासे भी कुछ गन्धर्व उत्पन्न हुए हैं (मत्स्य० ६।४५)।

इनमें विश्वावसु गन्धर्वोंके राजा हुए हैं। इन्होंने ऋग्वेदके एक सूक्त (१०।१३९) का दर्शन भी किया है। ऋग्वेदमें इन्हें दिव्य गन्धर्व कहा गया है। इनसे प्रार्थना की गयी है कि ये अपने उपासकोंको उन कर्मोंका उपदेश करें, जिनका फल सुनिश्चित हो और जो उपासकोंसे अज्ञात भी हो। इनसे बुद्धिकी रक्षाके लिये भी प्रार्थना की गयी है (ऋग्वेद १०।१३८।५)।

गन्धर्वोंका पृथक् एक लोक है, जहाँ ये मुख्यरूपसे निवास करते हैं। ये धर्मका आचरण करते हैं, देवताओंके गायक, कत्थक और स्तुतिपाठक होते हैं। ये निरन्तर गीतमें तल्लीन रहते हैं और इनका चित्त नाट्यशास्त्रके श्रमसाध्य स्वरोंमें ही लगा रहता है। देवर्षि नारदने गन्धर्वोंसे ही संगीत सीखा था और इस विद्याके प्रभावसे वैष्णव लोकमें महामान्य हुए और भगवान् शङ्करके बहुत प्रिय हो गये। तुम्बुरु और नारदकी महामान्यताका कारण यही नाद-तत्त्व है, क्योंकि शिव ही साक्षात् नादस्वरूप हैं। भगवान्‌के सामने जो गीत गाया जाता है, उसका फल मोक्ष या भगवान्‌का सांनिध्य है। गन्धर्वलोग इस गीतमें पारङ्गत होते हैं (स्कन्द०, काशी० ८।२१-३०)।

गन्धर्व शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य एक अर्थ है—'गम्' (गाम्) अर्थात् संगीतरूपी वाणीको 'धर्व' अर्थात् धारण करनेवाला (सायणभाष्य, ऋग्वेद १०।१३९।१)। कुछ गन्धर्व इन्द्रकी सभामें (महा०, सभापर्व ७।२२) और कुछ कुबेरकी सभामें (महा०, सभापर्व १०।२६) उपस्थित होते हैं। चित्रसेन २७ गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ युधिष्ठिरकी सभामें भी आये थे (महा०, सभापर्व ४।३७)। चित्रसेन अर्जुनके मित्र थे। अर्जुनने इनसे संगीत सीखा था (महा०, वनपर्व ४४।८-९)।

(ख) अप्सरा—अप्सराओंकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न कारणोंसे हुई है। कुछ अप्सराएँ समुद्र-मन्थनके अवसरपर जलसे निकली थीं (श्रीमद्भा० ६।४४-४५, स्कन्दपु०, काशी० ९।६)। यह तथ्य इस शब्दके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थसे भी ज्ञात होता है—'**अद्भ्यः सरन्ति (निर्गच्छन्तीति)**', अर्थात् जलसे निकलनेके कारण इन्हें अप्सरा कहा जाता है।

कुछ अप्सराएँ कश्यप प्रजापतिकी पत्नी प्राधासे भी उत्पन्न हुई हैं। इनके नाम हैं—अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया आदि (महा०, आदि० ६५।४९-५०)। एक तिलोत्तमा और है, जिसे ब्रह्माजीके कहनेपर विश्वकर्माने बनाया था। विश्वमें जितनी भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनके सार अंशसे तिलोत्तमाके शरीरका निर्माण हुआ (महा०, आदि० २१०।११-१२)। उर्वशीको नर-नारायणने अपने योगबलसे प्रकट किया। उसके सौन्दर्य और सौगन्ध्यसे सम्पूर्ण अप्सराएँ हतप्रभ होकर उनपर मोहित हो गयी थीं (श्रीमद्भा० ११।४।१३)। कुछ अप्सराएँ प्रजापति कश्यपकी दूसरी पत्नी मुनिसे उत्पन्न हुई थीं (मत्स्य०

६।४४-४५)। कुछ अप्सराएँ कपिलाकी भी संतान हैं (महा०, आदि० ६५।५२)।

अप्सराओंके कुछ नाम वेदोंमें भी आये हैं, जैसे—मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, विश्वाची, घृताची, उर्वशी, पूर्वचित्ति आदि (शुक्ल यजुर्वेद १५।१६-१९)। ऋग्वेदमें बताया गया है कि (निमिके शापके बाद) महर्षि वसिष्ठने उर्वशीसे अपना शरीर पाया था (७।३३।११-१२)।

अप्सराओंमें रूप, लावण्य, सौभाग्य आदि गुण पुञ्जीभूत होकर रहते हैं, ये दिव्य भोगोंसे सम्पन्न रहती हैं और अपनी इच्छासे शरीर धारण कर सकती हैं (स्कन्द, काशी० ९।१४)। इनका अलग ही एक लोक है, जिसे अप्सरोलोक कहते हैं। यहाँ मुख्य-मुख्य ६० हजार अप्सराएँ रहती हैं (स्कन्दपु०, काशी० ९।१३)।

गन्धर्व और अप्सराओंका साहचर्य

गन्धर्व और अप्सराओंका नाम प्रायः साथ-साथ आता है। इसका एक कारण है—दाम्पत्य-सम्बन्ध। अथर्ववेदने बताया है कि कुछ अप्सराएँ गन्धर्वकी पत्नियाँ हैं—**'ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्यो अप्सरोभ्यो नमः'** (अथर्व० २।२।५)। दूसरा कारण है—गीत, वाद्य और नृत्यका साहचर्य। गीतका अनुसरण वाद्यको करना पड़ता है और वाद्यका अनुसरण नृत्यको। गीत और वाद्य प्रायः गन्धर्वोंके हिस्सेमें आता है और नृत्य अप्सराओंके। यद्यपि ये दोनों ही देवता तीनोंके ही पारगामी विद्वान् होते हैं। वनवासके अवसरपर जब अर्जुन इन्द्रलोक पहुँचे तो इनके सम्मानमें गन्धर्वश्रेष्ठ तुम्बुरुने वाद्यके साथ-साथ गाथाका गान किया और अप्सराओंने नृत्यका प्रदर्शन किया था (महा०, वनपर्व ४३।२८-३२)।

इसी साहचर्यके कारण दोनोंकी पूजा एक साथ की जाती है। यजुर्वेदने दोनोंके लिये एक साथ ही देय वस्तुका निर्देश किया है—**'गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम्'** (शु० यजु० ३०।२)। सर्वतोभद्रमण्डलमें वरुण और वायुके मध्य भद्रमें **'गन्धर्वाप्सरोभ्यो नमः**,कहकर दोनोंकी साथ-साथ पूजा की जाती है। ये साथ-साथ पूजा ही ग्रहण नहीं करते, अपितु साथ-साथ वरदान भी देते हैं। मद्रदेशके राजा पुरूरवा निराहार रहकर कठोर तप कर रहे थे। इसे देखकर गन्धर्व एवं अप्सराएँ दोनों दयार्द्र हो गये और दोनोंने ही साथ ही आशीर्वाद दिया (मत्स्यपु० अ० १२०)।

नन्दीश्वर

स्कन्दसे उत्तरके कोष्ठकमें नन्दीश्वरका आवाहन किया जाता है। नन्दीश्वर भगवान् शङ्करके गणोंमें मुख्य हैं और पुराणोंमें इनके दो रूप प्राप्त होते हैं। गणोंके रूपमें ये मनुष्यकी आकृतिमें रहते हैं, किंतु उनका मुख कुछ बंदरकी आकृति लिये हुए है और ये ही भगवान् शङ्करके वाहन-रूपमें जब उपस्थित होते हैं तब इनका रूप वृषभका हो जाता है, ये धर्मके अवतार माने गये हैं। प्रायः शिवमन्दिरोंमें शिवलिङ्गके सामने इनकी प्रतिमा स्थापित होती है और परिक्रमामें नन्दीसे लेकर सोमसूत्र (मन्दिरके पीछे लगी हुई नाली) तक जानेका विधान है। भगवान् शङ्करके अत्यन्त प्रिय होनेके कारण उनकी ध्वजामें भी वृषभाकृति रहती है। इसीलिये वे वृषकेतु तथा वृषभध्वज आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

शूल

शूल अथवा त्रिशूल भगवान् शङ्करका मुख्य आयुध है। इनमें नुकीले भालेकी तरह तीन छोर होते हैं। इसे धारण करनेके कारण भगवान् शङ्कर त्रिशूली तथा शूली भी कहे जाते हैं। त्रिशूलका मुख्य अर्थ पिनाक है, जिसके कारण भगवान् शङ्कर पिनाकी भी कहे जाते हैं। यह त्रिशूल तीनों लोक, प्रकृतिके तीनों गुण तथा भूत-भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालका भी प्रतिनिधित्व करता है। त्रिशूली भगवान् शिव इसे धारणकर भक्तोंके आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—इन तीनों प्रकारके कष्टोंका विनाश करते एवं भक्तोंकी रक्षा करते हैं।

महाकाल

महाकाल भगवान् शिवके ही अन्यतम रूप हैं। इनका वर्ण श्याम है। ये सम्पूर्ण विश्व और तीनों लोकोंमें व्याप्त हैं। ये सभी देवताओंमें श्रेष्ठ हैं और इनकी मुख्य प्रतिमा अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में तृतीय ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें अवतीर्ण है, जो तीनों कालमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये संनद्ध रहती है। शूलके उत्तर भागके कोष्ठकमें भगवान् महाकालका पूजन किया जाता है।

दक्षादि सप्तगण

प्रजापति दक्ष सतीके पिता और भगवान् शङ्करके श्वशुर

भी हैं, किंतु शिवकी अवहेलना एवं सतीकी उपेक्षासे जब वीरभद्रादिने इनके यज्ञका विध्वंस कर दिया, तब ब्रह्माजीके अनुरोधसे ये पुनः जीवित होकर भगवान् शङ्करकी शरणमें गये और फिर आशुतोष भगवान् शङ्करने इन्हें अपने गणोंमें मुख्य बना दिया। ये कैलासमें रहकर उनकी सेवा करते हैं और उनके पार्षदोंमें परिगणित हैं, साथ ही शिवभक्तोंको सुख प्रदान करते हैं। कीर्तिमुख, शृंगी, भृंगी, रिटि, बाण तथा चण्डीशको लेकर ये सात मुख्य गण हैं। सर्वतोभद्रचक्रमें ब्रह्मा तथा ईशानके कोष्ठकके मध्यकी शृङ्खलामें दक्षादि इन सप्तगणोंका पूजन किया जाता है।

मृत्यु-रोग

प्रायः सभी शास्त्रोंके अनुसार मृत्यु-रोग आदिके अधिष्ठाता यमराज माने गये हैं और ये मृत्यु-रोग उनके परिकरोंमें परिगणित होते हैं। छोटे-बड़े सभी रोग मृत्युके कारणभूत होते हैं, उनसे त्राण पाने तथा अकाल एवं अपमृत्युसे रक्षार्थ, यज्ञादि शुभ कर्मोंमें इनका भी आवाहन-पूजन होता है। सर्वतोभद्रचक्रमें ब्रह्मा तथा यमके बीचकी वापीमें इनकी स्थापना तथा पूजा की जाती है।

गङ्गादि नदियाँ

भारतीय सनातन-परम्परा पवित्र करनेवाली दैवीशक्तियोंमें गङ्गादि नदियोंको सर्वोत्कृष्ट मानती आयी है। मन और शरीरकी शुद्धि किये बिना यज्ञादि अनुष्ठान एवं पूजा-उपासना आदि निःशक्त होते हैं। अतः सर्वप्रथम सभी प्रकारकी शुद्धि एवं निर्मलताका सम्पादन कर परमात्म-प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त करने तथा भाव-शुद्धिके लिये सप्तगङ्गावगाहन परमावश्यक माना गया है। वैसे तो भारतमें अनेक पुण्यतोया नद, नदियाँ, पुष्करिणी, सरोवर, देवखात आदि विख्यात हैं, पर इनमें सप्तगङ्गा सर्वाधिक मुख्य हैं, जिनमें भागीरथी गङ्गा, यमुना, गोदावरी या आदिगङ्गा गोमती, त्रयोदश सरस्वतियाँ, नर्मदा, सिन्धुनद तथा कावेरी—ये नदियाँ अधिक पुण्यशालिनी मानी गयी हैं। इनकी जल-मूर्तिके अतिरिक्त देवता-मूर्ति भी सभी शास्त्रोंके अनुसार मान्य है। इस रूपमें गङ्गादेवीने अनेक लोगोंको दर्शन दिया और वे भीष्मकी माता भी बनी हैं। इसी प्रकार नर्मदा पुरुकुत्सकी माता और यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषियोंमेंसे एक रही अन्य नदियोंके भी अनेक दिव्य चरित्र एवं माहात्म्य-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनका जल पीनेसे समस्त पापोंका नाश हो है तथा अवगाहनके द्वारा यह अन्तरात्माको निर्मल क प्राणीको भगवत्प्राप्तिके योग्य बना देता है। सर्वतोभद्रचक्र ब्रह्माके पादमूलमें पृथ्वीदेवीके उत्तरके कोष्ठकमें गङ्गा सप्तनदियोंका आवाहन किया जाता है।

सप्तसागर

प्राचीन भूगोल-खगोल और पुराणोंके अनुसार य वसुन्धरादेवी सप्त द्वीपों और सप्त समुद्रोंसे युक्त मानी गयी और इनका मान पूर्व-पूर्व-क्रमसे दुगुना माना गया है तथा ए दूसरेसे सर्वदा अगम्य भी निर्दिष्ट हैं। ये सातों द्वीप महासागरोंसे आवृत होनेके कारण और भी एक दूसरेसे अगम हैं। पुराणोंके अनुसार ये द्वीप क्रमशः अधः-ऊर्ध्व-भाग स्थित हैं। प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है, जो लवणसमुद्रसे घिरा हुआ है। इस दृष्टिसे आजका सम्पूर्ण दृश्यमान मण्डल जम्बूद्वीप मात्र ही है; क्योंकि यह सभी ओरसे लवणसमुद्रमात्रसे आवृ है। इसके ऊपर सुदूर अन्तरालमें इक्षु-समुद्रसे आवृत कुशद्वी है, इस द्वीप तथा सागरका मान जम्बूद्वीप और लवणार्णव द्विगुणित है। इसी प्रकार कुशद्वीपसे ऊपर प्लक्षद्वी सुरासमुद्रसे, क्रौञ्चद्वीप घृतमण्डोदसमुद्रसे, शाल्मलिद्वी क्षीरसमुद्रसे, शाकद्वीप दधिमण्डोदसे तथा पुष्करद्वीप शु जलके समुद्रसे घिरा है।

ये सप्तसागर सभी नद-नदियों, जलाशयों और तीर्थोंके स्वामी कहे गये हैं। अतः किसी पुण्यानुष्ठानमें तथ कलशादिके स्थापन और सर्वतोभद्र आदिके पूजनमें कल्याण मङ्गलके लिये एवं अन्तःकरण तथा समस्त मण्डलकी शुद्धिके लिये इनका ध्यान, आवाहन, स्थापन, पूजन आदि आवश्यक अङ्ग माना जाता है। आचार्येकि पूर्णाभिषेक और राजा-महाराजाओंके या युवराज आदिके महाभिषेकके अवसरपर यथाशक्ति इनके प्रत्यक्ष जलके उपयोगका भी विधान है। अशक्यतामें भावनापूर्वक गङ्गादि नदियोंके पवित्र जलमें ही इनका आवाहन-स्मरण-ध्यान-पूजन कर उसी जलमें प्रतिष्ठित मानकर अभिषेक आदि कार्य किये जाते हैं। प्रतिदिन संध्या-तर्पण आदिमें इन सप्तसागरोंके तर्पण-पूजनका विधान

है। इन्हें देवतारूप मानकर भावनाओंके द्वारा पूजित और संतर्पित करनेका प्रयत्न किया जाता है और देवस्वरूप होनेके कारण ये उपासककी सारी कामनाएँ पूर्ण कर उसे कृतकृत्य कर देते हैं।

सर्वतोभद्रचक्रमें ब्रह्माजीके पादमूलमें गङ्गादि सप्त नदियोंके उत्तरके कोष्ठकमें इन सप्तसागरोंका आवाहन-पूजन किया जाता है।

मेरु

मेरुको सुमेरुगिरि भी कहते हैं, यह सुवर्णमय, सर्वोच्च पर्वतराज कहा गया है। भगवान् सूर्य इसकी प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं और इसी पर्वतके ऊपर ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, वरुण आदिकी देवसभाएँ स्थित हैं। इस पर्वतराजके आमूलचूडतक सभी देवताओंका निवास माना गया है। यह सर्वाधिक पवित्र और प्रातःस्मरणीय, मङ्गलमय पर्वत माना गया है। इस सुवर्णमय पर्वतसे सदा ही सूर्यके समान दिव्य प्रकाश होता रहता है और यह अत्यन्त भव्य, आकर्षक आकार-प्रकारवाला है। सभी प्रकारके कल्याण-मङ्गलकी उपलब्धिके लिये देवताओंके निवासभूत इस पर्वतराजकी यज्ञादि-कर्मोंमें प्रतिष्ठा-उपासना आदि की जाती है।

इसकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके नाभिकमलसे हुई है—**'नाभिबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।'**

(मत्स्य० ११३। १४)

इस मेरु पर्वतकी, हिमालयकी पुत्री गङ्गा और पार्वतीके समान आयति और नियति नामकी दो महाभाग्यशालिनी कन्याएँ थीं, जिनका विवाह पर्वतराज महात्मा मेरुने विष्णु-भगवान्‌के पुत्र धाता, विधाताके साथ किया था (विष्णुपु० १। २-३)। इस पर्वतराज मेरुके सुमेरु, स्वर्णाद्रि, मणिसानु, सुरालय, देवगिरि, गोधुक् आदि अनेक नाम हैं।

अष्ट आयुधोंकी स्थापना

सर्वतोभद्रमण्डलके बाहर सत्त्व-परिधिके आठों कोणोंमें अष्टदिक्पालोंके अष्ट आयुधोंका आवाहन कर प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है। उत्तर, ईशान, पूर्व आदि आठ दिशाओंके सोम, ईशान, इन्द्र आदि अधिष्ठाता देव हैं और गदा, शूल, वज्र आदि इनके आयुध हैं। यह निम्न चक्रसे स्पष्ट है—

दिशा	अधिष्ठाता देवता	आयुध
१-उत्तर	सोम	गदा
२-ईशान	ईशान (शिव)	शूल
३-पूर्व	इन्द्र	वज्र
४-आग्नेय	अग्नि	शक्ति
५-दक्षिण	यम	दण्ड
६-नैर्ऋत्य	निर्ऋति	खड्ग
७-पश्चिम	वरुण	पाश
८-वायव्य	वायु	अङ्कुश

ये आयुध भी स्वयं देवस्वरूप हैं और लोकोंके कल्याणके लिये विविध देवताओंके हाथोंमें आयुधके रूपमें सुशोभित होते हैं। इनकी उपासनाके मन्त्र भी अलग-अलग हैं। विष्णुके सुदर्शनचक्रपर तो कई स्वतन्त्र स्तोत्र भी हैं। पाञ्चजन्यादिके बीजमन्त्र तथा गायत्री आदि भी हैं। अग्निपुराण, शार्ङ्गधर-धनुर्वेद और वैशम्पायन-नीतिप्रकाशिका आदि ग्रन्थोंमें विविध अवसरोंपर यज्ञादि-अनुष्ठानोंद्वारा कुण्ड आदिसे इनकी सहसा उत्पत्ति बतायी गयी है और इन्हें भगवान् शङ्कर आदिका ही आयुध-रूपमें अवतार बताया गया है। वहाँ उनके स्तोत्र तथा पूजा-विधान भी वर्णित हैं। इसीलिये यज्ञादि कार्योंमें देवताओंके समूहमें इन इन्द्रादि दिग्देवताओंके वज्रादि आयुधोंकी पूजा आदि भी आवश्यक मानी गयी है। इनकी पूजाके वैदिक-पौराणिक तथा तान्त्रिक मन्त्र भी यथास्थान निर्दिष्ट हैं। तत्तद् आयुधोंमें तत्तद् देवताओंकी भगवत्ता भी अनुस्यूत रहती है। इनकी उपासनासे उपासककी सर्वविध रक्षा और उसका कल्याण होता है।

सप्तर्षिगण एवं माता अरुन्धती

सर्वतोभद्रमण्डलमें सप्तमातृकाओंकी तरह सप्तर्षियोंकी भी पूजा होती है। ये सात ऋषि हैं—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ और अत्रि। इनके साथ माता अरुन्धतीका भी पूजन होता है। यहाँ इनका परिचय दिया जा रहा है—

भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः।

यश्चोदितो भास्करेऽभूत् प्रणष्टे
सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥

(महाभा॰, आदि॰ १२२।५१)

१-महर्षि गौतम—महर्षि गौतम उत्तराखण्डके पारियात्र नामक कुलपर्वतपर आश्रम बनाकर रहते हैं। इस आश्रममें इन्होंने ६० हजार वर्षतक उग्र तपस्या की थी। इससे प्रसन्न होकर धर्मराजने इन्हें दर्शन दिया था और बताया था कि मनुष्य पवित्र रहे, सत्य भाषण करे और माताकी सेवा करता रहे (महाभा॰, शान्ति॰ १२९।४-१०)। गौतम ऋषिके पुत्रका नाम शरद्वान् था। शरद्वान्‌को भी गौतम कहा जाता है (महाभा॰, आदि॰ १२९।२)। शरद्वान्‌के पुत्र थे कृप और पुत्री थी कृपी। इन दोनोंको भी यह वंशानुगत नाम प्राप्त था। कृपको गौतम और कृपीके लिये गौतमीका प्रयोग हुआ है (महा॰, आदि॰ १२९।४७)।

जिस तरह राजर्षि भगीरथने उत्तर भारतमें भागीरथी गङ्गाको प्रवाहित किया है, इसी तरह महर्षि गौतमने उग्र तपस्या करके दक्षिण भारतमें गौतमी गङ्गा (गोदावरी) को प्रवाहित कर जनताका बहुत कल्याण किया है। ब्रह्मपुराणके गौतमी गङ्गा-प्रकरणमें अध्याय ७०से अध्याय १७५ तक इसका वर्णन है।

२-महर्षि भरद्वाज—तैत्तिरीय ब्राह्मणमें एक कथा आती है। भरद्वाज वेदोंके पूर्ण ज्ञाता बनना चाहते थे। इसके लिये वे उग्र श्रम कर रहे थे, किंतु वेदोंका पार पाना कठिन हो रहा था। तब इन्होंने इन्द्रकी तपस्या कर उनसे वरदान प्राप्त किया कि सौ-सौ वर्षोंके तीन जन्म उन्हें प्राप्त हों, जिससे वे वेदोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकें।

तीन सौ वर्ष बीतनेको आये थे, किंतु निरन्तर श्रम करते रहनेपर भी इन्हें पूर्णता नहीं प्राप्त हुई थी। ये उद्विग्न और निराश होकर बैठे हुए थे। इसी बीचमें देवराज इन्द्र सामने प्रकट हुए। इन्द्रने व्योमचुम्बी तीन पहाड़ोंको इनके सामने प्रकट किया। उनमेंसे एक मूँठ चमकदार वस्तु लेकर इन्द्रने भरद्वाजसे कहा—'भरद्वाज! तुमने तीन सौ वर्षोंमें इन तीन पहाड़ोंमेंसे मूँठभर वेदका ज्ञान प्राप्त किया है। अब तुम विचार करो कि इन पहाड़ोंको तुम कभी पार कर सकोगे क्या? वेद अनन्त हैं, उनका अन्त पाना कैसे सम्भव हो सकता है?'

भरद्वाज ऋषि वेदकी इस अनन्तताको जानकर बहुत विस्मित हुए और प्रसन्न भी हुए (तैत्ति॰, ब्रा॰ ३।१०।९-११)। वेद ईश्वररूप हैं, जब ईश्वर अनन्त है तो वेदका अनन्त होना स्वाभाविक है। यह जानकर भरद्वाजको आनन्द भी अनन्त ही प्राप्त हुआ। भरद्वाज ऋषिने ऋग्वेदके छठे मण्डलके अनेक सूक्तोंका दर्शन किया है। अथर्ववेदमें भी अनेक मन्त्र इनसे दृष्ट हैं। ये देवगुरु बृहस्पतिके पुत्र हैं। इनके उत्पन्न होनेपर ममता और बृहस्पतिमें विवाद हुआ था। बृहस्पति ममतासे कहते थे कि इस पुत्रका भरण-पोषण तुम करो और ममता कहती थी नहीं, इसका पालन-पोषण आप करें। इसलिये इनका नाम 'भरद्वाज' पड़ा (विष्णुपु॰ ४।१९।१६-१७)। भरद्वाजका उचित पालन-पोषण मरुद्‌गणोंने किया था।

एक बार दुष्यन्त-पुत्र भरतने मरुत्स्तोम नामक यज्ञ किया था। तब मरुद्‌गणने उन्हें पुत्र-रूपमें भरद्वाजको प्रदान किया था। इसके बाद भरद्वाज ऋषिने भरतसे यज्ञ कराया, जिससे उन्हें वितथ नामका पुत्र प्राप्त हुआ (हरिवंश॰ १।३२।१४-१७)।

३-महर्षि विश्वामित्र—पुरूरवाके वंशमें कुशाम्बु नामके एक राजा हुए। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्र इनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए, जिनका नाम गाधि या कौशिक कहा जाता है। गाधिकी कन्या थी सत्यवती। सत्यवतीका विवाह महर्षि ऋचीकसे हुआ। विवाहके बाद संतानकी कामनासे ऋचीकने दो चरु (यज्ञीय खीर) तैयार किये। एक चरु तो अपने पुत्रके लिये और दूसरा चरु राजा गाधिके लिये। सत्यवतीके चरुमें तो उन्होंने ब्राह्मतेजका अभिमन्त्रण किया और सत्यवतीके मातावाले चरुमें क्षात्र-तेजका आधान किया। खीर तैयार होनेपर उन्होंने सत्यवतीको अच्छी तरह समझा दिया था, यह खीर तुम्हारी है और यह तुम्हारी माताकी है। इस तरह व्यवस्था कर ऋषि वन चले गये।

सत्यवतीकी माताने अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी! सभी लोग अपने लिये गुणवान् पुत्र चाहते हैं। अपनी पत्नीके भाईके गुणोंपर उनकी विशेष रुचि नहीं होती। अतः तुम मेरा चरु ले लो और अपना चरु मुझे दे दो; क्योंकि मेरे पुत्रको भूमण्डलका भार सँभालना होगा और ब्राह्मणपुत्रको पराक्रमकी क्या आवश्यकता होगी? माताकी ममतामें आकर सत्यवतीने

चरुका विनिमय कर लिया।

कुछ दिनोंके बाद जब महर्षि ऋचीक वनसे लौटे तो उन्होंने सत्यवतीके शरीरको अति रौद्र देखा। वे समझ गये कि सत्यवतीने क्षात्रतेजसे अभिमन्त्रित अपनी माताके चरुको खा लिया है, उन्होंने कहा—'सत्यवती! तुमने चरु बदलकर अच्छा काम नहीं किया। तुम्हारी माताके चरुमें मैंने सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, वीरता आदिका आधान किया था और तुम्हारे चरुमें ब्राह्मणोचित शम-दम-तितिक्षादि गुणोंका आधान किया था। चरुके विनिमय करनेसे अब तुम्हारे गर्भसे क्षात्रगुणोचित भयावह अस्त्र-शस्त्रको धारण करनेवाला पुत्र होगा। इसके विपरीत तुम्हारी माताको शान्तिप्रिय ब्राह्मणोचित पुत्र होगा।' यह सुनकर सत्यवती बहुत खिन्न हो गयी, वह अपने पतिके चरणोंपर लोट गयी और प्रार्थना करने लगी—'नाथ! आप पूर्ण समर्थ हैं, अब ऐसा उपाय कीजिये कि मेरा पुत्र ऐसा न हो, पौत्र भले ही हो जाय।' महर्षि ऋचीकने पत्नीकी बात स्वीकार कर ली। इसलिये सत्यवतीके पुत्र जमदग्नि हुए और जमदग्नि ऋषिके क्षात्रगुणोचित पुत्र परशुराम हुए। इधर सत्यवतीकी माताने विश्वामित्रको जन्म दिया (विष्णुपुराण ४।७।९-३४)।

विश्वामित्रका पहला नाम विश्वरथ था। ये तपस्याके धनी थे। इनकी तपस्या इतनी प्रखर थी कि इन्होंने इसके बलपर एक नया स्वर्गलोक रच डाला था। अन्तमें त्रिशंकुको सदेह स्वर्ग पहुँचानेमें सफल हुए (वा० रा० १।६०।१५-१६)। इसी तपस्याके बलपर ये ब्रह्मर्षि भी बन गये (महा०, उद्योग० १०४।१७-१८)।

इन्होंने वेदके अनेक सूक्तोंका दर्शन किया है। ऋग्वेदका तृतीय मण्डल इन्हींका दृष्ट है। ऋग्वेदमें इन्होंने स्वयं अपनेको कुशिक वंशका कहा है (ऋग्वेद ३।५३।५)। विश्वामित्रके बाद इनके वंशजोंको भी विश्वामित्रगोत्रीय कहा गया है (ऋक्० ३।५३।१३)।

४-महर्षि कश्यप—कश्यप ब्रह्माके पौत्र और मरीचिके पुत्र हैं। दक्षकी तेरह पुत्रियाँ इनकी पत्नियाँ हैं। इनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू (महा०, आदि० ६५।११-१२)। इन तेरह पत्नियोंसे कश्यपने भिन्न-भिन्न प्रजाएँ उत्पन्न कीं। इसलिये महाभारतमें लिखा है कि कश्यपसे सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं—**'कश्यपात्तु इमाः प्रजाः'** (महा०, आदि० ६५।११)।

(१) अदितिसे देवता उत्पन्न हुए, जिनमें बारह आदित्य लोकेश्वर हुए। (२) दितिसे दैत्य उत्पन्न हुए, जिनमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु प्रमुख हैं। (३) दनुके चौंतीस दानव पुत्र हुए, जो सर्वत्र विख्यात हैं। (४) कालाके पुत्रोंमें कालकेय बहुत विख्यात हुए। (५) दनायुके पुत्रोंमें वृत्रासुरका नाम बहुत प्रसिद्ध है। (६) सिंहिकाने राहु, सुचन्द्र आदि १०० पुत्रोंको जन्म दिया। यही राहु सूर्यको ग्रसता है। (७) क्रोधा (क्रूरा) से क्रोधवश आदि असंख्य पुत्र-पौत्र हुए। (८) प्राधासे अनवद्या आदि आठ कन्याएँ, अप्सराएँ एवं दस देवगन्धर्व उत्पन्न हुए। (९) विनतासे तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड आदि अनेक पुत्र हुए। (१०) कपिलासे अमृत, ब्राह्मण, गौएँ, गन्धर्व तथा अप्सरा आदि उत्पन्न हुए। (११) मुनिसे भीमसेन आदि सोलह पुत्र हुए, जो देव-गन्धर्व जातिके हैं। इनमें चित्ररथको सर्वज्ञ और जितेन्द्रिय कहा गया है। (१२) कद्रूसे शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, कुलिक आदि नाग हुए (महा०, आदि० ६५।१२-५४)।

५-महर्षि जमदग्नि—हवि देते समय अग्निकी उद्दीप्ति-जैसी जिसमें उद्दीप्ति हो उसे जमदग्नि **(जमत्+अग्नि)** कहते हैं—

'जमनाद् वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत।'

(वायु०, उत्त० ४।९४)

महर्षि जमदग्निमें नामके अनुरूप गुण भी थे। महाभारतमें लिखा है—जमदग्नि ऋषि तेज और ओज दोनोंसे सम्पन्न थे। वेदाध्ययनमें ये महर्षियोंसे आगे थे। इनकी बुद्धिमें सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा चार प्रकारके अस्त्र स्वतः स्फुरित हो गये थे (महा०, वन० ११५।४४-४५)।

ये तपस्याके धनी थे। तपस्यासे ही इन्हें कामधेनु प्राप्त हुई थी। इन्होंने आगे चलकर क्रोधको अपने वशमें कर लिया था। एक बार इन्हें श्राद्ध करनेकी इच्छा हुई। इच्छा करते ही कामधेनु वहाँ उपस्थित हो गयी। ऋषिने दूध दुहकर दृढ़ और पवित्र पात्रमें रख दिया। धर्मदेवताने इनकी परीक्षा लेनेके लिये

इसी अवसरको उपयुक्त समझा। वे क्रोधके रूपमें आये और दूधको दूषित कर दिया। दूधके न रहनेपर श्राद्ध हो कैसे ? यह अवसर क्रोध करनेका था, किंतु जमदग्निने क्रोधको अपने पास फटकने नहीं दिया। इस घटनासे धर्मदेवता जमदग्निपर बहुत प्रसन्न हुए (महा०, आश्व० ९२।४१-४४)।

वेदोंमें जमदग्नि ऋषिका नाम बहुत बार आया है। तैत्तिरीय संहितासे पता चलता है कि महर्षि जमदग्निने 'चतूरात' नामक यज्ञ किया था। इसका फल यह हुआ कि इनके वंशमें एक भी व्यक्ति दरिद्र न हुआ (तैत्ति०, संहि० ७।१।९)। अक्षर—ब्रह्मका प्रचार करना इनके जीवनका उद्देश्य था। वैसे ये वेदके प्रचारमें भी निरन्तर लगे रहते थे (तैत्ति०, आरण्यक १।९)।

इनकी पत्नीका नाम रेणुका था। इनके पाँच पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे परशुराम थे, किंतु गुणमें सबसे बढ़े-चढ़े थे।

६-महर्षि वसिष्ठ—तपस्वी बहुत हुए, किंतु महर्षि वसिष्ठकी तरह इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला कोई नहीं हुआ। सव्यसाची अर्जुनने चित्ररथसे वसिष्ठ शब्दका अर्थ पूछा था। उत्तरमें गन्धर्वने बताया था—'इन्द्रियोंको वशमें करनेके कारण महर्षिका नाम वसिष्ठ पड़ा है।' काम और क्रोध— ये दो दोष दुर्जेय हैं, किंतु वसिष्ठसे ये दोनों पराजित हो गये हैं और वे दोनों इनके चरण दबाया करते हैं—

तपसा निर्जितौ शश्वदजेयावमरैरपि।
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ संववाहतुः।
इन्द्रियाणां वशकरो वसिष्ठ इति चोच्यते॥

(महा०, आदि० १७३।५-६)

इनमें तपस्यासे अपार शक्ति आ गयी थी। इतनी शक्ति तो थी ही कि विश्वामित्रके द्वारा अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर वे सम्पूर्ण कुशिकवंशको मटियामेट कर दें। वे पुत्र-शोकसे बहुत संतप्त भी थे और समर्थ भी थे, परंतु साधुतावश कुशिकवंशका उच्छेद नहीं किया। इसी तरह वे विश्वामित्रके अन्य अत्याचार भी सहते रहे और समर्थ होते हुए भी असमर्थकी तरह उपेक्षा करते रहे (महा०, आदि० ७३। ७-८)। महर्षि वसिष्ठ संयम ही नहीं मर्यादाका भी सीमातक पालन करते थे। पुत्रोंका विनाश हो जानेसे वंश-क्षयका उन्हें बहुत कष्ट हुआ। उनकी धार्मिक प्रवृत्तिने उन्हें सोचनेके लिये बाध्य किया, जब वंश ही नहीं है, तब इस शरीरका रखना भी व्यर्थ ही है। वे मेरुके शिखरसे नीचे कूद पड़े, किंतु उन्हें मालूम पड़ा कि रूईके ढेरपर गिरा हूँ। धधकते दावानलमें घुस गये, किंतु वह चाँदनी-जैसी शीतल बन गयी (महा०, आदि० १७५।४४—४९)। सब कुछ किया; किंतु न तो विश्वामित्रके विनाशकी बात सोची और न यही सोचा कि यमराजसे अपने पुत्रोंको वापस लौटा लूँ। उनमें इतनी क्षमता थी कि वे यमराजसे अपने पुत्रोंको लौटा सकते थे; किंतु इससे सनातन मर्यादा तो टूट ही जाती। इसी बातको महाभारतमें लिखा है कि वे अपने सम्पूर्ण पुत्रोंको यमलोकसे वापस ला सकते थे; किंतु मर्यादाका भङ्ग न हो इसलिये उन्होंने वैसा नहीं किया(महा०,आदि०१७३।९)। जब इन्हें पता चला कि इनकी पुत्रवधूके गर्भमें वंशका अंकुर है, तब उन्होंने अपने शरीरकी रक्षा की। अपकार करनेपर भी शान्त बने रहना, अपकारीके प्रति दुर्भावना न आने देना महामानवता है। यह वसिष्ठ-जैसे मनस्वियोंमें ही मिलती है।

सरस्वती नदीके 'स्थाणु' तीर्थके पूर्व तटपर महर्षि वसिष्ठका आश्रम था और पश्चिम तटपर विश्वामित्रका। विश्वामित्र वसिष्ठका तेज देखकर जला करते थे। एक बार विश्वामित्रके मनमें आया कि यदि वसिष्ठ न रह जायँ तो उनकी तपस्याका प्रतिद्वन्द्वी भी समाप्त हो जाय। क्यों न वसिष्ठकी हत्या कर इस समस्याका समाधान कर लिया जाय, उस समय ये ब्रह्मर्षि नहीं हुए थे। एक दिन विश्वामित्रके मनमें हिंसाका यह विचार स्थित हो गया। मारे क्रोधके वे आगबबूला हो गये। उसी स्थितिमें इन्होंने सरस्वती नदीकी अधिष्ठात्री देवीका स्मरण किया, जब देवीको पता चला कि विश्वामित्र क्रोधित होकर मुझे स्मरण कर रहे हैं तो उनके शापसे बहुत डर गयीं। हाथ जोड़कर सेवामें पहुँचीं। विश्वामित्रने आदेश दिया—'जाओ, वसिष्ठको अपनी प्रखरधारामें बहाकर मेरे पास शीघ्र लाओ। मैं उसका वध करूँगा।' सुनते ही सरस्वती देवी काँप गयीं। यदि विश्वामित्रकी आज्ञाका पालन न हो तो ये शाप देंगे, उधर मेरे अपराधपर वसिष्ठ शाप दे सकते हैं;दोनों ओर पतन था।

काँपती हुई सरस्वतीदेवी वसिष्ठके पास पहुँचीं और धीरे-धीरे सारी घटना सुना दीं। महामानवने कहा—'देवि! तुम विश्वामित्रकी आज्ञाका पालन करो। नहीं तो वे तुम्हें शाप

: देंगे, तुम अपनेको बचाओ, मुझे बहा ले चलो।' देवी
सिष्ठके इस दयासे दब गयीं, वे सोचने लगीं, वसिष्ठका हित
से हो, किंतु विश्वामित्रकी ओरसे महान् भय था, कुछ
ोचकर देवीने पूर्वतट तोड़कर वेगसे बहाना प्रारम्भ कर
या। तटके साथ-साथ वसिष्ठजी भी बहने लगे। वसिष्ठजीने
सीका अकल्याण न सोचकर स्तवनमें मन लगाया।

देवीने वसिष्ठको विश्वामित्रके पास पहुँचाकर निवेदन
या कि मैं वसिष्ठको ले आयी हूँ, विश्वामित्र वसिष्ठकी
याके लिये हथियार ढूँढ़ने लगे। इधर अवसर देखकर
स्वतीदेवी वसिष्ठको फिर पूर्वकी ओर ले गयीं। सरस्वती-
ीके इस अपराधपर विश्वामित्र बहुत रुष्ट हुए, उन्होंने
स्वतीको शाप दिया—'तुम्हारा जल अपवित्र रक्त बन
य।' एक वर्षके बाद ऋषियोंके प्रयाससे सरस्वतीका जल
र शुद्ध हुआ (महा०, शल्य० अ० ४२-४३)।

वसिष्ठ ऋषिकी पत्नीका नाम अरुन्धती है। इनके पौत्र
शरसे इनकी वंशपरम्परा विकसित हुई। वेदान्तकी अद्वैत
म्परा भी इनसे आगे बढ़ती गयी। वसिष्ठसे शक्ति,
शर, व्यास, शुकदेव तथा गौड़पाद एवं गोविन्दपादसे होती
यह परम्परा शंकराचार्यको मिली।

७-महर्षि अत्रि—ये ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। मरीचिके
द शक्तिशाली अत्रि ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुए (मत्स्य०
६)। अत्रि ऋषि गुणोंमें ब्रह्माके ही समान हैं (श्रीमद्भा०
।१४।२)। महाभारतकी कथा है—'एक बार देवताओं
र असुरोंका युद्ध चला। राहुने सूर्य और चन्द्रमाको
ग्ल कर दिया, इसलिये घोर अन्धकार फैल गया।
ताओंके लिये यह संकटकी घड़ी थी। अन्धकारमें
हें कुछ दीखता न था और वे मारे जा रहे थे। अन्तमें
गकर वे अत्रि ऋषिके पास पहुँचे और इनसे अपनी रक्षाकी
ग की। अत्रिने पूछा—'मैं क्या उपाय करूँ कि आपकी रक्षा
सके।' देवताओंने कहा—'आप सूर्य और चन्द्र बनकर
ाश देने लग जायँ और तीक्ष्ण तेजसे शत्रुओंका नाश भी
दें।' अत्रि समर्थ थे। वे सूर्य और चन्द्र बनकर प्रकाशित
े लगे और अपने तेजसे राक्षसोंको भस्म भी करने
े। देवताओंको बल मिला और वे विजयी हुए (महा०,
नु० १५६।२—१२)।

महाभारतकी यह कथा ऋग्वेद (५।४०।५-९) का ही
उपबृंहण है। वहाँ कहा गया है कि 'हे सूर्य! जब असुर-पुत्र
राहुने मायारूप तमसे तुम्हें विद्ध कर दिया था, तब सब कुछ
अन्धकारमें डूब गया था। कोई यह भी नहीं देख पाता
था कि वह कहाँ खड़ा है, तब अत्रि ऋषिने वेदके चार मन्त्रोंके
द्वारा उस मायारूपी अन्धकारको दूर भगा दिया था। जब इस
कठिन परिस्थितिसे सूर्य देवता उबर गये, तब उन्होंने अत्रिसे
कहा—'हे मुने! अब तुम ऐसा उपाय करो कि असुर मुझे
फिर मायारूपी अन्धकारसे आच्छन्न न करें।'

कर्दम ऋषिने अपनी कन्या अनसूयासे अत्रि ऋषिका
विवाह किया था (श्रीमद्भा०३।१२।२४)। अनसूयासे
महर्षि अत्रिके तीन पुत्र हुए— सोम, दुर्वासा और योगी
दत्तात्रेय (मत्स्यपु० २०।१२)।

८-महाशक्ति अरुन्धती—महाशक्ति अरुन्धती सौम्य
स्वरूपवाली और सबकी वन्दनीया हैं (शिवपु०, रुद्रसं०
अ० ३)। पहले ये सन्ध्या नामकी ब्रह्माकी मानस पुत्री थीं।
इन्होंने विश्वके कल्याणके लिये एक मर्यादाका होना आवश्यक
समझा। कामभावके उत्पन्न होनेकी कोई अवस्था होनी चाहिये,
उत्पन्न होते ही प्राणियोंमें न जाग जाय। यह मर्यादा विश्वके
लिये हितावह है, इसके लिये उन्होंने भगवान् शङ्करको स्मरण
कर उग्र तपस्या प्रारम्भ कर दी। भगवान् आशुतोषने प्रसन्न
होकर वरदानमें कहा—'अबसे शैशवावस्थामें किसी प्राणीको
काम-विकार न होगा। यह काम-भाव यौवनावस्थामें उत्पन्न
होगा और कहीं-कहीं कौमारावस्थाके अन्तिम भागमें।' यह भी
वरदान दिया कि 'तुमसे बढ़कर कोई पतिव्रता न होगी।'
वरदान देनेके बाद भगवान् शङ्करने कहा—'तुमने प्रतिज्ञा कर
रखी है कि इस देहको अग्निको सौंप दूँगी, इस समय
मेधातिथिका ज्योतिष्टोम चल रहा है, अग्निदेव खूब प्रज्ज्वलित
हो रहे हैं, उसमें अपने शरीरको डालकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी
करो। मेरी कृपासे तुम्हें कोई देख न सकेगा। इसके बाद
अग्निकुण्डसे निकलकर तुम मेधातिथिकी पुत्री होगी।'

सन्ध्याने भगवान् शङ्करके आदेशका अक्षरशः पालन
किया। अग्निकी ज्वालामें वह कान्तिमती कन्या बन गयी।
पुत्रीको पाकर मेधातिथिको बहुत आनन्द हुआ। उस कन्याका
नाम उन्होंने अरुन्धती रखा, क्योंकि धर्मके किसी कार्यमें वह

अवरोध नहीं पैदा करती थी।

अरुन्धती जब बड़ी हो गयीं तब त्रिदेवोंने मिलकर इनका विवाह महर्षि वसिष्ठजीसे करा दिया। मेधातिथिकी यह पुत्री समग्र पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ हैं। इनसे शक्ति आदि तेजस्वी सौ पुत्र हुए (शिवपुराण, रुद्रसं०३-६)।

अरुन्धती अपने पतिदेवको छोड़कर कहीं न रहीं और न कभी पतिका विरोध किया। आकाशमें सप्तर्षियोंमें वसिष्ठके साथ इनका स्थान है। विवाहके अवसरपर कन्याओंको इनका दर्शन कराया जाता है (ब्रह्माण्डपु० ३।८)।

अष्टमातृकाओंके आविर्भावकी कथा

मार्कण्डेयपुराण (अ० ८२—८५) में एक कथा आती है। शुम्भ-निशुम्भ दो असुर थे। दोनों ही अहंकारके पुतले थे। बलका अर्थ विश्वको सताना नहीं होता, किंतु इन दोनों असुरोंने अपने बलसे सम्पूर्ण विश्वको त्रस्त कर रखा था। किसीकी न जान सुरक्षित थी न माल। देवताओंके भी स्थान और यज्ञभाग दोनों छिन गये थे। उन्हें इस विपत्तिके समय आदिशक्तिका वह वचन याद आया जो माताने पहले इन्हें दिया था। उन्होंने कहा था कि 'जब-जब असुरोंद्वारा बाधा आ उपस्थित होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर उसे दूर कर दिया करूँगी।'

माताके इस वचनको याद कर उन्हें आश्वासन प्राप्त हुआ। फिर तो सब देवता सर्वात्मना आदिशक्तिकी शरणमें गये और फिर सामूहिक रूपसे आदिशक्तिका स्तवन करने लगे। करुणामयी पराम्बा प्रकट हो गयीं। देवताओंको आश्वस्तकर बिदा कर दिया और स्वयं अपने अलौकिक सौन्दर्यसे हिमालयकी शोभाको सँवारती हुई विचरण करने लगीं।

शुम्भके सेनापति थे चण्ड और मुण्ड। इन्होंने माताको देखा था। देखते ही माताके सौन्दर्यसे उनकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं। ऐसा सौन्दर्य उन्होंने कभी नहीं देखा था। वे दौड़कर अपने स्वामी शुम्भके पास पहुँचे और कहा—'स्वामिन्! आप रत्नके प्रेमी हैं, संसारभरके रत्नोंका आपने अपने पास संचय कर रखा है; किंतु ये सारे रत्न एक नारी-रत्नके आगे तुच्छ हैं। आप उसे हस्तगत कर लें। हम उसे देखकर आपके पास दौड़े हुए आये हैं। यह सुनते ही शुम्भ इस प्रयासमें लग गया। उसका अन्तिम प्रयास युद्ध-रूपमें परिणत हुआ। शुम्भने सेनापति धूम्रलोचनको साठ हजार असुरोंके साथ भेजा। पराम्बाने अपने हुंकारसे धूम्रलोचनका उद्धार कर दिया और माताके वाहन सिं क्षणभरमें सेनाका विध्वंस कर डाला। दूसरी बार बड़ी सेन साथ चण्ड और मुण्ड आये, ये भी मारे गये। इसके त शुम्भने अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ रक्तबीजको भेजा।

एक ओर तीन थे—पराम्बा, काली और वाहन। दूर ओर थे असंख्य असुर। तब पराम्बाने अपनेको अनेक रू अभिव्यक्त किया। इन्द्र, विष्णु आदि देवताओंमें जो इ शक्त्यं हैं, उनको अलग-अलग प्रकट कर लिया। ब्रह शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्रके शरीरसे पृथक्-पृथ शक्तियाँ निकलकर इन्हीं देवताओंके समान रूप धारण चण्डिकाके पास आयीं, जिस-जिस देवताका जैसा रूप, जै भूषण और जैसा वाहन था, उस-उस देवताके शरीरसे निक हुई शक्ति भी उसी प्रकारका रूप, भूषण तथा वाहनसे सम्प होकर असुरोंसे लड़नेके लिये तैयार हो गयीं। य मातृकाओंके आविर्भावका इतिहास है।

सर्वतोभद्रमण्डलकी बाह्य तमः-परिधिमें पूर्वादिक्रमसे इ ऐन्द्री, कौमारी आदि अष्टमातृकाओंकी पूजा की जाती है।

ऐन्द्री—इन्द्र देवताके शरीरसे निकली हुई शा ऐन्द्री कहलायीं। इनका रूप इन्द्रका, भूषण इन्द्रका और वाह भी इन्द्रका ही है। ऐन्द्री देवी हाथमें वज्र लेकर ऐरावत बैठकर देवशक्तियोंसे घिरी हुई चण्डिकाके पास आयीं। इन्द्र तरह इनकी भी हजार आँखें हैं।

ध्यान—

ऐन्द्री सहस्रदृक् सौम्या हेमाभा गजसंस्थिता।
वरदा सूत्रिणी वज्रं बिभ्रत्यूर्ध्वं तु दक्षिणे॥
वामे तु कमलं पात्रं ह्यभयं तदधःकरे॥

'सौम्य स्वभाववाली ऐन्द्री सहस्र नेत्रोंसे युक्त हैं। उनः अङ्गकान्ति स्वर्ण-तुल्य है। वे गजराजपर संस्थित हैं। अप दाहिने हाथोंमें वे वरदमुद्रा, अक्षसूत्र और ऊपरके हाथमें व तथा बायें हाथोंमें कमल, पात्र और नीचेके हाथमें अभयमु धारण करती हैं।'

कौमारी—कार्तिकेयकी शक्ति कौमारी कहला हैं। ये हाथमें शक्ति लेकर मोरके वाहनपर बैठकर चण्डिका पास आयीं। वस्तुतः ये कार्तिकेयके स्वरूपवाली ही हैं।

ध्यान—

षडानना तु कौमारी पाटलाभा सुशीलका।
रविबाहुर्मयूरस्था वरदा शक्तिधारिणी॥
पताकां बिभ्रती दण्डं पात्रं बाणं च दक्षिणे।
वामे चापमथो घण्टां कमलं कुक्कुटं तथा।
परशुं बिभ्रती चैव तदधस्त्वभयान्विता॥

'शोभन स्वभाववाली कौमारी छः मुख और बारह भुजाओंसे युक्त हैं। उनकी अङ्गकान्ति पाटल वर्णकी है। वे मयूरपर सवार होती हैं तथा अपने दायें भागके हाथोंमें वरदमुद्रा, शक्ति, पताका, दण्ड, पात्र और बाण तथा बायें भागके हाथोंमें धनुष, घण्टा, कमल, कुक्कुट, परशु और अभयमुद्रा धारण करती हैं।'

ब्राह्मी—हंसयुक्त विमानके ऊपर बैठकर हाथमें रुद्राक्षमाला तथा कमण्डलु लेकर ब्रह्माजीकी शक्ति ब्रह्माणी आयीं। इन्होंने युद्धके अवसरपर कमण्डलुका जल छिड़ककर असुरोंको हतवीर्य और हततेज कर दिया था।

ध्यान—

तत्र ब्राह्मी चतुर्वक्त्रा षड्भुजा हंससंस्थिता।
पिङ्गाभा भूषणोपेता मृगचर्मोत्तरीयका॥
वरं सूत्रं स्रुवं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात्।
वामे तु पुस्तकं कुण्डीं बिभ्रती चाभयंकरम्॥

'अष्टमातृकाओंमें ब्राह्मी चार मुख और छः भुजाओंसे युक्त हैं। वे हंसपर सवार होती हैं। उनकी अङ्गकान्ति पीली है। वे आभूषणोंसे समुल्लसित और मृगचर्मके उत्तरीयसे विभूषित रहती हैं तथा दाहिने भागके तीनों हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, अक्षसूत्र और स्रुवा तथा बायें भागके तीनों हाथोंमें पुस्तक, कुण्डी और अभयमुद्रा धारण करती हैं।'

वाराही—यज्ञवराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी जो शक्ति है वह वाराहीका रूप धारण कर आयीं। वाराही देवीने मुखके प्रहारसे असुरोंका विध्वंस कर दिया और चक्रके प्रहारसे असुरोंको काट डाला और दाँतकी नोकसे असुरोंकी छाती फाड़ डाली।

ध्यान—

कृष्णवर्णा तु वाराही महिषस्था महोदरी।
वरदा दण्डिनी खड्गं बिभ्रती दक्षिणे करे॥
खेटपात्राभयान् वामे सूकरास्या लसद्भुजा॥

'विशाल उदरवाली वाराही भैंसेपर सवार होती हैं। इनकी अङ्गकान्ति काली है। इनका मुख सूकरके समान है। ये अपने दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, दण्ड और खड्ग धारण करती हैं तथा इनकी बायीं भुजाएँ ढाल, पात्र और अभयमुद्रासे सुशोभित रहती हैं।'

चामुण्डा—धूम्रलोचन-उद्धारके बाद शुम्भने चण्ड और मुण्डके सेनापतित्वमें चतुरङ्गिणी सेना भेजी। जाते ही इन लोगोंने देवीपर धावा बोल दिया। आदिशक्तिको इनकी उद्दण्डतापर क्रोध हुआ। भ्रुकुटि चढ़ाते ही उनके ललाटसे भयंकर मुखवाली काली प्रकट हो गयीं। इनके हाथोंमें लपलपाता हुआ तलवार और पाश था। कालीने चण्ड-मुण्डकी सम्पूर्ण सेनाको तहस-नहस कर डाला। सेनाको क्षणभरमें नष्ट होते देख चण्ड असुर बहुत वेगसे काली देवीपर टूट पड़ा, उधर मुण्ड असुरने भी देवीपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। हजार चक्र भी छोड़े। काली माताने इन चक्रों और बाणोंको खा डाला और चण्डासुरका मस्तक भी काट डाला। गिरते हुए चण्डको देख मुण्ड देवीपर चढ़ आया। कालीने खट्वाङ्गसे उसका भी काम तमाम कर दिया।

इसके बाद माता काली चण्ड और मुण्डके कटे सिर लेकर पराम्बाके पास पहुँचीं और अट्टहास करती हुई बोलीं—'मैंने चण्ड और मुण्डके सिरका यह उपहार आपको भेंट किया है। अब आप शुम्भ-निशुम्भको मारिये।' चण्डिका देवीने मधुर वचनोंसे कहा—'तुम चण्ड और मुण्डको पकड़कर मेरे पास ले आयी हो इस कारण लोकमें तुम्हारा 'चामुण्डा' यह नाम विख्यात होगा।'

ध्यान—

चामुण्डा प्रेतगा कृष्णा विकृता चाहिभूषणा।
द्रंष्ट्राली क्षीणदेहा च गर्ताक्षी कामरूपिणी॥
दिग्बाहुः क्षामकुक्षिश्च मुसलं चक्रचामरे।
अङ्कुशं बिभ्रती खड्गं दक्षिणे चाथ वामके॥
खेटं पाशं धनुर्दण्डं कुठारं चापि बिभ्रती॥

'विकृत आकारवाली चामुण्डाके शरीरका रंग काला है। वे नागोंको आभूषणरूपमें धारण करती हैं। उनकी दाढ़ें विशाल हैं, देह दुबली-पतली है और आँखें धँसी हुई हैं। वे

स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली हैं। उनकी दस भुजाएँ हैं और कुक्षि क्षीण है। वे प्रेतपर सवार होती हैं। वे दाहिने हाथोंमें मुसल, चक्र, चामर, अङ्कुश और खड्ग तथा बायें हाथोंमें ढाल, पाश, धनुष, दण्ड और कुठार धारण करती हैं।'

वैष्णवी—विष्णुके शरीरसे निकलकर वैष्णवी शक्ति आयीं। इनका रूप बिलकुल विष्णु-जैसा था। चार हाथ थे, एकमें शङ्ख, दूसरेमें चक्र, तीसरेमें गदा तथा चौथेमें शार्ङ्गधनुष है। इन्होंने गदाकी मार, शार्ङ्गधनुषकी टंकार तथा बाणवर्षासे असुरोंको हतप्रभ कर दिया।

ध्यान—

वैष्णवी तार्क्ष्यगा श्यामा षड्भुजा वनमालिनी।
वरदा गदिनी दक्षे बिभ्रती च करेऽम्बुजम्।
शङ्खचक्राभयान् वामे सा चेयं विलसद्भुजा॥

'वनमाला धारण करनेवाली एवं छः भुजाओंसे सुशोभित वैष्णवी गरुडपर आरूढ़ होती हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्याम है। वे दाहिने हाथोंमें वरदमुद्रा, गदा और कमल धारण करती हैं तथा उनकी बायीं भुजाएँ शङ्ख, चक्र और अभयमुद्रासे सुशोभित होती हैं।'

माहेश्वरी—शिवकी शक्ति माहेश्वरी हैं। इनके हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें वरदमुद्रा है। सिरपर चन्द्रमाकी कलासे इनकी बहुत शोभा हो रही है। बड़े-बड़े सर्प कंकण बने हुए हैं। बैलपर चढ़कर माहेश्वरी चण्डिकाके पास आयीं। इन्होंने त्रिशूलसे शत्रुओंका क्षय कर दिया।

ध्यान—

माहेश्वरी वृषारूढा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना।
श्वेतवर्णा दशभुजा चन्द्ररेखाविभूषिता॥
खड्गं वज्रं त्रिशूलं च परशुं चाभयं वरम्।
पाशं घण्टां तथा नागमङ्कुशं बिभ्रती करैः॥

पाँच मुख, तीन नेत्र और दस भुजाओंसे युक्त माहेश्वरी वृषपर आरूढ़ होती हैं। उनका वर्ण श्वेत है और वे चन्द्ररेखासे विभूषित रहती हैं। वे अपने हाथोंमें क्रमशः एक ओर खड्ग, वज्र, त्रिशूल, परशु और अभयमुद्रा तथा दूसरी ओर पाश, घण्टा, नाग, अङ्कुश और वरदमुद्रा धारण किये हैं।

वैनायकी—विनायक नाम गणेशका है। इनकी शक्तिको वैनायकी कहते हैं। इनका रूप बिलकुल गणेशकी तरह है। मुखमें शुण्डादण्ड है तथा चार हाथोंमें अङ्कुश, पाश, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा सुशोभित है।
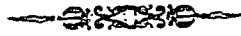
लिङ्गतोभद्रमण्डलके विशिष्ट देवता

माङ्गलिक पूजा-महोत्सवों, यज्ञ-यागादि अनुष्ठानों तथा देव-प्रतिष्ठा आदि शुभ कर्मोंमें प्रायः नवग्रह, मातृका, योगिनी तथा सर्वतोभद्रमण्डल आदि चक्रोंके साथ-साथ लिङ्गतोभद्र-मण्डल-चक्रकी रचनाकर उस मण्डलमें विभिन्न देवताओंकी प्रतिष्ठा तथा पूजा-उपासना की जाती है, इससे साधक, उपासक, पूजकका सभी प्रकार कल्याण-मङ्गल होता है। लिङ्गतोभद्र-चक्र एकलिङ्ग, चतुर्लिङ्ग, अष्टलिङ्ग, द्वादशलिङ्ग आदि लिङ्ग एवं रचनाभेदसे अनेक प्रकारके बनते हैं। भद्रमार्तण्डादि ग्रन्थोंमें इन चक्रोंकी संरचना तथा पीठमें तत्तद् देवताओंकी स्थापनाका विधान बताया गया है। साथ ही कर्मकाण्डके ग्रन्थोंमें पूजनका विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है। यहाँ संक्षेपमें चतुर्लिङ्गतोभद्रचक्रकी संरचना एवं उसमें पूजित होनेवाले विशेष देवताओंका नामोल्लेखमात्र किया जा रहा है। विशेष जानकारीके लिये शास्त्रोंका अवलोकन करना चाहिये तथा इन विषयोंके मर्मज्ञ पण्डितोंका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

किसी पीठ अथवा वेदीमें पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण अठारह-अठारह रेखाएँ खींचनेसे २८९ कोष्ठात्मक चतुर्लिङ्गतो-भद्रचक्र बनता है। चक्रमें अङ्कित वर्णोंके क्रमसे कोणेन्दुके तीन-तीन कोष्ठकोंमें श्वेत, तीन-तीन कोष्ठकयुक्त चार कृष्ण शृंखलाओंमें कृष्ण, वल्लियोंमें नीला (मतान्तरसे हरित), आठ भद्रोंमें रक्त, चार महारुद्रोंमें कृष्ण, आठ वापियोंमें श्वेत, भद्र तथा वापीके मध्य आठ कोष्ठकोंमें पीत, चार कृष्ण शृंखलाओंके शीर्ष भागके तीन-तीन कोष्ठकोंमें पुनः पीत, लिङ्गके स्कन्धोंसे सटे बीस कोष्ठकोंमें रक्त, पुनः षोडश-कोष्ठात्मक परिधिमें पीत तथा मध्यके नवकोष्ठात्मक पद्ममें रक्तवर्णसे रँगे अक्षत अथवा तत्तद् वर्णके चूर्णादि भर देने चाहिये। सत्त्व, रज, तमात्मक बाह्य परिधि भी बनानी चाहिये। इस प्रकार भद्रमण्डलकी संरचना कर उसमें तत्तद् देवताओंकी

चतुर्लिङ्गतोभद्रचक्र
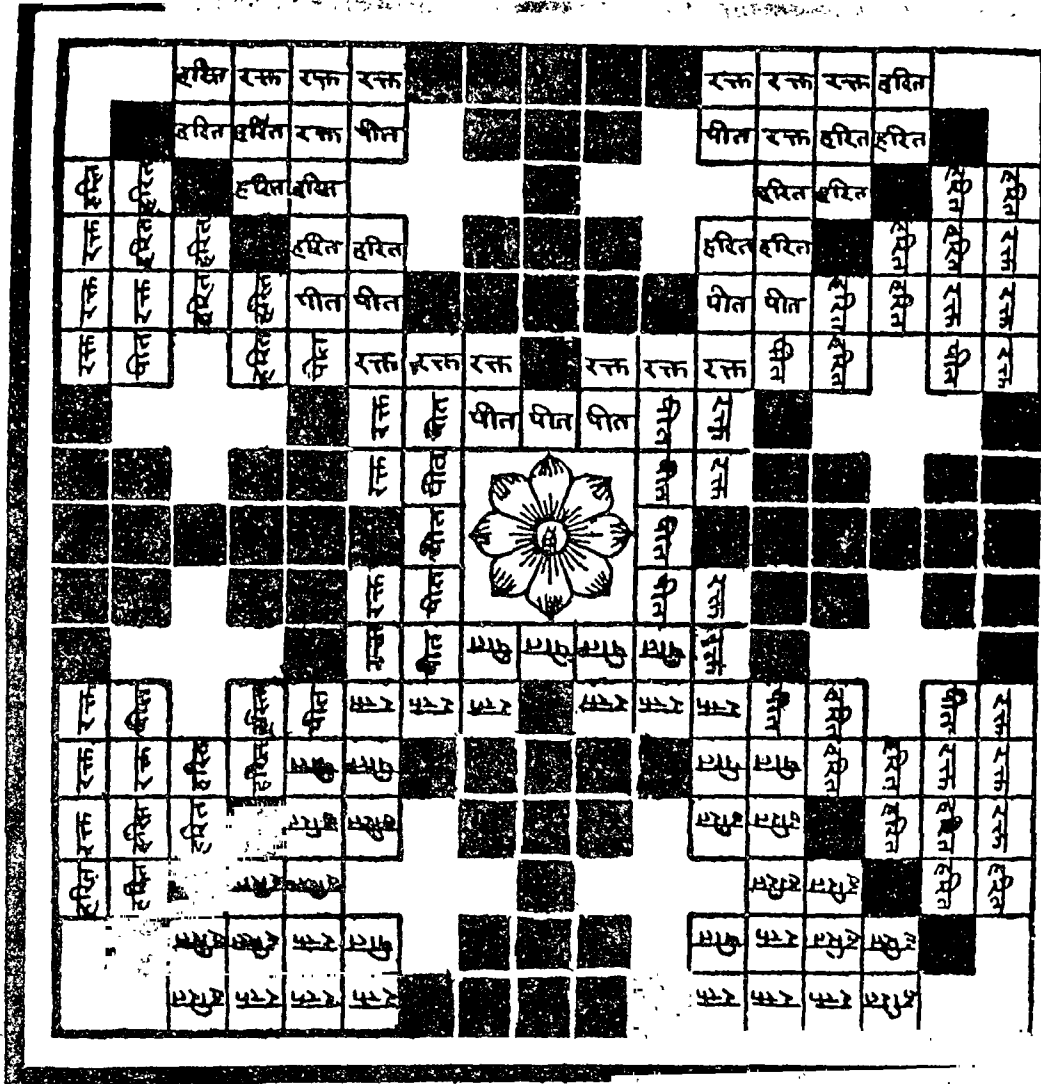
ापना करनी चाहिये।

इस पीठमण्डलमें सर्वतोभद्रके प्रायः सभी देवताओंका वाहन कर उनका भी पूजन करनेकी परम्परा है। मण्डलके शेष्ट देवता इस प्रकार हैं—

(१) असिताङ्ग भैरव, (२) रुरु भैरव, (३) चण्ड त्र, (४) क्रोध भैरव, (५) उन्मत्त भैरव, (६) कपाल त्र, (७) भीषण भैरव, (८) संहार भैरव, (९) भव, ०) शर्व, (११) पशुपति, (१२) ईशान, (१३) रुद्र, ४) उग्र, (१५) भीम, (१६) महान्, (१७) अनन्त, ८) वासुकि, (१९) तक्षक, (२०) कुलिश, १) कर्कोटक, (२२) शङ्खपाल, (२३) कम्बल, (२४) अश्वतर, (२५) शूल, (२६) चन्द्रमौलि, (२७) चन्द्रमा, (२८) वृषभध्वज, (२९) त्रिलोचन, (३०) शक्तिधर, (३१) महेश्वर और (३२) शूलपाणि।

इन देवताओंकी स्थापना कर मण्डलकी प्राणप्रतिष्ठा करके देवताओंका नाम-मन्त्रों अथवा वैदिक पौराणिक मन्त्रोंसे गन्ध-पुष्पादि उपचारोंद्वारा पूजनकर हवन आदि कार्य किये जाते हैं। मूलतः लिङ्गतोभद्रचक्रमें भगवान् शिवके परिकरों, परिच्छदों, आयुधों, आभूषणोंका ही पूजन किया जाता है। इससे भगवान् आशुतोष प्रसन्न होते हैं और साधकके अभीष्टकी सिद्धि होती है। साथ ही उनके अनुग्रहसे उपासकको शिव-सायुज्य भी प्राप्त हो जाता है।

नवग्रह-मण्डलके देवताओंका परिचय

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

छान्दोग्योपनिषद्में एक आख्यान आता है। कुरुदेशमें ओले गिरनेसे दुर्भिक्ष पड़ गया था। वहाँ हाथीवानोंका एक गाँव था, उसमें अपनी पत्नीके साथ उषस्ति ऋषि रहा करते थे। दोनोंको प्रायः भूखे रह जाना पड़ता था। एक दिन उड़द खाते हुए एक महावतसे उषस्तिने अन्नकी याचना की। महावतके पास उस जूठे उड़दके अतिरिक्त और कुछ न था। आपद्धर्म समझकर उषस्तिने उसे ले लिया और खा लिया। दूसरे दिन प्रातः धन कमानेके लिये वे एक राजाके यज्ञमें चल पड़े।

यज्ञमें ऋत्विजोंका वरण हो चुका था। वे लोग स्तुति-कर्म करने जा रहे थे। पद रिक्त न रहनेसे उषस्तिका यज्ञमें प्रवेश पाना सम्भव न था और प्रवेश पाये बिना धन कैसे मिलता? अतः उन्होंने एक उपाय सोचा और प्रस्तोतासे कहा—'जिस देवताकी तुम स्तुति करने जा रहे हो, उस देवताको बिना जाने स्तुति करोगे तो तुम्हारा सिर गिर जायगा।' यही बात उद्गाता और प्रतिहर्तासे भी कही। सब ऋत्विज् हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ गये। यज्ञमें संनाटा छा गया। राजाने प्रभावित होकर उषस्तिको यज्ञमें सम्मिलित कर लिया। तदनन्तर उषस्तिने उन्हें उन-उन देवताओंका ज्ञान कराया (छान्दोग्य उप० १।१०-११)।

इस आख्यायिकासे स्पष्ट है कि जिस देवताकी पूजा की जाय, उसके स्वरूपका ज्ञान आवश्यक है। इस दृष्टिसे नवग्रह और उनके मण्डलके पञ्चलोकपाल, दशदिक्पाल आदि देवताओंका यहाँ स्वरूपनिरूपण किया जा रहा है—

ग्रहोंकी पूजासे इस लोकमें भी कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है तथा बादमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यदि किसीको कोई ग्रह पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उसे चाहिये कि अन्य ग्रहोंके साथ उस ग्रहकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। इनकी अवहेलना न करे (मत्स्यपु० ९३।७८—८०)। यदि किसी दुर्दृष्टवश कोई व्यक्ति क्लेशग्रस्त हो रहा हो तो ग्रहशान्ति कवच बनकर उसका निवारण कर देती है (मत्स्यपु० ९३।८१)। चित्तकी उद्विग्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी ग्रह-यज्ञ आवश्यक होता है (मत्स्यपु० ९३।८४)।

नवग्रह-यज्ञसे शान्ति और पुष्टि दोनोंकी प्राप्ति होती है। वृष्टिके लिये तथा लक्ष्मी और दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये भी ग्रह-यज्ञका विधान है (मत्स्यपु० ९३।१-२)।

ग्रह—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह हैं (मत्स्यपु० ९३।१०)।

अधिदेवता[१]—सूर्यके अधिदेवता शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त माने गये हैं।

प्रत्यधिदेवता[२]—उपर्युक्त क्रमसे अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके साथ ग्रह-मण्डलमें आवाहन करना चाहिये।

सूर्य देवता

सूर्य देवताका एक नाम 'सविता' भी है, जिसका अर्थ है—सृष्टि करनेवाला (**सविता सर्वस्य प्रसविता**—निरुक्त १०।३१)। ऋग्वेदमें बताया गया है कि आदित्य-मण्डलके अन्तःस्थित सूर्य देवता सबके प्रेरक, अन्तर्यामी, परमात्म-स्वरूप हैं। ये ही सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गमके कारण हैं (ऋक्० १।११५।१)।

मार्कण्डेयपुराणने इस तथ्यका उपबृंहण करते हुए कहा है कि सूर्य ब्रह्मस्वरूप हैं। सूर्यसे जगत् उत्पन्न होता है और उन्हींमें स्थित है। इस तरह यह जगत् सूर्य-स्वरूप है। सूर्य सर्वभूतस्वरूप सर्वात्मा और सनातन परमात्मा है (मार्क० पु० ९८।१२—१४)।

वेद ब्रह्मस्वरूप हैं, अतः सूर्य देवता भी वेदस्वरूप हैं। इसलिये इन्हें 'त्रयीतनु' कहा गया है। पुराणने इसके स्पष्टीकरणमें एक इतिहास प्रस्तुत किया है। जब ब्रह्मा

१-२ (मत्स्यपु० ९३।१३-१६)

अण्डका भेदनकर उत्पन्न हो गये , तब उनके मुखसे 'ॐ' यह महाशब्द उच्चरित हुआ। यह ओंकार परब्रह्म है और यही सूर्य देवताका शरीर है—

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम्।
ओमित्युक्तं मया विप्र तत्परं ब्रह्म तद्वपुः ॥

(मार्क० ९८। २७)

इस ओंकारसे पहले 'भूः' फिर 'भुवः' और बादमें 'स्वः' उत्पन्न हुआ। ये तीन व्याहृतियाँ सूर्यके सूक्ष्म स्वरूप हैं। फिर इनसे 'महः', 'जनः', 'तपः' और 'सत्यम्' उत्पन्न हुए, जो स्थूलसे स्थूलतर और स्थूलतम होते चले गये। इस तरह 'ॐ' रूप शब्दब्रह्मसे भगवान् सूर्यका स्वरूप प्रकट हुआ (मार्क० पु० ९८। २२—२४)।

ब्रह्माके चारों मुखोंसे चार वेद आविर्भूत हुए, जो तेजसे उद्दीप्त हो रहे थे। ओंकारके तेजने इन चारोंको आवृत कर लिया। इस तरह ओंकारके तेजमें मिलकर चारों एकीभूत हो गये। यही वैदिक तेजोमय सूर्य देवता हैं। यह सूर्यरूप तेज सृष्टिमें सबसे पहले (आदिमें) उत्पन्न हुआ। इसलिये इनका नाम 'आदित्य' पड़ा। इस तरह यह सूर्य विश्वका अव्ययात्मक कारण है (मार्क० पु० ९९। १—१४)। ऋक्, यजुः और सामनामवाली त्रयी ही प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्णकालमें तपती है (मार्क० पु० ९९। १५)।

इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदसंस्थित और वेद-विद्यामय हैं।

तदेवं भगवान् भास्वान् वेदात्मा वेदसंस्थितः।
वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते ॥

(मार्क० पु० ९९। २०)

यही भगवान् भास्कर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र बनकर सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं (मार्क० पु० ९९। २१)। हम मनुष्य इन्हींकी संतान हैं—

'तस्य वा इयं प्रजा यन्मनुष्याः'

(तै० सं० ६। ५। ६। ९)

अदितिके पुत्ररूपमें—सनातन विधानके अनुसार ब्रह्माने देवताओंको यज्ञ-भागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया था, किंतु आगे चलकर इनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों एवं राक्षसोंने संगठित होकर देवताओंके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। अन्तमें देवताओंको पराजित कर इनके पदों और अधिकारोंको छीन लिया। देवताओंकी माता अदिति अपने पुत्रोंकी दुर्गति देखकर बहुत उद्विग्न हो गयीं। त्राण पानेके लिये वे भगवान् सूर्यकी उपासना करने लगीं। निराहार रहती थीं। उनकी तपस्यासे भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने वरदान दिया कि 'अपने सहस्र अंशोंके साथ मैं तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा।' भगवान्ने शीघ्र ही अपने वरदानको फलित किया। अपनी क्रूर दृष्टिसे देखकर शत्रुओंका विध्वंस कर वेदमार्गको फिरसे स्थापित कर दिया। देवताओंने अपने-अपने पद और अधिकार प्राप्त कर लिये। भगवान् सूर्य अदितिके पुत्र हुए, इसलिये आदित्य कहे जाने लगे—**'अदितेरपत्यं पुमान् आदित्यः।'** इसी अर्थमें, वेदमें आदित्य (ऋ० १। ५०। १३) तथा आदितेय (ऋ०१०। ८८। ११) शब्द भी आते हैं।

वर्ण—सूर्य देवताका वर्ण लाल है।

वाहन—इनका वाहन रथ है। जिस प्रकार भगवान् सूर्य वेदस्वरूप हैं, उसी प्रकार उनका रथ भी वेदस्वरूप है। इनके रथमें एक ही चक्र है, जो संवत्सर कहलाता है। इस रथमें मासस्वरूप बारह अरे हैं। ऋतु-रूप छः नेमियाँ हैं और तीन चौमासे-रूप तीन नाभियाँ हैं (श्रीमद्भा० ५। २१। १३)। इस रथमें अरुण नामक सारथिने गायत्री आदि छन्दोंके सात घोड़े जोत रखे हैं (भा० ५। २१। १५, ऋक्०१। ११५। ३)। सारथिका मुख भगवान् सूर्यकी ओर रहता है। इनके साथ साठ हजार बालखिल्य स्वस्तिवाचन और स्तुति करते हुए चलते हैं। ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता आत्मरूप सूर्य नारायणकी उपासना करते हुए चलते हैं।

परिवार—भगवान् सूर्यकी दो पत्नियाँ हैं—संज्ञा और निक्षुभा। संज्ञाके सुरेणु, राज्ञी, द्यौ, त्वाष्ट्री एवं प्रभा आदि अनेक नाम हैं तथा छायाका ही दूसरा नाम निक्षुभा है। संज्ञा विश्वकर्मा त्वष्टाकी पुत्री हैं। भगवान् सूर्यको संज्ञासे वैवस्वतमनु, यम, यमुना, अश्विनीकुमारद्वय और रैवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि और सावर्णिमनु—ये दस संतानें प्राप्त हुईं।

शक्तियाँ—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी,

प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, घनान्तःस्था और अमृता—ये भगवान् सूर्यकी बारह शक्तियाँ हैं (अग्निपु० ५१।८-९)।

आयुध—चक्र, शक्ति, पाश, अंकुश सूर्य देवताके प्रधान आयुध हैं (श्रीतत्त्वनिधि)।

सूर्यके अधिदेवता शिव (ईश्वर) हैं और प्रत्यधिदेवता अग्नि हैं। सूर्य देवताका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भः समद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः॥

(मत्स्यपु० ९४।१)

'सूर्यदेवकी दो भुजाएँ हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुड़े रथपर आरूढ़ रहते हैं।'

चन्द्र देवता

चन्द्रदेव महर्षि अत्रिके पुत्र हैं। चन्द्र देवताको सर्वमय कहा गया है, क्योंकि ये सोलह कलाओंसे युक्त हैं तथा मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान् हैं। चन्द्र देवता ही सभी देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्ष आदि प्राणियोंके प्राणका आप्यायन करते हैं (श्रीमद्भा० ५।२२।१०)।

ब्रह्माने चन्द्र देवताको बीज, ओषधि, जल तथा ब्राह्मणोंका राजा बना दिया। प्रजापति दक्षने अश्विनी, भरणी आदि नामवाली सत्ताईस कन्याएँ चन्द्र देवताको ब्याह दीं। ये सत्ताईस नक्षत्रके रूपमें जानी जाती हैं (हरिवंश हरि० पर्व २५।४—२२)। ये सभी पत्नियाँ शील और सौन्दर्यसे सम्पन्न तथा पतिव्रत-धर्मधारिणी हैं। इस तरह इन नक्षत्रोंके साथ चन्द्र देवता परिक्रमा करते हुए सब प्राणियोंके पोषणके साथ-साथ पर्व, संधियों एवं विभिन्न मासोंका विभाग किया करते हैं (महाभा०, वन० १६३।३२)।

महाभारतमें लिखा है कि पूर्णिमाको चन्द्रोदयके समय ताँबेके बर्तनमें मधुमिश्रित पकवानको यदि चन्द्र देवताको अर्पित किया जाय तो इससे इनकी तृप्ति तो होती ही है, साथ ही आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और वायुदेव भी प्रसन्न और तृप्त होते हैं।

वर्ण—चन्द्र देवताका वर्ण श्वेत है।

वाहन—इनका वाहन रथ है। इस रथमें तीन चक्र होते हैं। रथमें दस घोड़े जुते रहते हैं। सब घोड़े दिव्य, अनुपम और मनके समान वेगवान् होते हैं। इनके नेत्र और कान भी श्वेत होते हैं। ये स्वयं शङ्खके समान उज्ज्वल हैं (मत्स्यपु० १२६।४७—५०)।

परिवार—चन्द्र देवताकी नक्षत्र-नामवाली अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईस पत्नियाँ हैं। इनके पुत्रका नाम बुध है, जो तारासे उत्पन्न हुए हैं। चन्द्रमाके अधिदेवता अप् और प्रत्यधिदेवता उमा हैं।

इनकी प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकार है—

श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी॥

(मत्स्यपु० ९४।२)

'चन्द्र देवता गौरवर्ण हैं। इनके वस्त्र, अश्व और रथ तीनों श्वेत हैं। इनके एक हाथमें गदा और दूसरे हाथमें वरदमुद्रा है।'

मंगल देवता

उत्पत्ति-कथा—वाराहकल्पकी बात है। भगवान् वाराहने रसातलसे पृथ्वीका उद्धार कर उसको अपनी कक्षामें स्थापित कर दिया था। पृथ्वीदेवीकी उद्विग्नता मिट गयी थी और वे स्वस्थ हो गयी थीं। उनकी इच्छा भगवान्को पतिके रूपमें पानेकी हो गयी। उस समय वाराह भगवान्का तेज करोड़ों सूर्यके सदृश असह्य था। पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीकी कामनाकी पूर्तिके लिये भगवान् वाराह अपने मनोरम रूपमें आ गये और पृथ्वीदेवीके साथ वे दिव्य वर्षतक एकान्तमें रहे। इसके बाद पुनः वाराह-रूपमें आकर पृथ्वीदेवीका पूजन किया (ब्रह्मवै० पु० २।८।२९—३३)। उस समय पृथ्वीदेवी गर्भवती हो चुकी थीं, उन्होंने मंगल नामक ग्रहका जन्म दिया (ब्रह्मवै० पु० २।८।४३)। विभिन्न कल्पोंमें मंगल ग्रहकी उत्पत्तिकी विभिन्न कथाएँ हैं। आजकल पूजाके प्रयोगमें इन्हें भरद्वाज गोत्र कहकर सम्बोधित किया जाता है। यह कथा गणेशपुराणमें आती है।

मंगल ग्रहके पूजनकी बड़ी महिमा है। भौमव्रतमें ताम्रपत्रपर भौम-यन्त्र लिखकर मंगलकी सुवर्णमय प्रतिमा प्रतिष्ठित कर पूजा करनेका विधान है (भविष्यपुराण)। जिस

मंगलवारको स्वाति नक्षत्र मिले, उसमें भौमवार-व्रत करनेका विधान है। मंगल देवताके नामोंका पाठ करनेसे ऋणसे मुक्ति मिलती है (पद्मपुराण)। अंगारक-व्रतकी विधि मत्स्यपुराणके बहत्तरवें अध्यायमें लिखी गयी है। मंगल अशुभ ग्रह माने जाते हैं। यदि ये वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षमें भोगते हुए बारह राशियोंको पार करते हैं (श्रीमद्भा० ५। २२। १४)।

वर्ण—मंगल ग्रहका वर्ण लाल होता है और इनके रोम भी लाल हैं (मत्स्यपु० ९४। ३)।

वाहन—मंगल देवताका रथ सुवर्ण-निर्मित है। लाल रंगवाले घोड़े इस रथमें जुते रहते हैं। रथपर अग्निसे उत्पन्न ध्वज लहराता रहता है। इस रथपर बैठकर मंगल देवता कभी सीधी, कभी वक्रगतिसे विचरण करते हैं (मत्स्यपु० १२७। ४-५)। कहीं-कहीं इनका वाहन मेष (भेड़ा) बताया गया है (श्रीतत्त्वनिधि)।

मंगल देवताका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः।
चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः॥

(मत्स्यपु० ९४। ३)

'भूमिपुत्र मंगल देवता चतुर्भुज हैं। इनके शरीरके रोयें लाल हैं। इनके हाथोंमें क्रमसे शक्ति, त्रिशूल, गदा और वरदमुद्रा है। उन्होंने लाल मालाएँ और लाल वस्त्र धारण कर रखे हैं।'

बुध देवता

बुध देवताके पिताका नाम चन्द्रमा और माताका नाम तारा है (अथर्ववेद ५। ७। २)। ब्रह्माने इनका नाम बुध इसलिये रखा कि इनकी बुद्धि बहुत ही गम्भीर है (श्रीमद्भा० ९। १४। १४)। ये सभी शास्त्रोंके पारङ्गत, हस्ति-शास्त्रके प्रवर्तक, सूर्यके समान तेजस्वी और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हैं (मत्स्यपु० २४। १-२)। ब्रह्माने ब्रह्मर्षियोंके साथ बुध देवताको भूतलके राज्यपर अभिषिक्त किया और ग्रह भी बना दिया (मत्स्यपु० २४। १०)।

बुधका विवाह मनुपुत्री इलाके साथ हुआ (महाभा०, अनु० १४७। २६-२७)। इलासे पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई। इस तरह चन्द्रवंशका विस्तार होता चला गया (श्रीमद्भा० ९। ३४-३५)।

बुध ग्रह प्रायः मंगल ही करते हैं, किंतु जब ये सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करते हैं, तब आँधी-पानी और सूखेका भय प्राप्त होता है (श्रीमद्भा० ५। २२। १३)।

वर्ण—बुधका वर्ण कनेरके फूलकी तरह पीला है (मत्स्यपु० ९४। ४)।

वाहन—बुध देवताका रथ श्वेत और प्रकाशसे दीप्त है। इसमें वायुके समान वेगवाले पीले रंगके दस घोड़े जुते रहते हैं। उनके नाम—श्वेत, पिशङ्ग, सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृष और पृष्णि हैं (मत्स्यपु० १२७। १-३)। सिंह भी इनकी सवारी है (मत्स्यपु० ९४। ४)।

बुधके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवता विष्णु हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः।
खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥

(मत्स्यपु० ९४। ४)

'बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरकान्ति कनेरके पुष्प-जैसी है। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरद मुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं।'

बृहस्पति देवता

अङ्गिरापुत्र बृहस्पति देवताओंके गुरु हैं, पुरोहित हैं (तै० सं० ४६। ४। १०। १; महाभा०, आदि० ७६। ६)। ये अपने प्रकृष्ट ज्ञानसे देवताओंको उनका यज्ञ-भाग प्राप्त करा देते थे। असुर यज्ञमें विघ्न डालकर देवताओंको भूखों मारना चाहते थे। ऐसी परिस्थितिमें देवगुरु रक्षोघ्न मन्त्रोंका प्रयोग कर दैत्योंको दूर भगा देते थे। इस तरह देवताओंको यज्ञ-भाग मिल जाया करता था (ऋक्० २। २३। २)।

इन्हें देवताओंके आचार्यत्व और ग्रहत्व कैसे प्राप्त हुए? इसकी कथा स्कन्दपुराणमें आयी है। बृहस्पति अपने अभ्युदयके लिये प्रभासतीर्थ जाकर घोर तप करने लगे। इनकी पराभक्तिसे भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये। उन्होंने वरदान दिया कि तुम देवताओंके पूज्य गुरु होगे और ग्रहत्व भी प्राप्त करोगे (स्कन्दपु० ७। ४७। २—४)। बृहस्पति एक-एक राशिपर एक-एक वर्ष रहते हैं। वक्रगति होनेपर

इसमें अन्तर आ जाता है (श्रीमद्भा० ५। २२। १५)।

बृहस्पति स्वयं सुन्दर हैं और इनका आवास भी बहुत सुन्दर है (ऋक्० ७। ९७। ७)। ये विश्वके लिये वरणीय हैं (ऋक्० ७। ९८। ४), वाञ्छित फल प्रदानकर सम्पत्ति और बुद्धिसे भी सम्पन्न कर देते हैं (ऋक्० ७। १०। ९७)। ये आराधकोंको सन्मार्गपर चलाते हैं और उनकी रक्षा भी करते हैं (ऋक्०२। २३। ४)। शरणागतवत्सलता इनमें कूट-कूटकर भरी हुई है।

वर्ण—बृहस्पति देवताका वर्ण पीत है (मत्स्यपु० ९४। ५)।

वाहन—देवगुरु बृहस्पतिका वाहन रथ है, यह सुखकर और सूर्यके समान भास्वर है (ऋक्० ७। ९७। ६)। इनका रथ सोनेका है। इसमें वायुके समान वेगवाले पीले रंगके आठ घोड़े जुते रहते हैं।

आयुध—गुरु बृहस्पतिका आयुध सुवर्णनिर्मित दण्ड है (ऋक्० ७। ९७। ७)।

परिवार—देवगुरु बृहस्पतिकी एक पत्नीका नाम शुभा और दूसरीका तारा है। शुभासे सात कन्याएँ उत्पन्न हुईं—भानुमती, राका, अर्चिष्मती, महामती, महिष्मती, सिनीवाली और हविष्मती। तारासे सात पुत्र तथा एक कन्या भी उत्पन्न हुई, जिसका नाम स्वाहा है। ममतासे भारद्वाज नामका एक पुत्र है। इनके एक पुत्रका नाम कच भी है। देवगुरु बृहस्पतिके दो भाई हैं। बड़े भाईका नाम उतथ्य और छोटे भाईका नाम संवर्त है (महाभा०, आदि० ६६। ५)। बृहस्पतिकी एक बहन हैं, जिनका नाम वरस्त्री है। ये ब्रह्मवादनी और योगपरायणा हैं। इनके पतिका नाम प्रभासवसु है।

बृहस्पतिके अधिदेवता इन्द्र और प्रत्यधिदेवता ब्रह्मा हैं। इनकी प्रतिमा इस प्रकार निर्दिष्ट है—

देवदैत्यगुरू तद्वत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू॥

(मत्स्यपु० ९५। ५)

'देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी बनानी चाहिये। उनके चार हाथोंमें दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरद मुद्रा सुशोभित रहती है।'

आचार्य शुक्र

शुक्राचार्य दानवोंके पुरोहित हैं (तै० सं० २। ५। ८। ५, तां० ब्रा० ७। ५। २०)। ये योगके आचार्य हैं। अपने शिष्य दानवोंपर इनकी कृपा बरसती रहती है। मृतसंजीवनी विद्याके बलपर ये मरे हुए दानवोंको जिला देते हैं (महाभा०, आदि० ७६। ८)। असुरोंके कल्याणके लिये इन्होंने एक ऐसे कठोर व्रतका अनुष्ठान किया, जिसे आजतक कोई कर नहीं सका था। इस व्रतसे इन्होंने देवाधिदेव शङ्करको प्रसन्न कर लिया। औढरदानीने वरदान दिया कि तुम देवताओंको पराजित कर दोगे और तुम्हें कोई मार नहीं सकेगा (मत्स्यपु०, अ० ४७)। अन्य वरदान देकर भगवान्‌ने इन्हें धनोंका अध्यक्ष और प्रजापति भी बना दिया।

इसी वरदानके आधारपर शुक्राचार्य इस लोक और परलोकमें जितनी सम्पत्तियाँ हैं, सबके स्वामी बन गये (महाभा०, आदि० ७८। ३९)। सम्पत्ति ही नहीं, शुक्राचार्य तो समग्र ओषधियों, मन्त्रों और रसोंके भी स्वामी हैं (मत्स्यपु० ४७। ६४)। इन्होंने अपनी समस्त सम्पत्तियोंको अपने शिष्य असुरोंको प्रदान कर दिया था (मत्स्यपु० ६७। ६५)। दैत्यगुरु शुक्राचार्यका सामर्थ्य अद्भुत है।

ब्रह्माकी प्रेरणासे शुक्राचार्य ग्रह बनकर तीनों लोकोंके प्राणका परित्राण करने लगे। कभी वृष्टि, कभी अवृष्टि, कभी भय और कभी अभय उत्पन्न कर ये प्राणियोंके योग-क्षेमका कार्य पूरा करते हैं (महाभा०, आदि० ६६। ४२—४४)। ग्रहके रूपमें ये ब्रह्माकी सभामें भी उपस्थित होते हैं (महाभा०, सभा० ११। २९)। लोकोंके लिये ये अनुकूल ग्रह हैं। ये वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देते हैं (श्रीमद्भा० ५। २२। १२)। इनके अधिदेवता इन्द्राणी और प्रत्यधिदेवता इन्द्र हैं।

वर्ण—शुक्राचार्यका वर्ण श्वेत है (मत्स्यपु० ९४। ५)।

वाहन—इनके वाहन रथमें अग्निके समान वर्णवाले आठ घोड़े जुते रहते हैं। रथपर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं (मत्स्यपु० १२७। ७)।

आयुध—दण्ड इनका आयुध है (मत्स्यपु० ९४। ५)।

परिवार—शुक्राचार्यकी दो पत्नियाँ हैं। एकका नाम
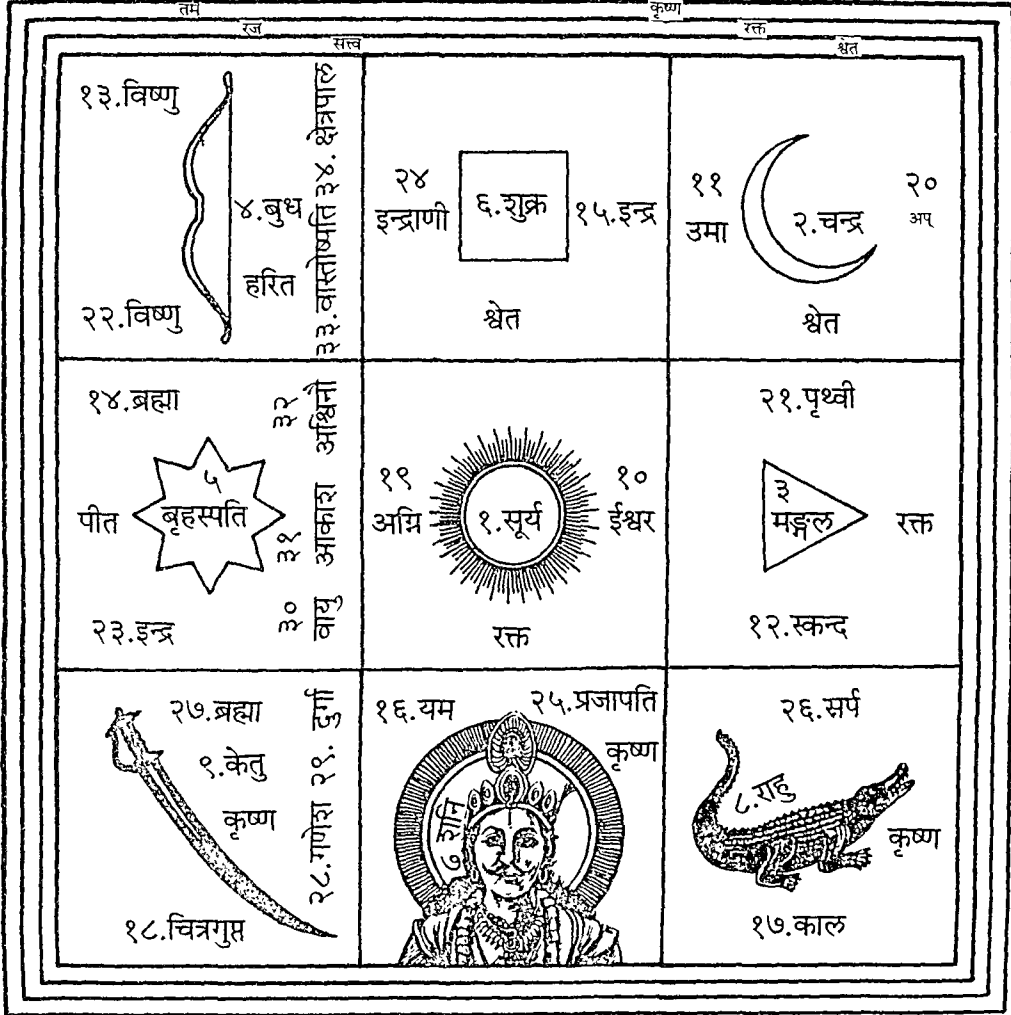
'गो' है जो पितरोंकी कन्या है, दूसरी पत्नीका नाम जयन्ती है, जो देवराज इन्द्रकी पुत्री है। गोसे इनके चार पुत्र हुए—त्वष्टा, वरुत्री, शंड और अमर्क। जयन्तीसे देवयानीका जन्म हुआ।

शनि देवता

शनि भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। छाया (सवर्णा) इनकी माता हैं (श्रीमद्भा० ६।४०।४१)। ये क्रूर ग्रह माने जाते हैं। इनकी दृष्टिमें जो क्रूरता है, वह इनकी पत्नीके शापके कारण है। यह कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस प्रकार आयी है—

बचपनसे ही शनि देवता भगवान् कृष्णके अनुरागमें निमग्न रहते थे। वयस्क होनेपर इनके पिताने चित्ररथकी कन्यासे इनका विवाह कर दिया। पत्नी सती-साध्वी और तेजस्विनी थी। एक रात ऋतु-स्नानकर पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे वह पतिके पास पहुँची। पति ध्यानमें बैठे थे। बाह्य ज्ञान न था। पत्नी प्रतीक्षा कर थक गयी। ऋतुकाल निष्फल हो चुका था। इस उपेक्षासे क्रुद्ध होकर सतीने शाप दे दिया कि जिसे तुम देख लोगे वह नष्ट हो जायगा। ध्यान टूटनेपर शनि देवताने पत्नीको मनाया। पत्नीको स्वयं पश्चात्ताप हो रहा था, किंतु शापके प्रतीकारकी शक्ति उसमें न थी। तबसे शनि देवता सिर नीचा करके रहने लगे, क्योंकि वे किसीका अहित नहीं चाहते थे। उनकी दृष्टि पड़ते कोई भी नष्ट हो सकता था।

शनि ग्रह यदि कहीं रोहिणी-शकट-भेदन कर दे तो

पृथ्वीपर बारह वर्ष घोर दुर्भिक्ष पड़ जाय और प्राणियोंका बचना ही कठिन हो जाय। ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे शनि ग्रह जब रोहिणीका भेदन कर बढ़ जाता है, तब यह योग आता है। यह योग महाराज दशरथके समयमें आनेवाला था। इस योगके आनेपर पानी और अन्नके बिना उनकी प्रजा तड़प-तड़पकर मर जायगी, यह दारुण दृश्य महाराजके सामने आ गया। प्रजाको इस कष्टसे बचानेके लिये रथपर बैठकर महाराज दशरथ नक्षत्रमण्डलमें जा पहुँचे। पहले तो महाराजने शनि देवताको प्रतिदिनकी भाँति प्रणाम किया और बादमें क्षत्रिय-धर्मके अनुसार उनपर संहारास्त्रका संधान किया। शनि देवता महाराजकी राजोचित कर्तव्य-निष्ठासे प्रसन्न हो गये और वरदान माँगनेको कहा। महाराजने वरमें माँगा कि जबतक सूर्य, नक्षत्र आदि विद्यमान हैं, आप कभी शकट-भेदन न करें। शनि देवताने यह वरदान दे दिया।

शनिदेवकी कृपा देखकर महाराजको रोमाञ्च हो आया। उन्होंने रथमें धनुष डाल दिया और उनकी पूजा की। उसके बाद सरस्वती और गणेशका ध्यानकर स्तोत्रकी रचना की। इस स्तुतिसे शनि देवता संतुष्ट हो गये तथा उन्होंने एक वरदान और माँगनेको कहा। महाराजने दूसरे वरदानमें माँगा—'भगवन्! देवता, मानव, पशु-पक्षी किसीको आप कष्ट न दें।' शनि देवताने एक शर्तके साथ यह वरदान भी दे दिया। शर्त यह थी कि यदि किसीकी कुण्डली या गोचरमें मृत्यु-स्थान, जन्मस्थान अथवा चतुर्थस्थानमें मैं रहूँ, तब मैं उसे मृत्युका कष्ट दे सकता हूँ, किंतु यदि वह मेरी प्रतिमाकी पूजा कर तुम्हारे द्वारा किये गये स्तोत्रका[1] पाठ करेगा तो उसे मैं कभी पीड़ा नहीं दूँगा। अपितु उसकी रक्षा करूँगा।

शनिके अधिदेवता प्रजापति और प्रत्यधिदेवता यम हैं।

शनि ग्रह एक-एक राशिमें तीस-तीस महीने रहते हैं और तीस ही वर्षमें सब राशियोंको पार करते हैं (श्रीमद्भा० ५। २२। १४)।

वर्ण—शनि देवताका वर्ण कृष्ण है (मत्स्यपु० ९४। ६)।

वाहन—इनका वाहन गीध तथा रथ लोहेका बना हुआ है (मत्स्यपु० १२७। ८)।

आयुध—धनुष-बाण और त्रिशूल इनके आयुध हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः।
बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा॥

(मत्स्यपु० ९४। ६)

'शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष, बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं।'

राहु

राहुकी माताका नाम सिंहिका है, जो दैत्यराज

१-शनि-स्तोत्र

दशरथ उवाच

नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च। नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते॥
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णेऽथ वै नमः। नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने॥
नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च॥
अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते। नमो मन्दगते तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः॥
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः। एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबलः॥

(पद्मपु० उत्त० ३४। २७-३६)

हिरण्यकशिपुकी पुत्री थी। माताके नामसे राहुको सैंहिकेय कहा जाता है। राहुके सौ और भाई थे, इनमें सबसे बड़ा राहु ही था। अवस्थामें ही नहीं बलमें भी राहु सबसे बढ़ा-चढ़ा था। आगे चलकर यह ग्रह बन गया (श्रीमद्भा० ६।६।३७)।

समुद्र-मन्थनसे जब अमृतोपलब्धिके बाद राहु छलपूर्वक अमृत-पानके लिये देवताओंकी पंक्तिमें जा बैठा और चन्द्रमा-सूर्यने भगवान् विष्णुको उसके कपटभावका रहस्य बतला दिया, तब भगवान्ने चक्रसे राहुका सिर धड़से अलग कर दिया, किंतु अमृत पीनेसे वह अमर हो गया था (श्रीमद्भा० ८।९।२४—२७)। इसीसे उसको ब्रह्माने ग्रह बना दिया—**'अजो ग्रहमचीक्लृपत्'** (श्रीमद्भा० ८।९।२६)।

राहु ग्रह मण्डलाकार होता है (महा०, भीष्म० १२।४०)। ग्रहोंके साथ राहु भी ब्रह्माकी सभामें बैठता है (महा०, सभा०१२।२९)। पृथ्वीकी अपनी छाया मण्डलाकार होती है। राहु यहीं भ्रमण करता है (मत्स्यपु० २८।६१)। राहु ग्रह छायाका अधिष्ठातृ-देवता है। ऋग्वेदमें बताया गया है कि असूर्या (सिंहिका)का पुत्र राहु जब सूर्य और चन्द्रको तमसे आच्छन्न कर लेता है, तब इतना अँधेरा छा जाता है कि लोग अपने स्थानको ही नहीं पहचान पाते (ऋक्० ५।४०।५)। ग्रह बननेके बाद भी राहु वैर-भावसे पूर्णिमाको चन्द्रमापर और अमावास्याको सूर्यपर आक्रमण करता है। इसे ग्रहण या राहूपराग कहते हैं। उपरागके समय अव्रतत्व (अपवित्रता) आ जाता है, जिसका प्रतीकार स्नानादिसे किया जाता है (ऋक्० ५।४०।६—९)।

वर्ण—राहु ग्रहका वर्ण नीलमेघके समान है और इसके सिंहासनका रंग भी नीला है।

वाहन—राहुका रथ अन्धकाररूप है। इसे कवच आदिसे सजाये हुए वायुके समान वेगवाले काले आठ घोड़े खींचते हैं (मत्स्यपु० १२७)।

राहुका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः।
नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते॥

(मत्स्यपु० ९४।७)

'राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती है तथा वे नीलरंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं।'

केतु

चक्रसे कटनेपर सिर राहु कहलाया और धड़ केतु। केतु राहुका ही कबन्ध है। केतु बहुतसे हैं (मत्स्यपु० ९४।८)। इनमें धूमकेतु प्रधान है (वायु० १५३।१०)।

वर्ण—केतुका वर्ण धूम्र, आयुध गदा तथा वाहन गीध है।

केतुके ध्यानका स्वरूप निम्नलिखित है—

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः॥

(मत्स्यपु० ९४।८)

'सभी केतु द्विबाहु हैं। उनके शरीर आदि धूमवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन हैं।'

नवग्रहोंके अधिदेवता (अधिरक्षक देवता)

ईश्वर (सूर्यके अधिदेवता)

सूर्यके अधिदेवता ईश्वर हैं। भगवान् शिवका ही एक नाम ईश्वर है। इनका वर्णन पञ्चदेवके शिव-प्रकरणमें देखना चाहिये।

उमा (सोमके अधिदेवता)

उमा पराशक्ति एवं परब्रह्म हैं। परब्रह्म रुचिके भेदसे कभी शक्तिके रूपमें उपासित होता है और कभी शक्तिमान्के रूपमें। शक्ति और शक्तिमान्में कोई पारमार्थिक भेद नहीं होता। जल और तरङ्गकी तरह दोनोंमें आरोपित भेद होता है। पराशक्तिने स्वयं कहा है—'जिज्ञासुओ! मैं तुम्हें ब्रह्मतत्त्वका उपदेश देती हूँ' और वह ब्रह्मतत्त्व मैं ही हूँ? (ऋक्० १०।१२५।४ और सायणभाष्य)। इसी तथ्यको पुराणने दुहराया है—

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।

(देवीभा० ११।४।४९)

माता उमा सत्, चित् और आनन्दरूप हैं (बह्वृच् उप०), आनन्द रसरूप होता है—**'चिदेकरसरूपिणी'** (ललितोपाख्यान) और आनन्दका उल्लसन प्रेममें होता है।

अतः माता उमा प्रेमरूपा हैं—

यस्मात् प्रेमानन्दान्नृत्यानन्दात्मकोऽयं लोकः प्रकटितो भवति ।

(सामरहस्योपनिषद्)

जिस प्रकार शक्त्याश्रय लोकहितके लिये अवतार ग्रहण करता है, उसी प्रकार शक्ति भी सती, पार्वती आदिके रूपमें अवतार लेती हैं। यह ध्यान देना चाहिये कि अवतारी-रूपमें जो इनका सत्, चित्, आनन्दरूप होता है, वही रूप अवतार-विग्रहमें भी होता है। अस्थि-मांस-चर्म—किसी प्राकृत पदार्थका एक कण भी अवतार-शरीरमें नहीं होता। परब्रह्मका यह मातृस्वरूप असीम ममतामय और असीम करुणामय होता है।

इनका ध्यान इस प्रकार है—

अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम्।
उमा बिभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरपि ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'माता उमा अपने हाथोंमें रुद्राक्षमाला, कमल, दर्पण और कमण्डलु धारण करती हैं तथा समस्त देवताओंद्वारा पूजित होती हैं।'

स्कन्द देवता (भौमके अधिदेवता)

अग्निदेवता भगवान् शङ्करकी आठ मूर्तियोंमें एक मूर्ति हैं और स्वाहादेवी उमाका ही रूप हैं। इन्हींसे स्कन्द स्वामीका जन्म हुआ (महा०, वन० ३१।९,२९।३०)।

स्कन्दका जन्म चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको हुआ और तृतीयाको शिशु-रूपसे स्पष्ट दीखने लगे। चतुर्थीको वे इतने बलवान् हो गये कि भगवान् शङ्करके धनुषको उन्होंने उठा लिया और घोर गर्जना की। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। इसे सुनकर चित्र और ऐरावत नामके दो हाथी दौड़े हुए आये। कुमारने खिलौनेकी भाँति उन्हें उठा लिया। इसके बाद उन्होंने जोरसे शंख फूँका और बाणसे क्रौञ्च पर्वतको छेद डाला। सब पर्वत स्कन्दकी शरणमें आये और उन्होंने इनकी पूजा की। तभीसे शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको स्कन्दकी पूजा होने लगी (महा०, वनपर्व २२६)। माता स्वाहाने आकर स्कन्दको अपना परिचय दिया। कुमारने भी माताका उचित सम्मान किया। इसी बीच महर्षि विश्वामित्र आये और इन्होंने स्कन्दका जातकर्म-संस्कार किया। स्तुति भी की। पिता अग्निदेव पुत्रकी देख-भाल करने लगे (महा०, वन० २२६)।

देवराज इन्द्रने कुमारको देवताओंके सेनापति-पदपर अभिषिक्त किया। अभिषेकके अवसरपर भगवान् शङ्करके साथ माता पार्वती पधारीं। भगवान् शङ्करने पुत्रको विश्वकर्माके द्वारा निर्मित सोनेकी दिव्य माला तथा अग्निदेवताने कुक्कुट चिह्नसे अङ्कित ध्वज प्रदान किया। कुमारके शरीरमें जन्मजात एक ऐसा कवच था, जो युद्धके समय प्रकट होता था। शक्ति, धर्म, बल, तेज, शान्ति, उन्नति, ब्राह्मणभक्ति, असम्मोह, शत्रुओंका विनाश और भक्तोंकी तथा विश्वकी रक्षा आदि गुण स्कन्दस्वामीके जन्मके साथ ही उत्पन्न हुए थे (महा०, वन० २२९।२५—२७)।

अभिषेकके पश्चात् देवराज इन्द्रने देवसेना (षष्ठीदेवी) का विवाह स्कन्दस्वामीके साथ कर दिया। छठे दिन विवाह हुआ। अतः शुक्ल पक्षकी षष्ठी महातिथि मानी जाती है (महा०, वन० २२९।५२)। आगे चलकर कुमार कार्तिकेयने एक ही दिनमें तीनों लोकोंको जीत लिया। तारकासुरको यह वरदान मिला था कि सात दिनके शिशुके अतिरिक्त उसे कोई और नहीं मार सकता (पद्मपु०, सृष्टि० ४४।६७)। स्वामिकार्तिकेयने ही उसका उद्धार किया।

स्वाहाने छः ऋषि-पत्नियोंका रूप धारणकर इन्हें पाया था, इसलिये इन्हें 'षाण्मातुर' कहते हैं(महा०,वन० २२५)। इन्हीं छः ऋषि-पत्नियोंको कृत्तिका नक्षत्र बनाकर अभिजित् नक्षत्रके स्थानपर इन्होंने स्थापित किया। इसलिये इन्हें कार्तिकेय कहते हैं (महा०, वन० २२१)। स्कन्दकुमारने छहों माताओंकी प्रसन्नताके लिये छः मुख बना लिये थे, अतः ये षण्मुख भी कहलाते हैं (महा०, वन० २२५।१८)।

इनका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है—

कुमारः षण्मुखः कार्यः शिखिखण्डविभूषणः ।
रक्ताम्बरधरो देवो मयूरवरवाहनः ॥
कुक्कुटश्च तथा घण्टा तस्य दक्षिणहस्तयोः ।
पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'कुमार कार्तिकेयकी प्रतिमा छः मुखवाली, सिर मोर-पंखयुक्त लाल वस्त्रसे सुशोभित तथा मयूर वाहनपर आरूढ बनानी चाहिये। उनके दाहिने हाथोंमें मुर्गा तथा घण्टा और बायें

हाथोंमें वैजयन्ती पताका एवं शक्ति प्रदर्शित करनी चाहिये।'

विष्णु देवता (बुधके अधिदेवता)

प्रत्येक ब्रह्माण्डके संचालक तीन देवता होते हैं, उनमें एक विष्णु हैं। परब्रह्म परमात्मा त्रिदेवके रूपमें अवतीर्ण होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मणने सब देवताओंमें विष्णुको श्रेष्ठ माना है ब्रा० १।१)। इसी बातको दुहराते हुए महाभारतमें है—'वासुदेव महान् हैं और सब देवताओंके देवता हैं, बढ़कर और कोई नहीं है' (भीष्मपर्व ६७।२)। विष्णु न् सर्वभूतमय हैं और यही सबके आत्मा हैं। सृष्टिके में इन्होंने ही वायु, तेज, जल आदि तत्त्वोंकी सृष्टि की। मनसे सरस्वतीदेवी और वेदोंकी रचना की है। सृष्टिके में इन्होंने समस्त लोकों, ऋषियों और देवताओंको उत्पन्न (महा०, भीष्म० ६७।३—७)।

इन्हीं विष्णुभगवान्की नाभिसे कमलरूप ब्रह्माण्ड उत्पन्न उससे ब्रह्मा और ब्रह्मासे सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुईं (महा०, ६७।१९)। भगवान् विष्णुका विशेष विवरण के श्रीविष्णु-प्रकरणमें देखना चाहिये।

ब्रह्मा (बृहस्पतिके अधिदेवता)

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव ब्रह्माने रुद्र, मनु, दक्ष, मरीचि आदिको प्रकट किया। से कश्यप हुए और कश्यपसे इन्द्रादि देवताओंकी हुई (महा०, आदि० १।३२-३३)। इसलिये ब्रह्मा पितामह माने गये हैं। ब्रह्माने मौलिक सृष्टिकी कामना सलिये इन्हें 'क' कहा गया है (ऋक्० १०।१२१ और भाष्य, ऐत० ब्रा० ३।२१)। ब्रह्माजीका विशेष वर्णन अङ्कके त्रिदेव-प्रकरणमें देखना चाहिये।

देवराज इन्द्र (शुक्रके अधिदेवता)

देवराज इन्द्रकी शक्तिकी कोई इयत्ता नहीं है। जब राहुके से सूर्य प्रकाशहीन हो जाते हैं, तब देवराज इन्द्र इस को पराजित कर सूर्यको प्रकाशयुक्त कर देते हैं (ऋक्० ।६)। सूर्यके न रहनेपर ये सूर्य बनकर तपते हैं और के न रहनेपर स्वयं चन्द्रमा बनकर जगत्को आप्यायित हैं। इसी प्रकार आवश्यकता पड़नेपर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु बनकर विश्वकी स्थिति बनाये रखते हैं (महा०, वन० २२९।८—११)। संतुष्ट हो जानेपर इन्द्र समस्त प्राणियोंको बल, तेज, संतान और सुख प्रदान करते तथा उपासकोंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं। ये दुराचारियोंको दण्ड देते और सदाचारियोंकी रक्षा करते हैं।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिसे इनका जन्म हुआ था (महा०, आदि० ६५।११—१६)। इन्द्रतीर्थमें इन्होंने सौ यज्ञ किये थे, इसलिये इनका नाम शतक्रतु हुआ (महा०, शल्य० ४९।२—४)। ये भूः, भुवः तथा स्वः— इन तीन लोकोंके अधिपति हैं, इनकी पत्नीका नाम शची है। इनके पुत्रका नाम जयन्त तथा पुत्रीका नाम जयन्ती है।

ब्रह्माण्डमें चार दिव्य सभाएँ विख्यात हैं। उनमें ब्रह्माकी सभाके बाद इन्द्रकी सभा ही अच्छी मानी जाती है। इसमें बुढ़ापा, शोक, थकान, आतङ्क और भयका प्रवेश नहीं होता। यह सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न है। यहाँ प्रवेश पाना बहुत पुण्यसे सम्भव है। राजाओंमें हरिश्चन्द्र-जैसे कुछ तपःपूत ही वहाँ प्रवेश पाते हैं (महा०, सभा० ७—११)।

इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

श्वेतहस्तिसमारूढं वज्राङ्कुशलसत्करम्।
सहस्रनेत्रं पीताभमिन्द्रं हृदि विभावये॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'इन्द्र देवता श्वेतवर्णके ऐरावत हाथीपर आसीन हैं, उनके हाथमें वज्र और अङ्कुश विराजमान है। इनके सहस्र नेत्र हैं और वर्ण स्वर्णकी भाँति पीत है, ऐसे देवराज इन्द्रका मैं चिन्तन करता हूँ।'

यम देवता (शनिके अधिदेवता)

यम देवता भगवान् विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र हैं (ऋक्० १०।१४।१)। पिताके नामपर इनके लिये बार-बार वैवस्वत शब्दका प्रयोग हुआ है। इनकी माताका नाम संज्ञा है।

यम देवता हमारे शुभ और अशुभ कर्मोंको जानते हैं। ये परिपूर्ण ज्ञानी हैं। इनमें कोई त्रुटि नहीं आ पाती (ऋक्० १०।१४।२)। इनके लोकमें निरन्तर अनश्वर ज्योति जगमगाती रहती है। यह लोक स्वयं अनश्वर है और इसमें कोई मरता नहीं (ऋक्० ९।११।७)।

यमकी बहन यमी ही यमुना है (हरिवंश०१।९।४)।
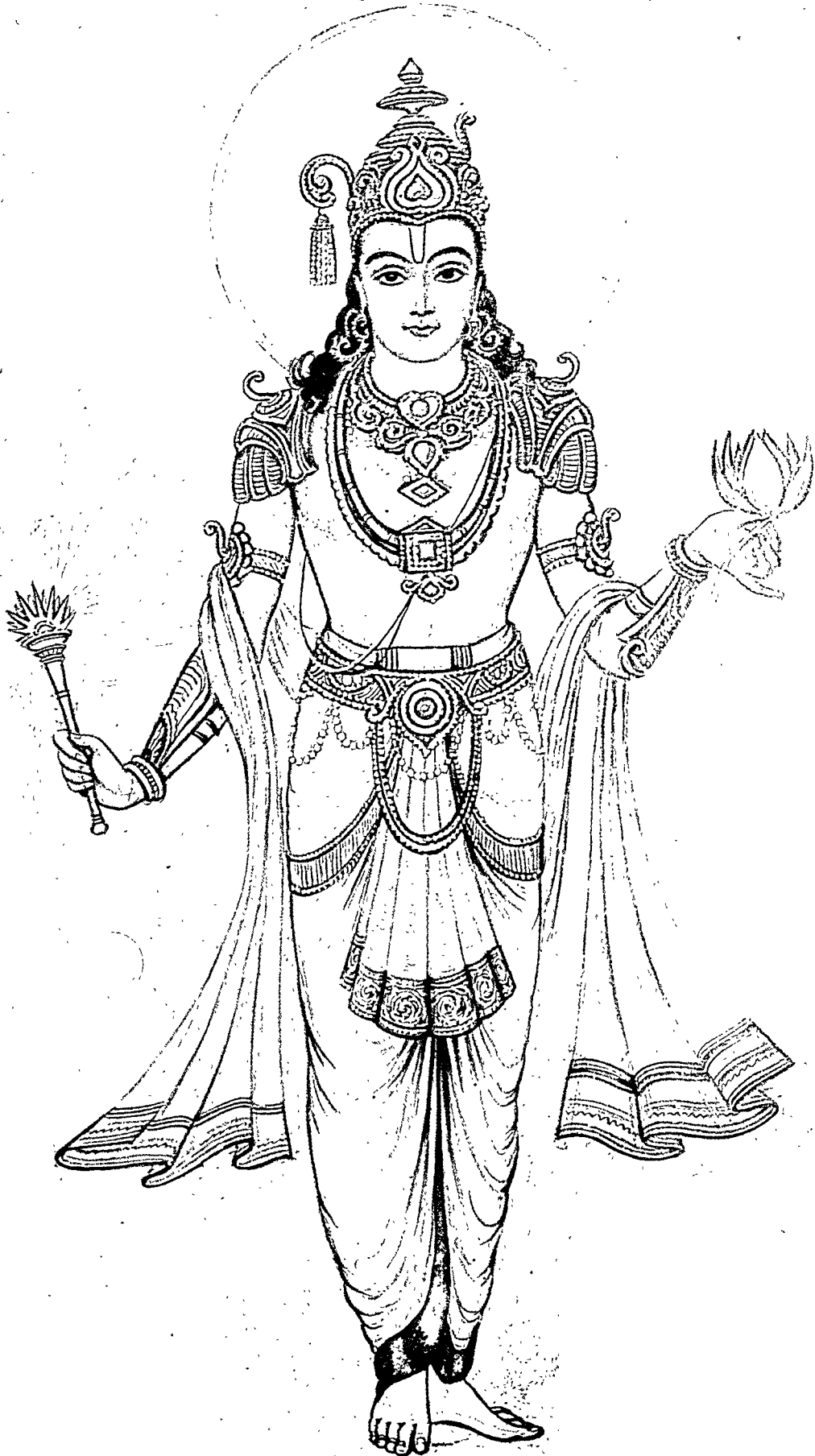
देवराज इन्द्र

यमी और तपती दोनों बहनें आज भी जनताका कल्याण कर रही हैं, यमी उत्तर भारतको और तपती दक्षिण भारतको तृप्त कर रही हैं (भविष्यपुराण)।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

रक्तदृक् पाशहस्तश्च यमो महिषवाहनः।
कालः करालवदनः नीलाङ्गश्चातिभीषणः॥

'यम देवताकी आँखें लाल हैं। इनके हाथमें पाश रहता है। शरीरका वर्ण नीला है और देखनेमें बड़ा उग्र है। भैंसा इनकी सवारी है। ये साक्षात् काल हैं, अतः बहुत भयानक दीखते हैं।'

काल (राहुके अधिदेवता)

हिरण्यगर्भकी उत्पत्तिके अवसरपर भगवान्ने अपने अंशरूप कालको भी प्रकट किया था। इसलिये काल देवता भगवान्के पुत्र कहे जाते हैं (वा० रा०, उ० १०४।२)। इनका काम समयपर सबका संहार करना है। अतः भगवान् रामने इन्हें 'सर्वसंहार' कहकर सम्बोधित किया (वा० रा०, उत्त० १०४।१९)।

कुछ लोग कालको पचीसवाँ तत्त्व मानते थे। इसपर श्रीमद्भागवतने निर्णय दिया है कि काल कोई पृथक् तत्त्व न होकर भगवान्‌की ही शक्ति है (३।२६।१५-१६)। शक्ति और शक्त्याश्रयमें भेद न होनेके कारण भगवान् ही काल कहे जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कालरूपसे अवतीर्ण हुए (श्रीमद्भा० १।१३।४८)।

जिस प्रकार नदियोंकी धारा-परम्परा अबाधित गतिसे आगे बढ़ती रहती है, उसी प्रकार भगवान् कालरूपसे कालकी धाराको प्रवाहित करते रहते हैं (श्रीमद्भा० ८।१७।२८)। ब्रह्मरूप होनेसे कालका ब्रह्मा आदि देवताओंपर शासन चलता है (श्रीमद्भा० ३।२९।४)। काल स्वयं अविनाशी है, किंतु दूसरोंका नाश करता है; स्वयं अनन्त है, किंतु दूसरोंका अन्त करता है। मृत्यु कालकी संहारशक्ति है।

विश्वमें जितने छोटे-बड़े पदार्थ हैं, सब कालके अधीन हैं। जितने भाव और अभाव पदार्थ हैं, सब कालके द्वारा सृष्ट होते हैं और कालके द्वारा ही विनष्ट होते हैं (महा०, अनु० १।५१—५६)। स्वरूपभूत होनेके कारण जैसे वेद भगवद्रूप हैं, वैसे कालको भी वेदरूप कहा गया है (श्रीमद्भा० ५।२२।२)।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

कालः करालवदनो नीलाङ्गश्चातिभीषणः।
पाशदण्डधरः कार्यः सर्पवृश्चिकरोमवान्॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'काल देवताका शरीर अति भयानक तथा नील है। साँप और बिच्छू इनके रोयें हैं। ये पाश और दण्डको धारण करते हैं।'

चित्रगुप्त (केतुके अधिदेवता)

सृष्टिकी प्रारम्भ-वेलामें पितामह ब्रह्मा ध्यान-मग्न थे। कुछ दिनोंके बाद उनके सम्पूर्ण शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके एक हाथमें दावात और दूसरे हाथमें लेखनी थी। ये ही दिव्य पुरुष चित्रगुप्त कहलाये।

पितामह ब्रह्माने चित्रगुप्त देवताको प्राणियोंमें सत्कर्म और असत्कर्मके लेखा-जोखा लिखनेका कार्य सौंपा। ये यमराज देवताके पास ही स्थित रहते हैं। यमराज मृत व्यक्तिके पाप-पुण्यका लेखा-जोखा इनसे पूछकर उस व्यक्तिके फलभोगका निर्णय करते हैं। वाहीक नामक एक दुर्वृत्त ब्राह्मण जब यमदूतोंके द्वारा यमराजके पास लाया गया, तब यमराजके पूछनेपर चित्रगुप्तने उस मृत व्यक्तिके गर्भाधानसे लेकर मृत्युतकका लेखा-जोखा सुनाया (स्कन्द०, काशी० २८।५०—५९)।

चित्रगुप्त देवताका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

अपीच्यवेषं स्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम्।
दक्षिणे लेखनीं चैव दधद् वामे च पत्रकम्॥
पिंगलश्मश्रुकेशाक्षं चित्रगुप्तं विभावयेत्॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'चित्रगुप्त देवताका वेष बहुत ही सुन्दर है, स्वरूप भी सुन्दर है। अतः देखनेमें ये बहुत प्रिय लगते हैं। इनके दाहिने हाथमें लेखनी और बायें हाथमें लेखा-जोखाका कागज है। उनके श्मश्रु, केश और नेत्र पीतवर्ण हैं।'

ग्रहोंके प्रत्यधिदेवता (प्रत्यधिरक्षक देवता)

नवग्रहोंके अग्नि, अब्देवी, पृथ्वी, विष्णु, शक्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प तथा ब्रह्मा क्रमशः ये नौ प्रत्यधिदेवता हैं। इनमेंसे बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा केतुके अधिदेवताओं—विष्णु, शक्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्माका वर्णन क्रमशः पञ्चदेव, ग्रहोंके अधिदेवता, षोडशमातृका तथा त्रिदेव-प्रकरणमें हुआ है। शेषका यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

अग्नि देवता (सूर्यके प्रत्यधिदेवता)

भगवान्‌के मुखसे अग्नि देवताकी उत्पत्ति हुई है (यजु० ३१। १२)। अग्नि देवता ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं (कठो० २। २। ९)। वे भिन्न-भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे स्थित रहते हैं। पार्थिव अग्निके रूपमें ये काष्ठके ईंधनसे, मध्यम अग्निके रूपमें जलके ईंधनसे और उत्तम अग्निके रूपमें जलाघात रूप (गैस) से उत्पन्न होते हैं। पार्थिव अग्निका जो ईंधन काष्ठ है, इससे विद्युत् अग्निका उपशम होता है और विद्युदग्निका ईंधन जो जल है, उससे पार्थिव अग्नि बुझती है (निरुक्त)। यह भेद होनेपर सब अग्नियाँ एक ही हैं। अग्निकी इस व्यापकता और जीवनके लिये अबाधित आवश्यकताको ध्यानमें रखकर **'अग्निः सर्वा देवताः'** (ऐत० ब्रा० २। ३) इस श्रुतिका उद्धरण देकर बताया गया है कि अग्नि ही सब देवता है। अग्नि देवता प्रत्येकके जीवनमें अनुस्यूत हैं। इनके बिना किसीका जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्नि देवतासे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ है (मनुस्मृति १। ३)। अग्निपुराण भी इनकी ही देन है। अग्नि देवता अपने उपासकोंपर बहुत ध्यान देते हैं। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, उसपर इनकी अपार कृपादृष्टि रहती है (ऋक्० १०। ७९। ५)।

अग्नि देवताकी पत्नीका नाम स्वाहा है। स्वाहासे इनके तीन पुत्र हुए—पावक, पवमान और शुचि। मत्स्यपुराणके ५१वें अध्यायमें इनकी पूरी वंशावली दी गयी है। इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशश्च पिङ्गाक्षस्त्रितयोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्तिधारकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अग्नि देवताका वर्ण लाल है, इनके भौं, श्मश्रुकेश तथा नेत्र रक्त-पीत-मिश्रित वर्णके हैं। छाग इनका वाहन है। ये यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शक्ति और दूसरे हाथमें वरद मुद्रा है।'

अब्देवी (अप्) (सोमके प्रत्यधिदेवता)

अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये अब्देवी अनेक पावन रूप बना लेती हैं। एक रूपसे ये इन्द्र आदि देवताओंके स्थानमें पहुँच जाती हैं और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर देती हैं (ऋक्० ७। ४७। ३)। अब्देवी ही वर्षाका मूल साधन हैं। इसी जलको सूर्य देवता अपनी रश्मियोंसे आकृष्ट कर अन्तरिक्षमें पहुँचाते हैं और इन्द्र देवता वज्रसे विदीर्ण कर इसे बरसा देते हैं। इस तथ्यसे प्रभावित होकर उपासक अब्देवीसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवि! आप हमें इसी तरह सदा कल्याण प्रदान करती रहें'—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः'

(ऋग्वेद ७। ४३। ५)

वरुण, सोम आदि देवता जलके रहनेपर ही अन्नसे आनन्दित हो पाते हैं। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओंकी सफाई कर उसे स्वच्छ बना देती है, वैसे ही ये भी मनुष्योंके पापको दूर भगा देती हैं। अतः उपासक प्रार्थना करते हैं—हे मातः! आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्ग आदि लोक सुलभ हो जायँ (ऋक्० १०। १७। १०)। आप अनृतसे, अभिशापोंसे और अभिद्रोहोंसे भी मनुष्योंको मुक्त कर देती हैं (ऋक्० ६। ५०। ७)। आप समस्त अग-जगकी जन्मदात्री हैं।

कारणरूपसे तो ये हिरण्यगर्भसे भी पहले विद्यमान रहती हैं। इन्हींपर वह ब्रह्माण्ड तैरता रहता है, जिसमें देवता आदि सम्पूर्ण जीवोंकी समष्टि—हिरण्यगर्भ विद्यमान रहते हैं (ऋक्० १०। १२१। ७)। जब हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तब उन्होंने जनयित्री शक्तिसे सम्पन्न इस अब्देवीको देखा था (ऋक्० १०। १२१। ८)। इनका इस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये—

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ।
दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अब्देवी स्त्रीके रूपमें विराजमान रहती हैं, इनका वर्ण श्वेत है, मकर इनका वाहन है, इनके एक हाथमें पाश तथा दूसरे हाथमें कलश है। मोतीसे बने हुए अलङ्कारोंसे ये अलङ्कृत रहती हैं।'

पृथ्वीदेवी (भौमके प्रत्यधिदेवता)

पृथ्वीपर सब कुछ उत्पन्न होता है और पृथ्वीमें ही लीन हो जाता है। स्थावर और जङ्गम सबकी स्थितिका कारण पृथ्वी है। अतः पृथ्वी सबका परम आधार है (महा०, भीष्म० ४।२०)। पृथ्वीमाता पर्वतोंको सँभालती, ओषधियोंको उगाती और धरतीको उर्वरा बनाती हैं (ऋक्० ५।८४।१)।

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री परम सुन्दरी देवी हैं (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। यह गौरवर्णा (अर्जुनी) हैं (ऋक्० ५।८४।३)। वाराहकल्पमें पृथ्वीदेवी मूर्तिमान् रूपमें प्रकट हुई थीं। भगवान् वाराहसे उनका विवाह हुआ था। भगवान् मनोरम रूप धारणकर पृथ्वीदेवीके साथ एक दिव्य वर्षतक एकान्तमें रहे। इसके बाद भगवान्‌ने फिर वाराहरूप धारणकर पृथ्वीदेवीकी षोडशोपचार पूजा की और कहा कि मनु, देवता, सिद्ध, मानव—ये सब तुम्हारी पूजा करेंगे (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। पृथ्वीदेवीने समयपर एक दिव्य पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर मंगल-ग्रहके नामसे विख्यात हुआ।

पृथ्वीदेवी परमात्मासे अभिन्न हैं, अतः ये माता-पिता, भ्राता तथा मित्र सब कुछ हैं। यदि इनके यथार्थ स्वरूपका

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन ॥
दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

माता पृथ्वीका वर्ण शुक्ल-गौर है। ये दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत हैं। इनका शरीर लावण्यसे मण्डित है। इनके वस्त्रोंमें सूर्यकी-सी चमक रहती है, इनकी चार भुजाएँ हैं, चारों भुजाओंमें—एकमें रत्न, दूसरेमें सस्य, तीसरेमें ओषधियोंका पात्र और चौथेमें कमल है।

प्रजापति (शनिके प्रत्यधिदेवता)

प्रजापति शब्दका अर्थ होता है प्रजाओंका पति। इस शब्दका प्रथम प्रयोग ब्रह्माजीके लिये हुआ है—

विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती ।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥

प्राणियोंमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी ही उत्पन्न हुए हैं और इन्हींसे सब प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई है। सात ऋषियों और चौदह मनुओंको मिलाकर इक्कीसको प्रजापति कहा गया है—

ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ।

(महा०, आदि० १।३३)

शान्तिपर्वमें इक्कीस प्रजापतियोंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान्, सोम, कर्दम, क्रोध और विक्रीत (महा०, शान्ति० ३३४।३५-३६)।

मूलतः परमात्माको ही प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेदका

ग्रहोंके प्रत्यधिदेवता (प्रत्यधिरक्षक देवता)

नवग्रहोंके अग्नि, अब्देवी, पृथ्वी, विष्णु, शक्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प तथा ब्रह्मा क्रमशः ये नौ प्रत्यधिदेवता हैं। इनमेंसे बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा केतुके अधिदेवताओं—विष्णु, शक्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्माका वर्णन क्रमशः पञ्चदेव, ग्रहोंके अधिदेवता, षोडशमातृका तथा त्रिदेव-प्रकरणमें हुआ है। शेषका यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

अग्नि देवता (सूर्यके प्रत्यधिदेवता)

भगवान्‌के मुखसे अग्नि देवताकी उत्पत्ति हुई है (यजु० ३१।१२)। अग्नि देवता ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं (कठो० २।२।९)। वे भिन्न-भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे स्थित रहते हैं। पार्थिव अग्निके रूपमें ये काष्ठके ईंधनसे, मध्यम अग्निके रूपमें जलके ईंधनसे और उत्तम अग्निके रूपमें जलाघात रूप (गैस) से उत्पन्न होते हैं। पार्थिव अग्निका जो ईंधन काष्ठ है, इससे विद्युत् अग्निका उपशम होता है और विद्युदग्निका ईंधन जो जल है, उससे पार्थिव अग्नि बुझती है (निरुक्त)। यह भेद होनेपर सब अग्नियाँ एक ही हैं। अग्निकी इस व्यापकता और जीवनके लिये अबाधित आवश्यकताको ध्यानमें रखकर **'अग्निः सर्वा देवताः'** (ऐत० ब्रा० २।३) इस श्रुतिका उद्धरण देकर बताया गया है कि अग्नि ही सब देवता है। *अग्नि देवता प्रत्येकके जीवनमें अनुस्यूत हैं।* इनके बिना किसीका जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्नि देवतासे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ है(मनुस्मृति १।३)। *अग्निपुराण भी इनकी ही देन है।* अग्नि देवता अपने उपासकोंपर बहुत ध्यान देते हैं। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, उसपर इनकी अपार कृपादृष्टि रहती है (ऋक्० १०।७९।५)।

अग्नि देवताकी पत्नीका नाम स्वाहा है। स्वाहासे इनके तीन पुत्र हुए—पावक, पवमान और शुचि। मत्स्यपुराणके ५१वें अध्यायमें इनकी पूरी वंशावली दी गयी है। इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्ष पिङ्गाक्षस्त्रितयोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्तिधारकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अग्नि देवताका वर्ण लाल है, इनके भौं, श्मश्रुकेश तथा नेत्र रक्त-पीत-मिश्रित वर्णके हैं। छाग इनका वाहन है। ये यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शक्ति और दूसरे हाथमें वरद मुद्रा है।'

अब्देवी (अप्) (सोमके प्रत्यधिदेवता)

अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये अब्देवी अनेक पावन रूप बना लेती हैं। एक रूपसे ये इन्द्र आदि देवताओंके स्थानमें पहुँच जाती हैं और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर देती हैं (ऋक्० ७।४७।३)। अब्देवी ही वर्षाका मूल साधन हैं। इसी जलको सूर्य देवता अपनी रश्मियोंसे आकृष्ट कर अन्तरिक्षमें पहुँचाते हैं और इन्द्र देवता वज्रसे विदीर्ण कर इसे बरसा देते हैं। इस तथ्यसे प्रभावित होकर उपासक अब्देवीसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवि! आप हमें इसी तरह सदा कल्याण प्रदान करती रहें'—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः'

(ऋग्वेद ७।४३।५)

वरुण, सोम आदि देवता जलके रहनेपर ही अन्नसे आनन्दित हो पाते हैं। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओंकी सफाई कर उसे स्वच्छ बना देती है, वैसे ही ये भी मनुष्योंके पापको दूर भगा देती हैं। अतः उपासक प्रार्थना करते हैं—हे मातः! आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्ग आदि लोक सुलभ हो जायँ (ऋक्० १०।१७।१०)। आप अनृतसे, अभिशापोंसे और अभिद्रोहोंसे भी मनुष्योंको मुक्त कर देती हैं (ऋक्० ६।५०।७)। आप समस्त अग-जगकी जन्मदात्री हैं।

कारणरूपसे तो ये हिरण्यगर्भसे भी पहले विद्यमान रहती हैं। इन्हींपर वह ब्रह्माण्ड तैरता रहता है, जिसमें देवता आदि सम्पूर्ण जीवोंकी समष्टि—हिरण्यगर्भ विद्यमान रहते हैं (ऋक्० १०।१२१।७)। जब हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तब उन्होंने जनयित्री शक्तिसे सम्पन्न इस अब्देवीको देखा था (ऋक्० १०।१२१।८)। इनका इस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये—

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ।
दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अब्देवी स्त्रीके रूपमें विराजमान रहती हैं, इनका वर्ण श्वेत है, मकर इनका वाहन है, इनके एक हाथमें पाश तथा दूसरे हाथमें कलश है। मोतीसे बने हुए अलङ्कारोंसे ये अलङ्कृत रहती हैं।'

पृथ्वीदेवी (भौमके प्रत्यधिदेवता)

पृथ्वीपर सब कुछ उत्पन्न होता है और पृथ्वीमें ही लीन हो जाता है। स्थावर और जङ्गम सबकी स्थितिका कारण पृथ्वी है। अतः पृथ्वी सबका परम आधार है (महा०, भीष्म० ४।२०)। पृथ्वीमाता पर्वतोंको सँभालती, ओषधियोंको उगाती और धरतीको उर्वरा बनाती हैं (ऋक्० ५।८४।१)।

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री परम सुन्दरी देवी हैं (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। यह गौरवर्णा (अर्जुनी) हैं (ऋक्० ५।८४।३)। वाराहकल्पमें पृथ्वीदेवी मूर्तिमान् रूपमें प्रकट हुई थीं। भगवान् वाराहसे उनका विवाह हुआ था। भगवान् मनोरम रूप धारणकर पृथ्वीदेवीके साथ एक दिव्य वर्षतक एकान्तमें रहे। इसके बाद भगवान्ने फिर वाराहरूप धारणकर पृथ्वीदेवीकी षोडशोपचार पूजा की और कहा कि मनु, देवता, सिद्ध, मानव—ये सब तुम्हारी पूजा करेंगे (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। पृथ्वीदेवीने समयपर एक दिव्य पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर मंगल-ग्रहके नामसे विख्यात हुआ।

पृथ्वीदेवी परमात्मासे अभिन्न हैं, अतः ये माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र सब कुछ हैं। यदि इनके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो स्वर्ग और ब्रह्मलोक सब हस्तगत हो जायँ (महा०, भीष्म० ९।७६)। भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीदेवीसे पूछा था कि गृहस्थ किस कर्मके अनुष्ठानसे अपने पापोंको धो सकता है। भगवती पृथ्वीने बताया था कि ब्राह्मणोंकी सेवा सबसे उत्तम कर्म है। इससे ऐश्वर्य, कीर्ति, अभ्युदयकी प्राप्ति होती है तथा पाप-तापका नाश हो जाता है (महा०, अनु० ३४।२१—२५)। इनकी प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकार है—

शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा ॥
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन ॥
दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

माता पृथ्वीका वर्ण शुक्ल-गौर है। ये दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत हैं। इनका शरीर लावण्यसे मण्डित है। इनके वस्त्रोंमें सूर्यकी-सी चमक रहती है, इनकी चार भुजाएँ हैं, चारों भुजाओंमें—एकमें रत्न, दूसरेमें सस्य, तीसरेमें ओषधियोंका पात्र और चौथेमें कमल है।

प्रजापति (शनिके प्रत्यधिदेवता)

प्रजापति शब्दका अर्थ होता है प्रजाओंका पति। इस शब्दका प्रथम प्रयोग ब्रह्माजीके लिये हुआ है—

विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती ।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥

प्राणियोंमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी ही उत्पन्न हुए हैं और इन्हींसे सब प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई है। सात ऋषियों और चौदह मनुओंको मिलाकर इक्कीसको प्रजापति कहा गया है—

ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ।

(महा०, आदि० १।३३)

शान्तिपर्वमें इक्कीस प्रजापतियोंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान्, सोम, कर्दम, क्रोध और विक्रीत (महा०, शान्ति० ३३४।३५-३६)।

मूलतः परमात्माको ही प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेदका सम्पूर्ण प्रजापति सूक्त (३२वाँ अध्याय) परमात्मपरक है। वहाँ बताया गया है कि जैसे कटक, कुण्डल, मुकुटमें स्वर्ण ओतप्रोत रहता है, वैसे इन्द्र, वायु, आदित्य आदि देवोंमें परमात्मा ओतप्रोत है, अतः परमात्मा ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, वेद, अप् और प्रजापति हैं (यजु० ३२।१)। हविके अधिकारी यही प्रजापति हैं, इन्हें छोड़कर यह हवि भला और किसको दिया जाय, अर्थात् प्रजापति ब्रह्माको ही दिया जाय (यजु० ३२।६)। ये ही सभी पतियोंके पति और प्रजापतियोंके प्रजापति हैं। इनको जाननेवाला भी पिताका पिता

ग्रहोंके प्रत्यधिदेवता (प्रत्यधिरक्षक देवता)

नवग्रहोंके अग्नि, अब्देवी, पृथ्वी, विष्णु, शक्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प तथा ब्रह्मा क्रमशः ये नौ प्रत्यधिदेवता हैं। इनमेंसे बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा केतुके अधिदेवताओं—विष्णु, शक्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्माका वर्णन क्रमशः पञ्चदेव, ग्रहोंके अधिदेवता, षोडशमातृका तथा त्रिदेव-प्रकरणमें हुआ है। शेषका यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

अग्नि देवता (सूर्यके प्रत्यधिदेवता)

भगवान्‌के मुखसे अग्नि देवताकी उत्पत्ति हुई है (यजु० ३१। १२)। अग्नि देवता ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं (कठो० २। २। ९)। वे भिन्न-भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे स्थित रहते हैं। पार्थिव अग्निके रूपमें ये काष्ठके ईंधनसे, मध्यम अग्निके रूपमें जलके ईंधनसे और उत्तम अग्निके रूपमें जलाघात रूप (गैस) से उत्पन्न होते हैं। पार्थिव अग्निका जो ईंधन काष्ठ है, इससे विद्युत् अग्निका उपशम होता है और विद्युदग्निका ईंधन जो जल है, उससे पार्थिव अग्नि बुझती है (निरुक्त)। यह भेद होनेपर सब अग्नियाँ एक ही हैं। अग्निकी इस व्यापकता और जीवनके लिये अबाधित आवश्यकताको ध्यानमें रखकर **'अग्निः सर्वा देवताः'** (ऐत० ब्रा० २। ३) इस श्रुतिका उद्धरण देकर बताया गया है कि अग्नि ही सब देवता है। अग्नि देवता प्रत्येकके जीवनमें अनुस्यूत हैं। इनके बिना किसीका जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्नि देवतासे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ है(मनुस्मृति १। ३)। अग्निपुराण भी इनकी ही देन है। अग्नि देवता अपने उपासकोंपर बहुत ध्यान देते हैं। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, उसपर इनकी अपार कृपादृष्टि रहती है (ऋक्० १०। ७९। ५)।

अग्नि देवताकी पत्नीका नाम स्वाहा है। स्वाहासे इनके तीन पुत्र हुए—पावक, पवमान और शुचि। मत्स्यपुराणके ५१वें अध्यायमें इनकी पूरी वंशावली दी गयी है। इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्ष पिङ्गाक्षस्त्रितयोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्तिधारकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अग्नि देवताका वर्ण लाल है, इनके भौं, श्मश्रुकेश तथा नेत्र रक्त-पीत-मिश्रित वर्णके हैं। छाग इनका वाहन है। ये यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शक्ति और दूसरे हाथमें वरद मुद्रा है।'

अब्देवी (अप्) (सोमके प्रत्यधिदेवता)

अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये अब्देवी अनेक पावन रूप बना लेती हैं। एक रूपसे ये इन्द्र आदि देवताओंके स्थानमें पहुँच जाती हैं और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर देती हैं (ऋक्० ७। ४७। ३)। अब्देवी ही वर्षाका मूल साधन हैं। इसी जलको सूर्य देवता अपनी रश्मियोंसे आकृष्ट कर अन्तरिक्षमें पहुँचाते हैं और इन्द्र देवता वज्रसे विदीर्ण कर इसे बरसा देते हैं। इस तथ्यसे प्रभावित होकर उपासक अब्देवीसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवि! आप हमें इसी तरह सदा कल्याण प्रदान करती रहें'—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः'

(ऋग्वेद ७। ४३। ५)

वरुण, सोम आदि देवता जलके रहनेपर ही अन्नसे आनन्दित हो पाते हैं। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओंकी सफाई कर उसे स्वच्छ बना देती है, वैसे ही ये भी मनुष्योंके पापको दूर भगा देती हैं। अतः उपासक प्रार्थना करते हैं—हे मातः! आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्ग आदि लोक सुलभ हो जायँ (ऋक्० १०। १७। १०)। आप अनृतसे, अभिशापोंसे और अभिद्रोहोंसे भी मनुष्योंको मुक्त कर देती हैं (ऋक्० ६। ५०। ७)। आप समस्त अग-जगकी जन्मदात्री हैं।

कारणरूपसे तो ये हिरण्यगर्भसे भी पहले विद्यमान रहती हैं। इन्हींपर वह ब्रह्माण्ड तैरता रहता है, जिसमें देवता आदि सम्पूर्ण जीवोंकी समष्टि—हिरण्यगर्भ विद्यमान रहते हैं (ऋक्० १०। १२१। ७)। जब हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तब उन्होंने जनयित्री शक्तिसे सम्पन्न इस अब्देवीको देखा था (ऋक्० १०। १२१। ८)। इनका इस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये—

ग्रहोंके प्रत्यधिदेवता (प्रत्यधिरक्षक देवता)

नवग्रहोंके अग्नि, अब्देवी, पृथ्वी, विष्णु, शक्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प तथा ब्रह्मा क्रमशः ये नौ प्रत्यधिदेवता हैं। इनमेंसे बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा केतुके अधिदेवताओं—विष्णु, शक्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्माका वर्णन क्रमशः पञ्चदेव, ग्रहोंके अधिदेवता, षोडशमातृका तथा त्रिदेव-प्रकरणमें हुआ है। शेषका यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

अग्नि देवता (सूर्यके प्रत्यधिदेवता)

भगवान्‌के मुखसे अग्नि देवताकी उत्पत्ति हुई है (यजु० ३१।१२)। अग्नि देवता ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं (कठो० २।२।९)। वे भिन्न-भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे स्थित रहते हैं। पार्थिव अग्निके रूपमें ये काष्ठके ईंधनसे, मध्यम अग्निके रूपमें जलके ईंधनसे और उत्तम अग्निके रूपमें जलाघात रूप (गैस) से उत्पन्न होते हैं। पार्थिव अग्निका जो ईंधन काष्ठ है, इससे विद्युत् अग्निका उपशम होता है और विद्युदग्निका ईंधन जो जल है, उससे पार्थिव अग्नि बुझती है (निरुक्त)। यह भेद होनेपर सब अग्नियाँ एक ही हैं। अग्निकी इस व्यापकता और जीवनके लिये अबाधित आवश्यकताको ध्यानमें रखकर **'अग्निः सर्वा देवताः'** (ऐत० ब्रा० २।३) इस श्रुतिका उद्धरण देकर बताया गया है कि अग्नि ही सब देवता है। अग्नि देवता प्रत्येकके जीवनमें अनुस्यूत हैं। इनके बिना किसीका जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्नि देवतासे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ है (मनुस्मृति १।३)। अग्निपुराण भी इनकी ही देन है। अग्नि देवता अपने उपासकोंपर बहुत ध्यान देते हैं। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, उसपर इनकी अपार कृपादृष्टि रहती है (ऋक्० १०।७९।५)।

अग्नि देवताकी पत्नीका नाम स्वाहा है। स्वाहासे इनके तीन पुत्र हुए—पावक, पवमान और शुचि। मत्स्यपुराणके ५१वें अध्यायमें इनकी पूरी वंशावली दी गयी है। इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्ष पिङ्गाक्षस्त्रितयोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्तिधारकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अग्नि देवताका वर्ण लाल है, इनके भौं, श्मश्रुकेश तथा नेत्र रक्त-पीत-मिश्रित वर्णके हैं। छाग इनका वाहन है। ये यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शक्ति और दूसरे हाथमें वरद मुद्रा है।'

अब्देवी (अप्) (सोमके प्रत्यधिदेवता)

अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये अब्देवी अनेक पावन रूप बना लेती हैं। एक रूपसे ये इन्द्र आदि देवताओंके स्थानमें पहुँच जाती हैं और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर देती हैं (ऋक्० ७।४७।३)। अब्देवी ही वर्षाका मूल साधन हैं। इसी जलको सूर्य देवता अपनी रश्मियोंसे आकृष्ट कर अन्तरिक्षमें पहुँचाते हैं और इन्द्र देवता वज्रसे विदीर्ण कर इसे बरसा देते हैं। इस तथ्यसे प्रभावित होकर उपासक अब्देवीसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवि! आप हमें इसी तरह सदा कल्याण प्रदान करती रहें'—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः'

(ऋग्वेद ७।४३।५)

वरुण, सोम आदि देवता जलके रहनेपर ही अन्नसे आनन्दित हो पाते हैं। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओंकी सफाई कर उसे स्वच्छ बना देती है, वैसे ही ये भी मनुष्योंके पापको दूर भगा देती हैं। अतः उपासक प्रार्थना करते हैं—हे मातः! आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्ग आदि लोक सुलभ हो जायँ (ऋक्० १०।१७।१०)। आप अनृतसे, अभिशापोंसे और अभिद्रोहोंसे भी मनुष्योंको मुक्त कर देती हैं (ऋक्० ६।५०।७)। आप समस्त अग-जगकी जन्मदात्री हैं।

कारणरूपसे तो ये हिरण्यगर्भसे भी पहले विद्यमान रहती हैं। इन्हींपर वह ब्रह्माण्ड तैरता रहता है, जिसमें देवता आदि सम्पूर्ण जीवोंकी समष्टि—हिरण्यगर्भ विद्यमान रहते हैं (ऋक्० १०।१२१।७)। जब हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तब उन्होंने जनयित्री शक्तिसे सम्पन्न इस अब्देवीको देखा था (ऋक्० १०।१२१।८)। इनका इस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये—

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः।
दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अब्देवी स्त्रीके रूपमें विराजमान रहती हैं, इनका वर्ण श्वेत है, मकर इनका वाहन है, इनके एक हाथमें पाश तथा दूसरे हाथमें कलश है। मोतीसे बने हुए अलङ्कारोंसे ये अलङ्कृत रहती हैं।'

पृथ्वीदेवी (भौमके प्रत्यधिदेवता)

पृथ्वीपर सब कुछ उत्पन्न होता है और पृथ्वीमें ही लीन हो जाता है। स्थावर और जङ्गम सबकी स्थितिका कारण पृथ्वी है। अतः पृथ्वी सबका परम आधार है (महा०, भीष्म० ४।२०)। पृथ्वीमाता पर्वतोंको सँभालती, ओषधियोंको उगाती और धरतीको उर्वरा बनाती हैं (ऋक्० ५।८४।१)।

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री परम सुन्दरी देवी हैं (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। यह गौरवर्णा (अर्जुनी) हैं (ऋक्० ५।८४।३)। वाराहकल्पमें पृथ्वीदेवी मूर्तिमान् रूपमें प्रकट हुई थीं। भगवान् वाराहसे उनका विवाह हुआ था। भगवान् मनोरम रूप धारणकर पृथ्वीदेवीके साथ एक दिव्य वर्षतक एकान्तमें रहे। इसके बाद भगवान्ने फिर वाराहरूप धारणकर पृथ्वीदेवीकी षोडशोपचार पूजा की और कहा कि मनु, देवता, सिद्ध, मानव—ये सब तुम्हारी पूजा करेंगे (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। पृथ्वीदेवीने समयपर एक दिव्य पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर मंगल-ग्रहके नामसे विख्यात हुआ।

पृथ्वीदेवी परमात्मासे अभिन्न हैं, अतः ये माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र सब कुछ हैं। यदि इनके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो स्वर्ग और ब्रह्मलोक सब हस्तगत हो जायँ (महा०, भीष्म० ९।७६)। भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीदेवीसे पूछा था कि गृहस्थ किस कर्मके अनुष्ठानसे अपने पापोंको धो सकता है। भगवती पृथ्वीने बताया था कि ब्राह्मणोंकी सेवा सबसे उत्तम कर्म है। इससे ऐश्वर्य, कीर्ति, अभ्युदयकी प्राप्ति होती है तथा पाप-तापका नाश हो जाता है (महा०, अनु० ३४।२१—२५)। इनकी प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकार है—

शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा॥
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम्।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन॥
दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

माता पृथ्वीका वर्ण शुक्ल-गौर है। ये दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत हैं। इनका शरीर लावण्यसे मण्डित है। इनके वस्त्रोंमें सूर्यकी-सी चमक रहती है, इनकी चार भुजाएँ हैं, चारों भुजाओंमें—एकमें रत्न, दूसरेमें सस्य, तीसरेमें ओषधियोंका पात्र और चौथेमें कमल है।

प्रजापति (शनिके प्रत्यधिदेवता)

प्रजापति शब्दका अर्थ होता है प्रजाओंका पति। इस शब्दका प्रथम प्रयोग ब्रह्माजीके लिये हुआ है—

विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः॥

प्राणियोंमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी ही उत्पन्न हुए हैं और इन्हींसे सब प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई है। सात ऋषियों और चौदह मनुओंको मिलाकर इक्कीसको प्रजापति कहा गया है—

ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः।

(महा०, आदि० १।३३)

शान्तिपर्वमें इक्कीस प्रजापतियोंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान्, सोम, कर्दम, क्रोध और विक्रीत (महा०, शान्ति० ३३४।३५-३६)।

मूलतः परमात्माको ही प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेदका सम्पूर्ण प्रजापति सूक्त (३२वाँ अध्याय) परमात्मपरक है। वहाँ बताया गया है कि जैसे कटक, कुण्डल, मुकुटमें स्वर्ण ओतप्रोत रहता है, वैसे इन्द्र, वायु, आदित्य आदि देवोंमें परमात्मा ओतप्रोत है, अतः परमात्मा ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, वेद, अप् और प्रजापति हैं (यजु० ३२।१)। हविके अधिकारी यही प्रजापति हैं, इन्हें छोड़कर यह हवि भला और किसको दिया जाय, अर्थात् प्रजापति ब्रह्माको ही दिया जाय (यजु० ३२।६)। ये ही सभी पतियोंके पति और प्रजापतियोंके प्रजापति हैं। इनको जाननेवाला भी पिताका पिता

ग्रहोंके प्रत्यधिदेवता (प्रत्यधिरक्षक देवता)

नवग्रहोंके अग्नि, अब्देवी, पृथ्वी, विष्णु, शक्र, इन्द्राणी, प्रजापति, सर्प तथा ब्रह्मा क्रमशः ये नौ प्रत्यधिदेवता हैं। इनमेंसे बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा केतुके अधिदेवताओं—विष्णु, शक्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्माका वर्णन क्रमशः पञ्चदेव, ग्रहोंके अधिदेवता, षोडशमातृका तथा त्रिदेव-प्रकरणमें हुआ है। शेषका यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

अग्नि देवता (सूर्यके प्रत्यधिदेवता)

भगवान्‌के मुखसे अग्नि देवताकी उत्पत्ति हुई है (यजु० ३१।१२)। अग्नि देवता ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं (कठो० २।२।९)। वे भिन्न-भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे स्थित रहते हैं। पार्थिव अग्निके रूपमें ये काष्ठके ईंधनसे, मध्यम अग्निके रूपमें जलके ईंधनसे और उत्तम अग्निके रूपमें जलाघात रूप (गैस) से उत्पन्न होते हैं। पार्थिव अग्निका जो ईंधन काष्ठ है, इससे विद्युत् अग्निका उपशम होता है और विद्युदग्निका ईंधन जो जल है, उससे पार्थिव अग्नि बुझती है (निरुक्त)। यह भेद होनेपर सब अग्नियाँ एक ही हैं। अग्निकी इस व्यापकता और जीवनके लिये अबाधित आवश्यकताको ध्यानमें रखकर **'अग्निः सर्वा देवताः'** (ऐत० ब्रा० २।३) इस श्रुतिका उद्धरण देकर बताया गया है कि अग्नि ही सब देवता है। अग्नि देवता प्रत्येकके जीवनमें अनुस्यूत हैं। इनके बिना किसीका जीवन ही सम्भव नहीं।

अग्नि देवतासे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ है (मनुस्मृति १।३)। अग्निपुराण भी इनकी ही देन है। अग्नि देवता अपने उपासकोंपर बहुत ध्यान देते हैं। जो इन्हें हव्य या भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, उसपर इनकी अपार कृपादृष्टि रहती है (ऋक्० १०।७९।५)।

अग्नि देवताकी पत्नीका नाम स्वाहा है। स्वाहासे इनके तीन पुत्र हुए—पावक, पवमान और शुचि। मत्स्यपुराणके ५१वें अध्यायमें इनकी पूरी वंशावली दी गयी है। इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

पिङ्गभ्रूश्मश्रुकेशाक्ष्ः पिङ्गाक्षस्त्रितयोऽरुणः।
छागस्थः साक्षसूत्रश्च वरदः शक्तिधारकः॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अग्नि देवताका वर्ण लाल है, इनके भौं, श्मश्रुकेश तथा नेत्र रक्त-पीत-मिश्रित वर्णके हैं। छाग इनका वाहन है। ये यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शक्ति और दूसरे हाथमें वरद मुद्रा है।'

अब्देवी (अप्) (सोमके प्रत्यधिदेवता)

अपने भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये अब्देवी अनेक पावन रूप बना लेती हैं। एक रूपसे ये इन्द्र आदि देवताओंके स्थानमें पहुँच जाती हैं और उनका प्रिय कार्य सम्पन्न कर देती हैं (ऋक्० ७।४७।३)। अब्देवी ही वर्षाका मूल साधन हैं। इसी जलको सूर्य देवता अपनी रश्मियोंसे आकृष्ट कर अन्तरिक्षमें पहुँचाते हैं और इन्द्र देवता वज्रसे विदीर्ण कर इसे बरसा देते हैं। इस तथ्यसे प्रभावित होकर उपासक अब्देवीसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवि! आप हमें इसी तरह सदा कल्याण प्रदान करती रहें'—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः'

(ऋग्वेद ७।४३।५)

वरुण, सोम आदि देवता जलके रहनेपर ही अन्नसे आनन्दित हो पाते हैं। लौकिक माता जैसे अपने शिशुओंकी सफाई कर उसे स्वच्छ बना देती है, वैसे ही ये भी मनुष्योंके पापको दूर भगा देती हैं। अतः उपासक प्रार्थना करते हैं—हे मातः! आप हमें इतना पवित्र बना दें कि स्वर्ग आदि लोक सुलभ हो जायँ (ऋक्० १०।१७।१०)। आप अनृतसे, अभिशापोंसे और अभिद्रोहोंसे भी मनुष्योंको मुक्त कर देती हैं (ऋक्० ६।५०।७)। आप समस्त अग-जगकी जन्मदात्री हैं।

कारणरूपसे तो ये हिरण्यगर्भसे भी पहले विद्यमान रहती हैं। इन्हींपर वह ब्रह्माण्ड तैरता रहता है, जिसमें देवता आदि सम्पूर्ण जीवोंकी समष्टि—हिरण्यगर्भ विद्यमान रहते हैं (ऋक्० १०।१२१।७)। जब हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तब उन्होंने जनयित्री शक्तिसे सम्पन्न इस अब्देवीको देखा था (ऋक्० १०।१२१।८)। इनका इस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये—

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ।
दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'अब्देवी स्त्रीके रूपमें विराजमान रहती हैं, इनका वर्ण श्वेत है, मकर इनका वाहन है, इनके एक हाथमें पाश तथा दूसरे हाथमें कलश है। मोतीसे बने हुए अलङ्कारोंसे ये अलङ्कृत रहती हैं।'

पृथ्वीदेवी (भौमके प्रत्यधिदेवता)

पृथ्वीपर सब कुछ उत्पन्न होता है और पृथ्वीमें ही लीन हो जाता है। स्थावर और जङ्गम सबकी स्थितिका कारण पृथ्वी है। अतः पृथ्वी सबका परम आधार है (महा०, भीष्म० ४।२०)। पृथ्वीमाता पर्वतोंको सँभालती, ओषधियोंको उगाती और धरतीको उर्वरा बनाती हैं (ऋक्० ५।८४।१)।

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री परम सुन्दरी देवी हैं (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। यह गौरवर्णा (अर्जुनी) हैं (ऋक्० ५।८४।३)। वाराहकल्पमें पृथ्वीदेवी मूर्तिमान् रूपमें प्रकट हुई थीं। भगवान् वाराहसे उनका विवाह हुआ था। भगवान् मनोरम रूप धारणकर पृथ्वीदेवीके साथ एक दिव्य वर्षतक एकान्तमें रहे। इसके बाद भगवान्ने फिर वाराहरूप धारणकर पृथ्वीदेवीकी षोडशोपचार पूजा की और कहा कि मनु, देवता, सिद्ध, मानव—ये सब तुम्हारी पूजा करेंगे (ब्रह्मवै०, प्रथम खण्ड ८)। पृथ्वीदेवीने समयपर एक दिव्य पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर मंगल-ग्रहके नामसे विख्यात हुआ।

पृथ्वीदेवी परमात्मासे अभिन्न हैं, अतः ये माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र सब कुछ हैं। यदि इनके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो स्वर्ग और ब्रह्मलोक सब हस्तगत हो जायँ (महा०, भीष्म० ९।७६)। भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीदेवीसे पूछा था कि गृहस्थ किस कर्मके अनुष्ठानसे अपने पापोंको धो सकता है। भगवती पृथ्वीने बताया था कि ब्राह्मणोंकी सेवा सबसे उत्तम कर्म है। इससे ऐश्वर्य, कीर्ति, अभ्युदयकी प्राप्ति होती है तथा पाप-तापका नाश हो जाता है (महा०, अनु० ३४।२१—२५)। इनकी प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकार है—

शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा ॥
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन ॥
दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

माता पृथ्वीका वर्ण शुक्ल-गौर है। ये दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत हैं। इनका शरीर लावण्यसे मण्डित है। इनके वस्त्रोंमें सूर्यकी-सी चमक रहती है, इनकी चार भुजाएँ हैं, चारों भुजाओंमें—एकमें रत्न, दूसरेमें सस्य, तीसरेमें ओषधियोंका पात्र और चौथेमें कमल है।

प्रजापति (शनिके प्रत्यधिदेवता)

प्रजापति शब्दका अर्थ होता है प्रजाओंका पति। इस शब्दका प्रथम प्रयोग ब्रह्माजीके लिये हुआ है—

विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती ।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥

प्राणियोंमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी ही उत्पन्न हुए हैं और इन्हींसे सब प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई है। सात ऋषियों और चौदह मनुओंको मिलाकर इक्कीसको प्रजापति कहा गया है—

ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ।

(महा०, आदि० १।३३)

शान्तिपर्वमें इक्कीस प्रजापतियोंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान्, सोम, कर्दम, क्रोध और विक्रीत (महा०, शान्ति० ३३४।३५-३६)।

मूलतः परमात्माको ही प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेदका सम्पूर्ण प्रजापति सूक्त (३२वाँ अध्याय) परमात्मपरक है। वहाँ बताया गया है कि जैसे कटक, कुण्डल, मुकुटमें स्वर्ण ओतप्रोत रहता है, वैसे इन्द्र, वायु, आदित्य आदि देवोंमें परमात्मा ओतप्रोत है, अतः परमात्मा ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, वेद, अप् और प्रजापति हैं (यजु० ३२।१)। हविके अधिकारी यही प्रजापति हैं, इन्हें छोड़कर यह हवि भला और किसको दिया जाय, अर्थात् प्रजापति ब्रह्माको ही दिया जाय (यजु० ३२।६)। ये ही सभी पतियोंके पति और प्रजापतियोंके प्रजापति हैं। इनको जाननेवाला भी पिताका पिता

अर्थात् परमात्मा हो जाता है (यजु० ३२।९)।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

हंसयानेन कर्तव्यो न च कार्यश्चतुर्मुखः।
सावित्री तस्य कर्तव्या वामोत्सङ्गगता शुभा॥
ब्रह्मोक्तं परमं कार्यं रूपं सर्वं प्रजापतेः।
यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः॥
अक्षस्रजं स्रुवं बिभ्रत्कुण्डिकापुस्तकं तथा॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'प्रजापति एक मुखवाले हैं, हंसपर आसीन हैं, इन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर रखा है, इनके चार भुजाएँ हैं, एक हाथमें रुद्राक्ष माला, दूसरेमें स्रुवा, तीसरेमें कुण्डिका और चौथेमें पुस्तक है। इनकी बायीं गोदमें सावित्रीदेवी विराजमान हैं।'

सर्प (नाग) देवता (राहुके प्रत्यधिदेवता)

कुछ सर्प पृथ्वीपर, कुछ अन्तरिक्षमें तथा कुछ द्युलोकमें रहते हैं (यजु० १३।६)। द्युलोकके दीप्त स्थलोंमें रहनेवाले ये सर्प दिव्य होते हैं, उन्हें हम नहीं देख सकते। वे इतने दिव्य होते हैं कि सूर्यकी किरणोंमें भी रह लेते हैं (यजु० १३।८)। कुछ तो अपनी दिव्यतासे बाणका रूप भी धारण कर लेते हैं (यजु० १३।७)। इन सर्पोंकी पूजा की जाती है; इन्हें मधु, हवि प्रदान किया जाता है (तैत्ति० ३।१।१।६)। नाग शब्द सर्पका पर्यायवाची है। इस नामसे भी इनकी पूजा की जाती है (शांखा० गृह्य० ४।९।३)। इन सर्पोंमें कुछका आकार कमरके ऊपर मनुष्यका, नीचेका सर्पकी तरह रहता है (मत्स्यपु० ६४।४८-४९)।

भौतिक सृष्टिकी आरम्भवेला थी। पितामह ब्रह्मा सृष्टिकी वृद्धिके लिये सतत सचेष्ट थे, किंतु आशाके अनुरूप सफलता नहीं मिल रही थी। इससे वे चिन्तित होकर हाथ-पैर फैलाकर लेट गये। अन्तमें उस भोगमय शरीरका उन्होंने परित्याग कर दिया। उस शरीरसे जो बाल झड़कर गिरे वे 'अहि' हो गये। हाथ-पैर सिकोड़कर सरकने लगे इसलिये सर्प और नाग कहलाये (श्रीमद्भा० ३।२०।४७-४८)। इस तरह सर्पोंकी प्रथम सृष्टि पितामह ब्रह्माके शरीरसे हुई। आगे चलकर कद्रू सर्पकी जननी बनीं। इनके पतिदेव प्रजापति कश्यप थे। प्रारम्भमें कद्रूने एक सहस्र अण्डोंको जन्म दिया, उन्हीं अण्डोंको फोड़कर एक सहस्र नागपुत्र उत्पन्न हुए (महा०, आदि० १६।८, १५)। अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, शंख, कुलिक, पद्म, महापद्म—ये प्रधान नाग माने गये हैं।

देवताओंमें जो अणिमादि सिद्धियाँ रहती हैं, वे सर्पोंमें भी रहती हैं। सर्पोंकी अनेक घटनाएँ इस दिव्यताको बताती हैं। एक बार उत्तङ्क जब राजा कौत्सकी पत्नीके कुण्डल लेकर चले तो तक्षक नाग इन्हें ले लेनेके लिये पीछा करने लगे। तक्षकने अपना वेष नग्न क्षपणकका बना लिया। अपनी दिव्य शक्तिसे वे कभी दिखलायी पड़ते, कभी अन्तर्हित हो जाते। सायंकृत्य करनेके लिये उत्तङ्कने जब कुण्डलोंको एक स्थानपर रखा तो तक्षक उन्हें उठाकर भाग खड़े हुए। उत्तङ्कने पीछा कर पकड़ लिया। पकड़ते ही तक्षक क्षपणकका रूप त्यागकर अपने रूपमें आ गये और अपने बिलमें घुसकर तुरंत नागलोकमें पहुँच गये।
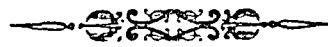
पञ्च लोकपाल

नवग्रह-मण्डलमें नवग्रहों, उनके अधिदेवताओं तथा प्रत्यधिदेवताओंके साथ गणेश, दुर्गा तथा वायु आदि पञ्च लोकपालोंका भी आवाहन-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है। यहाँ उनका संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है। विशेष विवरण इसी अङ्कके तत्तत् स्थलोंमें द्रष्टव्य है।

गणेश

गणेश देवता परब्रह्मरूप हैं। किसी भी पूजाके पूर्व गणेशकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। इससे पूजक निर्विघ्नता-पूर्वक पूजाका फल प्राप्त कर लेता है तथा इनके पूजनसे सम्पूर्ण विश्वका विघ्न नष्ट हो जाता है। ये भगवान् सदाशिव तथा माता पार्वतीके पुत्र हैं।

प्रत्येक कल्पमें परब्रह्म गणेश बनकर पार्वतीकी गोदमें आ जाते हैं (ब्रह्मवै०२।८)। इनके नमस्कार करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

एकदन्तं गजमुखं शुण्डालं मोदकप्रियम्।
शूर्पकर्णं नमस्यामि शिरसाखुवरस्थितम्॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'गणेशजीका मुख हाथीका है, एक ही दाँत है, लम्बी सूँड है, कान सूपकी तरह हैं, इन्हें लड्डू बहुत पसंद है, इनका वाहन मूषक है। मैं इन्हें प्रणाम करता हूँ।'

दुर्गादेवी

पराम्बा विश्वके कल्याणके लिये कभी गौरी-रूपमें आती हैं, कभी दुर्गा-रूपमें। ब्रह्माकी प्रार्थनापर मधु-कैटभके उद्धारके लिये फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीको महाकाली-रूपमें वे अवतीर्ण हुईं (शिवपु०, उमासं०, अ० ४३) तथा रम्भापुत्र महिषासुरके उद्धारके लिये महालक्ष्मी-रूपमें अवतीर्ण हुईं (शिवपु०,उमा०,अ० ४६) और शुभ-निशुम्भके उद्धारके लिये महासरस्वती-रूपसे अवतीर्ण हुईं (शिवपु०,उमा०, अ० ४७)।

आदिशक्तिको दुर्गा इसलिये कहा गया है कि ये अपने भक्तोंकी दुर्गतिको नष्ट कर देती हैं।

दुर्गमासुरके मारनेके बाद आदिशक्तिका दुर्गा नाम विख्यात हो गया। पाँचों पाण्डव भी दुर्गतिमें पड़ गये थे। भगवती दुर्गाने इनका अज्ञातवास सफल बनाया और विजय दिलायी (महा०, विराट० ६, भीष्म० २३)।

वायु देवता

वायु देवताकी उत्पत्ति विराट्पुरुषके प्राणसे हुई है (ऋक्० १०।९०।१३)। प्राणियोंमें जो प्राण है, उसके अधिष्ठातृ-देवता वायु ही हैं। एक बार असुरोंसे स्पर्धा होनेपर देवताओंने विचार किया कि हम उद्गीथके द्वारा असुरोंका अतिक्रमण करें। सबसे पहले वाक्ने उद्गान किया। वाग्देवताको चाहिये था कि वे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर समाजके कल्याणके लिये उद्गान करे, क्योंकि समाजके लाभान्वित होनेपर व्यक्तिका लाभान्वित होना सुनिश्चित ही है, किंतु वाक्ने ऐसा न किया। जो वाणीका भोग है, उसे तो वाक्ने देवताओंके लिये गाया और अपने लिये जो शुभ है उसे गाया। इसी स्वार्थपरताके पापसे असुरोंने वाग्देवताको विद्ध कर दिया। वाग्देवता असफल हो गये। इसी स्वार्थपरतासे अन्य इन्द्रियाँ भी विद्ध होती चली गयीं। अन्तमें मुखमें रहनेवाले प्राणने उद्गान किया। इनका अपना कोई स्वार्थ न था, केवल समाजके कल्याणके लिये प्राणदेवताने उद्गान किया। असुरोंने प्राणको भी विद्ध करना चाहा, किंतु उनका प्रयास विफल हुआ और वे पराभूत हो गये। प्राणके निःस्वार्थ कर्मसे दूसरे इन्द्रियाधिष्ठातृ-देवता भी देव-भावको प्राप्त हो गये, क्योंकि प्राण देवताने उनके पापरूप मृत्युको दूर भगा दिया था (बृहदारण्यकोपनि० १।३।१—१९)।

शरीरके पाँचों प्राणोंमें देवभाव वायु देवतासे ही प्राप्त होता है। वेदने बताया है कि वायु देवतामें अमरताकी विधि स्थापित है (ऋक्० १।१९७।३)। आधिभौतिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि साँसद्वारा वायुको ग्रहण न किया जाय तो मृत्यु निश्चित है। इस तरह हम प्रत्येक क्षण वायुके द्वारा अमरताको प्राप्त करते हैं। वायु देवताने हमें सम्पूर्ण यजुर्वेद और वायुपुराण प्रदान कर आध्यात्मिक लाभ पहुँचाया है।

वायु देवता प्रतिक्षण हमें मृत्युसे तो बचाते ही हैं, हमें सत्पथपर भी चलाते रहते हैं। इनकी दयाका पार नहीं है। एक बार जब विश्वविजेता कार्तवीर्यार्जुन ध्वंसके पथपर चल पड़े थे, उन्हें अपने बलका गर्व हो गया था, तब वायु देवताने लम्बा उपदेश देकर उन्हें सँभाला (महा०,अनु० १५२।५४)। इसी तरह विघसाशी ऋषियोंको इन्होंने गूढ़ शाश्वतधर्मकी शिक्षा दी थी (महा०, शान्ति० ३४८।२२)।

वायु देवता बलके अंशी हैं। संसारमें जितने बल हैं सबका केन्द्र ये ही हैं। इसलिये महाभारतमें कहा गया है कि वायुके समान किसीका बल नहीं है। इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर तथा वरुण आदि देवता बलमें वायुकी समता नहीं कर सकते। चेष्टाकी शक्ति और जीवन देनेवाले वायु देवता ही हैं (महा०, शान्ति० १५६।९—११)। इनके पुत्र हनुमान् और भीम हैं। इनके ध्यानका मन्त्र इस प्रकार है—

धावद्धरिणमारूढं द्विभुजं ध्वजधारिणम्।
वरदानकरं धूम्रवर्णं वायुमहं भजे॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

'धूम्रवर्णवाले समस्त पृथ्वीपर निरन्तर गमनशील द्विभुजाधारी वायुदेवकी हम उपासना करते हैं, जो अपने एक हाथमें ध्वज तथा दूसरे हाथमें वरदमुद्रा धारण किये हुए हैं।'

आकाश देवता

आकाशमें न गन्ध है न रस है, न रूप है और न स्पर्श है, अतः यह निराकार, निर्विकार ब्रह्मका प्रतिरूप है। वेदने **'खं ब्रह्म'** कहकर आकाशकी यह प्रतिरूपता व्यक्त की है। सूर्य आदि ग्रह-नक्षत्र इसीमें दीप्त होते हैं। अतः आकाशका नाम अन्वर्थक है। आकाश देवता पञ्चलोकपालोंमें आते हैं। यहाँ इनकी पूजा होती है।

श्रुतिने बतलाया है कि आकाशकी उत्पत्ति विराट्पुरुषकी नाभिसे हुई है (यजु० ३१। १३)। भगवान्ने आकाशको शब्द तन्मात्रासे उत्पन्न किया था, अतः इसमें केवल एक गुण शब्द है (मत्स्य० ३। २३)। यह शब्द भी वह स्थूल शब्द नहीं है, जिसे हम कानोंसे सुनते हैं। इस शब्दका वाहक तो वायु है। कदम्ब-मुकुल-न्याय तथा वीचितरङ्गन्यायसे वायुकी तरङ्गोंसे आते हुए वैखरी शब्दोंको हम सुन पाते हैं, इससे सूक्ष्म शब्दोंको हमारे कान नहीं सुन सकते। विद्युत्-तरंगोंपर जो शब्द चलता है, उससे भी सूक्ष्म शब्द आकाशका होता है। इस दृष्टिसे आकाशको निराकार और निर्विकारकी तरह निर्गुण भी कह सकते हैं।

इनका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

ध्यायामि गगनं नीलं नीलाम्बरधरं विभुम्।
चन्द्रार्कहस्तं द्विभुजं सर्वाभरणभूषितम्॥

'आकाश देवताका वर्ण नील है और इनके वस्त्र भी नीले हैं। चाँद और सूर्य इनके दो हाथ हैं। सभी अलंकारोंसे अलङ्कृत आकाश देवताका मैं ध्यान करता हूँ।'

अश्विनीकुमार

भगवान् सूर्यके द्वारा अश्वाके रूपमें छिपी हुई संज्ञासे जुड़वीं संतानें हुईं। इनमें एकका नाम दस्र दूसरेका नाम नासत्य है। माताके नामपर इनका संयुक्त नाम अश्विनीकुमार है (महा०, अनु० १५०। १७-१८)।

इनका सौन्दर्य बहुत आकर्षक है (ऋ० ६। ६२। ५)। इनके देहसे सुनहरी ज्योति छिटकती रहती है (ऋक्० ८। ८। २)। ये दोनों देवता जितने सुन्दर हैं, उतने ही सुन्दर उनके पालन-कर्म हैं। स्मरण करते ही ये उपासकोंके पास पहुँच जाते हैं और उनके संकटको शीघ्र दूर कर देते हैं (ऋक्० १। ११२। ३)। **'शंयु'** नामके एक ऋषि थे, इनकी गाय वन्ध्या थी, ऋषिका स्मरण करनेपर गायके थनोंसे दूधकी धारा बहने लगी (ऋ० १। ११२। ३)। दुर्दान्त असुरोंने 'रेभ' नामक ऋषियोंके हाथ-पैर बाँधकर जलमें डुबा दिया था। अश्विनीकुमारोंने इन्हें बाल-बाल बचा दिया। असुरोंने यही दुर्गति वन्दन ऋषिकी भी की थी। इन्होंने इन्हें भी शीघ्र ही बचा लिया (ऋक्० १। ११२। ५)। राजर्षि अन्तकको भी बाँधकर असुरोंने अथाह जलमें फेंक दिया था। यही अत्याचार राजर्षि भुज्युके साथ भी किये जानेपर अश्विनीकुमारोंने इन्हें बचा लिया (तैत्ति० ब्रा० ३। १)।

ये देवताओंके वैद्य हैं। चिकित्सा प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेके लिये ही बनायी गयी है—**'अथ भूतदयां प्रति'** (चरक)। अश्विनीकुमारोंने चिकित्साके द्वारा बहुत लोगोंका कल्याण किया। परावृज नामक ऋषि लँगड़े हो गये थे, अश्विनीकुमारोंने उनको भला-चंगा बना दिया। ऋजाश्व ऋषि अन्धे हो गये थे, इन्होंने उन्हें आँखें दे दीं (ऋ० १। ११२। ८)। खेल नामक एक राजा थे, संग्राममें उनकी पत्नी विश्पलाके पैरको शत्रुओंने काट डाला था। खेल तथा पुरोहित अगस्त्यजीने अश्विनीकुमारोंकी स्तुति की; दोनों दयालु देवता वहाँ आ गये और उन्होंने तत्काल लोहेकी टाँग लगाकर विश्पलाको चलनेलायक बना दिया। च्यवनऋषि जर्जर-वृद्ध हो चुके थे। अश्विनीकुमारोंने उन्हें युवा-अवस्था दी और अपने समान सुन्दर बना दिया (ऋ० १। ११६। २५)। ऋग्वेदादि शास्त्रोंमें इनके उपकारोंकी लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है।

इनका रथ स्वर्णिम है (ऋ० ४। ४४। ५)। इस रथमें तीन चक्के हैं और सारथिके बैठनेका स्थान भी तीन खण्डोंवाला है। मनुष्यका मन जैसे एक क्षणमें विश्वका चक्कर लगा लेता है, वैसे ही इनका रथ भी थोड़ी ही देरमें सम्पूर्ण विश्वका चक्कर लगा लेता है (ऋक्० १। ११८। १)।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

उभौ च सोपवीतौ चूडामुकुटधारिणौ।
फुल्लरक्तोत्पलाक्षौ च पीतस्त्रग्वस्त्रवर्णकौ॥
नासत्यदस्रनामानावश्विनौ भिषजौ स्मृतौ।

नासत्य और दस्र नामवाले दोनों अश्विनीकुमार यज्ञोपवीत तथा सिरपर चूडा और मुकुट धारण करनेवाले हैं। उनकी आँखें विकसित रक्तकमलके समान हैं। वे पीले वस्त्र, पीली मालाओं तथा पीतवर्ण युक्त हैं। वे दोनों वैद्य कहे जाते हैं।

वास्तोष्पति एवं क्षेत्रपाल—

वास्तोष्पति तथा वास्तुचक्र एवं क्षेत्रपाल देवता और क्षेत्रपाल-चक्रका विस्तृत विवेचन मण्डलस्थ देवता-प्रकरणमें किया गया है, अतः वहीं देखना चाहिये।

दश दिक्पाल देवता

नवग्रह-मण्डलमें दश दिक्पालोंका भी पूजन किया जाता है। पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊर्ध्व तथा अधः—क्रमशः ये दस दिशाएँ हैं। प्रत्येक दिशाके अधिपतिके रूपमें एक-एक देवता, इस प्रकार दसों दिशाओंके दस अधिष्ठाता देवता ही दश दिक्पाल देवता कहे जाते हैं। जैसे पूर्व दिशाके दिक्पाल देवता इन्द्र हैं। इसी प्रकार अन्य भी हैं। इनमेंसे इन्द्र, अग्नि, यम, वायु, ईशान एवं ब्रह्माका वर्णन अन्यत्र हुआ है। शेषका यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

निर्ऋति

निर्ऋति देवता नैर्ऋत्यकोणके स्वामी हैं। ये महान् पुरुष सभी राक्षसोंके अधिपति और परम पराक्रमी हैं (मत्स्यपु० २६६।२२-२३)। इनका शरीर गाढ़े काजलकी भाँति काला तथा बहुत विशाल है। ये पीले आभूषणोंसे भूषित और हाथमें खड्ग लिये हैं। राक्षसोंका समूह इन्हें चारों ओरसे घेरे रहता है। ये पालकीपर चलते हैं (मत्स्यपु० १६१।१५-१६)। इनका तेज बहुत ही प्रखर है (शुक्लयजु०१२।६३)।

दिक्पाल निर्ऋतिके लोकमें जो राक्षस रहते हैं, वे जातिमात्रके राक्षस हैं, आचरणमें वे पूर्णरूपसे पुण्यात्मा हैं, वे किसीसे द्रोह नहीं करते। श्रुति और स्मृतिके मार्गपर चलते हैं। वे ऐसा खान-पान नहीं करते जिनका शास्त्रोंमें विधान नहीं है। वे पुण्यका ही अनुष्ठान करते हैं। जब वे ब्राह्मण आदि पूज्योंसे बात करते हैं तब उनके अङ्गोंमें विशेष नम्रता आ जाती है। प्रतिदिन वे तीर्थव्रत करते हैं और नित्य ही देवताकी पूजा करते हैं। इन्हें सभी प्रकारके भोग सुलभ हैं (स्कन्द०, काशी० १२।१—११)। निर्ऋति देवता भगवदीय जनोंके हितके लिये पृथ्वीपर आ जाते हैं। ये अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें पधारे थे (महा०, आदि० १२२।६८)। मृत बालककी खोज करते समय अर्जुन निर्ऋतिदेवके लोकमें भी गये थे (श्रीमद्भा० १०।८९।४४)।

वरुण देवता

वरुण देवताकी द्वादश आदित्योंमें भी गणना होती है (महा०, आ० ६५।१५)। वेदने इन्हें प्रकृतिके नियमोंका व्यवस्थापक माना है। ऐसा वर्णन आता है कि वरुण देवताके विधानके कारण ही द्युलोक और पृथ्वीलोक पृथक्-पृथक् हैं (ऋक्० ८।४२।१)। वे आदित्यरूपसे दिनमें तो प्रकाश देते ही हैं, रातमें भी चाँद और तारोंको प्रकाशित कर प्रकाश देते हैं और इस प्रकार जगत्के प्राणीको अन्धकारसे बचाते हैं (ऋक्० १।२४।१०)। पृथ्वीपर और अन्तरिक्षमें जितने भी जलरूप हैं, सबके स्वामी वरुण देवता हैं। देवताओंने इन्हें जलेश्वरके पदपर अभिषिक्त किया था (महा०, शल्य० ४७।९-१०, ऋक्० ७।६५।४)। यही बात अथर्ववेदमें वरुण देवताके लिये '**अपामधिपतिः**' शब्दका प्रयोग कर स्पष्ट की गयी है (५।२४।४)।

वर्ण—वरुण देवताका वर्ण स्वर्णिम है (श्रीतत्त्वनिधि)।

वाहन—वरुण देवताका वाहन मकर है (अग्निपु० ५६।२३-२४)। रथ भी इनका वाहन है। यह रथ सूर्यकी भाँति चमकता रहता है(ऋक्०१।१२२।५)। इस रथको घोड़े खींचते हैं (ऋक्० ५।६३।१)। मत्स्यपुराणमें वर्णन प्राप्त होता है कि सूर्य देवताका रथ वरुण देवताके रथके लक्षणोंसे मिलता-जुलता है(मत्स्यपु० १२५।४१)।

आयुध—वरुण देवताका प्रधान आयुध 'पाश' है, जिसे 'नागपाश' और 'विश्वजित्' भी कहते हैं (अग्निपु० ५६।२३)। वरुण देवता अशनि (वज्र) का भी प्रयोग करते हैं (महा०, सभा० २२६।३३)। प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर भी इनके आयुध हैं। इन दोनों आयुधोंको कुछ दिनोंके लिये अग्नि देवताके कहनेसे इन्होंने अर्जुनको दिया था

था स्वर्गारोहणके पूर्व अर्जुनने इस गाण्डीव धनुष और अक्षय णीरको वरुण देवताको पुनः वापस कर दिया था (महा०, राट० ४३ । ६)।

परिवार—वरुण देवताके पिता कश्यप और माता देति हैं। इनकी ज्येष्ठ पत्नीका नाम 'देवी' है। देवीसे बल का एक पुत्र हुआ और सुरा नामकी कन्या उत्पन्न हुई हाभा०, आदि०६६ । ५२)। जनक राजाके शास्त्रार्थी पण्डित दी' वरुण देवताके ही पुत्र हैं। इस बातको वन्दीने स्वयं कार किया है (महाभा०, वन० १३४ । ३१)। इनकी दूसरी का नाम पर्णाशा है, जो शीततोया महानदी पर्णाशाकी ष्ठात्री देवी हैं। इनसे उत्पन्न पुत्रका नाम शतायुध था हाभा०, द्रोण० ९२ । ४४)। वरुण देवताकी एक अन्य का नाम 'चर्षणी' है, इनसे भृगुजीने जन्म ग्रहण किया मद्भा० ६ । ४)। बालकपनसे ही भृगु आत्मज्ञानसे दीप्त । वरुण देवताने इन्हें आत्मज्ञानका उपदेश दिया था (तैत्ति० वल्ली ३)।

कुबेर

कुबेर देवताके पिता विश्रवा एवं माता इडविडा हैं। इनकी ली माताका नाम केशिनी (कैकसी) है, इससे रावण, कर्ण और विभीषण हुए (श्रीमद्भा० ४ । १ । ३७)। इस तरह ग, कुम्भकर्ण और भक्तराज विभीषण इनके सौतेले भाई थे। ये वान् शङ्करके सखा हैं (श्रीमद्भा० ४ । ११ । ३३)। की पत्नीका नाम भद्रा है (महा०, आदि० १९८ । ६)। पुत्रका नलकूबर और मणिग्रीव है। कैलासपर स्थित अलकापुरी की राजधानी है (मत्स्यपु० १२१ । ३)।

ये नौ निधियों (पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, न्द, कुन्द, नील और खर्वके स्वामी हैं। ये खड्ग, त्रिशूल और धारण करते हैं (मत्स्यपु० ६७ । १५)। इनके पास यक्षों, सों और गुह्यकोंकी सेना रहती है। इनका वाहन नर है त्स्यपु० १७४ । १६-१७)। यक्षोंका अधीश्वर बननेके लिये रने नर्मदा और कावेरीके तटपर सौ दिव्य वर्षोंतक घोर स्या की। इससे प्रसन्न होकर महादेवने इन्हें यक्षोंका अधीश्वर का वरदान दिया था (मत्स्यपु० १८९ । ६—१०)। राज कुबेरने जहाँ तपस्या की थी, उस स्थानका नाम रतीर्थ पड़ गया। वहाँ उनको अनेक वर मिले थे, जैसे— रुद्रके साथ मित्रता, धनका स्वामित्व, लोकपालकत्व और नलकूबर नामका पुत्र। वर पाते ही वहींपर इनके पास धन और निधियाँ पहुँच गयीं। वहीं आकर मरुद्गणोंने कुबेरका अभिषेक किया, पुष्पक विमान दिया और यक्षोंका राजा भी बना दिया (महाभा०, शल्य० ४७ । २६—३१)।

अनन्त देवता

भगवान्की एक मूर्ति गुणातीत है, जिसे वासुदेव कहा जाता है तथा दूसरी तामसी है, जिसे अनन्त या शेष कहते हैं। भागवतमें कहा गया है कि भगवान्की तामसी नित्यकला 'अनन्त' नामसे विख्यात है (श्रीमद्भा०५ । २५ । १)। ये अनादि और अद्वय तत्त्व हैं (श्रीमद्भा० ५ । २५ । ८)। ये आदिदेव हैं। इनके वीक्षणमात्रसे प्रकृतिमें गति आ जाती है और सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण अपने-अपने कार्य करने लग जाते हैं। इस तरह जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम चल पड़ता है (श्रीमद्भा०५ । २५ । ९)। इनके पराक्रम, प्रभाव और गुण अनन्त हैं। ये रसातलके मूलमें रहते हैं, वस्तुतः ये अपनी ही महिमामें स्थित हैं। सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये ये ब्रह्माण्डको अपने मस्तकपर धारण करते हैं (श्रीमद्भा० ५ । २५ । १३)। देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, मुनिगण अनन्त भगवान्का ध्यान करते रहते हैं। इनकी आँखें प्रेमके मदसे आनन्दित और विह्वल बनी रहती हैं। इनके उपदेशामृतका पानकर इनके पार्षद और देवताओंका स्वरूप आनन्दसे संतृप्त रहता है। ये शरीरपर पीताम्बर, कानमें कुण्डल और गलेमें वैजयन्ती माला धारण किये रहते हैं। इनका एक हाथ हलकी मूठपर पड़ा रहता है (श्रीमद्भा० ५ । २५ । ७)।

द्रष्टा, दृश्य और दर्शन यह त्रिपुटी ही संसार है। भगवान् अनन्त द्रष्टा और दृश्यको आकृष्ट कर एक बना देते हैं और इस प्रकार इस त्रिपुटीको मिटा देते हैं। अतः इन्हें संकर्षण कहा जाता है। इस तरह अमर्षको रोककर सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण किया करते हैं (श्रीमद्भा० ५ । २५ । ६)।

कोई पीड़ित या पतित व्यक्ति इनके नामका अनायास ही उच्चारण कर लेता है तो इतना पुण्यात्मा बन जाता है कि वह दूसरे पुरुषोंके पाप-तापको भी नष्ट कर देता है (श्रीमद्भा० ५ । २५ । ११)।

कृषि एवं क्षेत्रके अधिष्ठाता भगवान् क्षेत्रपाल

क्षेत्रपाल ४९ देवताओंका एक गण-विशेष है। यज्ञ-यागादि कर्मों, प्रतिष्ठा-कर्मों, शान्ति-पौष्टिक अनुष्ठानों तथा कृषि एवं क्षेत्रकी रक्षा तथा उसके संवर्धनके लिये इनकी विशेषरूपसे आराधना-उपासना की जाती है। भगवान् क्षेत्रपाल क्षेत्रके पति या पालक हैं। ये निवास-स्थान तथा कृषि एवं प्रयाग, काशी, प्रजापति आदि क्षेत्र, देश और राष्ट्रके अधिष्ठाता देव हैं। इनकी उपासनासे क्षेत्र आदिकी रक्षा होती है, धरती सस्य-सम्पन्न होती है तथा आराधकको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

आचार्य यास्कने निरुक्तमें भगवान् क्षेत्रपालको अन्तरिक्ष-स्थानीय देवताओंमें परिगणित करते हुए उन्हें क्षेत्रोंका पति, निवास-स्थान (भूमि अथवा घर) का अधिष्ठाता तथा पालक देवता बतलाया है[1]। ऋग्वेदमें एक प्रसिद्ध सूक्त (मन्त्रोंका समूह) है, जो 'क्षेत्रपाल-सूक्त' कहलाता है। इस सूक्तके देवता क्षेत्रपाल हैं। इस सूक्तके अनुसार भगवान् क्षेत्रपालकी कृपासे ही हमलोगोंको विजय, गौ, अश्व, तुष्टि तथा पुष्टि प्राप्त होती है[2]। क्षेत्रपाल देवता दूध देनेवाली गौकी भाँति दुग्ध, दधि, घृत, मधु, योग-क्षेम तथा सम्मान प्राप्त करानेवाले हैं[3]। सूक्तमें आगे क्षेत्रपाल देवताके अङ्ग-उपाङ्गोंका वर्णन करते हुए कृषि-कार्यमें सहायक श्वा (कुत्ते) तथा हल-फाल आदिकी भी वन्दना की गयी है, साथ ही वायु और आदित्यके द्वारा कृषि एवं पशुओंकी समृद्धिके लिये बादलोंद्वारा वृष्टिकी भी कामना की गयी है।

वेदोंके साथ ही पुराणों, आगम-ग्रन्थों और कर्मकाण्ड-साहित्योंमें क्षेत्रपाल देवताके स्वरूप एवं उपासना-विधिका वर्णन प्राप्त होता है। प्रयोगसार, प्रयोग-पारिजात, शारदातिलक तथा उसकी व्याख्याओंमें भी यह विषय विस्तारसे विवेचित है। महर्षि पराशरके 'कृषिपराशर' नामक ग्रन्थमें इनकी विशेष महत्ता प्रतिपादित की गयी है। परिचयात्मक होनेसे शारदातिलकके कुछ अंशोंका भाव यहाँ प्रकट किया जा रहा है, तदनुसार इनका वर्ण नीले पर्वतके समान तथा आँखें कुछ बड़ी हैं। ये हाथमें गदा-कपाल धारण किये सर्प लपेटे हुए अद्भुत विग्रहवाले हैं—

नीलाञ्जनाद्रिनिभमूर्ध्वपिशङ्गकेशं
वृत्तोग्रलोचनमुपात्तगदाकपालम्।
आशाम्बरं भुजगभूषणमुग्रदंष्ट्रं
क्षेत्रेशमद्भुततनुं प्रणमामि देवम्॥

(शारदातिलक २०।१५)

क्षेत्रोंमें आर्यावर्त, कुरु, नैमिषारण्य, गया, प्रभास तथा पुष्कर आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। प्रायः इन सभी क्षेत्रोंमें क्षेत्रपाल देवताओंके मन्दिर और मूर्तियाँ स्थापित हैं। उनके पूजनसे वहाँके निवासी तथा आगन्तुक तीर्थयात्री भी निर्विघ्न एवं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। पुराणोंमें प्रत्येक क्षेत्रके माहात्म्यमें उस क्षेत्रके अधिष्ठाता क्षेत्रपाल देवताओंका माहात्म्य भी निर्दिष्ट है।

उदाहरणके लिये गरुडपुराणोक्त गया-माहात्म्यमें—

'पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।'

(ग० पु० १।८३।३)

—इस प्रकार कहकर जहाँ गया-क्षेत्रका विस्तार पाँच कोस बताया गया है, वहाँ उसी क्षेत्रके अन्तर्गत वहाँके अधिष्ठाता क्षेत्रपाल देवताकी पूजासे सारे ग्रह-दोष और अनिष्टकारी दोषोंसे मुक्तिकी बात बतायी गयी है—**'क्षेत्रपालं समभ्यर्च्य ग्रहवृन्दैः प्रमुच्यते।'** (ग० पु० १।८६।२५)।

इसी प्रकार अविमुक्त वाराणसी-क्षेत्रके क्षेत्रपाल कालभैरव कहे गये हैं, जिनकी आराधनासे वहाँके निवासी तथा अभ्यागत निर्विघ्न रहते हैं।

क्षेत्रपाल-मन्त्र—क्षेत्रपालके कई मन्त्र बतलाये गये हैं, उनमेंसे मुख्य मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ क्षौं क्षेत्रपालाय नमः।'** यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्रका 'क्षौं' बीज, गायत्री छन्द तथा देवता क्षेत्रपाल हैं। मन्त्रका एक लाख जप तद्दशांश घृतमिश्रित चरुसे हवन तत्पश्चात् क्षेत्रपाल-देवताका पूजन करनेका विधान है।—क्रमशः

१.'क्षेत्रस्य पतिः। क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः। तस्य पाता वा पालयिता वा। तस्य एषा भवति।' (निरुक्त १०।१५)

२.क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि। गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे॥ (ऋग्वेद ४।५७।१)

३.क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व। मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु॥ (ऋग्वेद ४।५७।२)
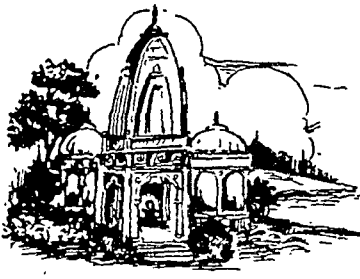
[अपने शास्त्रोंमें परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन प्राप्त होता है। संसारके जीव विभिन्न स्वभाव, रुचि और प्रवृत्तिके होते हैं। अतः पृथ्वीके प्राणियोंपर अनुग्रहकर उनकी सुविधाके लिये भगवान् भी विभिन्न स्वरूपोंमें प्रादुर्भूत होते हैं। यह भारतीय संस्कृतिकी ही विशेषता है कि यहाँ ईश्वरका स्वरूप निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार दोनों रूपोंमें है। वास्तवमें तो तात्त्विक रूपसे परमात्मप्रभुका स्वरूप सत्-चित्-आनन्दघन है, पर उपासनाकी दृष्टिसे विभिन्न रुचि, स्वभाव एवं प्रवृत्तिके अनुसार हमारे देव हमें अनेक रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। यही कारण है कि देशके विभिन्न भागोंमें एक परमेश्वरकी, अनेक नाम-रूपों जैसे—विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य और राम-कृष्ण आदिसे अर्चना-पूजा होती है। यहाँ भगवान्‌के प्रमुख अवतारों एवं प्रमुख देवताओंके उपलब्ध विभिन्न स्वरूपों तथा विग्रहोंके दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न किया जा रहा है।—सम्पादक]

भगवान् श्रीविष्णुके विविध रूपोंका दर्शन

सर्वव्यापक परमात्मा भगवान् श्रीविष्णु व्यापक होनेपर भी एक देशमें अवतरित होते हैं। उनके अनन्त रूप तथा अनन्त अर्चा-विग्रह हैं। वे अपने भक्त एवं साधककी भावनाके अनुसार वैसा ही रूप धारणकर उसे दर्शन देते हैं। सभी विग्रहोंमें उन परमात्मप्रभुके ही दर्शन होते हैं। भक्त, साधक, उपासक अपनी-अपनी भावना एवं रुचिवैभिन्यसे उनके भिन्न-भिन्न विग्रहोंका अर्चन-वन्दन करते आये हैं। वे ही राम-कृष्ण आदि रूपमें भी अवतरित हुए हैं।

देशके विभिन्न भागोंमें भगवान् विष्णुकी अर्चा-पूजा विभिन्न नामों एवं अनेक रूपोंमें होती आयी है, जैसे कहीं चतुर्भुजी श्रीविष्णुरूपमें, कहीं लक्ष्मी-नारायणरूपमें, सत्यनारायणरूपमें, नर-नारायणरूपमें, वेदनारायणरूपमें, शेषशायीरूपमें, वेंकटेशरूपमें, बालाजीरूपमें, त्रिविक्रमरूपमें, लक्ष्मी-नृसिंहरूपमें तथा कहीं शालग्राम आदि-आदि रूपमें। देशमें इन अर्चा-विग्रहोंके अनेक मन्दिर हैं। यहाँ भगवान् विष्णुके कुछ प्रमुख विग्रहों तथा उनके मन्दिरोंका संक्षिप्त परिचयके साथ दर्शन कराया जा रहा है—

भगवान् श्रीविष्णुके दर्शन

१-जोशीमठसे ३ मील दूरीपर विष्णुगङ्गा और अलकनन्दाका पावन संगम है, जो विष्णुप्रयाग कहलाता है। यहाँ भगवान् विष्णुका सुन्दर मन्दिर है। देवर्षि नारदने यहाँ भगवान्‌की आराधना की थी।

२-हरिद्वारमें श्रवणनाथजीके मन्दिरसे दक्षिण विष्णुघाट है। यहाँपर विष्णुभगवान्‌ने तप किया था। साथ ही हरिद्वारमें हरिकी पैड़ीमें भगवान् विष्णुका साक्षात् निवास है। एक
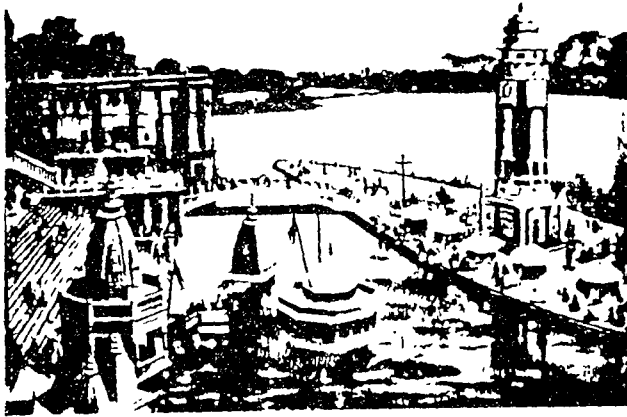
कुण्डमें भगवान्‌की चरण-पादुकाएँ भी हैं। कुम्भके अवसरपर यहाँ विशाल मेला लगता है।

३-गोरखपुरका विष्णु-मन्दिर विख्यात है। विष्णु-मन्दिरके पीछे एक पोखरा है। पोखरेके दक्षिण तटपर खोदते समय अचानक यह भव्य मूर्ति प्राप्त हुई थी। काले कसौटीके पत्थरसे निर्मित यह मूर्ति कलाकी दृष्टिसे अपूर्व है। इस मन्दिरकी यह एक अपूर्व विशेषता है कि इसके चारों कोनोंपर भारतके चार प्रधान तीर्थोंके चार आराध्य—बदरीविशाल, जगन्नाथ, रामेश्वर तथा द्वारकाधीशजी स्थित हैं।

४-उत्तरप्रदेशमें मुरादाबाद जिलेके अन्तर्गत सम्भल-क्षेत्रमें एक अतिविशाल और प्राचीन मन्दिर है, जो हरिमन्दिर कहलाता है। यहाँ भगवान् हरि (विष्णु) का दर्शन करनेके लिये दूर-दूरसे दर्शनार्थी आते हैं।

लक्ष्मी-नारायणके रूपमें दर्शन

१-अमृतसरमें भगवान् लक्ष्मी-नारायणका एक प्रसिद्ध सुन्दर मन्दिर है।

२-चंबानगरमें जो रावी नदीके तटपर बसा है, यहाँ लक्ष्मी-नारायण एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरमें भगवान् नारायणकी श्वेत संगमरमरकी प्रतिमा है।

३-बक्सर (सिद्धाश्रम) में जो लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर

है, वह अत्यन्त प्राचीन है, यह विग्रह गङ्गाजीमें प्राप्त हुआ था, जिसे मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया गया।

४-दिल्लीमें बिड़ला-बन्धुओंद्वारा निर्मित लक्ष्मी-नारायण-मन्दिर यद्यपि अर्वाचीन है, किंतु वह सौन्दर्य एवं कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य, आकर्षक एवं मनोहर है। भगवान्‌का

अर्चा-विग्रह अत्यन्त मोहक है। मन्दिरोंकी दीवारोंपर नानक-तुलसी-जैसे संत भक्तोंकी सूक्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

दिया नहीं, उलटे उनसे क्षमा माँगी, तब लक्ष्मीजी भगवान् नारायणसे रूठ गयीं। वे रूठकर यहाँ आयीं। यहाँ हेम नामक ऋषिके यहाँ कन्यारूपमें अवतीर्ण हुईं। भगवान् नारायण भी अपनी नित्यप्रिया लक्ष्मीका वियोग नहीं सह सके। वे भी यहाँ पधारे और ऋषिकन्यासे उन्होंने विवाह कर लिया। तभीसे शार्ङ्गपाणि और लक्ष्मीजी यहाँ श्रीविग्रहरूपमें स्थित हैं।

१-खामगाँव स्टेशनसे मेहकर (मेघंकर) स्थान पचास मील दूर है। यहाँ नदीके तटपर कुछ ऊँचाईपर भगवान् शार्ङ्गधरका अत्यन्त भव्य प्राचीन मन्दिर है। इसमें जो भगवान्‌की मूर्ति है, वह एक भवनकी नींव खोदते समय काष्ठकी पेटीमें पूजा-सामग्रीसहित पायी गयी थी। भगवान्‌की यह मूर्ति ग्यारह फुट ऊँची है। भगवान्‌के समीप श्रीदेवी-भूदेवी तथा जय-विजयकी छोटी-छोटी मूर्तियाँ भी हैं। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीसे पूर्णिमातक यहाँ विशेष पूजा-महोत्सव होता है।

श्रीवैकुण्ठनाथरूपमें दर्शन

कलकत्तेमें बड़ा बाजारस्थित श्रीवैकुण्ठनाथभगवान्‌का मन्दिर बड़ा भव्य है। श्रीदेवी और भूदेवीसहित चतुर्भुज

श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथजीका दर्शन बड़ा चित्ताकर्षक है। भगवान्‌का विग्रह आसनपर बैठा हुआ है। ऊपर शेषका छत्र है। यह मन्दिर अर्वाचीन होते हुए भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। यहाँ अर्चा-पूजा प्राचीन परम्पराके अनुसार पूर्ण विधि-विधानसे होती है।

श्रीधरणीधररूपमें दर्शन

गुजरातमें भीमगाँवमें भगवान् धरणीधरका एक मन्दिर है, जिसमें चतुर्भुज श्रीनारायणकी मूर्ति है।

भगवान् गदाधरजीके दर्शन

सरस्वती नदीके तटपर बसा हुआ सिद्धपुर मातृगया-क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन नाम श्रीस्थल है। महर्षि कर्दमका आश्रम यहीं था और भगवान् कपिलका यहीं अवतार हुआ था। यहाँ दक्षिण किनारे भगवान् गदाधरका मन्दिर विराजमान है, जिसमें भगवान्‌की गदाधर नामसे एक प्रसिद्ध मूर्ति प्रतिष्ठित है।

सिद्धेश्वररूपमें दर्शन

मध्यप्रदेश-स्थित शिवपुरी नगरके पूर्वमें सिद्धेश्वरके प्राचीन मन्दिरकी नारायण-प्रतिमा सिद्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। शेषशय्यापर भगवान् विष्णु विराजमान हैं, समीप ही भगवती लक्ष्मी हैं। भगवान्‌के चार भुजाओंमें चार आयुध हैं। भगवान्‌के चारों ओर दशावतारकी मूर्तियाँ भी उसी पत्थरपर उत्कीर्ण हैं। श्रीचरणोंके पास कमल-पुष्प हैं तथा पास ही जय-विजय वन्दना कर रहे हैं। मूर्तिकलाकी दृष्टिसे यह प्रतिमा अत्यन्त भव्य है।

हरिहररूपमें दर्शन

१-राजस्थानमें हालावाड़से कुछ दूर बदराना गाँव है। यहाँ दो नदियोंके संगमपर श्रीहरिहरेश्वरजीका एक प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरकी श्रीमूर्तिका आधा भाग शिवस्वरूप तथा आधा भाग विष्णुस्वरूप है। दाहिनी ओर दो भुजाएँ हैं, जिनमेंसे ऊपरके हाथमें भाँगका गोला और नीचेके हाथमें त्रिशूल है। इस भागमें कटिमें एक सर्प लिपटा है। मस्तकपर जटामें गङ्गाजी हैं, ललाटमें चन्द्रमा हैं। वामभागमें ऊपरके हाथमें चक्र तथा नीचेके हाथमें शङ्ख है। मन्दिरमें नन्दीश्वर तथा गरुड़की भी मूर्तियाँ हैं।

२-बिहारमें छपरासे २९ मील दूर सोनपुर क्षेत्रमें भगवान् हरिहरका मन्दिर है। प्रत्येक कार्तिकी पूर्णिमाको यहाँ मेला लगता है। महर्षि विश्वामित्रजीके साथ जनकपुर जाते हुए श्रीराम-लक्ष्मण यहाँ पधारे थे। कुछ लोगोंका मत है कि

…-ग्राहका युद्ध यहीं हुआ था और यहीं भगवान्ने ग्राहसे …जेन्द्रको छुड़ाया था।

…गवान् चेन्नकेशवरूपमें विष्णुके दर्शन

मैसूर राज्यमें बेलूर नामक स्थानमें चेन्नकेशवका प्रसिद्ध …न्दिर है। यह मन्दिर नक्षत्रकी आकृतिका है। इसका …वेशद्वार पूर्वाभिमुख है। मुख्य द्वारसे प्रवेश करनेपर एक …तुष्कोण मण्डप आता है। यह मण्डप खुला है। यहाँ …तिष्ठित भगवान्की मूर्ति लगभग सात फुट ऊँची चतुर्भुजी है। …नके साथ उनके दाहिने भूदेवी और बायें लक्ष्मीदेवी-श्रीदेवी …। भगवान्के हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म विद्यमान …। यह मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मोहक है।

श्रीसम्पत्कुमारस्वामीके दर्शन

दक्षिणके प्रधान चार वैष्णवक्षेत्रों—श्रीरङ्गम्, तिरुपति, काञ्चीपुरम् तथा मेलूकोटेमेंसे सम्पत्कुमारस्वामी-(श्रीविष्णु-)

का विशाल मन्दिर मेलूकोटे (यादवाद्रि) में अवस्थित है। वस्तुतः सम्पत्कुमार यहाँकी उत्सवमूर्तिका नाम है। मुख्य मूर्ति भगवान् नारायणकी है। सम्पत्कुमारस्वामीका मन्दिर दक्षिणके मन्दिरोंकी परम्पराके अनुसार ही सुविस्तृत एवं विशाल है।

वीरराघवके रूपमें दर्शन

मद्रासमें तिरुवल्लूरमें भगवान् वीरराघवका एक विशाल मन्दिर है, जो श्रीवरदराज-मन्दिरके नामसे विख्यात है। मन्दिर तीन परकोटोंके भीतर है। भीतरी परकोटेके मन्दिरमें भगवान् वीरराघव प्रभुकी शेषशायी श्रीमूर्ति है। भगवान्का मुख पूर्वकी ओर, मस्तक दक्षिण तथा चरण उत्तरकी ओर है। भगवान्का दाहिना हाथ महर्षि शालिहोत्रके मस्तकपर है। मन्दिरमें ही श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है, जिन्हें कनकवल्ली या वसुमती कहते हैं।

कथा—सृष्टिके प्रारम्भमें मधु-कैटभ नामके दैत्य यहाँके वीक्षारण्यमें छिपे थे। यहीं भगवान् नारायणने उनका अपने चक्रसे संहार किया। सत्ययुगमें शालिहोत्र नामक ब्राह्मणने एक वर्ष उपवास करके तपस्या की। पारणके दिन वे कुछ शालि-कणोंको चुनकर नैवेद्य बनाकर भगवान्को भोग लगाकर जब प्रसाद ग्रहण करनेको उद्यत हुए, तब स्वयं श्रीहरि ब्राह्मणवेषमें उनके यहाँ अतिथि होकर पधारे। शालिहोत्रने पूरा अन्न अतिथिको अर्पित कर दिया। भोजनसे तृप्त होकर अतिथिने विश्रामके लिये पूछा—**'किं गृहम्'**, शालिहोत्रने अपनी कुटियाकी ओर संकेत कर दिया। अतिथि कुटियामें चले गये, परंतु जब शालिहोत्र कुटियामें गये, तब उन्हें साक्षात् शेषशायी श्रीहरिके दर्शन हुए। वरदान माँगनेको कहनेपर शालिहोत्रने प्रभुसे वहीं उसी रूपमें नित्य स्थित रहनेका वरदान माँगा। तदनुसार उसी रूपमें श्रीविग्रहरूपसे प्रभु अब भी स्थित हैं।

वीक्षारण्यनरेश धर्मसेनके यहाँ साक्षात् लक्ष्मीजीने उनकी कन्याके रूपमें अवतार धारण किया। महाराजने पुत्रीका नाम वसुमती रखा था। वसुमतीके विवाहयोग्य होनेपर भगवान् वीरराघव राजकुमारके वेशमें राजा धर्मसेनके यहाँ पधारे। राजकुमारके प्रस्ताव करनेपर नरेशने उनसे अपनी कन्याका विवाह कर दिया। विवाहके पश्चात् जब वर-वधू भगवान् वीरराघवके मन्दिरमें दर्शनार्थ लाये गये, तब दोनों अपने श्रीविग्रहोंमें लीन हो गये। पौषमासके भाद्रपद नक्षत्रमें तिरुकल्याणोत्सव इस विवाहके मङ्गल-स्मरणमें ही होता है। भगवान् इस समय मक्षिकावन पधारते हैं, जहाँ महाराज धर्मसेनकी राजधानी धर्मसेनपुर नगरी थी।

सत्ययुगमें प्रद्युम्न नामक राजाने संतान-प्राप्तिके लिये इस क्षेत्रमें दीर्घकालतक तपस्या की। उन्हें भगवद्दर्शन हुए। नरेशने भगवान्से वरदान माँगा कि 'यह पुण्यक्षेत्र हो।' उसी

समय यहाँ हत्तापनाशन-तीर्थ व्यक्त हुआ। उसमें पौषकी अमावास्याका स्नान महामहिमाशाली है।

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस करके दक्षको वीरभद्रद्वारा मरवा देनेसे शंकरजीको ब्रह्महत्या लगी। उस ब्रह्महत्याके छुटकारेके लिये शंकरजीने हत्तापनाशन-तीर्थमें स्नान किया; तभीसे इस तीर्थके वायव्यकोणमें तीर्थेश्वररूपसे शिवजी स्थित हैं।

वरदराजके रूपमें भगवान् विष्णुके दर्शन

शिवकाञ्चीसे लगभग दो मील दूरपर विष्णुकाञ्ची है। यहाँका विशाल प्रमुख मन्दिर वरदराजस्वामीका है। भगवान् नारायण ही यहाँ वरदराज नामसे सम्बोधित होते हैं। श्रीरामानुजाचार्यके आठ प्रधान पीठ यहाँ विष्णुकाञ्चीमें हैं। भगवान्का मन्दिर तीन घेरोंके भीतर है। यहाँ भगवान्की श्यामवर्ण चतुर्भुज-मूर्ति है। भगवान्के गलेमें शालग्रामोंकी एक माला है। वहाँ भगवान्की मनोहर उत्सवमूर्तियाँ भी हैं।

भगवान् सुन्दरराजके दर्शन

दक्षिण भारतमें मदुरासे कुछ दूर वृषभाद्रिपर एक पुराने किलेमें श्रीसुन्दरराजका विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरका बहुत विस्तार है। अनेक परिक्रमा-मार्गोंमें अनेक देवमूर्तियाँ हैं। मुख्य मन्दिरमें भगवान् सुन्दरराज (श्रीनारायण) श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ विराजमान हैं। यहाँ यम-धर्मराजने वृषरूप धारण करके महाविष्णुकी आराधना की थी, यहीं उन्हें भगवद्दर्शन हुआ। इसीसे इस पर्वतको वृषभाद्रि कहते हैं। जब भगवान् विष्णु प्रकट हुए, तब उनके नूपुरोंसे एक जलस्रोत प्रकट हुआ, उसे नूपुर-गङ्गा कहते हैं। गङ्गाजीके समान ही नूपुर-गङ्गाका जल पापनाशक माना जाता है। नूपुर-गङ्गामें स्नान करके यहाँ भगवान् सुन्दरराजका दर्शन-अर्चन किया जाता है। धर्मराजने ही भगवान् श्रीसुन्दरराजकी प्रतिष्ठा की थी। चैत्र तथा आषाढ़में यहाँ महामहोत्सव मनाये जाते हैं।

श्रीआदिकेशवके दर्शन

त्रिवेन्द्रम्से १२ मील पूर्व ताम्रपर्णी नदीके किनारे भगवान् आदिकेशवका मन्दिर है। मन्दिरमें नारायणकी शेषशय्यापर लेटी भव्य मूर्ति है। यह मूर्ति १६ फुट लम्बी है। एक द्वारमेंसे भगवान्के श्रीमुख, दूसरेमेंसे वक्षःस्थल तथा तीसरेमेंसे चरणोंके दर्शन होते हैं। शेषशय्याके नीचे एक राक्षस दबा है।

कहते हैं एक बार जब ब्रह्माजी तपस्या कर रहे थे, एक राक्षसने आकर उनसे भोजन माँगा। ब्रह्माजीने राक्षस[को] कदलीवनमें जानेका आदेश दिया। राक्षस कदलीवनमें आ[कर] ऋषियोंको कष्ट देने लगा। ऋषियोंकी प्रार्थनापर वि[ष्णुने] राक्षसको मारा। मरते समय राक्षसने वरदान माँगा कि 'आ[प] मेरे शरीरपर स्थित हों।' भगवान्ने उसे वरदान दे दि[या]। इसीसे राक्षसके शरीरपर शेषजीको स्थित करके भग[वान्] नारायण स्वयं शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं।

भगवान् श्रीपद्मनाभ

त्रिवेन्द्रम्में एक किलेके भीतर पद्मनाभ भगवान[का] मन्दिर है, इन्हें अनन्तशयन भी कहते हैं। भगवान् पद्मनाभ[की]

शेषशय्यापर शयन किये हुए विशाल मूर्ति है। इतनी ब[ड़ी] शेषशायी मूर्ति और कहीं नहीं है। भगवान्की नाभिसे निक[ले] कमलपर ब्रह्माजी विराजमान हैं। भगवान्का दाहिना हा[थ] शिवलिङ्गके ऊपर स्थित है। यहाँ उत्सव-विग्रहके सा[थ] श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी भगवान्की इन तीन शक्तियों[की] मूर्तियाँ रहती हैं।

कथा—प्राचीन कालमें दिवाकर नामके एक विष्णुभ[क्त] भगवान्के दर्शनार्थ तपस्या कर रहे थे। भगवान् विष्णु उन[के] यहाँ एक मनोहर बालकके रूपमें पधारे और कुछ दिन उन[के] यहाँ रहे। एक दिन अचानक भगवान् यह कहकर अन्तर्धा[न] हो गये कि 'मुझे देखना हो तो अनन्तवनम् आइये।'

श्रीदिवाकरजीको अब पता लगा कि बालकरूपमें उन[के] यहाँ साक्षात् भगवान् रहते थे। अब दिवाकरजी 'अनन्तवनम्' की खोजमें चले। एक घने वनमें उन्हें शास्ता-मन्दिर औ[र] तिरुआयनपाडि (श्रीकृष्ण-मन्दिर) मिले। ये दोनों मन्दि[र]

पद्मनाभ-मन्दिरकी परिक्रमामें हैं। वहीं एक 'कनकवृक्ष' के कोटरमें प्रवेश करते हुए एक बालकको दिवाकरमुनिने देखा। दौड़कर वे उस वृक्षके पास पहुँचे, किंतु उसी समय वह वृक्ष गिर पड़ा। वह गिरा हुआ वृक्ष विशाल अनन्तशायी नारायणके विराट्रूपमें मुनिको दीखा। वर्तमान पद्मनाभ-मन्दिर उस श्रीविग्रहके नाभिस्थानपर है। पीछे दिवाकरमुनिने एक मन्दिर बनवाया और उसमें उसी गिरे हुए वृक्षकी लकड़ीसे एक वैसी ही अनन्तशायी मूर्ति (जैसी मूर्तिके उन्हें वृक्षमें दर्शन हुए थे) बनवाकर स्थापित की। कालान्तरमें वह मन्दिर तथा काष्ठमूर्ति भी जीर्ण हो गयी। सन् १०४९ ई० में वर्तमान विशाल मन्दिर तथा भगवान्‌का श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हुआ। इस स्थानकी अत्यन्त महत्ता है।

श्रीराजगोपालस्वामी—(वासुदेवके) दर्शन

दक्षिणमें तंजौर-तिरुवारूर मार्गपर नीलामङ्गलम् एक प्रसिद्ध स्थान है। कुछ दूर मन्नारगुडिमें श्रीराजगोपाल-स्वामीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यह क्षेत्र चम्पकारण्य तथा दक्षिणद्वारका कहा जाता है। राजगोपाल-मन्दिरमें सात प्राकार हैं, जिनमें १६ गोपुर हैं। मन्दिरमें भगवान् वासुदेवकी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारिणी चतुर्भुज-मूर्ति है। भगवान्‌के अगल-बगल श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। कहा जाता है कि यह विग्रह श्रीब्रह्माजीद्वारा प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें रुक्मिणी-सत्यभामासहित राजगोपालस्वामीकी उत्सवमूर्ति है।

श्रीरङ्गनाथजीके दर्शन

त्रिचिनापल्लीके पास कावेरी नदीके समीप श्रीरङ्गम् तीर्थ है। यहाँ भगवान् श्रीरङ्ग या रङ्गनाथजीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मन्दिर है, जो सात प्राकारोंके भीतर है, इन प्राकारोंमें छोटे-बड़े १८ गोपुर हैं। इस मन्दिरका शिखर स्वर्णमण्डित है। श्रीरङ्गजीके निजमन्दिरमें शेषशय्यापर शयन किये श्यामवर्ण श्रीरङ्गनाथजीकी विशाल चतुर्भुज-मूर्ति दक्षिणाभिमुख स्थित है। भगवान्‌के मस्तकपर शेषजीके पाँच फणोंका छत्र है। बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे मण्डित यह मूर्ति परम भव्य है। भगवान्‌के समीप श्रीलक्ष्मीजी तथा विभीषण बैठे हैं। श्रीदेवी, भूदेवी आदिकी उत्सव-मूर्तियाँ भी वहाँ हैं। पौषशुक्ल प्रतिपदासे एकादशीतक श्रीरङ्गमें बहुत बड़ा पूजन-महोत्सव होता है। वैकुण्ठ-एकादशीको भगवान् श्रीरङ्गजीका वैकुण्टद्वार खुलता है। उस द्वारसे भगवान्‌की उत्सवमूर्ति बाहर निकलती है। पीछे यात्री निकलते हैं। वैकुण्ठद्वारसे निकलना बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ दूर-दूरसे दर्शनार्थी भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये आते हैं।

कथा—भगवान् नारायणने अपना साक्षात् श्रीविग्रह ब्रह्माजीको प्रदान किया था। वैवस्वत मनुके पुत्र इक्ष्वाकुने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे विमानके साथ श्रीरङ्गजीकी मूर्ति प्राप्त की। तभीसे श्रीरङ्गजी अयोध्यामें विराजमान हुए और इक्ष्वाकुवंशीय नरेशोंके कुलाराध्य हुए।

त्रेतायुगमें चोलराज धर्मवर्मा अयोध्यानरेश महाराज दशरथके अश्वमेध-यज्ञमें आमन्त्रित होकर अयोध्या गये। वहाँ उन्होंने श्रीरङ्गजीका दर्शन किया। उनका चित्त इस प्रकार श्रीरङ्गजीमें लग गया कि वे अपने यहाँ लौटकर श्रीरङ्गजीको प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे, किंतु उन्हें सर्वज्ञ ऋषि-मुनियोंने यह कहकर तपस्यासे निवृत्त किया कि 'श्रीरङ्गजी स्वयं यहाँ पधारनेवाले हैं।'

लङ्का-विजयके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें प्रभु सबको मुँहमाँगी वस्तुएँ प्रदान कर रहे थे। जब सुग्रीवादिको उपहार देकर प्रभु बिदा करने लगे, तब विभीषणने बिदा होते समय रघुनाथजीसे इक्ष्वाकुवंशके आराध्य श्रीरङ्ग-विग्रहकी याचना की। उदार-चक्र-चूडामणि श्रीरघुनाथजीने विभीषणको श्रीरङ्ग-मूर्ति विमान (निजमन्दिर) के साथ दे दी।

विभीषण उस दिव्य विग्रहको लेकर चले तो देवताओंको ऐसा लगा कि यह दिव्य मूर्ति लङ्का नहीं जानी चाहिये। लङ्का जानेके मार्गमें यहाँ कावेरीके द्वीपमें विभीषणने विमानको चन्द्रपुष्करिणीके तटपर रखा और स्वयं नित्यकर्ममें लग गये। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विभीषणने विमान उठानेका बहुत प्रयत्न किया, किंतु वे सफल नहीं हो सके। उस समय श्रीरङ्गजीने विभीषणसे कहा—'विभीषण! तुम खिन्न मत होओ। यह कावेरीका मध्यद्वीप परम पवित्र है। राजा धर्मवर्माने मुझे पानेके लिये कठोर तपस्या की है और ऋषिगण उसे आश्वासन दे चुके हैं। इसलिये मेरी इच्छा यहीं स्थित

होनेकी है। तुम यहाँ आकर मेरा दर्शन कर जाया करो। मैं लङ्काकी ओर मुख करके दक्षिणमुख होकर यहाँ स्थित रहूँगा।'

विभीषण लौट गये। वे प्रतिदिन श्रीरङ्गधाम दर्शन करने आने लगे। एक दिन वे श्रीरङ्गजीका दर्शन करने उतावलीमें वेगपूर्वक रथसे आ रहे थे, धोखेमें उनके रथसे एक ब्राह्मण कुचल गया और मर गया। इसपर यहाँके ब्राह्मणोंने विभीषणको पकड़ लिया और मार डालनेका प्रयत्न किया, किंतु विभीषणको तो भगवान् श्रीराम कल्पान्ततकके लिये अमर रहनेका वरदान दे चुके थे, विभीषण जब मरे नहीं, तब ब्राह्मणोंने उन्हें एक भूगर्भ-स्थित स्थानमें बंद कर दिया।

देवर्षि नारदसे भगवान् श्रीरामको अयोध्यामें यह समाचार मिला। भक्तवत्सल भगवान् राम पुष्पक विमानसे यहाँ पधारे। ब्राह्मणोंने उनका स्वागत किया और विभीषणका अपराध बताकर दण्ड देनेके लिये उन्हें प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया। श्रीरामने कहा—'सेवकका अपराध तो स्वामीका ही अपराध माना जाता है। ये मेरे सेवक हैं। इन्हें आपलोग छोड़ दें और मुझे दण्ड दें।' ब्राह्मण द्रवित हो गये प्रभुके भक्तवात्सल्यसे। विभीषणका छुटकारा हो गया। तबसे विभीषणजी प्रतिदिन श्रीरङ्गजीका दर्शन करने अलक्षितरूपमें आने लगे।

श्रीकूर्मभगवान्‌के दर्शन

भगवान् विष्णुका एक अवतारविशेष श्रीकूर्मावतार है। एक समयकी बात है, जब महर्षि दुर्वासाके शापसे समस्त देवलोक ऐश्वर्य एवं श्रीसे हीन हो गया और साथ ही देवगण दैत्योंसे पराभूत हो गये तब वे सभी ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् नारायणके पास गये और स्तुति-प्रार्थनासे उन्हें प्रसन्नकर अपना कष्ट उनसे निवेदित किये। इसपर उन्होंने दैत्योंके सहयोगसे समुद्र-मन्थनकर अमृत प्राप्त करनेको कहा। प्रसन्न होकर देवता तथा दैत्य अमृतकी आशासे समुद्र-मन्थन करने लगे। मन्दराचलको मथानी बनाया गया। वह अथाह सागरमें डूबता हुआ पाताल चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीलाविहारी श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उस मन्दरगिरिके आधार बन गये और स्वयं भी देवताओंके साथ समुद्र-मन्थन करने लगे। भगवान्‌का कूर्मरूप देखकर देवगणोंने अनेक प्रकारसे स्तुति की।

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी श्रीनारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि कल्पवृक्ष, कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, शार्ङ्गधनुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट विष—ये सभी निकले थे।

कूर्मभगवान्‌की जीवोंपर अपार अनुकम्पा है, वे साधकों तथा भक्तोंके परमाराध्य हैं। यद्यपि उनके अर्चा-विग्रह तथा मन्दिर कम दिखलायी देते हैं तथापि विष्णुरूपमें उनकी पूजा-उपासना प्रधानरूपसे होती है। आज भी देवमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा, सरोवर-प्रतिष्ठा, भूमि-पूजन तथा प्रासाद-निर्माण एवं प्रतिष्ठा आदिमें मुख्य द्वारकी देहली आदि स्थानोंमें कूर्ममूर्तिकी स्थापना-पूजा की जाती है। वाराहीसंहिता (अ०६४) में कहा गया है कि 'जिसका स्फटिक तथा चाँदीके समान शुक्लवर्ण हो, नीलमकी नीलिमायुक्त रेखाओंसे चित्रित आकार कलशके समान हो तथा वंश (पीठकी हड्डी) सुन्दर और लाल रंगका हो और सरसोंके समान पीले विन्दुओंसे चित्रित हो, ऐसे कूर्मरूप भगवान् यदि घरमें स्थित हों तो राजसदृश सम्मान प्राप्त होता है।'

यहाँ भगवान् कूर्मके कुछ मन्दिरों तथा प्रतिमाओंका संक्षिप्त निदर्शन कराया जाता है—

१-आन्ध्रप्रदेशमें श्रीकूर्मक्षेत्र है। यहाँ शालग्रामरूपमें भगवान् श्रीकूर्मराजकी अर्चना-उपासना होती है। इस मन्दिरको कूर्मविमान भी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीमध्वाचार्य यहाँ पधारे थे। इस क्षेत्रके चारों ओर आठ तीर्थ हैं। तीसरे तीर्थ श्रीचक्रतीर्थमें श्रीकूर्मराजका अवतार हुआ था।

२-पूर्वी-रेलवेकी हावड़ा-वाल्टेयर लाइनपर नौपाड़ासे कुछ दूर श्रीकूर्मम्-क्षेत्र है। इस स्थानको कूर्माचल भी कहते हैं, किंतु यहाँ कोई पर्वत नहीं है। यहाँका मन्दिर बहुत प्राचीन है। यहाँ श्रीकूर्मभगवान्‌की मूर्ति है। यह मूर्ति कूर्माकार शिला है,

जिसमें आकृति अस्पष्ट है। पासमें श्रीगोविन्दराज (भगवान्

विष्णु) का श्रीविग्रह है। भगवान्‌के समीप श्रीदेवी और भूदेवी दोनों ओर विराजमान हैं।

३-हिमालयकी गोदमें अवस्थित उत्तरप्रदेशका सुदूरवर्ती पर्वतीय अञ्चल कूर्माचलके नामसे विख्यात है, जिसका प्रचलित 'कुमाऊँ' नाम है। भगवान् विष्णुका द्वितीय कूर्मावतार यहींपर चम्पावतीनगरीसे पूर्व एक पर्वतपर हुआ था, पर्वतकी आकृति भी कूर्मवत् प्रतीत होती है। पर्वतपर क्रान्तेश्वरका प्रसिद्ध शिवमन्दिर है। भगवान्‌के ऐसे कूर्मावतारसे इस क्षेत्रका नाम भी कूर्माचल प्रसिद्ध हो गया। स्कन्दादि पुराणोंमें इसे ही मानस-खण्डके नामसे निर्दिष्ट किया गया है।

श्रीवराह भगवान्‌के दर्शन

भगवान् वराह विष्णुके चौबीस अवतारोंमेंसे एक हैं। आपके अवतारका मुख्य प्रयोजन है समुद्रमें लीन पृथ्वीका उद्धार करना तथा सम्पूर्ण सृष्टिका विस्तार करना। दैत्यमाता दितिका पुत्र हिरण्याक्ष सर्वत्र आसुरी साम्राज्यकी स्थापनाके लिये कृतसंकल्प हो चुका था। उसने त्रिलोकीमें हाहाकार मचा दिया था और अन्तमें इस पृथ्वीको ही ले जाकर पातालमें छिपा दिया था। पृथ्वीके उद्धार तथा दैत्य हिरण्याक्षके वधके लिये देवगणों तथा ऋषि-महर्षियोंने भगवान्‌का चिन्तन किया। उनकी स्मृति होते ही ब्रह्माजीकी नासिकासे अँगूठेके बराबर एक श्वेतवराह-शिशु प्रकट हुआ और फिर उसका आकार विशाल हो गया। सभी देवगण उनकी वन्दना करने लगे। तदनन्तर वे ही यज्ञवराह भगवान् समुद्रमें कूद पड़े और रसातल जा पहुँचे तथा वहाँ दैत्य हिरण्याक्षद्वारा छिपायी गयी पृथ्वीदेवीको अपने दाढ़ोंपर रखकर बड़े जोरकी घर्घर ध्वनि करने लगे। हिरण्याक्ष ध्वनि सुनकर चौंक उठा और क्रुद्ध होकर युद्धके लिये दौड़ पड़ा, किंतु प्रभुने उसका उद्धार करके पृथ्वीदेवीको ऊपर लाकर यथास्थान स्थापित कर दिया। उस समय पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर धारण किये भगवान् वराहदेवका स्वरूप अतीव भव्य एवं मनोरम था। सभी प्राणी भगवान् वराहके अत्यन्त ऋणी हैं, उनकी सबपर बहुत कृपा है। उन्हींकी कृपासे हमें यह धरणीदेवी प्राप्त हुई हैं। भगवान् श्रीवराहकी पूजा-उपासना प्रायः चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें होती है, साथ ही वराहरूपमें भी उनकी आराधना की जाती है। यहाँ भगवान् वराहके कतिपय स्थलों तथा उनके मन्दिरों एवं प्रतिमाओंके परिचयके साथ उनका दर्शन कराया जा रहा है—

१-उत्तरप्रदेशके एटा जिलेका सोरो-क्षेत्र वाराह-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ भगवान् वराहका एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है, जिसमें श्वेतवराहकी चतुर्भुज-मूर्ति है। भगवान्‌के वामभागमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं।

२-नेपालराज्यमें कोसी-नदीके किनारे धवलगिरि-शिखरपर वाराह-क्षेत्र है, जिसे 'कोकामुख' भी कहते हैं। यहाँ एक मन्दिरमें वराहभगवान्‌की चतुर्भुज-मूर्ति है। मन्दिरके पास कोबरा (कोका) नदी है, जिसका जल वराह-प्रतिमापर चढ़ाया जाता है। कार्तिकी पूर्णिमाको यहाँ विशाल मेला लगता है। भगवान् विष्णुने इस तीर्थमें वराहरूप त्यागकर अपना चतुर्भुज रूप धारण किया था।

३-पानीपतसे थोड़ी दूर वाराह-तीर्थ है, जहाँ भगवान् विष्णुने वराहरूपमें अवतरित होकर पृथ्वीका उद्धार किया था। यात्री यहाँ स्नान करके भगवान् वराहका पूजन करते हैं।

४-अयोध्यासे २४ मील पश्चिम सरयू और घाघरा नदियोंका संगम-क्षेत्र पवित्र वाराह-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ भगवान् वराहका एक प्रसिद्ध मन्दिर है।

५-तिरुपति बालाजी-मन्दिरके समीप ही स्वामि-पुष्करिणी नामक एक विस्तृत सरोवर है। प्रायः सभी यात्री

होनेकी है। तुम यहाँ आकर मेरा दर्शन कर जाया करो। मैं लङ्काकी ओर मुख करके दक्षिणमुख होकर यहाँ स्थित रहूँगा।'

विभीषण लौट गये। वे प्रतिदिन श्रीरङ्गधाम दर्शन करने आने लगे। एक दिन वे श्रीरङ्गजीका दर्शन करने उतावलीमें वेगपूर्वक रथसे आ रहे थे, धोखेमें उनके रथसे एक ब्राह्मण कुचल गया और मर गया। इसपर यहाँके ब्राह्मणोंने विभीषणको पकड़ लिया और मार डालनेका प्रयत्न किया, किंतु विभीषणको तो भगवान् श्रीराम कल्पान्ततकके लिये अमर रहनेका वरदान दे चुके थे, विभीषण जब मरे नहीं, तब ोंने उन्हें एक भूगर्भ-स्थित स्थानमें बंद कर दिया।

देवर्षि नारदसे भगवान् श्रीरामको अयोध्यामें यह समाचार मिला। भक्तवत्सल भगवान् राम पुष्पक विमानसे यहाँ पधारे। ब्राह्मणोंने उनका स्वागत किया और विभीषणका अपराध बताकर दण्ड देनेके लिये उन्हें प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया। श्रीरामने कहा—'सेवकका अपराध तो स्वामीका ही अपराध माना जाता है। ये मेरे सेवक हैं। इन्हें आपलोग छोड़ दें और मुझे दण्ड दें।' ब्राह्मण द्रवित हो गये प्रभुके भक्तवात्सल्यसे। विभीषणका छुटकारा हो गया। तबसे विभीषणजी प्रतिदिन श्रीरङ्गजीका दर्शन करने अलक्षितरूपमें आने लगे।

श्रीकूर्मभगवान्‌के दर्शन

भगवान् विष्णुका एक अवतारविशेष श्रीकूर्मावतार है। एक समयकी बात है, जब महर्षि दुर्वासाके शापसे समस्त देवलोक एवं श्रीसे हीन हो गया और साथ ही देवगण दैत्योंसे पराभूत हो गये तब वे सभी ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् णके पास गये और स्तुति-प्रार्थनासे उन्हें प्रसन्नकर अपना कष्ट उनसे निवेदित किये। इसपर उन्होंने दैत्योंके सहयोगसे -मन्थनकर अमृत प्राप्त करनेको कहा। प्रसन्न होकर देवता तथा दैत्य अमृतकी आशासे समुद्र-मन्थन करने लगे। चलको मथानी बनाया गया। वह अथाह सागरमें डूबता हुआ पाताल चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न विहारी श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उस मन्दरगिरिके आधार बन गये और स्वयं भी देवताओंके साथ समुद्र-मन्थन करने भगवान्‌का कूर्मरूप देखकर देवगणोंने अनेक प्रकारसे स्तुति की।

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी श्रीनारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि कल्पवृक्ष, भमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, नुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट विष—ये सभी निकले थे।

कूर्मभगवान्‌की जीवोंपर अपार अनुकम्पा है, वे साधकों तथा भक्तोंके परमाराध्य हैं। यद्यपि उनके अर्चा-विग्रह तथा मन्दिर दिखलायी देते हैं तथापि विष्णुरूपमें उनकी पूजा-उपासना प्रधानरूपसे होती है। आज भी देवमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा, र-प्रतिष्ठा, भूमि-पूजन तथा प्रासाद-निर्माण एवं प्रतिष्ठा आदिमें मुख्य द्वारकी देहली आदि स्थानोंमें कूर्ममूर्तिकी ना-पूजा की जाती है। वाराहीसंहिता (अ०६४) में कहा गया है कि 'जिसका स्फटिक तथा चाँदीके समान शुक्लवर्ण हो, ाकी नीलिमायुक्त रेखाओंसे चित्रित आकार कलशके समान हो तथा वंश (पीठकी हड्डी) सुन्दर और लाल रंगका हो सरसोंके समान पीले विन्दुओंसे चित्रित हो, ऐसे कूर्मरूप भगवान् यदि घरमें स्थित हों तो राजसदृश सम्मान प्राप्त होता है।'

यहाँ भगवान् कूर्मके कुछ मन्दिरों तथा प्रतिमाओंका संक्षिप्त निदर्शन कराया जाता है—

१-आन्ध्रप्रदेशमें श्रीकूर्मक्षेत्र है। यहाँ शालग्रामरूपमें ान् श्रीकूर्मराजकी अर्चना-उपासना होती है। इस ्को कूर्मविमान भी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्य, ानुजाचार्य एवं श्रीमध्वाचार्य यहाँ पधारे थे। इस क्षेत्रके ओर आठ तीर्थ हैं। तीसरे तीर्थ श्रीचक्रतीर्थमें श्रीकूर्मराजका अवतार हुआ था।

२-पूर्वी-रेलवेकी हावड़ा-वाल्टेयर लाइनपर नौपाड़ासे कुछ दूर श्रीकूर्मम्-क्षेत्र है। इस स्थानको कूर्माचल भी कहते हैं, किंतु यहाँ कोई पर्वत नहीं है। यहाँका मन्दिर बहुत प्राचीन है। यहाँ श्रीकूर्मभगवान्‌की मूर्ति है। यह मूर्ति कूर्माकार शिला है,

जिसमें आकृति अस्पष्ट है। पासमें श्रीगोविन्दराज (भगवान् विष्णु) का श्रीविग्रह है। भगवान्‌के समीप श्रीदेवी और भूदेवी दोनों ओर विराजमान हैं।

३-हिमालयकी गोदमें अवस्थित उत्तरप्रदेशका सुदूरवर्ती पर्वतीय अञ्चल कूर्माचलके नामसे विख्यात है, जिसका प्रचलित 'कुमाऊँ' नाम है। भगवान् विष्णुका द्वितीय कूर्मावतार यहींपर चम्पावतीनगरीसे पूर्व एक पर्वतपर हुआ था, पर्वतकी आकृति भी कूर्मवत् प्रतीत होती है। पर्वतपर क्रान्तेश्वरका प्रसिद्ध शिवमन्दिर है। भगवान्‌के ऐसे कूर्मावतारसे इस क्षेत्रका नाम भी कूर्माचल प्रसिद्ध हो गया। स्कन्दादि पुराणोंमें इसे ही मानस-खण्डके नामसे निर्दिष्ट किया गया है।

श्रीवराह भगवान्‌के दर्शन

भगवान् वराह विष्णुके चौबीस अवतारोंमेंसे एक हैं। आपके अवतारका मुख्य प्रयोजन है समुद्रमें लीन पृथ्वीका उद्धार करना तथा सम्पूर्ण सृष्टिका विस्तार करना। दैत्यमाता दितिका पुत्र हिरण्याक्ष सर्वत्र आसुरी साम्राज्यकी स्थापनाके लिये कृतसंकल्प हो चुका था। उसने त्रिलोकीमें हाहाकार मचा दिया था और अन्तमें इस पृथ्वीको ही ले जाकर पातालमें छिपा दिया था। पृथ्वीके उद्धार तथा दैत्य हिरण्याक्षके वधके लिये देवगणों तथा ऋषि-महर्षियोंने भगवान्‌का चिन्तन किया। उनकी स्मृति होते ही ब्रह्माजीकी नासिकासे अँगूठेके बराबर एक श्वेतवराह-शिशु प्रकट हुआ और फिर उसका आकार विशाल हो गया। सभी देवगण उनकी वन्दना करने लगे। तदनन्तर वे ही यज्ञवराह भगवान् समुद्रमें कूद पड़े और रसातल जा पहुँचे तथा वहाँ दैत्य हिरण्याक्षद्वारा छिपायी गयी पृथ्वीदेवीको अपने दाढ़ोंपर रखकर बड़े जोरकी घर्घर ध्वनि करने लगे। हिरण्याक्ष ध्वनि सुनकर चौंक उठा और क्रुद्ध होकर युद्धके लिये दौड़ पड़ा, किंतु प्रभुने उसका उद्धार करके पृथ्वीदेवीको ऊपर लाकर यथास्थान स्थापित कर दिया। उस समय पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर धारण किये भगवान् वराहदेवका स्वरूप अतीव भव्य एवं मनोरम था। सभी प्राणी भगवान् वराहके अत्यन्त ऋणी हैं, उनकी सबपर बहुत कृपा है। उन्हींकी कृपासे हमें यह धरणीदेवी प्राप्त हुई हैं। भगवान् श्रीवराहकी पूजा-उपासना प्रायः चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें होती है, साथ ही वराहरूपमें भी उनकी आराधना की जाती है। यहाँ भगवान् वराहके कतिपय स्थलों तथा उनके मन्दिरों एवं प्रतिमाओंके परिचयके साथ उनका दर्शन कराया जा रहा है—

होनेकी है। तुम यहाँ आकर मेरा दर्शन कर जाया करो। मैं लङ्काकी ओर मुख करके दक्षिणमुख होकर यहाँ स्थित रहूँगा।'

विभीषण लौट गये। वे प्रतिदिन श्रीरङ्गधाम दर्शन करने आने लगे। एक दिन वे श्रीरङ्गजीका दर्शन करने उतावलीमें वेगपूर्वक रथसे आ रहे थे, धोखेमें उनके रथसे एक ब्राह्मण कुचल गया और मर गया। इसपर यहाँके ब्राह्मणोंने विभीषणको पकड़ लिया और मार डालनेका प्रयत्न किया, किंतु विभीषणको तो भगवान् श्रीराम कल्पान्ततकके लिये अमर रहनेका वरदान दे चुके थे, विभीषण जब मरे नहीं, तब ब्राह्मणोंने उन्हें एक भूगर्भ-स्थित स्थानमें बंद कर दिया।

देवर्षि नारदसे भगवान् श्रीरामको अयोध्यामें यह समाचार मिला। भक्तवत्सल भगवान् राम पुष्पक विमानसे यहाँ पधारे। ब्राह्मणोंने उनका स्वागत किया और विभीषणका अपराध बताकर दण्ड देनेके लिये उन्हें प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया। श्रीरामने कहा—'सेवकका अपराध तो स्वामीका ही अपराध माना जाता है। ये मेरे सेवक हैं। इन्हें आपलोग छोड़ दें और मुझे दण्ड दें।' ब्राह्मण द्रवित हो गये प्रभुके भक्तवात्सल्यसे। विभीषणका छुटकारा हो गया। तबसे विभीषणजी प्रतिदिन श्रीरङ्गजीका दर्शन करने अलक्षितरूपमें आने लगे।

श्रीकूर्मभगवान्‌के दर्शन

भगवान् विष्णुका एक अवतारविशेष श्रीकूर्मावतार है। एक समयकी बात है, जब महर्षि दुर्वासाके शापसे समस्त देवलोक ऐश्वर्य एवं श्रीसे हीन हो गया और साथ ही देवगण दैत्योंसे पराभूत हो गये तब वे सभी ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् नारायणके पास गये और स्तुति-प्रार्थनासे उन्हें प्रसन्नकर अपना कष्ट उनसे निवेदित किये। इसपर उन्होंने दैत्योंके सहयोगसे समुद्र-मन्थनकर अमृत प्राप्त करनेको कहा। प्रसन्न होकर देवता तथा दैत्य अमृतकी आशासे समुद्र-मन्थन करने लगे। मन्दराचलको मथानी बनाया गया। वह अथाह सागरमें डूबता हुआ पाताल चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीलाविहारी श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उस मन्दरगिरिके आधार बन गये और स्वयं भी देवताओंके साथ समुद्र-मन्थन करने लगे। भगवान्‌का कूर्मरूप देखकर देवगणोंने अनेक प्रकारसे स्तुति की।

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी श्रीनारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि कल्पवृक्ष, कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, शार्ङ्गधनुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट विष—ये सभी निकले थे।

कूर्मभगवान्‌की जीवोंपर अपार अनुकम्पा है, वे साधकों तथा भक्तोंके परमाराध्य हैं। यद्यपि उनके अर्चा-विग्रह तथा मन्दिर कम दिखलायी देते हैं तथापि विष्णुरूपमें उनकी पूजा-उपासना प्रधानरूपसे होती है। आज भी देवमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा, सरोवर-प्रतिष्ठा, भूमि-पूजन तथा प्रासाद-निर्माण एवं प्रतिष्ठा आदिमें मुख्य द्वारकी देहली आदि स्थानोंमें कूर्ममूर्तिकी स्थापना-पूजा की जाती है। वाराहीसंहिता (अ०६४) में कहा गया है कि 'जिसका स्फटिक तथा चाँदीके समान शुक्लवर्ण हो, नीलमकी नीलिमायुक्त रेखाओंसे चित्रित आकार कलशके समान हो तथा वंश (पीठकी हड्डी) सुन्दर और लाल रंगका हो और सरसोंके समान पीले विन्दुओंसे चित्रित हो, ऐसे कूर्मरूप भगवान् यदि घरमें स्थित हों तो राजसदृश सम्मान प्राप्त होता है।'

यहाँ भगवान् कूर्मके कुछ मन्दिरों तथा प्रतिमाओंका संक्षिप्त निदर्शन कराया जाता है—

१-आन्ध्रप्रदेशमें श्रीकूर्मक्षेत्र है। यहाँ शालग्रामरूपमें भगवान् श्रीकूर्मराजकी अर्चना-उपासना होती है। इस मन्दिरको कूर्मविमान भी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीमध्वाचार्य यहाँ पधारे थे। इस क्षेत्रके चारों ओर आठ तीर्थ हैं। तीसरे तीर्थ श्रीचक्रतीर्थमें श्रीकूर्मराजका अवतार हुआ था।

२-पूर्वी-रेलवेकी हावड़ा-वाल्टेयर लाइनपर नौपाड़ासे कुछ दूर श्रीकूर्मम्-क्षेत्र है। इस स्थानको कूर्माचल भी कहते हैं, किंतु यहाँ कोई पर्वत नहीं है। यहाँका मन्दिर बहुत प्राचीन है। यहाँ श्रीकूर्मभगवान्‌की मूर्ति है। यह मूर्ति कूर्माकार शिला है,

जिसमें आकृति अस्पष्ट है। पासमें श्रीगोविन्दराज (भगवान्

विष्णु) का श्रीविग्रह है। भगवान्‌के समीप श्रीदेवी और भूदेवी दोनों ओर विराजमान हैं।

३-हिमालयकी गोदमें अवस्थित उत्तरप्रदेशका सुदूरवर्ती पर्वतीय अञ्चल कूर्माचलके नामसे विख्यात है, जिसका प्रचलित 'कुमाऊँ' नाम है। भगवान् विष्णुका द्वितीय कूर्मावतार यहींपर चम्पावतीनगरीसे पूर्व एक पर्वतपर हुआ था, पर्वतकी आकृति भी कूर्मवत् प्रतीत होती है। पर्वतपर क्रान्तेश्वरका प्रसिद्ध शिवमन्दिर है। भगवान्‌के ऐसे कूर्मावतारसे इस क्षेत्रका नाम भी कूर्माचल प्रसिद्ध हो गया। स्कन्दादि पुराणोंमें इसे ही मानस-खण्डके नामसे निर्दिष्ट किया गया है।

श्रीवराह भगवान्‌के दर्शन

भगवान् वराह विष्णुके चौबीस अवतारोंमेंसे एक हैं। आपके अवतारका मुख्य प्रयोजन है समुद्रमें लीन पृथ्वीका उद्धार करना तथा सम्पूर्ण सृष्टिका विस्तार करना। दैत्यमाता दितिका पुत्र हिरण्याक्ष सर्वत्र आसुरी साम्राज्यकी स्थापनाके लिये कृतसंकल्प हो चुका था। उसने त्रिलोकीमें हाहाकार मचा दिया था और अन्तमें इस पृथ्वीको ही ले जाकर पातालमें छिपा दिया था। पृथ्वीके उद्धार तथा दैत्य हिरण्याक्षके वधके लिये देवगणों तथा ऋषि-महर्षियोंने भगवान्‌का चिन्तन किया। उनकी स्मृति होते ही ब्रह्माजीकी नासिकासे अँगूठेके बराबर एक श्वेतवराह-शिशु प्रकट हुआ और फिर उसका आकार विशाल हो गया। सभी देवगण उनकी वन्दना करने लगे। तदनन्तर वे ही यज्ञवराह भगवान् समुद्रमें कूद पड़े और रसातल जा पहुँचे तथा वहाँ दैत्य हिरण्याक्षद्वारा छिपायी गयी पृथ्वीदेवीको अपने दाढ़ोंपर रखकर बड़े जोरकी घर्घर ध्वनि करने लगे। हिरण्याक्ष ध्वनि सुनकर चौंक उठा और क्रुद्ध होकर युद्धके लिये दौड़ पड़ा, किंतु प्रभुने उसका उद्धार करके पृथ्वीदेवीको ऊपर लाकर यथास्थान स्थापित कर दिया। उस समय पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर धारण किये भगवान् वराहदेवका स्वरूप अतीव भव्य एवं मनोरम था। सभी प्राणी भगवान् वराहके अत्यन्त ऋणी हैं, उनकी सबपर बहुत कृपा है। उन्हींकी कृपासे हमें यह धरणीदेवी प्राप्त हुई हैं। भगवान् श्रीवराहकी पूजा-उपासना प्रायः चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें होती है, साथ ही वराहरूपमें भी उनकी आराधना की जाती है। यहाँ भगवान् वराहके कतिपय स्थलों तथा उनके मन्दिरों एवं प्रतिमाओंके परिचयके साथ उनका दर्शन कराया जा रहा है—

१-उत्तरप्रदेशके एटा जिलेका सोरो-क्षेत्र वाराह-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ भगवान् वराहका एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है, जिसमें श्वेतवराहकी चतुर्भुज-मूर्ति है। भगवान्‌के वामभागमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं।

२-नेपालराज्यमें कोसी-नदीके किनारे धवलगिरि-शिखरपर वाराह-क्षेत्र है, जिसे 'कोकामुख' भी कहते हैं। यहाँ एक मन्दिरमें वराहभगवान्‌की चतुर्भुज-मूर्ति है। मन्दिरके पास कोबरा (कोका) नदी है, जिसका जल वराह-प्रतिमापर चढ़ाया जाता है। कार्तिकी पूर्णिमाको यहाँ विशाल मेला लगता है। भगवान् विष्णुने इस तीर्थमें वराहरूप त्यागकर अपना चतुर्भुज रूप धारण किया था।

३-पानीपतसे थोड़ी दूर वाराह-तीर्थ है, जहाँ भगवान् विष्णुने वराहरूपमें अवतरित होकर पृथ्वीका उद्धार किया था। यात्री यहाँ स्नान करके भगवान् वराहका पूजन करते हैं।

४-अयोध्यासे २४ मील पश्चिम सरयू और घाघरा नदियोंका संगम-क्षेत्र पवित्र वाराह-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ भगवान् वराहका एक प्रसिद्ध मन्दिर है।

५-तिरुपति बालाजी-मन्दिरके समीप ही स्वामि-पुष्करिणी नामक एक विस्तृत सरोवर है। प्रायः सभी यात्री

क्षेत्रोंमें एक है। यहाँ पर्वतपर योगनृसिंह-मन्दिरमें भगवान्

नृसिंहकी द्विभुजी तथा पद्मासनमें बैठी एक मूर्ति है।

४-मद्रास-रायचूर लाइनपर आरकोनम्से ११९ मीलपर कडपा स्टेशन है। वहाँसे कुछ दूर अहोबिल है। अहोबिल श्रीरामानुज-सम्प्रदायके आचार्य-पीठोंमेंसे एक मुख्य पीठ है। यह क्षेत्र स्वयं-व्यक्त क्षेत्रोंमें माना जाता है। यहाँ शृङ्गबेल नामक एक कुण्ड है। कुण्डके पास ही भगवान् नृसिंहका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं हिरण्यकशिपुकी राजधानी थी और यहीं भगवान् नृसिंहने प्रकट होकर भक्त प्रह्लादकी रक्षा की थी। भगवान् श्रीरामने वनवास-कालमें पधारकर नृसिंह भगवान्का मङ्गलाशासन (स्तवन) किया था। अर्जुनने भी यहाँ नृसिंहभगवान्की आराधना की है। आलवार सं आचार्यगण भी यहाँ पधारे हैं। यह क्षेत्र नवनृसिंह-क्षे जाता है। यहाँ भगवान्के नौ विग्रह हैं— १-ज्वाल २-अहोबिलनृसिंह, ३-मालोलनृसिंह (लक्ष्मी-नृ ४-क्रोडाकारनृसिंह, ५-कारञ्जनृसिंह, ६-भार्गव ७-योगानन्दनृसिंह, ८-छत्रवटनृसिंह तथा ९-पावननृसिं

५-बदरीनाथ-मार्गमें अवस्थित जोशीमठमें भगवान्का एक मन्दिर है। यहाँ शालग्राम-शिलामें नृसिंहकी अद्भुत मूर्ति है। भगवान् नृसिंहकी एक भुज पतली है।

६-मसुलीपटम्-बेजवाड़ा हुबली-लाइनमें बेज पास मङ्गलगिरिमें भगवान् लक्ष्मी-नृसिंहका मन्दिर है भोगनृसिंह तथा पनानृसिंह-मन्दिर भी कहते हैं। विशाल है। पना (पानक) का अर्थ है शर्बत। पनानृ अर्थ है शर्बत पीनेवाले नृसिंहभगवान्। मन्दिरमें एक भगवान् नृसिंहका एक धातुमुख बना है। कहते हैं, भीतर शालग्राम-शिला है। पुजारी शङ्खसे नृसिंहभग शर्बत पिलाता है। आधा शर्बत पिला देता है और प्रसादरूपमें छोड़ देता है। पूरे मन्दिरमें चारों ओर शर्बतका अंश फैला रहता है, किंतु वहाँ मक्खी या चींट दिखायी नहीं देती, यह चमत्कार ही है। कहा जाता भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु दैत्यको मारकर यहाँ स्थि थे। माघमें कृष्णपक्षकी एकादशीसे पूर्णिमातक यहाँ समारोह होता है।

भगवान् परशुरामके कुछ अर्चा-विग्रहोंके दर्शन

भगवान् परशुराम श्रीविष्णुके आवेशावतार हैं। ये ऋचीकके पौत्र और जमदग्निके पुत्र हैं। इनकी माताका नाम रेणुका हविष्यके प्रभावसे ब्राह्मण-पुत्र होते हुए भी ये क्षात्रकर्मा हो गये थे। ये भगवान् शंकरके परमभक्त हैं, उन्होंने परशुराम एक अमोघ अस्त्र—परशु प्रदान किया। इनका वास्तविक नाम राम था, किंतु हाथमें परशु धारण करनेसे ये परशुराम विख्यात हुए। ये अपने पिताके अनन्य भक्त थे, पिताकी आज्ञासे इन्होंने अपनी माताका सिर काट डाला था, पुनः पि आशीर्वादसे माताकी स्थिति यथावत् हो गयी।

इनके पिता श्रीजमदग्निजीके आश्रममें एक कामधेनु गौ थी, जिसके अलौकिक ऐश्वर्य-शक्तिको देखकर कार्तवीर्यार्जुन प्राप्त करनेके लिये दुराग्रह करने लगा था। अन्तमें उसने गो-ग्रहणमें बलका प्रयोग किया और उसे माहिष्मती ले आया। जब परशुरामजीको यह बात विदित हुई तो उन्होंने कार्तवीर्यार्जुन तथा उसकी सारी सेनाका विनाश कर डाला। किंतु

जमदग्निने परशुरामजीके इस चक्रवर्ती सम्राट्के वधको ब्रह्महत्याके समान बताते हुए उन्हें तीर्थ-सेवनकी आज्ञा दी। वे तीर्थ-यात्रामें चले गये, वापस आनेपर पिता-माताने उन्हें आशीर्वाद दिया।

सहस्रार्जुनके वधसे उसके पुत्रोंके मनमें प्रतिशोधकी आग जल रही थी। एक दिन अवसर पाकर उन्होंने छद्मवेषमें आश्रममें आकर जमदग्निका सिर काट डाला और उसे लेकर भाग निकले।

जब परशुरामजीको यह समाचार ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त क्रोधावेशमें आगबबूला हो उठे और पृथ्वीको क्षत्रिय-हीन कर देनेकी प्रतिज्ञा कर ली तथा इक्कीस बार घूम-घूमकर पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया। फिर पिताके सिरको धड़से जोड़कर समन्तपञ्चकतीर्थ (कुरुक्षेत्र) में अन्त्येष्टि संस्कार किया। पितृगणोंने इन्हें आशीर्वाद दिया और उन्हींकी आज्ञासे इन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी प्रजापति कश्यपजीको दानमें दे दी और वीतराग होकर महेन्द्राचलपर तपस्या करने चले गये।

सीता-स्वयंवरमें श्रीरामद्वारा शिव-धनुष-भङ्ग किये जानेपर ये महेन्द्राचलसे शीघ्रतापूर्वक जनकपुर पहुँचे, किंतु इनका तेज श्रीराममें प्रविष्ट हो गया और ये अपना वैष्णव-धनु उन्हें देकर पुनः तपस्याके लिये महेन्द्राचलपर वापस लौट गये।

भगवान् परशुराम चिरजीवी हैं। ये अपने साधकों-उपासकों तथा अधिकारी महापुरुषोंको दर्शन देते हैं। इनकी साधना-उपासनासे भक्तोंका कल्याण होता है। देशमें अनेक स्थानोंपर भगवान् जमदग्निजीके तपस्या-स्थल एवं आश्रम हैं, माता रेणुकाजीके अनेक क्षेत्र हैं, प्रायः रेणुका माताके मन्दिरमें अथवा स्वतन्त्ररूपसे परशुरामजीके अनेक मन्दिर भारतभरमें हैं, जहाँ उनकी शान्त, मनोरम तथा उग्ररूप मूर्तिके दर्शन होते हैं। उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

१-महेन्द्रगिरि या महेन्द्राचल भगवान् परशुरामजीके प्रधान स्थानके रूपमें प्रसिद्ध है। भारतवर्षमें दो महेन्द्रगिरि माने जाते हैं। एक पूर्वी घाटपर तथा दूसरा पश्चिमी घाटपर। वाल्मीकिरामायणका महेन्द्रगिरि पश्चिमी घाटपर है, जहाँसे हनुमान्जी कूदकर लंकामें गये थे। दूसरा महेन्द्रगिरि, जो पुराणोंमें वर्णित है, पूर्वी घाटके उत्तरमें है और उड़ीसाके मध्यभागतक फैला हुआ है। पुराणोंके अनुसार यह परशुरामजीका निवास-स्थान बताया गया है। इस पर्वतपर स्थित परशुराम-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। इस पर्वतके पूर्वी ढालपर युधिष्ठिरका बनवाया हुआ मन्दिर बड़ा ही आकर्षक है। इससे थोड़ी दूर पूर्वमें ही पाण्डवोंकी माता कुन्तीका मन्दिर है। महेन्द्राचलकी भारतके सात कुलपर्वतों—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्रमें गणना है।

२-शिमलासे मोटर-बसद्वारा नाहन और वहाँसे उसी

प्रकार ददाहू जाकर वहाँसे गिरि नदीको पार करनेपर समीप ही रेणुका-तीर्थ मिलता है। वहींपर भगवान् परशुरामजीका एक मन्दिर तथा उन्हींके नामसे एक तालाब भी है। मन्दिरमें भगवान् परशुरामजीकी एक प्राचीन मूर्ति है।

३-शिमलासे ९० मील दूर बुशहर नामक एक स्थान है। वहाँसे सतलज नदीके उस पार ७ मील दूरीपर नृमुंड नामक स्थानमें अम्बिकादेवीका एक मन्दिर है। भगवान् परशुरामजीने यहाँ तपस्या की थी और देवीकी स्थापना की थी। यहाँ परशुरामजीने यज्ञ किया और बहुत-से ब्राह्मणोंको बसाया। नृमुंडमें एक गुफा है, उसीमें श्रीपरशुरामजीकी एक रजतमूर्ति है। गुफाके सम्मुख मन्दिर बना हुआ है। यहाँ परशुराम-मूर्तिको 'कालकाम परशुराम' कहते हैं। मन्दिरके चारों ओर प्राकार है। मन्दिरके द्वारके पास भैरवजीका मन्दिर है।

४-काम्पिल (फर्रुखाबाद जिले) में कपिल मुनिकी कुटी है और उससे नीचे उतरकर द्रौपदीकुण्ड है। इसीके समीप भगवान् परशुरामजीका एक प्राचीन मन्दिर है।

५-आगरासे मथुरा जानेवाली सड़कपर १० मील दूर 'रुनकता' ग्राम है। इसे रेणुका-क्षेत्र कहा जाता है। यहाँ एक ऊँचे टीलेके पास परशुरामजीका मन्दिर है।

६-दक्षिणमें रत्नागिरि जिलेके चिपलूण ग्रामसे दो मील दूर गोवलकोट नामक एक स्थान है। यह परशुराम-क्षेत्र

ाता है। यहाँ पहाड़ीके ऊपर समतल स्थान है। यहींपर ामजीका भव्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें भार्गवराम, ाम तथा कालाराम—इन तीन नामोंसे ख्यात परशुरामजी- न मूर्तियाँ हैं। यहाँ वैशाखकी अक्षय तृतीयाको परशुराम- का बड़ा समारोह होता है। इस मन्दिरके मार्गमें माता का एक छोटा मन्दिर है। पहाड़ीपर आगे शिखरपर का एक छोटा मन्दिर है।

।-दक्षिणमें मनमाडसे कुछ दूर चाँदवडके पास रेणुका-तीर्थ नामक सरोवर है। उसके समीप ही रेणुकादेवीका मन्दिर है। कहा जाता है कि परशुरामजीकी माता रेणुकाजीने यहाँ तप किया था।

८-बंगलौर-पूना लाइनपर धारवाड़ स्टेशनसे कुछ दूर परशुरामजीका एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि यहाँ महर्षि जमदग्निका आश्रम था। पर्वत-शिखरपर परशुरामजीकी माता रेणुकाजीका तपस्या-स्थल है। यहाँ दोनों नवरात्रोंमें विशेष समारोहके साथ अर्चा-महोत्सव होता है।

भगवान् श्रीरामके कुछ अर्चा-विग्रहोंके दर्शन

शके विभिन्न भागोंमें प्रायः सर्वत्र भगवान् श्रीरामकी अर्चा-पूजा होती है। यद्यपि उनके जो मन्दिर प्राप्त होते हैं, उ ांशतः सीता-राम, श्रीराम-सीता-लक्ष्मण तथा रामपञ्चायतनके रूपमें अर्चा-विग्रह दिखायी देते हैं तथापि कुछ विि भी उनकी पूजा, उपासना एवं आराधना होती है। उन्हींमेंसे कुछ नाम-रूपोंका यहाँपर विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

।विहारीजीके रूपमें दर्शन

ाम्रमोक्षदायिनी पुरियोंमें अयोध्यानगरीका नाम सर्वप्रथम है। यह भगवान्के वामपादाङ्गुष्ठसे उद्भूत पुण्यसलिला के पावन तटपर अवस्थित है। स्वायम्भुव मनुने म इस पुरीको बसाया था। पुराणोंके अनुसार यह चक्रपर स्थित है तथा 'भूतिशुद्धितत्त्व' के अनुसार यह न्द्रजीके धनुषाग्रपर स्थित है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् क भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओंकी यह राजधानी रही क्ष्वाकुसे श्रीरघुनाथजीतक सभी चक्रवर्ती नरेशोंने ाके सिंहासनको विभूषित किया है। भगवान् श्रीरामकी :-भूमि होकर तो अयोध्या साकेत हो गयी।

हाँका कनकभवन सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान है। यही प्रसिद्ध मन्दिर माना जाता है। जो ओड़छा-नरेशका ा हुआ है। इसे श्रीरामका अन्तःपुर या श्रीसीताजीका कहते हैं। इसमें मुख्य मूर्तियाँ श्रीसीता-रामकी हैं, जो जी या रघुनाथजी भी कहलाते हैं। ये मूर्तियाँ सिंहासनपर त हैं। सिंहासनपर जो बड़ी मूर्तियाँ हैं, उनके आगे ा-रामकी छोटी मूर्तियाँ हैं। छोटी मूर्तियाँ ही प्राचीन कही हैं। अनेक वस्त्रालङ्करणोंसे विभूषित भगवान्का यह अत्यन्त मोहक एवं आकर्षक है। यहाँ दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है।

भगवान् श्रीसीतारामके दर्शन

विहार-क्षेत्रमें मिथिलान्तर्गत सीतामढ़ी एक स्थान है, भगवती सीताकी जन्मस्थली मानी जाती है। राजा जन मिथिलाकी पवित्र भूमिपर जहाँ हल चलाया और भूि भगवती सीता प्रकट हुईं, वह स्थान सीतामहीके नामसे प्रसि हुआ, जिसे आजकल सीतामढ़ी कहा जाता है। यहाँ । सीतारामजीका प्राचीन मन्दिर है, यह जानकी-मन्दिरके ना भी विख्यात है। इस क्षेत्रमें इसकी बड़ी मान्यता है।

श्रीराम-जानकी

सीतामढ़ीसे कुछ दूरपर जनकपुर है। यह आजक नेपालमें अवस्थित है। यह प्राचीन मिथिलाकी राजधानी र

है। यहीं जगन्माता जानकीजीका आविर्भाव तथा लालन-पाल

हुआ। यहाँ पूर्वकालमें एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिर था, जहाँ सुवर्णमयी सीता तथा रामकी भव्य मूर्तियाँ स्थापित थीं। वर्तमानमें टीकमगढ़की रानी स्व० वृषभानु-कुँवरिजीके द्वारा एक विशाल मन्दिर निर्मित करवाया गया है, जो नौलखा जानकी-महल या शीशमहलके नामसे विख्यात है। इसीके परिसरमें सुनयना एवं जानकीके भी मन्दिर हैं। अनेक उपासक माताकी आराधना-उपासनासे अपनेको धन्य एवं सौभाग्यशाली समझते हैं। माताकी करुणावृष्टि अपने भक्तोंपर सदासे ही होती आयी है।

दूलह सरकारके रूपमें दर्शन

मिथिलामें श्रीरामकी अर्चा-पूजा और दर्शन दूलह सरकारके रूपमें प्रशस्त है। जनकपुरके निवासी और मिथिलाकी जनता भगवान् श्रीरामको दूलह सरकारके रूपमें देखकर कृतकृत्य होती है। जनकपुरमें दूलह सरकारका एक भव्य मन्दिर है, जहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी (विवाहपञ्चमी) पर भगवान् श्रीरामके विवाहका विशेष उत्सव मनाये जानेकी परम्परा है।

श्रीरामकुमारजीके दर्शन

चित्रकूटमें पुण्यतोया मन्दाकिनीके तटपर उस पार आचार्य-मन्दिर प्रतिष्ठित है, जिसमें भगवान् श्रीरामकुमारजी विराजमान हैं। यह रामानुजी सम्प्रदायका मन्दिर है। यहाँ विधि-विधानसे भगवान् श्रीरामकुमारजीके विग्रहका अर्चन-पूजन होता है।

कोदण्डरामस्वामीके रूपमें दर्शन

१-मद्राससे ५० मील दूर मदुरान्तकम् एक प्रसिद्ध नगर है। इस क्षेत्रका प्राचीन नाम बकुलारण्य था। यहाँ भगवान् श्रीरामजीका एक अत्यन्त प्राचीन विशिष्ट मन्दिर है, जिसमें 'कोदण्डराम' नामसे भगवान्की आराधना होती है। मन्दिरमें श्रीकरुणाकर भगवान् (विष्णु) तथा श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताजीके विग्रह हैं। मन्दिरके प्राङ्गणमें एक बकुल-वृक्ष है, जो रामानुजीय वैष्णवोंके लिये बोधिवृक्षके समान आदरणीय है। इसी वृक्षके नीचे श्रीरामानुजाचार्यजीने महापूर्णस्वामीजी महाराजसे दीक्षा ली थी।

बकुल-वृक्षाधिक्य इस बकुलारण्यमें विभाण्डक ऋषिका आश्रम था। भगवान् नारायणने ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंको अपना करुणाकर-विग्रह देकर उस आश्रमके पास आराधना करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीके पुत्र उस विग्रहकी आराधनासे मुक्त हुए। त्रेतामें लंकासे लौटते समय भगवान् श्रीराम यहाँ रुके थे। वे करुणाकर-मूर्ति अपने साथ अयोध्या ले गये। किंतु परमधामगमनसे पूर्व उन्होंने यह मूर्ति श्रीहनुमान्जीको देकर उसे पूर्वस्थानपर स्थापित करनेका आदेश दिया। हनुमान्जीने मूर्ति लाकर वहाँ प्रतिष्ठित कर दी। हनुमान्जीको सरोवरमें स्नान करते समय श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता माताकी मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। वे मूर्तियाँ भी करुणाकरजीके पास प्रतिष्ठित हो गयीं।

२-दक्षिण भारतमें रामगिरि नामक पर्वतपर कोदण्ड-रामस्वामीका एक मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकीजीकी खड़ी मूर्तियाँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि सुग्रीवका मधुवन यहीं था।

३-रामेश्वरम्से ५ मील दूर उत्तर समुद्रके किनारे-किनारे जानेपर रेतके मैदानमें भगवान् कोदण्डरामस्वामीका एक मन्दिर है। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तथा विभीषणकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, यहीं भगवान् श्रीरामने विभीषणका समुद्र-जलसे राजतिलक किया था।

४-मद्रास-वैजवाड़ा लाइनपर गूडूरसे २४ मील दूर नेल्लोर स्टेशन है। नेल्लोर नगरके दक्षिण एक विस्तृत सरोवर है। नेल्लोरसे १० मीलपर वचीरेडीपालम् नामक एक कस्बा

है। इसी कस्बेमें भगवान् कोदण्डराम[illegible]का एक [illegible]
यहाँ श्रीराम-सीता एवं लक्ष्मण[illegible] [illegible]रणोंने [illegible]

कहलाता है। यहाँ पहाड़ीके ऊपर समतल स्थान है। यहींपर परशुरामजीका भव्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें भार्गवराम, परशुराम तथा कालाराम—इन तीन नामोंसे ख्यात परशुरामजीकी तीन मूर्तियाँ हैं। यहाँ वैशाखकी अक्षय तृतीयाको परशुराम-जयन्तीका बड़ा समारोह होता है। इस मन्दिरके मार्गमें माता रेणुकाका एक छोटा मन्दिर है। पहाड़ीपर आगे शिखरपर दत्तात्रेयका एक छोटा मन्दिर है।

७-दक्षिणमें मनमाडसे कुछ दूर चाँदवडके पास रेणुका-तीर्थ नामक सरोवर है। उसके समीप ही रेणुकादेवीका मन्दि है। कहा जाता है कि परशुरामजीकी माता रेणुकाजीने यहाँ त किया था।

८-बंगलौर-पूना लाइनपर धारवाड़ स्टेशनसे कुछ द परशुरामजीका एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि या महर्षि जमदग्निका आश्रम था। पर्वत-शिखरपर परशुरामजीव माता रेणुकाजीका तपस्या-स्थल है। यहाँ दोनों नवरात्रों विशेष समारोहके साथ अर्चा-महोत्सव होता है।

भगवान् श्रीरामके कुछ अर्चा-विग्रहोंके दर्शन

देशके विभिन्न भागोंमें प्रायः सर्वत्र भगवान् श्रीरामकी अर्चा-पूजा होती है। यद्यपि उनके जो मन्दिर प्राप्त होते हैं, उन अधिकांशतः सीता-राम, श्रीराम-सीता-लक्ष्मण तथा रामपञ्चायतनके रूपमें अर्चा-विग्रह दिखायी देते हैं तथापि कुछ विशि रूपोंमें भी उनकी पूजा, उपासना एवं आराधना होती है। उन्हींमेंसे कुछ नाम-रूपोंका यहाँपर विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

कनकविहारीजीके रूपमें दर्शन

सप्तमोक्षदायिनी पुरियोंमें अयोध्यानगरीका नाम सर्वप्रथम आया है। यह भगवान्‌के वामपादाङ्गुष्ठसे उद्भूत पुण्यसलिला सरयूजीके पावन तटपर अवस्थित है। स्वायम्भुव मनुने सर्वप्रथम इस पुरीको बसाया था। पुराणोंके अनुसार यह सुदर्शनचक्रपर स्थित है तथा 'भूतिशुद्धितत्त्व' के अनुसार यह श्रीरामचन्द्रजीके धनुषाग्रपर स्थित है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओंकी यह राजधानी रही है। इक्ष्वाकुसे श्रीरघुनाथजीतक सभी चक्रवर्ती नरेशोंने अयोध्याके सिंहासनको विभूषित किया है। भगवान् श्रीरामकी अवतार-भूमि होकर तो अयोध्या साकेत हो गयी।

यहाँका कनकभवन सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान है। यही यहाँका प्रसिद्ध मन्दिर माना जाता है। जो ओड़छा-नरेशका बनवाया हुआ है। इसे श्रीरामका अन्तःपुर या श्रीसीताजीका महल कहते हैं। इसमें मुख्य मूर्तियाँ श्रीसीता-रामकी हैं, जो विहारीजी या रघुनाथजी भी कहलाते हैं। ये मूर्तियाँ सिंहासनपर प्रतिष्ठित हैं। सिंहासनपर जो बड़ी मूर्तियाँ हैं, उनके आगे श्रीसीता-रामकी छोटी मूर्तियाँ हैं। छोटी मूर्तियाँ ही प्राचीन कही जाती हैं। अनेक वस्त्रालङ्करणोंसे विभूषित भगवान्‌का यह विग्रह अत्यन्त मोहक एवं आकर्षक है। यहाँ दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ लगी रहती है।

भगवान् श्रीसीतारामके दर्शन

विहार-क्षेत्रमें मिथिलान्तर्गत सीतामढ़ी एक स्थान है, ज भगवती सीताकी जन्मस्थली मानी जाती है। राजा जनक मिथिलाकी पवित्र भूमिपर जहाँ हल चलाया और भूमि भगवती सीता प्रकट हुईं, वह स्थान सीतामहीके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जिसे आजकल सीतामढ़ी कहा जाता है। यहाँ एव सीतारामजीका प्राचीन मन्दिर है, यह जानकी-मन्दिरके नामर भी विख्यात है। इस क्षेत्रमें इसकी बड़ी मान्यता है।

श्रीराम-जानकी

सीतामढ़ीसे कुछ दूरपर जनकपुर है। यह आजकल नेपालमें अवस्थित है। यह प्राचीन मिथिलाकी राजधानी रहा

है। यहीं जगन्माता जानकीजीका आविर्भाव तथा लालन-पालन

हुआ। यहाँ पूर्वकालमें एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिर था, जहाँ सुवर्णमयी सीता तथा रामकी भव्य मूर्तियाँ स्थापित थीं। वर्तमानमें टीकमगढ़की रानी स्व० वृषभानु-कुँवरिजीके द्वारा एक विशाल मन्दिर निर्मित करवाया गया है, जो नौलखा जानकी-महल या शीशमहलके नामसे विख्यात है। इसीके परिसरमें सुनयना एवं जानकीके भी मन्दिर हैं। अनेक उपासक माताकी आराधना-उपासनासे अपनेको धन्य एवं सौभाग्यशाली समझते हैं। माताकी करुणावृष्टि अपने भक्तोंपर सदासे ही होती आयी है।

दूलह सरकारके रूपमें दर्शन

मिथिलामें श्रीरामकी अर्चा-पूजा और दर्शन दूलह सरकारके रूपमें प्रशस्त है। जनकपुरके निवासी और मिथिलाकी जनता भगवान् श्रीरामको दूलह सरकारके रूपमें देखकर कृतकृत्य होती है। जनकपुरमें दूलह सरकारका एक भव्य मन्दिर है, जहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी (विवाहपञ्चमी) पर भगवान् श्रीरामके विवाहका विशेष उत्सव मनाये जानेकी परम्परा है।

श्रीरामकुमारजीके दर्शन

चित्रकूटमें पुण्यतोया मन्दाकिनीके तटपर उस पार आचार्य-मन्दिर प्रतिष्ठित है, जिसमें भगवान् श्रीरामकुमारजी विराजमान हैं। यह रामानुजी सम्प्रदायका मन्दिर है। यहाँ विधि-विधानसे भगवान् श्रीरामकुमारजीके विग्रहका अर्चन-पूजन होता है।

कोदण्डरामस्वामीके रूपमें दर्शन

१-मद्राससे ५० मील दूर मदुरान्तकम् एक प्रसिद्ध नगर है। इस क्षेत्रका प्राचीन नाम बकुलारण्य था। यहाँ भगवान् श्रीरामजीका एक अत्यन्त प्राचीन विशिष्ट मन्दिर है, जिसमें 'कोदण्डराम' नामसे भगवान्‌की आराधना होती है। मन्दिरमें श्रीकरुणाकर भगवान् (विष्णु) तथा श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताजीके विग्रह हैं। मन्दिरके प्राङ्गणमें एक बकुल-वृक्ष है, जो रामानुजीय वैष्णवोंके लिये बोधिवृक्षके समान आदरणीय आश्रम था। भगवान् नारायणने ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंको अपना करुणाकर-विग्रह देकर उस आश्रमके पास आराधना करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीके पुत्र उस विग्रहकी आराधनासे मुक्त हुए। त्रेतामें लंकासे लौटते समय भगवान् श्रीराम यहाँ रुके थे। वे करुणाकर-मूर्ति अपने साथ अयोध्या ले गये। किंतु परमधामगमनसे पूर्व उन्होंने यह मूर्ति श्रीहनुमान्‌जीको देकर उसे पूर्वस्थानपर स्थापित करनेका आदेश दिया। हनुमान्‌जीने मूर्ति लाकर वहाँ प्रतिष्ठित कर दी। हनुमान्‌जीको सरोवरमें स्नान करते समय श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता माताकी मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। वे मूर्तियाँ भी करुणाकरजीके पास प्रतिष्ठित हो गयीं।

२-दक्षिण भारतमें रामगिरि नामक पर्वतपर कोदण्ड-रामस्वामीका एक मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकीजीकी खड़ी मूर्तियाँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि सुग्रीवका मधुवन यहीं था।

३-रामेश्वरम्‌से ५ मील दूर उत्तर समुद्रके किनारे-किनारे जानेपर रेतके मैदानमें भगवान् कोदण्डरामस्वामीका एक मन्दिर है। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तथा विभीषणकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, यहीं भगवान् श्रीरामने विभीषणका समुद्र-जलसे राजतिलक किया था।

४-मद्रास-वैजवाड़ा लाइनपर गूडूरसे २४ मील दूर नेल्लोर स्टेशन है। नेल्लोर नगरके दक्षिण एक विस्तृत सरोवर है। नेल्लोरसे १० मीलपर वचीरेडीपालम् नामक एक कस्बा

कहलाता है। यहाँ पहाड़ीके ऊपर समतल स्थान है। यहींपर परशुरामजीका भव्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें भार्गवराम, परशुराम तथा कालाराम—इन तीन नामोंसे ख्यात परशुरामजीकी तीन मूर्तियाँ हैं। यहाँ वैशाखकी अक्षय तृतीयाको परशुराम-जयन्तीका बड़ा समारोह होता है। इस मन्दिरके मार्गमें माता रेणुकाका एक छोटा मन्दिर है। पहाड़ीपर आगे शिखरपर दत्तात्रेयका एक छोटा मन्दिर है।

७-दक्षिणमें मनमाडसे कुछ दूर चाँदवडके पास रेणुका-तीर्थ नामक सरोवर है। उसके समीप ही रेणुकादेवीका मन्दिर है। कहा जाता है कि परशुरामजीकी माता रेणुकाजीने यहाँ तप किया था।

८-बंगलौर-पूना लाइनपर धारवाड़ स्टेशनसे कुछ दूर परशुरामजीका एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि यहां महर्षि जमदग्निका आश्रम था। पर्वत-शिखरपर परशुरामजीकी माता रेणुकाजीका तपस्या-स्थल है। यहाँ दोनों नवरात्रोंमें विशेष समारोहके साथ अर्चा-महोत्सव होता है।

भगवान् श्रीरामके कुछ अर्चा-विग्रहोंके दर्शन

देशके विभिन्न भागोंमें प्रायः सर्वत्र भगवान् श्रीरामकी अर्चा-पूजा होती है। यद्यपि उनके जो मन्दिर प्राप्त होते हैं, उनमें अधिकांशतः सीता-राम, श्रीराम-सीता-लक्ष्मण तथा रामपञ्चायतनके रूपमें अर्चा-विग्रह दिखायी देते हैं तथापि कुछ विशिष्ट रूपोंमें भी उनकी पूजा, उपासना एवं आराधना होती है। उन्हींमेंसे कुछ नाम-रूपोंका यहाँपर विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

कनकविहारीजीके रूपमें दर्शन

सप्तमोक्षदायिनी पुरियोंमें अयोध्यानगरीका नाम सर्वप्रथम आया है। यह भगवान्के वामपादाङ्गुष्ठसे उद्भूत पुण्यसलिला सरयूजीके पावन तटपर अवस्थित है। स्वायम्भुव मनुने सर्वप्रथम इस पुरीको बसाया था। पुराणोंके अनुसार यह सुदर्शनचक्रपर स्थित है तथा 'भूतिशुद्धितत्त्व' के अनुसार यह श्रीरामचन्द्रजीके धनुषाग्रपर स्थित है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओंकी यह राजधानी रही है। इक्ष्वाकुसे श्रीरघुनाथजीतक सभी चक्रवर्ती नरेशोंने अयोध्याके सिंहासनको विभूषित किया है। भगवान् श्रीरामकी अवतार-भूमि होकर तो अयोध्या साकेत हो गयी।

यहाँका कनकभवन सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान है। यही यहाँका प्रसिद्ध मन्दिर माना जाता है। जो ओड़छा-नरेशका बनवाया हुआ है। इसे श्रीरामका अन्तःपुर या श्रीसीताजीका महल कहते हैं। इसमें मुख्य मूर्तियाँ श्रीसीता-रामकी हैं, जो विहारीजी या रघुनाथजी भी कहलाते हैं। ये मूर्तियाँ सिंहासनपर प्रतिष्ठित हैं। सिंहासनपर जो बड़ी मूर्तियाँ हैं, उनके आगे श्रीसीता-रामकी छोटी मूर्तियाँ हैं। छोटी मूर्तियाँ ही प्राचीन कही जाती हैं। अनेक वस्त्रालङ्करणोंसे विभूषित भगवान्का यह विग्रह अत्यन्त मोहक एवं आकर्षक है। यहाँ दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ लगी रहती है।

भगवान् श्रीसीतारामके दर्शन

विहार-क्षेत्रमें मिथिलान्तर्गत सीतामढ़ी एक स्थान है, जो भगवती सीताकी जन्मस्थली मानी जाती है। राजा जनकने मिथिलाकी पवित्र भूमिपर जहाँ हल चलाया और भूमिसे भगवती सीता प्रकट हुई, वह स्थान सीतामहीके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जिसे आजकल सीतामढ़ी कहा जाता है। यहाँ एक सीतारामजीका प्राचीन मन्दिर है, यह जानकी-मन्दिरके नामसे भी विख्यात है। इस क्षेत्रमें इसकी बड़ी मान्यता है।

श्रीराम-जानकी

सीतामढ़ीसे कुछ दूरपर जनकपुर है। यह आजकल नेपालमें अवस्थित है। यह प्राचीन मिथिलाकी राजधानी रहा

है। यहीं जगन्माता जानकीजीका आविर्भाव तथा लालन-पालन

हुआ। यहाँ पूर्वकालमें एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिर था, जहाँ सुवर्णमयी सीता तथा रामकी भव्य मूर्तियाँ स्थापित थीं। वर्तमानमें टीकमगढ़की रानी स्व० वृषभानु-कुँवरिजीके द्वारा एक विशाल मन्दिर निर्मित करवाया गया है, जो नौलखा जानकी-महल या शीशमहलके नामसे विख्यात है। इसीके परिसरमें सुनयना एवं जानकीके भी मन्दिर हैं। अनेक उपासक माताकी आराधना-उपासनासे अपनेको धन्य एवं सौभाग्यशाली समझते हैं। माताकी करुणावृष्टि अपने भक्तोंपर सदासे ही होती आयी है।

दूलह सरकारके रूपमें दर्शन

मिथिलामें श्रीरामकी अर्चा-पूजा और दर्शन दूलह सरकारके रूपमें प्रशस्त है। जनकपुरके निवासी और मिथिलाकी जनता भगवान् श्रीरामको दूलह सरकारके रूपमें देखकर कृतकृत्य होती है। जनकपुरमें दूलह सरकारका एक भव्य मन्दिर है, जहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी (विवाहपञ्चमी) पर भगवान् श्रीरामके विवाहका विशेष उत्सव मनाये जानेकी परम्परा है।

श्रीरामकुमारजीके दर्शन

चित्रकूटमें पुण्यतोया मन्दाकिनीके तटपर उस पार आचार्य-मन्दिर प्रतिष्ठित है, जिसमें भगवान् श्रीरामकुमारजी विराजमान हैं। यह रामानुजी सम्प्रदायका मन्दिर है। यहाँ विधि-विधानसे भगवान् श्रीरामकुमारजीके विग्रहका अर्चन-पूजन होता है।

कोदण्डरामस्वामीके रूपमें दर्शन

१-मद्राससे ५० मील दूर मदुरान्तकम् एक प्रसिद्ध नगर है। इस क्षेत्रका प्राचीन नाम बकुलारण्य था। यहाँ भगवान् श्रीरामजीका एक अत्यन्त प्राचीन विशिष्ट मन्दिर है, जिसमें 'कोदण्डराम' नामसे भगवान्‌की आराधना होती है। मन्दिरमें श्रीकरुणाकर भगवान् (विष्णु) तथा श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताजीके विग्रह हैं। मन्दिरके प्राङ्गणमें एक बकुल-वृक्ष है, जो रामानुजीय वैष्णवोंके लिये बोधिवृक्षके समान आदरणीय है। इसी वृक्षके नीचे श्रीरामानुजाचार्यजीने महापूर्णस्वामीजी महाराजसे दीक्षा ली थी।

बकुल-वृक्षाधिक्य इस बकुलारण्यमें विभाण्डक ऋषिका आश्रम था। भगवान् नारायणने ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंको अपना करुणाकर-विग्रह देकर उस आश्रमके पास आराधना करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीके पुत्र उस विग्रहकी आराधनासे मुक्त हुए। त्रेतामें लंकासे लौटते समय भगवान् श्रीराम यहाँ रुके थे। वे करुणाकर-मूर्ति अपने साथ अयोध्या ले गये। किंतु परमधामगमनसे पूर्व उन्होंने यह मूर्ति श्रीहनुमान्‌जीको देकर उसे पूर्वस्थानपर स्थापित करनेका आदेश दिया। हनुमान्‌जीने मूर्ति लाकर वहाँ प्रतिष्ठित कर दी। हनुमान्‌जीको सरोवरमें स्नान करते समय श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता माताकी मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। वे मूर्तियाँ भी करुणाकरजीके पास प्रतिष्ठित हो गयीं।

२-दक्षिण भारतमें रामगिरि नामक पर्वतपर कोदण्ड-रामस्वामीका एक मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकीजीकी खड़ी मूर्तियाँ विराजमान हैं। कहा जाता है कि सुग्रीवका मधुवन यहीं था।

३-रामेश्वरम्‌से ५ मील दूर उत्तर समुद्रके किनारे-किनारे जानेपर रेतके मैदानमें भगवान् कोदण्डरामस्वामीका एक मन्दिर है। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तथा विभीषणकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, यहीं भगवान् श्रीरामने विभीषणका समुद्र-जलसे राजतिलक किया था।

४-मद्रास-वैजवाड़ा लाइनपर गूडूरसे २४ मील दूर नेल्लोर स्टेशन है। नेल्लोर नगरके दक्षिण एक विस्तृत सरोवर है। नेल्लोरसे १० मीलपर वचीरेडीपालम् नामक एक कस्बा

है। इसी कस्बेमें भगवान् कोदण्डरामस्वामीका एक मन्दिर है। यहाँ श्रीराम-सीता एवं लक्ष्मणजीकी अलङ्करणोंसे सुसज्जित

मूर्तियाँ अत्यन्त मनमोहक हैं। प्रतिवर्ष चैत्र-रामनवमीपर यहाँ विशाल मेला लगता है।

श्रीरूपनारायणनामसे भगवान् श्रीरामके दर्शन

श्रीनाथद्वारासे कुछ दूर भगवान् श्रीरामजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँकी अर्चा-मूर्ति श्रीरूपनारायणनामसे प्रसिद्ध है। भगवान्‌की मूर्ति श्यामवर्ण है।

यहाँ पहले देवाजी नामके परमभक्त थे। उस समय महाराणा उदयपुर यहाँ नित्य दर्शन करने आते थे और पुजारी उन्हीं भगवान्‌की धारण की हुई माला प्रसाद-रूपमें देते थे। एक दिन महाराणाके आनेमें देर हुई। पुजारीने भगवान्‌को शयन करा दिया और प्रसादी-माला स्वयं धारण कर ली। इतनेमें महाराणा पधारे, संकोचवश पुजारीने वह अपनी पहनी माला छिपाकर गलेसे निकालकर महाराणाको पहना दी। किंतु मालामें पुजारीका एक श्वेत केश रह गया। उसे देखकर महाराणाने पूछा—'क्या प्रभुके केश श्वेत होने लगे ? वे वृद्ध हो गये ?' भयवश पुजारीने 'हाँ' कह दिया। महाराजने दूसरे दिन आकर स्वयं जाँच करनेको कहा। पुजारीको भयके मारे नींद नहीं आयी। वे भगवान्‌से प्रार्थना करते रहे, रोते रहे। दूसरे दिन सचमुच भगवान्‌के केशोंमें कुछ श्वेत केश दीख पड़े। भक्तवत्सलने भक्तकी लाज रखी।

महाराणा दर्शन करने आये तो उन्हें संदेह हुआ कि श्वेत केश ऊपरसे चिपकाये गये हैं। उन्होंने एक केश उखाड़ा तो उसके साथ श्रीविग्रहसे रक्तकी बूँद निकल पड़ी। उस रात महाराणाको स्वप्नादेश हुआ कि कोई राणा गद्दीपर बैठनेके पश्चात् रूपनारायणजीका दर्शन नहीं कर सकेगा। गद्दीपर बैठनेसे पूर्व दर्शन करने युवराज जाया करते हैं।

पञ्चायतनरूपमें भगवान् श्रीराम

प्राचीन मिथिलाकी राजधानी जनकपुरमें भगवान् श्रीरामकी अनेक रूपोंमें विशेषरूपसे अर्चा-पूजा होती है। पराम्बा भगवती जगज्जननी जानकीजीकी आविर्भावस्थली होनेसे इसका अतुल माहात्म्य है। यहाँके जानकी-मन्दिर, लक्ष्मण-मन्दिर तथा श्रीराम-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्रीराममन्दिरमें जो पञ्चायतन-मूर्तियाँ हैं, उनके विषयमें इतिहास है कि महाभारत-युद्धके बाद मिथिलाका सम्पूर्ण प्रदेश निर्जन वनमें परिणत हो गया। एकान्त जानकर यहाँ सिद्ध-महात्मा तपस्या करने लगे। उन्हींमें संन्यासी चतुर्भुजगिरि भी एक थे। इन्होंने स्वप्नमें आदेश पाकर अक्षयवटके तलसे श्रीरामपञ्चायतन-मूर्ति निकालकर प्रतिष्ठित की। यह वटवृक्ष अभीतक राममन्दिरके घेरेमें विद्यमान है। जनकपुरके आदिप्रवर्तक महात्मा चतुर्भुजगिरिकी जीवित समाधिपर चतुर्भुजनाथ (श्रीशिव) स्थापित हैं।
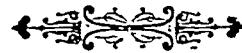
भगवान् श्रीकृष्णके विविध स्वरूपोंके दर्शन

भगवान् विष्णुकी सगुण-साकाररूपमें उपासना श्रीकृष्णरूपमें विशेष प्रशस्त है। बाँकेविहारीकी त्रिभङ्गी मोहक मुद्रा भक्तोंका मन बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। देशके कोने-कोनेमें इनके भक्त विद्यमान हैं तथा विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभिन्न रूपोंसे इनकी अर्चा-पूजा, उपासना-आराधना चलती रहती है। न केवल भारतमें ही अपितु विदेशोंमें भी अनेक भक्त परमप्रभु भगवान् श्रीकृष्णका गुणगान करते रहते हैं और वहाँ इनके अनेक मन्दिर भी हैं। भगवान् श्रीकृष्णके कहीं राधाकृष्ण-रूपमें तो कहीं बाँकेविहारीके रूपमें, कहीं गिरिराजरूपमें तो कहीं द्वारकाधीशरूपमें, कहीं विठ्ठलरूपमें तो कहीं वृन्दावन-विहारीरूपमें, कहीं राधा-रमण-रूपमें तो कहीं श्रीनाथरूपमें, कहीं श्रीजगन्नाथरूपमें तो कहीं अनेकानेक बाललीलाओंके रूपमें इनकी दिव्य मनोरम झाँकीके दर्शन होते हैं। यहाँ भगवान्‌के कुछ प्रमुख स्वरूपोंके संक्षिप्त परिचयके साथ उनके दर्शन करानेका प्रयत्न किया जा रहा है—

श्रीराधा-कृष्णके दर्शन

१-राधा-कृष्ण अपने भक्तों तथा उपासकोंके परमाराध्य हैं। भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीललितकिशोरीजीकी युगल-प्रतिमाएँ देशके प्रायः अनेक मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित हैं, जहाँ उनके दर्शनोंमें

दर्शनार्थी कृतकृत्य हो जाते हैं। भगवान्‌की लीलाभूमि—मथुरा-वृन्दावनमें सर्वत्र श्रीराधा-कृष्णकी युगल-मूर्तिके दर्शन होते हैं।

वृन्दावनमें श्रीराधा-दामोदरजीकी प्रतिमा अत्यन्त भव्य, मोहक एवं आकर्षक है।

२-गोरखपुरमें भगवान् श्रीराधाकृष्णका एक भव्य मन्दिर गीतावाटिकामें है। इसमें भगवान् श्रीराधाकृष्णके साथ बायीं

ओर भगवान् श्रीसीतारामकी युगल मूर्ति है और दूसरी ओर पराम्बा पार्वती तथा भगवान् श्रीसदाशिव विराजमान हैं। मन्दिरमें श्रीलक्ष्मीनारायण, राजराजेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरी, देवी सरस्वती, भगवान् गणपति, भगवान् सूर्यनारायण तथा भक्तराज हनुमान् भी विराजमान हैं। इन देवविग्रहोंकी स्थापना वि॰सं॰ २०४३ अक्षयतृतीयाको हुई थी। यह मन्दिर 'कल्याण'के आदिसम्पादक श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी कार्यस्थली गीतावाटिकामें स्थित है। यह एक अर्वाचीन मन्दिर होते हुए भी उपासना, भक्ति और श्रद्धाकी दृष्टिसे अपना विशेष महत्त्व रखता है।

बाँकेविहारीजीके दर्शन

वृन्दावनका यह मुख्य मन्दिर है। यहाँ नित्यप्रति सहस्रों दर्शनार्थी आते हैं। श्रीविहारीजी महाराज स्वामी श्रीहरिदासजीके सेव्य विग्रह हैं। विष्णुस्वामिसम्प्रदायका प्रमुख केन्द्र श्रीबाँकेविहारीजीका मन्दिर है। यह निधिवनके पास है। श्रीविहारीजीकी बाँकी अदाकी झाँकी प्रसिद्ध ही है। वृन्दावन ही नहीं, अपितु भारतके कोने-कोनेमें श्रीविहारीजीके मन्दिर हैं तथा सर्वत्र उनका यश सुनायी पड़ता है। 'श्रीवृन्दावन-विहारीलालकी जय' ऐसा बोलकर भक्तजन अपनी भक्तिभावनाको उनके श्रीचरणोंमें समर्पित करते हैं।

श्रीराधारमणजीके दर्शन

वृन्दावनमें निधिवनके पास श्रीराधा-रमणजीका मन्दिर है। ये श्रीराधारमण भगवान् श्रीश्रीचैतन्यदेवके कृपापात्र
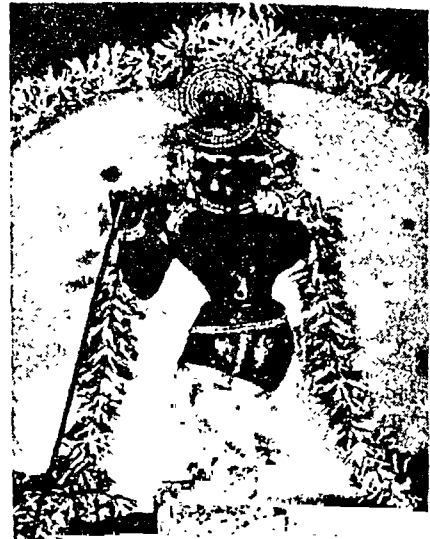
श्रीगोपालभट्टके आराध्य हैं। इनका श्रीविग्रह शालग्राम-शिलासे स्वतः प्रकट हुआ है। इन भगवान्‌की त्रिभङ्गी मूर्ति

अत्यन्त मोहक है, इनके सिरपर मोरमुकुट तथा अधरोंपर वंशी सुशोभित है।

श्रीराधावल्लभजीके दर्शन

वृन्दावनकी परिक्रमामें भगवान् श्रीराधावल्लभकी श्यामवर्ण, त्रिभङ्गी-मुद्रामें एक अत्यन्त मनोहर प्रतिमा है।

गिरिराजरूपमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन

भगवान् श्रीकृष्णकी गोवर्धन-लीला अत्यन्त प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णकी प्रेरणासे व्रजके ग्वाल-बालोंने इन्द्रके स्थानपर गिरिराजका पूजन करनेका निश्चय किया। विभिन्न प्रकारके ५६ भोग गिरिराजको अर्पण किये गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं गिरिराजरूपमें प्रकट होकर सरलचित्त व्रजवासियोंद्वारा प्रेममयी भावनासे निवेदित भोगको स्वीकार किया। वे स्वयं ही पूजक बन गये तथा स्वयं ही गिरिराजदेव भी। आज भी श्रीवृन्दावनधामके निकट गिरिराजपर्वतकी चौदह मीलकी परिक्रमा होती है। इस पवित्र एवं पुण्यदायक पर्वत-शृङ्खलाको भगवान् श्रीकृष्णका चिन्मय-विग्रह माना जाता है।

गोविन्ददेवजीके दर्शन

वृन्दावनमें श्रीरङ्गजीके मन्दिरके सम्मुख श्रीगोविन्द-देवजीका एक प्राचीन मन्दिर है। श्रीगोविन्ददेवजी व्रजनाथ-

द्वारा स्थापित थे, जिनकी मूर्ति श्रीरूपगोस्वामीजीको मिली थी। यवन-उपद्रवके समय यह मूर्ति जयपुर चली गयी और वहाँके राजप्रासादमें विद्यमान है। इसके पीछे अब गोविन्ददेवजी-का दूसरा भव्य मन्दिर है।
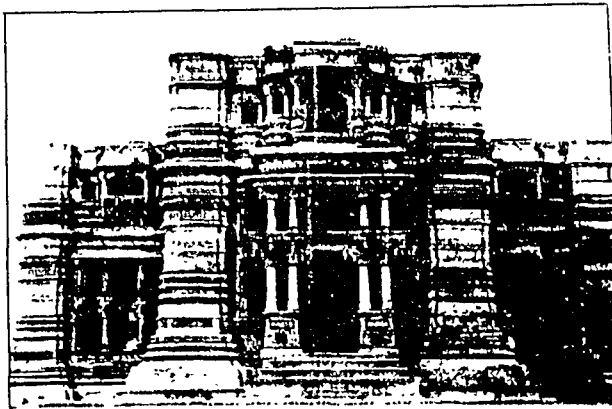
नन्दरायजीके दर्शन

मथुरासे नन्दगाँव लगभग २९ मील दूर है। यहाँ एक पहाड़ीपर श्रीनन्दजीका मन्दिर है, जिसमें नन्द, यशोद[ा] श्रीकृष्ण, बलराम, ग्वाल-बाल तथा श्रीराधाजीकी अत्य[न्त] मनोरम मूर्तियाँ हैं।

श्रीजगन्नाथजीके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन

श्रीजगन्नाथ चार परमधामोंमें एक है। पहले यह नीलाचल नामक पर्वत था और नीलमाधव भगवान्की मू[र्ति] थी, जिसकी देवता आराधना करते थे। वह पर्वत भूमिमें चल[ा] गया और भगवान्की वह मूर्ति देवता अपने लोकमें ले गये किंतु इस क्षेत्रको उन्हींकी स्मृतिमें अब भी नीलाचल कहते हैं श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके शिखरपर लगा चक्र 'नीलच्छत्र कहा जाता है। उस नीलच्छत्रके दर्शन जहाँतक होते हैं, व[ह] पूरा क्षेत्र जगन्नाथपुरी है।

इस क्षेत्रके श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी, शङ्खक्षेत्र, उत्कल एकाम्रक्षेत्र, विरजाक्षेत्र, ओड्र आदि अनेक नाम हैं।

यहाँ श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दि[र] दो परकोटोंके भीतर है। इसमें चारों ओर चार महाद्वार हैं

मुख्य मन्दिरके तीन भाग हैं। १-विमान या श्रीमन्दिर, जो सबसे ऊँचा है, इसीमें श्रीजगन्नाथजी विराजमान हैं। २-जगमोहन तथा ३-मुखशाला नामक मन्दिर। मुखशालाके आगे भोग-मण्डप है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके पूर्वमें सिंहद्वार, दक्षिणमें अश्वद्वार, पश्चिममें व्याघ्रद्वार और उत्तरमें हस्तिद्वार है।

भगवान्के निजमन्दिरके घेरेमें अनेक स्तम्भ एवं देवताओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मन्दिरके घेरेकी परिक्रमाके

बाद १६ फुट लम्बी, ४ फुट ऊँची एक वेदी है। इसे रत्नवेदी कहते हैं। वेदीके तीन ओर ३ फुट चौड़ी गली है, जिससे यात्री श्रीजगन्नाथजीकी परिक्रमा करते हैं। इस वेदीपर श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी मुख्य मूर्तियाँ विराजमान हैं। श्रीजगन्नाथजीका श्यामवर्ण है। वेदीपर एक ओर ६ फुट लम्बा सुदर्शनचक्र प्रतिष्ठित है। यहीं नीलमाधव, लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी छोटी मूर्तियाँ भी हैं।

श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी मूर्तियाँ अपूर्ण हैं। उनके हाथ पूरे नहीं बने हैं। मुखमण्डल भी पूर्णतया निर्मित नहीं है, इसके विषयमें एक कथा आती है

कथा—द्वापरमें द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी पटरानियोंने एक बार माता रोहिणीजीके भवनमें जाकर उनसे आग्रह किया कि वे उन्हें श्यामसुन्दरकी व्रजलीलाके गोपी-प्रेम-प्रसङ्गको सुनायें। माताने इस बातको टालनेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु पटरानियोंके आग्रहके कारण उन्हें वह वर्णन सुनानेको प्रस्तुत होना पड़ा। उचित नहीं था कि सुभद्राजी भी वहाँ रहें। अतः माता रोहिणीने सुभद्राजीको भवनके द्वारके बाहर खड़े रहनेको कहा और आदेश दे दिया कि वे किसीको भीतर न आने दें। संयोगवश उसी समय श्रीकृष्ण-बलराम वहाँ पधारे। सुभद्राजीने दोनों भाइयोंके मध्यमें खड़ी होकर अपने दोनों हाथ फैलाकर उनको भीतर जानेसे रोक दिया। बंद द्वारके भीतर जो व्रजप्रेमकी वार्ता हो रही थी, उसे द्वारके बाहरसे ही यत्किंचित् सुनकर तीनोंके ही शरीर द्रवित होने लगे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गये। देवर्षिने यह जो प्रेम-द्रवित रूप देखा तो प्रार्थना की—'आप तीनों इसी रूपमें विराजमान हों।' श्रीकृष्णचन्द्रने स्वीकार किया—'कलियुगमें दारुविग्रहमें इसी रूपमें हम तीनों स्थित होंगे।'

प्राचीन कालमें मालवदेशके नरेश इन्द्रद्युम्नको पता लगा कि उत्कलप्रदेशमें कहीं नीलाचलपर भगवान् नीलमाधवका देवपूजित श्रीविग्रह है। वे परम विष्णुभक्त उस श्रीविग्रहका दर्शन करनेके प्रयत्नमें लगे। उन्हें स्थानका पता लग गया; किंतु वे वहाँ पहुँचें इसके पूर्व ही देवता उस श्रीविग्रहको लेकर अपने लोकमें चले गये थे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दारुब्रह्मरूपमें तुम्हें अब श्रीजगन्नाथके दर्शन होंगे।

महाराज इन्द्रद्युम्न सपरिवार आये थे। वे नीलाचलके पास ही बस गये। एक दिन समुद्रमें एक बहुत बड़ा काष्ठ (महादारु) बहकर आया। राजाने उसे निकलवा लिया। उससे विष्णुमूर्ति बनवानेका उन्होंने निश्चय किया। उसी समय वृद्ध तक्षक-(बढ़ई)के रूपमें विश्वकर्मा उपस्थित हुए। उन्होंने मूर्ति बनाना स्वीकार किया, किंतु यह निश्चय करा लिया कि जबतक वे सूचित न करें, उनका वह गृह खोला न जाय, जिसमें वे मूर्ति बनायेंगे।

महादारुको लेकर वे (वृद्ध बढ़ई) गुंडीचामन्दिरके स्थान-पर भवनमें बंद हो गये। अनेक दिन व्यतीत हो गये। महारानीने आग्रह प्रारम्भ किया—'इतने दिनोंमें वह वृद्ध मूर्तिकार अवश्य भूख-प्याससे मर गया होगा या मरणासन्न होगा। भवनका द्वार खोलकर उसकी अवस्था देख लेनी चाहिये।' महाराजने द्वार खुलवाया। बढ़ई तो अदृश्य हो चुका था; किंतु वहाँ श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी असम्पूर्ण प्रतिमाएँ मिलीं। राजाको बड़ा दुःख हुआ मूर्तियोंके सम्पूर्ण न होनेसे, किंतु उसी समय आकाशवाणी हुई—'चिन्ता मत करो! इसी रूपमें रहनेकी हमारी इच्छा है। मूर्तियोंपर पवित्र द्रव्य (रंग आदि) चढ़ाकर उन्हें प्रतिष्ठित कर दो!' इस आकाशवाणीके अनुसार वे ही मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुईं। गुंडीचामन्दिरके पास मूर्ति-निर्माण हुआ था, अतः गुंडीचामन्दिरको ब्रह्मलोक या जनकपुर कहते हैं।

द्वारकामें एक बार श्रीसुभद्राजीने नगर देखना चाहा। श्रीकृष्ण तथा बलरामजी उन्हें पृथक् रथमें बैठाकर, अपने रथोंके मध्यमें उनका रथ करके उन्हें नगर-दर्शन कराने ले गये। इसी घटनाके स्मारक-रूपमें यहाँ रथयात्रा निकलती है।

उत्कलमें 'दुर्गा-माधव-पूजा' एक विशेष पद्धति ही है। अन्य किसी प्रान्तमें ऐसी पद्धति नहीं है। इसी पद्धतिके अनुसार श्रीजगन्नाथजीको भोग लगा नैवेद्य विमलादेवीको भोग लगता है और तब वह महाप्रसाद माना जाता है।

विशेषोत्सव—वैशाख शुक्ला तृतीयासे ज्येष्ठ कृष्णा ८ तक २१ दिन चन्दनयात्रा होती है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको रुक्मिणी-हरण-लीला, ज्येष्ठ पूर्णिमाको श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी स्नान-यात्रा तथा आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा होती है। यह यहाँका प्रधान महोत्सव है। तीन अत्यन्त विशाल रथोंपर क्रमशः श्रीबलरामजी,

सुभद्राजी एवं सुदर्शनचक्र तथा तीसरे रथपर श्रीजगन्नाथजी विराजमान होते हैं। यह यात्रा ९ दिनोंतक चलती है। श्रावण शुक्लपक्षकी दशमीसे झूलनयात्रा होती है। जन्माष्टमीको जन्मोत्सव आदि भी होते रहते हैं; इस प्रकार प्रायः पूरे वर्षभर प्रतिदिन कोई-न-कोई उत्सव यहाँ होता ही रहता है। रथयात्राके समय भगवान् गुंडीचामन्दिरमें पधारते हैं।

यहाँ भगवान्‌के प्रसादकी अत्यन्त महिमा है। यहाँके महाप्रसादमें उच्छिष्टता तथा स्पर्शास्पर्शका कोई दोष नहीं माना जाता है।

श्रीनाथजीके रूपमें दर्शन

राजस्थानमें उदयपुरसे लगभग ७ मील दूरीपर नाथद्वारामें भगवान् श्रीनाथजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यह वल्लभ-सम्प्रदायका प्रधान पीठ है। भारतके प्रमुख वैष्णव-पीठोंमें इसकी गणना है। कहते हैं यह मूर्ति पहले गोवर्धन पर्वतपर व्रजमें थी। श्रीवल्लभाचार्यजीके सामने ही यह विग्रह स्वयं प्रकट हुआ था। श्रीनाथजीने साक्षात् अनेकों लीलाएँ की हैं, जिनका वर्णन वार्ताग्रन्थोंमें मिलता है। मुसलमानी शासन-कालमें आक्रमणकी आशंकासे यह मूर्ति व्रजसे मेवाड़ आयी। कहा जाता है कि यहाँ सिहाड़ ग्राममें पीपल-वृक्षके नीचे श्रीनाथजी जिस गाड़ीमें आ रहे थे, उसके पहिये भूमिमें धँस गये, इससे समझा गया कि श्रीनाथजीकी यहीं रहनेकी इच्छा है, इसलिये वहीं मन्दिर बना। तभीसे इस क्षेत्रकी अत्यन्त प्रतिष्ठा हो गयी। यहाँ प्रसादकी बड़ी महिमा है।

रणछोड़रायके रूपमें द्वारकाधीशके दर्शन

१-श्रीरणछोड़रायजी ही द्वारकाधीश कहलाते हैं। भगवान् द्वारकाधीशकी पुरी द्वारकाधाम है। जो सप्तमोक्ष-दायिनी पुरियोंमें तथा चार धामोंमें परिगणित है। भगवान् श्रीकृष्णने जरासंधके आक्रमणके कारण रणभूमि छोड़कर मथुरासे यहाँ आकर चिरनिवास किया, इसलिये उनका 'रणछोड़राय' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। यहाँ द्वारकाधीशका त्रिलोकसुन्दर एक विशाल मन्दिर है, जिसके सम्बन्धमें किंवदन्ती है कि भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र वज्रनाभने इसे बनवाया था। इस मन्दिरकी शोभा देखते ही हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। मुख्य मन्दिरके गर्भगृहकी ऊँचाई १७० फुट है और सतमंजिले इस मन्दिरके शिखरकी शोभा अवर्णनीय है। इसीसे इस मन्दिरको 'विश्वमन्दिर' भी कहा जाता है।

मुख्य मन्दिरके गर्भगृहमें चाँदीके सिंहासनपर श्रीरणछोड़रायजीकी तीन फुट ऊँची श्याम-चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है। यात्रीलोग भगवान्‌का चरण-स्पर्श करके पुष्प-तुलसी आदि चढ़ाते हैं। सभा-मण्डपके एक ओर बलदेवजीकी मूर्ति है। मन्दिरके प्राङ्गणमें त्रिविक्रम भगवान्‌का अलग मन्दिर है। दूसरी ओर प्रद्युम्नजीका मन्दिर है। श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीमाधव, श्रीदत्तात्रेयके मन्दिर भी इस मन्दिरके दक्षिण-भागमें हैं।

२-गुजरातमें आनन्दसे १९ मील दूर डाकोर नामक स्थान है। यहाँ रणछोड़रायजीका विशाल मन्दिर है। मुख्य द्वारसे भीतर जानेपर चारों ओर खुला चौक है। बीचमें ऊँची बैठकपर मन्दिर है।

डाकोरके अनन्य भक्त श्रीविजयसिंह बोडाणा और उनकी पत्नी राँगाबाई वर्षमें दो बार दाहिने हाथमें तुलसी लेकर द्वारका जाते थे। वही तुलसीदल द्वारकामें रणछोड़रायको चढ़ाते थे। ७२ वर्षकी अवस्थातक उनका यह क्रम चला। जब भक्तमें चलनेकी शक्ति नहीं रही, तब भगवान्‌ने कहा—'अब तुम्हें आनेकी आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ आऊँगा।' इस प्रकार रणछोड़रायजी द्वारकासे डाकोर आये।

द्वारकाके पुजारियोंने मूर्ति वापस लानेका प्रयत्न किया, परंतु प्रभुने स्वप्नमें पुजारियोंको आदेश दिया—'अब लौट जाओ। वहाँ द्वारकामें छः महीनेके बाद श्रीवर्धिनी बावलीसे मेरी मूर्ति निकलेगी।' इस समय द्वारकामें वही बावलीसे निकली मूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रत्येक पूर्णिमा, विशेषकर शरत्पूर्णिमाको यहाँ दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ होती है। डाकोरकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है, यह मूर्ति चतुर्भुजी तथा पश्चिमाभिमुख खड़ी है।

३-श्रीद्वारकाधीशजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर काँकरौलीमें भी है। यह काँकरौली श्रीवल्लभ-सम्प्रदायके सात उपपीठोंमें एक मुख्य पीठ है। महाराजा अम्बरीष इसी मूर्तिकी आराधना करते थे।

४-जोधपुरमें खेड़ (क्षीरपुर) में रणछोड़रायजीका एक विशाल मन्दिर है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी संगमरमरसे

भगवान् श्रीकृष्णके विविध अर्चा-विग्रह
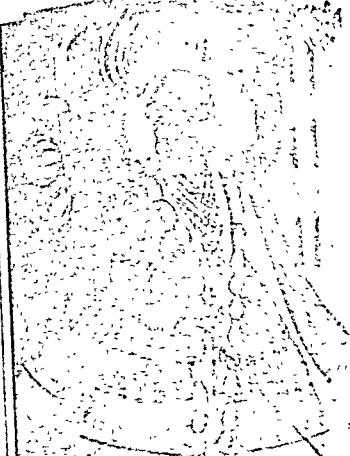
बनी चतुर्भुजी मूर्ति अत्यन्त मनोहर है। मन्दिरके गर्भगृहके

परिक्रमा-मार्गमें अष्ट दिक्पाल, वाराह, नृसिंह, गणेश, दत्तात्रेय, सूर्य एवं चन्द्र आदि देवताओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। गवाक्षोंके स्तम्भोंपर अष्टसिद्धियोंकी कलापूर्ण खण्डित मूर्तियाँ हैं।

५-माँगरोलमें भी भगवान् श्रीरणछोड़रायजीका एक भव्य अर्चा-विग्रह है। कहा जाता है कि भक्त नरसी मेहताके चाचा श्रीपर्वतराय मेहता माँगरोलसे प्रतिदिन तुलसी-मञ्जरी ले जाकर द्वारकामें श्रीरणछोड़रायको अर्पित करते थे। अड़सठ वर्षकी अवस्थामें जब उनके लिये इतनी लम्बी यात्रा प्रतिदिन सम्भव न रही, तब स्वयं द्वारकानाथ श्रीविग्रहरूपमें माँगरोलमें प्रकट हुए और गोमती-तीर्थ भी प्रकट हुआ। माँगरोलमें उसी समयका श्रीभगवान्‌का मन्दिर तथा पासमें गोमतीतीर्थ सरोवर है। यह स्थान समुद्रके तटपर है।

६-मथुरा भगवान् श्रीकृष्णकी आविर्भावस्थली एवं लीलाभूमि है। इसका प्राचीन नाम मधुपुरी अथवा मधुरा था।

मधु दैत्यको मारकर शत्रुघ्नजीने इस पुरीको पुनः प्रतिष्ठित किया था। देवर्षि नारदजीके उपदेशसे भक्त बालक ध्रुवने यहाँ त[illegible] की और उसे भगवद्दर्शन हुआ। यहाँ मथुरापुरीमें द्वा[illegible] धीशका एक प्राचीन मन्दिर है। इसकी सेवा-पूजा वल[illegible] सम्प्रदायके अनुसार होती है।

विट्ठलदेवजीके रूपमें दर्शन

१-महाराष्ट्रमें भीमानदी (चन्द्रभागा) के तटपर पंढ[illegible] भगवान् विट्ठलेशजीका एक विशाल मन्दिर है, जिसमें क[illegible] दोनों हाथ रखे भगवान् पंढरीनाथ खड़े हैं। मन्दिरके घेर[illegible] श्रीरखुमाई (रुक्मिणीजी) का मन्दिर है। इसके अति[illegible] बलराम, सत्यभामा तथा श्रीराधाजीके मन्दिर भी [illegible] श्रीविट्ठलमन्दिरमें प्रवेश करते समय द्वारके [illegible] चोखामेलाकी समाधि है। प्रथम सीढ़ीपर ही श्रीनामदेव[illegible] समाधि है। श्रीपंढरीनाथ महाराष्ट्रके संतोंके आराध्य हैं।

कथा—भक्त पुण्डरीक माता-पिताके परम सेवक [illegible] वे माता-पिताकी सेवामें लगे हुए थे, उस समय भग[illegible] श्रीकृष्ण उन्हें दर्शन देने पधारे। पुण्डरीकने भगवान्‌को [illegible] होनेके लिये एक ईंट सरका दी, किंतु माता-पिताकी [illegible] छोड़कर वे उठे नहीं; क्योंकि वे जानते थे कि माता-पि[illegible] सेवासे प्रसन्न होकर ही भगवान् उन्हें दर्शन देने पधारे [illegible] इससे भगवान् और भी प्रसन्न हुए। माता-पिताकी से[illegible] पश्चात् पुण्डरीक भगवान्‌के समीप पहुँचे और वरदान माँग[illegible] लिये प्रेरित किये जानेपर उन्होंने माँगा—'आप सदा यहाँ [illegible] रूपमें स्थित रहें।' तबसे प्रभु वहाँ श्रीविग्रहरूपमें स्थित हैं।

२-दक्षिण भारतमें मसुलीपटम्‌से लगभग ४ मील [illegible] समुद्रतटपर कीरपंढरपुर क्षेत्र है। वहाँके प्रसिद्ध [illegible]

धाम पंढरपुरके समान ही यहाँ श्रीपाण्डुरङ्ग (विट्ठल) जीका मन्दिर है और उसमें पंढरपुरके समान ही कटिपर हाथ रखे हुए श्रीविट्ठलजी खड़े हैं। उसी वेशमें श्रीरुक्मिणीजी भी अवस्थित हैं। यहाँ भी पंढरपुरके समान भक्त भगवान्‌के चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करते हैं। आषाढ़ शुक्ला दशमीसे पूर्णिमातक और कार्तिक शुक्ला दशमीसे पूर्णिमातक यहाँ विशाल महोत्सव होता है।

३-विजयनगर राज्यकी प्राचीन राजधानी हम्पीके समीप तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिण तटपर कुछ ऊँचाईपर भगवान् विट्ठलदेवजीके चरणचिह्न हैं। दोनों चरणोंके अग्रभाग परस्पर विपरीत हैं। कहते हैं कि भगवान् विट्ठल यहाँसे एक डगमें पंढरपुर गये और वहाँसे फिर लौटे।

४-बड़ौदा (गुजरात) में विट्ठलभगवान्‌का एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें भगवान् विट्ठलकी एक अत्यन्त आकर्षक एवं मोहक प्रतिमा है। यहाँ दूर-दूरसे यात्री दर्शनके लिये आते हैं।

चारभुजाजीके दर्शन

१-भगवान् श्रीकृष्णका एक सुन्दर चतुर्भुज-मूर्ति नाथद्वारेसे कुछ दूर काँकरोलीसे ६ मील दूर एक गाँवमें विराजमान है। चारभुजाजीका मन्दिर ऊँचाईपर है।

२-नागदा-कोटा लाइनपर रामगंज-मण्डीसे एक मील पश्चिम खैराबाद नामक स्थान है। यहाँसे १४ मील पश्चिम जंगलमें चारभुजाजीका एक मन्दिर है। समीपमें एक कुण्ड भी है। जन्माष्टमीको यहाँ मेला लगता है।

कल्याणरायजीके रूपमें श्रीकृष्ण-दर्शन

अजमेरसे १८ मील दूर किशनगढ़ स्टेशन है। यहाँसे ३ मील दूर सिरौला नामक स्थान है। यहाँ श्रीकल्याणरायजीका एक भव्य मन्दिर है। श्रीकल्याणरायजीका श्रीविग्रह व्रजमें गोवर्धनसे यहाँ यवनोंके शासनकालमें लाया गया था। यहाँपर वल्लभाचार्यजीका एक चित्रपट है, जिसे अकबर बादशाहने बनवाया था। यह चित्रपट श्रीकल्याणरायजीके मन्दिरमें ही

विद्यमान है। श्रीवल्लभाचार्यजीका यह एकमात्र वास्तविक हस्तचित्र है।

शामलाजीके दर्शन

शामलाजी श्रीकृष्णभगवान्‌के अर्चा-विग्रहका ही एक नाम है। शामलाजीको पहले गदाधरभगवान् कहते थे। यह चतुर्भुज-मूर्ति है। कहा जाता है कि यह राजा हरिश्चन्द्रद्वारा प्रतिष्ठित है। भगवान्‌का यह मनोरम विग्रह अहमदाबादसे

कुछ दूर शामला नामक स्थानपर एक मन्दिरमें स्थित है। मन्दिरके पास ही श्रीरणछोड़जी, गिरिधारीलाल तथा काशी-विश्वनाथजीके भी मन्दिर हैं।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके विविध रूप

भगवान् स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्मा ही इस चराचर-सृष्टिके स्रष्टा हैं। सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ होनेसे ये पितामह कहे जाते हैं। पृथ्वीदेवी जब भी असुरोंके अधर्मभारसे परिपीड़ित होती हैं तो वे देवताओंके साथ सृष्टिकर्ताके समीप जाकर अपना दुःख निवेदन करती हैं। भगवान् ब्रह्मा देवताओंके साथ उन जगदाधार परम प्रभुकी स्तुति करते हैं और जैसा भी भगवान्‌का आदेश होता है, वैसा कार्य करनेका आदेश वे देवताओंको देते हैं। इस प्रकार भगवान्‌के अधिकांश अवतार ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही होते हैं और उन अवतारोंके समय ब्रह्माजी समय-समयपर भगवान्‌की लीलाके दर्शन करने पधारते हैं। अपनी आराधना करनेवालोंको ये अलभ्य भी लभ्य करा देते हैं। भगवान् ब्रह्माकी तपस्यासे अनेकोंने दुर्लभ वर प्राप्त किये हैं। सृष्टिके आदिमें दीर्घ तपस्याके अनन्तर साक्षात् नारायणने दर्शन देकर जो तत्त्वज्ञान श्रीब्रह्माजीको दिया और उनके हृदयमें भगवान्‌के अनन्त दिव्य रूप, गुण तथा लीलाओंका जो प्रकाश हुआ था, उसी भगवत्तत्त्वका उपदेश ब्रह्माजीने देवर्षि नारदको दिया और वही उपदेश व्यासादिकी परम्परासे 'श्रीमद्भागवत' के रूपमें लोक-विस्तृत हुआ। परम भागवत ब्रह्माजीका जीवोंपर बड़ा अनुग्रह है। यद्यपि उनके मन्दिर बहुत अधिक उपलब्ध नहीं हैं, तथापि कुछ मन्दिरोंका यहाँ विवरण प्रस्तुत किया गया है, जिनमें प्रायः उनकी चतुर्भुज दिव्य प्रतिमा और कहीं-कहीं सावित्री तथा गायत्री माताके साथ उनका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है और भक्तगण उनका दर्शन करते हैं—

१-अजमेरसे ७ मील दूर प्रसिद्ध पुष्करतीर्थ है। यहाँ ब्रह्माजीने यज्ञ किया था। यहाँका मुख्य मन्दिर ब्रह्माजीका मन्दिर है। यह पुष्कर सरोवरसे थोड़ी ही दूरीपर है। मन्दिरमें चतुर्मुख ब्रह्माजीकी दाहिनी ओर सावित्रीदेवी तथा बायीं ओर गायत्रीदेवीका मन्दिर है। पास ही एक ओर सनकादि मुनियोंकी मूर्तियाँ हैं। एक छोटे मन्दिरमें नारदजी तथा हाथीपर बैठे हुए कुबेरकी मूर्तियाँ हैं। पुष्करमें सरस्वती नदीमें स्नानका विशेष महत्त्व है।

कथा—पद्मपुराणके अनुसार सृष्टिके आदिमें पुष्करतीर्थके स्थानमें वज्रनाभ नामक राक्षस रहता था। वह बालकोंको मार डाला करता था। उसी समय ब्रह्माजीके मनमें यज्ञ करनेकी इच्छा हुई। वे भगवान् विष्णुकी नाभिसे निकले कमलसे जहाँ प्रकट हुए थे, उस स्थानपर आये और वहाँ अपने हाथके कमलको फेंककर उन्होंने उससे वज्रनाभ राक्षसको मार दिया। ब्रह्माजीके हाथका कमल जहाँ गिरा था, वहाँ सरोवर बन गया। उसे पुष्कर कहते हैं।

चन्द्रनदीके उत्तर, सरस्वती नदीके पश्चिम, नन्दनस्थानके पूर्व तथा कनिष्ठपुष्करके दक्षिणके मध्यवर्ती क्षेत्रको यज्ञवेदी बनाया। इस यज्ञवेदीमें उन्होंने ज्येष्ठपुष्कर, मध्यमपुष्कर तथा कनिष्ठपुष्कर—ये तीन पुष्करतीर्थ बनाये। ब्रह्माके यज्ञमें सभी देवता तथा ऋषि पधारे। ऋषियोंने आस-पास अपने आश्रम बना लिये। भगवान् शंकर भी कपालधारी बनकर पधारे।
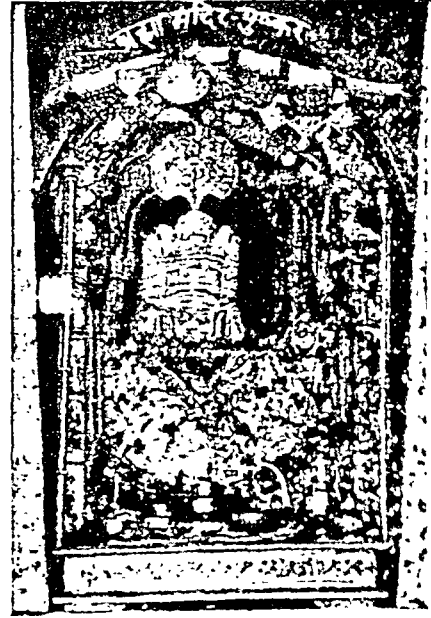
यज्ञारम्भमें सावित्रीदेवीके आनेमें देर हुई। यज्ञ-मुहूर्त बीता जा रहा था, इससे ब्रह्माजीने गायत्री नामकी एक गोपकुमारीसे विवाह करके उन्हें यज्ञमें साथ बैठाया। जब सावित्रीदेवी आयीं, तब गायत्रीको देखकर रुष्ट हो वहाँसे पर्वतपर चली गयीं और वहाँ उन्होंने दूसरा यज्ञ किया। कहा जाता है कि यहीं भगवान् वराह ब्रह्माजीके नासाछिद्रसे प्रकट हुए थे। अतः तीनों पुष्करतीर्थोंके अतिरिक्त ब्रह्माजी, [illegible]

कपालेश्वर शिव, पर्वतपर सावित्रीदेवी और ब्रह्माजीके यज्ञके प्रधान महर्षि अगस्त्य—ये इस क्षेत्रके मुख्य देवता हैं।

२-गुजरातमें अहमदाबादसे आगे खेड़ ब्रह्मा नामक स्थान है। यहाँ हिरण्याक्षी नदी बहती है। नदीके पास ब्रह्माजीका एक मन्दिर है। उसमें चतुर्मुख ब्रह्माजीकी एक मूर्ति है। पासमें एक कुण्ड तथा क्षीरजाम्बादेवीका मन्दिर है। पास ही भृगु-आश्रम है। कहा जाता है कि यहाँ ब्रह्माजीने यज्ञ तथा महर्षि भृगुने तप किया था, इसलिये इसे भृगुक्षेत्र भी कहते हैं।
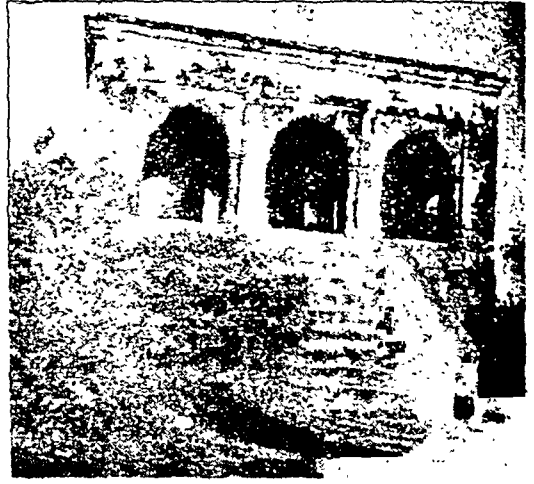
३-नर्मदा नदीके दक्षिण तटपर करोठासे ४ मील दूर जीगोर नामक एक स्थान है। कहते हैं कि यहाँ ब्रह्माजीने तपस्या की और ब्रह्मेश्वर नामक मन्दिरकी स्थापना कर ब्रह्मेश्वरमूर्ति प्रतिष्ठित की।

४-गयासे कुछ दूर ब्रह्मयोनिपर्वतपर ब्रह्माजीका एक मन्दिर है। इस पर्वतपर दो पत्थर गुफाके ढंगसे पड़े हैं। इन्हें

ब्रह्मयोनि और मातृयोनि कहते हैं। पर्वत-शिखरसे कुछ नीचे ब्रह्मकुण्ड नामक एक सरोवर है।

भगवान् शिवके विविध रूपोंके दर्शन

सच्चिदानन्दघन, योगेश्वर, भगवान् शंकर जगत्पति हैं, जगद्गुरु हैं, सभी विद्याओंके अधिष्ठाता तथा सभी भूत-प्राणियोंके ईश्वर हैं। वे देवताओंके भी देवता हैं, इसीलिये महादेव या महेश्वर भी कहे जाते हैं। उनके नाम, रूप और लीलाएँ अनन्त हैं। वेदादि शास्त्र उन्हींके गुणों एवं लीलाओंकी महिमाका गान करते हैं। वे वैराग्य, करुणा, प्रेम एवं ज्ञानकी मूर्ति हैं। ऐश्वर्यादि षड्गुणोंसे सम्पन्न वे आशुतोष अपने उपासकोंके प्राण हैं। उन परमशिवकी आराधना-उपासना अनादिकालसे अनेक रूपों, अनेक नामोंमें होती आ रही है। वे अपने भक्तों एवं उपासकोंको दर्शन देकर उनकी आराधना सफल बना देते हैं। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक थोड़ा-सा प्रेम एवं भक्ति, उनके पञ्चाक्षर-मन्त्रका थोड़ा-सा जप उन्हें संतुष्ट करनेके लिये पर्याप्त है, वे औढरदानी हैं।

उपासकोंकी भावनाके अनुसार भगवान् विभिन्न रूपोंमें दर्शन देते हैं और उनकी ध्येय-मूर्ति भी भिन्न-भिन्न दीखती है। वे ही शंकर कहीं ज्योतिर्लिङ्गरूपमें, कहीं रुद्ररूपमें, कहीं साम्ब-सदाशिवरूपमें, कहीं नन्दीश्वर, कहीं नटराज, कहीं अष्टतत्त्वात्मक-रूपमें पूजित होते हैं। कहीं अर्धनारीश्वररूपमें तो कहीं गौरीशंकर-रूपमें, कहीं पञ्चमुखी महादेवके रूपमें तो कहीं हरिहरात्मक-रूपमें, कहीं दक्षिणामूर्ति-रूपमें तो कहीं पार्थिवरूपमें प्रतिष्ठित होकर पूजित-अर्चित होते हैं। भारतके कोने-कोनेमें उनके विविध रूपोंमें अर्चा-विग्रह, स्थल एवं देवायतन प्राप्त होते हैं। यहाँ उनमेंसे कतिपय प्रमुख अर्चाविग्रहों एवं मन्दिरोंका संक्षिप्त परिचय तथा उनके दर्शन करानेका किञ्चित् प्रयास किया जा रहा है—

अष्टमूर्ति-स्वरूप भगवान् शिवके दर्शन

पञ्चभूतोंमें यह जगत् संगठित है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा इन्हीं अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त चराचरका बोध होता है। इन अष्टमूर्तियोंका समष्टिभूत एकत्व एवं अन्तर्भाव भगवान् शंकरमें स्पष्टरूपेण दृष्टिगत होता है। सम्भवतः इसीलिये भगवान् शिवका एक अत्यन्त प्रसिद्ध नाम 'अष्टमूर्ति' भी है। इन देवाधिदेवकी अष्टमूर्तियोंसे यह अखिल जगत् इस प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार सूतके धागेमें मणियाँ। भगवान् शिवकी इन अष्टमूर्तियोंके नाम क्रमशः शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान हैं। ये ही शर्व आदि मूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं।

शिवपुराणके अनुसार परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुए हैं। इन अष्टमूर्ति-स्वरूपका दर्शन, उपासना सभी कुछ अमित फलदायी है। भारतवर्षमें विभिन्न स्थानोंपर भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियाँ विद्यमान हैं, जिनका दिव्य दर्शन धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि पुरुषार्थ-चतुष्टयका प्रदाता तथा सर्वविध मङ्गलकारक है। लोकविश्रुत अष्टमूर्तिरूप भगवान् शिवका साक्षात्कार इस प्रकार किया जा सकता है—

१-भगवान् शिवकी पृथ्वी-मूर्ति—

एकाम्रनाथ-(क्षितिलिङ्ग—शिवकाञ्ची)

पञ्चमहाभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं, वे सभी दक्षिण भारतमें हैं। इनमेंसे श्यामवर्ण एकाम्रेश्वरका क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है। इस दिव्य विग्रहपर जल नहीं चढ़ाया जाता, अपितु चमेलीके तेलसे स्नान-अभिषेक कराया जाता है। प्रति सोमवारको भगवान्की सवारी निकलती है। काञ्चीकी गणना वैसे भी मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमें की जाती है। इस विग्रहके प्राकट्यके विषयमें एक बड़ी सुन्दर कथा आती है, जिसके अनुसार एक बार पार्वतीजीने कौतूहलवश चुपचाप पीछेसे आकर अपने दोनों हाथोंसे भगवान् शंकरके तीनों नेत्र बंद कर दिये। अतः भगवान् शंकरके नेत्रोंके बंद हो जानेके कारण त्रिलोकीमें अन्धकार छा गया। क्योंकि शिवके नेत्रोंसे ही सूर्य एवं चन्द्र ज्योति प्राप्त करते हैं। क्षणमात्रमें ही ब्रह्माण्ड-नाशकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। असमयमें ही इस प्रकारके अनुचित प्रलयकारी कार्यको देखकर शिवने इसके प्रायश्चित्तस्वरूप पार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश दिया। तदनुसार भगवती

उमाने बालुकामय लिङ्ग बनाकर कठोर तपस्या की और पुनः इस दोषसे निवृत्त हो भगवान् शिवका दिव्य सांनिध्य प्राप्त किया। शिवकाञ्चीका एकाम्रनाथ क्षितिलिङ्ग ही महादेवीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर-लिङ्ग है। इस लिङ्गके दर्शनसे अभिलषित ऐश्वर्य एवं अक्षय-कीर्तिकी प्राप्ति सुनिश्चित है।

२-भगवान् शिवकी जल-मूर्ति—

(श्रीजम्बुकेश्वरमहादेव)

दक्षिण भारतके पञ्चतत्त्वलिङ्गोंमें जम्बुकेश्वर आपोलिङ्गम् (जलतत्त्वलिङ्ग) माना जाता है। मद्रास प्रान्तके त्रिचिनापल्लीमें श्रीरङ्गम्से एक मील दूरीपर एक जलप्रवाहके ऊपर जम्बुकेश्वर-लिङ्ग स्थापित है। लिङ्गमूर्तिके नीचेसे बराबर जल

ऊपर आता रहता है। इस मन्दिरके पीछे एक चबूतरेपर जामुनका एक प्राचीन वृक्ष है। इसी वृक्षके कारण इस मन्दिर तथा शिवलिङ्गका नाम जम्बुकेश्वर पड़ा। कहा जाता है कि आदिशंकराचार्यने इनका पूजन-आराधन किया था।

यहाँ पहले जामुनके अनेक वृक्ष थे। एक ऋषि यहाँपर शंकरजीकी आराधना करते थे। जम्बूवनमें तपस्या करते हुए निवास करनेके कारण वे जम्बू ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हो गये। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें दर्शन दिया और उनकी प्रार्थनापर यहाँ लिङ्ग-विग्रहके रूपमें प्रतिष्ठित हुए।

आस-पासके जामुनके वृक्षोंके पत्ते शिवलिङ्गपर गिरा करते थे। इनसे उसे बचानेके लिये एक मकड़ी मूर्तिके ऊपर प्रतिदिन जाला बना देती थी। एक हाथी सूँड़में जल लाकर मूर्तिका अभिषेक करता था। भगवान्‌की मूर्तिपर मकड़ीका जाला देखकर हाथीको बुरा लगता था। उधर मकड़ीको भी बुरा लगता था कि हाथी बार-बार पानी डालकर उसका जाला बहा देता है। इस प्रकार दोनोंमें प्रतिस्पर्धा हो गयी। हाथीने एक दिन मकड़ीको मार डालनेके लिये सूँड़ बढ़ाया तो मकड़ी हाथीकी सूँड़में चली गयी। फल यह हुआ कि दोनों मर गये। दोनोंके भाव शुद्ध थे। भगवान् शंकरने दोनोंको अपने निज-जनके रूपमें स्वीकार किया। भगवान् सर्वदा अपने भक्तोंका उद्धार करते हैं।

३-शिवकी अग्नि-मूर्ति—(तेजोलिङ्ग, अरुणाचल)

अरुणाचलम्‌का ही तमिल नाम तिरुवण्णमलै है। यहाँ भगवान् महादेवका दिव्य अग्निस्वरूप तेजोलिङ्ग अवस्थित है। कहा जाता है कि जब पार्वतीजीके द्वारा भगवान् शंकरके नेत्रोंको कौतुकमें बंद करनेसे अन्धकार-ही-अन्धकार सर्वत्र व्याप्त हो गया, तब प्रायश्चित्त-स्वरूप भगवती महादेवीने पहले शिवकाञ्ची एवं तत्पश्चात् अरुणाचलतीर्थमें पहुँचकर कुछ कालतक कठोर तपस्या की थी। तत्पश्चात् अरुणाचल पर्वतपर अग्निशिखाके रूपमें एक तेजःस्वरूप अलौकिक लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे जगत्‌का अन्धकार दूर हो गया। यही अग्नि-स्वरूप तेजोलिङ्ग है। कार्तिक पूर्णिमाके समय यहाँ दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ होती है। अरुणाचलेश्वर मन्दिरका गोपुर दक्षिण भारतका सबसे चौड़ा गोपुर है। अनेक गोपुर पार करनेके बाद अरुणाचलेश्वरका निजमन्दिर है। निजमन्दिरमें पाँच द्वारोंके भीतर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। इस मन्दिरकी परिक्रमामें पार्वती, गणेश, नवग्रह, दक्षिणामूर्ति, शिव-भक्तगण तथा नटराज आदि देवताओंके दर्शन होते हैं।

४-भगवान् शिवकी वायु-मूर्ति—(श्रीकालहस्तीश्वर—तिरुपति)

तिरुपति बालाजीसे कुछ ही दूर उत्तर आर्कट जिलेमें स्वर्णमुखी नदीके तटपर कालहस्तीश्वर—वायुलिङ्ग है। इनके मन्दिरके गर्भगृहमें वायु और प्रकाशका सर्वथा अभाव है। भगवान्‌के दर्शन भी दीपकके सहारे होते हैं। यह स्थान शास्त्रानुसार वायुलिङ्गका कहा गया है। प्रचलित मान्यताके अनुसार यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव विराजमान रहते हैं। यहाँकी शिव-मूर्ति गोल नहीं अपितु चौकोर है। इस शिवमूर्तिके सामने एक मूर्ति कण्णप्प भीलकी है। इस महान् शिवभक्तने अपने दोनों नेत्र भगवान् आशुतोषको अर्पण करके उनके सेवार्थ सदा उनके समक्ष उपस्थित रहनेका वरदान प्राप्त किया था। कहा जाता है कि वाराणसीकी भाँति यहाँ भी शिवजी मरनेवालोंके कानमें 'तारक-मन्त्र' सुनाकर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं। ऐसी भी चर्चा है कि सर्वप्रथम मकड़ी, सर्प तथा हाथीने यहाँ भगवान् शंकरकी आराधना की थी। उनके नामपर ही (श्री—मकड़ी, काल—सर्प, हस्ती—हाथी) श्रीकालहस्तीश्वर नाम पड़ा। मन्दिरमें ही भगवती पार्वतीका मन्दिर है। परिक्रमामें अनेक देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके समीप ही पहाड़ीपर प्रसिद्ध शिवभक्त कण्णप्पका कण्णप्पेश्वर-मन्दिर है, जिसकी कथा इस प्रकार है—

शिवभक्त कण्णप्पकी कथा—प्राचीन कालमें दो भील-कुमार वनमें आखेट करने आये। उनमें एकका नाम नील और दूसरेका नाम फणीश था। उन्होंने वनमें एक पहाड़ीपर भगवान् शंकरकी लिङ्ग-मूर्ति देखी। पूर्वजन्मोंके संस्कारवश नील हठपूर्वक उस मूर्तिकी रक्षाके लिये वहीं रह गया और फणीश अपने साथीको जब समझा न सका, तब लौट गया।

नीलने धनुष-बाण लेकर रात्रिभर मूर्तिका इसलिये पहरा दिया कि कोई वनपशु भगवान्‌को कष्ट न दे। प्रातः वह वनमें चला गया। जब वह दोपहरके लगभग लौटा, तब उसके एक हाथमें धनुष तथा दूसरेमें भुना मांस था, मस्तकके केशोंमें कुछ फूल खोंसे हुए थे और मुखमें जल भरा था। दोनों हाथ रिक्त न होनेसे भीलकुमार नीलने पैरसे ही मूर्तिपर चढ़े बिल्वपत्र तथा पुष्प हटाये। मुखके जलसे कुल्ला करके भगवान्‌को स्नान कराया। बालोंमें लगे पुष्प मूर्तिपर चढ़ा दिये तथा वह भुने मांसका दोना भोग लगानेके लिये रख दिया। स्वयं धनुष-बाण लेकर मन्दिरके बाहर पहरा देने बैठ गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब नील जंगलमें गया हुआ था,

मन्दिरके पुजारी आये। उन्होंने मन्दिरको मांसखण्डोंसे दूषित देखा। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। नीचेसे जल लाकर पूरा मन्दिर धोया और पूजा करके चले गये। उनके जानेपर नील वनसे लौटा। उसने अपने ढंगसे पहले दिनके समान पूजा की। कई दिन यह क्रम चलनेपर पुजारीको बड़ा दुःख हुआ कि प्रतिदिन कौन मन्दिर दूषित कर जाता है। वे पूजाके पश्चात् मन्दिरमें ही उसे देखनेके लिये छिपकर बैठ गये।

उस दिन नील लौटा तो उसे मूर्तिमें भगवान्‌के नेत्र दीखे। एक नेत्रसे रक्तधारा बह रही थी। क्रोधके मारे नीलने दोना भूमिपर रख दिया और धनुष चढ़ाकर भगवान्‌को आघात पहुँचानेवालेको ढूँढ़ने निकला। जब उसे कोई न मिला, तब वह जड़ी-बूटियोंका ढेर ले आया। उसने अपनी जानी-बूझी सब जड़ी-बूटियाँ लगाकर देखी, किंतु भगवान्‌के नेत्रका रक्तप्रवाह बंद नहीं हुआ। सहसा नीलको स्मरण आया कि वृद्ध भील कहते हैं—'मनुष्यके घावपर मनुष्यका ताजा चमड़ा लगा देनेसे घाव शीघ्र भर जाता है।' नीलकी समझमें आया कि नेत्रके घावपर नेत्र लगाना चाहिये। उसने बिना हिचक बाणकी नोक घुसाकर अपनी एक आँख निकाल ली और मूर्तिके नेत्रपर रखकर उसे दबा दिया। मूर्तिके नेत्रसे रक्त बहना बंद हो गया। पुजारी तो उसके इस अद्भुत त्यागको देखकर दंग रह गये।

सहसा नीलने देखा कि मूर्तिके दूसरे नेत्रसे रक्त बहने लगा है। औषध ज्ञात हो चुकी थी। नीलने मूर्तिके उस नेत्रपर अपने पैरका अँगूठा रखा, जिससे दूसरा नेत्र निकाल लेनेपर अंधा होकर भी उस स्थानको वह पा सके। बाणकी नोक उसने अपने दूसरे नेत्रमें लगायी। इतनेमें तो मन्दिर प्रकाशसे भर गया। भगवान् शंकर साक्षात् प्रकट हो गये। उन्होंने नीलका हाथ पकड़ लिया। भीलकुमार नीलको भगवान् अपने साथ शिवलोक ले गये। नीलका नाम उसी समयसे कण्णप्प हुआ। (तमिलमें 'कण्ण' नेत्रको कहते हैं) पुजारीजी भी भगवान्‌के तथा उनके भोले भक्तके दर्शन करके धन्य हो गये।

भक्त कण्णप्पकी प्रशंसामें भगवान् आदिशंकराचार्यका निम्नलिखित श्लोक स्मरणीय है—

मार्गावर्तितपादुका पशुपतेरङ्गस्य कूर्चायते
गण्डूषाम्बुनिषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेकायते।
किंचिद् भक्षितमांसशेषकवलं नव्योपहारायते
भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते॥

(शिवानन्दलहरी ६३)

'रास्तेमें ठुकरायी हुई पादुका ही भगवान् शंकरके अङ्ग झाड़नेकी कूची बन गयी, आचमन (कुल्ले) का जल ही उनका दिव्याभिषेक-जल हो गया और उच्छिष्ट मांसका ग्रास ही नवीन उपहार—नैवेद्य बन गया। अहो! भक्ति क्या नहीं कर सकती? इसके प्रभावसे एक जंगली भील भी भक्तावतंस—भक्तश्रेष्ठ बन गया।'

५-भगवान् शिवकी आकाशमूर्ति—(आकाश-लिङ्ग—चिदम्बरम्)

भगवान् शिव आकाशलिङ्गरूपसे कावेरी नदीके तटपर समुद्र-तटसे प्रायः दो-तीन मीलके अन्तरपर चिदम्बरम्‌में विराजते हैं। यहाँ मूल मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। एक दूसरे
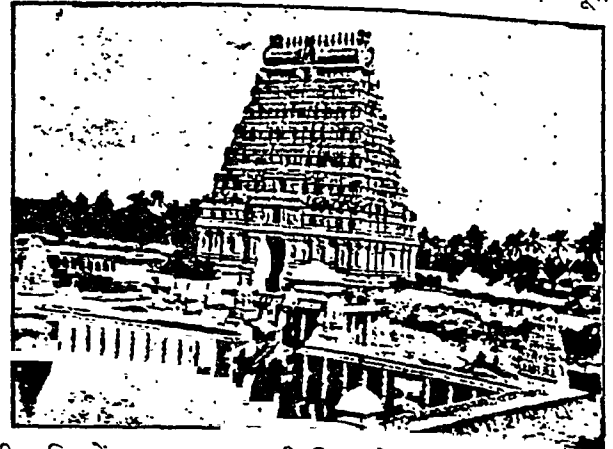
ही मन्दिरमें ताण्डव-नृत्यकारी चिदम्बरेश्वर नटराजकी मनोरम मूर्ति विद्यमान है। चिदम्बरम्‌का अर्थ है—चित्=ज्ञान+अम्बर=आकाश, चिदाकाश। बगलमें ही एक मन्दिरमें शेषशायी विष्णुभगवान्‌के दर्शन होते हैं। शंकरजीके मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणावर्त शङ्ख रखा हुआ है, जो गजमुक्ता, नागमणि और एकमुखी रुद्राक्षकी भाँति अमूल्य और अलभ्य माना जाता है। मन्दिरमें एक ओर एक परदा-सा पड़ा रहता है। परदा उठाकर दर्शन करनेपर स्वर्णनिर्मित कुछ मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यही भगवान् शिवका आकाशलिङ्ग है।

६-भगवान् शिवकी सूर्य-मूर्ति

शास्त्रों एवं धर्मग्रन्थोंके अनुसार सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं।

शिव और सूर्यमें पूर्णतया अभेद है—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

इस प्रकार सूर्य एवं शिवमें कोई भेद नहीं दृष्टिगत होता। अतः प्रत्येक सूर्यमन्दिर भगवान् शिवकी सूर्यमूर्तिका परिचायक है।

७-भगवान् शिवकी चन्द्र-मूर्ति—(सोमनाथ—काठियावाड़ एवं चन्द्रनाथ-बंगाल)

काठियावाड़के सोमनाथ एवं बंगालमें चटगाँवके समीपस्थ चन्द्रनाथ भगवान् शिवकी चन्द्रमूर्तिके प्रतीक हैं। सोमनाथका मन्दिर प्रभासक्षेत्रमें है। चन्द्रनाथ बंगालके चटगाँव नगरसे उत्तर-पूर्वमें पर्याप्त दूरीपर एक पर्वतपर स्थित हैं।

८-भगवान् शिवकी यजमान-मूर्ति—(पशुपतिनाथ—नेपाल)

नेपालके पशुपतिनाथ महादेव भगवान् शिवकी अष्ट-मूर्तियोंमें यजमानमूर्तिके प्रतीक हैं। यहाँ श्रीपशुपतिनाथ लिङ्गरूपमें नहीं, अपितु मानुषी-विग्रहके रूपमें विराजमान हैं। महिषरूपधारी भगवान् शिवका यह शिरोभाग है। पास ही एक मण्डपमें नन्दीकी मूर्ति है तथा समीपमें ही देवताका विशाल मन्दिर है। मन्दिर चीनी और जापानी ढंगपर बना हुआ है और नेपाल राज्यकी राजधानी काठमाण्डूमें बागमती नदीके दक्षिण तटपर आर्यघाटके समीप अवस्थित है। मूर्ति स्वर्ण-निर्मित
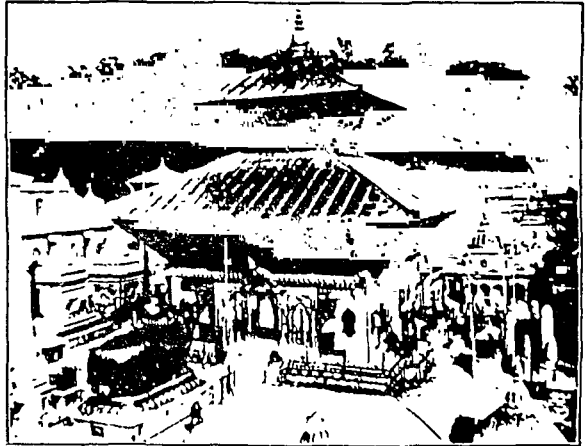
पञ्चमुखी है। इसके आस-पास चाँदीका जँगला है। महाशिव-रात्रिके अवसरपर भगवान् पशुपतिनाथके दिव्य दर्शनका माहात्म्य अवर्णनीय है।

सर्वभूतों और आत्मामें ब्रह्म अथवा शिवका दर्शन किये बिना जन्म-मरणसे मुक्ति नहीं होती। इस भावकी उत्पत्तिके लिये ही शिवकी अष्टमूर्तियाँ वन्दनीय एवं सतत पूजार्ह हैं। वास्तवमें जीव-देह ही शिवालय है। मायासे मुक्त जीव सदाशिवका ही प्रतीक है। अज्ञानरूप निर्माल्यका त्याग करके **'सोऽहम्'** भावसे स्वयंको उनके श्रीचरणोंमें समर्पित करना ही मोक्षरूप शिवत्वकी प्राप्ति है।

द्वादशज्योतिर्लिङ्ग-स्वरूप भगवान् शिवके दिव्य दर्शन

भगवान् शिव अक्षर, अव्यक्त, असीम, अनन्त एवं परात्पर ब्रह्म हैं। उनका देवस्वरूप सभीके लिये वन्दनीय है। शिवपुराणके अनुसार सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये भगवान् शंकर लिङ्गरूपसे विविध तीर्थोंमें निवास करते हैं। भक्तोंकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन्हीं-उन्हीं स्थानोंमें आविर्भूत हुए और ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें सदाके लिये विद्यमान हो गये। पृथ्वीपर वर्तमान शिवलिङ्गोंकी संख्या असंख्य है तथापि इन सभीमें द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंकी प्रधानता है। शिवपुराणमें इन द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंके स्थान-निर्देशके साथ-साथ कहा गया है कि जो इन बारह नामोंका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है उसके सात जन्मोंके किये हुए पापोंका विनाश हो जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारं परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

(शिवपु॰ ज्ञा॰ सं॰ अ॰ ३८)

द्वादश लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका दर्शन निम्नाङ्कितरूपमें किया जा सकता है—

१-भगवान् सोमनाथ—(प्रभासक्षेत्र)

भगवान् सोमनाथ अपने दिव्यरूपमें काठियावाड़ प्रदेशान्तर्गत श्रीप्रभासक्षेत्रमें विराजते हैं। पुराणोंमें कथा आती है कि दक्ष प्रजापतिने अपनी सत्ताईस कन्याओंका विवाह

चन्द्रमाके साथ किया था। परंतु चन्द्रमा रोहिणीके प्रति विशेष अनुराग रखते थे। इससे दक्षकी अन्य कन्याएँ प्रायः दुःखी रहा करती थीं। दक्षने चन्द्रमाको क्षयी होनेका शाप दे दिया। चन्द्रमाके क्षयग्रस्त हो जानेपर सम्पूर्ण सृष्टिमें हाहाकार मच गया। सभी देवता इस समस्याके निराकरण-हेतु भगवान् प्रजापति ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने कहा—'चन्द्रमा सभी देवोंके सहित प्रभास-तीर्थमें भगवान् मृत्युञ्जयकी आराधना करें। शिवके प्रसन्न होनेपर रोगमुक्ति सहजमें ही हो जायगी।' सभी देवोंने चन्द्रमाके साथ भगवान् शंकरकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया। शिवजीने चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान करते हुए क्रमशः पूर्ण एवं क्षीण होनेका वर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रादि देवगणोंकी प्रार्थनापर भगवान् आशुतोष भवानीसहित इस क्षेत्रमें ज्योतिर्लिङ्ग-रूपमें सदा निवास करने लगे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थोंमें इसकी महिमाका विशेष वर्णन हुआ है। भगवान् सोमनाथका ज्योतिर्लिङ्ग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें है, जिसमें निरन्तर दीप जलता रहता है।

(क) भगवान् चन्द्रनाथ-सोमनाथ (चटगाँव-बंगाल)

काठियावाड़का सोमनाथस्वरूप एवं बंगालके चन्द्रनाथ—ये दोनों ही शिवकी सोममूर्तिके प्रतीक हैं। श्रीचन्द्रनाथ शिव बंगालके चटगाँव नगरसे प्रायः ३४ मील उत्तर-पूर्वमें एक पर्वतपर स्थित हैं। स्थानका नाम सीताकुण्ड है। श्रीचन्द्रनाथका मन्दिर पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर है। देवीपुराणके चैत्रमाहात्म्यके अनुसार यह तेरहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग है। जो पहले गुप्त था, पर कलिकालमें लोकहितार्थ प्रकट हुआ है। शास्त्रोंके अनुसार भगवान् शिवके इस विग्रहका दर्शन मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है।

(ख) जसदण राज्य-स्थित—श्रीसोमनाथ

सौराष्ट्र प्रदेशके अन्तर्गत जसदण राज्यमें शैलशिखरोंके मध्य छैलगङ्गा नदीके तटपर श्रीछेला सोमनाथजीका पुनीत विग्रह है। इसका इतिहास सोमनाथके सुप्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्गके साथ मिला हुआ है। इसकी स्थापनाके विषयमें कहा जाता है कि पूर्वकालमें प्रभासमें एक राजपूत राव राज्य करता था, परंतु वह खम्भात सूबाका 'करद' राजा था। उसकी कन्या मीणलदेवी परम शिवभक्ता थी। कुछ समय बाद रावने उसका विवाह एक शाहजादेके साथ कर दिया। जब उसकी विदाई होने लगी तो श्रीसोमेश्वरका परित्याग उसे कष्टदायक प्रतीत हुआ। वह मन्दिरमें जाकर ध्यान लगाकर बैठ गयी। उसकी पूजासे प्रसन्न होकर शिवने वरदान देते हुए कहा कि तुम अपने रथके साथ दूसरे रथमें बैठाकर जहाँ चाहो ले चलो। पर पीछे मुड़कर न देखना। चलते-चलते यहीं राजकुमारीने पीछे मुड़कर देख लिया। जिससे भगवान् सोमेश्वरका वह दिव्य विग्रह, जो राजकुमारीके रथके पीछेवाले रथमें आ रहा था, अचल हो गया। यही भगवान् शिवका दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग 'श्रीछेला सोमनाथ' के नामसे प्रसिद्ध है। इनके दर्शनमात्रसे चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी सहज सिद्धि होती है।

२-भगवान् श्रीमल्लिकार्जुन—(श्रीशैलक्षेत्र—मद्रास)

श्रीमल्लिकार्जुन मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णा नदीके तटपर श्रीशैल पर्वतपर अवस्थित हैं। महाभारत, शिवपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रन्थोंमें इनकी विशेष महिमा गायी गयी है। इनकी स्थापना, उत्पत्ति आदिके विषयमें अनेक रोचक आख्यान प्रचलित हैं। पुराणोंके अनुसार एक बार श्रीगणपति एवं भगवान् कार्तिकेय दोनों भाई विवाहके लिये लड़ने लगे। दोनों ही अपने-अपने प्रथम विवाहके पक्षधर थे। तब भवानीशंकरने यह निर्णय दिया कि जो पृथ्वीकी परिक्रमा पहले कर डालेगा. उसीका प्रथम विवाह होगा। यह सुनकर स्वामिकार्तिकेय मयूरारूढ हो दौड़ पड़े। इधर श्रीगणपतिने शिव-पार्वतीकी सात बार परिक्रमा कर डाली, जिससे वे पृथ्वी-प्रदक्षिणाके फलके अधिकारी बन गये। उनका सिद्धि एवं

बुद्धि नामकी प्रजापति-कन्याओंके साथ विवाह भी हो गया।

जब कार्तिकेय पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर लौटे तो उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ। वे अत्यन्त कुपित होकर क्रौंचपर्वतपर चले गये। शिव-पार्वतीने उन्हें कई बार बुलाया; पर वे नहीं आये। अन्ततः शिव-पार्वती स्वयं उन्हें मनानेके लिये क्रौंचपर्वतपर पहुँचे; पर उनके आनेकी सूचना पाते ही षडानन वहाँसे भी भाग चले। इधर भगवान् शिव मल्लिकार्जुनरूपसे उसी क्रौंचपर्वतपर स्थित हो गये।
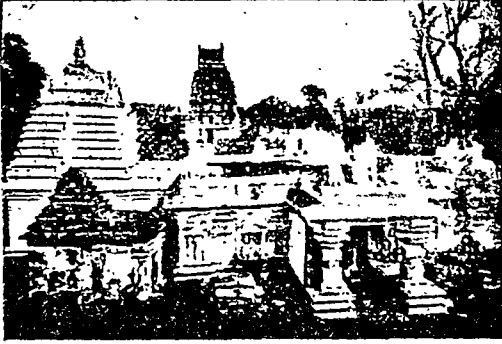
एक अन्य कथाके अनुसार इसी पर्वतके पास एक चन्द्रगुप्त नामक राजाकी राजधानी थी। एक बार उसकी कन्या किसी विशेष विपत्तिसे बचनेके लिये अपने पिताके महलसे भागकर इस पर्वतपर गयी। वह वहीं ग्वालोंके साथ कन्दमूल एवं दूध आदिसे अपना जीवन-निर्वाह करने लगी। उस राजकुमारीके पास एक श्यामा गाय थी, जिसका दूध प्रतिदिन कोई दुह लेता था। एक दिन उसने चोरको दूध दुहते देख लिया। जब वह क्रोधमें उसे मारने दौड़ी तो गौके निकट पहुँचनेपर शिवलिङ्गके अतिरिक्त उसे कुछ नहीं मिला। पीछे राजकुमारीने उक्त शिवलिङ्गपर एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया। शिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। भगवान् शंकरका यह लिङ्गस्वरूप भी भक्तोंके लिये परम-कल्याणकारी है।

३-श्रीमहाकालेश्वर—उज्जैन-क्षेत्र, (अवन्तिकापुरी)

श्रीमहाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मालव-प्रदेशके अन्तर्गत क्षिप्रा नदीके तटपर उज्जयिनी (उज्जैन) नगरीमें है। इन महाकालेश्वर-लिङ्गकी स्थापनाके विषयमें अनेकों कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक बार उज्जयिनी नगरीके राजा चन्द्रसेनके द्वारा की जा रही शिवार्चनाको देखकर श्रीकर नामक एक पञ्चवर्षीय गोपबालक बड़ा उत्कण्ठित हुआ। वह एक सामान्य पत्थरको घरमें स्थापितकर उसकी शिव-रूपमें उपासना करने लगा। परिवारजनोंके द्वारा संत्रास दिये जानेपर भक्त बालक श्रीकर अत्यन्त दैन्य एवं तीव्र भावनासे भगवान् शंकरकी उपासनामें तल्लीन हो गया। उसकी पूजा एवं भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् शिव स्वयं एक दिव्य ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हो गये।

एक अन्य कथाके अनुसार किसी समय इस अवन्तिका-पुरीमें एक परम भक्त ब्राह्मण निवास करता था। वह अपने चार पुत्रोंके साथ सदैव शिव-भक्तिमें लीन रहता था। एक बार उस ब्राह्मणकी भक्तिनिष्ठा सुनकर ब्रह्माजीद्वारा वर-प्राप्त दूषण नामक दुष्ट राक्षस अपने दल-बलसहित चढ़ आया। लोगोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। अन्ततः उस ब्राह्मणकी शिवभक्तिके प्रतापसे भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने हुंकार मात्रसे उस असुरको नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् संसारके
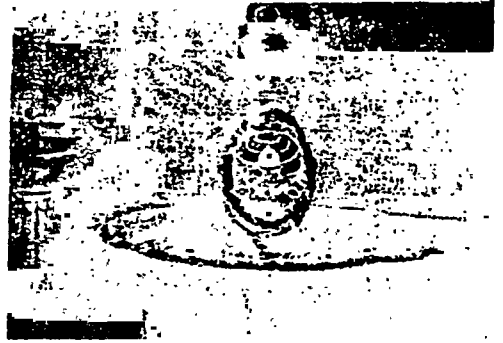
कल्याणार्थ वे वहीं दिव्य लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये। इस लिङ्गके पास ही उमा-गणपति भी विद्यमान हैं। भयंकर हुंकारसहित प्रकट होनेके कारण शिवका यह विग्रह 'महाकाल' रूपसे विख्यात है। चिताभस्मसे विभूषित महाकालेश्वरकी प्रातःकालकी शोभा अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके पाप-समूहोंको नष्ट करनेवाली है।

४-श्रीओंकारेश्वर या अमलेश्वर—

भगवान् शिवका यह परम पवित्र विग्रह मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर अवस्थित है। यहीं मान्धाता पर्वतके ऊपर देवाधिदेव शिव ओंकारेश्वर-रूपमें विद्यमान हैं। शिवपुराणमें

श्रीओंकारेश्वर तथा श्रीअमलेश्वरके[१] दर्शनका अत्यन्त माहात्म्य वर्णित है। प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाताने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी और यज्ञोंके कर्ता थे, इस स्थानपर घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था। इसीसे इस पर्वतका नाम मान्धाता-पर्वत पड़ गया।

मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पूर्व दो कोठरियोंमेंसे होकर जाना पड़ता है। भीतर अँधेरा रहनेके कारण सदैव दीप जलता रहता है। ओंकारेश्वर-लिङ्ग गढ़ा हुआ नहीं है—प्राकृतिकरूपमें है। इसके चारों ओर सदा जल भरा रहता है। इस लिङ्गकी एक विशेषता यह भी है कि वह मन्दिरके गुम्बजके नीचे नहीं है। शिखरपर ही भगवान् शिवकी प्रतिमा विराजमान है। पर्वतसे
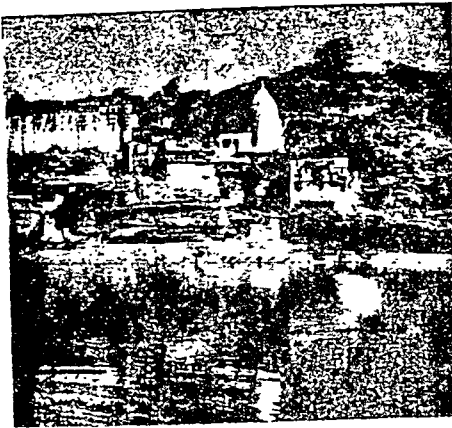
आवृत यह मन्दिर साक्षात् ओंकारस्वरूप ही दृष्टिगत होता है। कार्तिक पूर्णिमाको इस स्थानपर बड़ा भारी मेला लगता है।

(५) श्रीकेदारेश्वर —

भगवान् आशुतोष केदारनाथरूपसे उत्तराखण्डमें पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृङ्गपर विद्यमान हैं। शास्त्रोंमें केदारेश्वरसहित नर-नारायण-मूर्तिके दर्शनका फल समस्त पापोंके नाशपूर्वक जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति बतलाया गया है। इसकी स्थापनाके विषयमें यह कथा आती है कि हिमालयके केदार-शृङ्गपर विष्णुके अवतार महातपस्वी श्रीनर एवं नारायण तपस्या किया करते थे। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और उनकी प्रार्थनाके अनुसार ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ सदा वास करनेका उन्हें वर प्रदान किया।

सत्ययुगमें उपमन्युजीने यहीं भगवान् शंकरकी आराधना की थी। द्वापरमें पाण्डवोंने यहाँ तपस्या की। केदारनाथमें भगवान् शंकरका नित्य सांनिध्य बताया गया है। इनके दर्शनसे जन्म-जन्मान्तरोंके पापोंसे सहजमें ही निवृत्ति हो जाती है।

६-श्रीभीमशंकर—

(क) सह्याद्रि—बम्बई

भगवान् भीमशंकर बम्बईसे पूर्व एवं पूनासे उत्तर भीमा नदीके तटपर स्थित सह्याद्रिपर विराजते हैं। यहींसे भीमा नदी निकलती है। मूर्तिमेंसे थोड़ा-थोड़ा जल गिरता रहता है। मन्दिरके पास ही दो कुण्ड हैं, जिन्हें सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीसने बनवाया था। कहा जाता है कि जिस समय भगवान् शंकरने त्रिपुरासुरका वध करके इस स्थानपर विश्राम किया, उस समय यहाँ अवधका भीमक नामक एक सूर्यवंशीय

१-द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमें ओंकारेश्वर तो है ही, परंतु उसके साथ अमलेश्वरका भी नाम लिया जाता है। वस्तुतः नाम ही नहीं—इन दोनोंका अस्तित्व भी पृथक्-पृथक् है। अमलेश्वरका मन्दिर नर्मदाके दक्षिण किनारेकी बस्तीमें है। पर इन दोनों ही शिव-रूपोंकी गणना प्रायः एकमें ही की गयी है। कहा जाता है कि एक बार विन्ध्यपर्वतने पार्थिवार्चनसहित ओंकारनाथकी ६ मासतक विकट आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवजी प्रकट हुए। उन्होंने विन्ध्य पर्वतको मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। उसी समय वहाँ पधारे हुए देवों एवं ऋषियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने 'ॐकार' नामक लिङ्गके दो भाग किये। इनमेंसे एकमें वे प्रणवरूपसे विराजे, जिससे उसका नाम ओंकारेश्वर पड़ा तथा पार्थिवलिङ्गसे सम्भूत भगवान् सदाशिव परमेश्वर अमरेश्वर या अमलेश्वर नामसे प्रख्यात हुए।

राजा तपस्या करता था। शंकरजीने प्रसन्न होकर उसे दर्शन
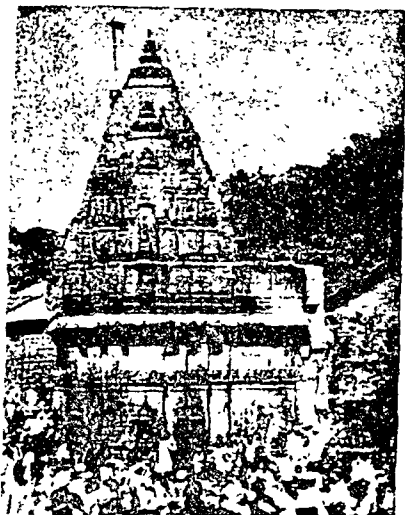
दिया; तभीसे वह दिव्य एवं अलौकिक ज्योतिर्लिङ्ग भीमशंकरके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

(ख) श्रीभीमशंकर—(आसाम)

शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर श्रीभीमशंकरका ज्योतिर्लिङ्ग आसाम प्रान्तके कामरूप जिलेमें गौहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर अवस्थित बतलाया गया है। इस विषयमें एक बड़ी सुन्दर कथा आती है, जिसके अनुसार कामरूप देशमें कामरूपेश्वर नामक एक महाप्रतापी शिवभक्त राजा थे। वे सर्वदा शिवजीके पार्थिव-पूजनमें तल्लीन रहते थे। उन्हीं दिनों वहाँ भीम नामक एक महाराक्षस प्रकट हुआ और धर्मोपासकोंको त्रास देने लगा। कामरूपेश्वरकी शिवभक्तिकी ख्याति सुनकर वह वहाँ आ धमका और ध्यानावस्थित राजाको ललकारकर कराल कृपाण दिखलाते हुए बोला—'रे दुष्ट! शीघ्र बता, तू क्या कर रहा है? अन्यथा तेरी खैर नहीं।' पर शिवभक्त राजा ध्यानसे न डिगा। उसने मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण किया और निर्भीकतापूर्वक कहा—

'भजामि शंकरं देवं स्वभक्तपरिपालकम्।'

'हे राक्षसराज! मैं भक्तोंके प्रतिपालक भगवान् शंकरका भजन कर रहा हूँ।' इसपर वह राक्षस शिवजीकी निन्दा करके राजाको उनकी पूजा करनेसे मना करने लगा और उनके किसी प्रकार न माननेपर उनपर अपनी तीखी तलवारका प्रहार किया, पर तलवार पार्थिव-लिङ्गपर पड़ी और तत्क्षण भगवान् शंकरने उसमेंसे प्रकट होकर उसका प्राणान्त कर दिया। सर्वत्र आनन्द छा गया। देवों एवं ऋषियोंने शिवसे वहीं निवास करनेकी प्रार्थना की, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। तभीसे इस ज्योतिर्लिङ्गका नाम 'भीमशंकर' पड़ा। उनके दर्शन-पूजनसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

७-श्रीविश्वेश्वर—(काशी)

श्रीविश्वेश्वरज्योतिर्लिङ्ग वाराणसीमें श्रीविश्वनाथ नामसे विराजमान है। इस पवित्र नगरीकी बड़ी महिमा है। कहते हैं प्रलयकालमें भी इसका लोप नहीं होता। उस समय भगवान् शंकर इसे अपने त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और सृष्टिकालमें इसे नीचे उतार देते हैं। धर्मग्रन्थोंमें भगवान् विश्वेश्वर (विश्वनाथ) की अपार महिमा गायी गयी है।

काशीमें उत्तरकी ओर ॐकार-खण्ड, दक्षिणमें केदार-खण्ड एवं बीचमें विश्वेश्वर-खण्ड है। इसी विश्वेश्वर-खण्डके अन्तर्गत बाबा विश्वनाथजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। श्रीकाशी-

विश्वनाथका मूल ज्योतिर्लिङ्ग उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि इस मन्दिरकी स्थापना अथवा पुनः स्थापना शंकरके अवतार भगवान् आद्य शंकराचार्यने स्वयं अपने कर-कमलोंसे की थी। इस प्राचीन मन्दिरको, मूर्तिभञ्जक मुगल बादशाह औरंगजेबने नष्ट-भ्रष्ट कर उसके स्थानमें एक मस्जिदका निर्माण किया था। भगवान् विश्वेश्वरकी प्राचीन मूर्ति ज्ञानवापीमें पड़ी हुई बतलायी जाती है। नये विश्वनाथ-मन्दिरका निर्माण इससे परे हटकर परम शिवभक्ता इन्दौरकी महारानी अहल्याबाईके द्वारा किया गया है। श्रीविश्वेश्वरके दर्शनसे जन्म-जन्मान्तरके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। कुछ वर्षोंपूर्व स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके द्वारा पूर्व-मन्दिरके निकट ही मीरघाटपर नये विश्वनाथ-मन्दिरकी स्थापना की हुई है, जहाँ

भक्तजन गर्भ-मन्दिरके भीतर न जाकर बाहर प्राङ्गणसे ही दर्शन-पूजन करते हैं।

८-श्रीत्र्यम्बकेश्वर—(नासिक)

यह ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई प्रान्तके नासिक जिलेमें है। गोदावरी नदीके उद्गम-स्थानके समीप अवस्थित त्र्यम्बकेश्वर भगवान्‌की बड़ी ही महिमा है। गौतम ऋषि एवं गोदावरी नदीकी प्रार्थनापर भगवान् शिवने इस स्थानपर वास करनेकी

की। वे त्र्यम्बकेश्वर नामसे विख्यात हैं। मन्दिरके अंदर छोटे-से गड्ढेमें तीन छोटे-छोटे लिङ्ग हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु शिव—इन तीनों देवोंके प्रतीक माने जाते हैं। त्रिमूर्तिके : ब्रह्मगिरिसे निकली हुई गोदावरीकी धारा अविच्छिन्न- ते पड़ती है। शिवपुराणके अनुसार त्र्यम्बकेश्वरका दर्शन पूजन करनेवालेको इस लोकमें एवं परलोकमें सदा न्द प्राप्त होता रहता है।

श्रीवैद्यनाथ—(जसीडीह वैद्यनाथधाम)

श्रीवैद्यनाथेश्वर वैद्यनाथ-धाममें विराजते हैं। इस लिङ्गकी नाके विषयमें एक बड़ी सुन्दर कथा आती है। इसके सार एक बार राक्षसराज रावणने हिमालयपर जाकर जीकी प्रसन्नताके लिये घोर तपस्या की और अपने सिर :-काटकर शिवलिङ्गपर चढ़ाने शुरू कर दिये। एक-एक के नौ सिर चढ़ानेके बाद वह अपना दसवाँ सिर भी ग्नेको ही था कि शिवजी प्रसन्न होकर स्वयं प्रकट हो गये। उन्होंने रावणके दसों सिर पूर्ववत् कर दिये और उससे वरदान माँगनेको कहा। रावणने उस दिव्य लिङ्गको लंका ले जाकर स्थापित करनेकी आज्ञा माँगी। शिवजीने अनुमति तो दे दी, पर इस चेतावनीके साथ कि यदि वह मार्गमें कहीं उसे रख देगा तो लिङ्ग वहीं अचल हो जायगा। अन्ततोगत्वा वही हुआ। रावण शिवलिङ्ग लेकर चला, पर मार्गमें यहाँ 'चिताभूमि'में आनेपर उसे लघुशंका-निवृत्तिकी आवश्यकता हुई। वह उस लिङ्गको एक गोपकुमारके हाथमें देकर लघुशंका-निवृत्तिके लिये चला गया। इधर गोपकुमारने उसे बहुत अधिक भारी अनुभव कर भूमिपर रख दिया। बस, फिर क्या था, लौटनेपर रावण पूरी शक्ति लगाकर भी उसे उठा न सका और निराश होकर मूर्तिपर अपना अँगूठा गड़ाकर लंका चला गया। इधर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने आकर उस शिवलिङ्गकी दिव्य पूजा की। तभीसे भगवान् शिव वैद्यनाथमें रावणेश्वररूपसे

अवस्थित हैं। धर्मग्रन्थोंके अनुसार यह वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग महान् फलोंको देनेवाला है। भगवान् आशुतोषकी यह लिङ्ग-मूर्ति ११ अंगुल ऊँची है। अब भी उसपर रावणके अँगूठेका चिह्न विराजमान है। यहाँ दूर-दूरसे जल लाकर चढ़ानेका अत्यधिक माहात्म्य वर्णित एवं लोकविश्रुत है।[१]

१०-श्रीनागेश्वर—(द्वारका)

श्रीनागेश्वर भगवान्‌का स्थान गोमती-द्वारकासे बेट-द्वारकाको जाते समय कोई १२-१३ मील पूर्वोत्तरके मार्गमें है। इस लिङ्गकी स्थापनाके सम्बन्धमें इतिहास यह है कि एक सुप्रिय नामक वैश्य था, जो बड़ा सदाचारी, धर्मात्मा एवं शिवजीका अनन्य भक्त था। एक बार जब वह नौकापर सवार होकर कहीं जा रहा था, अकस्मात् दारुक नामक एक राक्षसने आकर उस नौकापर आक्रमण कर दिया। वह नावमें बैठे सभी

१-'परल्यां वैद्यनाथं च' इस वचनके अनुसार कुछ विद्वानोंका मत है कि हैदराबादराज्यके अन्तर्गत परली ग्रामका शिवलिङ्ग ही नाथ-ज्योतिर्लिङ्ग है।

यात्रियोंको अपनी पुरी ले गया। उसने सबको कारागारमें बंद कर दिया, पर सुप्रियकी शिवार्चना वहाँ भी बंद नहीं हुई। वह तन्मय होकर शिवाराधन करता और अन्य साथियोंमें भी शिव-भक्ति जाग्रत् करता रहा। संयोगसे इसकी सूचना दारुकके कानोंतक पहुँची और वह उस स्थानपर आ धमका। सुप्रियको ध्यानावस्थित देखकर—'रे वैश्य! यह आँख मूँदकर तू कौन-सा षड्यन्त्र रच रहा है?' कहकर उसने एक ...की डाँट बतलायी और इतनेपर भी सुप्रियकी समाधि भंग ...ते देखकर उसने अपने अनुचरोंको उसकी हत्या करनेका ...श दिया; परंतु सुप्रिय इससे भी विचलित नहीं हुआ। वह
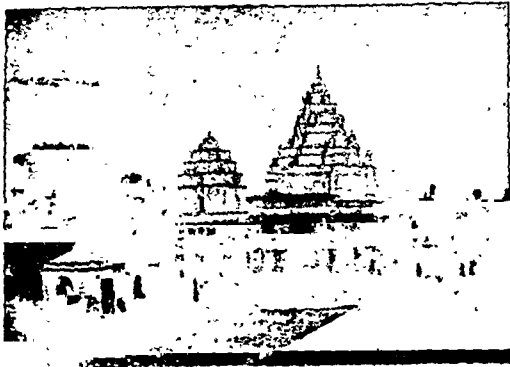
...-भयहारी शिवजीको ही पुकारने लगा। फलतः उस ...गारमें ही उसे ज्योतिर्लिङ्ग-रूप शिवके दर्शन हो गये। ...ने उसे अपना पाशुपतास्त्र भी दिया और अन्तर्धान हो ...। उस पाशुपतास्त्रसे समस्त राक्षसोंका संहार करके सुप्रिय ...धाम चला गया। भगवान् शिवके आदेशानुसार ही इस ...तिर्लिङ्गका नाम 'नागेश' पड़ा। इनके दर्शनका माहात्म्य ...ौकिक है। शिवपुराणमें कहा गया है कि जो आदरपूर्वक ...की उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त ...र समस्त ऐहिक सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें परमपदको ...होगा।

...-श्रीरामेश्वर—(सेतुबन्ध)

...भगवान् शिवका ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग सेतुबन्ध-रामेश्वर ...मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके कर-कमलोंसे इसकी ...ना हुई थी। लंकापर चढ़ाई करनेके लिये जाते हुए जब ...वान् श्रीराम यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्रतटपर बालुकासे ...शिवलिङ्गका निर्माण कर उसका पूजन किया। यह भी ...गता है कि समुद्र-तटपर भगवान् श्रीराम जल पी ही रहे थे कि एकाएक आकाशवाणी हुई—'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो?' इस वाणीको सुनकर भगवान्ने वहाँ

समुद्रतटपर बालुकाकी लिङ्ग-मूर्ति बनाकर शिवजीकी पूजा की और रावणपर विजय प्राप्त करनेका आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शंकरने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्गरूपसे सदाके लिये वहाँ वास करनेकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

एक दूसरा इतिहास इस लिङ्ग-स्थापनके सम्बन्धमें यह है कि जब रावणका वध करके भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको लेकर दल-बलसहित वापस आने लगे, तब समुद्रके इस पार गन्धमादन पर्वतपर पहला पड़ाव डाल दिया। उनका आगमन जानकर मुनि-समाज भी वहाँ आया। यथोचित सत्कारके उपरान्त श्रीरामने उनसे पुलस्त्य-कुलका विनाश करनेके कारण ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेका उपाय पूछा। ऋषियोंने कहा—'प्रभो! शिवलिङ्गकी स्थापनासे सारे पाप तत्क्षण कट जाते हैं।'

तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने हनुमान्‌जीको कैलाससे शिवलिङ्ग लानेका आदेश दिया। वे क्षणमात्रमें कैलास जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजीके दर्शन नहीं हुए। अतएव वे वहाँ शिवजीके दर्शनार्थ तप करने लगे और उनके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने शिवलिङ्ग लेकर गन्धमादन पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। इधर जबतक वह आये तबतक ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारको अत्यन्त शुभ-मुहूर्तमें शिव-स्थापना भी हो चुकी थी। मुनियोंने हनुमान्‌जीके आनेमें विलम्ब समझकर मुहूर्त निकलता देख

श्रीजानकीजीद्वारा निर्मित बालुका-लिङ्गकी स्थापना कर दी थी। इसपर पवनपुत्र अत्यन्त दुःखी हुए। कृपानिधान भगवान् रामने भक्तकी व्यथा समझकर उनके द्वारा लाये शिवलिङ्गको भी वहीं 'हनुमदीश्वर' नामसे स्थापित करा दिया। श्रीरामेश्वर एवं हनुमदीश्वरका दिव्य माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ स्कन्दपुराण, शिवपुराण, मानस आदिमें आया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'रामेश्वर' महादेवके दर्शनके विषयमें कहा है—

'जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ॥

(रा० च० मा० ६।३।१)

१२-श्रीघुश्मेश्वर—(देवगिरि)

श्रीघुश्मेवर या घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग अत्यन्त प्राचीन एवं धार्मिक महत्त्वका है। इनकी महिमा अकथ एवं अनन्त है। भगवान् शिवके इस दिव्य-विग्रहकी स्थापनाकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

दक्षिण देशमें देवगिरि पर्वतके निकट सुधर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी सुदेहा अत्यन्त धर्मनिष्ठ एवं पतिव्रता थी। ये ब्राह्मण-दम्पति संतानहीनताके कारण सदैव चिन्तित रहते थे। ज्योतिषियोंकी गणनाके अनुसार सुधर्मने सुदेहाकी छोटी बहन घुश्माके साथ अपना विवाह किया। इसमें सुदेहाकी भी पूर्ण सम्मति थी। घुश्मा अत्यन्त शिवभक्ता थी। वह प्रतिदिन १०८ पार्थिव-लिङ्ग बनाकर उनका पूजन करती। भगवान् शंकरकी कृपासे शीघ्र ही घुश्माको पुत्र-प्राप्ति हुई। सर्वत्र आनन्द-मङ्गल छा गया। इधर धीरे-धीरे सुदेहा अपनी बहन घुश्मा एवं उसके बालकके प्रति सापत्न्य ईर्ष्या-भाव रखने लगी। यह ईर्ष्या यहाँतक बढ़ी कि एक दिन रात्रिमें उसने घुश्माके पुत्रकी हत्या कर उसके शवको ले जाकर उस सरोवरमें डाल दिया, जिसमें घुश्मा जाकर पार्थिव-शिवलिङ्गोंको छोड़ती थी।

जब प्रातःकाल घुश्मा अपनी पार्थिवपूजा समाप्त कर शिवलिङ्गके विसर्जनके लिये उस सरोवरमें गयी तो भगवान् शिवकी कृपासे शिवलिङ्गोंके विसर्जनके पश्चात् उसका पुत्र जीवित हो सरोवरसे निकल आया। परंतु घुश्मा पूर्णतया निर्विकार बनी रही। उसे न पुत्रकी मृत्युका दुःख था, न उसके जीवित होनेपर सुख। उसकी तन्मयता देख भगवान् आशुतोष वहीं प्रकट हो गये। उन्होंने घुश्मासे वर माँगनेको कहा। तब घुश्माने निवेदन किया—'प्रभो! आप सदैव इस स्थानपर वास करें, इससे सम्पूर्ण संसारका कल्याण होगा।'

भगवान् शंकर 'एवमस्तु' कहकर दिव्य ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ वास करने लगे और 'घुश्मेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। उस सरोवरका नाम भी तबसे 'शिवालय' हो गया। शिवपुराणके ज्ञानखण्डमें भगवान् घुश्मेश्वरके दर्शनकी महत्ता निरूपित करते हुए कहा गया है कि घुश्मेश्वर महादेवके दर्शनसे सब पाप दूर हो जाते हैं और सुखकी वृद्धि उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है।

अन्य प्रसिद्ध शिव-विग्रहोंके दर्शन

श्रीगौरीशंकर—

मध्यप्रदेशमें जबलपुरसे कुछ दूर नर्मदा और सरस्वतीका पवित्र संगम है। यहाँ पञ्चवटी, भृगु-आश्रमादि अनेक तीर्थ हैं। यहींपर नर्मदाका सुन्दर जलप्रपात तथा संगमरमरकी रजतमयी पर्वतमालाएँ हैं। इसी स्थानपर एक सुन्दर मन्दिरमें भगवान् गौरीशंकर विराजमान हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर शालिवाहन राजाका बनवाया हुआ है। मन्दिरके गर्भगृह तथा जगमोहनकी बनावट अत्यन्त सुन्दर है। मन्दिरके

दालानमें चौंसठ योगिनियों तथा अन्य अनेक देवी-देवताओंकी कुछ खण्डित प्रतिमाएँ भी हैं। विशाल नन्दीपर मानुष-विग्रहमें गौरीसहित भगवान् शंकर बैठे हुए हैं।

अर्धनारीश्वर-रूपमें शिवदर्शन—

दक्षिण भारतका तिरुच्चेनगोड स्थान अपने अर्धनारीश्वर-मन्दिरके लिये विख्यात है। यहाँकी प्रतिमा पुरुष तथा प्रकृतिका सम्मिलित रूप है। यह ऋषियोंद्वारा निर्मित कही जाती है। मन्दिरके मार्गमें एक ३५ फुट ऊँचा सर्प बना हुआ है।

श्रीगोपेश्वर महादेव—(वृन्दावन)

श्रीवृन्दावनकी रासस्थलीमें भगवान् श्रीगोपेश्वरका मन्दिर है। यहीं श्रीगोपेश्वर महादेव विराजते हैं। कहा जाता है कि शरत्पूर्णिमाके मङ्गलमय अवसरपर महारासमें भगवान् श्रीकृष्णकी बजनेवाली मुरलीकी मधुर ध्वनिको सुनकर कैलासपर्वतपर समाधिस्थ शिवकी समाधि भंग हो गयी। वे तत्क्षण स्वयंको, पार्वतीजीको और कैलासको भूलकर बावलेसे हो व्रजकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वे मोहिनीवेषसे रासस्थलीमें गोपियोंके यूथमें सम्मिलित हो गये और अतृप्त-नेत्रोंसे विश्वमोहनकी रूप-माधुरीका पान करने लगे। उसी समय रासेश्वरी श्रीराधाके साथ नृत्य करते हुए श्रीरासविहारीने अचानक ही गौरीनाथका हाथ पकड़ लिया और मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बड़े ही सत्कारसे बोले—आइये .हाराज श्रीगोपेश्वरजी! आपका स्वागत है। बस, तभीसे व्रजमें विराजकर श्रीगोपेश्वरजी श्रीमदनमोहनके रास-रसामृतका पान कर रहे हैं।

श्रीधर्मेश्वर महादेव—(काशी)

श्रीकाशी-विश्वनाथ-मन्दिरके संनिकट मीरघाट-स्थित धर्मकूपमें श्रीधर्मेश्वर महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। काशी-खण्डमें इनकी विशेष महिमाका वर्णन है। इनके दर्शनमात्रसे दस हजार गायत्री-मन्त्रके जप करनेका पुण्य प्राप्त होता है।

श्रीआत्मवीरेश्वर महादेव—

श्रीकाशीमें मणिकर्णिका-घाटके संनिकट, सिन्धियाघाटके ऊपर सीढ़ी चढ़कर श्रीआत्मवीरेश्वर महादेवका प्राचीन मन्दिर ...ता है। मन्दिरमें ही पूर्वभागमें मंगलेश्वर तथा बुधेश्वर अवस्थित हैं। दक्षिणभागमें देवगुरु श्रीबृहस्पतीश्वर महादेवका मन्दिर है। इस मन्दिरके निकट ही श्रीवसिष्ठेश्वर महादेवका प्राचीन मन्दिर है। इसमें माता अरुन्धतीके विग्रहके साथ ही सप्तर्षियोंके नामसे शिवलिङ्ग अवस्थित है। श्रीविश्वामित्रेश्वर, श्रीयाज्ञवल्क्येश्वर और श्रीभारद्वाजेश्वर महादेव भी इसी मन्दिरमें प्रतिष्ठित हैं।

हरिहररूपमें भगवान्‌के दर्शन—

पूनामें तुङ्गभद्रा नदीके समीपवर्ती क्षेत्रको गुहारण्य कहा जाता है। यहाँ हरिहरका एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरमें हरिहरात्मक भगवान्‌की मूर्ति है। मूर्तिका दाहिना भाग शिवरूप है। इस ओरके मस्तकके भागमें रुद्राक्षका मुकुट तथा ऊपरके हाथमें त्रिशूल है। बायाँ भाग विष्णुस्वरूप है। उधर ऊपरके हाथमें चक्र है। नीचेके दोनों हाथोंमें अभयमुद्रा है। भगवान्‌के दिव्यमूर्तिकी एक कथा है—

पूर्वकालमें गुह नामक एक राक्षस यहाँ निवास करता था। उसका वन होनेसे यह गुहारण्य कहा जाता था। उस राक्षसने अपनी तपस्याद्वारा ब्रह्माजीसे किसी भी देवतासे अवध्यत्वका वरदान प्राप्त कर लिया था। वरदान पाकर वह मदोन्मत्त तथा अत्याचारी हो गया। गुहके अत्याचारोंसे पीड़ित देवता ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उन्हें कैलास भेजा और कैलाससे शंकरजीने वैकुण्ठ जानेको कहा। देवताओंकी प्रार्थना सुनकर विष्णुने उन्हें आश्वस्त किया और ब्रह्माके वरदानकी मर्यादाको रखते हुए वे कैलास आये और वहाँसे उन्होंने अपने दाहिने अङ्गमें भगवान् शंकरको स्थित किया। इस प्रकार हरिहर-रूपसे प्रभु गुहारण्य पधारे। घोर संग्रामके पश्चात् दैत्य गुहको भूमिपर गिराकर भगवान् उसके वक्षःस्थलपर खड़े हुए। उस समय गुहने उनकी प्रार्थना कर उन्हें संतुष्ट किया और उनसे वरदान माँगा कि प्रभु इसी रूपमें वहाँ स्थित रहें।

नटराज—

मद्रास धनुष्कोटि लाइनमें विल्लुपुरम्‌से ५० मील दूर चिदम्बरम्‌में भगवान् शंकरकी नटराजमूर्ति है। शंकरजीके पञ्चतत्त्व-लिङ्गोंमें आकाशतत्त्व-लिङ्ग चिदम्बरम्‌में ही माना जाता है। इस मन्दिरका घेरा लगभग १०० बीघेका है। मन्दिरमें नृत्य करते हुए भगवान् शंकरकी बड़ी सुन्दर भावपूर्ण

मूर्ति है। यह मूर्ति स्वर्णकी है। नटराजके दाहिनी ओर काली

भित्तिमें एक यन्त्र खुदा है, वहाँ सोनेकी मालाएँ लटकती रहती हैं। यह नीला शून्याकार ही आकाशतत्त्व-लिङ्ग माना जाता है।

श्रीदक्षेश्वर महादेव—

हरिद्वार (कनखल)में भगवान् दक्षेश्वर महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। इसकी कथा इस प्रकार है—दक्ष प्रजापति अपने जामाता श्रीशंकरजीसे द्वेष रखते थे। एक बार उन्होंने बृहस्पति-सव नामक यज्ञ किया। उसमें सभी देवता, ऋषि-मुनि सादर आमन्त्रित थे, किंतु देवाधिदेव शंकरजी तथा सतीदेवीको नहीं बुलाया गया। पिताके घर यज्ञोत्सवकी बात जानकर सती बिना बुलाये पिताके घर चली गयीं। किंतु वहाँ यज्ञमें अपने पतिका भाग न देखकर तथा भरी सभामें पिताद्वारा पतिकी निन्दा सुनकर सती अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने योगाग्निद्वारा अपने प्राण त्याग दिये। सतीके साथ गये हुए शिवजीके गणोंने उनको इस बातकी सूचना दी। शिवजीने अपने वीरभद्रादि गणोंद्वारा यज्ञ-विध्वंस करा दिया और दक्षका सिर कटवाकर अग्निकुण्डमें डलवा दिया। स्वयं सतीकी दिव्य देहको लेकर उन्मत्त-से हो गये। विष्णुने सुदर्शन-चक्रसे सतीकी देहको खण्डित किया, जिससे ५१ स्थानोंपर जो-जो अङ्ग गिरे, वहाँ-वहाँ एक-एक शक्तिपीठ हो गया। बादमें देवताओंकी प्रार्थनापर शंकरजीके निर्देशानुसार दक्ष-प्रजापतिके बकरेका सिर लगाया गया। यही दक्षेश्वर महादेवका प्रतिष्ठित क्षेत्र हुआ। यहाँ शिवरात्रिपर बड़ा मेला लगता है और यात्री भगवान्का दर्शन कर जीवन-लाभ प्राप्त करते हैं।

श्रीदुग्धेश्वर महादेव—

गोरखपुर मण्डलान्तर्गत, जनपद देवरियामें गौरीबाजारसे १० मील दक्षिण रुद्रपुर नामक ग्रामके समीप श्रीदुग्धेश्वर महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। शिवपुराणके अनुसार यह
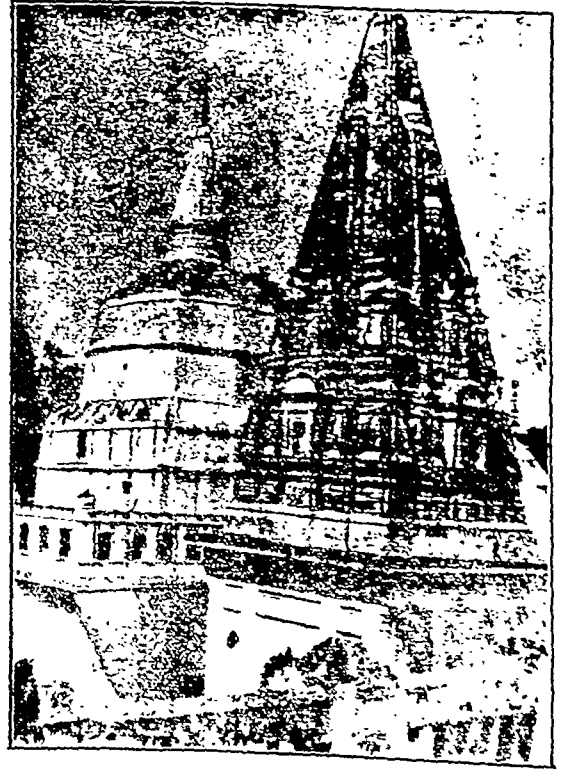
महाकालका उपज्योतिर्लिङ्ग है। यहाँ शिवरात्रिमें तथा अधिकमासमें मेला लगता है। मन्दिरमें श्रीदुग्धेश्वरका जो लिङ्ग प्रतिष्ठित है, वह जमीनसे लगभग ८ फुट नीचे स्थित है। भक्तों तथा दर्शनार्थियोंकी यहाँ भीड़ लगी रहती है।

भीमाशंकर महादेव—

नैनीताल जिलेमें काशीपुरके पूर्व उज्जनक नामक स्थानपर भगवान् शंकरका ज्योतिर्लिङ्ग विद्यमान है, जो भीमाशंकरके नामसे प्रसिद्ध है। यह लिङ्ग अत्यन्त स्थूल है। मन्दिरके पूर्वमें भैरवनाथका तथा पश्चिममें भगवती बालसुन्दरीका मन्दिर है। यहींपर एक किला है, जो द्रोणाचार्य-किला कहलाता है। यद्यपि प्रसिद्ध द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमें भीमशंकर-ज्योतिर्लिङ्ग

आसाम-स्थित कामरूपमें माना जाता है, किंतु मतान्तरसे नैनीतालके उज्जनक-क्षेत्र-स्थित भीमाशंकरको भी द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंमें परिगणित किया जाता है।

जागेश्वर—

द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमें परिगणित नागेश ज्योतिर्लिङ्ग दारुकावनमें स्थित है। कुछ विद्वानोंकी धारणा है कि कुमाऊँ
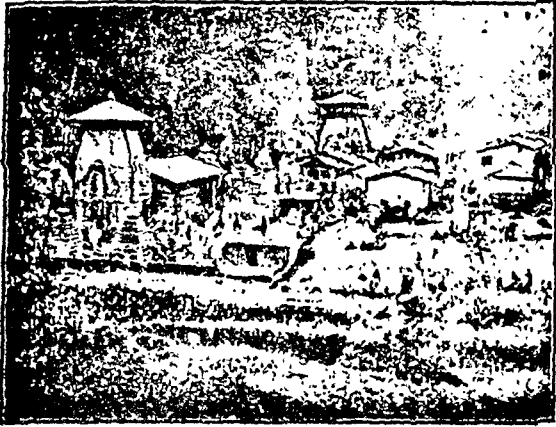
(अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर जागेश्वर) में स्थित जागेश्वर या यागेश्वर ही नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग है।

गोकर्णनाथ—महाबलेश्वर (आत्मतत्त्व-लिङ्ग)के दर्शन

(क) बंगलौर-पूना लाइनपर हुबलीसे १०० मील दूर समुद्रतटपर छोटी पहाड़ियोंके बीचमें गोकर्ण नामक नगर है। गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्मतत्त्व-लिङ्ग है। शास्त्रोंमें गोकर्णतीर्थकी बड़ी महिमा है। यहाँके विग्रहको महाबलेश्वर महादेव कहते हैं। मन्दिर बड़ा सुन्दर है। मन्दिरके भीतर पीठस्थानपर अरघेके अंदर आत्मतत्त्व-लिङ्गके मस्तकका अग्रभाग दृष्टिमें आता है और उसीकी पूजा होती है। यह मूर्ति मृगशृङ्गके समान है।

कहा जाता है कि पातालमें तपस्या करते हुए भगवान् रुद्र गोरूपधारिणी पृथ्वीके कर्णरन्ध्रसे यहाँ प्रकट हुए, इसीसे इस क्षेत्रका नाम गोकर्ण पड़ा। महाबलेश्वर-मन्दिरके पास सिद्ध-गणपतिकी मूर्ति है, जिसके मस्तकपर रावणद्वारा आघात करनेका चिह्न है। इनका दर्शन करनेके अनन्तर ही आत्म-तत्त्वलिङ्गके दर्शन-पूजनकी विधि है।

कथा—भगवान् शंकर एक बार मृग-स्वरूप बनाकर कैलाससे अन्तर्हित हो गये थे। ढूँढ़ते हुए देवता उस मृगके पास पहुँचे। भगवान् विष्णु, ब्रह्माजी तथा इन्द्रने मृगके सींग पकड़े। मृग तो अदृश्य हो गया, किंतु तीनों देवताओंके हाथमें सींगके तीन टुकड़े रह गये। भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माजीके हाथके टुकड़े—सींगका मूलभाग तथा मध्यभाग गोला—गोकर्णनाथ तथा शृङ्गेश्वरमें स्थापित हुए। (इस तीर्थके वर्णनमें उसकी कथा है।) इन्द्रके हाथमें सींगका अग्रभाग था। इन्द्रने उसे स्वर्गमें स्थापित किया। रावणके पुत्र मेघनादने जब इन्द्रपर विजय प्राप्त की, तब रावण स्वर्गसे वह लिङ्ग-मूर्ति लेकर लंकाकी ओर चला।

कुछ विद्वानोंका मत है कि रावणकी माता कैकसी बालूका पार्थिवलिङ्ग बनाकर पूजन करती थी। समुद्र-किनारे पूजन करते समय उसका बालुकालिङ्ग समुद्रकी लहरोंसे बह गया। इससे वह दुःखी हो गयी। माताको संतुष्ट करनेके लिये रावण कैलास गया। वहाँ तपस्या करके उसने भगवान् शंकरसे आत्मतत्त्व-लिङ्ग प्राप्त किया।

दोनों कथाएँ आगे एक हो जाती हैं। रावण जब गोकर्ण-क्षेत्रमें पहुँचा, तब संध्या होनेको आ गयी। रावणके पास आत्मतत्त्वलिङ्ग होनेसे देवता चिन्तित थे। उनकी मायासे रावणको शौचादिकी तीव्र आवश्यकता हुई। देवताओंकी प्रार्थनासे गणेशजी वहाँ रावणके पास ब्रह्मचारीके रूपमें उपस्थित हुए। रावणने उन ब्रह्मचारीके हाथमें वह लिङ्गविग्रह दे दिया और स्वयं नित्य-कर्ममें लगा। इधर मूर्ति भारी हो गयी। ब्रह्मचारी बने गणेशजीने तीन बार नाम लेकर रावणको पुकारा और उसके न आनेपर मूर्ति पृथ्वीपर रख दी।

रावण अपनी आवश्यकताकी पूर्ति करके शुद्ध होकर आया। वह बहुत परिश्रम करनेपर भी मूर्तिको उठा नहीं सका। खीझकर उसने गणेशजीके मस्तकपर प्रहार किया और निराश होकर लंका चला गया। रावणके प्रहारसे व्यथित गणेशजी वहाँसे चालीस पद जाकर खड़े रह गये। भगवान् शंकरने प्रकट होकर उन्हें आश्वासन दिया और वरदान दिया कि 'तुम्हारा दर्शन किये बिना जो मेरा दर्शन-पूजन करेगा, उसे उसका पुण्यफल नहीं प्राप्त होगा।'

(ख) महाबलेश्वर महादेवका एक अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर बम्बईसे दक्षिण पश्चिमी घाट नामक पर्वत-श्रेणीपर स्थित है। महाबलेश्वर स्थान ही सुप्रसिद्ध कृष्णा नदीका उद्गम स्थान है।

उत्तर भारतमें लखीमपुर-खीरीसे २२ मीलपर ार्णनाथका अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है। यह उत्तर है। दक्षिण गोकर्णक्षेत्र दक्षिण भारतमें पश्चिम र है। गोकर्णक्षेत्रमें भगवान् शंकरका आत्म- है। यहाँ एक विशाल सरोवर है, जिसके समीप ा महादेवका विशाल मन्दिर है। शिवरात्रि तथा चैत्र गोकर्णक्षेत्रमें अनेक दर्शनार्थी आते हैं।

) सीतापुरमें स्थित पवित्र तीर्थ नैमिषारण्यमें ह पास गोकर्ण महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है।

) मथुरामें गोकर्णेश्वरका प्रसिद्ध मन्दिर है। ाकी कथाके अनुसार वसुकर्ण नामक एक वैश्य था। ीका नाम सुशीला था। पर संतान न होनेके कारण न्त दुःखी होकर एक दिन उग्रतपा नामक मुनिके पास ुनिने कृपापूर्वक उससे कहा—'देवि ! तुम गोकर्ण ी आराधना करो, वे तुम्हारी मनःकामना अवश्य पूर्ण तदनुसार सुशीलाने दस वर्षतक गोकर्ण महादेवकी । की, प्रसन्न होकर उन्होंने पुत्र-प्राप्तिका वर प्रदान उसका नाम भी गोकर्ण रखा गया। मन्दिरमें गोकर्ण ी प्रतिमा विशाल है। उसके एक हाथमें खप्पर तथा पुष्प है।

व) गोकर्णेश्वर महादेवका एक प्रसिद्ध मन्दिर उड़ीसामें र्वतपर अवस्थित है। शिवरात्रिपर यहाँ विशाल मेला है। मन्दिरमें एक प्राचीन शिलालेख है, जिसमें ाके एक प्रसिद्ध नरेश कुलोत्तङ्ग राजेन्द्रकी विजयका है।

श्वनाथ—

जस प्रकार उत्तर भारतमें काशीतीर्थ है, उसी प्रकार भारतकी काशी 'तेन्काशी' कहलाती है। 'तेन्'का अर्थ होता है। यहाँ मन्दिरमें काशी-विश्वनाथका लिङ्ग त है। शिवमन्दिरके पार्श्वमें पार्वतीजीका विशाल मन्दिर क्षिणमें इस क्षेत्रकी विशेष महिमा है।

कलिङ्गेश्वर—

मेवाड़में उदयपुरसे कुछ उत्तर एकलिङ्गेश्वरका प्रसिद्ध है। यहाँ शंकरजीके छोटे-बड़े अनेक मन्दिर हैं। यह स्थान कैलासपुरी कहलाता है। इस लिङ्गकी द्वादशज्योति-लिङ्गोंके समान ही अत्यधिक महिमा है। इसकी स्थापना मेवाड़के महाराणाओंके पूर्वजोंद्वारा की हुई बतायी जाती है।
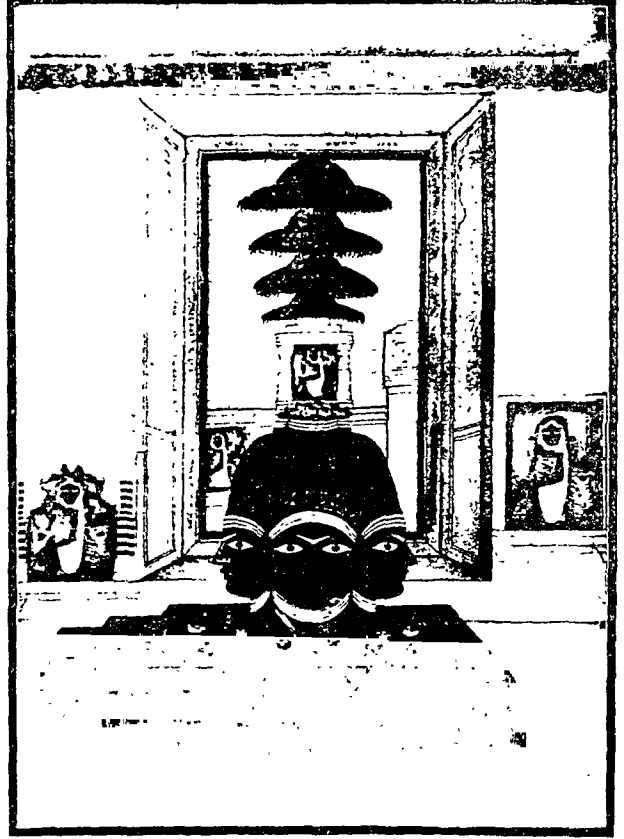
श्रीएकलिङ्गकी मूर्ति श्याम पाषाणसे निर्मित चतुर्मुख है। इसका एक मुख ब्रह्माका, दूसरा विष्णुका, तीसरा रुद्रका तथा चौथा सूर्यका है। मन्दिरमें काली, पार्वती, गणेश तथा स्वामिकार्तिकेयकी भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। मन्दिरकी परिक्रमामें गङ्गाजीकी भी मूर्ति है।

श्रीनागेश्वर महादेव—

भगवान् शिव नागेश्वररूपसे अयोध्यामें विराजमान हैं। कहा जाता है कि भगवान् रामके साकेत पधारनेपर अयोध्या प्रायः शून्य-सी हो गयी। महाराजा कुशने अयोध्यामें आकर पुनः अयोध्याको बसाया। एक समय जलक्रीडा करते समय राजाका कङ्कण जलमें गिर पड़ा और उसे एक नागकन्या कुमुद्वती ले गयी। कुशको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने नागोंके नाशका विचार किया। नाग डर गये और कुमुद्वतीको साथ ले कङ्कण लेकर आये तथा क्षमा-याचना करने लगे। कुशका क्रोध शान्त नहीं हुआ, नाग शिव-भक्त था, अतः

भक्तभयहारी भगवान् शंकरने प्रकट होकर कुशका कोप शान्त किया। कुशने भगवान् शिवकी विधिवत् पूजा की और सर्वदा

अयोध्यामें रहनेकी प्रार्थना की। तबसे शिवजी वहाँ विराजने लगे। नागकी रक्षाके लिये प्रकट हुए थे, अतः इनका नाम नागनाथ या नागेश्वर पड़ा। पुण्यतोया सरयूजीमें स्नान करके श्रीनागनाथजीकी पूजा करनेसे ही अयोध्याकी यात्रा पूर्ण मानी जाती है।

अमरनाथके दर्शन—

कश्मीरमें भगवान् शंकरका प्रसिद्ध स्वयम्भूलिङ्ग है। कुछ लोग इसीको अमरेश्वर नामका ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं।

यहाँका शिवलिङ्ग तथा गुहा-मन्दिर दोनों ही मनुष्यकृत न होकर प्रकृतिके हाथोंसे ही बने हुए हैं। इस पुण्यस्थानकी यात्रा विशेषरूपसे श्रावण-पूर्णिमाको होती है। यहाँकी गुफाके भीतर तीन हिमलिङ्ग-से दीख पड़ते हैं, जिन्हें लोग शिव, पार्वती और गणेशके लिङ्ग बताते हैं। कन्दराकी छतसे बूँद-बूँद जल टपकता रहता है। यहाँके हिमलिङ्गमें बड़ी विलक्षण शक्ति है। बहुत दूर-दूरके यात्री यहाँकी दुर्गम यात्रा करके भगवान्‌के दर्शन करते हैं।

श्रीमुक्तिनाथ महादेव—

आसाम प्रान्तके शिवसागर स्थानमें श्रीमुक्तिनाथ महादेवका मन्दिर है। इस मन्दिरको यहाँके आहोमवंशीय राजा
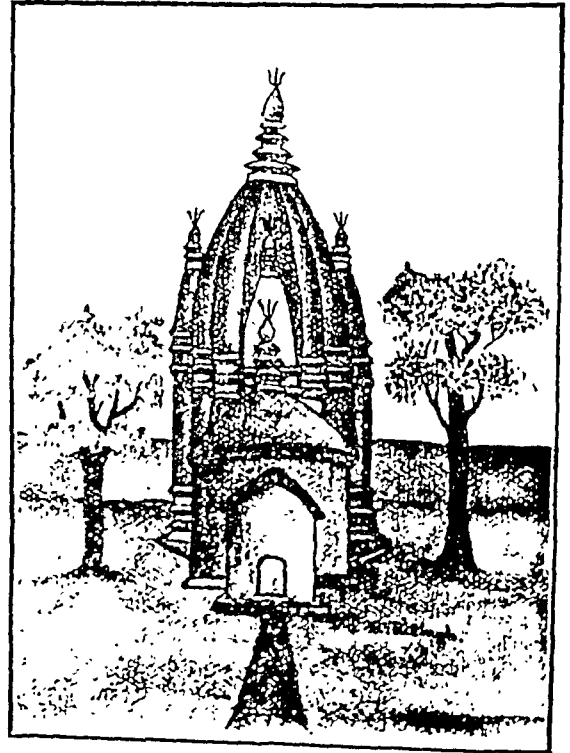
शिवसिंह, जो अत्यन्त शिव-भक्त थे, के द्वारा शंकरजीके स्वप्नादेशके आधारपर बनवाया गया है। मन्दिर अष्टदलकमलाकार सुन्दर विशाल प्रस्तरपर बना है, जिसके शिखरपर स्वर्णकलश है। मन्दिरकी बायीं ओर विष्णुका तथा दाहिनी ओर श्रीदेवीजीका छोटा मन्दिर है। पीछेकी ओर एक विशाल सरोवर है। श्रीमुक्तिनाथजीकी बड़ी महिमा है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ मेला लगता है।

वैद्यनाथ (काँगड़ा)—

काँगड़ामें ज्वालादेवी तथा वैद्यनाथ नामक शिवमन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। बंगालका वैद्यनाथधाम इससे भिन्न है।
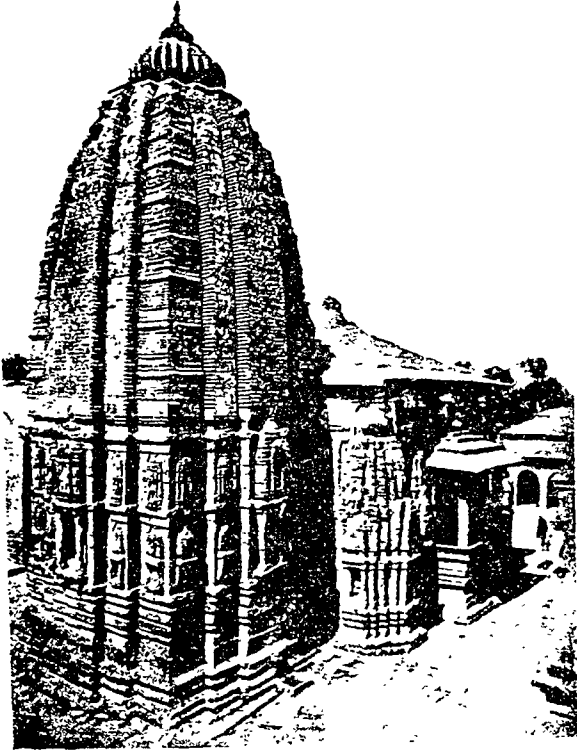
काँगड़ेके वैद्यनाथ-मन्दिरमें शंकरजी लिङ्गरूपमें विद्यमान हैं। अनेक तीर्थयात्री ज्वालामुखीदेवी और वैद्यनाथ-मन्दिरके दर्शन करने यहाँ आते हैं।

बृहदीश्वर महादेव—

कुम्भकोणम्से २४ मील दूर पवित्र कावेरी नदीके तटपर तंजौरमें एक किलेके अंदर बृहदीश्वरका विशाल मन्दिर है। शिखरपर स्वर्ण-कलश है। मन्दिरके बाहर एक नन्दीश्वरकी अत्यन्त विशाल मूर्ति है, जो सोलह फुट लम्बी, सात फुट चौड़ी और बारह फुट ऊँची है।

कहा जाता है कि चोलवंशके राजराजेश्वर नामक नरेशको स्वप्नमें आदेश हुआ कि 'नर्मदामें मेरा एक सैकत लिङ्गमय महान् विग्रह है, उसे लाकर स्थापित करो।' उस स्वप्नादेशके अनुसार बृहदीश्वर-लिङ्गमूर्ति नर्मदासे लायी गयी। पुनः स्वप्नानुसार नन्दीकी भी विशाल मूर्ति लाकर वहाँ प्रतिष्ठित करायी गयी।

सुन्दरेश्वर—

मदुरानगर मद्रास-प्रान्तमें बैगाई नदीके तटपर बसा हुआ है। यहाँका मीनाक्षी-सुन्दरेश्वरका मन्दिर अत्यन्त विशाल, लगभग दो सौ फुट ऊँचा है। शिल्पकलाकी दृष्टिसे यह मन्दिर अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिका है। भगवान् सुन्दरेश्वर मीनाक्षीदेवी (जो भगवती दुर्गाका ही नाम है) के पति माने जाते हैं। इनका लिङ्ग-विग्रह बड़ा तेजस्वी, चाँदीके त्रिपुण्ड्रसे मण्डित, श्वेतवर्णका दुपट्टा धारण किये बड़ा भव्य मालूम पड़ता है।
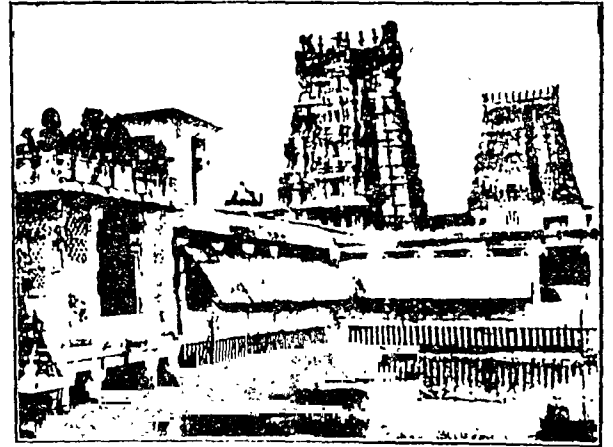
सुन्दरेश्वर-मन्दिरके प्रवेशद्वारपर द्वारपालोंकी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरके सम्मुख पहुँचनेपर प्रथम नटराजके दर्शन होते हैं। यह ताण्डव-नृत्य करती भगवान् शिवकी मूर्ति चिदम्बरम्‌की नटराज-मूर्तिसे बड़ी है। चिदम्बरम्‌में नटराज-मूर्तिका वामपाद ऊपर उठा है और यहाँ दाहिना पाद ऊपर उठा है। चैत्र महीनेमें यहाँ मीनाक्षी-सुन्दरेश्वरका विवाह बड़े उल्लासके साथ मनाया जाता है।

पक्षितीर्थके विग्रह—

मद्रासके समीप ही चिंगलपट नामका एक स्टेशन है। यहाँसे १० मीलकी दूरीपर समुद्रतटपर पक्षितीर्थ विराजमान है। पक्षितीर्थमें शङ्खतीर्थ नामक सरोवरमें स्नान करनेके उपरान्त यात्री लोग पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़कर पहाड़के शिखरपर जाते हैं, जहाँ पक्षितीर्थ विद्यमान है। यहाँ एक अति प्राचीन शिवमन्दिर है। मध्याह्नके समय मीठा भात तथा घी हाथमें लेकर पुजारी पूर्वाभिमुख होकर घण्टा बजाता है। घण्टेका शब्द होते ही दो श्वेतवर्णके पक्षी उड़कर पुजारीके समीप आ बैठते हैं और प्रसाद तथा जल ग्रहणकर उड़ जाते हैं।

ास्तिकोंका विश्वास है कि साक्षात् शिव-पार्वती ही उन क्षियोंके रूपमें आते हैं और भक्तको कृतार्थ कर चले जाते । कुछ लोगोंकी धारणा है कि ये कोई ऋषि हैं।

ङ्गराज—

उड़ीसा प्रान्तमें जगन्नाथधामके निकट भुवनेश्वरमें विशाल गगनचुम्बी भुवनेश्वर (लिङ्गराज) का प्राचीन ःर है, जो अपनी शिल्पकला एवं स्थापत्य-कलाके लिये ान्त विख्यात है। भुवनेश्वरका प्राचीन नाम 'एकाम्रवन' या ाम्र-क्षेत्र' है। यह मन्दिर विन्दुसरोवरके पास है।
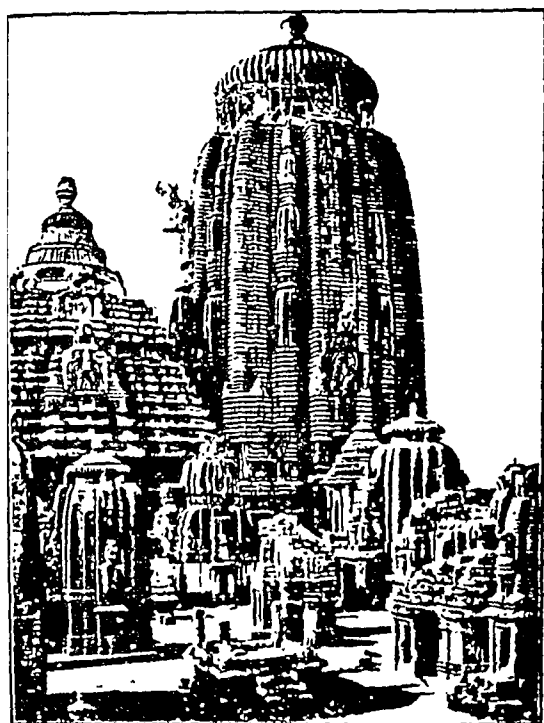
भगवान् भुवनेश्वरका लिङ्गविग्रह बड़ा विशाल है। ःकी आकृति भी कुछ विचित्र-सी है। वह एक पाषाण-भ-सा दिखायी देता है। उसमें तीन विभाग-से दीखते हैं, जो ा, विष्णु एवं शिवके द्योतक हैं। लिङ्गके नीचे बराबर जल रहता है और दूध-दही तथा जलसे उसे स्नान कराया ाा है। भुवनेश्वरका प्राचीन मन्दिर केसरीवंशके राजाओंका वाया हुआ है। इस मन्दिरके चार भाग हैं, जो क्रमशः ामन्दिर, नटमन्दिर, जगमोहन एवं गर्भगृह कहलाते हैं। ग्य मन्दिर लिङ्गराजके अतिरिक्त प्राकारके भीतर वहुत-से -देवियोंके मन्दिर हैं। पास ही भुवनेश्वरी-मन्दिर है। इन्हें लिङ्गराजकी शक्ति माना जाता है। भुवनेश्वरी-मन्दिरके पास ही नन्दी-मन्दिर है, जिसमें विशाल नन्दीकी मूर्ति है।

तारकेश्वर महादेव—

कलकत्तेके निकट भगवान् तारकेश्वर महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरके समीप ही दूधगङ्गा नामका एक सरोवर है, इसीका जल यहाँ पूजा आदि व्यवहारमें आता है। शिवरात्रि तथा चैत्रकी संक्रान्तिके दिन यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। इस क्षेत्रमें इनकी बड़ी महिमा है। प्रायः काँवर लेकर यात्री यहाँ पैदल भी आते हैं।

हाटकेश्वर महादेव—

भगवान् शंकरके तीन मुख्य लिङ्गोंमें एक हाटकेश्वर है। यद्यपि हाटकेश्वरका मूललिङ्ग तो पातालमें है। नागर ब्राह्मणोंके हाटकेश्वर कुलदेवता हैं। देशमें हाटकेश्वर महादेवके मन्दिर बहुत अधिक हैं। स्कन्दपुराण, नागरखण्डमें इसका विस्तृत माहात्म्य आया है। कहते हैं, त्रिलोकी मापते समय भगवान् वामनने पहला पद वडनगरमें ही रखा। भगवान् श्रीकृष्ण परमधाम पधारनेसे पूर्व यहाँ पधारे थे। यहाँ यादवोंके साथ पाण्डव भी पधारे थे। उन्होंने अनेक शिवलिङ्गोंकी स्थापना की।

वडनगर (चमत्कारपुर) अहमदाबादसे ४३ मील दूर मेहसाणा तथा वहाँसे २१ मील दूर है। हाटकेश्वर महादेव-लिङ्ग यहीं वडनगरमें प्रतिष्ठित है।

किरातेश्वर भगवान् शिव—

प्राचीन कोचीनकी राजधानी अर्नाकुलम्से कुछ दूर 'त्रिपुणित्तुरै'में किरातरूपमें प्रकट भगवान् शंकरकी एक उत्थित मूर्ति है। विग्रहका वर्ण नीलमेघके समान तथा हाथ छुरिका तथा चापसे सुसज्जित हैं। यह मूर्ति अपने कलात्मक सौन्दर्य तथा स्वरूपकी दृष्टिसे अत्यन्त विलक्षण है। यह भगवान्का युद्धरूप है।

मयूरेश्वर शिव—

दक्षिण रेलवेकी मद्राससे धनुष्कोटि जानेवाली लाइनपर मायावरम् प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ मयूरेश्वर-मन्दिर है। इस मन्दिरमें भगवान् मयूरेश्वर शिवलिङ्गरूपमें स्थित हैं। मन्दिरमें ही पार्वती-मन्दिर है। पार्वतीजीका नाम अभयाम्बा है।

कथा—दक्ष-यज्ञके समय जब रुद्रगण यज्ञ-ध्वंस करनेको उद्यत हुए, तब एक मयूर भागकर सतीकी शरणमें

आया। सतीने उसे शरण दी। पीछे सतीने योगाग्निसे शरीर छोड़ा, उस समय उनके मनमें उस मयूरका स्मरण था, इससे वे मयूरी होकर उत्पन्न हुईं। मयूरीरूपमें उन्होंने यहाँ भगवान् शंकरकी आराधना की। भगवान् शिवने मयूरेश्वर-मूर्तिमें ही उन्हें दर्शन दिये। यही मूर्ति वहाँ प्रतिष्ठित हुई। मयूरी-देह त्यागकर सतीने हिमालयके यहाँ पार्वतीरूपमें शरीर धारण किया। मयूरको अभय देनेके कारण यहाँ देवीका नाम अभयाम्बिका है।

त्यागराजेश्वर महादेवके दर्शन—

मायावरम्से २४ मीलपर तिरुवारूरमें भगवान् शंकरका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। शिवमूर्तिको त्यागराज कहते हैं और

मन्दिरमें जो पार्वती-विग्रह है, उसे नीलोत्पलाम्बिका कहते हैं। दक्षिण भारतका यह त्यागराज-मन्दिर अत्यन्त विख्यात है। त्यागराज-मन्दिरका गोपुर दक्षिण-भारतके मन्दिरोंके गोपुरोंमें सबसे चौड़ा है। भगवान् त्यागराजका 'अजपानटनम्' नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं यह मूर्ति महाराज मुचुकुन्दद्वारा स्वर्गसे लायी गयी थी।

पराम्बा भगवती दुर्गाके विभिन्न स्वरूपोंमें दर्शन

देवभूमि भारतमें उस पराशक्ति पराम्बा भगवतीकी सगुणोपासना विभिन्न विग्रहोंमें अनादिकालसे सनातनरूपसे होती चली आ रही है। शास्त्रोंमें इसी पराशक्तिको परब्रह्म परमात्माके रूपमें दुर्गा, काली आदि अनेक नामोंसे अभिहितकर उनकी उपासनाका मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। भक्त देवी दुर्गाकी पूजा और उनके दिव्य श्रीविग्रहका दर्शन अनेक नाम-रूपोंसे करते चले आ रहे हैं। भारतके अनेकानेक स्थानोंपर अनेक शक्तिपीठ तथा भगवतीके विग्रह-मन्दिर विद्यमान हैं। कहीं सर्वाङ्गपूर्ण विग्रह, कहीं अङ्गविशेष तो कहीं यन्त्रादि प्रतीकरूपमें दीखते हैं। देवीके विभिन्न नामोंसे जो विभिन्न विग्रह हैं, उनमेंसे यहाँ कुछ विग्रहों एवं उनके मन्दिरोंका संक्षिप्त परिचय तथा उनका दर्शन कराया जा रहा है—

श्रीदुर्गाजी—

काशीमें दुर्गाकुण्डके पास श्रीदुर्गामाताका एक सिद्ध जाग्रत् स्थान है। यहाँ मन्दिरमें कूष्माण्डादेवीकी प्रतिमा है, जो दुर्गाजीके नामसे पुकारी जाती है। मन्दिरके घेरेमें शिव, गणपति आदि देवताओंके मन्दिर हैं। मुख्य द्वारके पास दुर्गाविनायक तथा चण्डभैरवकी मूर्तियाँ हैं। पास ही कुक्कुटेश्वर
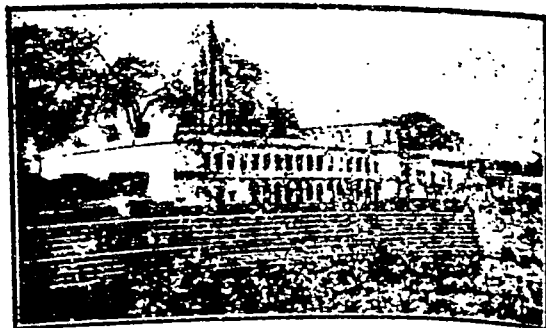
महादेव हैं। राजा सुबाहुपर प्रसन्न होकर भगवती दुर्गा यहाँ दुर्गारूपमें स्थित हुई थीं। यहाँ दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है। नवरात्रोंमें विशेष महोत्सव होता है।

श्रीअन्नपूर्णा

काशीपुरीमें बाबा विश्वनाथ-मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर माता अन्नपूर्णाका एक भव्य मन्दिर है। चाँदीके सिंहासनपर
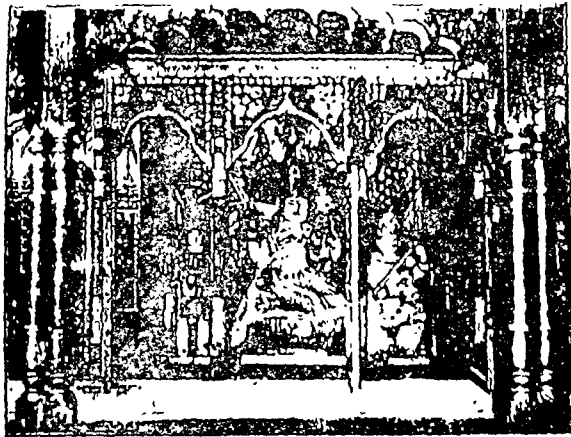
अन्नपूर्णाकी मूर्ति विराजमान है। मन्दिरके सभामण्डपके पूर्व कुबेर, सूर्य, गणेश, विष्णु तथा हनुमान्जीकी मूर्तियाँ और आचार्य श्रीभास्कररायद्वारा स्थापित यन्त्रेश्वर लिङ्ग है, जिसपर श्रीयन्त्र खुदा हुआ है। इस मन्दिरके साथ लगा एक खण्ड है, जिसका आँगन विस्तृत है। उसमें महाकाली, शिव-परिवार, गङ्गावतरण, लक्ष्मीनारायण, श्रीरामदरबार, राधाकृष्ण, उमामहेश्वर एवं अन्तमें नृसिंह भगवान्की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। चैत्र शुक्ला नवमी तथा आश्विन शुक्ला अष्टमीको अन्नपूर्णाजीके दर्शन-पूजनकी विशेष महिमा है। ये काशीकी अधिष्ठात्री देवी हैं और शंकरप्राणवल्लभा हैं। काशीमें इनकी विशेष प्रतिष्ठा है।

भगवती संकटादेवी

काशीमें भगवती संकटा माताका अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है। इन्हें 'विकटा' तथा 'पञ्चमुद्रा मातृका' भी कहा जाता है। पद्मपुराणके अनुसार श्रीसंकटादेवीका स्थान काशीमें आत्मा-वीरेश्वरके उत्तर तथा चण्डेश्वरके पूर्वमें है। संकटाजीका वर्तमान मन्दिर आज भी वहींपर विद्यमान है। मन्दिरके अंदर दालान पार करनेपर एक आसनपर रजतमूर्ति श्रीसंकटादेवीकी दिव्य झाँकीके दर्शन होते हैं। इनका विग्रह पुष्पमालाओंसे सुशोभित रहता है। समीपमें ही माताजीके वाहन सिंहकी एक विशाल प्रतिमा है। माताजीके दर्शन-पूजनसे सभी संकट दूर होते हैं और सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। भगवती श्रीसंकटादेवीकी काशीमें अत्यधिक महिमा है।

विशालाक्षीदेवी

काशीपुरीमें भगवान् शंकरका विश्वनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग है, साथ ही यहाँ सिद्धशक्तिपीठ भी है, जो मीरघाटपर धर्मेश्वरके समीप भगवती विशालाक्षी गौरीके नामसे प्रसिद्ध है। काशीमें नव-गौरियोंमें विशालाक्षी, मङ्गलागौरी तथा महालक्ष्मीगौरीको विशेष महत्त्व प्राप्त है। देवीका विशालाक्षी नामसे प्रसिद्ध एक शक्तिपीठ भी है। यहाँ देवीके दर्शनके लिये दूर-दूरसे यात्री आते हैं।

विन्ध्यवासिनी

भगवती भागीरथीके दक्षिण तटपर स्थित विन्ध्याचल जो सप्तकुलाचलोंमें एक है, वह अनेकानेक देव, गन्धर्व, किन्नर एवं ऋषि-महर्षियों तथा साधु-संतोंकी तपोभूमि रहा है। यहींपर राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका सर्वपूजित मन्दिर, जाग्रत् शक्तिपीठ है। कंसके हाथसे छूटकर जिन देवीने आकाशवाणी की थी, वही श्रीविन्ध्यवासिनी हैं। यहाँ पराम्बा अपने समग्ररूपसे सर्वाङ्गपूर्ण आविर्भूत हैं। इस क्षेत्रमें जो शक्तित्रिकोण है, उसके कोनोंपर क्रमशः विन्ध्यवासिनी (महालक्ष्मी), कालीखोहकी काली (महाकाली) तथा पर्वतपरकी अष्टभुजा (महासरस्वती) विद्यमान हैं। पूर्वमें भगवती विन्ध्यवासिनीका विग्रह मुख्य मन्दिरमें पश्चिमाभिमुख है। उन्हींके सामने विन्दुरूपमें भगवान् शंकर भी अधिष्ठित हैं। भगवतीके वामभागमें—दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख ऊर्ध्व-मुखी भगवती काली हैं और उत्तर-पश्चिममें पूर्वाभिमुख भगवती सरस्वती हैं। इस प्रकार यह लघु त्रिकोण बनता है, जो विन्ध्यवासिनीके मूलपीठका त्रिकोण है।

विन्ध्यक्षेत्रके त्रिकोणका केन्द्र-विन्दु श्रीरामेश्वर-महादेव-मन्दिरके सदाशिव हैं, जो पूर्वाभिमुख हैं। उनके एक नेत्रसे पश्चिमाभिमुख भगवती लक्ष्मी विन्ध्यवासिनी नामसे प्रसिद्ध हैं। दूसरे नेत्रसे उत्तराभिमुख महाकाली कालीखोहमें स्थित हैं और तीसरे नेत्रसे विन्ध्यपर्वतपर महासरस्वती अष्टभुजा नामसे उत्तराभिमुख स्थित हैं। इस त्रिकोणके अन्तर्गत अनेक देवी-देवता आते हैं।

वैष्णवी (वैष्णो)देवी

शक्तिके प्रधान अर्चा-पीठोंमें वैष्णवीदेवीके सिद्धपीठको न्त जाग्रत् माना जाता है। ये देवी वैष्णवी हैं, किंतु जहाँ विराजती हैं, वहाँ कोई मन्दिर नहीं है। कहा जाता है कि ने त्रिशूलके प्रहारसे गुफा बना ली है। गुफामें लगभग ५० भीतर जानेपर महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीकी ियाँ हैं। इन मूर्तियोंके चरणोंसे निरन्तर जल प्रवाहित होता ा है। इसे 'बाणगङ्गा' कहते हैं। गुफाद्वारमें थोड़ी दूरतक कर जाना पड़ता है। यहाँके श्रीविग्रह अत्यन्त मनोरम हैं। गोदेवीके भक्त भारतभरसे हजारोंकी संख्यामें यहाँकी यात्रा ते रहते हैं। यहाँकी यात्राकी महिमा नवरात्रमें विशेष है। त्रा-मार्गमें 'जै माता दी'के जयघोषसे पूरा वातावरण ह्लादित रहता है। यह स्थान जम्मूसे ४६ मील उत्तर-पश्चिम ऊँची पहाड़ीकी गुफामें है।

ज्वालामुखीदेवी

काँगड़ा जिलेमें एक पर्वतकी सुरम्य घाटीमें ज्वालाजीका ाग्रत् स्थान है। यहाँ भारतके कोने-कोनेसे दर्शनार्थी आकर
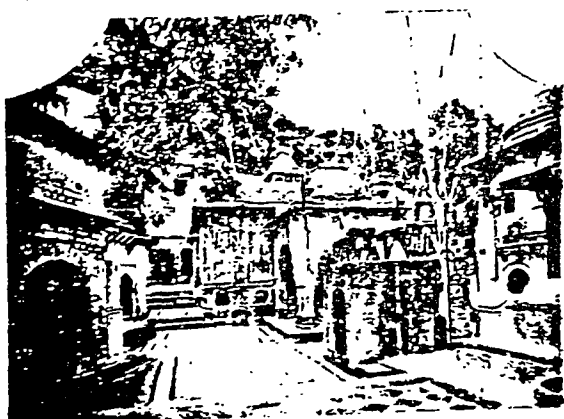
कृतार्थ होते हैं। देवीके मन्दिरके अहातेमें छोटी नदीके पुलपरसे जाना पड़ता है। मन्दिरके भीतर मूर्तिके स्थानपर सात पर्वतीय दरारोंसे अनादिकालसे प्रज्वलित एवं प्रदीप्त ज्वालाओंके दर्शन होते हैं। ज्योतियोंको दूध पिलाया जाता है तो उसमें बत्ती तैरने लगती है और कुछ देरतक नाचती है। यह दृश्य हृदयको बरबस आकर्षित कर लेता है और श्रद्धा उमड़ पड़ती है। इन ज्योतियोंकी संख्या अधिक-से-अधिक तेरह और कम-से-कम तीन होती है। नवरात्रोंमें यहाँ विशेष महोत्सव होता है।

राजराजेश्वरी

१-कानपुर-बालामऊ लाइनपर बाँगरमऊ स्टेशन है। यहाँ एक अद्भुत मन्दिर है जो तन्त्रशास्त्रकी रीतिसे बनाया गया है। यह मन्दिर राजराजेश्वरी श्रीविद्यामन्दिर कहा जाता है। मुख्य मन्दिरके भीतर जगदम्बाकी अष्टधातुकी मनोहर मूर्ति है। आसनके नीचे चतुर्दल कमलपर ब्रह्माजी स्थित हैं। उसके बाद षट्दलकमलपर विष्णुभगवान् स्थित हैं। मध्यमें षोडशदल-कमलपर सदाशिव विराजमान हैं। कमलदलोंपर क्रमशः 'वं','शं','षं','सं','बं','भं','यं','रं','लं', बीजाक्षर तथा 'अ'से 'अः' तक सोलह स्वरवर्ण उत्कीर्ण हैं। सदाशिवके बायीं ओर नीलवर्ण दशदलपद्मपर 'डं' से 'फं' तकके वर्णोंके साथ रुद्रकी मूर्ति है। आगे पार्श्वमें द्वादशदल रक्तकमलपर 'कं'से 'ठं' पर्यन्त वर्ण तथा ईश्वरमूर्ति हैं। इन पञ्चदेवताओंके ऊपर श्वेतकमल है, उसमें 'हं', 'क्षं' बीजाक्षर हैं तथा सदाशिव लेटे हैं। सदाशिवकी नाभिसे निकले कमलपर जगदम्बाकी मूर्ति विराजमान है। कुण्डलिनी योगके आधारपर बना अपने ढंगका यह मन्दिर तथा विग्रह भारतमें एकमात्र माना जाता है।

२-फर्रुखाबाद जिलेके तिरवाँ नामक स्थानमें एक चबूतरेपर संगमरमर पत्थरपर बने एक विशाल श्रीयन्त्रपर भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीकी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा एक सुन्दर मूर्ति बनी है। जनसाधारण इसे अन्नपूर्णा-मन्दिर कहते हैं।

३-काशीमें ललिताघाटपर राजराजेश्वरीका एक प्राचीन मन्दिर है, ये देवी यहाँ ललितागौरीके नामसे प्रसिद्ध हैं।

कामाक्षी

मोक्षदायिनी सात पुरियोंमें काञ्चीपुरीमें एकाम्रेश्वर-मन्दिरके समीप ही भगवती कामाक्षीदेवीका मन्दिर है। यह दक्षिण भारतका सर्वप्रधान शक्तिपीठ है। कामाक्षीदेवी आद्याशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी ही प्रतिमूर्ति हैं। इन्हें कामकोटि भी कहते हैं। कामाक्षी-मन्दिरके निजद्वारपर कामकोटि-यन्त्रमें आद्यालक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, संतानलक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, वीर्यलक्ष्मी तथा विजयलक्ष्मीका न्यास किया हुआ है। यह मन्दिर श्रीआदि-शंकराचार्यका बनाया हुआ कहा जाता है। शिवकाञ्चीके

शैव एवं वैष्णव-मन्दिर इस ढंगसे बने हैं कि उन मुख कामकोटिपीठकी ओर ही है। उन देव-विग्रहोंकी

ग्रात्रा जब-जब होती है, वे सभी इस पीठकी प्रदक्षिणा ए ही घुमाये जाते हैं। देवीका शुक्रवारको विशेष शृङ्गार ।

क्षी

क्षिणमें मदुरानगरके मध्यभागमें मीनाक्षीका मन्दिर है। न्दिर अपनी निर्माण-कलाकी भव्यताके लिये सर्वत्र
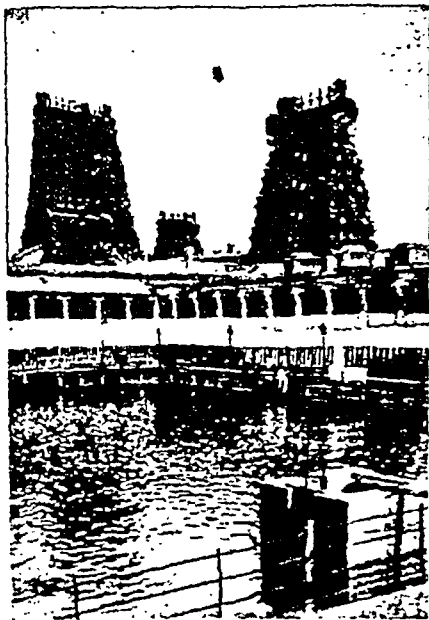
है। इसमें चारों ओर चार मुख्य गोपुर हैं। सबसे ऊँचा दक्षिणका गोपुर है। कई ड्योढ़ियोंके भीतर मीनाक्षीदेवीकी भव्य मूर्ति है। बहुमूल्य वस्त्राभरणोंसे देवीका श्यामविग्रह सुभूषित रहता है। मन्दिरके महामण्डपके दाहिनी ओर देवीका शयन-मन्दिर है। मन्दिरका शिखर स्वर्णमण्डित है। मीनाक्षी मन्दिरकी भीतरी परिक्रमामें अनेक देवमूर्तियोंके दर्शन होते हैं। निजमन्दिरमें परिक्रमा-मार्गमें ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बलशक्तिकी मूर्तियाँ बनी हैं।

एक कथा है कि यहाँ एक कदम्ब-वृक्षके नीचे सुन्दरेश्वरम् भगवान्‌का स्वयम्भू लिङ्ग था, देवगण उसकी पूजा करते थे। श्रद्धालु पाण्ड्यनरेश मलयध्वज शिवभक्त थे, उन्हें जब स्वयम्भू लिङ्गकी महिमाका पता चला, तब उन्होंने शिवमन्दिर बनानेका संकल्प लिया। स्वप्नमें भगवान् शंकरने राजाको आज्ञा दी और दिनमें सर्परूपमें आकर नगरकी सीमा भी निर्दिष्ट कर दी।

शंकरकी कृपासे निःसंतान मलयध्वज और उनकी पत्नी काञ्चनमालाको भगवतीके अंशरूपसे अवतरित एक कन्याकी प्राप्ति हुई। अत्यन्त ललित एवं सुन्दर नेत्रोंके कारण उसका नाम 'मीनाक्षी' रखा गया। कुछ समय बाद राजा मृत्युको प्राप्त हुए। मीनाक्षी विवाहयोग्य हो गयी। साक्षात् सुन्दरेश्वरम्‌ने स्वयं आकर मीनाक्षीका पाणिग्रहण किया। आज भी यहाँ चैत्रमासमें मीनाक्षी-सुन्देश्वरम्‌का विवाह-महोत्सव बड़े श्रद्धा-विश्वास एवं उल्लासके साथ मनाया जाता है।

क्षीरभवानी योगमाया

कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरसे पंद्रह मील उत्तर 'गन्धर्व' स्थान है। इसके पास ही क्षीरभवानी योगमायाका मन्दिर है। चारों ओर जल और बीचमें एक टापू है। क्षीरभवानीके मण्डपके चारों ओर कुण्ड-जलके रंग-परिवर्तनपर श्रद्धालु-भक्त शुभा-शुभका विचार भी करते हैं। ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमीको यहाँ बड़ा मेला लगता है। यह अत्यन्त सिद्धपीठ माना जाता है।

श्रीचामुण्डादेवी

१-अरावली पर्वत-शृंखलाओंके मध्य अवस्थित अजमेर (राजस्थान) नामक धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगरमें शक्तिदेवी चामुण्डाका एक सुन्दर मन्दिर है। ये देवी पृथ्वीराज चौहान तृतीयके वंशधरोंकी कुलदेवी तथा कविवर चंदवरदाईकी इष्ट देवी रही हैं। एक दन्तकथाके अनुसार देवी राजा पृथ्वीराजकी भक्तिसे इतनी प्रसन्न हुईं कि एक दिन वे एक अत्यन्त सुन्दर

स्त्रीका वेश धारणकर उनके साथ-साथ चलने लगीं और बोलीं—'मैं तुम्हारे साथ महलोंमें चलूँगी।' रातके समय परकोटेके बाहर आगे-आगे पृथ्वीराज चले और पीछे-पीछे वह सुन्दरी। जहाँ आज मन्दिर है, वहाँतक आकर स्त्री रुक गयी। पृथ्वीराज आगे निकल गये थे। वे उसे देखने पुनः वापस लौटे तो उन्होंने देखा कि वह स्त्री पत्थरमें परिवर्तित हो धीरे-धीरे जमीनमें धँसती जा रही है। उन्हें समझनेमें देर नहीं लगी कि यह परमाराध्या पराम्बा भगवती ही हैं। उन्होंने वहाँ मन्दिर बनवानेका संकल्प लिया। पृथ्वीराजने मन्दिर बनवाकर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करवायी। तबसे आजतक मन्दिरमें ढाई फुटका केवल सिर ही शेष दीखता है।

२-मथुरामें एक प्राचीन सुप्रसिद्ध शक्तिपीठ है। इसे 'मौली' शक्तिपीठ कहा जाता है। यहाँ सतीदेवीके केशपाशका पतन हुआ था। यह स्थान चामुण्डा कहलाता है। यहाँ महर्षि शाण्डिल्यने साधना की थी।

३-मैसूर (कर्नाटक प्रदेश) से लगभग ४ मील दूरीपर चामुण्डा-पर्वत है, इसी पर्वतपर भगवतीका चामुण्डा-पीठ है। कहा जाता है कि मैसूर ही महिषासुरकी राजधानी थी। यहाँ देवीने प्रकट होकर उसका वध किया था। मन्दिरका गोपुर बहुत ऊँचा है। ये देवी महिषमर्दिनी कही जाती हैं। पर्वत-शिखरपर एक घेरेमें खुले स्थानपर महिषासुरकी ऊँची मूर्ति बनी है।

दधिमथीदेवी

पुष्कर (अजमेर) तीर्थसे बत्तीस कोस दूरीपर देवीका कपाल-पीठ है। यहाँ भगवती दधिमथीका प्रसिद्ध स्थान है। देवीका मन्दिर अत्यन्त विशाल है, जिसमें चार बड़े-बड़े चौक हैं। यहाँके पीठके विषयमें किंवदन्ती है कि एक ग्वाला गायें चरा रहा था कि जमीन फटी और सिंह-गर्जनाके साथ भूमिसे देवीका कपाल बाहर आया और प्रतिष्ठित हो गया। यह देवी दाधीच ब्राह्मणोंकी परम उपास्या हैं।

कहा जाता है कि अयोध्याधिपति मान्धाताने यहाँ एक यज्ञ किया था, जिसमें प्रकट होकर देवीने उन्हें आशीर्वाद दिया। पुराणोंके अनुसार विकटासुरके वधार्थ देवीका आविर्भाव हुआ और उन्होंने दधि-समुद्रका मन्थन कर असुरका वध किया। इसीलिये ये दधिमथीदेवी कहलाती हैं।

श्रीत्रिपुरसुन्दरी

बाँसवाड़ा (राजस्थान) से १८ कि० मी० दूर स्थित तलवाड़ा गाँवके पास 'महालय उमराई' गाँवके निकटस्थ जंगलमें श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीका एक प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके द्वारके किवाड़ आदि चाँदीके बने हैं। गर्भगृहमें भगवतीकी काले पत्थरकी अठारह भुजाओंवाली भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। भक्तगण उन्हें 'तरताई माता'के नामसे सम्बोधित करते हैं। माँ सिंहवाहिनी हैं। अठारह भुजाओंमें दिव्य आयुध हैं। सिंहकी पीठपर अष्टदलकमल है, जिसपर विराजमान देवीका दाहिना पैर मुड़ा हुआ है और बायाँ पैर श्रीयन्त्रपर आधृत है।

भगवतीकी प्रतिमाके पृष्ठ-भागमें प्रभामण्डलमें आठ छोटी-छोटी देवीमूर्तियाँ हैं, जो आयुधोंसे युक्त होकर अपने-अपने वाहनोंपर आसीन हैं। पीछे पीठपर ५२ भैरवों तथा ६४ योगिनियोंकी सुन्दर मूर्तियाँ अङ्कित हैं। भगवतीकी मूर्तिके दायीं और बायीं ओरके भागोंमें श्रीकृष्ण तथा अन्य देवियाँ और विशिष्ट पशु अङ्कित हैं तथा देवदानव-संग्रामकी झाँकी दृष्टिगत होती है। माँकी प्रतिमा बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है। नवरात्रोंमें यहाँका मेला दर्शनीय होता है। मन्दिर घृतकी अखण्ड ज्योतिसे अहर्निश प्रदीप्त रहता है।

तुलजाभवानीके दर्शन

बम्बई-दिल्ली रेलमार्गके मध्य खंडवा ज़ंकशन पड़ता है। यहाँसे कुछ दूर माता तुलजाभवानीका एक प्राचीन भव्य मन्दिर है। माताकी मूर्ति अत्यन्त मोहक एवं आकर्षक है। खंडवाका प्राचीन नाम खाण्डव वन बताया जाता है। वनवासके समय भगवान् श्रीराम यहाँ पधारे थे। माता सीताको प्यास लगनेपर भगवान् श्रीरामने 'पर्जन्यास्त्र'द्वारा जलधारा निकालकर सीताकी प्यास बुझायी थी। भगवान्ने यहाँ नौ दिनतक तुलजाभवानीकी आराधना की थी और मातासे अस्त्र-शस्त्र एवं वरदान लेकर वे दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े थे। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ यहीं अग्निदेवको अजीर्ण रोगके उपचारमें काष्ठोंसे तृप्त किया था और देवीकी शक्तिसे इन्द्रको वर्षा करनेसे रोका था। छत्रपति शिवाजीकी ये

आराध्या कुलदेवी थीं। यहाँ शारदीय नवरात्रमें विशाल मेला लगता है। माता तुलजाभवानीके मन्दिरमें श्रीगणेश,

भैरव, चौंसठ योगिनीं, अन्नपूर्णा एवं श्रीहनुमान्‌जी आदिके आकर्षक देव-विग्रह भी हैं। भगवती तुलजाभवानी साक्षात् सिद्धिदात्री हैं।

श्रीकालिका

१-दिल्लीसे शिमला जानेवाली लाइनपर कालका स्टेशन है। यहाँ भवानी कालिकाका प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंकी प्रार्थनापर देवीका जो श्यामवर्ण रूप प्रकट हुआ, वही कालिकादेवी हैं और मान्यता है कि कालकास्थित इस मन्दिरमें वही भगवती देवी कालिका प्रतिष्ठित हैं।

२-जिला पिथौरागढ़में कालिकादेवीका एक अत्यन्त प्राचीन सिद्धपीठ है। गंगोलीहाटमें देवदारुवनके मध्य स्थित यह स्थान अत्यन्त पवित्र एवं मनोरम है। भगवतीकी मनोरम प्रतिमा एक छोटेसे मन्दिरके मध्य प्रतिष्ठित है। कहा जाता है कि देवीकी मूल प्रतिमा इसी वर्तमान प्रतिमाके नीचे अंदर सात तहोंसे ढकी हुई है। यहाँ इस स्थानकी अत्यधिक महिमा है। दुर्गासप्तशतीमें **'कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया'** से इन्हीं कालिकादेवीका उल्लेख मिलता है। यहाँ घण्टियाँ चढ़ायी जाती हैं। इतनी अधिक मात्रामें घण्टियाँ शायद ही किसी अन्य मन्दिरमें होंगी। यहीं एक चार द्वारयुक्त मण्डपमें पाँच विशाल घण्टे टँगे हैं, जिनमें एक-एक मनोंके चार द्वारोंमें तथा ढाई मनका मण्डपके मध्यमें टँगा है। भक्तों एवं साधकोंके लिये यह क्षेत्र अत्यन्त सिद्धिदायक माना जाता है। दोनों नवरात्रोंमें यहाँ हजारों दर्शनार्थी देवीके दर्शनके लिये आते हैं।

३-हावड़ा स्टेशनसे लगभग पाँच मील दूर भागीरथीके आदिस्रोतपर कालीघाट नामक स्थान है। यहींपर सुप्रसिद्ध कालीजीका मन्दिर है, जिसमें कालीजीकी चतुर्भुजी विशाल प्रतिमा है। माँकी बहुत बड़ी रक्तिम जीभ बाहर निकली हुई है। यह एक प्रधान शक्तिपीठ है। मन्दिरमें त्रिनयना, रक्ताम्बरा,

मुण्डमालिनी तथा मुक्तकेशीके रूपमें माता विराजमान हैं। न केवल बंग प्रान्त अपितु सम्पूर्ण भारत तथा बाहरसे भी लोग यहाँ दर्शनके लिये आते हैं। मन्दिरमें अपार भीड़ लगी रहती है। अनेक साधकोंने यहाँ सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। यहाँकी आश्विन मासकी दुर्गा-पूजा भारत-प्रसिद्ध महोत्सव है।

श्रीयोगमाया

दिल्लीस्थित कुतुबमीनारके पास निर्मित एक भव्य मन्दिरमें देवी कामाख्याके समान ही भगवती योगमायाके आदि-प्रतीक प्रतिष्ठित हैं। यहाँ इनकी अत्यधिक मान्यता है। इसे सिद्धपीठ माना जाता है।

नन्दादेवी

जिला अल्मोड़ामें नन्दादेवीका प्राचीन और पौराणिक (केदारखण्ड, मार्कण्डेयपु०) शक्तिपीठ है। यहाँ यात्रियोंकी

महाराज विक्रमादित्यकी आराध्या देवी भी कहा जाता है। यहाँ सतीदेवीकी केहुनी गिरी थी। चण्ड-मुण्डके वधके लिये जब भगवान् शंकरने चण्डीका स्मरण किया तो देवीने प्रकट होकर उन दुष्टोंका वध कर डाला। शिवाजीने उन्हें हरसिद्धि नामसे उज्जैनके महाकालवनमें स्थित होनेके लिये कहा। तबसे ये माता यहाँ विराजमान हैं। यह देवी वैष्णवी देवी हैं।

श्रीबगलामुखी

मध्यप्रदेशके होशंगाबादमें भगवती बगलामुखीका प्रसिद्ध मन्दिर है, जो दुर्गाकुटीके नामसे विख्यात है। यहाँ दतियाके पास श्रीवनखण्डेश्वर महादेवके समीप एक वेदान्ती योगीने श्रीपीताम्बरापीठकी स्थापना करते हुए भगवती

बगलामुखीकी चतुर्भुजी मूर्ति प्रतिष्ठित करायी। श्रीस्वामी महाराजकी साधनासे यह स्थान विशिष्ट सिद्ध शक्तिपीठोंमें परिगणित होता है। यहाँपर शंकर, गणेश, हनुमान्, पीताम्बरा, परशुराम, भैरव आदि अनेक देवी-देवताओंके भी स्थान हैं।

श्रीशारदामाता

मध्यप्रदेशके मैहर नामक स्थानमें शारदादेवीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मन्दिर एक त्रिकूट-पर्वतपर जंगलमें स्थित है। महाराजा मैहरके पूर्वजनोंने लगभग २५० वर्ष पूर्व माँके मन्दिरतक जानेके लिये सीढ़ियोंका निर्माण करवाया था। यही माता शारदा महोवा-नरेश आल्हाकी भी इष्टदेवी थीं। यहाँ सिद्ध संत-महात्माओं और नैष्ठिक भक्तोंकी उपस्थिति सदैव रहती है। माँकी कृपासे यहाँपर उनके भी दर्शन होते हैं ऐसा लोगोंका विश्वास है। यहाँ वैष्णव-पद्धतिसे माँकी पूजा-आराधना होती है।

जनकनन्दिनी भगवती जानकी

भगवती जानकीका आविर्भाव मिथिलान्तर्गत सीतामढ़ी-क्षेत्रमें हुआ। राजा जनक जब स्वर्णिम हल चला रहे थे, उसी समय पृथ्वीसे भगवती जानकी प्रकट हुईं। अभी भी सीतामढ़ीमें उसी स्थानपर जानकीजीका विशाल मन्दिर है, जहाँ श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकी—तीनोंकी अर्चा-पूजा होती है। देवीकी यह प्रतिमा स्वयम्भू है, जो वहाँ पृथ्वीसे प्रकट हुई है। यहाँ माताके भक्त माँके दिव्य दर्शन करनेके लिये आते रहते हैं।

चण्डिकामाता

महर्षि मुद्‌गलकी तपोमयी पावन पुण्यभूमि मुद्‌गलगिरि या मुंगेर नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ गङ्गाके तटपर नगरके पूर्वमें जो चण्डिका माताका विख्यात मन्दिर है, सिद्ध शक्तिपीठ है। देवी सतीके नेत्रका इस स्थानपर गिरनेका वर्णन प्राप्त होता है। आज भी यहाँ नेत्रकी ही पूजा होती है।

इस सिद्धपीठके सम्बन्धमें एक स्थानीय अनुश्रुति है, जिसके अनुसार अंगदेशके राजा दानवीर कर्ण (अथवा मतान्तरसे बलाह राजा) शक्तिके उपासक थे। वे नित्यप्रति मध्यरात्रिमें देवीकी भक्तिमें तल्लीन हो जाते थे। एक कड़ाहमें तेल खौलता रहता था, वे उसमें कूद पड़ते तथा चौंसठ योगिनियाँ उन्हें अपना भोजन बना लेतीं। कृपामयी भगवती पुनः अमृत-सिञ्चनसे उन्हें पूर्वरूपमें ला देतीं और वर माँगनेको कहती थीं। राजा सवा मन सोना माँगते और उन्हें वह प्राप्त हो जाता। राजा प्रातः वह सोना बँटवा देते। इसका प्रतीक यहाँ 'कर्ण-चौरा' बना हुआ है।

राजा विक्रमादित्यको जब यह बात मालूम हुई तो वे उनके पास जाकर सेवा करने लगे और उनकी गतिविधिको जान लेनेके बाद एक दिन उनसे पहले ही चण्डिका-स्थानपर गये। वे भी क्रमशः तीन बार कड़ाहमें कूदे, योगिनियोंने उनका भक्षण कर लिया। पुनः देवीकी कृपासे वे पूर्ववत् हो गये। देवीकी कृपा हुई, उन्होंने वर माँगा—'माताजी! आप हमें दो

वरदान दीजिये। पहला यह कि आप जिस कोषसे सवा मन सोना देती हैं, उसे ही हमें दे दीजिये, दूसरा यह कि इस कड़ाहको उलट दीजिये। देवीने ऐसा ही किया। जब कर्ण (बलाह) आये तो वह कड़ाह वहाँ नहीं था। भगवती चण्डी वहीं अन्तर्धान हो गयी थीं।

यहाँ इस सिद्ध चण्डिका-क्षेत्रकी अत्यधिक मान्यता है। नवरात्रोंमें तथा मंगल और शनिवारको दर्शनार्थी विशेषरूपसे यहाँ आते हैं।

कामाख्यादेवी

ब्रह्मपुत्र नदीके तटपर अवस्थित गुवाहाटीके कामगिरि पर्वतपर भगवती आद्याशक्ति कामाख्यादेवीका पावन पीठ स्थित है। यहाँ सतीदेवीका योनिपीठ है। यहाँ भगवतीकी
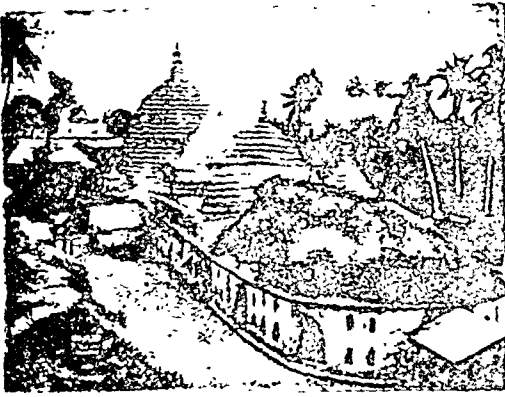
पूजा-उपासना तन्त्रोक्त आगम-पद्धतिसे की जाती है। मुख्य मन्दिर जहाँ महाशक्ति महामुद्रामें शोभायमान हैं, उसे 'कामदेवका मन्दिर' नामसे भी पुकारा जाता है। यहाँकी अधिष्ठात्री देवी कामाख्या अथवा कामाक्षा कहलाती हैं। यहाँ पूजा-उपासनामें कुमारिका-भोजनकी भी सुदीर्घ परम्परा है।

भद्रकाली

मध्यरेलवेकी बाजी-बेजवाड़ा लाइनपर काजीपेटसे छः मील दूर बारंगल नगर है। इसका प्राचीन नाम एकशिला है। यहाँ भद्रकालीका एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि सम्राट् हर्षवर्धनने यहाँ देवीकी अर्चना की थी। देवीकी प्रतिमा बैठी हुई है। यह प्रतिमा नौ फुट ऊँची और उतनी ही चौड़ी है। अष्टभुजाकी ऐसी प्रतिमा कदाचित् देशमें अन्यत्र कहीं नहीं है। देवी एक राक्षसके ऊपर बैठी हैं, उनका वाम चरण नीचे लटका हुआ है।

श्रीमहाकालीजी

बड़ौदा (गजराज) नगरसे तीस मील दूर ईशानकोणमें पावागड़ नामक एक पहाड़ीमें चम्बानेर नामक स्थानपर श्रीमहाकाली शक्तिपीठ है। यहाँ देवीका केवल शिरोभाग ही दिखायी देता है। यहाँ विश्वामित्रजीके तपस्या करनेकी बात कही जाती है।

बाला बहुचराजी

चुनाल (गुजरात) में बाला बहुचराजीका एक प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। यात्री स्नानकर शुद्ध हो देवीका दर्शन करते हैं। यहाँ साक्षात् वेदमाता गायत्री प्रतिष्ठित हैं। श्रीकृष्णके जन्मके समय योगमायारूपसे प्रकट हुई देवीका यह स्थान माना जाता है। बहुतसे राक्षसोंको अपना भक्ष्य बना लेने (चरने) के कारण ये देवी बहुचरा कहलाती हैं। मूलतः यहाँ यन्त्ररूपादेवीकी उपासना होती है। गुजरात-प्रदेशमें इन देवीकी अत्यन्त महिमा है। चैत्र, आश्विन एवं आषाढ़ी पूर्णिमाको यहाँ विशाल मेला लगता है।

मुम्बादेवी

बम्बईमें देवीका एक प्रधान मन्दिर है, जो मुम्बादेवीका मन्दिर कहलाता है। इन्हींके नामसे इस नगरका नाम
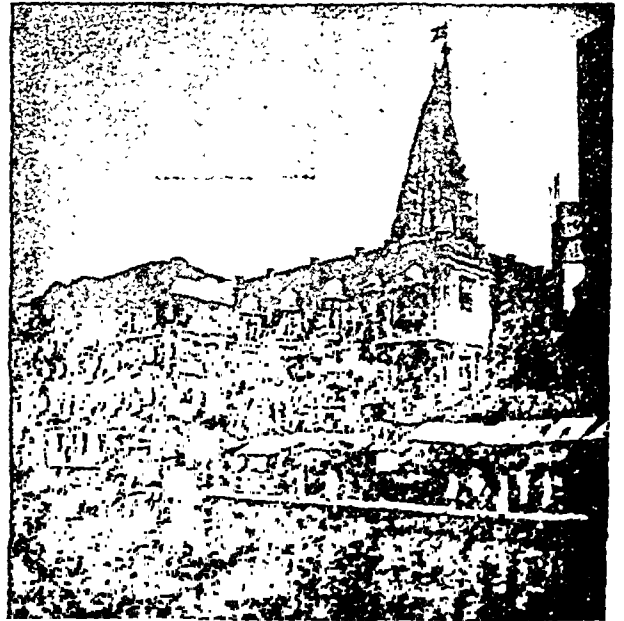
बम्बई या मुम्बई पड़ा है। यह मन्दिर विशाल है एवं विस्तृत क्षेत्रमें फैला है। इसमें शंकरजी, हनुमान्जी तथा गणेशजीके मन्दिर भी बने हैं।

रेणुकामाता

महाराष्ट्र प्रदेशमें नांदेडमें देवमाता रेणुकाजीका प्रसिद्ध श्रीविग्रह है। यह 'माहुरगढ़' शक्तिपीठ है। यहाँ माताका केवल मुख-भाग दीखता है। ये प्रायः सम्पूर्ण महाराष्ट्रकी कुलदेवी हैं। भगवान् परशुरामकी जननी होनेसे इस स्थानको 'माहुरीपुर' या 'मातापुर' भी कहा जाता है। भगवान् अवधूतेश्वर दत्तात्रेयका इस स्थानसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनकी दिनचर्याके विषयमें कहा गया है कि वे प्रातःकाल वाराणसीमें स्नान, कोल्हापुरके देवी-मन्दिरमें जप-ध्यान, माहुरीपुर (मातापुर) में भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा सह्याद्रिमें विश्राम करते हैं—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः ।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः ॥

(दत्तात्रेयवज्रकवच, ३)

करवीरस्थ महालक्ष्मी

कोल्हापुर देवीके सिद्ध महापीठोंमें एक प्रमुख पीठ है। स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) के अनुसार महर्षि अगस्त्य अपनी पत्नी पतिव्रता लोपामुद्राके साथ काशीसे दक्षिण आये और यहीं बस गये। करवीरक्षेत्रको वाराणसीसे भी श्रेष्ठ एवं भुक्ति-मुक्तिप्रद कहा गया है। इस क्षेत्रको दक्षिण काशी कहा जाता है। भगवान् दत्तात्रेय मध्याह्न-स्नानके बाद देवीकी स्तुतिके लिये यहाँ आते हैं। यहाँ महालक्ष्मीरूपमें देवीका श्रीविग्रह अत्यन्त प्राचीन है, जो करवीर-निवासिनी या 'कोलापुर-निवासिनी' कहलाती हैं। देवीके प्राधानिक रहस्य (सप्तशती) में निर्दिष्ट ध्यानके अनुरूप ही श्रीदेवीका यह विग्रह है, तदनुसार चतुर्भुजा जगन्माताके हाथोंमें मातुलुङ्ग, गदा, ढाल और अमृतपात्र विराजित है। मस्तकपर नागवेष्टित शिवलिङ्ग और योनि है। स्वयम्भू मूर्तिमें ही सिरपर किरीट उत्कीर्ण होकर शेषफणोंने उसपर छाया की है। साढ़े तीन फुट ऊँची यह प्रतिमा आकर्षक और अत्यन्त सुन्दर है। देवीके चरणोंके पास उनका वाहन 'सिंह' प्रतिष्ठित है।

पद्मावतीदेवी

तिरुपतिसे तीन मील दूर तिरुच्चानूर (गंगापट्टनम्) में पद्मसरोवरके पास भगवती पद्मावतीका विशाल मन्दिर है। ये महालक्ष्मीस्वरूपा कही गयी हैं। कहा जाता है, जब वेङ्कटेश वेङ्कटाचलपर निवास करने लगे, तब उनकी [illegible] श्रीलक्ष्मीजी तिरुच्चानूरमें आकाशराजके यहाँ कन्यारूप[illegible] हुईं। उनका विवाह श्रीबालाजी (वेङ्कटेशस्वामी) [illegible] हुआ। यहाँ इन्हीं देवी पद्मावतीका भव्य विग्रह है।

देवी कन्याकुमारीके दर्शन

ततस्तीरे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशे[illegible]
तत्तोयं स्पृश्य राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते

(महा०, वन० तीर्थयात्रा ८

'(कावेरीमें स्नान करके) मनुष्य समुद्रतटवर्ती क[illegible] में स्नान करे। इस कन्याकुमारी-तीर्थके जलका स[illegible] लेनेपर भी मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

यहाँ कन्याकुमारीके समुद्रतटपर गणेशजीका एव[illegible] है। इनका दर्शन करनेके अनन्तर ही कुमारीदेवीका दर्[illegible] लोग जाते हैं। देवीकी यह मूर्ति प्रभावोत्पादक तथा [illegible] देवीके एक हाथमें माला है। विशेषोत्सवोंपर देवीका [illegible] रत्नोंसे शृङ्गार होता है। रात्रिमें भी देवीका विशेष शृङ्गार ह[illegible]

कथा—बाणासुरने तपस्या करके भगवान् [illegible] प्रसन्न किया और उनसे अमरत्वका वरदान माँगा। [illegible] उसे बताया—'कुमारी कन्याके अतिरिक्त तुम सबसे [illegible] रहोगे।' वरदान पाकर बाणासुर त्रिलोकीमें उत्पात [illegible] लगा। उसके उत्पातसे पीड़ित देवता भगवान् विष्णुकी [illegible] गये। भगवान्ने उन्हें यज्ञ करनेका आदेश दिया। देव[illegible] यज्ञ करनेपर यज्ञकुण्डकी चिद् (ज्ञानमय) अग्निसे [illegible] अपने एक अंशसे कन्यारूपमें प्रकट हुईं।

देवी प्रकट होनेके पश्चात् भगवान् शंकरको प[illegible]

प्राप्त करनेके लिये दक्षिण समुद्रके तटपर तपस्या करने लगीं। भगवान् शंकरने पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लिया। देवताओंको चिन्ता हुई कि यह विवाह हो गया तो बाणासुर मरेगा नहीं। देवताओंकी प्रार्थनापर देवर्षि नारदने विवाहके लिये आते हुए भगवान् शंकरको 'शुचीन्द्रम्' स्थानमें इतनी देर रोक लिया कि प्रातःकाल हो गया। विवाहमुहूर्त टल जानेसे भगवान् शंकर वहाँ स्थाणुरूपमें स्थित हो गये। देवी फिर तपस्यामें लग गयीं। बाणासुरने देवीके सौन्दर्यकी प्रशंसा अपने अनुचरोंसे सुनी। वह देवीके पास आया और उनसे विवाहका हठ करने लगा। इस कारण देवीसे उसका युद्ध हुआ और देवी कन्याकुमारीके द्वारा वह मारा गया।

आरासुरी अम्बिका (अम्बाजी)

यह एक प्रमुख शक्तिपीठ है। सतीमाताका हृदय-अङ्ग यहाँ गिरा हुआ माना जाता है। उसी अङ्गकी पूजा यहाँ अम्बा या अम्बिकादेवीके रूपमें होती है। यह स्थान दिल्लीसे अहमदाबाद रेलवे लाइनके आबूरोड-स्थित आरासुर नामक स्थानपर है। यहाँ पर्वतपर आरासुरी अम्बिकाजीका एक भव्य मन्दिर है। माताजीका शृङ्गार प्रातः बालारूपमें, मध्याह्नमें युवतीरूपमें तथा सायं वृद्धाके रूपमें होता है। यहाँ माताका कोई विग्रह नहीं है, 'बीसायन्त्र' मात्र है, जो शृङ्गारभेदसे तीन रूपोंमें प्रतीत होता है।

श्रीअम्बामाता

१-माउण्ट आबूमें आरासुर ग्राममें माता अम्बाजीका एक मन्दिर है, मन्दिर छोटा है, किंतु सम्मुखका सभामण्डप विशाल है। मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है, परंतु एक आलेमें वस्त्रालङ्कारसे इस प्रकार शृङ्गार किया जाता है कि सिंहपर बैठी भवानीके दर्शन होते हैं।

२-सूरतमें अम्बामाताका एक विशाल मन्दिर है। इसमें जो देवीमूर्ति है, वह स्वप्नादेशके अनुसार चार सौ वर्ष पहले अहमदाबादसे सूरत लायी गयी थी। देवीकी मूर्ति कमलाकार पीठपर विराजमान है। यह मूर्ति एक रथपर स्थित है, जिसमें दो घोड़े तथा दो सिंहोंकी मूर्तियाँ बनी हैं। देवीके दाहिने गणेशजी और शंकरजी तथा बायीं ओर बहुचरादेवीकी मूर्ति है।

३-अहमदाबाद-खेडब्रह्मा रेलवे लाइनपर खेडब्रह्मा नामक स्थान है। यहाँ हिरण्याक्ष नदी प्रवाहित होती है और ब्रह्माजीका स्थान है। यहीं समीपमें अम्बामाताका प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँका श्रीविग्रह 'चामुण्डा' नामसे अभिहित होता है। महिषासुरमर्दिनी और ब्रह्माणीजीके भी यहाँ सुन्दर मन्दिर हैं।

भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न नाम-रूपोंके दर्शन

भगवान् श्रीगणेश देवताओंमें सर्वप्रथम पूज्य हैं। वे पञ्चदेवोंमें एक हैं तथा शिव-पार्वतीके आत्मज हैं। वे प्रत्येक मानवके जनजीवनमें परिव्याप्त हैं। किसी भी शुभ-कार्यमें सर्वप्रथम भगवान् गणेशका स्मरण करना चाहिये, इससे समस्त कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सफल होते हैं। इनकी पूजा-उपासना, साधना-आराधनाकी प्राचीन सनातन परम्परा है। भारतमें सर्वत्र इनकी पूजा बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिभावसे की जाती है। सिन्दूरसे अनुलिप्त उनकी मनोरम प्रतिमाके दर्शनसे भक्तोंका मन आह्लादित हो जाता है। यद्यपि भगवान् गणेशके स्वतन्त्र मन्दिर देशभरमें बहुत अधिक नहीं हैं तथापि प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिन्दूघरमें, दूकानमें, व्यवसाय-केन्द्रमें श्रीगणेशजीकी प्रतिमा, चित्रपट या अन्य कोई प्रतीक अवश्य विद्यमान रहता है। प्रायः शिव-शक्ति-मन्दिरोंमें श्रीगणेशजीके मङ्गल-विग्रह प्रतिष्ठित रहते हैं। भक्तोंकी भावनाके अनुसार गणपतिकी उपासना विभिन्न नाम-रूपोंसे होती है। यहाँ मङ्गलमूर्ति उन्हीं गणेशदेवताके कुछ अर्चा-विग्रहों तथा उनके प्रतिष्ठित स्थलोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

ढुण्ढिविनायक

काशीमें ढुण्ढिराज भगवान् गणेशका एक अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है, जो अन्नपूर्णा-मन्दिरके पश्चिमकी ओर समीपमें ही स्थित है। काशीके दस प्रसिद्ध देवविग्रहों तथा काशीके ५६ विनायकोंमें भगवान् ढुण्ढिराजको सर्वाधिक पूज्य विशिष्ट स्थान प्राप्त है। काशी-निवासके लिये इनकी कृपा

नितान्त अपेक्षित मानी जाती है। माघ शुक्ला चतुर्थीको इनके पूजनका विशेष महत्त्व है।

मङ्गल-विनायक

नर्मदा नदीके तटपर मङ्गल ग्रहने तपस्या करके भगवान् गणेशकी आराधना की। तभीसे यह मूर्ति मङ्गल-विनायकके नामसे प्रसिद्ध है

ओंकार गणपति

यह प्रसिद्ध मूर्ति प्रयागमें है। इसीसे यह क्षेत्र ओंकार-गणपतिक्षेत्र कहलाता है। आदिकल्पके आरम्भमें ओंकारने वेदोंसहित मूर्तिमान् होकर भगवान् गणेशकी आराधना की और उन्होंने ही इस अनुग्रह-मूर्तिकी स्थापना की।

चिन्तामणि गणेश

महर्षि गौतमके शापसे उन्मुक्त होनेके लिये देवराज इन्द्रने 'कलम्ब' नामक स्थानपर भगवान् गणेशकी स्थापनापूर्वक उनका पूजन किया था, जिससे वे सभी चिन्ताओंसे मुक्त हुए। कलम्बके लिये बरारके यवतमाल नगरसे मोटर-बस जाती है। यहाँ मन्दिरके सामने ही चौमुखी गजाननकी मूर्ति है। सामनेके गर्भगृहमें मुख्य चिन्तामणि गणेशकी मूर्ति है।

शमी-विघ्नेश

महापाप, संकट और शत्रु-नामक दैत्योंके संहारके लिये देवताओं तथा ऋषियोंने 'अदोष' नामक स्थान, जो नागपुर छिंदवाड़ा रेलवे लाइनपर है, पर तपस्या की थी और यहाँ भगवान् गणेशकी मूर्तिकी स्थापना की, जो शमी-विघ्नेश नामसे प्रसिद्ध है। वामन भगवान्‌ने भी बलि-यज्ञमें जानेसे पूर्व यहींपर भगवान् गणेशजीकी आराधना की थी।

मयूरेश्वर गणपति

पूनासे चालीस मील और जेजूरी स्टेशनसे दस मीलकी दूरीपर मोरेश्वर नामक स्थानपर भगवान् गणेशकी एक मङ्गलमयी मूर्ति है, जो मयूरेश नामसे विख्यात है। इस अत्यन्त जाग्रत् देवस्थानकी गणना महाराष्ट्रके अष्ट विनायकोंमें है। गणेशजीकी मूर्तिके आगे एक बहुत बड़े चूहेकी प्रतिमा है, जो पैरमें लड्डू पकड़े है। प्रतिमाके अगल-बगल धातुकी सिद्धि-बुद्धिकी प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके सामने वाहनके रूपमें मूषक एवं मयूर हैं। यह क्षेत्र दक्षिणके गाणपत्य क्षेत्रोंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गणेशचतुर्थीके दिन यहाँ विशेष पूजा-महोत्सव होता है।

बल्लालविनायक

बल्लाल नामक वैश्य-बालककी भक्तिसे पाली (पल्लीपुर) नामक स्थानमें भगवान् गणेशका आविर्भाव हुआ। इसीलिये यह मूर्ति 'बल्लालविनायक'के नामसे प्रसिद्ध है। वर्तमानमें यह मूर्ति महाराष्ट्रके कुलाबा जिलेमें पाली नामक क्षेत्रमें स्थित है। गणेशपुराण तथा मुद्‌गलपुराणमें इसका उल्लेख है।

भालचन्द्र

काचीगुडा-मनमाड रेलवे लाइनपर परभनीसे छब्बीस मील दूर सैलू स्टेशन है, वहाँसे पंद्रह मील दूर गोदावरीके मध्यमें श्रीभालचन्द्र गणेश-मन्दिर है। कहा जाता है कि यहाँ चन्द्रमाने गणेशजीकी आराधना की थी।

विज्ञान-गणेश

जालनासे तैंतीस मीलपर गोदावरीके किनारे 'राक्षस-भुवन' नामक स्थान है। यहाँ गुरु दत्तात्रेयजीने तपस्या की थी और विज्ञान-गणेशकी स्थापनापूर्वक अर्चना की। यहाँ गणेशजीका एक सुन्दर मन्दिर भी है।

विघ्ननाशन-गणेश

कहा जाता है कि ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यमें आनेवाले विघ्नोंके नाशके लिये विघ्ननाशन-गणेशजीकी स्थापना की थी। यह स्थान पूनासे पाँच मील दूर थेऊर नामक स्थानपर है।

सिद्ध-विनायक

भगवान् गणेशकी यह मूर्ति बम्बई-रायचूर लाइनपर बोरीवली स्टेशनसे कुछ दूर भीमा नदीके किनारेपर एक मन्दिरमें अवस्थित है। भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ दैत्योंको मारनेके लिये तथा द्वापरान्तमें व्यासजीने वेदोंका विभाजन निर्विघ्न सम्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा स्थापित इस प्रतिमाका पूजन किया था। ये महाराष्ट्रके अष्ट विनायकोंमें परिगणित किये जाते हैं। यह स्वयम्भू मूर्ति है। इसकी सूँड़ दाहिनी ओर झुकी है।

महागणपति या महोत्कट विनायक

त्रिपुरासुर-युद्धमें जब शंकर भग्न-मनोरथ हो गये, तब उन्होंने विजयप्राप्तिके लिये गणेशजीका स्तवन किया और मूर्ति स्थापित की, इससे वे त्रिपुर-ध्वंसमें सफल हुए। शिवजीद्वारा स्थापित यह मूर्ति 'राजनगाँव' नामक स्थानमें है, यहाँ पूनासे मोटर-बस जाती है।

गणपति

मद्रास-मङ्गलोर लाइनपर 'विजयमङ्गलम्' स्टेशनपर गणेशजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है कि अनलासुरके विनाशार्थ यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ था।

कश्यपस्थापित गणेश-मूर्ति

दक्षिण भारतमें महर्षि कश्यपजीद्वारा स्थापित भगवान् गणेशजीकी एक अनुग्रह मूर्ति है।

असुरोंद्वारा स्थापित गणेश-मूर्ति

दक्षिण भारतमें जलेशपुर स्थानपर मय दानवद्वारा निर्मित त्रिपुरके असुरोंद्वारा एक गणेशप्रतिमाकी स्थापना तथा अर्चनाकी बात कही जाती है।

गणेश-मन्दिर

पूना जिलेके जूअर तालुकासे पाँच मील दूरपर लेह्याद्रिके पास गणेशजीका एक प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि यहाँ गणेशजीको पुत्र-रूपमें पानेके लिये पार्वतीने तप किया था।

लक्ष-विनायक

तारकासुर-संग्राममें जब स्कन्द सफल नहीं हुए तब उन्होंने शंकरजीके आदेशसे गणेशजीकी स्थापना की और उनका पूजन किया, जिससे वे तारकको मारनेमें सफल हुए। स्कन्दद्वारा स्थापित यह विग्रह 'लक्ष-विनायक' नामसे प्रसिद्ध है। गणेशका यह मन्दिर औरंगाबादमें वेरोल (एलापुर-क्षेत्र) स्थानपर है।

गणपति-मन्दिर

बम्बई-भुसावल रेलवे लाइनपर महसावद स्टेशनसे पाँच मील दूर एक पद्मालय (प्रवालक्षेत्र) तीर्थ है। वहाँ कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) तथा शेषजीद्वारा स्थापित दो गणपतिकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं।

आशापूरक गणेश

धर्मराज यमने माताके शापसे मुक्त होनेके लिये गणेशजीकी स्थापना एवं आराधना की थी, यह मूर्ति आशापूरक गणेशके नामसे जानी जाती है। आशापूरक गणेशजीका यह प्रसिद्ध मन्दिर काचीगुडा मनमाड लाइनके जालना स्टेशनसे कुछ दूर नामलगावँके पास है। बुद्धि गणेशजीके नामसे एक सुबुद्धिप्रद-तीर्थ भी यहाँपर है।

ज्ञानदाता गणेश

सिन्दूर नामक असुरका वध करनेके बाद भगवान् गणेशने राजा वरेण्यको गणेश-गीताका जहाँ उपदेश दिया था, उस स्थानपर ज्ञानदाता गणेशजीकी एक अनुग्रह मूर्ति स्थापित है। यह स्थान जालना स्टेशनसे चौदह मील दूर है जो राजसदन-क्षेत्र कहलाता है।

श्वेत-विघ्नेश्वर सुधागणेश

दक्षिण भारतके कुम्भकोणम् तीर्थपर तिरुवलंचुलिस्थानमें
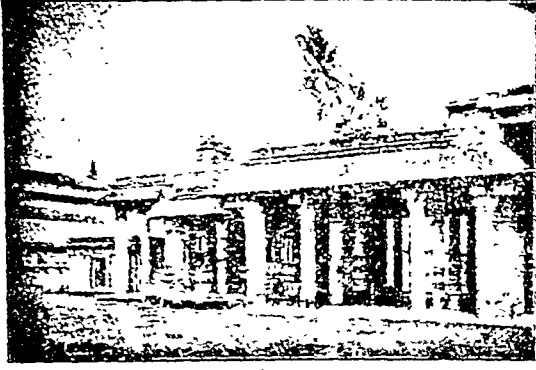
कावेरीके तटपर भगवान् गणेशका एक भव्य मन्दिर तथा उसमें गणेशजीकी एक प्रतिमा है। अमृत-मन्थनके समय जब पर्याप्त श्रम होनेपर भी अमृत नहीं निकला, तब देवताओंने यहाँ गणेशजीकी स्थापना करके पूजा की थी। तभीसे ये सुधा-गणेश कहलाते हैं।

मङ्गलमूर्ति

महाराष्ट्रके श्रेष्ठ गणपति भक्त मोरया गोसावीने चिंचवड़ (पूना) से ग्यारह मील दूरपर 'मङ्गल-मूर्ति' गणेशजीकी एक प्रतिमाकी स्थापना की। यह महाराष्ट्रके अष्ट विनायकोंमें प्रमुख माने जाते हैं। यहाँपर मोरया गोसावीने जीवित समाधि भी ली थी। इस समाधिपर स्थित यह श्रीगणेशजीकी मूर्ति पद्मासनमें है, सूँड़ दाहिनी ओर मुड़ी है, केवल दो आँखें दिखायी देती हैं। इस विग्रहकी उपासना समर्थ रामदास एवं तुकारामजीने भी विशेषरूपसे की थी।

श्रीवरदविनायक

ये महाराष्ट्रके अष्ट विनायकोंमेंसे एक हैं। ऐसी धारणा है कि इस मन्दिरकी स्थापना महर्षि गृत्समदने की थी। गृत्समद ऋषिने गणेशजीकी उपासना कर उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव किया और ये गाणपत्य सम्प्रदायके आद्य प्रवर्त्तक हैं। इसीलिये उनके द्वारा स्थापित एवं पूजित यह विग्रह विशेष महत्त्वका है।

वरविनायक या विवाहविनायक

शकुन्तलाके धर्मपिता महर्षि कण्वद्वारा स्थापित एक प्रतिमा टिटवाला (जिला-थाना) नामक स्थानपर है। कण्व मुनिके आदेशानुसार शकुन्तलाने गणेश-व्रत किया था। इन्हीं गणेशजीकी कृपासे शकुन्तलाको पतिकी प्राप्ति हुई। इसीलिये ये वरविनायक या विवाहविनायक कहलाते हैं।

ढोल्या-गणेश

सतारा जिलेके वाई नामक स्थानपर ढोल्यागणपतिका एक विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरका पिछला हिस्सा मछली-जैसा है। मूर्ति विशाल होनेके कारण ही यह ढोल्या-गणेशके नामसे विख्यात है।

चित्रकूट-गणेश

इसका माहात्म्य महाराष्ट्रके अष्ट विनायकोंके समान ही है। यह मन्दिर मराठवाड़ेका सिद्ध स्थान है। यहाँ शिवलिङ्ग एवं उसीके ऊपर गणेशजीकी स्वयम्भू-प्रतिमा है। यह सिन्दूरचर्चित है। लोगोंकी यह धारणा है कि यह प्रतिमा तिल-तिल बढ़ती है।

श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर

विजय नगर राज्यकी प्राचीन राजधानी 'हम्पी' के मध्य श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर है। यहाँ मन्दिरमें भुवनेश्वरी, पार्वती, गणेशजी तथा नवग्रह विद्यमान हैं। विरूपाक्ष-मन्दिरके अग्निकोणमें पास ही ऊँची भूमिपर एक मण्डपमें लगभग बारह हाथ ऊँची गणेशजीकी एक भव्य एवं आकर्षक मूर्ति है, जिसके दर्शनके लिये दूर-दूरसे तीर्थयात्री यहाँ आते हैं।

हेरम्ब गणपति-मन्दिर

कहा जाता है कि गणेशजी और स्वामिकार्तिकेयमें कुछ विवाद हो गया था। गणेशजीका विवाह पहले हो गया, इससे रुष्ट होकर स्वामिकार्तिकेय कैलास छोड़कर दक्षिण चले आये और इसी क्रौंचगिरिको उन्होंने अपना निवास बनाया। यह स्थान सुंडूरसे छः मीलकी दूरीपर पड़ता है। यहाँ हेरम्ब-गणपति तथा स्वामिकार्तिकेयके दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

सिद्धगणपति महाबलेश्वर-मन्दिर

हुबलीसे सौ मील दूर समुद्रतटपर छोटी पहाड़ियोंके बीच गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्मतत्त्वलिङ्ग है। गर्भगृहके बाहर सभामण्डपमें गणेश एवं पार्वतीकी प्रतिमाएँ हैं। यहीं सिद्धगणपतिकी एक महान् मूर्ति है। इसमें गणेशजीके मस्तकपर रावणद्वारा आघात करनेके चिह्न हैं। यहाँ प्रथम गणेशजीके दर्शन करनेके अनन्तर ही लिङ्गके दर्शन-पूजनकी विधि है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कहते हैं कि एक बार रावणने कैलासपर तपस्या करके

भगवान् शंकरसे आत्मतत्त्वलिङ्ग प्राप्त किया। रावण जब गोकर्ण-क्षेत्र पहुँचा, तब संध्या होनेको हो आयी। देवताओंकी मायासे रावणको शौचादिकी तीव्र आवश्यकता प्रतीत हुई। देवताओंकी प्रार्थनासे गणेशजी रावणके पास ब्रह्मचारीके रूपमें आये। रावणने उन्हें वह लिङ्ग-विग्रह दे दिया और स्वयं शौचादिके लिये चला गया। सहसा मूर्ति भारी हो गयी। गणेशजीने वह मूर्ति पृथ्वीपर रख दी।

जब रावण वापस लौटा तो परिश्रम करनेपर भी वह लिङ्गको उठा न पाया। खीझकर उसने गणेशके मस्तकपर प्रहार किया और लङ्काको चला गया। रावणके प्रहारसे व्यथित गणेशजी कुछ दूर जाकर स्थित हो गये। भगवान् शंकरने प्रकट होकर उन्हें आश्वासन दिया कि 'तुम्हारा दर्शन किये बिना जो मेरा दर्शन-पूजन करेगा, उसे पुण्यफल नहीं प्राप्त होगा।'

गणेश-मन्दिर

यहाँ शिव-प्रभु—महागणपति नामसे भगवान् गणेशका सुन्दर विग्रह है। यह मन्दिर जहिराबाद रोडके पास रेजंतल स्थानपर है। यहाँका गणेश-मन्दिर पर्वतकी गोदमें स्थित है। स्थानीय मान्यता है कि संवत् १७२३ पौष शुक्लकी विनायकी चतुर्थीके दिन परम गणेश-भक्त श्रीशिवराम महाराज चिंतलगिरिने पूजाके समय 'जयसिद्ध विनायक' कहकर भूमिपर हाथ रखा। तत्काल श्रीमहागणपतिकी मूर्ति भूमिसे प्रकट हो गयी।

श्रीमहागणपति

केरलमें मद्रास-मंगलोर रेलवे लाइनपर कासरागोड स्टेशनके पास माधुरे नामक स्थानपर श्रीमहागणपतिका एक विशाल मन्दिर है। कहते हैं कि यह प्रतिमा स्वयं उद्भूत है। एक बार एक हरिजन-स्त्री घासके मैदानमें घास काट रही थी, अचानक उसका हँसिया प्रतिमासे जा टकराया, जिससे प्रतिमासे रक्त बहने लगा। स्त्री अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गयी, उसने अन्य लोगोंको बुलाया। तब लोगोंने वहाँ एक मन्दिर बना दिया और भगवान् गणेशकी पूजा की। यह घटना आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है और मूर्ति तबसे लगातार बढ़ती जाती है। इस स्थानकी अत्यन्त मान्यता है।

फलदाता गणेश

गोदावरी-तटपर स्थित गणपति-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। यहाँके गणपति प्रत्यक्ष फलदाता कहे जाते हैं।

महागणपति

कुरुडमडे (कर्नाटक)में एक विशाल मन्दिर है, जिसमें हरे संगमरमरसे बनी महागणपति तथा श्रीसुब्रह्मण्यम्की दो विशाल प्रतिमाएँ हैं। गणेशजीकी मूर्तिके सामने उनके वाहन मूषककी भी बहुत बड़ी प्रतिमा बनी है।

बालब्रह्मचारी गणेश

कर्नाटक (इडगुंजी) में महागणपतिकी मूर्ति द्विहस्त तथा सर्पालङ्कारसे विभूषित अत्यन्त विलक्षण है।

गणेश-मन्दिर

बेचराजीसे अठारह मील दूर मोढ़ेरा नामक गाँवसे दक्षिण श्रीगणेशजीका एक मन्दिर है। इसमें सिद्धि और बुद्धि नामक पत्नियोंके साथ गणेशजीकी एक आकर्षक मूर्ति है।

ढुण्ढिराज गणपति

बड़ोदामें गणेशजीके अनेक प्रसिद्ध मन्दिर हैं। उनमें ढुण्ढिराज गणपतिका मन्दिर शिल्पकला तथा वैभवकी दृष्टिसे अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहीं बड़ोदामें सिद्धनाथ-गणपति आदिके भी अनेक मन्दिर हैं।

गणेश-वट

गुजरातमें नवसारी शहरके पास बड़े-बड़े वटवृक्षके झुंड हैं और उनके बीचमें एक पक्का मन्दिर है, जिसमें गणेशजीकी एक फुट ऊँची एक प्रतिमा है। प्रतिमामें सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है। गणेशजीकी मूर्तिके पास पार्वती माताकी भी प्रतिमा है।

फणी-गणपति

खम्भातके गणेशमन्दिरमें भगवान् गणेशकी एक आदमकद भव्य मूर्ति विद्यमान है। यह मूर्ति बड़ी विलक्षण है। इस चतुर्भुजी प्रतिमाके चारों हाथोंमें चार फणवाले सर्प हैं। साथ ही सर्पका ही यज्ञोपवीत भी सुशोभित रहता है। यह मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है।

चिन्तामनगणपति

उज्जैनसे कुछ दूरपर गणेशजीका एक बहुत प्राचीन मन्दिर है, जो अहिल्याबाई होल्करद्वारा पुनर्निर्मित है। यहाँपर चैत्र महीनेके हर बुधवारको विशाल मेला लगता है।

सिद्धविनायक

शोण-नर्मदाके उद्‌गमस्थल अमरकण्टकके गहन वनमें महर्षि भृगुका आश्रम है। यहींपर सिद्धविनायककी द्विभुज-मूर्ति है। इनके दाहिने-बायें ऋद्धि-सिद्धि अवस्थित हैं।

बड़े गणपति तथा उज्जैनके षट्‌विनायक

प्रसिद्ध द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमें प्रसिद्ध महाकालेश्वरके समीप ही भगवान् गणेशकी एक बहुत बड़ी मूर्ति है। यहाँके षट्-विनायक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) मोदीविनायक, (२) प्रमोदविनायक (लड्डूविनायक), (३) सुमुखविनायक (स्थिर विनायक या थल महागणपति), (४) दुर्मुख-विनायक, (५) अविघ्नविनायक तथा (६) विघ्नविनायक।

चमत्कारी गणेशजी

जोधपुर (पिचियाक) के विलाड़ा नगरके उत्तरकी ओर एक अतिं प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थान है। यहींपर गणेशजीका एक प्राचीन देवालय था, जिसके अवशेषरूपी पत्थर आस-पास यत्र-तत्र बिखरे दीखते हैं। यहाँके गणेशजी बड़े चमत्कारी एवं फलदाता माने जाते हैं। यहाँ प्रायः रात्रिजागरण होता है और गणेशजीकी आराधना की जाती है।

गणेश-स्तम्भ

जोधपुरके पास घटियाला नामक स्थानपर एक अति प्राचीन पाषाण-स्तम्भ है, जिसपर गणेशकी स्तुति उत्कीर्ण है। इसका समय सन् ८६२ ई० है। स्तम्भके शिखरपर चार गणेश चार दिशाओंकी ओर मुँह किये, पीठसे पीठ सटाकर बैठे हुए हैं।

सिद्धगणेश

सवाई-माधोपुर स्टेशनसे पाँच मील दूर एक पर्वत-शिखरपर सिद्धगणेशका एक मन्दिर है। कहा जाता है कि ये गणेशजी मेवाड़के इतिहास-प्रसिद्ध राणा हम्मीरके आराध्यदेव थे।

सिद्धिदाता भगवान् गणेश

रणथम्भौर दुर्ग पर्वतके ऊपर सिद्धिदाता भगवान् गजाननका सुप्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ लाखों तीर्थयात्री भगवान् गणपतिके दर्शनोंसे लाभ उठाते हैं। मुसलमानोंके अधिकारमें रहनेसे मन्दिर तथा प्रतिमा तो छिन्न-भिन्न हो गयी, किंतु भगवान् गजाननके श्रीविग्रहका 'सूँड़मात्र' पूर्णरूपसे अक्षुण्ण रहा। दोनों ओर ऋद्धि-सिद्धिकी मनोहर प्रतिमाएँ हाथोंमें चँवर लिये सुशोभित हैं। यहाँ भक्तोंकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह स्थान गणपतिका सिद्ध पीठ है।

नागौरगणपति

सातवीं शताब्दीमें बने नागौर दुर्गमें गणपतिकी एक विशाल दर्शनीय मूर्ति है। यद्यपि किला सुव्यवस्थित स्थितिमें नहीं है तथापि प्राचीन कालसे चली आ रही प्रतिमाकी पूजा आज भी यथावत् रूपमें बनी हुई है।

लीलागणेश

अमृतसर-पठानकोट लाइनमें बटालासे चार मील दूर गणेशजीका सुप्रसिद्ध स्थान है, यहाँ एक मन्दिर भी है। कहा जाता है कि यह गणेशजीकी लीलास्थली भी रहा है। यहीं मुख्य मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा स्वामिकुमारकी भी मूर्ति है। एक बार पारस्परिक श्रेष्ठताको लेकर गणेश तथा स्वामिकार्तिकमें विवाद हो गया। भगवान् शंकरने इनसे पृथ्वी-परिक्रमा करके श्रेष्ठताका निर्णय कर लेनेका निर्देश दिया। इसपर गणेशजीने माता-पिताकी ही परिक्रमा कर ली और वे विजयी माने गये। स्थानीय मान्यताके अनुसार वही यह गणेशजीका प्राचीन लीलास्थल है।

छिन्नमस्तक गणपति

केदारनाथके मार्गमें त्रियुगीनारायणके पास छिन्नमस्तक गणपतिका एक मन्दिर है। महादेवजीने गणेशजीका सिर भ्रमसे यहीं काटा था और पीछे हाथीका सिर लगाकर उन्हें जीवित कर दिया।

गणेश-गुफा

बदरीनाथसे दो मील दूर माणा ग्रामके निकट

व्यासगुफाके समीप ही गणेश-गुफा है। यहाँ श्रीगणेशकी अनगढ़ आकृतिस्वरूप एक पाषाण है। कहते हैं, यहीं व्यासद्वारा वर्णित पुराणोंको श्रीगणेशजीने लिपिबद्ध किया था।

मोटागणेश-मन्दिर

वृन्दावनमें श्रीकात्यायनी-मन्दिरके गणेशका श्रीविग्रह अत्यन्त दर्शनीय है। यह विग्रह सिद्धविनायक नामसे प्रसिद्ध है।

बड़े गणेशजी

प्रयागमें गङ्गाके किनारे कमलनाल तीर्थ तथा दशाश्वमेध महादेवके संनिकट एक अत्यन्त प्राचीन विशाल तथा भव्य गणेशमूर्ति है, जो 'बड़े गणेशजी' के नामसे प्रसिद्ध है। प्रयागको ओंकार-गणेश क्षेत्र भी कहा जाता है।

बड़ा मन्दिर

बिहार शरीफके बड़े मन्दिरमें भगवान् गणेशकी संगमरमरकी बनी एक आकर्षक प्रतिमा है, जिसका दर्शन करने बहुत दूर-दूरके यात्री यहाँ आते हैं।

महाविनायक-मन्दिर

कटक जिलेमें महाविनायकजीका एक प्राचीन मन्दिर एवं तीर्थ है। कहा जाता है कि जब रावण कैलाससहित सपरिवार भगवान् शंकरको उठाकर लंका ले जा रहा था, तब भगवान् शंकर यहाँ कुछ देर विश्रामके लिये रुके थे। यहाँकी विनायक-प्रतिमा सिद्ध प्रतिमा मानी जाती है।

षड्गणपतिविग्रह

जगन्नाथपुरीमें अनेक गणपति-विग्रह हैं, जिनमें छः विग्रह विशेष महत्त्वके हैं— १-कर्नाटकगणपति, २-नृत्यगणपति, ३-कल्पगणपति, ४-चारगणपति, ५-पञ्चविनायक और ६-मणिकर्णिका-गणेश।

सिद्धविनायक

याजपुर नाभिगया-क्षेत्र कहलाता है। यह कटकसे कुछ पूर्व है। यहाँ ब्रह्माजीने यज्ञ किया था, इसीलिये यह याजपुर या यागपुर कहलाता है। यहाँ वैतरणी नदीके दशाश्वमेध घाटपर एक मन्दिर है, जिसमें सिद्धविनायककी सुन्दर मूर्ति है। उससे

लगे हुए मन्दिरमें सप्तमातृका-मूर्तियाँ हैं।

काशीके छप्पन विनायक

काशीमें भगवान् गणेशके ५६ विग्रहके दर्शन विभिन्न नामोंसे होते हैं। इनका वर्णन काशीखण्ड तथा काशीरहस्यमें प्राप्त होता है। इन ५६ विनायकोंके नाम इस प्रकार हैं—

काशीके छप्पन विनायक सात आवरणोंमें विभक्त हैं।

प्रथमावरणके अन्तर्गत—(१) अर्कविनायक, (२) दुर्गविनायक, (३) भीमचण्डविनायक, (४) देहली-विनायक, (५) उद्दण्डविनायक, (६) पाशपाणिविनायक, (७) खर्वविनायक तथा (८) सिद्धिविनायकका वर्णन किया गया है।

द्वितीयावरणके अन्तर्गत—(१) लम्बोदरविनायक, (२) कूटदन्तविनायक, (३) शालकटङ्कविनायक, (४) कूष्माण्डविनायक, (५) मुण्डविनायक, (६) विकटदन्तविनायक, (७) राजपुत्रविनायक एवं (८) प्रणवविनायकका उल्लेख मिलता है।

तृतीयावरणके अन्तर्गत—(१) वक्रतुण्डविनायक, (२) एकदन्तविनायक, (३) त्रिमुखविनायक, (४) पञ्चास्य-विनायक, (५) हेरम्बविनायक, (६) विघ्नराजविनायक, (७) वरदविनायक और (८) मोदक-प्रिय-विनायकके विग्रह प्रसिद्ध हैं।

चतुर्थावरणके अन्तर्गत—(१) अभयदविनायक, (२) सिंहतुण्डविनायक, (३) कूणिताक्षविनायक,

(४) क्षिप्रप्रसादविनायक, (५) चिन्तामणिविनायक, (६) दन्तहस्तविनायक, (७) पिचिण्डिलविनायक तथा (८) उद्दण्डमुण्डविनायकके नाम आते हैं।

पाँचवें आवरणमें—(१) स्थूलदन्तविनायक, (२) कलिप्रियविनायक, (३) चतुर्दन्तविनायक, (४) द्वितुण्डविनायक, (५) ज्येष्ठविनायक, (६) गजविनायक, (७) कालविनायक एवं (८) नागेश-विनायकका उल्लेख हुआ है।

छठें आवरणके अन्तर्गत—(१) मणिकर्णविनायक, (२) आशाविनायक, (३) सृष्टिविनायक, (४) यक्ष-विनायक, (५) गजकर्णविनायक, (६) चित्रघण्टविनायक, (७) स्थूलजङ्घविनायक और (८) मङ्गलविनायकका नामोल्लेख हुआ है।

सातवें आवरणके अन्तर्गत—(१) मोदविनायक, (२) प्रमोदविनायक, (३) सुमुखविनायक, (४) दुर्मुख-विनायक, (५) गणनाथविनायक, (६) ज्ञानविनायक, (७) द्वारविनायक तथा (८) अविमुक्तविनायककी प्रतिमाएँ प्रसिद्ध हैं।

विदेशोंमें प्रधान गणेश-विग्रह और मन्दिर

आसन-कांस्य-मूर्ति

कम्बोडिया जिसे हिन्दचीन भी कहते हैं, यहाँ भगवान् गणेशको 'केनेस' कहते हैं। यहाँ भगवान् गणेशकी मूर्तियोंमें आसन-कांस्य-मूर्ति विशेष महत्त्वकी है, जो द्विभुजी है तथा ऊँचे आसनपर स्थित है।

मूषकवाहन हेरम्ब

नेपालमें हेरम्ब और विनायक नामसे गणपतिमूर्तिका पूजन देशभरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ होता है। वहाँकी सिंहवाहिनी शक्तिसहित मूषकवाहन हेरम्बकी मूर्ति विशेष प्रख्यात है।

स्थानक मूर्ति

जावामें नदियोंके घाटों और दूसरे भयके स्थानोंपर अनेक गणेश-प्रतिमाएँ स्थापित हैं। वहाँकी भगवान् गणेशकी स्थानक-मूर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध तथा आकर्षक है।

भगवान् सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के कतिपय अर्चा-विग्रह

भगवान् कार्तिकेय देवताओंके सेनापति हैं। आप भगवान् शंकरके पुत्र हैं। मयूर आपका वाहन है। छः मुख होनेके कारण आप षडानन तथा कृत्तिकाओंद्वारा मातृवत् वात्सल्य प्राप्त होनेसे कार्तिकेय भी कहलाते हैं। अपने भक्तों तथा साधकोंपर आप नित्य कल्याण-वृष्टि करते रहते हैं। अधिकारी साधक महापुरुषोंको आप दर्शन दिया करते हैं। सम्पूर्ण देशमें विशेषरूपसे दक्षिण भारतमें आपकी विशेष साधना-आराधना होती आयी है। जैसे शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर तथा गाणपत्य-सम्प्रदायोंमें तत्तद् अभीष्ट देवताओंकी अर्चा-पूजाकी सनातन प्रक्रिया है, वैसे भगवान् स्कन्द (कार्तिकेय) के नामसे स्कान्दसम्प्रदायकी भी सुदीर्घ परम्परा है। आप भक्तोंके परमाराध्य हैं तथा अपनी लीलाओंसे उन्हें आनन्दित करते रहते हैं। यहाँ उनके कुछ मन्दिरों एवं अर्चा-विग्रहोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

दक्षिण भारतमें सुब्रह्मण्यके छः प्रमुख स्थान हैं—(१) तिरुत्तणि, (२) पलणि, (३) तिरुचेन्दूर, (४) स्वामिमलै, (५) तिरुप्परकुन्नम् और (६) पनमुदिरशोलै। इनमेंसे प्रथम चारके तथा कुछ अन्य विग्रहोंके परिचय निम्न हैं—

१-तिरुत्तणि-स्थान, जो मद्रास-रायचूर लाइनपर अरकोनम्से आठ मील दूर है, यहाँ स्वामिकार्तिकेयका एक विशाल मन्दिर है।
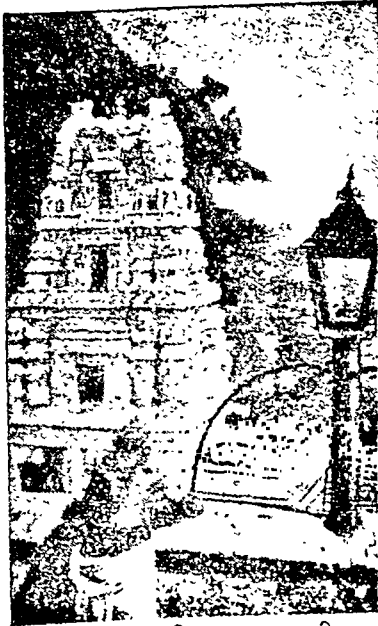
२-पलणिमें सुब्रह्मण्यजीका एक प्राचीन मन्दिर है, जो अतिरम्य वाराहगिरि नामक पर्वतपर है। यहाँ श्रीलक्ष्मीदेवी, सूर्यदेव, भूदेवी तथा अग्निदेवने भगवान् कार्तिकेयकी आराधना की थी।

३-तिरुचेन्दूर सुब्रह्मण्य-क्षेत्रोंमें प्रधान क्षेत्र माना जाता है। यहाँ समुद्रके किनारे स्वामिकुमारका प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिरके सामने बहुत बड़ा मण्डप है। कई द्वार पार करनेपर भगवान्‌का निज-मन्दिर मिलता है। स्वर्णमण्डित यह चतुर्भुजी प्रतिमा बहुत आकर्षक एवं फलदायी है।

४-छः प्रसिद्ध सुब्रह्मण्य-क्षेत्रोंमें स्वामिमलै भी एक प्रसिद्ध स्थान है। यह कुम्भकोणम्से चार मील दूर है। यहाँका मन्दिर विशाल है। मन्दिरमें स्वामिकार्तिककी सुन्दर मूर्ति है।
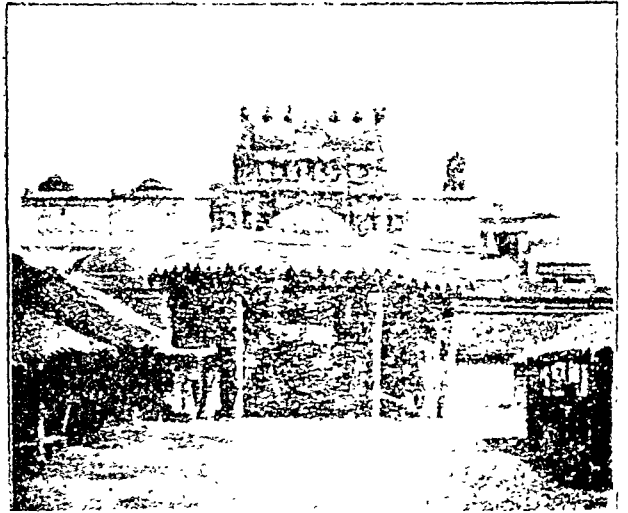
उनके हाथमें सुवर्णमयी शक्ति है, जिसे 'वज्रवेलल' कहते हैं। उत्सवके अवसरोंपर यह रत्नजटित शक्ति मूर्तिके करकमलोंमें धारण करायी जाती है। समीप ही एक छोटे मन्दिरमें सुब्रह्मण्य स्वामीकी ही एक और स्वर्णनिर्मित त्रिमुख-मूर्ति है।

५-चिदम्बरम्में पार्वती-मन्दिरके समीप ही सुब्रह्मण्यका एक मन्दिर है। इस मन्दिरके बाहर एक मयूरकी मूर्ति बनी है। सभामण्डपमें भगवान् सुब्रह्मण्यकी लीलाओंके अनेक सुन्दर चित्र दीवालोंपर ऊपरकी ओर अङ्कित हैं। मन्दिरमें स्वामि-कार्तिककी भव्य मूर्ति है।

६-कामाक्षी-मन्दिरसे कुछ दूर सुब्रह्मण्य स्वामीका एक मन्दिर है। इसमें स्वामिकार्तिकका मनोरम विग्रह है। इस

मन्दिरको यहाँ बहुत मान्यता प्राप्त है।

७-मैसूर राज्यके अन्तर्गत दक्षिण कनाड़ाका अधिकांश क्षेत्र सुब्रह्मण्य-क्षेत्र या कौमार-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ मयूर-वाहन सुब्रह्मण्यका विशाल मन्दिर है। अंदर चबूतरेपर भगवान् षडाननकी मूर्ति है। मध्यभागमें सर्पराज वासुकिकी प्रतिमा है और निम्न भागमें शेष प्रतिष्ठित हैं। देवालयके सम्मुख गरुड-स्तम्भ है।

८-बंगलोर-पूना लाइनके हुबली स्टेशनसे मोटर-बसद्वारा सुँडूर तथा वहाँसे छः मील दूर पर्वतपर कुमारस्वामीका भव्य मन्दिर है। इस पर्वतको क्रौंचगिरि कहा जाता है। दक्षिण भारतके सुब्रह्मण्य तीर्थोंमें यह प्रधान माना जाता है। क्रौंचगिरिपर भगवान् स्कन्दका नित्य निवास माना गया है। यहाँकी मूर्ति अत्यन्त भव्य है।

कहा जाता है कि भगवान् श्रीगणेश और स्वामिकार्तिकमें कुछ विवाद हो गया था। गणेशका विवाह ऋद्धि-सिद्धिसे पहले हो गया। इससे रुष्ट होकर स्वामिकार्तिक कैलास छोड़कर दक्षिण चले आये और यहाँ क्रौंचगिरिपर उन्होंने निवास कर लिया। पीछे स्वामिकार्तिकके स्नेहवश भगवान् शंकर तथा पार्वतीजी भी कैलाससे दक्षिण आकर श्रीशैलपर स्थित हुए।

९-अमृतसर-पठानकोट लाइनमें बटालासे कुछ दूर अचलेश्वर नामक स्थानपर एक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा स्वामिकार्तिककी मूर्ति है। इसे उत्तर भारतके महत्त्वपूर्ण कार्तिकेय-मन्दिरोंमें परिगणित किया जाता है।

कहा जाता है कि एक बार परस्पर श्रेष्ठताके सम्बन्धमें गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकमें विवाद हो गया। भगवान् शंकरने पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके निर्णय कर लेनेको कहा। गणेशजीने माता-पिताकी ही परिक्रमा कर ली और वे विजयी माने गये। पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये निकले स्वामिकार्तिकको मार्गमें ही जब यह समाचार मिला, तब वे आगेकी यात्रा व्यर्थ समझकर अचलरूपसे समाधिमें स्थित हो गये। बादमें भगवान् शिव तथा पार्वती वहीं उनसे मिलने आये। स्वामिकार्तिकेय अचलेश्वर-रूपसे वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। यह अत्यन्त सिद्ध स्थान है। यहाँ वसुओं तथा सिद्धगणोंने यज्ञ किया था। कार्तिक शुक्ला नवमी-दशमीको यहाँ मेला लगता है।

१०-पृथूदक (पंजाबका पेहेवा-क्षेत्र) तीर्थ अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। यह महाराज पृथुके नामसे विख्यात हुआ। यहाँ पृथ्वीश्वर महादेवके निकट ही स्वामिकार्तिकका अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। यहाँ दर्शनार्थी श्रद्धासे तेल तथा सिन्दूर चढ़ाते हैं।

११-पंजाबके कैथल-क्षेत्रमें शेरगढ़ ग्राममें एक पवित्र सरोवर तथा एक मन्दिर है। कहा जाता है कि स्वामिकार्तिकका जन्म इसी स्थानपर सरकंडोंके वनमें हुआ था। दर्शनार्थी यहाँ कुण्डमें स्नान करके भगवान् शिव तथा उनके पुत्र स्वामि-कार्तिकका पूजन करते हैं। यह स्थान सूरजकुण्ड या सरकतीर्थ कहलाता है।*

सं मा सिञ्चन्तु कृषयः सं मा सिञ्चन्त्वोषधीः। सोमः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च। दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥

कृषिसे उत्पन्न धान्य, ओषधियाँ और सोम मुझे प्रजा और धनसे सम्पन्न करें तथा दीर्घ आयु दें।

सं मा सिञ्चन्तु नद्यः सं मा सिञ्चन्तु सिन्धवः। समुद्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च। दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥

नदी, सिन्धु (नद) और समुद्र मुझे प्रजा और धनसे सम्पन्न करें। वे मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें।

(अथर्ववेद)

* देवदर्शनका अवशिष्टांश—भगवान् सूर्य एवं श्रीहनुमान्‌जीके विभिन्न अर्चा-विग्रहोंके दर्शन—परिशिष्टाङ्कों-(क्रमशः सौर वैशाख तथा सौर ज्येष्ठ)में दिये गये हैं।

सामान्यतः लोकजीवनमें लोकदेवताका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवनमें बहुत सारी घटनाएँ ऐसी होती हैं, जो अपने ुरुषार्थपर अवलम्बित न होकर भाग्य, प्रारब्ध और देवकृपापर निर्भर करती हैं। अपने दैनिक जीवनकी समस्याओंके समाधान तथा ार्योंकी सफलतामें जब व्यक्ति स्वयंको अक्षम पाता है तो वह दैवीशक्तिका आश्रय लेना चाहता है। इसके लिये वह किसी देवताकी र्चा-पूजा और अपने कार्यकी सफलताके लिये मनौती आदि भी मानता है। कार्यके सफल होनेपर उन देवताओंके प्रति वह अपनी तज्ञता प्रकट करता है और उसकी आस्था स्वभावतः सुदृढ होने लगती है। वह दूसरोंको भी उनकी अर्चा-पूजाके लिये प्रेरित करता । इस प्रकार उनका प्रचार-प्रसार होना स्वाभाविक है। ये स्थानदेवता, ग्रामदेवता तथा कुलदेवताके रूपमें सुप्रतिष्ठित होते हैं। प्रायः ेशाञ्चलोंमें प्राचीन परम्पराके अनुसार किसी विशिष्ट देवताकी आराधना-पूजा वहाँके निवासियोंके कुलदेवता, ग्रामदेवता, ानदेवताके रूपमें होती चली आती है।

इस प्रकारकी उपासनामें वैदिक और पौराणिक देवताओंके साथ-साथ ऐसे लोकदेवताओंकी मान्यता भी समाजमें प्रचलित ी जा रही है, जो ऐसे महापुरुषोंसे सम्बन्धित है जो मानवरूपमें जन्म लेकर अपने असाधारण एवं लोकोपकारी कार्योंके कारण ैवक अंशके प्रतीकके रूपमें स्थानीय जनताद्वारा स्वीकार किये गये हैं और उनको भी देवतुल्य पूज्य माना जाता है। यद्यपि इन कदेवताओंका अर्चन-पूजन शास्त्रीय विधिके अभावमें बहुत ही सहज, सरल एवं सुविधाजनक होनेके कारण स्थानीय ग्रामीण ताका उनके प्रति झुकाव अधिक होना स्वाभाविक है तथा धर्मकी लोकोपकारी भावनाओंको यहाँकी स्थानीय जनता अपने श्वासपर आधारित इन लोकदेवताओंके माध्यमसे अधिक सहजताके साथ आत्मसात् करनेमें विशेष सक्षम है, परंतु इनकी र्चा-पूजाका कोई शास्त्रीय आधार न होनेके कारण इसे अन्धविश्वासपर आधारित भी माना जा सकता है, फिर भी शास्त्रसम्मत कदेवताओंके साथ-साथ समाजमें लोकदेवके रूपमें प्रचलित इनकी भी सांकेतिक चर्चा यहाँ प्राप्त लेखोंके माध्यमसे प्रस्तुत की रही है—

राजपूतानेका गणगौर-पूजन

(पं० श्रीझाबरमल्लजी शर्मा)

गणगौर-पूजन राजस्थानके घर-घरका एक पवित्र स्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक और पारम्परिक पर्व है। यहाँ गगौर-पूजनका बड़ा महत्त्व है। अखण्ड सौभाग्य, उत्तम पति ं ऐश्वर्य तथा उमा-महेश्वरके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये ्र-गौरी (ईशर-गणगौर) का पूजन बड़े उत्साह, उल्लास ं समारोहके साथ किया जाता है।

राजस्थानमें यह गौरी-पूजा सौभाग्यवती स्त्रियों और न्याओंका प्रमुख त्योहार है। यहाँ कन्याओंके लिये विवाह ते ही प्रथम चैत्रमासमें एक-दो दिन नहीं पूरे पंद्रह दिनतक णगौरि' पूजा करना अवश्य पालनीय कर्तव्य समझा जाता । होलिका-दहनके पश्चात् चैत्रारम्भ होते ही तालाबसे मिट्टी ाकर ईश्वर और गौरीकी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं, जिनको सौभाग्यकी कामनासे विवाहिता और योग्य वर पानेकी इच्छासे कुमारी कन्याएँ श्रद्धाके साथ प्रतिदिन लगातार पूजती हैं। पूजाके लिये हरी दूर्वा, पुष्प और जल लानेको अपनी-अपनी टोली बनाकर लड़कियाँ प्रातःकाल सुमधुर गीत गाती हुई निकलती हैं। प्रत्येक विवाहिता लड़की अपने 'व्यावलेवर्ष' (विवाहवाले वर्ष) की गणगौरि अपनी छः, आठ या दस संख्यक अन्य अविवाहिता साथिनोंको वरणपूर्वक साथ लेकर पूजती है। यह क्रम चैत्रकृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ कर शुक्ला तृतीयातक रहता है। चैत्रशुक्ला तृतीयाको प्रातःकालकी पूजाके बाद मध्याह्नोत्तर (शुभ वार हुआ तो उसी दिन, नहीं तो दूसरे दिन) तालाबमें और जहाँ तालाब न हो वहाँ कूएँमें, ससमारोह मङ्गल-गानके साथ प्रतिमा-विसर्जन किया जाता है।

दैविक अंशके प्रतीकके रूपमें स्थानीय जनताद्वारा स्वीकारे गये और उनको भी देवतुल्य पूज्य माना गया। लोकदेवताओंके लोकोत्तर दिव्य स्वरूपसे यहाँकी जनताकी धार्मिक भावनाओंको तो संवल मिला ही, साथ ही अनेक कष्टोंके निवारणमें भी लोक-देवताओंको सहायक माना जाता है।

ऐसे ही कुछ प्रमुख लोकदेवताओंका यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) गोगाजी

गोगाजी राजस्थानके प्रमुख लोकदेवताके रूपमें मान्य हैं। भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको उनकी स्मृतिमें त्योहार मनाया जाता है, जिसे 'गोगा नवमी' कहा जाता है। अश्वारोही योद्धाके रूपमें उनकी पूजा की जाती है। नागराजका अवतार मानकर सर्पदेवताके रूपमें राजस्थानके अधिकांश गाँवोंमें गोगाजीका स्थल, जिसमें पत्थरपर साँपकी मूर्ति खुदी होती है, प्रायः खेजड़ी (शमीवृक्ष) के नीचे पाया जाता है, इसलिये यहाँ ***'गाँव-गाँव खेजड़ीने गाँव-गाँव गोगो'*** की कहावत प्रचलित है। गोगा नवमीके दिन कुम्हार गोगाजीकी मिट्टीकी अश्वारोही मूर्ति बनाकर किसानोंके घर ले जाते हैं, जहाँ उसकी पूजा होती है। रक्षाबन्धनपर बाँधी गयी राखियाँ खोलकर घोड़ेके पैरोंमें अर्पण की जाती हैं और खीर, लापसी और चूरमेका गोगाजीको भोग लगाया जाता है। महिलाएँ दीवारोंपर सर्पाकार आकृतियाँ बनाकर गोगा चहुवाँणका कुंकुम-अक्षतसे पूजन करती हैं और गोगाजीके गीत गाती हैं। यहाँके गाँवोंमें आज भी जब किसीके घर साँप निकल आता है तो गोगाजीको दूधका छींटा डालनेकी परम्परा देखनेको मिलती है। ऐसा करनेसे साँप उस घरमें बिना कोई नुकसान पहुँचाये वहाँसे निकल जाता है, ऐसा लोक-विश्वास है।

यहाँ ऐसी भी मान्यता है कि गोगाजीको पूजनेवाले व्यक्तिको साँप नहीं काटता और उनकी शरणमें जानेसे सर्प काटे हुए व्यक्तिपर विष नहीं चढ़ता। सर्पदंशित व्यक्ति उनकी मनौतीसे ठीक हो जाता है। राजस्थानमें गोगाजीका प्रमुख पूजा-स्थल गोगामेडी (गंगानगर जिलेकी नोहर तहसीलसे सोलह मील पूर्वमें स्थित है) तथा दूसरा स्थल ददेरवा (चूरू जिलेमें) है। इन दोनों स्थानोंपर गोगा नवमीको विशाल मेले लगते हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थानमें स्थान-स्थानपर गोगाजीके स्थल हैं, जहाँ गोगाजीका पूजन होता है और गोगाजीसे सम्बन्धित लोकसाहित्य भी यहाँ प्रचुर मात्रामें मिलता है।

(२) पाबूजी

वीरता, प्रतिज्ञापालन, त्याग, शरणागत-वत्सलता एवं गो-रक्षा-हेतु स्वयं बलिदानतक दे देनेके कारण राजस्थानकी जनता पाबूजीकी देवताके रूपमें पूजा करती है। पाबूजी 'लक्ष्मणके अवतार' एवं 'ऊँटोंके देवता' माने जाते हैं। आज भी यहाँके ग्रामीण लोगोंमें यह विश्वास प्रचलित है कि पाबूजीकी मनौती माननेपर ऊँटोंकी बीमारी दूर हो जाती है। मारवाड़के कोलू गाँवमें पाबूजीका मन्दिर बना हुआ है। यहाँ प्रतिवर्ष पाबूजीकी स्मृतिमें मेला लगता है। इसके अतिरिक्त यहाँके कई गाँवोंमें पाबूजीके स्थल (चबूतरे) पाये जाते हैं। पाबूजीकी वीरता और महिमाका गान यहाँ चारणों, भाटों तथा कवियोंने विभिन्न दोहों, कवित्तों, रूपकों, छन्दों, गीतों, पवाड़ों, सोरठों आदिमें किया है। 'पाबूजीरी बात' और 'पाबूजीरी गाथा' में भी उनके गोरक्षार्थ किये युद्धका वर्णन तथा उनके उदात्त जीवन-चरित्रकी विविध घटनाएँ वर्णित हैं।

(३) रामदेवजी

राजस्थानमें ऐसा प्रबल लोकविश्वास है कि रामदेवजी द्वारकाधीश भगवान्‌के अवतारस्वरूप ही हैं। यहाँके कई अनेक ग्रामोंमें इनके छोटे-बड़े मन्दिर और स्थल बने हुए हैं, जिन्हें स्थानीय भाषामें 'देवरा' कहा जाता है। रुणेया या रामदेवरा रामदेवजीका प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ इनका विशाल मन्दिर और रामसरोवर तालाब है। यहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयासे लेकर एकादशीतक भारी मेला लगता है, जिसमें राजस्थानके ही नहीं, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि स्थानोंसे लाखों श्रद्धालु इनके दर्शनार्थ आते हैं। पश्चिमी राजस्थानके तो लगभग हर गाँवोंमें रामदेवजीका देवरा या 'थान' (स्थान) बना हुआ अवश्य मिलता है। प्रायः किसी वृक्षके नीचे दो-चार फुट ऊँचा चबूतरा बनाकर रामदेवजीके पगलिये स्थापित किये हुए मिलते हैं। उस वृक्षपर या लम्बे बाँसपर रामदेवजीकी ध्वजा फहरायी जाती है। रामदेवजीके श्रद्धालु भक्त और अनुयायी अपने घरोंमें भी रामदेवजीके पगलिये स्थापित कर उनकी धूप-दीपसे प्रतिदिन पूजा करते

हैं। कई लोग सोने अथवा चाँदीके पत्रपर रामदेवजीके पगलिये या मूर्ति खुदवाकर गलेमें पहनते हैं, जिसे यहाँकी स्थानीय भाषामें 'फूल' कहा जाता है।

रामदेवजीके चमत्कारोंसे युक्त उनकी महिमा-गानकी रचनाएँ यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं तथा रामदेवजीको असाध्य रोगों एवं भारी संकटोंसे मुक्ति दिलानेवाला माना जाता है। इनकी विशेषकर कुष्ठरोगको दूर करनेवाले देवके रूपमें अधिक मान्यता है।

(४) मल्लीनाथजी

मारवाड़के लोक-जीवनमें मल्लीनाथजीके योगबलका बहुत प्रभाव रहा है। इस क्षेत्रके एक परगनेका नामकरण 'मालानी' भी उन्हींके नामपर हुआ। तिलवाड़ा ग्राम जो पश्चिमी राजस्थानकी प्रसिद्ध नदी लूनीके किनारे बसा हुआ है, वहाँ सिद्धपुरुष मल्लीनाथजीको लोकदेवताके रूपमें माना जाता है और प्रतिवर्ष तिलवाड़ामें उनकी स्मृतिमें विशाल मेलेका आयोजन किया जाता है।

(५) हरभूजी

एक अलौकिक योगी, सिद्धपुरुष, शक्ति एवं ऐश्वर्यप्रदाता तथा वरदायी देवताके रूपमें 'हरभूजी' को राजस्थानमें विशेष मान्यता प्राप्त है। बेंगटी गाँवमें 'हरभूजी'का एक प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है।

(६) तेजाजी

गायोंकी रक्षार्थ तथा वचनपालनके लिये अपने प्राणोंका त्याग करनेवाले तेजाजीको लोकदेवताका स्वरूप प्राप्त हुआ। सुरसरा (किशनगढ़) में उनका एक मन्दिर बना हुआ है। राजस्थानके जाटोंमें तेजाजीके प्रति अधिक आस्था है। भादों सुदी दसमीको ये तेजाजीकी पूजा करते हैं। तेजाजीकी स्मृतिमें परबतसरमें प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल पक्षकी पञ्चमीसे पूर्णिमातक विशाल मेला लगता है। परबतसरके अलावा खड़नाल, सुरसरा, व्यावर आदि कई स्थानोंपर भी तेजाजीके मेले लगते हैं और यहाँके कई गाँवोंमें तेजाजीके मन्दिर एवं चबूतरे बने हुए हैं। तेजाजीको गोगाजीकी भाँति सर्पोंके देवके रूपमें पूजनेकी प्रथा भी यहाँ विद्यमान है तथा सर्पदंशके समय तेजाजीके नामकी ताँती बाँधनेका भी प्रचलन है।

(७) देवजी

देवजीकी मान्यता गूजर जातिमें अधिक है। गूजर इन्हें लोकदेवताके रूपमें पूजते हैं। आसींद (मेवाड़) देहमालीमें इनके मन्दिर बने हुए हैं। भाद्र सुदी षष्ठी तथा माघ सुदी सप्तमीको मेले लगते हैं।

इस प्रकार इन लोकदेवताओंके स्मारक, पूज्य एवं प्रसिद्ध स्थल इनके श्रद्धालुओंके लिये आज भी तीर्थरूप हैं। स्थान-स्थानपर लगनेवाले मेलों तथा पूजा-महोत्सवोंसे यहाँके लोगोंके जीवनको सरस एवं उल्लसित तथा सुखी होनेका अवसर मिला है। उन लोकदेवताओंसे सम्बन्धित साहित्य, गीत, भजन, पवाड़ो आदिका पाठ एवं श्रवण कर आज भी यहाँका लोकमानस आनन्दित होता है।

बुन्देलखण्डके लोकदेवता

(श्रीगंगारामजी शास्त्री)

बुन्देलखण्डमें यहाँके स्थानीय लोकदेवताओंके प्रति जनमानसमें गहन आस्था और श्रद्धा-विश्वास है। यहाँके लोकजीवनमें इन मान्य देवताओंकी पूजा विशेष ढंगसे की जाती है। यहाँ संक्षेपमें कुछ लोकदेवताओंके विशिष्ट रूप इस प्रकार वर्णित हैं—

(१) हरदौल

बुन्देलखण्डके लोकदेवताओंमें 'हरदौल' सर्वाधिक समादृत, प्रतिष्ठित और पूज्य देवताके रूपमें माने जाते हैं। विशेषरूपसे विवाहादिके अवसरोंपर इनका पूजन-स्मरण आवश्यक माना गया है। प्रायः प्रत्येक गाँवमें इनकी प्रतिष्ठाके रूपमें अनेक चबूतरे बने हुए हैं। देवशयनी एकादशीको इनके विशेष पूजनकी सुदीर्घ परम्परा है। स्थानीय इतिहासमें इन्हें ओरछा नरेशोंसे सम्बद्ध माना गया है।

(२) कुँवर साब

बुन्देलखण्डके प्रायः प्रत्येक गाँवमें, गाँवके बाहर अथवा भीतर एक चबूतरेपर दो ईंटें रखी रहती हैं, जिन्हें 'कुँवर साब' का चबूतरा कहा जाता है। इन्हें जनमानसमें लोकदेवताके रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त है।

(३) रतनगिरिकी माता

दतिया जिलेके सेवढ़ासे आठ मील दूर दक्षिण-पश्चिमकी ओर रतनगढ़ नामक स्थान है। यहाँ एक ऊँची पहाड़ीपर दुर्गके अवशेष मिलते हैं। घने जंगलके बीचका यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। इसी पहाड़ीपर एक देवीका मन्दिर बना हुआ है, जिसे रतनगढ़की माताके मन्दिरके नामसे जाना जाता है। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको यहाँ भारी मेला लगता है। यह स्थान यहाँ एक सिद्ध पीठके रूपमें प्रसिद्ध है। स्थानीय लोक-मान्यतामें इन देवीमाताकी अत्यधिक मान्यता है। ये यहाँ लोकदेवीके रूपमें पूजित होती हैं।

(४) कारसदेव

इस क्षेत्रमें प्रायः अनेक गाँवोंमें कारसदेवके चबूतरे बने हुए हैं। यहाँ प्रतिमासकी चतुर्थीको रातके समय गोपालक तथा अन्य व्यक्ति इकट्ठे होकर ढका (डमरू-जैसा एक वाद्य-विशेष) बजाते हैं। कुछ क्षणोंके बाद किसी एक विशेष व्यक्तिमें देवताका आवेश होता है और वह लोगोंके दुःख-दर्द सुनकर उनके समाधानका उपाय बताता है। जब कोई दुधारू पशु दूध कम देने लगता है, दूध दूहने ही नहीं देता, अपने बछड़ेको नहीं पिलाता अथवा दूधमें रक्त आने लगता है तो इनके चबूतरेपर दूध चढ़ानेसे ठीक हो जाता है। इसलिये यहाँ इन्हें पशुओंका अधिष्ठातृ-देवता भी समझा जाता है।

(५) कुलदेवता

बुंदेलखण्डमें कुलदेवताकी पूजाको बाबूकी पूजा कहा जाता है। यहाँ प्रत्येक जाति और वर्गमें भिन्न-भिन्न तिथियोंमें बाबूकी विशेष पूजा की जाती है। किसीके यहाँ माघमासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको कुल-परम्परानुसार यह पूजा सम्पन्न होती है तो किसीके यहाँ मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी द्वितीया अथवा फाल्गुनके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको।

(६) मातृका-पूजन

गौर्यादि षोडशमातृका, सप्तघृत-मातृका आदिके पूजनका भी विधान है। यहाँ माङ्गलिक अवसरोंपर इनकी पूजा की जाती है, साथ ही बुन्देलखण्डमें स्त्रियाँ किसी भीतपर पुतलियोंके चित्र बनाकर भी इनकी पूजा करती हैं। इसे 'माँय पूजना' कहा जाता है। माङ्गलिक अवसरपर कल्याणप्राप्ति और कार्यकी निर्विघ्न-सम्पन्नताके लिये कहीं गोबर तो कहीं मिट्टी अथवा शक्करकी पुतलियाँ बनाकर उनकी प्रतिष्ठा और पूजा की जाती है। कुलदेवता और मातृकाकी सम्मिलित पूजाको माँय-बाबूकी पूजा कहा जाता है।

इस प्रकार बुन्देलखण्डमें आस्था एवं विश्वासके प्रतीक-रूपमें अनेक लोकशक्तियों एवं ग्राम्य-देवताओंकी पूजा-अर्चा की जाती है।

पौड़ीके ग्रामदेवता ताड़केश्वर महादेव

पौड़ी-गढ़वाल जनपदके विकास-खण्ड लैन्सडौनसे लगभग अठारह किलोमीटरकी दूरीपर करीब आठ हजार फुटकी ऊँचाईपर पर्वत-शृंखलाओंके मध्य एक अत्यन्त रमणीक, शान्त एवं पवित्र स्थान है, इसके आस-पास सघन देवदारु-वन है। यहींपर एक ताड़केश्वर महादेवका मन्दिर है। स्थानीय भक्त ताड़केश्वरको शिवरूपमें मानकर उनकी पूजा-अर्चा करते हैं। यह एक विचित्र बात है कि इस मन्दिरके निकट ही एक पवित्र जलाशय है, आस-पास लगभग सात किलोमीटरकी दूरीतक कहीं भी जलका कोई स्थान नहीं है। इसे लोग 'ताड़केश्वर महादेव'की ही महिमा मानते हैं। दूर-दूरसे यात्री यहाँ आते हैं। अपने स्वास्थ्यवर्धक परिवेश तथा देवभूमित्वके कारण दर्शनार्थी यहाँ आकर अद्भुत सुख एवं शान्तिका अनुभव करते हैं। यहाँ वर्षमें प्रायः दो बार विशेष पूजन-महोत्सव होता है। स्थानीय लोग अपने ग्राम-देवता तथा स्थान-देवताके रूपमें इनकी पूजा करते हैं।

—शर्मा पी० डी० खन्तवाल

हिमाचलके लोकदेवता पहाड़िया

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

हिमाचल प्रदेशके स्थानीय ग्रामदेवता, जनदेवता और लोकदेवतामें पहाड़ियाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमीरपुरके बाबा बालकनाथ तथा काँगड़ाके पहाड़िया यहाँके जनप्रिय लोकदेवता हैं। कहा जाता है कि हिमाचल प्रदेशमें पहाड़िया ग्रामदेवता न होकर लोकदेवताके रूपमें मान्य हैं। इतना ही नहीं, इनके बारेमें ऐसी मान्यता है कि भगवान् शङ्कर तथा माँ

पार्वतीके मानसपुत्रके रूपमें ही पहाड़िया लोकदेवता पूजित होते हैं।

यहाँकी लोकमान्यताके अनुसार लोकदेवता पहाड़ियाके दो मुख्य रूप हैं—भोरू तथा घरू। भोरू अर्थात् जो एकदम स्वच्छन्द है और जंगलोंमें पीपलपर रहता है, घरू पहाड़िया घरोंमें कोठोंपर रहता है।

हिमाचल प्रदेशमें देहरा-गोपीपुरु ज्वालामुखी मार्गपर, चलाली, टिघरी तथा जयसिंहपुरमें पहाड़िया लोकदेवताके प्रसिद्ध स्थान हैं, जहाँ दूर-दूरसे लोग मनौतियाँ करनेके लिये आते हैं।

घरू पहाड़िया लोकदेवताका सबसे प्रसिद्ध स्थान मंडी नगरके राजमहलोंमें है। वहाँपर पहाड़िया लोकदेवता—बाबा कोट देवताके नामसे प्रसिद्ध है। इस पहाड़िया लोकदेवताके मन्दिरके परिसरमें सिंह तथा वृषभकी मूर्तियोंके अतिरिक्त भैरव, काली तथा चौंसठ योगिनियोंकी भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

पहाड़िया लोकदेवताकी प्रसन्नताके लिये उन्हें नैवेद्यके रूपमें कड़ाह (हलवा) चढ़ानेकी विशेष परम्परा है। स्थानीय भाषामें इसे 'पतली' कहा जाता है और मुख्यतः शनिवारको यह प्रसाद चढ़ाया जाता है। सबसे रोचक बात यह है कि जिस घरमें पहाड़िया लोकदेवताकी स्थापना हुई रहती है, उस घरकी लड़कियोंकी जब शादी हो जाती है, तब वे ससुरालसे आनेपर वहींसे लायी सामग्रीसे देवताको 'पतली' चढ़ाती हैं। यह परम्परा हिमाचल प्रदेशके काँगड़ा, ऊना, हमीरपुर तथा विलासपुरमें आज भी होती चली आयी है।

मिथिलाके ग्राम-देवता

(डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी० [राष्ट्रपति-पुरस्कृत])

मिथिलामें शैव, शाक्त, वैष्णव—सभीमें पञ्चदेवोपासना-का प्रचलन है। अतः द्विजातियोंमें सूर्य,गणपति, दुर्गा, विष्णु तथा शिव—ये किसी भी धार्मिक कृत्यमें सामान्यतः पहले पूजे जाते हैं, तदनन्तर अपने-अपने देव-विशेषकी पूजा होती है। मिथिलाके गाँवोंमें कहीं-कहीं पञ्चमन्दिर दीखता है, जिसमें मुख्यतः लक्ष्मीनारायण तथा चार कोनोंमें सूर्य, गणपति, दुर्गा और शिव विराजमान दीखते हैं तथा कहीं मात्र शिवालय दीखता है तो कहीं कालीका मन्दिर और कहीं दुर्गा एवं कहीं हनुमान्जीका ही मन्दिर दीखनेमें आता है।

मिथिलाके हिन्दू-परिवारमें किसी-न-किसी कुलदेवताकी स्थापनाकर उनकी नियमतः पूजा करनेकी परम्परा है। इनमें दक्षिण काली, ज्वालामुखी, जगदम्बा, जालपा, धर्मराज आदिकी अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार 'सीर' बनाकर पूजा की जाती है। इनमें भी अधिकांश परिवारोंमें पञ्चभगिनीसहित[१] त्रिपुरसुन्दरी दक्षिण कालिकाका सीरात्मक पीठ बनाकर पूजा करनेका प्रचलन है। 'सीर'के पार्श्वमें विषहरा और कहीं-कहीं शीतलाका भी पीठ बनाकर उनकी पूजा की जाती है।

मिथिलामें 'सीर'-स्थापनकी विशेष विधि है। गंगौटमें सप्तमृत्तिका[२] मिलाकर उसमें यथाशक्ति पञ्चरत्न[३] रखकर शास्त्रीय विधिसे सीरकी स्थापना की जाती है। इस सीरके ऊपर विशेष प्रकारसे निर्मित आँचल लटकाकर उसके ऊपर तथा दोनों ओर रक्त-पीतादि रंगोंसे चित्राङ्कन किया जाता है। इस प्रकार स्थापित कुलदेवीको मिथिलामें 'गोसाउनि'[४] कहते हैं। इनकी पूजा प्रतिदिन पञ्चोपचारसे होती है। मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि शुभकर्मोंके अवसरपर कुलदेवीकी विशिष्ट पूजा की जाती है। जिनके घरमें ज्वालामुखी, जालपा या धर्मराज कुलदेवतारूपमें पूजित हैं, वहाँ भी विशेष अवसरोंपर विशेष पूजा की जाती है।

मुण्डन, उपनयन, विवाह आदि शुभ अवसरोंमें इन कुलदेवताओंकी विशिष्ट पूजाके अतिरिक्त आभ्युदयिकके[५]

१-त्रिपुरा कालिका दुर्गा भवानी गिरिजा तथा। एताः पञ्चभगिन्यस्तु भवन्ति कुलदेवताः॥

२-गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥ (मत्स्यपुराण)

३-प्रवाल, वैदूर्य, हीरक, पुष्पराग तथा इन्द्रनील अथवा प्रवाल, सुवर्ण, रजत, लाजावर्त, वैदूर्य।

४-सहज सुमति वर दिअओ 'गोसाउनि' अनुगत गतितुअ पाया। —भक्तशिरोमणि विद्यापति

५-आभ्युदयिक वह माङ्गलिक श्राद्ध है, जिसमें पितरोंको विशेष विधिसे पिण्ड दिया जाता है।

।-साथ षोडशमातृकाओंकी[1] सविधि पूजा की जाती है, जो ृकापूजा'के नामसे प्रसिद्ध है। गोमयसे छोटी-छोटी का बनाकर 'सीर'के बगलमें आठ-आठकी दो पंक्तियाँ से नीचे बनायी जाती हैं। इन्हीं गुटिकाओंपर क्रमशः गौरी, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, , स्वाहा, माता, लोकमाता, धृति, पुष्टि, तुष्टि तथा कुलदेवताका ध्यानकर पात्र-विशेषमें इन मातृकाओंकी सविधि पञ्चोपचार-पूजा की जाती है। में तीन गो-घृत-धाराएँ इनपर दी जाती हैं। व्रतोद्यापन, -कर्मोंके अवसरपर सप्तघृतमातृकाकी[2] भी पूजा होती है। कार सामान्य और विशेषरूपसे मिथिलामें आज भी वताओंकी पूजा की जाती है।

मिथिलामें ग्राम-देवतारूपमें जिनकी मान्यता है, उनमें य सामान्य और कतिपय विशेष जातीय देवता हैं। किंतु विशेषके द्वारा जो वार्षिक पूजा होती है, उसमें सभी वर्गके लोग सम्मिलित होते हैं और आर्थिक सहयोग हैं। यहाँके मान्य ग्राम-देवताओंका संक्षिप्त विवरण इस है—

(१) ब्रह्म—देवीब्रह्म—दाइबाबू

ब्रह्मकी स्थापना अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके नीचे या किसी जलाशयके समीप बृहत् मृत्पिण्ड बनाकर की जाती है। एक या अनेक बाँसोंमें लाल ध्वज बाँधकर उसे गाड़ा है। गाँवके लोग यहाँ आकर प्रतिदिन पूजा करते हैं। री आदि किसी दुःस्थितिमें यहाँ ग्रामीणोंद्वारा सामूहिक होती है और समय-समयपर पार्थिव महादेवका पूजन भी है। इन अवसरोंमें कुमारियों तथा वटुओंको भोजन जाता है।

(२) विषहरा

मिथिलाके प्रत्येक उच्चवर्गीय परिवारमें प्रतिदिन ाकी पूजा तो होती ही है, सामाजिक स्तरपर भी ाका स्थान बनाया जाता है, जहाँ सर्पदंश होनेपर लोग विष झड़वानेके लिये आते हैं। श्रावण कृष्णा पञ्चमी जिसे मिथिलामें मौना पञ्चमी कहते हैं तथा श्रावण शुक्ला पञ्चमी—नाग-पञ्चमीको, विषहरा (मनसादेवी) की सार्वजनिक पूजा होती है। उस दिन गृहद्वारपर नागका चित्र बनाया जाता है और दूध-लावासे विशेष पूजा की जाती है।

(३) सतीमाता

कतिपय गाँवोंमें 'सतीमाई' का सार्वजनिक स्थान है। सतीमाता वहाँ ग्रामदेवतारूपमें पूजी जाती हैं। लोग वहाँ मनौती चढ़ाते हैं। वहाँ कुमारिकाओं तथा वटुओंको विशिष्ट भोजन कराया जाता है।

(४) अघोरीनाथ

ग्रामके पश्चिम-भागमें अघोरीनाथका स्थान बनाया जाता है। ये मुसहर जाति-विशेषके देवता माने जाते हैं। इनकी वार्षिक विशिष्ट पूजामें सभी वर्गोंके लोग एकत्र होते हैं।

(५) सलहेश

गाँवके मध्यभागमें ही सलहेशका स्थान बनाया जाता है। ये दुसाध जाति-विशेषके देवता माने जाते हैं। इनकी वार्षिक विशिष्ट पूजामें समाजके सभी लोग एकत्र होते हैं।

(६) दीनाभद्री

दीनाभद्री मल्लाह जाति-विशेषके देवता हैं। इनका भी गाँवमें एक निश्चित स्थान होता है और इनकी भी वार्षिक विशिष्ट पूजामें सभी वर्गके लोग एकत्र होकर पूजामें सहयोग करते हैं।

(७) महंकार बाबा

महंकार बाबा किसी जाति-विशेषके न होकर सभीके देवता हैं। गाँवोंमें कुसियार (ईख) को पेरकर जब गुड़ बनाया जाता है, वहाँ पहले महंकारकी पूजा नियमतः की जाती है।

इनके अतिरिक्त सोखा, चित्रगुप्त, विश्वकर्मा, लोरिक, दुलरा दयाल, मण्डलबाबा, गनीनाथ आदि भी कुछ ऐसे देवतुल्य नाम हैं, जिनकी समय-समयपर पूजा होती है।

---
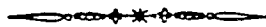
[1] गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता ॥

[2] कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वती। माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ॥

देवोपासनाकी मूलभूत बातें

१-'उपासना'का अर्थ एवं उपासना-विज्ञान

'उपगम्य आसनम्-आसना इति उपासना'—समीप जाकर बैठनेका नाम 'उपासना' होता है। **'आस उपवेशने'** (अ० आ० से०) इस धातुसे **'ण्यासश्रन्थो युच्'** (३।३।१०७) इस पाणिनि-सूत्रद्वारा **'युच्'** प्रत्यय करनेपर, उसे **'युवोरनाकौ'** (पा० ७।१।१) से **'अन'** करनेपर फिर **'उप'** के साथ समास करनेसे 'उपासना' शब्द बनता है। यद्यपि भावमें प्रत्यय होनेसे यहाँ नपुंसकलिङ्ग होना चाहिये था, परंतु **'स्त्रियां क्तिन्'** (पा० ३।३।९४) के अधिकारमें होनेसे यहाँ स्त्रीलिङ्ग और **'टाप्'** हुआ।

यहाँ समीप बैठना वैध-इष्ट होनेसे यह शब्द परिचर्या-पूजाके अर्थमें पर्यवसित हो जाता है। पूजा होती है परमात्माकी। परमात्माके सर्वव्यापक, अखण्ड एवं निराकार होनेसे और हमारे एकदेशीय, सखण्ड तथा साकार होनेसे, परमात्माके समीप बैठना उपपन्न (संगत) नहीं हो सकता, तब उपासना भी नहीं हो सकती—यह प्रश्न उठता है, इसपर यह स्मरण रखना चाहिये कि इसका उपाय वेदादि शास्त्रोंमें बताया है—'प्रतिमोपासना।' जिसकी पूजा सम्भव न हो, उसका कोई प्रतीक, कोई प्रतिनिधि, कोई मूर्ति या कोई अङ्ग स्थिर कर लेना पड़ता है। उसीकी पूजासे उस उपास्यकी उपासना करनी पड़ती है।

यहाँ यह भी समझ रखना चाहिये कि परमात्मा 'अङ्गी' होता है। अङ्गीकी उपासना-पूजा हो ही नहीं सकती। हमारा आत्मा अङ्गी है, उसकी हमारे किसी शिष्यको गुरु-पूजावाले दिन पूजा करनी हो, तो क्या वह कभी कर सकता है? कभी नहीं। अतः उसे उस अङ्गीकी पूजा किसी अङ्गद्वारा ही करनी पड़ेगी। वह छात्र गुरुके गलेमें पुष्पमाला डालेगा। उनके निराकार आत्मापर वह पुष्पमाला भला कैसे डाल सकता है? गुरुके अङ्ग गलेमें पुष्पमाला चढ़ानेसे वह पूजा अङ्गी—गुरुके आत्माकी ही सम्पन्न हो जाती है। साकार अङ्गपर साकार माला चढ़ी और उससे निराकार अङ्गी आत्मापर निराकर श्रद्धा चढ़ी। इस प्रकार अङ्गपूजा या प्रतीकोपासना अथवा मूर्तिपूजासे अङ्गीकी प्रसंन्नता स्वतः हो उठती है। इसके अतिरिक्त उपासनाका अन्य कोई सरल उपाय ही नहीं है—**'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'**

कहा जा सकता है—'निराकारका कोई अङ्ग नहीं बन सकता, निराकार एवं विशाल वह परमात्मा छोटी-सी मूर्तिमें कैसे समा सकता है। हम उस निराकारकी मनसे उपासना कर लेंगे। बुद्धिद्वारा उसका विचार कर लेंगे। उसे हृदयमें प्रतिष्ठापित कर उसकी पूजा कर लेंगे। वेदमन्त्रोंसे उसकी स्तुति कर लेंगे। उस पूर्ण पुरुषका मनद्वारा आह्वान कर लेंगे और उस सर्वव्यापककी मनद्वारा परिक्रमा कर लेंगे, क्या आवश्यकता है प्रतिमोपासनाकी?'

इसपर यह याद रख लेना चाहिये कि यदि परमात्माको हृदयमें प्रतिष्ठापित करके उसकी पूजा की जायगी, तो यह भी तो प्रतिमोपासना-सी होगी। यदि वह विशाल परमात्मा छोटी-सी मूर्तिमें प्रविष्ट नहीं हो सकता तो उससे भी छोटे हृदयमें उसे कैसे प्रतिष्ठापित किया जा सकेगा? जड मनसे भी उसका पाना कठिन होगा—**'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमः'** (केनोपनिषद् १।३)।

जब मनकी भी उसमें गति नहीं तो उस अनिर्वचनीयको हम परिमित वाणीसे कैसे प्राप्त कर लेंगे? उस असीमितकी सीमा हम अपने सीमित मनसे कैसे बना सकेंगे? कैसे उस असीमितकी 'मनसा परिक्रमा' कर सकेंगे? स्पष्ट है कि जब हम उसकी कुछ प्रतिमा अपने सीमित मनमें स्थिर कर लेंगे तब चाहे हम शरीरसे परिक्रमा करें, चाहे मनसे, यह सङ्गत हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रतिमोपासना जहाँ व्यावहारिक है, वहाँ स्वाभाविक भी है ही। मनुष्य जब अवधानमें आता है और उसे इस सृष्टिमें जब

रमात्माकी सत्ताका विश्वास हो जाता है, तब सृष्टिमें उसके ार्योंको देखकर मनुष्यका मस्तक उसके सामने स्वतः झुक ता है। जब मनुष्य देखता है कि मेरा उपास्य सर्वव्यापक है र मैं एकदेशी हूँ, मैं उसकी सर्वव्यापक पूजा कर ही कैसे कता हूँ? उस समय उसके समक्ष दो दृष्टिकोण उपस्थित ो हैं। एक तो अपने सर्वव्यापक उपास्यकी उपासनाके म्भव होनेसे उपासनाका सर्वथा त्याग और दूसरा, उसकी देशी उपासनाका अवलम्बन। बस, इसी दूसरे दृष्टिकोणसे मोपासनाका अध्याय प्रारम्भ होता है। अत्यन्त ज्ञान हो पर एक तीसरा दृष्टिकोण भी उपस्थित हो जाता है, वह -अद्वैतवाद। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् उसी परमात्माका ास है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। हम भी वहीं हैं। फिर की उपासना क्या और कैसी? इस पक्षमें आत्मा- त्माके अभेद हो जानेसे उपास्य-उपासकका भेद नहीं रह ा। अतः उपासनाकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। परंतु पक्ष पारमार्थिक होनेपर भी व्यावहारिक नहीं होता। हारमें मनुष्य एक उच्चकी उपासना करना चाहता है। नामें सदा उस अभिन्नको भी भिन्न रखना चाहता है। ओत-प्रोतको भी वह एकदेशी कर देता है, क्योंकि वह एकदेशी होता है।

इसको यों समझना चाहिये कि उपास्य परमात्मा तो -अणुमें सर्वत्र अखण्ड व्यापक है, पर उपासक एकदेशी थिवीपर बैठा है। वह उपास्यका ध्यान करना चाहता है क दिशाकी ओर अपना मुख करता है। एक ही देशमें बैठता है। ध्यानकी समाप्तिके समय '**नमः शम्भवाय च भवाय च०**' मन्त्रसे अन्तिम नमस्कार भी एक ही अपने की दिशाकी ओर कर सकता है। नमस्कार करनेके ा या तो सामने कोई दीवाल होगी या पृथ्वी अथवा सूर्यका या आकाश। पर वे उसके नमस्कारके लक्ष्य नहीं होते। कारका लक्ष्य होता है—वही एक—उन सबमें व्यापक त्मा। बस, यह प्रतिमोपासनाका आदि-स्रोत है।

उपासक जानता है कि मेरा उपास्य सर्वव्यापक है, पर मैं कदेशी। मेरे ध्यानका विषय सीमित हो सकता है, पर वह य असीमित है। वह अखण्ड है, पर हम सब उसके क खण्ड-खण्ड हैं, अतः मैं उपासक भी उसकी व्यापक पूजा नहीं कर सकता। यदि मैं चर्खीकी भाँति घूमता हुआ उसे नमस्कार करता जाऊँ, तब भी मेरा मुख एक ही अ रहेगा, युगपत् सब दिशाओंमें मैं परमात्माको प्रणाम नहीं क सकता। अगत्या मुझे उसकी एकदेशी ही पूजा करनी पड़ेगी बस, यहींसे प्रतिमोपासना आरम्भ होती है, क्योंकि उसव उपासना करनेका भाव उसे एकदेशमें रखनेका होता है '**उपगम्य आसना**' (समीपस्थिति) का नाम 'उपासना' सार्थव भी तभी होता है, अन्यथा हम एकदेशी उस सर्वव्यापकवे 'उप' अर्थात् समीप पहुँच ही कैसे सकते हैं? वह प्रतिमोपासनाके अतिरिक्त हम उसकी उपासना अन्य ढंगसे क ही नहीं सकते। यही होता है उपासना-विज्ञान।

२-मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदमें प्रतिमोपासना

पहले कहा जा चुका है कि अङ्गीकी उपासना उसवे किसी अङ्गके माध्यमसे हुआ करती है। उसी अङ्गको मूर्ति य प्रतिमा कहा करते हैं। उसी प्रतिमोपासनाको वेद भी प्रमाणित करता है। देखिये—

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्रि उपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज॥

(अथर्ववेद सं० ३।१०।३)

इस मन्त्रका भाव इस प्रकार है? '**हे रात्रि!** (हे उपासकोंको आनन्द देनेवाली!) **संवत्सरस्य** (प्रजापति परमात्माकी) प्रतिमा (मूर्ति) **यां त्वां** (जिस तेरी) **उपास्महे** (हम उपासना करते हैं), **सा** (वह तू) **नः** (हमारी) **प्रजां** (संतानको) **आयुष्मतीं** (चिरायु करके उसे) **रायस्पोषेण संसृज** (धन-वस्त्रसे संयुक्त कर)।' इसमें प्रतिमाकी उपासना तथा प्रतिमासे प्रार्थना वैदिक सिद्ध हो रही है।

३-विभिन्न देवी-देवताओंकी उपासना

पहले कहा जा चुका है कि अङ्गी परमात्माकी पूजा स्वतः हो नहीं सकती, अतः उसे उसके किसी अङ्ग-विशेषको ही पूजाका माध्यम बनाना पड़ता है। सो अङ्गी भगवान्के अङ्ग देवता हुआ करते हैं, इसपर देखिये अथर्ववेदसंहिता—

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥

(१०।७।२७)

यहाँ देवताओंको परमात्माका अङ्ग बताया गया है।

यही बात भगवद्गीता भी कहती है—'**पश्यामि देवांस्तव देहे·····ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्**' (११ । १५) ।' **ादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।**' (११ । ६)। यहाँ ाओंको भगवान्‌का अङ्गात्मक देह बताया गया है। ग्रान् अङ्गी हैं, यह भी भगवद्गीता बताती है—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

(१० । २०)

यहाँ भगवान्‌को सबका आत्मा (अङ्गी) बताया गया अङ्गीकी पूजा अङ्गोंके बिना कभी हो ही नहीं सकती— हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं। इसलिये हिंदूधर्ममें पूजाका आदर है। उसमें 'भगवद्गीता' सूचित करती है— ; अङ्गपूजा केवल अङ्गकी पूजाके उद्देश्यसे की जाती और उसके पूजनसे केवल अङ्गकी पूजा उद्दिष्ट होती है, ङ्गीकी नहीं, तब वह अविधिपूर्वक होती है— **जन्त्यविधिपूर्वकम्**' (९ । २३) ।

उसका फल स्वर्ग भी '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**' ीता ९ ।२१), गतागतकारक होनेसे नाशवान् है। अतः शवान् फलको चाहना अल्पबुद्धिता हुआ करती है। पर यदि ङ्गपूजाको अङ्गीकी पूजाका साधन माना जाय, लक्ष्य भी ङ्गीकी प्रसन्नता हो और उसमें फलाकाङ्क्षा भी न की जाय, ब उस अङ्गपूजनको भी साध्यका साधन समझनेसे वह विधिपूर्वक (अज्ञानमूलक) नहीं होता, गतागतकारक भी हीं होता। उसमें अल्पबुद्धिता भी नहीं रहती।

पूर्व-पूजाकी अवैधताका भाव यह है कि कई ाम्यविषयोंके लोभी अपनी प्रकृतिके अनुसार विभिन्न वताओंकी पूजा करते हैं (गीता ७ । २०)। वे उन वताओंकी आराधनामें तत्पर होते हैं, पर उन्हें यह मालूम नहीं ोता कि सभी देवपूजाओंके लेनेवाले अङ्गी भगवान् ही हैं गीता ७ । २२) और वे ही उस देवपूजाका फल दिया करते ;, अतएव वे यथार्थतासे च्युत हो जाते हैं और वह उनकी पूजा अवैध हो जाती है।

फलतः विभिन्न देवी-देवताओंकी पूजा इसलिये की जाती है कि अङ्गीकी पूजा स्वतः हो नहीं सकती, अपने इष्ट अङ्गोंद्वारा ही उसका होना सम्भव होता है और देवता भगवान्‌के अङ्ग होते हैं, जैसे कि पहले कहा जा चुका है। अतः उपासनामें देवी-देवताओंकी पूजाका यही रहस्य है कि अङ्गीकी पूजा अङ्गोंके बिना नहीं हो सकती। इसलिये देवपूजाको साध्य न मानकर अङ्गी—भगवान्‌की पूजाका साधन समझना चाहिये। यह पूजन वैध होगा। देवपूजाको साध्य मानना अवैध होगा, अथवा उसे प्रथम सीढ़ी जानना चाहिये।

४-जपविज्ञान

प्रत्येक विशिष्ट शब्द अपनी एक विशेषता रखता है। उसका प्रभाव दूसरेपर पड़ता ही है। पर वेद एक अपौरुषेय ज्ञानराशि है। इसके मन्त्रोंकी आनुपूर्वीका नियत होना और पदप्रयोग-परिपाटीका परिवर्तन न होना—इस बातसे उसकी विशेषता व्यक्त हो रही है। इसलिये वेदका नाम 'मन्त्र-संहिता' प्रसिद्ध है। परिवर्तन न होनेसे सूचित हो रहा है कि इन मन्त्रोंका जपमें विनियोग है। कौत्स मुनि, जिनका मत निरुक्तमें श्रीयास्काचार्यने आलोचित किया है—'**अनर्थका मन्त्राः**' कहते हैं। उनका भाव यह है कि मन्त्रोंको अर्थकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। इसका आशय यह हुआ कि इनका उच्चारणमें प्रयोजन है। उच्चारणका जबतक कोई फल न हो, तबतक उससे कौन अपनी जिह्वाको श्रान्त करेगा ? तब इससे जपका फलयुक्त होना सिद्ध होता है। इसलिये महाभाष्यकार श्रीपतञ्जलिमुनिने पस्पशाह्निकमें 'ज्ञान-कर्मके धर्माधर्माधिकरण' में कहा है—'**यथा वेदशब्दा नियमपूर्वकमधीताः फलवन्तो भवन्ति ।**' इससे वेदमन्त्रोंके नियमबद्ध जपनेसे उससे फलप्राप्तिकी सिद्धि सिद्ध होती है। नहीं तो, कौत्समुनि इतने अज्ञानी नहीं थे कि मन्त्रोंको निरर्थक कहते। अतः 'अनर्थक' कहनेका भाव उनका यह है कि इनका सामर्थ्य शब्दोंके उच्चारणमें है। अर्थोंमें वह सामर्थ्य नहीं। अर्थमें ध्यान देनेसे शब्दकी शक्ति मारी जाती है। उसमें कुछ रुकावट पड़ जाती है। इसलिये 'काव्यप्रकाश'में वेदोंको शब्दप्रधान माना गया है। बीजमन्त्र अर्थहीन ही तो दीखते हैं, पर उनमें बड़ा सामर्थ्य होता है। '**ह्रीं, क्लीं, ऐं**' आदि बीजमन्त्र कितना प्रभाव रखते हैं, यह जानना हो तो चिन्तामणि बीज-मन्त्रके उपासक श्रीहर्षका—'नैषधचरित' महाकाव्य तथा उसका १३ वाँ सर्ग देखना चाहिये।

फलतः वेदशब्दोंका सामर्थ्य अमोघ है। '**जप व्यक्तायां**

वाचि' (भ्वा० प० से०), **'जप मानसे च'** (भ्वा० प० से०) दोनों प्रकारके मन्त्र-जपोंमें शक्ति विशेष होती है। इसलिये मन्त्रकी आनुपूर्वीमें परिवर्तन कर देनेपर उसके लौकिक हो जानेसे उसकी शक्तिमें न्यूनता मानी जाती है। अतएव हमलोगोंकी कन्या भी मन्त्रके शब्दोंसे संस्कृत होकर ही किसीकी पत्नी बनती है।

वेद-मन्त्रोंके स्वरसहित उच्चारणद्वारा भौतिक तत्त्वों एवं भौतिक जगत्पर तथा मन्त्रके देवतापर अभूतपूर्व प्रभाव डाला जा सकता है या उसे वशमें किया जा सकता है। वेद-मन्त्रोंके शुद्ध स्वरसहित उच्चारण एवं उनकी क्रियाओंद्वारा अग्नि, जल, वायु, मेघ, विद्युत् आदि देवशक्तियोंसे विविध उपयोग लिया जा सकता है। प्राचीन कालमें दिव्य द्रष्टा महर्षि लोग एक-एक मन्त्रके रहस्य एवं विज्ञानके अन्वेषणमें अपना सुदीर्घकालिक ब्रह्मचर्यका जीवन अर्पित कर दिया करते थे।

अतः मन्त्र-शक्तिमें अवश्य ही विश्वास रखना चाहिये। इसलिये योगदर्शनमें **'जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः'** (४। १) कहा है। यहाँ मन्त्रशक्ति तथा उससे सिद्धि भी मानी गयी है। मन्त्र शब्दात्मक होता है। शब्दमें अचिन्त्य शक्ति होती है। वैर, प्रेम, क्रोध, शान्ति, कार्यसिद्धि तथा विविध क्रान्तियाँ, जो नित्यके व्यवहारमें दीखती हैं—ये सब शब्द-शक्तिसे ही हुआ करती हैं। शब्दोंके आनुपूर्वी विशेषसे सङ्गीत बन जाता है, जिससे पशु-पक्षी भी प्रभावित होते हैं। कई क्रियाओंका मन्त्रसे विधान होनेसे विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न होता है। उन्हीं मन्त्रोंका संग्रह मन्त्रयाग 'वेद' प्रसिद्ध है। जैसे उपवेद, आयुर्वेदमें भी मन्त्र होते हैं, इसी प्रकार तन्त्रशास्त्रमें भी हैं। मन्त्रशक्तिसे ही ब्राह्मण वृष्टि करवाने या रुकवानेमें समर्थ होते हैं—यह प्रसिद्ध है। जपादिमें यदि स्वर-वर्णादिकी आनुपूर्वीका भङ्ग कर दिया जाय, तब उसके फलमें भी भङ्ग हो जाता है। इसीलिये प्रसिद्ध है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

इन्हीं स्वरकी त्रुटियोंसे वृत्रासुरका वध हुआ—यह कथा सुप्रसिद्ध है। मानस-जपका प्रभाव सारे आकाशमण्डलमें व्याप्त हो जाता है। इसलिये सूक्ष्मका प्रभाव स्थूलकी अपेक्षा अधिक होना प्रसिद्ध है।

कई मन्त्र वेदसे भिन्न पुराणों तथा उनसे भिन्न तपस्वियोंके भी होते हैं। उनमें मन्त्रोंके उद्भावक मुनियोंकी तपस्याका बल-प्रभाव रहता है। आविष्कारकोंकी तपस्या यावत्-कालावस्थायिनी होती है, तबतक वे मन्त्र भी सफल होते रहते हैं, बादमें वे निष्फल या निष्प्रभाव हो जाते हैं। पर वेद-मन्त्र अपौरुषेय हैं, सदा ही वे शक्तिसम्पन्न और सफल होते हैं। अवश्य ही उनका प्रयोक्ता शास्त्रोक्त अधिकारी, निष्ठावान् तथा पूर्ण विद्वान् एवं शुद्ध उच्चारणवाला होना चाहिये। इस प्रकार याज्ञिक मन्त्रोंद्वारा वशीकृत देवशक्ति हमपर अनुग्रह करती है। वह उच्चयोनि तथा लोकोत्तर बलशालिनी होनेसे हमें अपने मनोरथोंकी पूर्तिमें सुगम सुझाव देती है। उन मन्त्रोंके प्रकम्पनोंका प्रभाव हमारे शरीरपर होनेसे वे हमारे रोग आदिके परमाणुओंको बहिष्कृत करनेमें समर्थ हो जाते हैं। मानसिक एवं शारीरिक अस्वास्थ्य दूर हुआ, तो लोककल्याण स्वयं उपस्थित हो जाता है।

५-गायत्री-उपासना-विज्ञान

गायत्री-मन्त्र वेदका सारस्वरूप है, यह मनुस्मृति (२। ७६-७७) में स्पष्ट है। इसलिये वेदारम्भ-संस्कारमें वेदोंके पूर्त्यर्थ मुख्यतया वटुको गायत्री-मन्त्रका दक्षिण कर्णमें उपदेश दिया जाता है। लौकिक दृष्टिसे भी गायत्री-मन्त्र महत्त्वपूर्ण है। इसे मन्त्रराज समझना चाहिये। इस मन्त्रमें सूर्यसे बुद्धिकी प्रार्थना है, क्योंकि वह बुद्धिका अधिष्ठाता देव है। इसी बुद्धिके दाता होनेसे ही सूर्योदयके समय चोरोंकी चौर्य-प्रवृत्ति तथा जारोंकी जारता-प्रवृत्ति हट जाती है।

बुद्धकी प्रार्थनासे ही **'वृद्धाकुमारीवरन्याय'** तथा **'वृद्धान्धब्राह्मणवरन्याय'**के अनुसार इससे सभी कुछ माँग लिया जाता है। एक वृद्धा कुमारीने पति, पुत्र, धन, धान्य, गाय आदिको चाहते हुए भारी तपस्या की। देवताने साक्षात् होकर उसे एक वर माँगनेका आदेश दिया। तब उस वृद्धा कुमारीने वर माँगा कि 'मैं अपने पुत्रको सोनेके पात्रमें घी-दूध-मिश्रित भात खाता हुआ देखना चाहती हूँ।' इस प्रकार उसने एक ही वरसे यौवन, पति, पुत्र, धन, धान्य, गाय आदि माँग लिये।

इसी प्रकार एक जन्मान्ध, निर्धन, अविवाहित ब्राह्मणकी भी कथा है। देवताके मुखसे एक वरकी प्राप्ति जानकर उसने

देवसे वर माँगा—'मैं अपने पौत्रको राजसिंहासनपर बैठा देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार एक वरसे उसने अपनी आँखें, धन, यौवन, विवाह, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि माँग लिये। यही बात है—बुद्धिकी प्रार्थनाकी। हमारे जो कार्य सिद्ध नहीं होते या उलटे पड़ जाते हैं, उसका मुख्य कारण है—बुद्धिकी विपरीतता। इसी कारण प्रसिद्ध है—'**विनाशकाले विपरीत-बुद्धिः।**'

'बुद्धि'का लक्षण यह है—'**सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्।**' बुद्धि सब व्यवहारोंका कारण है।

जब चाणक्यके शिष्यने चाणक्यसे कहा था कि—'आपके ही आदमी आपका पक्ष छोड़कर राक्षसके पक्षमें जा मिले हैं।' तब श्रीचाणक्यने कहा कि 'सभीको जाने दो, '**मा यातु बुद्धिर्मम**' एक मेरी बुद्धि न जाय, शेष सभी हमें छोड़कर भले ही चले जायँ।'

यद्यपि बुद्धिकी प्रार्थना हम लौकिक वचनोंसे भी कर सकते हैं तथापि वेदके अपौरुषेय एवं नियत आनुपूर्वीवाले तथा नियतपद-प्रयोग-परिपाटीवाले होनेसे उसमें अनन्यसदृश अपूर्वता हुआ करती है, जिससे उसके द्वारा अतिशयित फल हुआ करता है।

इसी बुद्धिकी महत्ता होनेसे ही भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

'**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि।**' (७।१०), '**गायत्री छन्द-सामहम्।**' (१०।३५)। गायत्री छन्द है, मन्त्रका नाम सावित्री है। '**सावित्र्यास्तु परं नास्ति।**' (मनु० २।८३) यहाँपर सावित्री-मन्त्रको सर्वश्रेष्ठ कहा है। इसी सावित्रीके जपसे क्रूर ग्रहोंका दुष्फल भी दूर हो जाता है। देखिये महाभारत, वनपर्वमें—

प्रजपन् पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम्॥
ये चास्य दारुणाः केचिद् ग्रहाः सूर्यादयो दिवि।
ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवाः शिवतराः सदा॥

(२००।८३, ८५)

इसी प्रकार गायत्री-मन्त्रका महत्त्व है—

चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता॥
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति॥

(महा०, भीष्म०, ४।१५—

यहाँपर गायत्रीके अवलम्बनसे विनाशका दूर होना … है। इसलिये उपासनामें गायत्री-मन्त्रका प्रयोग स्वतःसिद्ध है

६-माला-जप तथा माला-भेद

श्रीमद्भगवद्गीता (१०।२५) में कहा है—'**यज्ञ… जपयज्ञोऽस्मि।**' यहाँ जपको एक यज्ञ माना गया है।

'**विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।**'

(मनु २।…

जप्येनैव तु संसिद्ध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात्……॥

(मनु० २।८…

ब्राह्मण अन्य कुछ करे या न करे, परंतु जप अव… करे। इससे वह संस्कृत हो जाता है।

'**जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते॥**'

(मनु० ४।१४…

'जो जप तथा हवनमें लगे रहते हैं, उनका पतन न… होता।' यह जपकी महिमा है।

जपको यज्ञ कहा जाता है, यह पूर्वमें कहा जा चुका है… 'यज्ञ' '**यज्**' धातुसे बनता है, जिसका अर्थ है—देवपू… देवताओंका सङ्गतिकरण और देवनिमित्तक दान। अ… पूजारूप उपासनामें तथा जपमें सहायक माला हुआ करती… जिसका संकेत भगवद्गीतामें—'**सूत्रे मणिगणा इव।**' (७।७) में आया है। जपके लिये संख्या १०८ होती है, तद… मालाकी आवश्यकता होती है। जपनेके लिये माला इसलि… रखनी पड़ती है कि जपकी संख्या हो जाय। बिना संख्याके ज… करना ठीक नहीं होता। बृहत्पराशरस्मृतिमें कहा है—'**अप्समीपे जपं कुर्यात् ससंख्यं तद् भवेद् यथा।**' (४।४०

अब मालाएँ किस-किसकी हुआ करती हैं, इसपर उ… स्मृतिकार कहते हैं—

स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः।
अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रशस्ता चोत्तरोत्तरा॥
अभावे त्वक्षमालायाः कुशग्रन्थ्याऽथ पाणिना।
यथाकथंचिद् गणयेत् ससंख्यं तद् भवेद् यथा॥

(४।४१-४२)

यहाँ स्फटिक (विल्लौर), इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष, पुत्रजीव आदिकी मालाएँ कही गयी हैं। यदि वे न मिलें तो करमाला भी गृहीत की गयी है—हाथकी अँगुलियोंसे गणना कर लेनी चाहिये।

रुद्राक्षकी विशेषता बहुत प्रसिद्ध है। यदि वह असली हो तो उसे पहननेसे रक्तचापकी बीमारीका भी दूर हो जाना माना जाता है। यहाँ इन मालाओंका उपलक्षण है, इयत्ता नहीं कि अन्य माला न हो सके। तुलसीकी माला भी ली जा सकती है, उसमें सात्त्विक विद्युत्प्रदान-शक्ति विज्ञान-सम्मत होनेसे उसका भी उपयोग हो सकता है। उस तुलसी-मालाको पहने रहनेसे गण्डमाला रोगकी सम्भावना नहीं रहती।

प्रत्येक पलमें हमारे छः श्वास निकलते हैं। ढाई पल या एक मिनटमें पंद्रह श्वास निकलते हैं। एक घंटेमें ९०० श्वास निकलते हैं। बारह घंटोंमें १०,८०० श्वास होते हैं। इतने समय जीवको जप करना चाहिये। जैसा कि 'योगचूडामणि' उपनिषद् (३२) में कहा है—

षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥

यहाँ दिन-रातके श्वासोंकी संख्या २१,६०० बतायी गयी है। पर रात सोनेके लिये है। यदि हम दिनमें एक माला करें, तो उसके एक सौ आठ दाने होते हैं। हमने एक सौ आठ बार जप किया। यदि उपांशु (जिसमें जपके अक्षर स्पष्ट सुनायी न दें) जप करें '**उपांशुः स्याच्छतगुणः**' (मनु० २। ८५), तो उसका सौगुना फल कहा गया है, तब १०८×१००=१०,८०० संख्याका दिनका जप हो जाता है। यह सोचकर मालाके १०८ दाने रखे गये। माला न मिल सके तो हस्तमालाका अवलम्बन करना चाहिये।

देवताओंसे दीर्घायुष्यकी प्रार्थना

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः। सं मायमग्निः सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

मरुद्गण, पूषा, बृहस्पति और यह अग्नि मुझे प्रजा और धनसे सींचें और मेरी आयुकी वृद्धि करें।

सं मा सिञ्चन्त्वादित्याः सं मा सिञ्चन्त्वग्नयः। इन्द्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

आदित्य, अग्नि और इन्द्र मुझे प्रजा और धनसे सींचें और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें।

सं मा सिञ्चन्त्वरुषः समर्का ऋषयश्च ये। पूषा समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

अग्निकी ज्वालाएँ, प्राण, ऋषिगण और पूषा मुझे प्रजा और धनसे सींचें और मुझे दीर्घायु प्रदान करें।

सं मा सिञ्चन्तु गन्धर्वाप्सरसः सं मा सिञ्चन्तु देवताः। भगः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

गन्धर्व एवं अप्सराएँ, देवता और भग मुझे प्रजा और धनसे सींचें और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें।

सं मा सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चन्तु या दिवः। अन्तरिक्षं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च॥
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष मुझे प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें।

सं मा सिञ्चन्तु प्रदिशः सं मा सिञ्चन्तु या दिशः। आशाः समस्मान् सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

दिशाएँ,प्रदिशाएँ और ऊपर-नीचेके प्रदेश मुझे प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें।

(अथर्ववेद)

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'देवताङ्क' ...कोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। 'कल्याण'की ...मरामें प्रतिवर्ष प्रकाशित विशेषाङ्कोंमें यद्यपि देवताओंकी ...र्चा किसी-न-किसी रूपमें अवश्य होती रही है, परंतु ...रतीय वाङ्मयके सम्पूर्ण देवताओंका परिचय और स्वरूप ...दिका एकत्र संकलन अबतक नहीं हो सका। चूँकि देवता ...न्दू-संस्कृति और भारतीय धर्मके मूलाधार हैं, अतः इस वर्ष ...ह विचार आया कि देवताओंका परिचयात्मक संकलन ...विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय।

वास्तवमें मनुष्यलोकमें जन्म लेकर चतुर्विध पुरुषार्थको ...प्त करना ही मानव-जीवनकी उपलब्धि है। धर्म, अर्थ, काम ...और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंके मिल जानेपर जीवनमें कुछ ...ष नहीं बचता, जिसे प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाय। ...सारमें जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना ही मोक्ष है, जो ...नुष्यका अन्तिम लक्ष्य है। सामान्यतः मानव सुख-शान्ति ...और समृद्धिकी भी इच्छा करता है। जीवनको समृद्धिशाली ...नानेके लिये मनुष्यको अनेक आवश्यकताओंकी अनुभूति ...होती है, जिन्हें पूर्ण करनेके लिये वह प्रयत्नशील भी होता है, ...परंतु अपनी आवश्यकताओंको पूर्ण कर लेना उसके वशकी ...बात नहीं। संयोगवश कुछ अंशोंमें यदि आवश्यकताओंकी ...पूर्ति हुई भी तो उस प्राणीको उससे पूर्ण तृप्ति नहीं हो पाती, इस ...समस्यापर भारतीय दार्शनिकोंने विशेषरूपसे विचार किया और ...वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि इहलोक एवं परलोकमें सुख-शान्ति और समृद्धिका मूल कारण देवताओंकी उपासना आदि पुण्य कार्य और भगवदनुग्रह ही है।

यही कारण है कि देवोपासनाके बलपर ही प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज विशेष सामर्थ्यवान् थे। धन-सम्पत्तिकी पूर्णता, शरीरकी आरोग्यता, पारिवारिक सुख एवं अन्तर्मनमें शान्ति आदि आजकी अपेक्षा उन दिनों बहुत अधिक होती थी। उनमें यह सामर्थ्य होती थी कि वे अपनी इच्छा एवं स्मरणमात्रसे देवताओंके दर्शन कर सकते थे तथा सशरीर देवलोकोंमें भी भ्रमण करनेकी उनमें क्षमता थी। वे अपनी उपासना एवं आराधनासे अपने उपास्य देवोंको प्रसन्नकर वरदानके रूपमें उनसे अमोघ अस्त्र एवं महान् शक्ति भी प्राप्त कर लेते थे। अपने प्राचीन ग्रन्थोंमें इस बातके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। ये देवता व्यास, वाल्मीकि और वसिष्ठ आदिसे प्रत्यक्ष मिलते थे और व्यवहार करते थे। देवताओंद्वारा पाण्डवोंकी उत्पत्तिकी कथा भी सत्य है।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि देवता कौन हैं ? और इनकी आराधना-उपासना क्यों तथा कैसे होनी चाहिये ?

भारतीय दर्शन एवं अपने शास्त्रोंके अनुसार इस जगत्में जैसे मनुष्ययोनि और इसके साथ पशु-पक्षी तथा कीट-पतंगादि योनियाँ भी हैं, उसी प्रकार परलोकमें देवयोनि है। मनुष्योंके शरीर पृथ्वीतत्त्व-प्रधान होते हैं, जब कि देवताओंके शरीर तेजस्-तत्त्व-प्रधान होते हैं। ये दिव्य और शुद्ध तो होते ही हैं, साथ ही सर्वदा संतृप्त और आनन्दित भी रहते हैं। इनके शरीरमें दिव्य सुगन्धि, उज्ज्वल निर्मलता तथा भव्य दीप्ति और कान्ति सदा परिव्याप्त रहती है। इसके अतिरिक्त इनमें संकल्पसिद्धि, अप्रतिहत-गति, त्रिकालज्ञान, राग-द्वेषादि द्वन्द्वराहित्य इत्यादि अलौकिक गुण एवं असीम सामर्थ्य भी विद्यमान रहता है, जो मनुष्योंमें नहीं दीखता। देवताओंका यह गुण है कि जो गुण और जो सामर्थ्य उन्हें प्राप्त है, वे उसे अपने उपासक और भक्तको भी प्रदान करनेकी सामर्थ्य रखते हैं।

शास्त्रोंके अनुसार देवता दो प्रकारके होते हैं—

१-नित्य देवता

नित्य देवताओंका पद प्रवाह-रूपसे नित्य होता है, इन्हें आजानदेवता भी कहा जाता है। ये देवलोकके बड़े अधिकारी होते हैं। इनके भी दो भेद होते हैं—प्रथम भगवत्कोटिके देवता—गणेश, विष्णु, शिव, शक्ति और सूर्य—इन पाँचों देवताओंमेंसे किन्हीं भी एक देवताकी पूर्ण ब्रह्मके रूपमें उपासना हो सकती है तथा उनके साथ अन्य चारोंकी देवकोटिमें उपासना होती है। दूसरी कोटिमें सामान्य देवता—इन्द्र, वरुण, आदित्य, रुद्र आदि साधारण देवता हैं, जिनके पद तो निरन्तर बने रहते हैं, किंतु अधिकारी बदलते रहते हैं। इनके बदलनेका समय निश्चित रहता है।

२-नैमित्तिक देवता

इन देवताओंका पद समय-समयपर बनता है और नष्ट हो जाता है, इनमें भी दो भेद हैं—

(क) मर्त्यदेवता—जो प्राणी मानव-योनिमें जन्म लेकर यज्ञ-यागादि पुण्य कर्मोंके बलपर स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त करते हैं, वे 'मर्त्यदेवता' की कोटिमें आते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर उन्हें वापस लौटना पड़ता है—'**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**'

(ख) अधिष्ठातृदेवता—संसारकी प्रत्येक वस्तुका एक अधिष्ठातृ-देवता होता है। यदि कोई नये घरका निर्माण हुआ तो उस गृहके अधिष्ठातृ-देवता होंगे और उस गृहके टूटते ही उनका वह अधिकार नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार किसी नवीन ग्रामका निर्माण होगा तो वहाँके एक ग्रामदेवता होंगे। उस वस्तु तथा स्थानकी सुरक्षा एवं कल्याणके लिये इन अधिष्ठातृ-देवोंकी पूजा आवश्यक होती है।

इसीलिये देवताओंकी संख्या नहीं हो सकती। अपने शास्त्रोंमें देवताओंको असंख्य कहा गया है। जितनी वस्तु होगी, उतने ही देवता भी होंगे।

निरुक्तके दैवतकाण्डमें देवताओंके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार किया गया है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे कामरूप होते हैं, वे स्वेच्छासे स्त्री-पुरुष या अन्य कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। वेदान्त-दर्शनमें कहा गया है—'देवता एक ही समय अनेक स्थानोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं।'

देवताओंके यजन-पूजन और उनकी उपासनासे लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकारकी उन्नति बड़ी सरलतासे सिद्ध हो सकती है। भौतिक समृद्धि प्राप्त करना देवोपासनाका अत्यन्त सामान्य फल है। कोई चाहे तो अपनी तपस्या एवं उपासनाके द्वारा स्वर्गमें कल्पभरके लिये स्थान प्राप्त कर सकता है तथा इन्द्र भी बन सकता है। देवोपासनाके द्वारा यह सब कुछ बहुत ही सुलभ है, किंतु वास्तवमें जो सबसे ऊँची बात है, वह है परम लक्ष्यकी प्राप्ति, मानवजीवनका लक्ष्य है—शाश्वत शान्तिकी प्राप्ति। यह शाश्वत शान्ति ही भगवत्प्राप्ति है, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना है, संसार-सागरसे मोक्ष पाना है और यही है अखण्ड आनन्द।

अपने शास्त्र यह कहते हैं कि देवताओंका यजन-पूजन और उपासना आदि सकाम भावसे किये जाते हैं तो इस लोककी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और परलोकमें इन्द्रत्व और पारमेष्ठ्यपदकी प्राप्ति होती है। और यदि यही कर्म निष्काम-भावसे किये जाते हैं तो अन्तःकरणको शुद्ध करके भगवान्‌की भक्ति अथवा तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके हेतु होते हैं। चाहे सकाम हो या निष्काम, किसी भी अवस्थामें देवोपासना लाभदायक ही होती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें सात्त्विक पुरुषोंका वर्णन करते हुए भगवान्‌ने कहा है—'**यजन्ते सात्त्विका देवान्**' अर्थात् सात्त्विक पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं। शारीरिक तपोंमें सर्वप्रथम स्थान देवपूजाको ही प्राप्त है। गीतामें यह स्पष्ट कहा गया है—'मनुष्य यज्ञद्वारा देवताओंको प्रसन्न करें और देवता मनुष्योंकी उन्नति करें, इस प्रकार एक दूसरेके सहकारी बनकर परम कल्याण प्राप्त करें। यहाँ यह भी कहा गया है कि संसारकी सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति देवताओंसे ही प्राप्त होती है, इसलिये उनकी वस्तु उनको दिये बिना जो भोगते हैं, वे एक प्रकारके चोर हैं—'**स्तेन एव सः।**' भगवान्‌की यह वाणी प्रत्येक साधकको सर्वदा स्मरण रखनी चाहिये।

देवोपासना जिस-किसी प्रकार नहीं की जा सकती। अपने इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये उपासनाकी कुछ मूलभूत बातें शास्त्रोंमें वर्णित हैं, जिन्हें ध्यानमें रखना चाहिये।

देवताओंके यथार्थ स्वरूपको देवता ही समझ सकते हैं अर्थात् देवताकी संनिधि प्राप्त करनेके लिये देव-स्वरूपको विशेष रूपसे हृदयङ्गम करना आवश्यक है। शास्त्र कहते हैं—'**देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।**' अर्थात् स्वयंमें देवत्वका आधानकर ही व्यक्ति देवताकी पूजाका अधिकारी बनता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि वह धरातलके गुणोंसे कुछ ऊपर उठकर दैवी गुणोंको स्वयंमें समाहित करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, राग और द्वेष आदि दुर्गुणोंसे दूर हटकर शुद्ध अन्तःकरणवाला व्यक्ति ही अपनी देव-साधनामें शीघ्र सफलता प्राप्त करनेका अधिकारी होता है। अतः यथासम्भव इन दुर्गुणोंसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये।

देवत्वके आधानके लिये शास्त्रोंने कुछ बाह्य प्रक्रिया भी

बतायी है, जिसका देवाराधन-यजन-पूजनमें सावधानीपूर्वक पालन करना चाहिये। शरीरकी आन्तरिक शुद्धिके साथ-साथ बाह्य शुद्धिकी भी आवश्यकता है। इस स्थूल शरीरमें अपवित्रताका ही साम्राज्य है। इसलिये इसे देवपूजाका तबतक अधिकार नहीं, जबतक यह शुद्ध एवं दिव्य न हो जाय। जबतक इसकी अपवित्रता बनी रहती है, तबतक उसके स्पर्श और स्मरणसे ग्लानिका उदय चित्तमें होता रहता है। इसलिये उपासकको सर्वप्रथम शौचादि क्रियाका पालन करते हुए शुद्ध जलसे स्नान करके स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र धारण करने चाहिये। शुचिवेशका अपना एक विशेष महत्त्व माना गया है। इसके साथ ही अशुचिताके दोषको मिटानेके लिये तथा देवत्वका आधान स्वयंमें करनेके लिये न्यासका भी विशेष महत्त्व कहा गया है। शरीरके प्रत्येक अवयवमें जो क्रियाशक्ति मूर्छित है, उसको जगानेके लिये न्यास ही एक महौषधि है। न्यासके द्वारा परमानन्दमयी अवस्थाका विकास होकर भगवान् ही है और भगवान्‌के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता नहीं है—इस सत्यका साक्षात्कार हो जाता है। शरीरके रोम-रोममें देवता, अणु-अणुमें देवता अर्थात् देवतामय शरीर हो जानेकी स्थितिमें यह मन भी दिव्य हो जाता है।

देवोपासनामें यजन-पूजन, बाह्यरूपमें तथा मानसिक रूपमें—दोनों प्रकारसे बताया गया है। इसके साथ-साथ अपने इष्टदेवके मन्त्रोंका जप और उनका स्मरण-चिन्तन यह सब देवाराधन ही है। अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष यह सब कृत्य यदि निष्काम-भावसे करता है अथवा अपने इष्टदेवमें प्रगाढ़ भक्तिकी कामनासे करता है तो वह शीघ्र ही संसारके जन्म-मरणके चक्रसे छूटकर परमात्म-प्रभुको प्राप्त कर लेता है। यही है देवाराधनकी महनीय सार्थकता।

आजके इस भौतिक युगमें देवता, ईश्वर आदि तत्त्वोंमें विश्वास न करना ही बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता एवं सूक्ष्म तार्किकताका आधारित साम्यवादियोंके सुदृढ़ दुर्ग सम्पूर्ण विश्वमें आज बड़ी तीव्र गतिसे ध्वस्त हो रहे हैं और वहाँकी भी अदेववादी अदृष्टविरोधी धारणा सर्वथा ध्वस्त हो चुकी है। यह परम्परा सृष्टिसे अनवरत ऐसी ही चली आयी है तथा वैदिक देववादी आस्तिक परम्परा ही सदा विजयी और सुस्थिर होती चली आ रही है। इस विषयपर साङ्गोपाङ्ग विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। आज देवताओंकी पूजा, भक्ति, उपासना आदि करनेवालोंको उच्चज्ञान, विचार, विद्या-बुद्धिमें अक्षम, अयोग्य एवं अल्पज्ञ मानकर सर्वथा उनकी उपेक्षा कर दी जाती है और उनकी कोई बात नहीं सुनना चाहता।

किंतु यह स्थिति कोई नयी नहीं है। पहले भी चार्वाक आदि अनेक दार्शनिकोंने बड़े प्रौढ़ एवं सूक्ष्म तर्कों एवं युक्तियोंके आधारपर इसी बातका समर्थन किया था, जिनकी अंशभूत कुछ सार बातें जहाँ-तहाँ इतिहास-पुराणोंमें अब भी मिलती हैं, जिन्हें देखकर अनुमान होता है कि इनकी प्रतिपादन-परम्पराके सामने आजके इन नास्तिक वैज्ञानिकोंके निबन्ध एवं कथनशैली बालकोंके समान है।

सर्वसाधारण जनमानसको हिन्दू-संस्कृति एवं धर्मके मूलाधार देवताओंका समग्र रूपसे परिचय प्राप्त हो सके, उनके स्वरूपका ज्ञान हो सके, इस दृष्टिसे यह 'देवताङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें मुख्य रूपसे देव-स्वरूपके उद्भव एवं विकास, देव-चरित्रसे सम्बद्ध उपयोगी रोचक कथाएँ, इन्द्रादि वैदिक देवताओंके साथ त्रिदेवों एवं त्रिशक्तियोंका रहस्य, पञ्चदेवोपासना, विभिन्न देवोंके विभिन्न अवतार उनके आयुधों, वाहनों, परिकरों एवं परिच्छदोंका विवरण, विभिन्न ग्राम्य-शक्तियों एवं लोकदेवताओंका संक्षिप्त परिचय तथा देवोपासनाकी विभिन्न पद्धतियोंका वर्णन, देशके विभिन्न भागोंमें प्रतिष्ठापित देवताओंका दिग्दर्शन कराया गया है।

करना पड़ा। गत दो वर्षोंसे महँगाईकी अनवरत अप्रत्याशित वृद्धिके कारण प्रतिवर्ष 'कल्याण'के मूल्यमें न चाहनेपर भी वृद्धि करनी पड़ जाती थी। महँगाईका यह क्रम इस वर्ष भी रुका नहीं। 'कल्याण'के लागत मूल्यमें इस वर्ष पुनः विशेष वृद्धिका अनुमान लगाया गया। लगातार मूल्यवृद्धि—'कल्याण'की नीति न होनेके कारण इस वर्ष हमें पुनः 'कल्याण'का मूल्य बढ़ानेमें अत्यधिक संकोचका अनुभव हो रहा था। बहुत विचार करनेपर 'न्यास-मण्डल'ने यह निर्णय लिया कि इस वर्ष 'कल्याण'के वार्षिक शुल्कमें वृद्धि न की जाय। घाटेकी राशिको कम करनेकी दृष्टिसे विशेषाङ्क तथा साधारण अङ्कोंके कुछ पृष्ठों तथा कुछ चित्रोंको कम करनेका निर्णय लिया गया। जिसके कारण 'देवताङ्क'की सम्पूर्ण सामग्री विशेषाङ्कमें समाहित कर पाना सम्भव नहीं हो सका। यद्यपि इस अङ्कके साथ दो मासके परिशिष्टाङ्क भी भेजे जा रहे हैं, जिसमें बची हुई सामग्रीके कुछ अंशोंका समायोजन करनेका प्रयत्न किया गया है। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ तथा माननीय विद्वान् लेखकोंके विशेषाङ्कमें प्रकाशनके लिये स्वीकृत लेख नहीं दिये जा सके हैं। जिसके लिये हमें अत्यधिक खेदका अनुभव हो रहा है। यद्यपि इनमेंसे कुछ सामग्री हम आगेके साधारण अङ्कोंमें देनेका प्रयत्न अवश्य करेंगे, परंतु विशेष कारणोंसे यदि कुछ लेख प्रकाशित न हो सके तो विद्वान् लेखक हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर हमें अवश्य क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने 'विशेषाङ्क'की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वही निमित्त हैं, क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी, सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम त्रुटियों और व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'देवताङ्क'के सम्पादनमें जिन संतों और विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानसपटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादर पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त व हूँ, जिन्होंने विभिन्न देवताओंका वर्णन और उनकी क 'विशेषाङ्क'के लिये तैयार कर निष्काम-भावसे अपनी स परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें समर्पित की हैं। तदनन्तर मैं श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामीके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त व हूँ, जिनका सहयोग और सत्परामर्श प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा

इस अङ्कके सम्पादनमें अपने सम्पादकीय विभागवे श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्य हार्दिक सहयोग प्रदान किया है, इसके सम्पादन एवं संशोधन तथा चित्र-निर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लो हमें सहृदयता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्य देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

अभी कुछ ही दिनों पूर्व 'कल्याण'के लोक कहानीकार श्रीसुदर्शनजी 'चक्र'का ७८वर्षकी अ देहावसान हो गया। 'कल्याण'के पुराने पाठक आ लेखनीसे पूर्ण परिचित हैं। 'कल्याण'में प्रकाशित आ कहानियाँ साङ्गोपाङ्ग हृदयस्पर्शी और अनूठी होती थीं, अभी भी पाठकगण याद करते हैं। पिछले वर्षोंमें प्रका 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंमें भी श्रीचक्रजीका अपूर्व योगदान है। साधक और विद्वान् लेखकोंके अभावकी पूर्ति आजकलके समयमें नहीं हो पा रही है, भगवान्‌की कृपाक एकमात्र संबल है।

इस बार 'देवताङ्क'के सम्पादनकार्यके क्रममें जगन्नि प्रभु और उनके पार्षदरूपमें देवताओं तथा उनकी ल लीला-कथाओंका चिन्तन, मनन और स्वाध्यायका सौभ निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी थी। हमें आशा है कि इस 'विशेषाङ्क'के पठन-पाठनसे ह पाठकोंको भी यह सौभाग्य अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल, अकारणकरुणावरुणाल देवोंमें महादेव, आशुतोष भगवान् विश्वनाथके श्रीचरणोंमें न करते हुए यह प्रार्थना करते हैं—

सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणम्प्रपद्ये॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक